

आचार्य चतुरसेन

का

कथा-साहित्य

लखनऊ विश्वविद्यालय की
पी-एच० डी० के लिए
स्वीकृत
शोध-प्रबंध

लेखक

डॉ० शुभकार कपूर

एम ए पी-एच डी

प्रकाशक
विद्येक प्रकाशन, किशोर पुकडिपो
जमीनाबाद लखनऊ-
मुद्रक
विद्यार्थविर प्रेस, लखनऊ
मूल्य २५ रुपये
प्रथम संस्करण १९६५

आशीर्षचन

स्व० श्री चतुरसेन शास्त्री की गणना हिंदी के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में की जाती है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सर्वांगीण विवेचन करते हुए हिंदी में डा० सुमकारनाथ कपूर की यह पहली कृति प्रकाश में आ रही है जिस पर ससनऊ बिस्वविद्यालय ने १९६२ में उन्हें पी-एच डी की उपाधि प्रदान की थी। ससनऊ बिस्वविद्यालय के हिंदी प्रकाशन के अंतर्गत यों तो कई महत्वपूर्ण धोमप्रबंध प्रकाशित हुए हैं, परंतु हिंदी के एक विख्यात कमानार के संबंध में यह पहला ही प्रबंध प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि हिंदी संसार इसका समुचित आदर करेगा।

डा० कपूर ने प्रस्तुत प्रबंध के लिखने में पर्याप्त श्रम किया है। स्व० शास्त्री जी की कृतियों का अध्ययन में ता के वा-सीम वर्ष संलग्न रहे ही स्वयं उनके संपर्क में भी लगभग तीन मास तक रहकर उन्होंने साहित्य के विविध अंगों के साथ-साथ उसके अहंस्थ रूप आदि के संबंध में स्व० शास्त्री जी के परिपक्व विचार संकलित किये जिनका उपयोग प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है। निस्संदेह इससे डा० कपूर की इस कृति का मूल्य बहुत बढ़ गया है।

डा० कपूर अध्ययनसापी मुक्त हैं। वे गिरंतर साहित्य-सेवा में संलग्न रहकर पाठ्यभाषा की भी वृद्धि में योग देते रहे यही मेरी शुभ कामना है।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
ससनऊ बिस्वविद्यालय
ससनऊ

दीनदयालु गुप्त,
११२६४

प्रस्तावना

भाचार्य चतुरसेन छास्री के साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रमुख कारण उनके साहित्य की विपुलता और विविधता ही है। इसके साथ ही उसकी रोचकता और उद्वेगता भी है। उनका साहित्य छास्रीय ज्ञान-संचार से लेकर उर्बरे कल्पना की हृषी भरी फसलों तक फैला हुआ है। उसमें प्रादेशिक इतिहास और व्यक्तिचरित्र के इतिवृत्त से लेकर विश्व इतिहास के विकास का विस्तार है। उसमें मानव जीवन की मासिक कथाओं से लेकर राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम की व्योमि का महुर प्रकाश है। इतना ही नहीं उनके कथा साहित्य में वैदिक काल की वृषली कथाओं के साथ हमारी आँखों सेके पये संघर्षों और घटनाओं के वृत्तांत भी हैं। इसका कारण उनका स्वयं का व्यापक जीवनानुभव और विस्तीर्ण भ्रमण था। उनके समस्त ज्ञान और रचनात्मक विचार कल्पना-विस्तार के कारण उनको सहज और आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का व्यास कहा जा सकता है।

भाचार्य चतुरसेन की जो बहाँ एक जोर जीवन के विविध अनुभव प्राप्त हुए, वहीं उन्हें अनेक प्रकार की बाधाओं और रुकावटों का भी सामना करना पड़ा। एक सामुदायिक छास्री के रूप में धन और सम्मान दोनों ही के वैभव से वंचित होते हुए भी उनकी साहित्यिक आत्मा को पीन न था। फलतः उस जीवन का तिराजसि देकर भाचार्य जी ने एक साहित्यकार का जीवन अपनाया। सामान्यतः वैसी उक्ति है कि 'सदमी और सरस्वती' का मेल नहीं होना। भाचार्य जी को भी एक सिद्धांतवादी साहित्यकार होने के नाते अनेक प्रकार के व्यवधानों और आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। फिर भी एक अदम्य साहित्यकार की स्वस्मिता उनके संघर्षों की अथ संकटों की विराम न करते हुए भी उन्होंने साहित्य रचना की अपनी व्ययनिष्ठा कायम रखी और अतठोक्त्वा इसी में अपने को विसर्जित भी कर दिया।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि भाचार्य चतुरसेन छास्री अपने व्यय में कहीं तक सफल हुए? इस विषय में कोई मतभेद हो सकता है। कहा जा सकता है कि 'घोना और जून' जिसको उन्होंने एक बड़े व्यापक और विस्तृत कठक पर विभित करने का उपक्रम किया था जब अपुण रह गया तो उसके व्यय की पूर्णता कैसी? पर मेरे विचार से उनका यह उपम्यास सफल होते हुए भी व्यय की दृष्टि से अपूर्ण न होकर पूर्ण है। जिस दृष्टिकोण से उन्होंने समस्त विरल की मानवता के इतिहास को देखा और अद्विष्ट करना चाहा है वह दृष्टिकोण जब पूर्णतया उनके प्रजातिगत चार भागों में स्पष्ट है, जब अपूर्णता

बेचस घटना या तन्मय-संयोजन की ही रह जाती है दृष्टिकोण की नहीं। आचार्य जी इस खण्डों में बिस्व के इतिहास की जो सारी सम्पूर्ण 'सोना और खून' में प्रस्तुत करना चाहते थे वह भारतीय जीवन और राष्ट्रीय चेतना के स्थाप और विकास की पृष्ठभूमि बनकर मान वाली थी। वह सारी पूरी हमारे सामने न आ सकी इसका हमें दुःख है पर जो सचकें हमें प्रस्तुत दो भागों में प्राप्त हाती हैं वे बिस्व के इतिहास और ऐतिहासिक घटनाओं को देखने के हेतु हमें एक दृष्टि प्रदान करती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि आचार्य चतुरमेन का यह प्रयास सर्वथा सौम्य और अनूठा था। बिस्व के कथा साहित्य के अंतर्गत अभी तक ऐसा प्रयास नहीं हुआ था। यह आचार्यजी के विशाल दृष्टिकोण तथा व्यापक विस्तीर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान का एक प्रभूत प्रमाण है। इसमें उनकी एक आश्चर्यकारी उपलब्धि इस बात में देखी जा सकती है कि ये प्रत्येक सचकण्ड अलग-अलग पूरी कथा कहूँ हुए भी सभी मिसकर एक बिस्वव्यापी कहानी को पृष्ठ करनेवासे थे। इस प्रकार के सूत्र संघासन की कल्पना घांसी जी की अपनी थी।

चतुरमेन जी की इस कल्पना की पृष्ठभूमि में भारतीय कथा साहित्य के संस्कार ये इसे स्वीकार करना होगा। भारतीय कथा साहित्य की परंपरा में पंचतंत्र बृहत्कथा मजरी बँताक पचीसी सिंहासन बत्तीसी धुन बहारी आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनकी सूत्र बद्धता और रोचकता सुनिश्चित है और मेरा विचार है कि यह विशेषता अपने आधुनिक परिवेश में आचार्य जी के कथा-साहित्य में भी विद्यमान है।

इतिहास और कथा का क्या सम्बन्ध है? यह बात यदि स्पष्ट रीति से देखनी हो तो आचार्य जी के कथा-साहित्य का पारायण विरोध रूप से सहायक सिद्ध होगा। उनका आशे से अधिक उपम्यास इतिहास से संबंध रखते हैं और उनमें चित्रित इतिहास का कान खण्ड बेहो मे लेकर आधुनिक युग तक फँसा

१ नोट—'सोना और खून' का पाँचवा भाग इस प्रबन्ध के लेखक ने पूर्ण करने का प्रयास किया है। यह भाग सन् १८५७ से १८८१ ई० तक पहुँच गया है। इसमें भारतीय ब्याज और जनक साहित्यिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक महातुमारों के जीवन की गाथा बड़े ही कसात्मक रूप से आ गई है। छठे भाग में प्रथम महायुद्ध तक की कथा आ रही है। यह दोनों भाग तीव्र ही प्रकृषित हो रहे हैं। लेखक का प्रयास है कि आचार्य जी के 'सोना और खून' के दसो खंड (१७५७ से १९५७ तक) पूर्ण होकर सामने आ सकें। जैसे आर्वेय इसका निर्णय तो पाठक ही करेंगे।

हुआ है। वैदिक-पौराणिक युग मुस्लिम शासन का मध्य युग तथा अंग्रेजी शासन का आधुनिक युग सभी युगों के संवेदनात्मक ऐतिहासिक तथ्य घटनाएँ और व्यक्तित्व आचार्य चतुरसेन की लेखनी के प्रभाव से समीप ही नहीं जीवन्त रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। इसके साथ ही इनमें विशेषता यह है मानव-जीवन की अनेक भूमियों और सहज वृत्तियों और प्रवृत्तियों का इनमें जोरदार चित्रण हुआ है। जीवन की मर्याद बासनाओं का विरस्कार न करते हुए भी उनके चित्रण द्वारा प्रगति के मार्ग का संकेत करने की विशेषता चतुरसेन की ने उपन्यासों में प्रायः देखने को मिलती है।

उपयुक्त तथा अन्य अनेक दृष्टियों से आचार्य चतुरसेन सास्त्री के कथा-साहित्य के मूल्यांकन की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए डा० सुमकरनाथ कपुर ने अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया जिस पर उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय की पी एच डी की उपाधि प्राप्त हुई। यह प्रबंध उनके अबक एवं सुदीर्घ परिश्रम का परिणाम है। इसके साथ ही इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि लेखक ने स्वयं आचार्य चतुरसेन के साथ तीन महीने रह कर उनके दृष्टिकोण तथा विविध उपन्यासों के कथामोलों एवं प्ररंजनों को यकी भाँति समझा था। आचार्य जी के जीवित-संपर्क और उनके भीमुख से प्राप्त अनेक विचारों व्याख्याओं और विशेषताओं से प्रस्तुत ग्रंथ में एक विशिष्ट प्रकार की प्रामाणिकता आ गई है जो उन पर सिखे गये अब के ग्रंथों में नहीं आ सकती।

इन सभी कारणों से प्रस्तुत ग्रंथ को प्रकाशित होते देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। केवल मेरे साथ कठिनपम उन स्वार्थों का भ्रमण भी किया था जो चतुरसेन जी के उपन्यासों में धामे हैं और उनके वर्णनों में यथासंभवना देखकर एक विशिष्ट पुरुष का अनुभव हम लोगों को होता है। आज मेरे समक्ष वे सभी स्मृतियाँ साकार हो रही हैं जब प्रबन्ध के लेखन काल में लेखक एक निजामु खोबायी के रूप में मेरे पास था। मैं कहता हूँ कि शोध के लिए ऐसी तपन किरण है। मेरा आशीर्वाद है कि लेखक अपने जीवन और साहित्य रचना में उन्नतपदा सफलता प्राप्त करे। मुझे विश्वास है कि उसकी लेखनी में अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना होगी और प्रस्तुत ग्रंथ का हिंदी-संसार में समुचित स्वागत होगा।

पुना विश्व विद्यालय }
विश्वदासगामी १९६४ ई० }

मगीरय मिश्र

भूमिका

हिंदी के सोपानियों की रूचि इधर हिंदी उपन्यासकारों एवं कहानीसेवकों के अध्ययन की ओर विशेष रूप से बढ़ी है और फलस्वरूप उनकी उपन्यास एवं कहानी-रचना का परिचय देने एवं मूल्यांकन करनेवाली कई महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं। प्रस्तुत प्रबंध भी इसी प्रकार की आलोचनात्मक कृति है जिस पर डा० कपूर को तीन वर्ष पूर्व सखनऊ विश्वविद्यालय में पी-एच डी की उपाधि प्रदान की थी।

हिंदी के प्रेमबंध, अथवा 'प्रसाद' जैसे उपन्यास एवं कहानीकारों के संबंध में पिछले चासीस-सवास बरों में स्रुट निबंधों तथा विविध पत्रीय पुस्तकों के रूप में पर्याप्त लिखा जा चुका है। अतएव जब कोई शोधार्थी प्रेमबंध अथवा 'प्रसाद' जैसे कथानक के कृतित्व को लेकर सोपानबंध लिखने को प्रस्तुत होता है तब पूर्व प्रकाशित रचनाओं का उपयोग कर लेने का सुयोग मिल जाने से उसका कार्य बहुत-कुछ सुगम हो जाता है—कम से कम आलोच्य विषय के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण सूत्र तो उसे प्राप्त हो ही जाते हैं। परंतु स्व० चतुर सेन मास्त्री की उपन्यास अथवा कहानी-रचना के विषय में हिंदी में इतना कम लिखा गया है और जो कुछ लिखा भी गया है उसमें इतना महत्वपूर्ण है कि उनकी कृतियों का मूल्यांकन करने की प्रवृत्त होने वाले अध्ययता को उससे विशेष सहायता तो मिलती नहीं उल्टे कभी-कभी यह बहुत बटिष्ठ स्थिति में पड़ जाता है। अतएव डा० कपूर को प्रस्तुत प्रबंध के लेखन में स्वयं ही अपना मार्ग बनाना पड़ा। इस स्थिति से एक बहुत बड़ा काम यह हुआ कि डा० कपूर ने स्व० आचार्य जी के संपर्क में लगभग तीन मास व्यतीत किए। व्यक्तिगत और सामान्य जीवन तथा साहित्य के विविध पक्षों के संबंध में जो सूचनाएँ, इस संपर्क के फलस्वरूप डा० कपूर ने प्रस्तुत प्रबंध में संकलित की हैं, के समस्त कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं और हिंदी-जगत उनसे पूर्वपरिचित भी नहीं है। ऐसी सूचनाओं के प्रबंध में प्रतिपादित अनेक विषयों को रोचक बनाने के साथ-साथ प्रामाणिकता भी प्रदान की है। केवल इस एक विशेषता के कारण ही इस मौलिक

कृति का स्थायी महत्त्व है जिसके लिए हिंदी-भाषक सामान्य रूप से और शास्त्री जी के अध्येता विशेष रूप से डा० कपूर के आभारी रहेंगे।

अपने छह ही पुस्तकों में लिखे गये इस प्रबंध में आचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतिशैली से संबंधित नौ अध्याय हैं—जीवन-बुल रचनाएँ एवं कथा-साहित्य का वर्गीकरण उपन्यासों के कथानक पात्र और चरित्र-विवरण कथोपकथन शैली-नाम अथवा वातावरण-सृष्टि, कहानियाँ माया एवं सेकन-सीसी विचार एवं जीवन-दर्शन। पहला अध्याय आदि से अंत तक रोचक है जिसमें अनेक नवीन तथ्यों का संग्रह किया गया है और समस्त शास्त्री जी के व्यक्तित्व की समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। दूसरे अध्याय में शास्त्री जी के १३९ प्रकाशित एवं कुछ अप्रकाशित ग्रंथों की सूची है। यदि यह सूची प्रकाशन के आसन्नानुसार न दी जाकर विषयानुसार वर्गीकृत रूप में दी जाती तो और अच्छा होता।

तीसरे के छठे अध्यायों तक शास्त्री जी के २९ उपन्यासों की विविध तर्कों की दृष्टि से आलोचना की गयी है। इनमें 'कथोपकथन' नामक अध्याय यदि 'माया एवं सेकन-सीसी' के पूर्व दिया जाता तो उनमें कहानियों के संसारों की बर्बाद भी विस्तार से की जा सकती थी। सातवें अध्याय में २१ संग्रहों में संगृहीत आचार्य जी की लगभग पीने तीन सौ कहानियों की कला पर प्रकाश डाला गया है। अंतिम दोनों अध्याय शास्त्री जी के पूरे कथा-साहित्य—उपन्यास एवं कहानियों—को लेकर लिखे गये हैं। अपने समय रूप में प्रस्तुत प्रबंध से स्व० शास्त्री जी के कथाकार रूप का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

स्वर्गीय शास्त्री जी की रचनाओं का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उनके संबंध में विविध पक्षों को लेकर ऐसे कई आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। प्रस्तुत प्रबंध में विषय की विस्तारता और व्यापकता के कारण शास्त्री जी के कथा-कार रूप का सर्वांगीण सूक्ष्म विश्लेषण ही संभव था ही नहीं है, डा० कपूर ने प्रत्येक पक्ष को लेकर विधा निर्देश अवश्य कर दिया है। स्वयं के अथवा शास्त्री जी के अन्य अध्येता इस कार्य को आगे बढ़ावेंगे ऐसी आशा है।

डा० कपूर की कुछ और कृतियाँ भी प्रकाश में आ चुकी हैं। हिंदी-सेवा में इसी प्रकार संकल्प लूकर के अपनी प्रतिभा का सङ्ग्रहण करते रहें मही मेरी हार्दिक कामना है।

हिंदी विभाग
विश्वविद्यालय लखनऊ

}

प्रेमनारायण टंडन

आमुख

भाचार्य चतुरसेन छास्त्री के कथा साहित्य के प्रति मेरे हृदय में सैसब से ही ममत्व रहा है। बचपन में उनकी 'बीर याथा' नामक कहानी संग्रह की कुछ कहानियों को मैंने बड़े चाव से पढ़ा था। इसी समय के लगभग मैंने उनके कुछ उपन्यासों का भी मनोरंजन के लिए अध्ययन किया। सन् १९३३ में मुझे उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'बैद्याजी की नगरवधू' को पढ़ने का अवसर मिला। मैं उसके कथा सौंदर्य पर मुग्ध हो गया। कथा-सौंदर्य के साथ-साथ उसका भाषा एवं भाव पक्ष भी पूर्ण पुष्ट था। किन्तु सम्पूर्ण उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात् मुझे उसमें कुछ काल दोष भीख पड़े। इसी समय कुछ पत्रों में मैंने इस पुस्तक की आलोचना भी पढ़ी। कुछ ने इस पुस्तक की अत्यंत प्रशंसा की थी तो कुछ ने ऐतिहासिक उपन्यास क्या नहीं होना चाहिये इसका परम उदाहरण यह ७५७ पृष्ठों (तृतीय संस्करण में ७७० ही हैं) का बौद्धकामीन इतिहास उस का मौलिक उपन्यास है' तक कह डाला था। उपन्यास और इन सर्वथा भिन्न आलोचनाओं को पढ़कर मन में कुछ संकाएँ उठीं और मैंने उपन्यासकार को इस विषय से संबंधित एक पत्र लिखा। पत्र में मैंने यह आशय भी व्यक्त किया कि उपन्यासकार ने इतने परिचय के पश्चात् भी अपनी रचना में आनंद लिए हुए भी इतनी अर्थकर काल संबंधी भूलें क्यों होने दीं? किन्तु मुझे पत्र का कोई उत्तर प्राप्त न हो सका। कुछ दिनों प्रतीक्षा के पश्चात् उत्सुकता स्वयं शान्त हो गई। इसी समय मैंने महापुरुषों एवं साहित्यकारों की आयुर्विधियों पर हिन्दी के विख्यात विद्वान् बाबू मुलाबयाम के निर्बंधन में एक स्वतन्त्र पुस्तक के लिए शोध कार्य प्रारम्भ किया। उस समय भी लेखक ने पुनः एक पत्र भाचार्य चतुरसेन जी को उनकी आयुर्विधियों के विषय में लिखा किन्तु उसका भी कोई उत्तर प्राप्त न हुआ। मुझे कथा बड़ा विभिन्न साहित्यकार है पत्र का उत्तर तक नहीं देना।

इसी बीच मैंने उनकी अन्य कई पुस्तकों और पत्र डालीं। मैं उनकी पुस्तकों के प्रति आकर्षित ही होता गया। ज्यों ज्यों मैं उनके साहित्य का अध्ययन करता या रहा या त्यों त्यों मेरे मस्तिष्क में कितनी ही संकल्पें बढ़ती या रही थीं। पत्रों द्वारा इन संकायों का समाधान कठिन या अतः मेरे मन में इस मस्त साहित्यकार के व्यक्तित्व की तिकट से समझने की तीव्र इच्छा बनी। मैंने पूज्य गुरुवर डा० दीनदयालुगुप्त जी से 'आचार्य चतुरसेन के कथा साहित्य' पर शोध कार्य करने की आज्ञा माँगी। डा० साहब ने सहर्ष आज्ञा दे दी। साथ ही पूज्य गुरुवर डा० मनीरथ जी मिश्र ने प्रस्तुत प्रबंध के निर्देशन का आश्वासन भी प्रस्तुत प्रबंध के लेखक को दे दिया। मैं इसी समय इन दोनों गुरुवरों से परिचय पत्र लेकर आचार्य चतुरसेन जी से मिलने के लिए दिल्ली या पहुँचा। अपने जाने की सूचना मैं पत्र द्वारा प्रथम ही आचार्य जी को दे चुका था। मिलने से पूर्व इस फलदायक साहित्यकार के विषय में मैं कितने ही लोगों की भ्रांत बारबाएँ सुन चुका था। किन्तु उनसे प्रथम परिचय के पश्चात् ही मेरी ने समस्त धारणाएँ निर्मूलक हो गई थी। मैं प्रथम बार उनके समीप १४ दिन रहा। इन १४ दिनों में मेरी समस्त संकायों का समाधान उन्हेनि कर दिया था। इसके पश्चात् उनके जीवन काल में बार बार और गया कुछ मिठा कर तीन माह मुझे इस महान् साहित्यकार के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस मध्य में हुए उनसे वार्तालाप एवं उनके मुँह से सुन संस्मरणों का मैंने प्रस्तुत प्रबंध में तब तब उपयोग किया है इससे प्रबंध की मौलिकता तो बड़ी ही है, साथ ही विस्तारपूर्ण कार्य को एक तथीय वसा भी प्राप्त हो सकी है। आचार्य चतुरसेन जी ने जीवनकाल में ही उन पर मेरे दो 'इन्टरम्यू' 'वर्मयुप' एवं 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में प्रकाशित ही चुके थे उनकी मृत्यु के पश्चात् मेरे 'स' केक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके जीवन और साहित्य से संबंधित और प्रकाशित हुए।

आचार्य चतुरसेन जी ने अपने जीवनकाल में लगभग १६० पुस्तकें विविध विषयों पर सिद्धीं अथवा उनके द्वारा लिखित इस हजार से अधिक पृष्ठ विविध सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। प्रस्तुत प्रबंध में केवल अपने 'कथा साहित्य' का अध्ययन ही किया गया है। उनके इस 'कथा साहित्य' के अंतर्गत लगभग तीस हजार पृष्ठों के २९ उपन्यास एवं लगभग तीन हजार पृष्ठों के २५ कहानी संग्रहों को रखा गया है। आचार्य चतुरसेन जी का यह कथा साहित्य अपने विद्वान् कलेवर के सब निज का मूल्य भी रखता है। आचार्य जी अपने प्रारम्भिक उपन्यासों एवं कहानियों में एक समाज सुधारक के रूप में ही सामने आए हैं। वे हृदय से एक साहित्यकार और व्यक्तित्व से एक चिकित्सक थे। वास्तव में वे

केवल मानव शरीर के ही नहीं बल्कि उसके समाज के भी चिकित्सक थे। वे साहित्यकार थे किन्तु यथोचित करने वाल नहीं बल्कि कलई खोसने वाले। वे आधुनिक चर्मरोग से जिनसे मनुष्य शरीर का ही नहीं उसकी आत्मा का उसके समाज का कोई भी दोष मुक्त नहीं रह पाता था। उन्होंने समाज के दोषों को देखा था बुर से नहीं पास से। समाज के ये दोष देखकर वे मौन नहीं रहे, तड़प उठे थे और यही तड़पन उनकी प्रारम्भिक कलाकृतियों से व्यक्त हुई। इस तड़पन को व्यक्त करने में वे कहीं-कहीं अति यथार्थवाद बबबा प्राकृतवाद के समीप भी पहुँच गए हैं।

उन्होंने अतीत की ओर दृष्टिपात किया जबकि किन्तु केवल इतिहास प्रेम के कारण नहीं बल्कि इसी हाविक तड़पन के कारण। उन्होंने वर्तमान कुरीतियों को मूल इतिहास से जोड़ निकालना चाहा उनका परिहार करने के लिए, किन्तु वहाँ भी उस अतीत में भी यह कुरीतियाँ उन्हें ज्यों की त्यों ढीलीं। उन्होंने देखा कि उस काल की साधारण जनता बोरों से मुक्त है किन्तु राजा एवं सामंत वर्ग उनसे भरे पूरे है। वे भोगी है विभासी है जिनकी दृष्टि में स्त्री केवल मात्र भोग्य की सामग्री है। धर्म भी केवल इन विलासियों का संरक्षक मात्र रह गया है। धर्म के नाम पर जो मायाचार हो रहे वे यह भी उन्हें स्पष्ट दीक्ष पड़े। इन सबके प्रकाश में हिन्दू धर्म के पक्ष के कारण भी उन्हें स्पष्ट दीक्ष लगे उन्होंने इन्हीं सबकी बलिदान उभेड़कर अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रच डी है। आचार्य चतुरसेन जी ने अपने इन उपन्यासों की रचना केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि मार्मिक प्रवर्धन एवं सुधार के लिए की है। उनके इन उपन्यासों से हमें कमल मनोरंजन एवं कुतूहल ही प्राप्त नहीं होता बल्कि स्पष्ट एव शक्ति भी प्राप्त होती है।

आचार्य जी के उपन्यासों का क्षेत्र विस्तृत है। रामायण काल से लेकर आधुनिक काल तक की बचाने उनके उपन्यासों में जगत्सूत है। उनके उपन्यासों का बटना क्षेत्र भी अत्यंत विभाजित है। वे भी वास्टर स्काट बचाना भी बुन्दाबन काल धर्मों की भाँति किसी प्रवेश बिंदु तक ही सीमित नहीं हैं। उनके उपन्यासों का बटना क्षेत्र केवल भारत तक ही नहीं बल्कि बिदक के प्रमुख देशों तक ब्याप्त है। इतना ही नहीं अइकोक भी उनके उपन्यासों के बटना क्षेत्र से बाहर नहीं जा पाया है। अतः कहा जा सकता है कि आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों का बटना क्षेत्र पृथ्वी से आकाश तक परिब्याप्त है।

आचार्य चतुरसेन मानवतावादी बचानार थे। उनकी सीह लेखनी ने ईश्वर की नहीं, मानव की पूजा की थी। उनका साहित्य शक्ति और मित्रोद्

का साहित्य है। वस्तुतः वह जन्म से ही अंतिकारी और विद्रोही थे। उनके साहित्यकार व्यक्तित्व का निर्माण बिन तत्कों से हुआ था उनमें सेका धर्म, प्रभाव और साहस प्रमुख थे। उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य के मूळ में यही चारों तत्व थे। इन्हीं से प्रेरित होने के कारण उनके कथा साहित्य में एक ओर जहाँ स्वयं उत्सर्ग उच्चारता एवं स्नेह भाषि की भावनाएँ मरी हुई मिळती हैं वहीं अंति एवं विद्रोह की भावनाएँ भी उनके समागान्तर चल्ती हुई बीम पड़ती हैं। इस प्रकार आचार्य जी का साहित्य अति विस्तृत एवं विविध क्षेत्र व्यापी है और एक सीमाबद्ध ग्रंथ में उनका समग्र अध्ययन कठिन कार्य है। फिर भी प्रस्तुत प्रबंध में आचार्य चतुरसेन जी के सम्पूर्ण कथा साहित्य का आलोचन गालमक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आचार्य जी के कथा साहित्य पर इस विद्या में अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ। कुछ आलोचना ग्रंथों में उनके उपन्यासों बबका उनकी जीवम्यासिक कला पर विभिन्न चर्चाएँ अवश्य प्राप्त होती हैं। कुछ पत्रिकाओं में उनके साहित्य पर कतिपय लेख भी प्रकाशित हुए हैं। साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में उनकी मृत्यु के उपरंत भद्रों 'अभि बंध' निकाल का अवश्य इस विद्या में एक सराहनीय कार्य किया है। इस 'अभिव्यक्ति बंध' में भी आचार्य जी के 'कथा साहित्य' पर विशेष प्रकाश नहीं प्राप्त होता। हाँ उनके जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाली कुछ सामग्री अवश्य प्राप्त हो जाती है। इस समय प्राप्त सामग्री का प्रस्तुत प्रबंध में यथोचित उपनाम दिया गया है। किन्तु वास्तव में मेरा दृष्टिकोण इस सभी से विस्तृत रहा है। मैंने आचार्य चतुरसेन जी के कथा साहित्य का विश्लेषण करते समय कई अन्य आधार भी ग्रहण किए हैं। इस विश्लेषण के लिए मैंने श्री हृदयन डा० स्वामसुन्दर बाबू बाबू तुलाब पाठ डा० नवीरल मिश्र एवं डा० जगन्नाथ प्रसाद धर्मो आदि विद्वानों द्वारा प्रतिपादित उपन्यास एवं कहानी सम्बन्धी सिद्धांतों के निजी मतन चिंतन की कसौटी पर आचार्य जी के कथा साहित्य को कटा है। इस प्रकार आचार्य जी के सम्पूर्ण कथा साहित्य का उपन्यास और कहानी के विभिन्न तत्कों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत करना विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासकारों के उपन्यासों से उनके उपन्यासों की तुलना करते हुए उनके उपन्यासों में प्राप्त कलात्मक सर्वत्र को सोचना एवं उपन्यासकार के किन परिस्थितियों से प्रभावित होकर विभिन्न उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की आदि को ध्येय निकालना केवल की दृष्टि में उनका मौलिक प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबंध में तो प्रमुख अध्याय है। प्रथम दो अध्यायों में आचार्य चतुरसेन जी के जीवन एवं रचनाओं का परिचय दिया गया है। इसके पश्चात् के अध्यायों में आचार्य जी के कथा साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के प्रायः सर्वमान्य छः तत्वों के आधार पर आचार्य जी के उपन्यासों के अध्ययन को प्रथम में छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। कहानी के भी प्रमुख छः तत्व ही माने गए हैं। कहानी और उपन्यासों के इन तत्वों में पर्याप्त साम्य प्राप्त होता है किंतु इन दोनों में कहीं-कहीं भिन्नता भी प्राप्त होती है। अतः उपन्यास से चार तत्वों यथा कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन एवं बातावरण के विवेचन के लिए प्रस्तुत प्रबंध के अगले चार अध्याय प्रथम से दिए गए हैं। उपन्यासों के इन चारों तत्वों के विवेचन के पश्चात् 'आचार्य जी की कहानियाँ' नामक अध्याय में आचार्य जी की कहानियों में प्राप्त इन चारों तत्वों का विवेचन पुनः प्रस्तुत किया गया है। अंतिम दो अध्यायों में आचार्य जी के उपन्यासों और कहानियों की भाषा एवं सेखन शैली तथा इनमें प्राप्त उनके विचारों एवं जीवन दर्शन का एक साथ ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों और कहानियों को विभिन्न तत्वों की कसौटी पर कसने के पूर्व उस तत्व विशेष की परिमाणा उसकी विशेषताओं एवं गुणों पर विभिन्न चित्राओं के मतों को स्पष्ट करते हुए प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् इन प्रमुख चित्राओं की कसौटी पर आचार्य जी के उपन्यासों और कहानियों के तत्व विशेष को उस संबंधी अध्याय में कसा गया है। कसौटी पर परखने के लिए मैंने उस तत्व विशेष से संबंधित प्रमुख उदाहरणों को सामन का रखा है। वे उदाहरण उस कसौटी पर कहीं तक चले उतरते हैं उनको परखने के साथ-साथ मैंने आचार्य चतुरसेन जी की उस तत्व से संबंधित मौलिक विशेषताओं पर भी विचार किया है। प्रत्येक अध्याय में उस अध्याय का निष्कर्ष भी देने का प्रयत्न किया गया है। जिसमें उस अध्याय विशेष के बिस्सेषण का निष्कर्ष देते हुए मैंने आचार्य जी के उपन्यासों में उस तत्व के प्रयोग पर अपना मत देने के साथ साथ अन्य प्रमुख कथाकारों की श्रेष्ठ रचनाओं में प्राप्त उस तत्व के प्रयोग से तुलना भी की है।

अब रहा आभार प्रदर्शन एवं धन्यवाद का प्रश्न। वास्तव में सत्य तो यह है कि मेरे अपने के अतिरिक्त सभी धन्यवाद के पात्र हैं। पूज्य गुरुजनों की कृपा ही मेरे इस प्रबन्ध का अन्नसम्भ्र ही रही। पूज्य गुरुवर दीनदयाल जी गुप्त एम ए., एल एल बी., डी सिट अध्यापक हिंदी विभाग छयनऊ विद्वद्विद्यालय

मे जिस स्नेह और प्रोत्साहन के साथ प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय को प्रदान कर आचार्य चतुरसेन जी के पाठ परिषय पत्र लेकर मुझको भेजा उसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस प्रबंध के निर्देशक डा० भगीरथ मिश्र एम ए., पी-एच डी लखनऊ विश्वविद्यालय (अब अभ्यस्य हिंदी विभाग पूना विश्व विद्यालय) के मार्ग प्रवर्धन निर्देशक स्नेह, प्रोत्साहन के विषय में क्या कहूँ। आदि से अंत तक प्रस्तुत प्रबंध का प्रेरणा स्रोत डा० मिश्र का विशाल उदार एवं सुलभा हुआ व्यक्तित्व ही रहा है। डा० साहू के लखनऊ से पूना चले जाने के पश्चात् मेरे मार्ग में कठिनाई ही कठिनाईयाँ आईं। डा० मिश्र ने पूना में रहते हुए ही प्रबंध को देखने का मुझ आस्थापन दिया। निरुत्सा माघा में परिचित हो गई। पूना में मैं उनकी छत्रछाया में लगभग तीन माह रहा। अपने व्यस्त जीवन का एक बड़ा भाग निकाल कर उन्होंने प्रस्तुत प्रबंध का निरीक्षण संशोधन करके इसे पूर्ण कराया। वास्तव में सरय तो यह है कि प्रस्तुत प्रबंध में जो कुछ गुण जा सके हैं डा० मिश्र की कृपा के कारण ही। इसके अतिरिक्त मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक स्व० ब्रह्मचिंशोर जी मिश्र एवं डा० प्रेमनारायण टंडन पूना विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक श्री न० चि० पोपलेकर आनंद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अभ्यस्य प्रो० मोहन बल्कम पंत सीतापुर निवासी डा० नरस बिहारी मिश्र दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक डा० बुजेंद्र स्नातक एवं डा० बहरम जोसा एवं अपने अविभक्त मित्र श्री ब्याधंकर सुख्त श्री आसनाजी श्री रमापति डीगर, श्री बीनामाव ठिबारी श्री जीव नारायण महेस्त्र पुण्य पिता अग्रज निरंकार नाथ जबकार नाथ कपूर एवं अपनी धर्मपत्नी विमला कपूर एम ए आदि के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिनके सुसाह सहयोग एवं प्रोत्साहन से यह प्रबंध पूर्ण एवं प्रकाशित हो सका। मैं उन विद्वानों का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी प्रार्थना पर आचार्य चतुरसेन जी के कृपा साहित्य पर अपनी सम्मति दी भेजी एवं मुझे मार्ग निर्देश किया। प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रकाशक श्री ज्युलफकिशोर टंडन का भी मैं आभारी हूँ। उन्होंने प्रबन्ध के प्रकाशन में जो तत्परता एवं समय दिखाई है वह निश्चित रूप से सराहनीय है।

अंत में स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन सास्त्री जी की कृपा एवं उनके स्वजनों के सहयोग के विषय में कुछ कहे बिना रहा नहीं जाता। बीसा कि मैं प्रथम ही कह चुका हूँ कि प्रबंध सम्बंधी विचार विनिमय के हेतु मैं स्वर्गीय आचार्य जी के धनीय उनके निवास स्थान ताहादरा में स्थित ही दिन उनकी छत्र छाया में

एषा । मुझे उनसे जिस प्रकार की प्रेरणा प्रेरसाहन सहयोग, एम स्नेह प्राप्त हुआ, वह विशिष्ट रूप से अनिर्वचनीय है । आचार्य जी के आकस्मिक निधन के पश्चात् भी आचार्य पत्नी, उनके अनुज भी चंद्रसेन जी उनके स्वसुर बैद्यराज भी कल्याणसिंह जी ने जिस उदारता एवं स्नेह से मुझको मेरे शोध कार्य में सहायता प्रदान की है उसके लिए मैं इन सभी का हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

अन्त में एक बात और । प्रबन्ध प्रकाशित होने के पूर्व मैंने यह विचार किया था कि प्रस्तुत ग्रन्थ को पूज्य पिता भी गोविन्द प्रसाद जी कपूर के चरणों में अर्पित करूँगा । किन्तु ईश्वर को यह स्वीकार न था । ग्रंथ के प्रकाशित होने के पूर्व ही १९ अक्टूबर एन् १९६४ को प्रातः साढ़े सात बजे मे हृम सभी को बिलम्बता छोड़ गए । इस दारुण विपत्ति ने मेरी सम्पूर्ण चेतना को क्षणकौर दिया । किन्तु समय ने इस बाध को भी भरा । आज उनकी अनुपस्थिति में यह ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है अतः उन्हीं की पावन स्मृति को यह ग्रन्थ सादर समर्पित कर रहा हूँ ।

प्रस्तुत ग्रंथ में सुश्रवण संबंधी जो कमुदियाँ प्रयत्न करने पर भी रह गई हैं, उनके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ।

—शुभकर कपूर

विषय-सूची

अध्याय १

भाषार्थ अनुरतेन का जीवन-मूल

२४-५५

परिचय २४-२५, विवाह पूर्व की स्थिति सन् १८९१ से १९१२ तक २६
 बचपन नाम पिता माता प्रारम्भिक शिक्षा सिकन्दरबाद में २७-३३, पारिवारिक
 परिचय बुस्कूल में प्रविष्टि बनपुर में शिला ३३-४० निर्माण काल सन्
 १९१२ से १९२५ तक ३४-४५, द्वितीय विवाह और अतिकारी जीवन सन्
 १९२५ से १९३४ तक ४६-५४ चिंतन मगन काल सन् १९३४ से १९४४
 ५४-६० साहित्यिक उत्कर्ष काल सन् १९४५ से १९६० तक ६०-६४ अंतिम
 समय और मृत्यु ६४-६७ स्वभाव और प्रकृति ६७ घर में ६७-७१ मित्रों
 एवं समाज के बीच ७१-८२ चिकित्सक के रूप में ८२-८८ उपसंहार ८८

अध्याय २

भाषार्थ अनुरतेन की रचनाएँ एवं उनके कथा साहित्य का वर्गीकरण ८९-१२५

भाषार्थ की छाप रचित पूर्व एवं अपूर्ण प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकों की
 सूची कालक्रमानुसार ९१-१०४ कुछ अन्य अप्रकाशित एवं अपूर्ण रचनाएँ
 १०५-१०७ कथा साहित्य का वर्गीकरण १०७, उपन्यास के तत्व १०७
 उपन्यासों के प्रकार १०७-१०८ वर्ध्म बसु के साधार पर भाषार्थ की के
 उपन्यासों का वर्गीकरण—१०८ १ प्रामाणिकता एवं ऐतिहासिक उपन्यास
 १०९, २ सामाजिक एवं राजनीतिक उपन्यास १०९, ३ मनोवैज्ञानिक
 उपन्यास १०९, ४ वैज्ञानिक उपन्यास १ ९, ऐतिहासिक उपन्यास १०९,
 ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी ११० भाषार्थ की का शृङ्खला १११
 भाषार्थ की के ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण ११४ प्रथम वर्गीकरण —
 १ पुत्र ऐतिहासिक उपन्यास ११४ २ अतीत रस के अभ्युपगम प्रधान उपन्यास

११५ ३ इतिहास रस के कल्पना प्रधान उपन्यास ११५, ४ इतिहास और
 कियवंतियों पर आचार्य उपन्यास ११५, ५ केवल ऐतिहासिक आतावरण
 को धारक करने वाले उपन्यास ११५, दूसरा वर्गीकरण — ११५, १ प्रागैति
 हासिक एवं रामायण कालीन ११५ २ जैन बौद्ध प्रभाव के मुक्त मीमांसा मुप
 से संबंधित ११५ ३ मध्ययुग से संबंधित ११५ ४ मुगल कालीन ११५,
 ५ अंग्रेजी राज्यकाल के प्रारंभ से वर्तमान तक ११५, सामाजिक उपन्यास
 ११६, मनोवैज्ञानिक उपन्यास ११६ १२२ वैज्ञानिक उपन्यास १२२ १२३
 आचार्य जी की कहानियों का वर्गीकरण १२४ १२५, १ ऐतिहासिक १२५,
 २ सामाजिक एवं राजनीतिक १२५, ३ मनोवैज्ञानिक १२५, ४ विविध १२५ ।

अध्याय ३

आचार्य बटुरसेन के उपन्यासों के कथानक १२७-१३५
 कथानक की परिभाषा १२९ कथानक का महत्त्व १२९, कथानक की प्रमुख
 विशेषताएँ १३१ क्रमबद्धता एवं सुनठन १३१ रोचकता १३१ प्रबंध कीदृश
 १३२, मौखिकता १३२, संभावना, १३३ कथानक के आधार पर उपन्यासों
 का वर्गीकरण १३४ १३६ १ पिनिक वस्तु उपन्यास १३४, ३ संपठित
 वस्तु उपन्यास १३५ १६६, आचार्य जी के उपन्यासों की कथा वस्तु का काल
 क्रमानुसार विस्लेषण-हृदय की परब १३६ १३९, हृदय की प्यास १३९ १४०,
 पूर्वाहुति (कथा का व्याह) १४० १४२ बहुते भाँसू (अमर अभिजापा)
 १४२-१४५, आत्मदाह १४६ १४९, नीलमणि १५०-१५१ वैशाली की मगर
 बसू १५२-१६१ मरमेघ १६१ १६२, रक्त की प्यास १६३ १६४, देवायता
 (संधिर की गर्तकी) १६५ १६६, डो किनारे १६६ १६७, अपराधिता १६८
 १७१, अरुण वरुण १७१ १७३ आसमगीर १७३-१७६ सोमनाथ १७६ १८६
 बर्मपुत्र १८६ १९०, बर्म रसाम १९०-१९८, पोसी १९८ २०३ उदयास्त
 २०३ २०५, आमा २०५ २०७, लाल पानी २०७-२०९ बगुला के पत्र
 २०९ २१३, लप्रास २१३ २१६, सहायि की बट्टी २१६ २१८, बिना चिराग
 का छहूर २१८ २२० पत्थर पुप के दो कुत २२०-२२४ सोना और लून
 २२४-२३०, मोठी २३० २३३ आचार्य जी के कथानकों की कुछ मौखिक
 विशेषताएँ २३३-२३५ ।

अध्याय ४

आचार्य बटुरसेन जी के उपन्यासों के पात्र और चरित्र चित्रण २३७-२९५
 चरित्र २३९, पात्रों का वर्गीकरण २४२, चरित्र चित्रण की शैलियाँ २४२,

१ विस्मेषात्मक या प्रत्यक्ष (एनीसिटिक) २३२ २ नाटकीय या अति
नयात्मक अथवा पराध (ड्रामेटिक) २४३ पात्र और कथानक २४४ २३३,
आचार्य जी के उपन्यासों के पात्रों का वर्गीकरण २४३, पात्र संख्या २४३,
पीरामिक पात्र २४६, ऐतिहासिक पात्र २४६ सामाजिक पात्र २४६, ब्रह्म
वर्गीकरण २४६ १ बर्ष मठ या प्रतिमिति पात्र २४६ २ व्यक्तिगत प्रथम
पात्र २४६, ३ अलौकिक या असाधारण पात्र २४६ वर्गमठ पात्र २४७,
राजवर्ग एवं सामन्त वर्ग २४७ कुछ अन्य वर्गमठ पात्र २४७-२४९, व्यक्तिगत
प्रथम पात्र २४९ २४९, अलौकिक या असाधारण पात्र २४९, आचार्य जी के
उपन्यासों के कठिण प्रमुख पुरुष एवं मारी पात्र २४९ २४९ ।

१ राजम जयदीस्वर २४६ २४८ अति से संबंधित बटना चक्र २४९
छापीरिक्त रूप रंग और व्यक्तिगत २४९ प्रकृति छील स्वभाव योग्यता और
अमता २४९ २४९ इतिहास से साम्य और भिन्नता २४९ २४९, निष्कर्ष २४८
२ असाधारण अति नायक सोवप्रम २४८-२६४ प्रारम्भिक परिचय २४८
प्रकृति छील स्वभाव योग्यता एवं अमता २४९ उपन्यास में प्रस्तुत अति
का महत्त्व और अन्य अतियों पर उसका प्रभाव २६४, निष्कर्ष २६४

१ धर्मान्ध दुर्लभ विवेका महामुद २६४ २७१ अति से सम्बन्धित बटना चक्र
२६४ २६५, छापीरिक्त रूप रंग और व्यक्तिगत २६५ २६६, प्रकृति एवं छील
स्वभाव २६६ २६८ योग्यता और अमता २६८ २७ उपन्यास में छलका
महत्त्व और अन्य अतियों पर उसका प्रभाव २७० इतिहास से साम्य और
भिन्नता २७ २७१ निष्कर्ष २७१

४ असाधारण रमणी बैधाली की नवरत्न - अन्वयात्मी २७२ २७८ अति से
सम्बन्धित बटना चक्र २७२ २७३ अति निर्माण का प्रेरणा स्रोत २७३
२७४ छापीरिक्त रूप रंग और व्यक्तिगत २७४ २७५, प्रकृति छील स्वभाव
योग्यता और अमता २७५ २७६ उपन्यास में प्रस्तुत अति का महत्त्व और
अन्य अतियों का प्रभाव २७६ इतिहास से साम्य और भिन्नता २७७
निष्कर्ष २७७-२७८

१ आर्ष रमणी सोवप्रम २७८ २८३ प्रारम्भिक परिचय २७८ छापीरिक्त रूप
रंग और व्यक्तिगत २७८-२७९, प्रकृति छील स्वभाव एवं अमता २७९-२८३
निष्कर्ष २८२ २८३ आचार्य जी की पात्र निर्माण एवं अति विषय विवरण
कुछ मौलिक विवेकताएँ २८३ २९३, पात्र कथानक के अति अंग २८३,
पूर्वता २८४ सजीवता २८६, स्वाभाविकता २८८, मनोविज्ञान २८९,
अनुकम्पता २९ कुछ अन्य विवेकताएँ २९१ आचार्य जी की पात्र निर्माण
कथा के प्रेरणा स्रोत तुलनात्मक निष्कर्ष २९३ २९३ ।

अध्याय ५

भाषाचार्य जी के उपन्यासों के कथोपकथन

२१७-३१७

कथोपकथन की परिभाषा २१९ कथोपकथन का महत्त्व एवं उद्देश्य २१९ ३००
 भाषाचार्य जी के उपन्यासों में कथोपकथन ३०० कथानक की गति प्रदान करने
 वाले कथोपकथन ३००-३०४ कथोपकथन द्वारा पात्रों के चरित्र का विस्तारण
 ३०४-३१०, कथोपकथन के ब्याज से अपने उद्देश्य को स्पष्ट करना ३१०
 ३१२ कथोपकथन के ब्याज से पूर्व संकट ३१२ ३१३ बातावरण सृष्टि ३१३
 ३१५, भाषाचार्य जी के कथोपकथनों की प्रमुख विशेषताएँ ३१५ ३१७ साम्यकता
 एवं अनुकूलता ३१५ ३१६ श्रुतसत्ता ३१६ ३१७ नाटकीयता ३१७-३२१
 स्वाभाविकता सरसता एवं रमणीयता ३२१ ३२२, भाषानुकूल संवाद ३२२
 ३३०, भाषानुकूल संवाद ३३० ३४५, १ प्रेक्षाबोध ३३०-३३७ २ स्नेहाबोध
 ३३७-३३७ ३ क्रोधाबोध एवं ओजपूर्ण ३३८ ३४३ ४ दुःखाबोध ३४३ ३४४
 संवाकों में प्रत्युत्पन्नमति सौजन्य एवं संपत् ३४३, संक्षिप्तता एवं पैनापन ३४३
 ३४६, निष्कर्ष ३४६ ३४८ ।

अध्याय ६

भाषाचार्य बतुरसेन जी के उपन्यासों में देवकाल अथवा बातावरण सृष्टि ३४९ ४१५

परिभाषा एक परिचय ३४९ पौराणिक उपन्यासों में बातावरण सृष्टि ३४९
 ३४९, ऐतिहासिक उपन्यासों में बातावरण सृष्टि ३४९ ३४९ सामाजिक
 उपन्यासों में बातावरण सृष्टि ३४९ देवकाल और स्थानीय रंग ३४९ ३४९
 देवकाल और विभिन्न वर्णों की सीमाएँ ३४९ देवकाल अथवा बातावरण
 सृष्टि के दो वर्ग ३४९ १ वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन ३४९ २ समाज
 वर्णन ३४९, भाषाचार्य जी के पौराणिक उपन्यासों में देवकाल का चित्रण ३४९,
 वस्तु वर्णन औपेक्षिक निर्माण स्थिति ३४९, वर्ग रक्षाम में समाज चित्रण
 ३४७-३६६ सामाजिक परिस्थितियाँ ३४७-३६० सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
 ३६० ३६३ राजनीतिक परिस्थितियाँ ३६४ ३६६ आर्थिक परिस्थितियाँ ३६६
 भाषाचार्य जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में बातावरण सृष्टि ३६६। १ बीड़
 कालीन उपन्यासों में देव चित्रण ३६७ वस्तु वर्णन ३६७ काल चित्रण
 समाज वर्णन ३६८ सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ ३६८ ३७१ राज
 नीतिक परिस्थिति ३७१ ३७२, सांस्कृतिक ३७२ ३१४, भाषाचार्य जी के दम्पकाल
 से सम्बन्धित उपन्यासों में देवकाल का चित्रण ३१४ १ वस्तु वर्णन ३७४

२ समाज वर्धन ३७६ सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ ३७६ ३७८ राजनीतिक परिस्थितियाँ ३७८ ३७९, सांस्कृतिक विषय ३७९ ३८० मुगल कालीन ३८१ १ वस्तु वर्धन ३८१ २ समाज वर्धन-सामाजिक परिस्थिति आर्थिक स्थिति राजनीतिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक स्थिति ३८२ ३९२ ब्रिटिश शासन कालीन ३९२ ३९९, सामाजिक परिस्थितियाँ ३९२ ३९३, सांस्कृतिक ३९३ ३९६ राजनीतिक मारत की ३९९ ३९८ मारत के बाहर की ३९८ ३९९, सामाजिक उपन्यासों में ३९९ ४०२ सांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ३९९ ४०० राजनीतिक परिस्थितियाँ ४०० ४०२ सांस्कृतिक वृत्तियों के वर्धन ४ २-४०८ देवकाल सम्बन्धी कुछ मूर्तें ४०९, १ माया संबंधी मूर्तें ४०९ २ वस्तु संबंधी मूर्तें ४०९ ४१० ३ कालक्रम संबंधी मूर्तें ४१०-४११ ४ विचार संबंधी मूर्तें ४१२, देवकाल निर्माण एवं वातावरण सृष्टि संबंधी आचार्य जी की मौखिक विवेचनाएँ एवं अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों से भिन्नता ४१३ ४१८ ।

अध्याय ७

f

आचार्य बटुरलेन जी कहानियाँ

४१९ ४७४

उपन्यास और कहानी ४२१ ४२४ प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक कहानियाँ ४२३, १ पौराणिक कहानियों के कथानक ४२४ ४२६ २ जैन बीड़ कहा-
नियों के कथानक ४२६ ४३८ ३ मध्य युग से सम्बन्धित कहानियों के कथानक ४२८ ४३१ ४ मुगल कालीन कहानियों के कथानक ४३१ ४३८ ५ अंग्रेजी राज्य कालीन ऐतिहासिक कहानियों के कथानक ४३८ ऐतिहासिक कहानियों के कथानकों की निर्माण विधि ४३८ ४३९, सामाजिक कहानियों के कथानक ४४०-४४८ राजनीतिक कहानियों के कथानक ४४८ ४५३ मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानक ४५३, अन्य कहानियाँ ४५६ ४५७ सामाजिक राज-
नीतिक मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानकों की निर्माण विधि ४५७-४६८ आचार्य जी की कहानियों में खरिद-बिचय ४६० ४६१ आचार्य जी की कहानियों के कथोपक्रम ४६१ ४६९, आचार्य जी की कहानियों में वातावरण सृष्टि ४६९ ४७३ आचार्य जी मूलतः उपन्यासकार या कहानीकार । ४७३ ४७४ ।

अध्याय ८

आचार्य जी की माया एवं कल्पन शैली

४७५ ५३१

माया और टीकी ४७७ आचार्य जी की माया ४७८, १ ऐतिहासिक उपन्यासों

की भाषा ४७९, २ सामाजिक उपन्यासों की भाषा ४७९, ३ वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा ४७९ आचार्य चतुरसेन जी की छेड़न शैली ४७९ शैली के तीन रूप १ शैली का बाह्य रूप ४८०, २ शैली का आंतरिक रूप ४८१ ३ शैली का मिश्रित रूप ४८१ आचार्य जी के उपन्यास लिखने की शैलियों में क्रमिक विकास ४८१ १ शैली का बाह्य रूप काव्यात्मक अथवा सरस शैली ४८२ असंकुच शैली ४८२, असंकारों से बोधित एवं पुष्पित शैली ४८६ ।

२ शैली का आंतरिक रूप नावात्मक शैली ४८७, मानसिक अन्तर्दृष्टियों के शब्द चित्र ४८७-४९१, प्रकाश शैली आवेग शैली, भाषण एवं संबोधन शैली ४९१ ४९५ व्यंग्यात्मक शैली ४९३ ४९६

३ शैली का मिश्रित रूप ४९६ १ रूप चित्रण की शैली-पात्र चित्र एवं सौंदर्य चित्रण ४९६, २ वृत्त चित्रण की शैली-राजदरबार आदि के रेखाचित्र, मुद्रा एवं अत्याचारों के रेखा चित्र मृत्यु आदि के सजीव वर्णन ४९७-५०५ । शब्द संसार १ संस्तुत पाठी प्राकृत आदि के शब्द ५०२ ५०६, २ विषया मुक्त वातावरण उपस्थित करनेवाले शब्द ५०६, ३ तत्कालीन वातावरण परिचायक शब्द ५०६ ५०७, ४ विभिन्न मनोभावों को प्रकट करने वाले कुछ शब्द ५०७-५०८, ५ अरबी फारसी के शब्द कुछ मूल शब्द ५०८ ५१० ६ अंग्रेजी शब्द ५१०-५११, ७ प्रांतीय शब्द, राजस्थानी के शब्द, बंगला के शब्द अथवा और वच के कुछ शब्द ५११ ५१३ = मूहावरे, उक्तियों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग ५१३-५१७, ९ उक्तियों और सूक्तियों ५१६, आचार्य जी के उपन्यासों में प्राप्त भाषा विषयक शोध ५१७-५२१ १ ङिग शोध ५१८ २ बचन शोध ५१८, ३ शीघ्रित्य एवं अप्रयुक्त शोध ५१८ ५१९, ४ पुनस्तुत शोध ५२०, ५ दुष्कर्मत्व शोध ५२० ५२१, ६ वाक्य शोध ५२१ निष्कर्ष ५२१ ।

अध्याय ६

विचार एवं जीवन दर्शन

५२३-५३०

आचार्य जी का दृष्टिकोण ५२४, अनिश्चितता की विधि ५२५ ।

- १ साहित्यिक विचार १ साहित्य की व्याख्या ५२७, २ आदर्श और धर्मार्थ ५२९, ३ साहित्य में कल्पना ५३२, ४ अदलीलता का प्रश्न ५३३, ५ साहित्यकार की ५३५, ६ साहित्यकार का कर्तव्य ५३७ ।
- २ राजनीतिक विचार ५३८ ५३९, देश, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, स्वाधीनता

२ समाज वर्धन ३७६ सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ ३७६ ३७८, राजनीतिक परिस्थितियाँ ३७८ ३७९, सांस्कृतिक विभव ३७९ ३८० मुक्त कालीन ३८१, १ वस्तु वर्धन ३८१ २ समाज वर्धन-सामाजिक परिस्थिति आर्थिक स्थिति राजनीतिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक स्थिति ३८२ ३९२ ब्रिटिश शासन कालीन ३९२ ३९९, सामाजिक परिस्थितियाँ ३९२ ३९५, सांस्कृतिक ३९५ ३९६ राजनीतिक भारत की ३९६ ३९८ भाषा के बाहर की ३९८ ३९९, सामाजिक उपन्यासों में ३९९ ४०२ सांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ३९९ ४०० राजनीतिक परिस्थितियाँ ४००-४०२, प्राकृतिक दृश्यों के वर्धन ४०२ ४०८ देशकाल सम्बन्धी कुछ मूलें ४०९ १ भाषा संबंधी मूलें ४०९, २ वस्तु संबंधी मूलें ४०९ ४१० ३ काव्यक्रम संबंधी मूलें ४१०-४११ ४ विचार संबंधी मूलें ४१२ देशकाल निर्माण एवं वातावरण सृष्टि संबंधी आचार्य जी की मौलिक विधेयताएँ एवं अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों से निष्पत्ता ४१३ ४१८ ।

अध्याय ७

f

आचार्य चतुरसेन की कहानियाँ

४१९ ४७४

उपन्यास और कहानी ४२१ ४२४ प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक कहानियाँ ४२५, १ पौराणिक कहानियों के कथानक ४२४ ४२६ २ जैन बौद्ध कहानियों के कथानक ४२६ ४३८, ३ मध्य युग से संबंधित कहानियों के कथानक ४२८ ४३१ ४ मुगल कालीन कहानियों के कथानक ४३१ ४३८, २ अंग्रेजी राज्य कालीन ऐतिहासिक कहानियों के कथानक ४३८ ऐतिहासिक कहानियों के कथानकों की निर्माण विधि ४३८ ४३९, सामाजिक कहानियों के कथानक ४४० ४४८ राजनीतिक कहानियों के कथानक ४४८ ४५३, मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानक ४५३ अन्य कहानियाँ ४५६ ४५७ सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानकों की निर्माण विधि ४५७-४५८ आचार्य जी की कहानियों में चरित्र-चित्रण ४५९ ४६१ आचार्य जी की कहानियों के कथोपकथन ४६१ ४६९, आचार्य जी की कहानियों में वातावरण सृष्टि ४६९ ४७३ आचार्य जी मुख्य उपन्यासकार या कहानीकार । ४७३ ४७४ ।

अध्याय ८

आचार्य जी की भाषा एवं लेखन शैली

४७३ ५३१

भारत और शैली ४७३ आचार्य जी की भाषा ४७८, १ ऐतिहासिक उपन्यासों

की भाषा ४७९, २ सामाजिक उपन्यासों की भाषा ४७९, ३ वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाषा ४७९, आचार्य बहुरसेम जी की छेसन टीसी ४७९, टीसी के तीन रूप १ टीसी का बाह्य रूप ४८०, २ टीसी का आंतरिक रूप ४८१, ३ टीसी का मिश्रित रूप ४८१, आचार्य जी के उपन्यास छिन्नने की टीसियों में क्रमिक विकास ४८१ १ टीसी का बाह्य रूप काव्यात्मक अथवा सरस टीसी ४८२, असंस्कृत टीसी ४८२ अक्षरों से बोधिल एवं सुमिष्ट टीसी ४८६ ।

२ टीसी का आंतरिक रूप भावात्मक टीसी ४८७ मार्मिक अन्तर्द्वन्द्वों के सम्य चित्र ४८७-४९१, प्रभाव टीसी आनेघ टीसी भाषण एवं संबोधन टीसी ४९१ ४९२, व्यंग्यात्मक टीसी ४९३ ४९६

३ टीसी का मिश्रित रूप ४९६ १ रूप चित्रण की टीसी-यात्र चित्र एवं सीदर्य चित्रण ४९६, २ वृत्त चित्रण की टीसी-घनदरबार भावि के रेखाचित्र युद्ध एवं अत्याचारों के रेखा चित्र नृत्य भावि के चर्बीय वर्णन ४९७-५०३ ।
 शब्द मंडार १ संस्कृत पाठी प्रोक्त भावि के शब्द ५०३ ५०६ २ विषया नुकूल वातावरण उपस्थित करनेवाले शब्द ५०६, ३ तत्कालीन वातावरण परिचायक शब्द ५०६ ५०७, ४ विभिन्न मनोभावों को प्रकट करने वाले कुछ शब्द ५०७-५०८ ५ अरबी, फारसी के शब्द कुछ महत्त शब्द ५०८ ५१० ६ अंग्रेजी शब्द ५१० ५११ ७ प्राप्तीय शब्द, राजस्थानी के शब्द बँगला के शब्द अरबी और घन के कुछ शब्द ५११ ५१३ ८ मुहावरे, उक्तिमें एवं लोकोक्तिमें के प्रयोग ५१३ ५१७ ९. उक्तिमें और सूक्तिमें ५१६, आचार्य जी के उपन्यासों में प्राप्त भाषा विषयक शेष ५१७-५२१, १ लिंग शेष ५१८ २ अक्षर शेष ५१८, ३ औचित्य एवं अप्रयुक्त शेष ५१८ ५१९, ४ पुनरुक्त शेष ५२०, ५ दुष्प्रभाव शेष ५२० ५२१, ६ वाक्य शेष ५२१ निष्कर्ष ५२१ ।

अध्याय ६

विचार एवं जीवन दर्शन

५२३ ५३०

आचार्य जी का दृष्टिकोण ५२४, अभिव्यक्ति की विधि ५२५ ।

१ साहित्यिक विचार १ साहित्य की व्याख्या ५२७ २ आदर्श और मयार्थ ५२९, ३ साहित्य में कल्पना ५३२, ४ अदृशीलता का प्रश्न ५३३, ५ साहित्यकार कौन ५३३, ६ साहित्यकार का कर्तव्य ५३७ ।

२ राजनीतिक विचार ५३८-५३९, देश, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, स्वाधीनता

साम्यवाद पाँचीवाद और मानवतावाद सत्य और बहिष्ता समाज में समानता, पक्षतन्त्र तथा जनतन्त्र, बुद्ध और शांति जनसंख्या की समस्या २३९ २६२ ।

३ सामाजिक विचार—स्त्री पुरुष स्त्री पुरुष सम्बन्ध नारी का कर्तव्य एवं कार्य क्षेत्र, नारी स्वतन्त्रता एवं समानाधिकार, प्रेम, विवाह एवं वासना सफल साम्यवादी जीवन २६२ २७३ ।

४ आध्यात्मिक विचार—जीवन और अमृत २७३ पाप और पुण्य २७४, ईश्वर २७५, धर्म, २७८, निष्कर्ष—अपना मत २८० परिशिष्ट—सहायक ग्रंथ सूची १ सहायक ग्रंथ (हिन्दी) २८३-२८५, २ सहायक पत्र-पत्रिकार्ये २८५ २८६ ३ सहायक ग्रन्थ (अंग्रेज) २८६ ।



अध्याय—१

आचार्य चतुरसेन का जीवनवृत्त

जीवन पृष्ठ

“स्वस्थ मठा हुआ स्मूथ किन्तु बलिष्ठ एवं स्फूर्तिवान शरीर मुझ संकल पर गम्भीरता एवं प्रौढ़ता नेत्रों पर नीले रंग का सुनहरी कमाना का चश्मा कसीन रोब बाएं कपोल पर एक छोटा-सा ठिक चौड़ा छसाट १८ वर्ष से अधिक आयु में भी एकदम कामे सिर के केश बत्तीसी इस आयु में भी श्वेत सबल एवं बूढ़ येहुबा रंग गळिया के कारण कुछ झक-झककर चलने के अभ्यस्त अभ्यसन के कारण भंसि हुए मेन, स्वर में दृढ़ता वातपीत में आत्मीयता विरोह नवीनता एवं अभ्यसन का पुट।” यह वे हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार, साहित्यकार एवं आमुर्बेद जगत के विख्यात राजबैद्य आचार्य जतुरसेन शास्त्री। इसी व्यक्तित्व में अर्ध शताब्दी तक निरन्तर एक ही पति से साहित्य और आमुर्बेद जगत की सेवा की थी।

मैं जब प्रथम बार उस महान् साहित्यकार से मिलन या उस समय उनके जिस व्यक्तित्व से मैं प्रभावित हुआ था और जो विचार मेरे मस्तिष्क में उस समय आए थे उन्हीं का ज्यों का त्यों चित्रण मैंने यहाँ कर दिया है। २ फरवरी सन् १९६० के पश्चात् उस महान् साहित्यकार का भौतिक व्यक्तित्व तो स्पूल शरीर के साथ समाप्त होयया किन्तु उनका अजेय व्यक्तित्व आज भी उनके महान् साहित्य पर ज्यों का त्यों छाया हुआ है। जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व में एक ठोकापन था वैसे ही उनके साहित्य में एवं जीवन की विभिन्न घटनाओं में भी एक ठोकापनता एवं महटाई है। जिस प्रकार उनका भौतिक व्यक्तित्व बहुमुखी था उसी प्रकार उनका साहित्यिक व्यक्तित्व एवं जीवन भी बहुमुखी एवं विभिन्न घटनाओं से ओठ-ओठ था। जिस प्रकार उनके साहित्य में एक क्रमबद्ध विकास है उतार और चढ़ाव है उसी प्रकार उनका जीवन क्रम भी विभिन्न घटनाओं से संबन्धित एवं मोड़ों से परिपूर्ण है। प्रस्तुत अध्याय में हम उसी महान् व्यक्तित्व के जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर

रहे हैं। वास्तव में वह एक ऐसा व्यक्तित्व था जो जब तक जीवित रहा संघर्ष रत कार्यरत एवं कर्मठ रहा वह एक ऐसा व्यक्तित्व था जो जमूठ होते हुए भी कङ्कमा था जो आशुतोष की शक्ति मारुपामी था। वह एक ऐसा उपेक्षित साहित्यकार था जिसने जीवन पर्यन्त साहित्य साधना की किन्तु क्कटाई ही खाता रहा। वह एक ऐसा उद्भुत महामातव्य था जो इन क्कटाइयों एवं उपेक्षायों से श्रुत होते हुए भी अपने साहित्य को निरन्तर श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर ही बनाता रहा। वह एक ऐसा राजबैद्य था जो मानव के शरीर की ही नहीं उसके मन की उसके समाज की भी चिकित्सा करता था। चिकित्सा के समय वह यह न बेखता कि औपधि तीक्ष्ण है या मधुर। किसी को भसी सने या बुरी इसकी उठे कमी भी चिन्ता न रही। इसीलिए वह निरन्तर समाज की सेवा करते हुए भी कमी सामाजिक न हो सका। एक भी अपना द्वितीय मित्र न बना सका।

ऐसे महान् साहित्यकार के जीवन के कुछ भूले बिचरे चिन्तों एवं स्मृतियों को एकत्र करके उसके जीवन विकास पर किचित् मात्र प्रकाश डालना निश्चित ही अनुपपुक्त न होया। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उस महान् साहित्यकार के सम्पूर्ण जीवन को विकास के निम्न पाँच क्रमों में विभक्त करके देखने का प्रयत्न करेंगे।

प्रथम—जन्म से २१ वर्ष की अवस्था तक (सन् १८९१ से १९११)

विवाह पूर्व की स्थिति—

द्वितीय—प्रथम विवाह एवं वैदिक जीवन का प्रारम्भ (१९१२ से १९२५)

तृतीय—सन् (१९२५-१९३४) तक द्वितीय विवाह और क्रान्तिकारी जीवन।

चतुर्थ—सन् (१९३४-१९४४) तक चिन्तन मग्न काल।

पंचम—सन् (१९४५-१९६०) तक साहित्यिक उत्कर्ष काल।

(१) विवाह पूर्व की स्थिति

(सन् १८८९ से १८९१)

आचार्य चतुर्धन जी का जन्म उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड नामक जनपद की जमुपसहर तहसील के निकट चान्दोख ग्राम में एक साधारण से कृषि पर में लग्गत् १९४८ आइपद इन्धन चतुर्थी रविवार (२६ अगस्त सन् १८९१) के दिन गोबुधिनिका में हुआ था। यह घर और यह ग्राम इनका

पुर्वीनी निवास न था, अस्थायी प्रवास का स्थान था। बाल्य में उनका स्थायी-
 पैतृक स्थान इसी बान्दोल ग्राम के निकट-वसिष्ठ-परिषद कोई ३-४ कोस पर
 'बिबियाना' ग्राम है। आचार्य अनुरसेन जी ने अपने स्थान के विषय में लिखा है
 बान्दोल मैंने अपने होध हवास में देखा नहीं है। न उस घर को पहचान सकता हूँ
 जिसमें मेरा मार पडा है। बिबियाना मैंने बालकाल में देखा है वहाँ के दूटे-मूटे
 घर का भी मुझे स्थाय है। वहाँ हमारा पैतृक शिवालय नाम और ताताब भी है।
 वह भी मैंने देखा है। अब भी मेरे परिजन-कौटुम्बिक एक-दो वहाँ रहते हैं ऐसा
 सुमता हूँ पर व मुझे जानते नहीं हैं और मैं भी उन्हें नहीं पहचानता हूँ।
 मुना था कि बान्दोल में मेरे पिता जी बहुत कम रहे, परन्तु उनके जीवन में
 बान्दोल के निवास का सांस्कृतिक प्रभाव बहुत रहा था।^१

जन्म-नाम

आचार्य अनुरसेन जी का जन्म का नाम अनुरभुज था। यह नाम उनके
 पिता के अनन्य विद्व प्राणाचार्य बीध होमनिधि शर्मा ने रखा था। उन्होंने ही
 इनकी जन्म कुण्डली भी बनाई थी। उन्होंने उनका नाम रखा था अनुरभुज पर
 कहते थे कुलदीपक। उनका कहना था रुड़के के ग्रह तुम्हारे घर के योग्य नहीं हैं।
 त्रियेगा तो कुलदीपक होया। इसी से पिता का प्यार मुझ पर बहुत था।^२

पिता

आचार्य अनुरसेन जी के पिता का नाम टाकुर केवल राम वर्मा था।
 उनका जन्म महर के साल सन् १७ में हुआ था। वह विचारों से भार्य समाजी
 तथा कार्यो से चोर सुधारवादी थे। यद्यपि वह अल्प-शिक्षित थे तो भी विचारों
 में प्रगतिशील थे। आजीविका की तलाश में वह आचार्य अनुरसेन जी के जन्म
 के कुछ मास प्रथम ही बान्दोल आ गये थे। यहाँ उन्हें दो सांस्कृतिक पुरखों की
 मित्रता का लाभ प्राप्त हुआ। एक थे प्राणाचार्य बीध होमनिधि शर्मा उदार
 विचारों के संस्कृतज्ञ पंडित और आसनास के प्रसिद्ध चिकित्सक। दूसरे थे
 टाकुर महावीरसिंह नाथ के जमींदार। इन्हीं दोनों मित्रों के सत्संग के कारण
 आचार्य अनुरसेन जी के पिता भी सुधारवादी हो गये थे। आचार्य अनुरसेन जी

१ अनुरसेन-वैमासिक, सम्पादिका, कमल किशोरी प्रथम संक, मेरा बचपन
 विद्या २०१२, पृ ८६-८७।

२ अनुरसेन—वैमासिक, प्रथम संक पृ ८७।

के विचारों पर आर्यसमाजी विचारधारा का पूर्वाप्य प्रभाव था। स्वामी ब्यानब्र सरस्वती जब कर्णबास जाय हुए थे तब इनके पिता भी और ठाकुर साहब ने कर्णबास जाकर स्वामी जी के दर्शन किए और उपदेशामृत सुना था। तभी से उनका विचार आर्य समाज की ओर झुक गए थे। फिर बान्दोख ग्राम में तीनों मित्रों का रहना हुआ तो परस्पर विचार विनिमय करने से धीम धीमे कट्टर आर्यसमाजी हो गये। उस समय तक बम्बई और लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना तो हो चुकी थी परन्तु अभी उसका व्यापक परिपुष्ट स्वरूप प्रकट नहीं हुआ था। परन्तु मूर्तिपूजा आदि के बन्धन की जबरबस्त जहाँ स्वामी ब्यानब्र के नाम के साथ बेहातों में चल गई थी। 'जगह-जगह लोग कहते थे एक संन्यासी इतर रम रहे हैं संस्कृत बोलते हैं। मूर्तिपूजा का बन्धन करते हैं। वेद को ईश्वर बाणी बताते हैं।'

आचार्य बतुरसेन जी के पिता न केवल उस समय के आर्यसमाजी सुधारकारी मान्दोखन से प्रभावित थे बल्कि वे स्वयं कट्टर सुधारक थे और बन्ध विस्वास एवं कड़ियों के नाश में स्रष्टा और उत्साह के साथ चले रहते थे।

आचार्य बतुरसेन जी ने उनके इस स्वभाव और व्यक्तित्व का वर्णन निम्न शब्दों में किया है। 'सैकड़ों मन्त्रियों मठों और देव-स्थानों से महादेव नामुष्ठा आदि की मूर्तियाँ उतार उतार चुनकर बंगाल में या निकट के ठाण्डा में फेंक देना। जहाँ किसी बेबता के स्थान पर बहुधा स्त्रियाँ जाती जाती हों वहाँ पहुँच उन्हें मूठ बनकर उतर देना कि फिर उभर जाने का नाम न लें। नहीं विवाह आदि कुर्य पौराणिक रीति पर होना तो शत एक आर्य समाजी पण्डित को लेकर जा भगवते कभी-कभी फौजबारी करके भी उसी से कुर्य कराते। साठी के बनी थे। साठी हाथ में होने पर १ २ को भापी। डीक-डीक में दिखाने सुबं सिवुरिया रंज बनी बाड़ी (पीछे बाड़ी नहीं रखते थे) मजबूत सौंटा हाथ में गारुधार जमरोधे का जूता। बस ठाकुर और जाय गाँव गाँव बूमना और उपर्युक्त मज्जुत रीति से आर्य समाज का प्रचार करता। कभी-कभी केवल 'नमस्ते' कहकाने के लिए साठी चल जाती थी।' इसी से आचार्य बतुरसेन जी के पिता भी आस पास के गाँवों में 'नमस्ते' के नाम से प्रसिद्ध थे। दुकान के बाये नमस्ते का साइनबोर्ड टंगा रहता था। 'हिन्दू-मुसलमान हरिजन मछून जो भी उनकी दुकान के बाये होकर गुजरता 'नमस्ते' कहता।

१ बतुरसेन—श्रीमत्सिद्ध, प्रथम अंक पृ ८७।

२ बतुरसेन—श्रीमत्सिद्ध, प्रथम अंक, पैरा बचपन पृ ८८।

आर्य समाज का प्रचार वे इन्हे से भी करते थे, और जवान से भी। समा में भाषण नहीं देते थे पर गौड-देहात में दस-बीस जनों के बीच कड़कती भाषा में जब वे कुपितियों और दृष्टियों के विपरीत बोलते थे दूर से उनकी आवाज को पहचानकर गाँव वाले आ चुटते थे।^१

आचार्य अतुरसेन जी के पिता का जीवन एकदम सीधा-सादा था। वे तिस्र प्राठ बार बजे उठते कोई मजदूर मुनमुताते हुए गाम भैंसों को घानी देते फिर एक बिसम भरकर हुक्का पीते हुए कपास बीटने बैठ जाते। जब तक काम हो निकाल लेते दस-पन्द्रह घंटे बिनाते और डाक देते भैंसों के सामे। लौक से निवृत्त हुए तो बार निकालते। ठक कहीं विम निकलता। महा थो सम्पा कर तिलक छाप समा एक छोटा ताबा मटठा पाब भर ताबा मक्खन डाक पड़ा कर अब निकलते बेठी का जकर लमाने। कमेरों को काम की हिवामतें ही और जल दिए अकुर दोस्त के पास। एक-दो गाँव में अपनी रीति पर प्रचार किया बानहर को घर आए। सीधा-सादा भोजन। बाल और मोटी-मोटी रोटियां चाब मे पाब भर थी। तानकर सोए, तीसरे पहर उठे तो अकुर की चौपाछ या होमनिधि समा की बैठक। कुछ बूढ़ कुछ जवान और आ चुटे हुक्का पुड़पुड़ाने और धर्पें सड़ाने लगे। सब बातें आर्यसामाजी बूब कट्ट, न रियायत न संशोबन। आसपास के दस पाँच गाँवों की बर्षा हो गई पचासों आदमियों की आलोचना हुई। औरदोर से स्कीमें बर्षी जिनका अन्तिम ध्रुब था माता-आमुष्ठा-भूठिपूजा पुरातन आर्य वैसे उठाए आर्ये। तथा बाल-बच्चों को कैसे और कहाँ पड़ाया बाम।^२ इसके अतिरिक्त सुठि के काम में भी उन्हें पर्याप्त रुचि थी। उन्होंने कई मुसलमान परिवारों की सुठि भी की थी।^३

इस प्रकार इनके पिता का बड़ा प्रभावशाली और तेजवान व्यक्तित्व था। और जसी के अनुबन्ध निर्यासीक जीवन भी।

माता जी

आचार्य अतुरसेन जी के पिता में जिस प्रकार पुरुष का कर्मठ-पुरुषार्थ का माता में उसी प्रकार नारी सुलभ मठठा और स्नेह विद्यमान था।

वे ममता की प्रतिभूति थीं। उनके स्वभाव का वर्णन करते हुए स्वयं

१ अतुरसेन—ब्रैमासिक, प्रथम अंक, मेरा बचपन पृ. १०।

२ अतुरसेन—ब्रैमासिक, प्रथम अंक मेरा बचपन पृ. ८८-८९।

३ अतुरसेन—ब्रैमासिक, प्रथम अंक, मेरा बचपन पृ. १०-११।

आचार्य चतुरसेन जी ने लिखा है— 'रपाग-स्नेह और सहिष्णुता को मिटाकर जो एक बड़ा और आदर्श की देवी की कल्पना की जा सकती है वही वे थीं। वे पड़ी-लिखी नहीं थीं। पर वे जसक हीरे की कमी थीं। प्रकृति ने उन्हें जो लोकोत्तर बनाया भी वे जस पर हृदिम भक्त करने का किसी कारीगर को अवसर ही नहीं मिला। कभी उसकी आश्चर्यकता भी प्रतीत नहीं हुई।' आचार्य चतुरसेन जी अपनी माता को 'वम्मा' कहते थे और 'तु' कहकर ही बोला करते थे। उन्हें आचार्य जी ने कभी भी 'तुम' या 'आप' कहकर सम्बोधित नहीं किया। वह भी इन्हें सदा 'मैया' करके ही बुलाया करती थीं। जिस समय आचार्य जी का जन्म हुआ उनके पिता जी की आयु २१ वर्ष और माता जी की १६ वर्ष होयी। उनके दैनिक जीवन के विषय में आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं लिखा है माता जी अपनी गृहस्त्री का सब काम स्वयं करती थीं। पिताजी की मति वे भी प्रातःकाल में जपा के उदय होने के पूर्व उठकर एकदम बर के कामों में लग जाती थी। उन दिनों बाँध देहातों में लौकरी से काम करने की परिपाटी न थी। वे उठकर सर्वप्रथम ठामाम नाम घैसों और उनके बच्चों को एक बार प्यार-पुचकार जातीं। उनपर 'हाम' फेरतीं और प्रत्येक का नाम लेकर एक-दो बातें कहतीं। इसके बाद वे सौच से निवृत्त होकर दूध बिलोने बैठतीं पाँच-सात माय-घैसों के दूध को वे अनायास ही अपने बसिष्ठ भुजबच्चों से बिलो डालतीं। इसके बाद बर-आपिन बुहार कर ठाँवे गोबर से लीपकर निवृत्त होतीं। तब कहीं दिन निकलता। फिर वह स्नान कर सूर्य को अर्घ्य दे भोजन बनातीं और काठन बैठतीं। घिर के बाल के समान बारीक सूत वे निकालती थीं। उनके सूत की गाँध भर में धूम थी। निराकल्पता उनका वम्मास या और कर्मठता उनका नित्य का जीवन था।^१ केवल अश्विन १६ वर्षों को छोड़कर आचार्य चतुरसेन जी की माता का स्वास्थ्य उत्तम रहा था। उनकी मृत्यु ६० वर्ष की अवस्था में हुई थी।

एक बार प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के माता-पिता सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में आचार्य चतुरसेन जी ने कहा था कि अपने 'भारतवाह' नामक उपन्यास में सुधीन्द्र के माता पिता के रूप में मैंने अपने ही माता-पिता का वास्तव्य म विवक्षित किया है। इसके अतिरिक्त मेरे जीवन से सम्बन्धित कई अन्य घटनाएँ भी प्रस्तुत उपन्यास में आ गई हैं।

१ चतुरसेन—त्रैमासिक, प्रथम अंक, मेरा बचपन पृ ९२।

२ चतुरसेन—त्रैमासिक, प्रथम अंक मेरा बचपन पृ ९२।

उपर्युक्त माता-पिता की जो स्वस्थ और सम्पन्न दशा का वर्णन किया गया है वह उनकी बुढ़ापे में नहीं रह गई थी।

भाचार्य अनुरसेन जी की माता जी के अपनी अवस्था के अन्तिम १६ वर्ष अभावस्था में ही कटे थे। उन दिनों भाचार्य जी के पिता की आर्थिक स्थिति भी हमनीय हो गई थी। पग-पग पर उन्हें अभाव का ही सामना करना पड़ता था। भाचार्य अनुरसेन जी ने लिखा है 'मैंने बहुत बार देखा कि मेरे पिता जी रोमिणी माता के लिए समय पर ठीक-ठीक पच्य और औषधि भी न जुटा सकते थे। अत्यन्त आवश्यक होने पर वे हम लोगों को पड़ोसियों से उधार मांग जाने को मजबूर और हम साथ वहाँ से नकार लेकर प्रायः लौटते। उन दिनों वह अभाव मुझे कुछ विशेष नहीं लगा पर बाद में तो उसने एक स्थायी दर्द की उत्पत्ति मेरे मन में कर दी। मैं बालक था पर एक दुःख नहीं भूल सकता। जब सब ओर से नकार ग्रहण कर पिता जी अर्ध-मूर्च्छित माता का सिर पीठ में लिए बैठ-जरा पानी चम्मच से उनके मुँह में डाल रहे थे। तब जैसे वह नकार मूर्च्छित माता के भी अस्तित्व को छुगया था। उन्होंने बहुत मल से बहुत बेर तक इ गित किया, पर वह इतना व्यस्पष्ट था कि पिता जी बहुत ही कठिनाई से समझ पाये और तब उन्होंने संकेत स्वस से बीबार की एक दरज से मैंसे कपड़े में लिपटी एक पोटली निकाली जिसमें कुछ रुपये थे। चम्मच दो बार। उनमें से एक तुड़ा कर माता के लिए दूब संघाया गया। दूब तब बार पीसे सेर भिजता था। पर आज भी मैं उस एक पाब दूब की कीमत का अनुमान नहीं लगा सकता। एक पीसे के उस दूब के लिए पिता जी कौ हो बटे संघर्ष करना पड़ा था। बीच जयहृद्दाय फँकाकर नकार प्राप्त किया था। यह था मेरे जीवन पर अभाव का स्पर्श।' इस बटना का भाचार्य अनुरसेन जी के साहित्यिक जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। उनका साहित्यिक प्रारम्भ में बार तत्वों—सेवा भ्रम, अभाव और निग्रोह से विशेष प्रभावित हुआ था। उन्होंने इस विषय का वर्णन करते हुए लिखा था—'माँ की बीमारी द्वारा मेरे जीवन पर अभाव का स्पर्श हुआ तथा सेवा मैंने पिता जी की देखी। १४ वय निरन्तर अनवरत वे माता जी को अनायास ही पूछ की डाँकी की घाँति उठा लेते। सेवा पुष्पुपा सफाई और न जाने क्या-क्या उन्हें करता पड़ता था जिसे तब नहीं समझा था बाद में जीवन भर समझा। यह हुआ मेरे जीवन पर सेवा का स्पर्श। 'भ्रम हम सभी को करता पड़ता था। हमारी २७ वर्ष की बहन

प्रीति पृथ्वी की भाँति उन दिनों हमारी सारी पृथ्वी जसा रही थी। उन्हीं दिनों मुझे भी अपने हाथ से काम करने और रसोई बनाने का अभ्यास हो पया जो आज भी है। जिद्दोह मुझे पिता से विरसत स्वरूप मिला था। इस प्रकार अमात्र सेवा अम और जिद्दोह इन चारों ने मिच्छकर मेरे बाळ भाव का गृणार किया।^१

इस प्रकार हमके माता-पिता का जीवन एक आदर्श पति-पत्नी का जीवन था।

प्रारम्भिक शिक्षा

आदोक्त से सिद्धम्बरवाड में आ बसने से पूर्व आचार्य चतुरसेन के पिता जी सिद्धम्बरवाड कस्बे के निकट 'रसुछपुर' नामक एक छोटे-से गाँव में रहे थे। उस समय आचार्य चतुरसेन जी की आयु कठिनाई से ४ या ५ वर्ष की होती। वहीं पर उन्होंने मंगाराम नामक एक गौर वर्ण ब्राह्मण से अक्षराम्यास प्रारम्भ किया था। आचार्य चतुरसेन जी ने इस विषय पर स्वयं लिखा है 'जिस दिन मेरा अक्षराम्यास हुआ और मैं पृथ्वी बार पाठशाळा में गया। वह दिन भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुना था कि पण्डित जी मारते हैं कान भीचते हैं मुर्गा बनाते हैं। एकाच बार दूर भाड़े होकर मुर्गा बनते तथा पिटाई होते मीने छत्रकों को देखा भी था। माता पिता ने मेरी पिटाई कभी की नहीं। मुझे याद ही नहीं कि कभी की हो। पिटाई से मैं बचपता भी बहुत था।— अब जब मुझे स्वयं पाठशाळा जाना पड़ा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे 'मेरा सिर काटने को' के जाया जा रहा है। रोता हुआ मैं माँ के आँसू से छिपट गया। माँ ने बारम्बार चुमकाया पुचकाया मस्सू भैया कहा मोद में उठाया मिठाई खिलाई, पिता जी ने भी फुसकाया और मुझे पाठशाळा जाना ही पड़ा। उस दिन मुझे गया दुर्गा मिला गई बोड़ी मिली गई टोपी जिनमें मोटा रुमा हुआ था। यह मुझे अब अच्छी तरह याद है। उन दिनों मैं हाथों में चाँदी के कड़े पहने रहता था। याद आता है कमर में चाँदी की करपनी भी पहनता था। केकिन पैर में जूता नहीं था। जूता तो बहुत दिन बाद सिद्धम्बरवाड में आकर ही पहना। बोटी भोजना मैं नहीं जानता था। उस दिन पिता जी ने मेरी बोड़ी बाँपी की और वे कस्बे पर चढ़ाकर मुझे पाठशाळा से गए थे। पण्डित जी के सम्मुख बताये रखे गए, एक हय्या भेंट किया गया।

१ आतापन आचार्य चतुरसेन में अक्षराम्यास कीये लिखता हूँ पृ १७।

बताये सब सबकों को बाँटे गए। मैंने पण्डित जी के कहने से सबके तिलक
 लगाया। उन्होंने मेरे माथेपर टीका लिया। फिर मेरा हाथ पकड़कर पण्डित जी
 ने मेरी पाटी पर 'श्री' लिखवाया। तीन बार "श्री" उच्चारण करवाया। उस
 उस दिन यही हुवा और मैं पिता जी की गोद में चढ़कर भर जका भाया।
 बताये जो मुझे भिन्ने थे—मैंने अम्मा को दिए। अब मैं हँस रहा था। हँस हँस
 कर पाठशाळा की बात सुना रहा था। मैंने "श्री" पढ़ा है यह भी मैंने बता
 दिया। उस दिन की वह "श्री" जैसे मेरे रक्त की प्रत्येक रूंद में रम गई। कभी
 न भूली जा सकी।

आचार्य चतुरसेन जी प्रारम्भ में केवल पाठशाळा में जाकर दिन भर तल्ली
 गोद में लिए, तथा सरकड़े की कलम हाथ में लिए चुपचाप बैठे रहते थे।
 लिखते कुछ न थे। उनके पिता जी ने पण्डित जी को उन्हें मारने-पीटने से मना
 कर दिया था। इस कारण से प्रारम्भ में पण्डित जी कुछ न बोझते थे किन्तु ऐसी
 स्थिति अधिक दिनों तक न चल सकी। इस विषय पर आचार्य जी ने लिखा है
 'पण्डित जी तरुण होते गए। पर मैं तो लिख ही नहीं सकता था। पण्डित जी
 प्यार से डाँटकर कहते 'अब लिखता क्यों नहीं। तो मैं सुबकियाँ लेकर कहता
 पिता जी लिखेंगे। पिता जी पर पर तल्ली लिखते मुझे समझाते तो मैं इत्मीनात
 से बैठा देखता। मेरी यही भारणा थी कि पिता जी तल्ली लिखते हैं तो अब
 मुझे लिखने की क्या आवश्यकता है। काफ़ी बिन बीत जाने पर भी मैं केवल ३
 अक्षर सीख पाया। अ, आ, इ ई, उ ऊ। परन्तु हर बार इ, ई भूल जाता।
 जब बोझता अ आ उ ऊ। पण्डित जी डाँटकर कहते अंब इ, ई। तब मैं इ, ई
 कहते-कहते हिचकियाँ लेकर रोते-रोते यमा यमुना के सागर बहा देता। पण्डित
 जी हँसकर किसी बालक के साथ मुझे भर लिखवा देते। पण्डित जी
 सुबह ही तल्ली पर सोकहों स्वरों के निघांत कर देते थे। कई बार सामने घुटका
 देते थे। फिर तल्ली पर सिसम का आदेश देकर दूसरे बच्चों की ओर प्या-
 देते थे। बीच बीच में मेरी भी हाँक लगाते रहते थे। परन्तु मेरी यादों तो नहीं
 रकी लड़ी रहती थी। हर बार जब वे कहते—लिख तब मेरा एक ही जवाब था
 पिता जी लिखेंगे। अन्त में पण्डित जी एक बार मधीर हो उठे। और अपने
 बलिष्क का संतुलन को बैठे। उन्होंने क्रोध से मास जाल करने लड़कों क
 लसकाय—काई है लालो तो लजूर की कम्मच आज मैं इस चतुर्मुख के बक
 की खाल उभरूँगा और पाँच घाट बालक दोड़ जैसे लजूर की कम्मच सेने। लजूर
 की कम्मच की कथमात हो बार बार मैं देख चुका था। उस मेरी यादों सरप

प्रीड़ा मूहिषी की भाँति उन दिनों हमारी सारी मूहस्वी बका रही थी। उन्हीं दिनों मुझे भी अपने हाथ से काम करने और रसोई बनाने का अभ्यास हो गया जो आज भी है।^१ बिरोह मुझे पिता से बिरासत स्वरूप मिला था। इस प्रकार अमाव्य सेवा भ्रम और बिरोह इन चारों ने मिलकर मेरे बाक माय का गृ वार किया।^१

इस प्रकार हमके माता-पिता का जीवन एक आदर्श पति-पत्नी का जीवन था।

प्रारम्भिक शिक्षा

जाबोख से सिक्न्दराबाद में आ बसने से पूर्व आचार्य चतुरसेन के पिता जी सिक्न्दराबाद करने के निकट 'रसूलपुर' नामक एक छोटे-से गाँव में रहे थे। उस समय आचार्य चतुरसेन जी की आयु कठिनाई से ४ या ५ वर्ष की होती। बही पर उन्होंने पंगाराम नामक एक गौर वर्ण ब्राह्मण से अक्षरभ्यास प्रारम्भ किया था। आचार्य चतुरसेन जी ने इस विषय पर स्वयं लिखा है "जिस दिन मेरा अक्षरभ्यास हुआ और मैं पहिली बार पाठशाला में गया। वह दिन भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुला था कि पण्डित जी मारते हैं कान चींचते हैं मुर्गा बनाते हैं। एकादश बार दूर जाड़े होकर मुर्गा बनते तथा पिटाई होते गिने लड़कों को देखा भी था। माता-पिता ने मेरी पिटाई कभी की नहीं। मुझे याद ही नहीं कि कभी की हो। पिटाई से मैं घबरता भी बहुत था।" अब जब मुझे स्वयं पाठशाला जाना पड़ा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे मेरा सिर काटने को है जामा जा रहा है। रोता हुआ मैं माँ के आँचल से लिपट गया। माँ ने बारम्बार चुमकाया पुचकाया लम्बू रीया कहा मोर में उठाया मिठई बिकारि, पिता जी ने भी कुसलाया और मुझे पाठशाला जाना ही पड़ा। उस दिन मुझे भया कुर्ता मिला गई बोटी मिठी गई टापी जिनमें कोण लगा हुआ था। यह मुझे बुरा अच्छी तरह याद है। उन दिनों मैं हाथों में चाँदी के कड़े पहने रहता था। याद आता है कमर में चाँदी की करबनी भी पहनता था। लेकिन पैर में जूता नहीं था। जूता तो बहुत दिन बाद सिक्न्दराबाद में आकर ही पहना। छोटी बाँचना मैं नहीं जानता था। उस दिन पिता जी ने मेरी बोटी बाँधी थी और वे कच्चे पर चढ़ाकर मुझे पाठशाला के गए थे। पण्डित जी के सम्मुख बठाते रखते गए, एक रुया भेंट किया गया।

बताये सब लड़कों को बाँटे गए। मैंने पण्डित जी के कहने से सबसे ठिकड़ा रगामा। उन्होंने मेरे माथेपर टीका दिया। फिर मेरा हाथ पकड़कर पण्डित जी ने मेरी पाटी पर 'श्री' लिखवाया। तीन बार "श्री" उच्चारण करवाया। बस, उस दिन यही हुआ और मैं पिता जी की मोद में बड़कर घर चला आया। बत्ताये जो मुझे मिले थे—मैंने अम्मा को दिए। अब मैं हँस रहा था। हँस हँस कर पाठशाळा की बात भुला रहा था। मैंने "श्री" पढ़ा है मह भी मैंने बठा दिया। उस दिन की बह "श्री" जैसे मरे रक्त की प्रत्येक बूँद में रम गई। कमी न भूली जा सकी।"

आचार्य अनुरोध जी प्रारम्भ में केवल पाठशाळा में जाकर दिन भर तल्ली मोद में किए, तथा सरकण्डे की कलम हाथ में लिए चुपचाप बैठे रहते थे। लिखते कुछ न था। उनके पिता जी ने पण्डित जी का उन्हें मारने-पीटने से मना कर दिया था। इस कारण से प्रारम्भ में पण्डित जी कुछ न बोलते थे किन्तु एसी स्थिति अधिक दिनों तक न चल सकी। इस विषय पर आचार्य जी ने लिखा है 'पण्डित जी तरह देते गए। पर मैं तो तिक ही नहीं सकता था। पण्डित जी प्यार से डाँटकर कहते 'अब सिखता क्यों नहीं।' तो मैं मुश्कियाँ लेकर कहता पिता जी बिल्लिने। पिता जी घर पर तल्ली लिखते मुझे समझाते तो मैं इरमीगान स बैद्य देखता। मेरी यही भावना थी कि पिता जी तल्ली लिखते हैं, तो अब मुझ लिखने की क्या आवश्यकता है। काफ़ी दिन बीत जाने पर भी मैं केवल ६ बक्षर सोल पाया। अ आ इ ई, उ ऊ। परन्तु हर बार इ, ई मूल जाता। जब बातता अ आ उ ऊ। पण्डित जी डाँटकर कहते अब इ, ई। तब मैं इ, ई कहूँ-बहुते हिचकियाँ लेकर रोते-रोते गया यमुना के सागर बहा देता। पण्डित जी हँपन होकर किसी बालक के साथ मुझे घर भिजवा देते। पण्डित जी मुझ ही तल्ली पर सोलहों स्वर्णों क लिपान कर देते थे। कई बार सामने घुटबा देते थे। फिर तल्ली पर लिखने का आदेश देकर दूसरे बच्चों की ओर प्यार देते थे। बीच बीच में मेरी भी हाँक लगाते रहते थे। परन्तु मेरी पाड़ी तो बहू रकी लड़ी रहती थी। हर बार जब वे बहूते—लिख तब मंग एक ही बबोब या पिता जी बिल्लिने। अन्त में पण्डित जी एक बार अचीर हो सठे। और अन्त मलिप्य का संगुलम जो बैठे। उन्होंने क्रोध से लाल आँस करक लड़कों क ललपारा—कोई है लामो तो लजूर की कम्मब आद मैं इस लजुर्मुद के बल की धाक उमर्बुगा और पाँच साठ बालक दौड बने लजूर की कम्मब लने। लजु की कम्मब की कयमान हो बार बार मैं देख चुका था। बस मेरी गाड़ी सरल

दौड़ बनी और जब तक कम्युन भाई, मेरी लकड़ी भर चुकी थी। टेढ़े मेढ़े मगर कोपते होय भाँसू नरी बुद्धि और हिक्कियों से भरपूर खल सड़ित बटक-बटक कर उन बसलों का अल्लुट उच्चारण। पण्डित जी ने धाबाड़ी बी पीठ ठोंरी पुचकारा मोद में उठाया मगर इस काड़ प्यार से बी मेरा रोमा तो सका नहीं। पण्डित जी उस दिन स्वयं मुझे लाकर घर छोड़ गए, पिता जी को लकड़ी दिखाई, बधाइयाँ दीं। इस प्रकार मेरा बसराग्यास आरम्भ हुआ। खेद है कि उन पण्डित जी का हमारे सामने ही बेहाबसाम हो गया। मुझे उनकी पीली हस्ती के रंग के समान बेहू और बोधी में बैठकर वहाँ से जाना पकी नाँठि माद है।^१

इसी 'रसूलपुर' ग्राम में ही एक बार आचार्य अनुराधेन जी का जीवन संकट में पड़ गया था। लैसबाबस्या की चर्चा करते हुए उन्होंने इस प्रबन्ध के लेखक से कहा था "मुझ जीवन के प्रारम्भिक काक में ही मैं एक बार मृत्यु से संपर्क कर चुका हूँ। इस संकट में मुझे मेरे एक बालक मित्र ने ही बाँस दिया था। मेरी उत्सुकता देखकर उन्होंने मुझे बतकाया था जिस पाँच म में रहता था उसके किनारे एक छोटी-सी नहर थी। उस समय मेरी वयस्था पाँच वर्ष की रही होगी। एक दिन मैं अपने एक समवयस्क बालक के साथ खेलता-खेलता उस नहर के किनारे पहुँच गया। उस समय हम दो बालकों के अतिरिक्त उक्त स्थान पर अन्य कोई भी स्थिति न था। हम दोनों बाटक वहाँ किनारे खेल रहे थे। मुझे ठीक स्मरण नहीं किन्तु इतना स्मरण है कि वह बालक मुझसे किसी बात पर चिड़ गया था। उसने मुझे बोले से नहर में डकेल दिया और स्वयं भाग गया था।" इतना कहते-कहते आचार्य अनुराधेन जी का विहंगता हुआ मुझ मंडल परभीर हा गया था। उन्होंने पुनः कुछ नव विधित स्वर में कहा था "जस लक्ष के अपने बूबने की स्मृति अभी भी मेरे मन में ज्यों की त्यों है। जब कभी मुझे सब बटना का स्मरण हा आता है तो मुझे रोमाँच हो आता है। मुझे कुछ ऐसा भास होने लपटा है कि मैं अब बूबा 'अब बूबा -।' आचार्य अनुराधेन जी की मुझ-मुझ देखकर मुझे भी रोमाँच हो आया था। किन्तु इतने ही क्षण आचार्य जी ने हँसते हुए कहा था "किन्तु भववीन होने की कोई बात ही नहीं। मैं तो भसा लंगा तुम्हारे सामने बैठा हूँ। उस संसचार में मुझे बाँस का सहाय मिल गया था। जसी का पकड़कर मैं नहर से बाहर आया था।" आचार्य अनुराधेन जी ने कुछ रक्त कर हँसते हुए पुनः कहा था "यदि उस समय मैंने जल समाधि कि

धी होती तो आज तुम पीसिस लिखने मेरे समीप कैसे भाते। इतना कहकर
आचार्य अनुरागेन कुछकर हँस पडे थे।”

सिकन्दराबाद में

आचार्य जी क अखराभ्यास क परचात् उनके पिता जी उनकी शिक्षा-दीक्षा
के बिचार स रमूकपुर मे सिकन्दराबाद भा बस थ। सिकन्दराबाद बिछा बुलन्द
शहर क अन्तर्गत एक थच्छा कस्बा है। वहाँ तहसील और थाना भी है। बिन
दिनों आचार्य जी के पिता सिकन्दराबाद में आए थे उन दिनों कायस्थ लोग वहाँ
क प्रमुख नागरिक थे और आज़कल बनियों का आधिपत्य है। विश्वविख्यात
बैज्ञानिक सर चान्द्रि स्वरूप भटनापर यहीं के निवासी थे और वह आचार्य
अनुरागेन जी क बास सहपाठी थे। आचार्य जी का स्कूल कायस्थ बाड़े में ही था।
वहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले अधिकाराय बिद्यार्थी थनी थे और आचार्य अनुरागेन जी
स्वयं निर्धन पिता क पुत्र थ। ब लोग उर्दूब उन्हें उपजा की दृष्टि से देखते थे।
कलस कायस्थ बिद्यार्थियों में उनकी मित्रता चान्द्रिस्वरूप भटनापर से ही हो सकी
थी कारण वह भी उन्हीं की भाँति बट्टि थ।

उस कस्बे की एक छोटी सी बस्ती में आचार्य अनुरागेन जी का मकान था।
इस मकान के विषय में आचार्य जी ने स्वयं लिखा है “एक पड़ोसी-सी बस्ती में एक
छोटा-सा मकान चापर बाठ बना माह माड़े पर पिता जी ने किया था। मुझे
वह बंबेरी कोठरी अच्छी तरह याद है जहाँ मेरे दो तीन भाई-बहनों का जन्म
हवा। वहाँ दिन रात धँसकार रहता था। कोठरी में ऊपर की मुरास था मुरास
में से सूर्य की कुछ किरनें दोपहर को जाती थीं। ... सब एक साथ उसी कोठरी
में सोते थ। बहुत दिन तक मैं पिता जी के साथ सोता रहा। बाद में किसी एक
भाई के साथ। बकले सोने को चारपाई-बिछौना था मुझे बहुत दिन बाद मिला।
उस मकान की कीमत १०० ६० किसी तरह पिता जी न जुटा सके। परन्तु बपों
तक पर मैं बर्बा होती रही कि यह मकान कठिन जानना। अन्ततः पन्नीस थप
बाद उसी बस्ती में मैंने एक मकान करीदा।”

बिन मुहम्मद में आचार्य अनुरागेन जी रहते थे वह बनियों का था। उस
मुहम्मद का उषम थनी व्यक्ति एक बोड़ी एक राना बनिजा था। उसका नाम
बंसीराम था। वह कस्बे भर में “काना बंनी” के नाम से प्रसिद्ध था। थनी ह्रा
पर भी वह पहले शिरे का कंबूड एक महान्म जान्मी था। उसके न संतान थी

रही। मरने पर भी उसकी लाश तीन दिनों तक पड़ी सड़ती रही थी। तीसरे दिन बड़ी भूम-धाम से उसका विमान निकाला गया था। उस समय आचार्य अतुरसेन भी चौबी या पांचवीं कक्षा में थे। उसी कंबूस वनिण पर उन्होंने उस समय एक साधारण कविता लिखी थी।^१ जो बाद में उस कस्बे में खूब प्रसिद्ध हुई थी। कस्बे के विभिन्न उल्लसकों में भी उनकी यह कविता बड़ी भूम-धाम से गायी जाती थी।^२

आचार्य अतुरसेन भी उस कस्बे के दो लोचि बासों से एवं एक कम्पाउण्डर से भी विशेष प्रभावित थे। लोचि बासों से उन्होंने पत्नीद्विया बनाया उसी व्यवस्था में सीख लिया था जिसमें उन्हें कमाक हासिल था। तथा कम्पाउण्डर बड़ी प्रशार को देखकर ही उन्हें चिकित्सक बनने का धौक हुआ था।^३

पारिवारिक परिचय

यहीं सिकन्दरपवार में आचार्य अतुरसेन जी के परिवार में उनके एक भाई और एक बहिन की वृद्धि हुई थी। सब मिलाकर आचार्य जी चार भाई थे। आचार्य जी बैमसेन भद्रसेन अन्द्रसेन। भद्रसेन जी का मुजावस्ता में ही वैहान्त हो गया था। उनकी अफ़ाल मृत्यु से आचार्य अतुरसेन जी को गह्वर आघात लगा था। बादतब में भद्रसेन जी ही उनके समस्त कामों को देखते थे। वे भाई होने के साथ-साथ आचार्य अतुरसेन जी की दक्षिण मुजा भी थे। आचार्य जी के इसी समय प्रकाशित 'आरोम्यघात' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की भूमिका पढ़ने से उनके बुद्धि हृदय की क्रियित मात्र शक्तन मिल सकठी है। भद्रसेन जी मृत्यु के पश्चात् आचार्य अतुरसेन जी के सबसे छोटे भाई श्री अन्द्रसेन जी ने उनके कामों में सहायता देना आरम्भ कर दिया था। उस समय से अन्त समय तक श्री अन्द्रसेन जी आचार्य अतुरसेन जी के साथ ही रहे। उनके दूसरे भ्राता श्री बैमसेन जी मात्र भी सिकन्दरपवार में रहकर व्यवसाय करते हैं।

१ उसकी कुछ वंशियां निम्न हैं—

रे काने बंती बीसा विमान बनाया।

जब तक जीता रहा-नरक में रहा न भोगा जाया।

मरने पर पारों में तेरा पैसा खूब सुदाया।

रे काने बंती। अतुरसेन-वैमासिक दूसरा अंक पृ २३८।

२ अतुरसेन—वैमासिक दूसरा अंक पृ २३८-२३९।

३ अतुरसेन—वैमासिक, दूसरा अंक पृ २३९ से २४३।

गुरुकुल में प्रविष्टि

सिकन्दरगढ़ में जाने के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी के पिता श्री ठाकुर केवल राम जी का कार्यभार और भी व्यापक हो गया था। वहीं आचार्य चतुरसेन जी के पिता को प्रसिद्ध आर्यसमाजी प्रचारक पण्डित मुरारीदास शर्मा के सानिध्य का भी अवसर प्राप्त हुआ। 'यही उन्होंने सम्भवतः सन् १९०१ या ४ में स्वामी वर्धमानम्ब (तब पं० हृदाराम) और पं० मुरारीदास शर्मा के सहयोग से गुरुकुल सिकन्दरगढ़ की स्थापना की। धामद यही प्रथम गुरुकुल था। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना इसके बाद ही हुई थी।' आचार्य चतुरसेन जी बहुधा कहा करते थे कि इस गुरुकुल के पहले उत्तर में कुल तीन स्यए बन्दे के बाएँ थे और मुझ सहित केवल तीन विद्यार्थी हीमिष्ठ हुए थे। इन विद्यार्थियों का परिचय देते हुए उन्होंने कहा था 'एक थे देवेन्द्रशर्मा (पं० मुरारीदास के पुत्र और पीछे आर्य समाज के प्रसिद्ध प्रचारक) सांख्य-काव्य-तीर्थ, शास्त्री और दूसरे एक और, जिसका कुत्सित जीवन प्रारम्भ-शाक्य ही में समाप्त हो गया था। एकाकी पं० भूमिभ शर्मा कर्पवास-निवासी बने हमारे आचार्य और हम सम्भवतः छठीं कक्षा से स्कूल छोड़कर ब्रह्मचारी बन गए।' उन दिनों सिकन्दरगढ़ गढ़ बगल बासा आर्य-समाज का प्रचार-मङ्गल बन गया था। प्रसिद्ध भवनीक बामुदेव शर्मा और तेजस्वी नामक तेजसिंह की बड़ी धाक थी। रोज ही बाजार में घूम-घाम से प्रचार उपदेश और सा स्नान होते। "मुरारीदास शर्मा विशेष पण्डित तो न थे, पर वे बड़े भागी। इस विषय में चर्चा करते हुए उन्होंने एक बार डा० कमलेश से कहा था "हम बालक रोज मुत्तकमानों के बालकों को पकड़ कर कहते—'सासे कर दासबार्ध' और लट से मार पीट करके चम्पत होते। वहीं हमें भरठ के प्रसिद्ध वाम्पी पं० तुलसीराम का सानिध्य प्राप्त हुआ और पं० हृदाराम का परिवर्तित वर्धमानम्ब रूप देखा। पीछे उन्हीं से हमने वर्धनों का अध्ययन किया। इलाहा के पं० भीमसेन जी के भी सनातनी होने के बाद वहीं वर्धन हुए। उनके और श्री वर्धमानम्ब जी के शास्त्रार्थों की हम लोग सब तकस उतारा करते थे।" १ "कभी-कभी गुरुकुल के नीरस वातावरण से इनका मन

१ मैं इनसे मिला डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" प्रथम भाग पृ ८४।

२ मैं इनसे मिला डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" प्रथम भाग पृ ८४।

३ मैं इनसे मिला डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" पृ ८४-८५।

उखाट हो जाता था।^१ अन्त में एक दिन वे गुरुकुल से चुपचाप काशी भाग गए थे। इस विषय की ख़ास ख़बर पर उन्होंने कहा था गुरुकुल में हमें भूगोल और सत्यार्थ प्रकाश आदि पढ़ाये जाते थे। इसका विरोध करके हम तीन-चार बिद्यार्थी एक दिन रात को दो बजे दीवार फ़ाँदकर संस्कृत पढ़ने की चुन में काशी को भाग गये परन्तु पढ़ने के बजाय दो भी देखेन्द्र और मैं। राह में बहुत बिपदाएँ होतीं। काशी पहुँचने पर भी कष्टों का सामना किया। वहाँ हम लोगों में जाते पीते रहते और आवागमनों में पड़ते। बिद्यार्थियों तथा पंडों की मुग्धागीरी के भी खूब हलकड़े देखे कुछ उधे भी पीछे पिता भी ने आकर भी केसवदेव शास्त्री के यहाँ ब्यवस्था कर दी।^२ जब डा० केसवदेव शास्त्री अमेरिका चले गए तब बहु पं० बीमाराम जी तथा स्वामनाथ जी शास्त्री से भी संस्कृत व्याकरण तथा साहित्य पढ़ते रहे।

जयपुर में शिक्षा

इसके पश्चात् काशी से आचार्य चतुरसेन जी के पिता उन्हें लै आए और से आकर जयपुर-संस्कृत-कालेज में भरती करा दिया। वहाँ के आमुर्देव विभाग के अध्यक्ष स्वामी लक्ष्मीराम जी प्रख्यात पीठूय-यात्रि और विद्वान थे। आचार्य चतुरसेन जी ने उन्हीं से वहाँ चार वर्षों तक आमुर्देव का विभिन्न अध्ययन किया और वहाँ से उन्होंने साहित्य और चिकित्सा की विभिन्न परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। जयपुर में ही आचार्य चतुरसेन जी को आर्य समाज के दिग्गज बेदान्त निष्ठात पं० गणपति शर्मा से बेदान्त पढ़ने का अवसर मिला था। वहाँ की चन्द्रर शर्मा गुमेरी भी मनुसूदन बोसा एवं महामहोपाध्याय गौरीशंकर

१ इस विषय में आचार्य चतुरसेन जी के अनुज श्री चन्द्रसेन जी ने लिखा है "गुरुकुल उन दिनों नया-नया खुला था। अतः खन्ना एकत्र करने के लिए मेधावी और बाल्यु छात्रों को आस-पास के पार्षों में व्याख्यान देने और खंडा उगाहने भेजा जाता था। उनमें आचार्य चतुरसेन जी का नाम सबसे प्रथम था। दो-चार बार बहु बजे भी परन्तु खन्ना उपाहना उन्हें पसन्द न था। बहु तो बिद्या पढ़ने को व्यापुल थे। वहाँ के गुरुओं की ऐसी मनोवृत्ति देख यह चुपचाप काशी भाग गए।"

साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ मार्च १९६० पारिवारिक जीवन की साक्षियाँ चन्द्रसेन पृ ९।

२ मैं इनसे पिता डा० परमार्थ शर्मा "कर्मभार" प्रथम किरत पृ ४३।

हीराचन्द्र जोशा याचि के साधिष्य में आचार्य चतुरसेन जी को जाने का सबसर प्राप्त हुआ था। आचार्य चतुरसेन जी ने यहाँ की शिक्षा स्वयं द्यूषण करके प्राप्त की थी। इस विषय में आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं लिखा है 'उन दिनों मैं जयपुर के संस्कृत कासेज में पढ़ता था। रहता था धर्म समाज मन्दिर में। मेरे साथ एक और दक्षिणात्य विद्यार्थी वहीं रहते थे। वह हैरतबाब के निवासी थे, और महाराजा कासेज में एफ० ए० श्रेणी में पढ़ते थे। बिना फीस की पढ़ाई उन्हें जयपुर सीधे साई थी। सीध ही उनसे मेरा मैत्री सम्बन्ध हो गया। मैत्री सम्बन्ध के जड़ में स्वार्थ भी था। वह और मैं दोनों ही द्यूषण करके अपनी शिक्षा और रहन-सहन तथा जाने-बिजाने का सर्ब बचाते थे। मुझे द्यूषण करने मिलते थे तीन रुपए मासिक। बागिङ्गा छात्रों की विस्वकर्मा पाठशाला में रात को बालकों को पढ़ाना पढ़ता था। पढ़ाना क्या था बड़-बकरियों के बच्चों को दो-तीन घंटे पेरना था। बहुत बच्चे छो भाते थे बहुत पाठाना पेशाब कर देते थे कड़वे-सगड़वे सार करते थे। उन सबकी सार-सम्हार करना और दो घाईं घंटे वहाँ बिठा माने के मुझे मिलते थे तीन रुपए बेहरेछाही। मेरे मित्र मंत्रजी के छात्र थे इसलिए उन्हें द्यूषण के प्यारह मिलते थे। कोई एक ठाकुर का बच्चा छठी-सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उसे ही हिमाते थे वह। इस प्रकार हम दोनों की आमदनी भी प्यारह बस तीन कुछ बौद्ध रुपए। इन्हीं बौद्ध रुपयों में हम दोनों की छात्र-गृहस्थी बसती थी। सर्ब का स्वामी मैं था।— 'खाना बनायी भी समान के अपराधी की स्त्री। बेतन पायी थी वो रुपए माहवार।

— "हम लोग गेहूँ नहीं खाते थे—जी खाते थे—" पर हम सुदा के बन्दे भी दूध के फेर में न थे। खाते थे जौ के कूके टिककड़ बन्नी मिरच-कटाई की बटनी से बन्नी साग-तरकारी तथा बाल के साग।" आचार्य जी के इन मित्र महोदय का नाम सूर्य प्रताप था। एवं जिस बालक को सूर्य प्रताप भी द्यूषण पढ़ाते थे उस बालक का नाम छोटे या ओ भाये बलकर आ० सुद्धवीर सिंह के नाम से बिक्यात हुए। जीवन के अन्तिम समय तक आचार्य चतुरसेन जी की इन दोनों बाल छात्राओं से मैत्री ही बिभता रही वैसी उस बास्वकाल में थी।

आचार्य चतुरसेन जी ने सन् १९०९ तक यहाँ अध्ययन किया था इसने परचात् उन्होंने सिकन्दराबाद आकर बीघर की प्रीक्टिस प्रारम्भ कर ही थी।

आचार्य चतुरसेन जी की शिक्षा अनेक स्थानों में अभ्यवस्थित रूप से हुई

किंग भी उन्होंने अपने स्वाध्याय और प्रतिभा से जो ज्ञान और अनुभव का अर्जन किया वही उनके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हुआ ।

निर्माण-काल

(सन् १८१२ से १८२३ तक)

सिकन्दराबाद में अपनी स्वतन्त्र प्रैक्टिस करते आचार्य चतुरसेन जी को अभी कुछ ही दिन हुए थे कि इसकी निम्नलिखित २५ व मासिक पर दिल्ली के सेठ रघूमल द्वारा कटरा मेरवराज में संघाकित एक औपशास्त्र में चिकित्सक के पद पर हो गई थी । इन्हीं दिनों सन् १९१२ के आस पास आचार्य चतुरसेन जी का विवाह ग्राम मुहम्मदपुर बैरमक (बिजनौर) में सम्पन्न हुआ । आचार्य जी की प्रथम पत्नी का नाम तारादेवी था । यह वैद्य कल्याणसिंह जी आनुर्बेब महोपाध्याय जी की सुपुत्री थीं । अपने स्वसुर भी कल्याणसिंह जी के जीवन का आचार्य चतुरसेन जी के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था । वैद्य कल्याण सिंह जी स्व पर्यासिंह शर्मा तथा आचार्य नरदेव शास्त्री के अन्यतम मित्रों में हैं । आचार्य चतुरसेन जी के विवाह में उक्त दोनों महानुभाव भी सम्मिलित हुए थे ।

आचार्य चतुरसेन जी के स्वसुर भी वैद्य थे और यह उन दिनों अजमेर के "हिन्दू वर्णिक औपशास्त्र" में प्रधान चिकित्सक थे । थोड़े दिन पश्चात् सन् १९१६ में उन्होंने अपना ही औपशास्त्र खोल दिया जिसका नाम 'श्री कल्याण औपशास्त्र' रखा । उन्हें औपशास्त्र को स्थापित किये हुए अभी कठिनाई से एक वर्ष भी न होने पाया था कि उन्हें साहीर से महारमा हंसराज और प्रिंसिपल साईबास का इस आशय का पत्र मिला कि यह डी० ए० बी० कालिज कमेटी के तत्वावधान में एक "आनुर्बेबिक कालिज" खोल रहे हैं उसके प्रधानाचार्य पद के लिए उनकी सेवाओं की आवश्यकता है । इस विषय में वैद्य कल्याण सिंह जी ने विन्यास है (उनका) अनुरोध अस्वीकार नहीं किया जा सकता था । इधर मेरठ औपशास्त्र भी काफी चल निकला था । मीने चतुरसेन जी को बुलाया । अपना औपशास्त्र उनके सुपुर्ण कर में लाहौर चला गया । मैं दो वर्ष लाहौर रहा । इस अवधि में मीने प्रिंसिपल साहा साई बास जी तथा डी० ए० बी० कालिज मीनेबिज

१ आचार्य जी के प्रथम स्वसुर भी कल्याणसिंह जी आज भी मध्ये वर्ष की अवस्था में पूर्ण स्वस्थ हैं । यह प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक का सौभाग्य ही है कि लगभग एक माह उसे इस महानुभाव के सानिध्य का भी अवसर प्राप्त हो चुका है ।

कमटी के प्रधान महात्मा हसराम जी को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे मेरे स्थान पर श्री चतुरसेन जी को स्वीकार कर लें। उन्होंने यह बात मान ली और चतुरसेन जी साहौर के डी० ए० बी० कॉलेज में प्राध्यापक के सीनियर प्रोफेसर नियुक्त हो गए। चतुरसेन जी वहाँ साल भर रहे वहाँ उनकी व्यवहारियों से नहीं पनी। साल भर बाद वह अजमेर आ गए और हम दोनों ही औपचारिक में काम करने लगे।^१

इस औपचारिक से त्याग-पत्र देने वाली बट्ठा से आचार्य चतुरसेन जी के आत्म-सम्मानार्थ एवं अस्वच्छ स्वभाव का स्पष्ट भास जाता है। आचार्य चतुरसेन जी ने लिखा है "मैंने कभी किसी क प्रभाव में रहना सीखा नहीं। आधीनता का तो कहना ही क्या? कुछ जमा जीवन में साढ़े तीन वर्ष पत्राब मुनिबंसिटी की नौकरी की—जो केवल इसी बात पर छोड़ दी कि प्रिंसिपल के कमरे में जाकर हाथिरी के रजिस्टर पर हस्तक्षेप करने पड़ते थे और दो चार मिनट की देहाने पर ऐसा मामूम होता था कि प्रिंसिपल सारे बगों से मुझे ही देख रहा है।"^२

इस बार अजमेर लौटने पर इनका साहित्यकार कुछ उर्बुद्ध हो चुका था। यह प्रथम वर्मन युद्ध का साल था। इसका वर्णन करते हुए आचार्य चतुरसेन जी ने लिखा है "प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर, मुझे मयानक महाभारती इस्फूर्तुएन्वा और उसके बाद प्लेन के दिनों में प्रतिदिन दो सी सी-सी नर-नारियों को भीषण यन्त्रबाधा में छटपटाते हुए मृत्यु का प्रास होते थी उनका प्रियजनों के कष्टन मार्तनाद को मति निकट से देखने का अवसर मिला मेरे जैम ठरण के लिए, जिसके हृदय में साहित्य की भावना सोई पड़ी थी ती तीन सी नर नारियों का नित्य मेरी आँवों के सामने छटपटा कर प्राण त्यागन प्राण बचाने के भयीरप प्रयत्नों के बावजूद भी निराश होना कोई साधारण बात नहीं। इसने मेरी सम्पूर्ण बेउमता को बाह्य कर लिया। मैं उन दिनों को भूल नहीं सकता जब स्वयं १०५ डिग्री के उबरे में रात दिन एक के बाद दूसरे सांघाविक रोषियों का देखना एक उपचार करना पड़ता था। कोई कोई मृत तो अतिगम मयानक हृदय विचारक मर्मान्त्रिक पीड़ा देने वाली होती थी।"^३

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान आचार्य चतुरसेन अर्द्धावधि अंक ६ मार्च १९६५ पृ १४।

२ आतापन आचार्य चतुरसेन, पृ ११६-११७।

३ आतापन आचार्य चतुरसेन, पृ १७ से १८।

इस घटना का आचार्य चतुरसेन जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनका सोया हुआ साहित्यकार जाग उठा। और उन्होंने इसी घटना पर अपना प्रथम उपन्यास "प्लेग विप्राट" लिख डाला।

अपने इस प्रथम उपन्यास के विषय में आचार्य चतुरसेन जी ने लिखा है "उसी के बाद इन्फ्लुएन्जा और प्लेग ने मेरी बेतला को बाहूठ किया और मैंने उन्हीं दिनों अपना सबसे पहला उपन्यास लिखा—उसमें मैंने व्यस्त मर्मन्तिक प्लेग और इन्फ्लुएन्जा के बीच-बीस केशों के विवरण दिए, जो मेरे माँकों देखे थे। वे सब दिख दिखा देने वाले थे। उन्हें पहले मैंने प्रथक विवरणों में लिखा फिर प्रत्येक के तीन या चार टुकड़े कर डाले उन टुकड़ों के बीच में दूसरे प्रसंगों के टुकड़े डालकर मैंने उस पूरे विवरण संग्रह को उपन्यास का सा रूप दे डाला। यह सब देने में मेरा ध्यान वास्तविकता में पठित 'चन्द्रकान्ता संतति' की पद्धति पर केन्द्रित रहा। उसी के अनुकरण पर मैंने इन विवरण खण्डों को परस्पर बीच में डाल कर गूब किया। आरम्भ में एक विवरण का एक दुस्य फिर उसे छोड़कर दूसरे, तीसरे, चौथे विवरण के बंधूरे अंश। फिर वही पूर्व का आगे का कवन। इसी प्रकार पूरा उपन्यास तैयार हो गया। उसी का नाम मैंने रखा था वायव्य "प्लेग-विप्राट"। उन दिनों प्रताप के माध्यम से मेरा परिचय आगरे के श्रीकृष्णदास पालीबाबू से हो गया था। उन्हीं को वह तथा कथित उपन्यास मैंने छपने के लिए भेज दिया। उसे उन्होंने घायब कापरबाही से कहीं डाल दिया पीछे सूचना दी कि वह पाण्डुकिपि कहीं को गई। इस प्रकार मेरे उस ठकाकथित प्रथम उपन्यास कपी शिशु का गर्भपात ही हो गया। इसके लो जाने का दुःख बहुत हुआ। पालीबाबू से सिकसिक भी बहुत हुई। पर जो जो गया वह जो गया।" आचार्य चतुरसेन जी के मानस पटल पर इस उपन्यास के पार्श्वों ने अपना गहरा प्रभाव छोड़ा था। उन्होंने लिखा है वे कोई कास्य निक पात्र न थे। मैंने अति निकट से उन्हें देखा था इसलिए बहुत दिनों तक उनके रैसाचित्र मेरे मेरों में झूमते रहे और मेरी मनोवृत्ति और बेतला में उपन्यास तत्व की घूमिका बनाने लगे। बहुधा मैं सोचने लगता यदि यह न होता वह होता ऐसा न करके ऐसा किया जाता तो कथाचित्र ऐसा होता। यद्यपि ये सब विरह्य विचित्रता में सम्मग्निय के पर उनमें से कल्पनाएँ मूर्त हो उठीं। इस प्रकार आँकों दैने सच्चे रैसाचित्रों के साथ ही साय कास्यनिक रैसाचित्र भी उमरने लगे। वे अचिर सद्यत्त वे प्रिय थे। दुसरे सच्चे घटित रैसाचित्रों के

ऊपर कास्मिक विषयों की प्रतिष्ठा मेरे मानस में होती चली गई। इस प्रकार जमाव सेवा धर्म और बिग्रोह में इन्हें हम प्रथम से चुके हैं दो वस्तु तत्व और वा भिन्ने-वेदना और कल्पना। वेदना सत्य पर आधारित और कल्पना वेदना की प्रतिक्रिया स्वल्प। परन्तु इसमें कहीं उपन्यास तत्व पतप रहा है, यह तब भी मैं समझ नहीं पा रहा था।^१ आचार्य चतुरसेन जी की यह प्रथम रचना आज अप्राप्य है किन्तु आचार्य चतुरसेन जी के इस वर्णन से स्पष्ट है कि इसमें पर्याप्त सजीवता रही होगी। आचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुज श्री चंद्रसेन ने सम्पादित करके उनकी आत्म कहानी लिखायी है उसमें प्रस्तुत उपन्यास के कुछ अंश भी दिए हुए हैं।^२

आचार्य चतुरसेन जी का यह प्रथम उपन्यास या यद्यपि इसके पूर्व चिकित्सा सम्बन्धी या सामाजिक कुरीति सम्बन्धी लेख और एक दो पुस्तक निकल चुकी थी। उनकी सबसे पहली रचना सा० साजपतराय के माइले-निर्वा सन पर "श्री बेंकटेश्वर समाचार" में प्रकाशित हुई थी। तथा सबसे पहली पुस्तक बाबू विवाह के दिग्द एक टूट के रूप में निकली थी। उसका नाम था "हितुओं की छाती पर जहरीली छुरी"। सबसे प्रथम कथा का रूप उनके एन लेख में चारन किमा जो उन्होंने एक मारवाड़ी बूढ़ सेठ के एक बालिका के विवाह के विरोध में लिखा था। वह कास्मिक कहानी न थी सच्ची जगन थी—इन प्रारम्भिक रचनाओं से आचार्य चतुरसेन जी की इस मनोदशा का आभास प्राप्त हो जाता है जिसने उनसे अविद्य में "मारवाड़ी अंक" नाम अभिजाया (बहते बाँसू) आदि कृतिपों की सृष्टि करायी थी।

आचार्य चतुरसेन जी का प्रथम प्रकाशित उपन्यास "हृदय की परख" है। उस समय इस उपन्यास की भूमिका में आचार्य चतुरसेन जी ने जो लिखा था उसी को स्पष्ट करते हुए उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को बतलाया है "वास्तव में उस पुस्तक की मेरी सारी जमा पूंजी उधार की थी। मेरे मित्र का सूर्यप्रताप ने जिन भावों की शोकी दिशा कर मुझे प्रेरण कर दिया था, उन्हीं का एकत्र करके कथा सूत्र में बाँध देने मात्र का ही मुझे श्रेय था। उस पुस्तक-आरम्भ के चार परिच्छेद तो मैंने उसी अर्थ-राशि को लिपिबद्ध कर डाले।

१ आतापन, आचार्य चतुरसेन, पृ १८ १९।

२ आचार्य चतुरसेन जी की रचना के कुछ अंश आगे उनके द्वारा सम्पादित सजीवन नामक मासिक पत्र में "वेबदूत" के नाम से प्रकाशित भी हुए थे।

जिस रात्रि को उनके श्री मुख से यह कथा सुनी थी।”^१ इस कारण से इसमें भी कथा-तत्व का अभाव ही था। वास्तव में यह रचना एक छोटे हुए कथाकार की अंगड़ाई मात्र थी। इसके व्यतिरिक्त आचार्य अनुरसेन जी ने यह भी बतलाया था कि मुझे प्रसन्नता सबसे अधिक इसी पुस्तक को प्रकाशित देखकर हुई थी। इस समय आचार्य जी की अवस्था २६-२७ वर्ष की थी (सन् १९१७-१८ के लगभग) अभी तक उनका साहित्यकार रूप उनके चिकित्सक रूप के नीचे दबा हुआ था। कभी-कभी जब उनका साहित्यकार रूप उद्बुद्ध होता तो कोई न कोई रचना निकल ही जाती थी। किन्तु धन-धन उनका चिकित्सक रूप उनके साहित्यकार रूप पर हावी होता जा रहा था। अब चिकित्सक के नाते बीरे-बीरे राजस्वाम के राजबर्गीय बनों से उनका सम्पर्क बढ़ा और दीघ्र ही नानाकित राजा-ठाकुर जागीरदार महाराजों के राजवासों में उनकी पैठ हो गई। इस जीवन में उन्हें कितने ही अनहोने चित्र और मानव चरित्र देखने पड़े थे। उन्होंने लिखा है ‘चिकित्सक का कार्य कितना नाबुक और रहस्यमय होता है वह कथाचित् सब कोय नहीं जानते। बड़े-बड़े अनहोने चित्र और मानव चरित्र मेरे सामने आए। बड़े-बड़े पेशीदे गामछे मुझे सुझाने पड़े। बहुत से राजा महाराजों के राजियों के तथा अति सम्प्राप्त प्रभावशाली जनों के भीतरी आर्तनाय दुर्बलताएँ, मूर्खताएँ, गुरसाएँ मुझ पर प्रकट होने लगीं। उन दिनों बर्बनों बड़े-बड़े सम्प्राप्त पुत्र्यों स्त्रियों की इज्जत आबरू मेरी देखों में पड़ी रहती थी वे एक हीन हीन भिसारी के समान मेरी कृपा के पात्रक बन मेरे सम्मुख आते थे। मुझे इन सबको नितान्त धोपनीय रचना पड़ता था घारी मारी ध्यवस्वाएँ करली पड़ती थी असाधारण उद्योग करने पड़ते थे जिन सबका मेरे मन पर कभी-कभी इतना दबाव पड़ता था कि बहुधा मैं असंयत हो उठता था। इन सब बातों ने और दो नए तत्वों को मेरे मानस पर उदित किया—बिभेक और संयम। अब मेरी कम्म का नैतृत्व आठ तत्व कर रहे थे—अनाद सेवा धम त्रिहोह बेदना कस्तना बिभेक और संयम। यद्यपि इस समय तक भी मैं कोई उत्तम उपन्यास न लिख सका था पर मैं तब मेरे नित्य के जीवन में जोत प्रोत रहते थे निरन्तर मुझे उनकी आवश्यकता पड़ती रहती थी अपने गम्भीर और अतिरिक्त ध्यवसाय में। इससे प्रत्येक वस्तु को देखने का मेरा अपना एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण हो गया था।”^२

१ साय ही बैलिट् ‘हृदय की परछा’ आचार्य अनुरसेन—भूमिका।

२ वातायन आचार्य अनुरसेन पृ ९०।

अभी भी उनका साहित्यकार रूप उनके चिकित्सक रूप के नीचे मुष्ण-
बन्धा में पड़ा था। इसी समय उनके जीवन में एक नया मोड़ आया। राजस्वान
से हटकर वे कुबेर पुरी बम्बई में जा बैठे। यहाँ पर इनके जीवन पर दो व्यक्तियों
हाजी मुहम्मद अल्ता रसिदा शिबानी एवं ससेमाबाद कियतगढ़ निवासी बम्बई
की "हज़ि प्रसाद भगीरथ साह" नामक पुस्तक-प्रकाशन-संस्था के व्यवस्थापक
पं० राधाबल्लभ जी का विशेष प्रभाव पड़ा था। पं० राधाबल्लभ जी के अनुरोध
पर ही वह बम्बई गए थे। इस नियम पर आचार्य अनुरसेन जी के स्वसुर भी
कल्याणस्थि जी ने लिखा है "करीब दो बर्य भजमेर में रहते हो गए। इन दिनों
बम्बई क प्रसिद्ध पुस्तक व्यापारी 'हज़िप्रसाद भगीरथ' फर्म के स्वामी ससेमाबाद
कियतगढ़ निवासी श्री पं० राधाबल्लभ जी धर्मपत्नी का इलाज करने का मौका
मिला। शास्त्री जी की चिकित्सा से इस रोगी को कठिन बीमारी में आश्चर्यजनक
शाम हुआ। पण्डित राधाबल्लभ बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—'आप जैसे
मुर्खी यहाँ क्यों पड़े हो जसो मेरे साथ बम्बई। वह महाकर्मि की मगरी है जहाँ
पापी-सोने का समुद्र बहता है।' यद्यपि यह कि शास्त्री जी तैयार हो गए और
उनके साथ बम्बई चले गए। उनके ही मकान में रहे। उनकी इजा से चोढ़े दिनों
में कालबा देवी रोड में एक सुन्दर मकान मिला गया जहाँ "भजमेर बाबा
बैद्यराज" नाम का बोर्ड लगा कर बैठ गए और कार्य चरु निकला।" १ किन्तु
आचार्य अनुरसेन जी ने अपने बम्बई प्रवास काल के विषय में लिखा है "उन
दिनों मैं बम्बई में रहता था। मेरा घर और हज़िप्रसाद भगीरथी जी की फर्म
दिसक्रुड पास-पास ही थी। कालबादेवी रोड पर। बम्बई में गया तो या चिकि
त्सा-व्यवसाय करने पर संय होय से शेयर और रई का सट्टा भी करने लगा था।
दो और साथी थे। उन दिनों हम सोग प्रतिदिन साह-पचास हजार कमाते खोते
थे। अद्भुत दिन थे वे, जबकि रात रात मर तीनों आदमियों की मीटिंग होती
थी। घारे सत्कार की रई की उपज हमारी उंगलियों की पोर पर रहती थी।
लाना पीना हराम था। अपना-ही-रुपया उन मन में भरा था। रक्त-बाहिनियों म
रक्त न था रुपया था।" २ अभी करोड़पति सेठों के जीवन से भी परिचय हुआ,
जो राजा-महापराजों से सनना मिलत था—एक मने की मति जो सवा कया फन

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, आचार्य अनुरसेन अर्थात्कति अंक ६ मार्च १९६०,
पृ १४।

२ आतापन, आचार्य अनुरसेन पृ १०९ से ११० तक।

रहता है उसके ऊपर मिट्टी लकी है—या नोटों के गट्ठर, इसकी उसे समीच नहीं।
बिनास का यहाँ पता भी न था। कुत्सा ही कुत्सा थी।”^१

इसी समय बम्बई में ही आचार्य चतुरसेन जी का परिचय हाजी मुहम्मद
बस्ता उखिया सिबाजी से हुआ था। आचार्य जी ने इस व्यक्ति के विषय में
लिखा है “बुजराठी साहित्य का वह मस्ताना पुजारी था।” बीसवीं सदी” बुजराठी
साहित्य का सम्पादक और स्वामी। जाति का खोवा मुसलमान। स्वल्प गौर
वर्ण लम्बा-उपड़ा-हंसमुख उदय। साहित्य साधना में मस्त। शीघ्र ही मेरा
परिचय उससे अनिष्ट हो गया और १०-१० बंटों की मेरी मुजाबतों उसके घर
पर होने लगीं। उन दिनों राष्ट्रवाद-बेसभक्ति और हिन्दुत्व मेरी विचारबाध का
केन्द्र बने हुए थे। गद्य-काव्य उन दिनों मैंने लिखने आरम्भ किए थे। उनका
स्वागत खूब हो रहा था। ये गद्य-काव्य-राजनैतिक भी थे राष्ट्रीय भी थे।
ऐसा ही एक काव्य ‘स्वदेश’ मैंने लिखा। माधुराम प्रेमी को विनाया तो
फड़क गए। पर जब हाजी मुहम्मद को सुनाया तो वह मुमसुम चुप बैठा रहा।
मेरे मन पर आघात लगा। पूछने पर बीरे से कहा—‘बच्छ है। पर वह ठन्डी
ठापीऊ बच्छी न लगी। घर पर आकर विचार किया सेल में मुस्लिम आक्रमणों
बत्याचारों और हिन्दू सहनशीलता की भावना थी। राष्ट्रीय तत्व थे। भारत
में मुसलमान आचान्ता है हिन्दू भारत की सन्तान-ऐसी अभिभवंतना थी। कैसे
मसा ये सब बातें मेरे इस मुसलमान साहित्यकार को रुच सकती थी? तभी
मैंने हिन्दु-मुसलिम भेद भाव पर, राष्ट्रीयता पर गम्भीर विचार किया। राष्ट्र
भक्ति मैंने त्याग दी। बेस भक्ति से मैं परे हट गया। कम से कम अपने साहित्य
को उससे अछूता रखने का मैंने संकल्प कर लिया और मानव प्रेम पर मेरी
धैर्यता जा टकराई। मैंने निश्चय किया जब मैं जो कुछ लिखूँगा मानव पूजा
के लिए। मानव बेदना के हास्य के जीवन के संघर्ष के चित्र लीखूँगा।^२
आचार्य चतुरसेन जी इस कारण से इसी व्यक्ति की मित्रता को अपने साहित्य
का नया मोड़ मानते थे। किन्तु इस साहित्यिक मित्र का सहबाध आचार्य
चतुरसेन जी को बहुत कम मिल पाया था। आचार्य जी लिखते हैं ‘साहित्य
इसे खा गया और मेरी भाँसों के सामने वह मर गया। बड़ी-बड़ी तीन हूबेकियाँ
पास का २०-१० हजार खपाया हवा में उड़ाकर, और ४० हजार का कर्जा

१ वात्तायन, आचार्य चतुरसेन पृ २३।

२ वात्तायन आचार्य चतुरसेन पृ २४-२५।

अपने पनामे पर साबकर यह मस्ताना साहित्यकार संसार से चक लड़ा हुआ । परी जवानी में । कपक एक मासिक पत्रिका पर लालों फूंक दिए । जब तक त्रिया कला-सौन्दर्य-साहित्य के संसार में बाँसू बखेरता रहा ।^१ हाजी मुहम्मद के मरने के पश्चात् 'अस्तक' प्रकाशित हुआ था । उसकी भूमिका में आचार्य चतुरसेन जी का बिछोह फूट उठा था ।^२

हाजी की मृत्यु के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी बम्बई में और अधिक दिन न रह सके । सड़ते की जाट पड़ गई थी अन्ततः उसका परिणाम हुआ हुआ । आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं लिखा है "परन्तु पीछे ही मुझे एक चोट लगी । एक दिन सर्वस्व दे सूझे हाथ पर लौट आया । लौटकर देखा, पत्नी क्षम से अस्वस्थ अवस्था में पड़ी है । उसे धर्मपुर चिकित्सार्थ ले जाने के लिए मैंने सौ सस्या बहूतों से उधार माँगा पर न मिला । पत्नी का बेहोश हो गया । बहुत भाँपे आबाठ था कंबल जीवन पर नहीं मानस पर, विचारधारा पर । अब पीड़ा मेरी सम्पूर्ण चेतना को आक्रान्त कर गई । उसने मेरी कलम को गहराई में उतार दिया ।^३ इस घटना के पश्चात् ही आचार्य चतुरसेन जी ने बम्बई त्याग दिया था । बम्बई प्रवास काल में केवल आचार्य चतुरसेन जी के दो-ही प्रमुख ग्रन्थ निकल सके 'अस्तक' तथा 'सत्याग्रह और असहयोग' । अस्तक की गुस्देव रवि बाबू ने भी प्रशंसा की थी । इस विषय

१ वातापन, आचार्य चतुरसेन, पृ ८७-८८ ।

२ अस्तक की भूमिका में उन्होंने निम्न पंक्तिवाँ लिखी थीं—

मेरी यह रचना विषय है । हाजी मुहम्मद के साथ एक तौर से मैंने इसका व्याह कर दिया था यह जावमी गुजराती साहित्य-मन्थिर का मस्ताना पुकारी था । वह 'बीतवीं तबी' नामक प्रख्यात गुजराती पत्रिका का संपादक था । सबसे प्रथम उसी की दृष्टि में यह रचना बड़ी । उसने पागल की तरह उसे लाड़ किया मैंने भी अपने-वराये की परबाह न कर उसी से इतका व्याह किया । व्याह होते-होते ही तो वह मर गया ।

कितने हीस से उसने इसे चाहा था 'रूप' को लुनकर उसकी लालों झूमने लयीं थी 'बुल' को लुनकर वह रोया और 'अनुताप' की वह पुनकर उद्दे के मारे सड़ा हो गया था । वातापन आचार्य चतुरसेन
पृ ९९ ९९ ।

३ वातापन आचार्य चतुरसेन पृ २४ ।

का उल्लेख करते हुए डा० मुद्रशीर सिंह ने लिखा है 'आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अन्तस्तक' प्रकाशित हुई तो उस समय छात्रों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी और शामक जिन कठिनाइयों में से वह उन दिनों गुजर रहे थे उनके कारण 'अन्तस्तक' के उद्धार निकले थे। 'अन्तस्तक' का अच्छा स्वागत हुआ तो मैं एक रोज पूछ बैठा कि क्या इससे कुछ आर्थिक काम नहीं हुआ।

उन्होंने बराब दिया 'इससे एक बड़ा काम हुआ है। मुझे कबिबर रबीन्द्र नाथ ठाकुर का एक पत्र मिला है जिसमें गुरुदेव ने मुझे 'अन्तस्तक' पर हार्दिक बधाई दी है। छात्रों की बड़े प्रसन्न के और कहने लगे 'गुरुदेव के इन चार शब्दों का बहुत बड़ा मूल्य है मेरे लिए। इससे बड़ा और क्या काम हो सकता है।'

द्वितीय विवाह और क्रान्तिकारी जीवन

(सन् १८२५-१८३४)

बम्बई से छोटने और प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी के जीवन में पुनः एक मोड़ आया। बम्बई प्रवास काल में वह साहित्य में दूर जा पड़े थे यद्यपि हाजी के साक्षिभ्य से उन्हें बड़ी प्रेरणा भी प्राप्त हुई थी।

प्रसूत प्रबन्ध के सिक्क के एक प्रश्न के उत्तर में आचार्य चतुरसेन जी ने बतलाया था कि 'मेरी प्रथम पत्नी की मृत्यु का मुझे काफी सब्रमा पट्टा था। वास्तव में मैं ही उसकी मृत्यु का बोपी था। न मैं सट्टे-पट्टे में पड़ता और न ही वह जाती'। इतना कहकर आचार्य जी मौन हो गए थे। मैंने उनसे पुनः प्रश्न किया था 'इसमें आपका क्या दोष ?

किर किसका दोष ? आचार्य चतुरसेन जी ने कुछ ठीके शब्दों में कहा था।

'मुझे आज भी वह दिन क्यों-क्यों-स्मरण है जब वह रात के असाध्य राग में पड़ी लड़प रही थी। मैं सट्टे में सब कुछ बे बैठा था अपनी स्वयं की जमा पूंजी भी। ओर इधर पत्नी भी हाथ से जा रही थी किन्तु मैं उसे जाने देने को तैयार न था। किन्तु पास एक कौड़ी न थी ? मैंने उसे विविक्षार्थ

धर्मपुर के जाने के लिए बहूतों से रूप उधार माये, किन्तु हाथ रे माम् । कोई अपना न था, यह प्रथम बार मुझे उस दिन ही अनुभव हुआ था । आचार्य चतुरसेन भी ने कुछ बक कर पुनः कहा था "बब तुम स्वयं अनुमान कर सकते हो कि उस समय मेरे हृदय पर, मेरे मानस पर कितना भारी आघात लगा होगा ।"

आपने अपनी उस मानसिक स्थिति का कहीं विवरण नहीं किया । मैंने प्रश्न किया ।

क्यों नहीं ? किन्तु वास्तव में मैं उस समय केवल यही विचार रहा था कि ऐसे स्वार्थी संसार में यदि भाव सत्य जाये तो अशुभ है । किन्तु कुछ उपाय समझ मे न आ रहा था । मैं कितने ही दिनों गुमगुम रहा । परिवार वालों को मेरी यह दशा भली न लगी और उन्होंने प्रथम पत्नी की मृत्यु के कुछ ही दिनों के अनन्तर मेरा दूसरा विवाह रचा दिया । विवाह हो जाने के पश्चात् भी मैं कितने ही दिनों तक अपने मस्तिष्क को संतुलित न रख सका था । इतना कहकर आचार्य चतुरसेन जी मौन हो गए थे । पुनः कुछ स्मरण कर उन्होंने कहा था अपने "आत्मदाह" उपन्यास में द्वितीय विवाह होने पर सुधीर की जिस मानसिक स्थिति का मैंने विवरण किया है वह वास्तव में मेरी अपनी ही है । किन्तु अब मैं ऐसी मानसिक स्थिति का अन्वय हो गया हूँ ।" मुझे स्मरण है कि इस वाक्य के समाप्त होते ही आचार्य चतुरसेन जी झुलकर हँस पड़े थे ।

इस प्रकार प्रथम पत्नी तारादेवी के निधन के पश्चात् उनका दूसरा विवाह मन्दसौर मध्यप्रदेश निवासी श्री तानूचम जी चौहरी की सुपुत्री प्रियम्बदा देवी से सन् १९२६ में हुआ । यह विवाह आचार्य चतुरसेन जी के परम मित्र श्री नाथयल प्रसाद के प्रमत्त से हुआ था जो उन दिनों बीधपुर के गवर्नमेन्ट कालेज में प्रोफेसर थे । इस विवाह के पश्चात् भी उनके विचार नित्यप्रति क्रान्ति की ओर ही उन्मुख होते जा रहे थे । आचार्य जी के स्वयं चिन्ता है परन्तु जब इस प्रकार मानसिक प्रतिक्रियाएँ विचार क्रान्ति कर रही थीं तभी भारतीय क्रान्ति के श्री मैं निकट पहुँचा । इसका कारण भयतसिंह था । उसे मैं एक किसी और ही नाम से जानता था । मेरी देखन देखी से आकर्षित होकर वह मेरे पास आया था । मुझे अपने गिरोह का संसार बनाने का उसका आग्रह था । उन लोगों में मैं सम्मिलित न हुआ पर सम्पर्क तो रहा ही ।"^१

परन्तु प्रबन्ध के लेखक ने एक प्रश्न के उत्तर में आचार्य चतुरसेन जी ने कहा था 'बहु उठो और जागो' का काल था। मैं स्वयं भी उस समय कुछ कर डालने का इच्छुक था। इसी समय रामरत्नसिंह सहनक से मेरी भेंट हुई। वह इच्छाहावाय से 'आदि' मासिक निकालता था। परन्तु 'आदि' की आर्थिक दशा उन दिनों अच्छी न थी। प्रतिपत्नी भी सामय डाई डींग हजार ही छपती थी। एक दिन बैठे-बैठे विचार हुआ कि कैसे 'आदि' को उन्नत किया जाय। मैंने ९ निसेपाकों की स्कीम बनाई। तिनमें पहिला 'फांसी बंक था।' आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं इस विषय में बिज्जा भी है 'बहुन भारी संका समाधान के बा' भी सहमत' फांसी बंक की उपयोगिता पर सहमत हुए। यह मार उन्हीं मुझी पर दिया और मैंने उसके लिए कलम पकड़ी। मेरी अमिजाया भी कि उसमें फांसी के बन्ध के प्रति विरस्कार तो प्रकट ही किया जाय धाय ही मतोरबन की दृष्टि से संसार के प्राण दण्डों को व्यक्त किया जाय। दूसरे इसी बहाने बीसवीं सताब्दी में फांसी पाए जाने का रिकार्ड सचिन एकत्र कर लिया जाय। -

इसके विज्ञापन की भी छापी योजना मैंने ही बनाई, विज्ञापन के ड्राफ्ट भी मैंने किए। भारत के बनेक पत्रों में 'फांसी बंक' का विज्ञापन छपते ही तहलका मच गया। - - -

उधर सरकार भी चिन्तित हो गई। भला सरकार साहित्य में ऐसी नम्य राजनीति और जालि कहीं देख सकती थी। परन्तु हमारा काम चलता गया। इसी समय एकस्मात् मेरे पास सरकार भगतसिंह ने आकर कुछ आर्थिक सहायता चाही और मैंने बहु कठिन काम उन्हें सौंपा। उन दिनों वे सौगडर्स को मार चुके थे और पुलिस उनके पीछे थी। वे छपबेस में रहते थे तथा नाम बदलकर परिचय देते थे। मैं भी जब तक कि असेम्बली में बम बड़ाका न हुआ उनका असक्त परिचय न जाल पाया। उन दिनों सहायनपुर और बिस्की जालि कारियों का बड़ा हो रहा था। उन्हीं घर घर घूम-घूम कर अम्भिकारियों के ७० से ऊपर प्रमाणित जालि और जिन मुझे दिए। तिसके बदले में सिर्फ दायर ७०० रु. उन्हें 'आदि' की ओर से मिले।"१

'फांसी बंक' निकलते ही एक तहलका मच गया था। आचार्य चतुरसेन जी की "उठो जागो की भावना कुछ कर डालने की इच्छा इसमें पूर्ण उधर कर

भक्त हुई थी। इस संक के निकलते ही आचार्य जी की छेल्नी के चमत्कार पर सब चकित रह गये थे। इस विषय पर सत्यदेव विद्यालंकार ने लिखा है—

“प्रकट रूप में शास्त्री जी की कमी किसी न कान्करी के रूप में नहीं देखा और उनकी किसी कान्करी प्रकृति का किसी को पता नहीं चला। इसी कारण जब “फांसी-संक” के सम्पादन के रूप में उनके नाम की घोषणा की गई तब सब विस्मित-से रह गए। फांसी पर ईसते सेसते झुठन वाले और कान्करीकारियों की बभर गवा लिखने का उनकी अधिकारी मानने को उनके आत्मोक्त तैयार नहीं थे। परन्तु यह कितनों को मासूम है कि बिस्वी के बाँदनी चौक में साई हार्डिंग पर बम फेंकने की ऐतिहासिक घटना के अपनी युवावस्था में वह प्रत्यक्ष बर्ती थे। उसका विषय विवरण उम्हें डा० युद्धवीर सिंह को उस पुष्ठी के एक विस्तृत पत्र में लिखा था।^१ वह ऐतिहासिक घटना उनके दिल पर सदा के लिए गह गई थी और उससे उनके दिल और दिमाग में देशभक्ति की भावना का जो बीजारोपण हुआ था उससे संकुर सदा ही बूरे मरै बने रहे। उनकी साहित्यिक रचनाओं की पुष्ठीभूमि में जो उच्च स्वामिमान उत्कट स्वदेवामिमान और प्रभाड़ देशभक्ति सर्वत्र झलकती है निस्संदेह वह इसी घटना का परिणाम है।”^२ किन्तु मेरा विचार है कि यह भावनाएँ इस घटना के पूर्व ही आचार्य जगदुरसेन जी के हृदय में थी और इन्हीं भावनाओं ने उनसे “फांसी-संक” का सम्पादन करवाया था। मेरी समझ में उनके हृदय में इस प्रकार की भावनाओं का विकास उनकी प्रथम पत्नी की मृत्यु वाली घटना से हुआ था। इस संक की प्रवृत्ति भी उस समय शुरू हुई थी।”^३

१ ‘यहूली सत्तामी’ में भी आचार्य जगदुरसेन जी ने इस घटना का पूर्ण विवरण दिया है वातायन पृ ३७-५४।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १९६० पृ १९।

३ सत्यदेव जी ने लिखा है “आचार्य जी ने इस प्रकार इस विरोधांक के सम्पादन और उसके लिए सामग्री संकलन करने में जिस साहस धैर्य और निर्भीकता से काम किया और जो भारी बोझ उठाया उसको कल्पना कर सकना कठिन नहीं होना चाहिए। वह साहसपूर्वक काम भाग से लेने के समान था। उसमें आचार्य जी ने जो सफलता प्राप्त की वह विस्मयजनक थी। उसको केवल एक एक विरोधांक के रूप में नहीं देखना चाहिए, अपितु उस बीर-पूजा के रूप में देखना चाहिए, जिसको उन दिनों में एक मयांक अपराध माना जाता था और जिसके लिए कुछ भी सजा दी जा सकती थी। अंग्रेज शोकरदाही

'फासी-बंक' के कुछ ही माह पश्चात् 'बाँब' का 'मारवाड़ी बंक' निकला था। इसमें भी आचार्य चतुरसेन जी की वही कान्टिकायी भावनाएँ उमरी हुई थीं किन्तु इसमें धारण के विषय नहीं बल्कि धन की कुस्ता और सामाजिक रुढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव था। इस बंक द्वारा वे मारवाड़ को उद्बोधन देना चाहते थे मारवाड़ की कुरीतियों पर आक्षेप करना चाहते थे किन्तु "आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं लिखा है" इस बंक का सम्पादन पद्यपि मैं था परन्तु सहमल ने कुछ ऐसे लेख छाप दिए जो मैंने नहीं चुने थे। उन्हें मैंने मेरे चुने लेख भी निकाल दिए। पहले मैंने इस बात को कुछ महत्व पूर्ण नहीं समझा। पर जब मैंने ही प्रकाशित हुआ एक तूफान बड़ा हो गया। बेतान बन्धुओं ने कलकत्ते से मारवाड़ी बाजार को उकसाकर एक मुकदमा खड़ा कर दिया। उसी दौरान में श्री सहमल पर अठा भी फेंका गया और तभी मुझे ज्ञान हुआ कि मारवाड़ी बंक जैसे साधनों से बचाव डाल कर कुछ सामान्यित होने की भावना भी श्री सहमल में थी।^१

सहमल की कुछ भी भावना रही हो किन्तु यह स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन जी इस बंक द्वारा समाज-सुधार करना चाहते थे। आचार्य जी ने स्वयं लिखा था कि "उस समय का भारत राजनीतिक दशावस्था की बेड़ियों को काटने के साथ समाज रुढ़ि एवं परम्परा की सामाजिक दशावस्था के बन्धनों को भी काटने के लिए प्राथम्य से प्रयत्नशील था। मुझे अति निकट से मारवाड़ की दारना का उसके कल्याण का उसकी रुढ़िवादिता का अनुभव प्राप्त था। बन्धुदृष्टि और बन्धु मुक्ति वही मेरे दो हथियार थे और बन्धु बाणी मेरा गृहकार।"^२

आचार्य चतुरसेन जी ने 'मारवाड़ी बंक' के सम्बन्ध में जो संक्षिप्त प्रकाशित किया था वह बचकती हुई भाग उबलने वाले ज्वालका मुसी की तरह संतप्त

और उसकी पुलिस ने उस बंक को तुरन्त बन्द कर लिया। मात्र कान्टिकायरीयों के बीरतापूर्ण कारनामों के अति इतिहास के लिखने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है हिन्दी में अतका सुत्रपात आचार्य चतुरसेन जी ने इस बंक द्वारा उन दिनों कर दिया था जब उसकी चर्चा करना भी अपराध था।^३

साप्ताहिक हिन्दुस्तान २७ अप्रैल १९६० पृ १९।

१ साप्ताहिक आचार्य चतुरसेन रामरत्न तिलक सहमल पृ १५१।

२ "मारवाड़ी बंक"।

या ।" उसमें उन्होंने छः वाक्य समूहों में जनपतियों शारियों माताओं बटियों युवकों और पार्श्वियों को सम्बोधन करत हुए जो भाव प्रकट किए थे उनमें बाब भी उद्बोधन की बीसी ही शक्ति विद्यमान है । राजस्थान अथवा मारवाड़ की बीरभूमि का निरुद्बोधन और निरकुश दास्य उनक लिए असह्य था ।"

माताओं शारियों और बटियों के नाम उन्होंने लिखा था "तुम हमारे रास्त म हूट जाओ । हमें कबम-कदम पर नामर्ब हास्यास्पद और मूर्ख मठ बनाओ । हम अपने भाव्य से मुक्त करन बस हैं । हम रुड़ियों को कुपलकर "भुमधर्म" का अनुसरण करेगे । भिरे पीठे जी ऐसा न हाने पामया"—ऐसा निकम्मा राड़ा हमारे मार्ग में मठ अड़ाओ । हमें बीड़न दो । बह दलो—बह भयामक प्रवाह प्राचीन महासत्ताओं को कुचलता हुआ उठा और जिदो और भीने दो की तूझानी यर्मना करता हुआ बड़ा बला भा रहा है । तुम मूठे मोहबध हने रुड़ियों की दसरक में रखीयो तो तुम्हारे यरास्वी बंध का बीज नाश हो जाएगा । तुन अपन उमठ मना जायुत पतियों की सहममिपी बनो । पीर की जूती बनने क दिन गए । हाय कैसे तुम लुपी से कैंडी की तरह दिन काटती हो । क्या तुम्हें याद है कि तुम्हारी माताओं और शारियों ने स्वाधीनता क नाम पर बघकटी चिता पर अपने स्वर्न शरीर को राख कर दिया था ? तुन उस प्राचीन गौरव के नाम पर महाशक्ति का बघकार बनो । भूँदट को फाइ डालो —अपने पतियों को धर्मात्मा और त्यागी बनाओ ।"

इसी उदात्त भावना को लेकर उन्होंने "मारवाड़ी भंड" का सम्पादन किया था । किन्तु मारवाड़ी समाज में इसकी उन्दी ही प्रतिक्रिया हुई थी । इस भंड ने सारे मारवाड़ी समाज को झकझोर डाला था उसमें एक "भूवास-उपिता कम्पन और बबडर जैसा आन्दोलन" उठ खड़ा हुआ था । किन्तु उस समय आचार्य अनुसेन जी को इसकी क्विचित् माह भी चिन्ता न थी । उस समय की अपनी आन्ध्रियापी एवं बिरोधी भावनाओं क विषय में आचार्य अनुसेन जी ने स्वयं लिखा है "मैं दुनिया को करबट सेठे देख रहा था । इसलिए मैं अपनी साहित्य सेवा के उन दिनों में न बल्पना का सहाय लेता था न रखोल्क्य की परजाह करता था । मैं तो आम छात्रा था और आग ही उगमता था । उस आग में कहीं कौन जसता है, इसे देखने की मुझे फुरसत नहीं थी । मैं स्वर्द जस रहा था तो मैं

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान २७ अप्रैल १९६० पृ १९ ।

२ मारवाड़ी भंड—भूमिका ।

दूसरे के अगले पर कैसे तरस जा सकता था। मैं भारत के एक भी व्यक्ति की बातों को किसी भी रूप में सहन करने को तैयार न था। न राजनीतिक और न सामाजिक। मेरी कसम आम उगलने और बिय-बमन करने में दीली नहीं पड़ती थी।^१

वास्तव में आचार्य अत्रसेन जी के इस काम के सम्पूर्ण साहित्य में यही क्रांति की एवं सुधार की भावना व्याप्त रही। उनके केजस इन दो अंकों में ही ठहलका नहीं म्चाया बरन् इस काल के प्रकाशित उपन्नास 'हृदय की प्यास' एवं 'अमर अधिभाषा' ने भी सम्पूर्ण समाज एवं साहित्य बयत को एक बार झसकोर दिया था। दोनों ही "अंक" जस कर लिए गए थे और साहित्य के ठेकेदारों ने इनकी अन्य कृतियों को "बाससेटी-साहित्य" के अन्तर्गत घोपिठ कर दिया था। इस समय आचार्य अत्रसेन जी का चिकित्सक एवं साहित्यिक रूप दोनों एक साथ चल रहे थे। वास्तव में साहित्य में भी बहु समाज के चिकित्सक बनकर सम्मुख जा रहे थे।

चिन्तन—मनन फल

(सन् १८१४-१८४४)

आचार्य अत्रसेन जी का यह क्रांतिकारी एवं समाज सुधारक रूप अपने पूर्ण निवार पर था कि इसी समय उनके जीवन ने पुनः एक करवट बसली। दुर्भाग्य से जर्नकी दूसरी धर्मपत्नी प्रियम्बदा देवी जी का देहावसान भी सन् १८१४ में बोड़ी-सी बीमारी के बाव हो गया। द्वितीय पत्नी की मृत्यु से भी आचार्य अत्रसेन जी के मस्तिष्क पर नहरा प्रभाव पड़ा किन्तु इस बार वे और अधिक उष न हुए। उनकी सप्रता सनै सनै शान्त होती गई। इस बिय पर प्रस्तुत प्रबन्ध लेखक के प्रस करणे पर सन्होंने बठभाया था; "द्वितीय पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मेरी सप्रता मेरे हृदय में जा बैठी थी। उस समय भी मैं बीजना चाहता था कभी-कभी अपने प्राय पर जी बोसकर रोना चाहता था किन्तु मैं ऐसा कर न पाता था। उस समय मेरे हृदय से यही प्रतिध्वनि मुझे सुन पड़ती थी कि इन दुखों से सपकर इन बापातों को सहकर ही तुम अपने सस्य पर पहुँच पाओगे। मैं यह सब बिचारता था किन्तु कुछ सिखने की इच्छा न होती थी।

द्वितीय पत्नी की मृत्यु तक आचार्य अत्रसेन जी के कोई सन्तान न थी। अन्त परिवार बासों ने उनका तीसरा विवाह भी कर दिया। यह विवाह द्वितीय

पत्नी के बेहान्त व समझ १ वर्ष बाद बनारस के एक रईस ठा० रामकिशोर सिंह की मनुषी जानसेबी से सन् १९३१ में हुआ। इन्हीं जानसेबी के मान पर आचार्य अनुरसन जी व बतमान निवास म्यान का नाम "मान घाम" पड़ा है।

आचार्य अनुरसन जी न इस विवाह के परभाव से ही अपने चिकित्सा कार्य को त्याग दिया था। अब वे अपना पूर्ण समय मेखन कार्य में देने लगे थे किन्तु ठी भी कोई उत्कृष्ट रचना सामन न आ पाई थी। यही प्रश्न मैंने आचार्य अनुरसन जी से भी पूछा था। उन्होंने मेरे इस प्रश्न का उत्तर दत्त हुए मुझसे कहा था। "उम समय मैं चिन्तन अधिक करता था लिखता कम था। मैं दिन रात सोचता रहता कि अब क्या लिखूँ ? क्या मैं सामयिक साहित्य ही सक्रिय करता रहूँ ? किन्तु मेरी आत्मा यह करने की मनाही न दे रही थी। मैं कुछ ऐसी चीज देना चाहता था जो कुछ दिन टिक सके।" बाम्बू में इन दिनों उनके मस्तिष्क में एक नवीन प्रकार की विचारधारा पनप रही थी। इस विचारधारा की कुछ तसक सन् १९३० के उनके उस पत्र में देखी जा सकती है जो कि उन्होंने "उपन्यास अंक" के लिए "साहित्य सन्देश" के सम्पादक को लिखा था। "एक उपन्यासकार की हैसियत से मैं अपने को मगल्य समझता हूँ। मेरे चार-पाँच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि उनमें कद्यों के १६ संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु मरी अब एक ही अभिलाषा है कि मैं संसार का सबसेष्ठ उपन्यासकार हाकर मरूँ यद्यपि मुझे ही मेरी यह अभिलाषा हास्यास्पद-भी प्रतीत होती है पर मैं उस त्याग नहीं सकता।"

"दुर्भाग्य से मैं एक बहुधन्वी व्यक्ति हूँ और मेरी बतियाँ बहुत मात्राओं में बिबरी हुई हैं। यह भी दुर्भाग्य ही है कि मेरा स्वभाव आजीविका और व्यसन भी कुछ सामूहिक और साहित्यिक है। इससे मरी बारम्बार यह प्रतिज्ञा भंग होती रही कि मजिन्स में मैं सिर्फ उपन्यास ही लिखूँ और कुछ नहीं। भंग भी एसी कि और सब कुछ लिख पाता हूँ सिर्फ उपन्यास ही नहीं लिख पाता हूँ।" अपने इसी पत्र में उन्होंने सेष्ठ साहित्यकार की परिभाषा भी दी है। "साहित्यिक वह है जो महामानव है।" अन्त में उन्होंने अपने इसी पत्र में इस महामानव को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हुए लिखा है "मैं अपनी इस विचारधारा

-
- १ साहित्य सन्देश उपन्यास अंक, भाग ४ अंक २३ अक्टूबर १९४० पृ १४०।
 २ साहित्य सन्देश उपन्यास अंक भाग ४ अंक २३ अक्टूबर-नवम्बर १९४० पृ १७१। रोप इस विषय के विचार, अनुरसन के विचार और जीवन दगा-बासे अध्याय में आगे दिये गये हैं।

को क्रिया रूप में अपने जीवन में एकीभूत करने में प्रयत्नशील हूँ—मैं चाहता हूँ कि यह अपराध जारी नष्ट होने से पूर्व मैं बड़े महापद प्राप्त करूँ। और अपनी दुर्धर्म अमिताया में बिना संकोच आप पर प्रकट करता हूँ आप खुशी से मेरे इस दुस्ताह्व का मजाक उड़ा सकते हैं वैसे कि मेरी धर्मपत्नी अक्सर उड़ाया करती है।”^१

स्पष्ट है इन दिनों आचार्य चतुरसेन जी किसी उच्च कोटि के कथानक पर चिन्तन कर रहे थे। वास्तव में इन दिनों आचार्य जी 'बीघाली की नगर बधू' के कथानक पर पूर्ण तन्मयता से विचार कर रहे थे। यह कथानक सन् १९३५ से उनके मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था। इस विषय पर उन्होंने लिखा है “अम्बपाली पर उनकी एक कहानी प्रथम ही प्रकाशित हो चुकी थी। इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी उपन्यास और लेख मेरे देखने में आए और मेरे मस्तिष्क में अम्बपाली को लेकर एक उपन्यास लिखने की भावना बढ़ कर बैठी। परन्तु यह काम सहज न था। फिर भी मैं इसकी वास्तविक कठिनाइयों से ठीक-ठीक अभिन्न न था। मैं उत्सुक और उत्प्रेरित होकर बहुत दिन तक सोचता ही रहा। समझ ही में न आ रहा था—कहाँ से प्रारम्भ करूँ कैसे करूँ। सन् १९३८ के शरद में मुझे एक भीमन्त की चिकित्सा में बिहार जाना पड़ा। वे मुझे हठ करके राजगृह ले गए। यहीं राजगृह से उन्हें 'नगरबधू' के कथानक की प्रेरणा प्राप्त हुई। यहीं उन्होंने एक रात्रि को देवी अम्बपाली का अपाधिब मृत्यु देखा था।”^२ बस इसी घटना के बाद से उन्होंने 'नगरबधू' का लिखना प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु बड़ी ही धीमी गति से। आचार्य चतुरसेन जी ने स्वयं लिखा है “चोड़े ही दिन में मेरा यह सम्पादन समाप्त हो गया और फिर एक दो वर्षों की भी इन कामों को देखा ही नहीं। इसी बीच एक बार अहमदाबाद जाना हुआ। वहाँ नुर्रुन बापा के भागिन कथा-लेखक यी बूमकेतु से मिलने गया। उन्होंने अपनी कहानियों का एक छोटा सा संग्रह दिया। उसमें एक कहानी अम्बपाली से सम्बन्धित भी थी। उसे पढ़ते ही पुराना उम्माव रोग फिर उभर आया और इस बार पर लौट कर मैं इस उपन्यास में जुट गया।..... १९४२ के जून में उपन्यास तैयार हो गया।”^३ किन्तु इस काल में आचार्य जी की यह रचना

१ साहित्य सम्मेलन उपन्यास अंक भाग ४ अंक २ ३ अक्टूबर १९४० पृ. १७५।

२ बीघाली की नगरबधू—आचार्य चतुरसेन—दृष्टि पृ. ७७९, ७८०।

३ बीघाली की नगरबधू—आचार्य चतुरसेन—दृष्टि पृ. ७८०।

निकल न सकी। यदि निकल गई होती तो बहुत सम्भव था कि इसी समय से उनके साहित्यिक जीवन का उत्कर्ष कास प्रारम्भ हो जाता। आचार्य जगन्नाथ जी ने स्वयं लिखा है '४२ के पून में उपन्यास तैयार हो गया। अगस्त में बन अगान्ति हुई। उसी समय बां बूट मिर्चों ने मेरा साहित्य प्राप्त करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उस अगान्ति में वे मुझे अपने संरक्षण में ले गए और भाग्यशेष से मुझे उनका उपहृत होना पड़ा। इसी समय मेरे इन हिंदी मिर्चों ने इस उपन्यास की पूर्णरूपि के उपलक्ष में एक भव्य समारोह का आयोजन कर डाला। इसी समय पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में कुछ भय के कारण उत्पन्न हो गए और मैंने उसे लोगों को दिखाना तथा उसके सम्बन्ध में बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। परन्तु एक दिन अचानक पा ठाका ठोड़ कर बाँटों ने पाण्डुलिपि पुरा ली।"^१

इसके पश्चात् तो आचार्य जगन्नाथ जी की सम्पूर्ण चेतना शक्ति एवं क्रिया शक्ति समाप्त ही हो गई थी। उन्होंने स्वयं लिखा है 'बहुत पर फड़फड़ाए पर सब व्यर्थ। बिना जैसे इलाहाबाद से प्रियजन का विसर्जन करके कोई छोट जाता है उसी भाँति इन मंत्र मिर्चों को नमस्कार कर उनके संरक्षण का आभार मान कर छोट आया। और दो बर्य मैंने हस्ताक्षर करने के लिए भी ठेकनी नहीं छुई। सब काम बन्द कर दिए। लोगों से मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों में मैंने यह अनुभव किया कि मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद मौजूबत गई है परन्तु वह रक्त न निकलकर शरीर के भीतर ही जमकर काट रही है। बाहर नहीं निकल पाती शक्तों ने समझा मेरी साहित्यिक मृत्यु हो गई।"^२

अभी इस विपत्ति का बाब भर भी न पाया था कि आचार्य जगन्नाथ जी पर एक और विपत्ति टूट पड़ी। दैव दुर्घटना से आचार्य जगन्नाथ जी की तीसरी पत्नी भीमती का निधन भी उन्हें इस विपत्ति अवस्था में और भी विपत्ति करके दिसम्बर सन् १९४४ में अकस्मात् बल बसी। इस दुःखरे आघात को वह सहन न कर पाए और उनकी बधा अर्धबिभ्रित्त जैसी हो गई थी। उनकी वर्तमान पत्नी कमलाकिशोरी जी ने लिखा है 'मेरी पूज्या बहन के स्वर्गवास के बाद उनकी अवस्था अर्धबिभ्रित्त जैसी हो गई थी। यह देखकर मेरी माता जी ने उनसे मेरे विवाह का प्रस्ताव किया। मुनकर उनको विचित्र लगा। मुझ भी ऐसा प्रतीत

१ बीहारी की नगरबधू, आचार्य जगन्नाथ जी मुद्रि पृ ७८१।

२ बीहारी की नगरबधू आचार्य जगन्नाथ जी मुद्रि पृ १८१।

हुआ जैसे मर्म छीछा मेरे कान मे डाल दिया गया हो। रिस्तेदारों से जब इस विषय में सलाह ली गई तब सभी ने इसका विरोध किया। ऐसे ही काफी समय बीत गया। इस बीच इनके कई सुम बिल्लक मित्र बन्धे रिस्ते लेकर आए लेकिन इन्होंने सबको बही उत्तर दिया कि मेरा जीवन तो समाप्त हो गया जब मैं विवाह करने की स्थिति में नहीं हूँ। इसी संवर्ष मे सारा गुजर गया। इनकी खबस्ता सुबरती ही नहीं थी। एक दिन पड़े-पड़े मेरी आत्मा से आवाज आई कि ठेठे-बैसी लड़कियाँ रोज रोज कौड़ों-मकौड़ों बैसी पैसा होती हैं और मर जाती हैं तेरे जीवन का क्या मूल्य। पर, ऐसे पुरुष रोज-रोज नहीं पैसा होते उनके जीवन की रक्षा कर। मैंने माताजी से कहा। उन्होंने उन्हें राखी करके मेरा उनसे विवाह कर दिया। काफी दिनों बाद उनमें नये जीवन का संचार हुआ।”^१

इस प्रकार आचार्य चतुरसेन जी का चौथा विवाह जून १९४३ में हुआ। आचार्य चतुरसेन जीकी यह पत्नी उनकी तीसरी पत्नी की छोटी बहन है।

साहित्यिक-उत्कर्ष-काल

(सन् १८४३-१८६०)

इस वर्ष कोर विपत्तियों एवं कठिनाइयों का सामना करने के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी के जीवन में उनके चौथे विवाह के पश्चात् पुन स्थिरता आई। धर्म धर्म उनके धरीर में पुन नवीन जीवनी शक्ति का संचार हुआ। “काल पाकर विरह्य-हृदय की पसल कम हुई, भाव पुरे भावना अंकुरित हुई। और उन्होंने (दुःसाहस करके) दुबाय नए सिरे से ‘बैसाली की नगर बम्’ किमता प्रारम्भ किया। ‘आचार्य चतुरसेन जी ने इस विषय में लिखा है’ प्रारम्भ में मुझे यह असाध्य प्रतीत हुआ। परन्तु बही मुक नक्षत्र के समान उज्ज्वल आँखे मेरे साम थीं। उस दिन जैसे मैंने कहा था—‘नाचो’ उसी भाँति वह आँखें वह रही थी ‘लिखो’? मैंने एक बार कहा था पर वे आँखें हर बार कहती थी। फिर लिखता कैसे नहीं। अन्ततः मेरी जड़ता दूर हुई। मैंने नए उत्साह से पुरानी कृतियों को यथाशक्ति दूर करते हुए उपन्यास का पुनर्लेखन प्रारम्भ किया।^२ इस बार लिखने से पूर्व उन्होंने अपने विषय पर अधिक से अधिक अध्ययन भी

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान चतुरसेन अज्ञातलि अंक, १७ अप्रैल सन् १९६० पृ ४

२ बैसाली की नगर बम् आचार्य चतुरसेन सुमि पृ ७८१।

कर वाला था। इस प्रकार इस काठ की उतकी प्रथम रचना "बैंगाली की नगर-बधू" सन् १९४८ में प्रकाशित हो सकी। इसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्होंने अपनी बालीय बयों की सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा को इस रचना पर स्योछावर कर दिया था।^१

इस उपन्यास पर उन्होंने केवल अपनी पूर्वाभिष्ट सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा का ही स्योछावर नहीं किया था बल्कि तभी से उन्होंने अपनी बैद्यक की प्रैक्लिश को भी पूर्णरूप से त्याग दिया था। किन्तु केवल लेखनी के बल पर निर्भर रहने के कारण उन्हें कितने ही आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ा था। इसीकिये "बैंगाली की नगरबधू" के दूसरे संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा था 'प्रथम संस्करण छपने पर, अब मैंने अपनी पूर्वाभिष्ट सम्पूर्ण साहित्य-सम्पदा का स्योछावर कर दिया था तभी मैंने प्रैक्लिश भी छोड़ दी थी। सोचा था—इस उपन्यास के लेखक को अब पेट की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु मरी जाया फयवती नहीं हुई। फिर भी मैंने अपनी धोर नहीं देखा कायकमेग को तप की पुतामि में होम दिया। तब देवता के दो बरदान पाए— 'सोमनाय' और 'बयं रक्षाम'। मेरे नेत्र गए, स्वाम्य गया जीवन की सध्या को अंधकार न धर किया। पर मैं बाट में नहीं रहा दो-दो बरों से सम्पन्न होकर।'^२

१ इस विषय में आचार्य चतुरसेन जी ने "बधू" की भूमिका में लिखा है 'अपने जीवन के पूर्वाष्ट में सन् १९०९ में जब जाम्य बयों से मरी पैलियां मेरे हाथों पकड़ना चाहता था। मैंने कतम पकड़ी। इस बात को आज ४० बय बीन रहे हैं। इस बीष मैंने छोड़ी-बड़ी लगभग ८४ पुस्तकें विविध विषयों पर लिखीं, अमथ बत हजार से अधिक बूळ विविध सामयिक पत्रिकाओं में लिखे। इन साहित्य साधना से मैंने पाया कुछ नहीं, खोया बहुत कुछ। कहना चाहिए तब कुछ। बन बीमब, आराम और शान्ति। इतना ही नहीं सोचन और सम्मान भी। इतना पुस्तक बुकाकर, निरन्तर बालीय बयों की अत्रित इस सम्पूर्ण साहित्य-सम्पदा को मैं अपनी प्रसन्नता से रद्द करता हूँ और यह घोषणा करता हूँ कि मैं अपनी यह पट्टी इति विनयोवति संहित आपकी भेंट कर रहा हूँ।'

बैंगाली की नगर बधू आचार्य चतुरसेन प्रबचन पृ ३।

२ बैंगाली की नगर बधू-भूमिका-दूसरे संस्करण का पृ ६।

किन्तु पैसों की तंगी के कारण उन्हें कभी-कभी अत्यन्त साधारण चीजें भी लिखनी पड़ी थीं। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक न उनकी ऐसी ही एक ही साधारण पुस्तकें देखकर कुछ मय निश्चित स्वर में उनसे कहा भी था 'इन छोटी-छोटी पुस्तकों में आप क्यों अपना अमूल्य समय व्यर्थ फेंक रहे हैं। इससे न प्रतिष्ठा ही बढ़ती है और न ही आपके मन को संतोष होता होगा ? मैंने पूछने को यह प्रश्न पूछ तो जाना था किन्तु उस समय मैं आवश्यकता से अधिक भयभीत था किन्तु मेरी आवाज ने बिपरीत उन्होंने हँसते हुए इसका उत्तर दिया था 'मुझे यह छोटी-छोटी व्यर्थ की रचनाएँ लिखकर सुख नहीं होता बल्कि कुछ ही होता है। मेरे आत्म सम्मान को गहरा आघात बनता है किन्तु कर क्या ? पैट की चिन्ता भी तो करनी पड़ती है। मुझे अपनी तो चिन्ता नहीं किन्तु गृहस्त्री को पास रखी है उसे मैं भूला मरते नहीं देख सकता और इसी कारण सं मैं यह सब कुछ निस्संकोच लिख जाता हूँ। उस समय मुझे लगा कि वास्तव में हिन्दी के साहित्यकार की आज कैसी बिपन्न स्थिति है। यदि वह केवल लेखी चीज लिखता है तो उसे बन नहीं सकता उनके पाठक ही कितने हैं ? किन्तु जब बूझों मरने लगता है और पैट पालने के लिए एक-दो साधारण रचनाएँ ही प्रकाश में बसीट देता है तो आश्चर्यकर्म क्या केवल उन्हें ही ले उड़ता है। सभी उत्कृष्ट रचनाओं को वह उस समय भूल जाता है।

साचार्य अनुरासेन जी की पत्नी की निम्नपरिस्थितियों से मेरी यह बात और स्पष्ट हो जायेगी 'कभी-कभी ऐसे बबलर आए कि घर में दौरे नहीं रहे और सब अवह प्रयत्न करने पर भी रूप नहीं मिले। तब हमारी भाषा के बिपरीत वह अपनी हृति को जिस वह लिख रहे होते मेज पर एक ओर को सरका देते और कोई नई छोटी चीज लिखना शुरू कर देते। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 'धर्मपुत्र' 'आजकल' अथवा और किसी मासिक पत्र के लिए लेख लिख जाते या छोटा-मोटा उपन्यास ४५ दिन में तैयार कर जाते और राजपत्र एण्ड सन्स अथवा चौधरी एण्ड सन्स से उसका तुरन्त रुपया मंजबा करते। इन दोनों ही प्रकाशकों की उनके प्रति बढ़त घटा भी।'

इसमें स्पष्ट हो जाता है कि उनकी आर्थिक-स्थिति प्रेरित रूपान्ते के बाद से घराब ही होती गई थी। उनकी स्वयं की अजित समूची सम्पत्ति को सन् १९४७ के अमुना-प्रवाह में मट कर दिया था। इस अमुना-प्रवाह में उनका

पर १५ दिन तक ९ फुट पानी में डूबा रखा था। किन्तु इतने से ही छूटकारा नहीं हुआ। आधिक-रथा अभी संभव भी न पाई थी कि उन्हें सन् १९१० की मई के अन्तिम सप्ताह में एक भयंकर बीमारी ने आ घेरा। आचार्य चतुरसेन जी की वर्तमान पत्नी ने इस बीमारी का विस्तृत वर्णन किया है।^१

अन्त में उन्होंने लिखा है विपत्तियाँ और भी दूरी। परन्तु अन्ततः इनके जीवन की रक्षा हो गई। जीवन रक्षा का श्रेय न चिकित्सा को न औषधि को न हमारी सबक सेवा को। प्राणरक्षा हुई इनके अपने बटूट आत्मबल से। अभी इनके हाथों 'सोमनाथ और 'वयं रक्षाम' जैसे साहित्य जन का अर्जन होना था। और भी कुछ होना वाला था।^२

इस बीमारी से उठने के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी ने पूर्ण ठामना से कितना प्रारम्भ कर दिया। 'सोमनाथ' पूर्ण किया 'वयं रक्षाम' भी पूर्ण हुआ। उनका कहना था कि 'मेरे स्वास्थ्य को मेरे उपप्यास' 'वयं रक्षाम' ने के लिया है।^३ स्वास्थ्य सदाब हो जाने के पश्चात् भी उनकी सेजनी रुकी न थी। इसके पश्चात् भी उन्होंने लगभग तीस ग्रंथों की रचना की थी—'त्रिनमें योभी' 'भारतीय संस्कृति का इतिहास', 'सोना और खून' के दो खण्ड एवं 'सदास' ऐसी प्रमुख कृतियाँ भी हैं।

जब प्रस्तुत प्रथम का सेसक उनके समीप प्रथम बार गया था तो भी उनका स्वास्थ्य विशेष उत्तम न था। इस विषय में प्रस्तुत प्रथम के सेसक ने उनसे प्रथम बार मिलने पर जो जिज्ञासा थी उसका यही देना अनुपपुक्त न होगा। मैं जिस कमरे में रुका था उसी के समीप आचार्य चतुरसेन जी का अध्ययन बस था। रात्रि में मेरी जिस समय भी नींद खुसती थी मैं उन्हें लिखते ही देखता था। यही देखकर मैंने उनसे प्रश्न किया था 'आप इस अवस्था में भी तो इतना कार्य करते हैं कि मैं तो बेकरार दग रह गया हूँ'।

मेरे इस प्रश्न का उत्तर आचार्य चतुरसेन जी न हँसते हुए दिया था 'भाई, मुझमें ज़ाही पड़े रहा ही नहीं जाता। बुझापे में नींद तो कम आती ही है ज़ाही पड़े रह नहीं सकता। तब फिर क्या करूँ? लिखने ही बैठ जाता

१ चतुरसेन—वैमासिक प्रथम अंक, १०-११।

२ चतुरसेन—वैमासिक, प्रथम अंक, १०-११।

३ आचार्य चतुरसेन—स्वास्थ्य और विचार, शुभकारनाथ कपुर धर्मपुत्र ९ अगस्त, १९१९ पृ. ८।

किन्तु पैसों की तंगी के कारण उन्हें कभी-कभी अत्यन्त साधारण चीजें भी लिखनी पड़ी थीं। प्रस्तुत प्रबन्ध के रचक ने उनकी ऐसी ही एक-दो साधारण पुस्तकें देखकर कुछ मय विभ्रित स्वर में उनसे कहा था 'इन छोटी-छोटी पुस्तकों में आप क्यों अपना अमूल्य समय व्यर्थ फेंक रहे हैं। इससे न प्रतिष्ठा ही बढ़ती है और न ही आपके मन को सतोंव होता होगा ? मैंने पूछने को यह प्रश्न पूछ तो डाला था किन्तु उस समय मैं आवश्यकता से अधिक भयभीत था किन्तु मेरी आत्मा के विपरीत उन्होंने इससे हुए इसका उत्तर दिया था 'मुझे यह छोटी-छोटी व्यर्थ भी रचनाएँ लिखकर सुख नहीं होता बल्कि दुःख ही होता है। मेरे आराम सम्मान को गहरा आघात लगाता है किन्तु कर्म क्या ? पेट की चिन्ता भी तो करनी पड़ती है। मुझे अपनी तो चिन्ता नहीं किन्तु गृहस्त्री को पास रखी है उसे मैं भूखों मरते नहीं देख सकता और इसी कारण से मैं यह सब कुछ निस्संकोच लिख डालता हूँ। उस समय मुझे लगा कि वास्तव में हिन्दी के साहित्यकार की आज कैसी विपन्न स्थिति है। यदि वह केवल अंधी चीज लिखता है तो उसे बन नहीं मिळता उनके पाठक ही किन्तु हैं ? किन्तु जब भूखों मरने लगता है और पेट पाकने के लिए एक-दो साधारण रचनाएँ धीम्रता में घसीट देता है तो आलोचक बर्ष केवल उन्हें ही ले चढ़ता है। सभी उत्कृष्ट रचनाओं को वह उस समय भूख जाता है।

आचार्य चतुरसेन जी की पत्नी की निम्नपरिस्थितियों से मेरी यह बात और स्पष्ट हो जायेगी 'कभी-कभी ऐसे अवसर आए कि घर में पैस नहीं रहे और सब जगह प्रयत्न करने पर भी स्पष्ट नहीं मिले। तब हमारी भाषा के विपरीत वह अपनी कृति को जिसे वह लिख रहे होते मेज पर एक ओर को सरका देते और कोई नई छोटी चीज लिखना शुरू कर देते। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 'धर्मयुग' 'आजकल' अपना और किसी मासिक पत्र के लिए लेख लिख डालते या छोटा-मोटा उपन्यास ४५ दिन में तैयार कर डालते और राजपाल एण्ड सन्स अपना चौधरी एण्ड सन्स से उसका तुरन्त रुपया मंषवा लेते। इन बातों ही प्रकाशकों की उनके प्रति बढ़त बढ़ा थी।'

इसमें स्पष्ट हो जाता है कि उनकी आर्थिक-स्थिति प्रेरितस त्यागने के बाद से घराब ही हाडी गई थी। उनकी स्वयं की अति सभुषी सम्पत्ति को सन् १९४७ के जमुना-प्रवाह ने गण कर दिया था। इस जमुना प्रवाह में उनका

पर १२ दिन तक ९ फुट पानी में डूबा रखा था। किन्तु इतने से ही छूटकारा नहीं हुआ। आधिक-बराबरी अभी संभव भी न पाई थी कि उन्हें सन् १९२० की मर्दान्ता के अन्तिम सप्ताह में एक भयंकर बीमारी ने आघात किया। आचार्य चतुरसेन जी की वर्तमान पत्नी ने इस बीमारी का विस्तृत वर्णन किया है।^१

अपने सन्तानों की शिक्षा और विपत्तियों और भी दूरी। परन्तु अन्ततः इनके जीवन की रक्षा हो गई। जीवन रक्षा का भय न चिकित्सा को न औषधि को न हमारी अथवा सेवा को। प्राणरक्षा हुई इनके अपने अटूट आत्मबल से। अभी इनके हाथों 'सोमनाम' और 'वयं रक्षाम' जैसे साहित्यिक ग्रन्थों का वर्णन होना था। और भी कुछ हाते बाला था।^२

इस बीमारी से उठने के पश्चात् आचार्य चतुरसेन जी ने पूर्ण तन्मयता से लिखना प्रारम्भ कर दिया। 'सोमनाम' पूर्ण किया 'वयं रक्षाम' भी पूर्ण हुआ। उनका कहना था कि 'मेरे स्वास्थ्य को मेरे उपन्यास' 'वयं रक्षाम' ने सँभाला है।^३ स्वास्थ्य बरबाद हो जाने के पश्चात् भी उनकी लेखनी रुकी नहीं थी। इसके पश्चात् भी उन्होंने लगभग छह प्रथा की रचना की थी—जिनमें 'योषी' 'माखण्ड संस्कृति का इतिहास', 'सोना और लून' के दो सख्त एवं 'अपराध' ऐसी प्रमुख कृतियाँ भी हैं।

जब प्रस्तुत प्रबंध का लेखक उनके समीप प्रथम बार गया था तो भी उनका स्वास्थ्य विशेष उत्तम न था। इस विषय में प्रस्तुत प्रबंध के लेखक ने उनसे प्रथम बार मिलने पर जो लिखा था उसका यहाँ देना अनुपपुक्त न होगा। मैं जिस कमरे में रहा था उसी के समीप आचार्य चतुरसेन जी का अध्ययन कक्ष था। रात्रि में मेरी जिस समय भी नींद खुलती थी उन्हें लिखते ही देखता था। यही देखकर मैंने उनसे प्रश्न किया था 'आप इस अवस्था में भी तो इतना कार्य करते हैं कि मैं तो देखकर वंदन रह गया हूँ।

मेरे इस प्रश्न का उत्तर आचार्य चतुरसेन जी ने हँसते हुए दिया था 'हाँ, मुझमें खाड़ी पड़े रहा ही नहीं जाता। बुझाप में नींद तो कम आती ही है खाली पड़े रह नहीं सकता। तब फिर क्या करूँ? लिखन ही बैठ जाता

१ चतुरसेन—वैमासिक प्रथम अंक, १८-१९।

२ चतुरसेन—वैमासिक, प्रथम अंक, १८-१९।

३ आचार्य चतुरसेन—व्यक्तिगत और विचार, शुभकारनाथ कपुर धर्मपुर ९ अगस्त १९२९ पृ ६।

हूँ। उन्होंने कुछ स्तंभक फिर कहा था 'सत्य तो यह है कि मैं बिना काम किये रह ही नहीं सकता। लिखते समय अपने रोग शोक सभी को मूल बनाता हूँ।'^१

मुझे स्मरण है कि आचार्य चतुरसेन जी अपने अन्तिम वर्षों में पंद्रह पंद्रह बटि तक बराबर लिखते या पढ़ते रहते थे। एक बार प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक से उन्होंने कहा था 'मेरे पास लिखने को बहुत कुछ है। सब कुछ लिख भी जानना चाहता हूँ किन्तु समय बड़ी तेजी से भाग रहा है। मैं आश्चर्य मिसने में जक नहीं रहा हूँ बल्कि डीढ़ रहा हूँ किन्तु समय मुझसे भी तेज भाग रहा है। मुझे अब कुछ ऐसा लगने लगा है कि मैं इधर एक ही वर्षों में जो कुछ दे सका बही दे पाऊँगा। शेष को अपने साध लिए जका बाँटूँगा।

आचार्य चतुरसेन जी ने बड़ी शीघ्रता से यह बातें कह डाली थीं। आचार्य जी के स्वास्थ्य को देखकर प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने उनसे अपने हृदय की बात कही थी 'आपके स्वास्थ्य को देखकर मैं तो समझता हूँ कि कम से कम पंद्रह वर्ष आप साहित्य सेवा और कर सकेंगे।

आचार्य चतुरसेन जी हँसे थे। उन्होंने कहा था 'किन्तु मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। रहा स्वास्थ्य का प्रश्न ? उसे तो मैंने बड़े साज सँवार कर रखा है। केवल इस कारण से कि अन्त समय तक मैं कर्मरत रहूँ बिचट्टू नहीं। मेरी केवल मांग यही इच्छा है कि जिस लेखनी ने जीवन पर्यन्त मेरा साथ नहीं छोड़ा है वह अन्त तक मेरा साथ देती रहे' इतना कहकर आचार्य चतुरसेन जी चुलकुर हँसे थे।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने विषय परिवर्तित करने के लिए दूधरा प्रश्न किया था आपका 'सोना और लून' उपन्यास कब तक समाप्त हो रहा है।

'मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि मैं उसे समाप्त कर पाऊँगा कारण उसे पचास तर्कों और दस भागों में समाप्त करने की योजना है। यद्यपि मेरी इच्छा यही है कि मैं उसे समाप्त करके बाँटूँ, किन्तु -- 'आचार्य चतुरसेन जी कुछ दके पुनः उन्होंने कहा था 'काश ! मैं इसके अन्तिम सर्गों को लिख सकता। कारण इस लंबे का मेरा जीवन स्वयं प्रत्यक्ष दृष्टा रहा है। मैंने

१ आचार्य चतुरसेन—व्यक्तित्व और विचार, सुमहाराज्य कपूर चर्मपुत्र ९ अगस्त १९२९ पृ. ३।

बहोदर रहकर आधी घटावनी तक समूचे बिद्वज पर तजर रखी है। और अब तक मैंने जो कुछ देखा और जाना है उसे मैं अपनी इस कलम से इस उपम्यास के अन्तिम सर्गों में कलमबद्ध करना चाहता हूँ जो आधी घटावनी से बराबर बसनी जा रही है। किन्तु काल ने उनकी यह इच्छा पूर्ण न होने दी।

एक दिन प्रातःकाल जब प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक आचार्य बनुरसेन जी के साथ बैठा चाय पी रहा था तब उसने उनसे एक और प्रश्न किया था 'आपकी श्रेष्ठतम कृति कौन सी है? आचार्य जी ने चाय की चुम्की समाप्त करते हुए उत्तर दिया था 'किन्तु यह प्रश्न तो मेरे जीवन की समाप्ति के बाद उठेया' फिर कुछ रुक कर उन्होंने कुछ प्रसन्न मुद्रा में कहा था 'बैसे यदि मैं लिख सका तो 'आर्य सामन्त' मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति होगी' इतना कहकर उन्होंने प्रकाश अपने भतीजे को आवाज दी थी। जाने पर उन्होंने उससे 'एटलस' आने को कहा था। 'एटलस' लेकर उन्होंने 'यूनान' और भारत के मानचित्रों को दिखटाते हुए 'आर्य सामन्त' के कथानक को बतलाना प्रारम्भ किया था। संक्षिप्त कथानक को बतलाने के पश्चात् उन्होंने सामन्त के समय की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए कहा था 'सामन्त पृथ्वी भारत की महापुरुष या त्रिसुत कानून को आधिपत्य और राजनीतिक रूप दिया और जीवन को धर्म से पूज्य करने का प्रथम प्रयास किया। जबकि उसक पूर्व की हिन्दू स्मृतियों ने धर्म और कानून शास्त्र को एक संयुक्त रूप दे रखा था। इतना ही नहीं यह उसकी गति थी कि उसने बिना ही अस्वमेध यज्ञ के चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट घोषित कर दिया जब कि इसक पूर्व भारत की यह परम्परा थी कि केवल बही अश्वमेधी सम्राट समझा जाता था जो अस्वमेध यज्ञ सम्पन्न करे।' इसके साथ कुछ अन्य परिस्थितियों का चित्रण करते हुए उन्होंने कहा था 'मैं इसी सब महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों को अपने उपम्यास "आर्य सामन्त" में चित्रित करना चाहता हूँ' कुछ रुकने के पश्चात् आचार्य बनुरसेन जी ने पुनः कुछ गम्भीरता के साथ कहा था "किन्तु मुझे कुछ ऐसा भास होता है कि मैं अपने इस उपम्यास को पूर्ण न कर सकूँगा। इसके लिए कम से कम तीन-चार वर्षों का समय चाहिए जो सम्भवतः मेरे समीप अब नहीं है।"

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने बीच में ही बात काटते हुए उनसे कहा था 'जान अभी से यह सब क्यों बिचारते हैं। निश्चित रूप से आप गतायु हैं। आचार्य जी मुझकर ईम पढ़े थे। उन्होंने ईमते हुए ही कहा था 'तुम्हारे मुँह में धी-जपकर। किन्तु मैं अब अपने जीवन के सपथ सघी प्रधान काम पूर्ण

कर चुका हूँ। समय भी मुझे अब तेजी से भागता हुआ लगता है। इसके पूर्व मुझे ऐसा कभी बात नहीं होता था। और' इस बात को उन्होंने बीच में ही छोड़कर विषय परिवर्तित करते हुए हँसते हुए कहा था 'अरे भई! हम बुद्धों की बिदा क्यों करता है। अब तो तुम मन्मथुवकों को हम सबका भार उठाने को तैयार हो जाना चाहिए। हम लोगों की किसी पिटी सेखनी से तुम लोगों की सेखनी में अधिक शक्ति होनी चाहिए।

"सौह सेखनी की-सी शक्ति और सामर्थ्य हम लोगों में कहाँ से जा पावेगी?"

"क्यों? अब ही तो कार्य करने का वास्तविक समय है। साहित्य भवन का गिज्ञान्यास हम लोगों ने कर दिया है। उसकी नींव भी पुक़्ता बना दी है। अब उस पर मध्य भवन का निर्माण तुम ठपनों को करना है। किन्तु स्मरण रखना इस भवन का निर्माण साधकों के हाथों से होगा विनासियों एवं मोभियों के हाथों से नहीं।" किञ्चित् गम्भीर स्वर में कुछ रुककर उन्होंने पुनः कहा था 'और तुम लोगों से तो हमने कितनी ही आशाएँ बना रखी हैं। इसके पश्चात् चाय का प्यासा भीखे रखते हुए एवं उठकर प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के कंधे पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा था—'किन्तु यह आशा अभी पूर्ण होयी जब तुम लोग पूर्ण तन्मयता से जुगुधे। मैं समझता हूँ कि निकट भविष्य में तुम लोगों को अपनी व्यापिक कठिनाइयों नहीं सहन करनी पड़ेगी। बितनी हम लोगों को सहन करनी पड़ेगी। स्वभावतः यदि ऐसी स्थिति हो गई तो तुम लोग निश्चिन्त होकर साहित्य सेवा कर सकते।"

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को ठीक प्रकार से स्मरण है। वही उनका अंतिम वाक्य था। उससे आचार्य चतुरसेन जी की यही अंतिम साहित्य चर्चा थी।^१ सम्भवतः जीवन में भी अंतिम। इसके पश्चात् वह उसी दिन मधनऊ बापस मौन आया था। जबकी बार जब उनके निवास स्थान पर वह गया था तो उनकी मृत्यु की सूचना पाकर। अब वह वहाँ पर नहीं थे—जा चुके थे सभी को बिनागरे हुए छोड़कर।

अन्तिम समय और मृत्यु

यह प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक का दुर्भाग्य ही था कि वह उनका अंतिम

१ अब तीसरी बार प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक आचार्य चतुरसेन जी की मतीजी से बिबाह में गया था। सभी उनसे यह चर्चा-लाप हुआ था।

समय में पहुँच न सका था। वास्तव में उनकी मृत्यु इतनी आकस्मिक हुई थी कि मृत्यु के दिन तक भी कोई इसका अनुमान न कर सका था। मृत्यु की सूचना पाते ही मैं तदाबरा पहुँच गया था। मृत्यु का सबसे प्रथम विवरण मैंने आचार्य चतुरसेन जी के अनुज श्री चन्द्रसेन जी के मुख से सुना था। अनन्तर इस विषय से सम्बन्धित कई लेख प्रकाशित भी हुए थे। आचार्य चतुरसेन जी की वर्तमान पत्नी ने इस विषय का वर्णन करते हुए लिखा है 'अभी दक्षिण यात्रा से लौटने पर (दस जनवरी को हम लोम आए थे) १२ जनवरी को वह पसंय पर बैठे हुए प्रकाशन समाचार के पेज पकट रहे थे। मैं आई तो मुझे देखते ही पत्रिका उन्हीं नीचे डाल दी। मैंने उसे उठा लिया। उसमें बहुत से प्रकाशकों के पत्र छपे थे और जिनमें जितना ही दोष था उसने उतना ही अपने को निर्दोष बताने की कोशिश की थी। पढ़कर मेरे मन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा और मैं बिस्तर पर लेट गई। घाम को भी मुझसे उठा नहीं गया। वह स्वयं रसोई घर में गए और चन्द्रसेन जी और उनके बच्चों की सहायता से उन्हीं जूब बीजे बनाई और मेरे पास प्लेटों में सजा कर मेरी पर मैंने मीद ही में मना कर दिया। फिर स्वयं आए और मुझे जमा कर लिया। मुझे क्या पता था कि ईश्वर मुझे यह अंतिम सौभाग्य प्रदान कर रहा है। १३ जनवरी की रात को ही तो उनको वेबाब बंद हुआ और १४ को वह इतिम अस्पताल चले गए। फिर मैं उन्हें बापस लाई कहीं! २० दिन बाद निगम बोध घाट पर एक चिता में स्वयं की सीढ़ी चढ़ा आई। मुझ पर ऐसा अल्पपात हुआ, जिसकी अभी कल्पना भी नहीं थी।'

इतिम अस्पताल में आचार्य चतुरसेन जी से अंतिम समय में श्री मम्मबनाथ पुष्ट मिले थे। उन्होंने इस अंतिम मेंट का वर्णन करते हुए अपने लेख 'बाई नम्बर तीन विस्तर नम्बर बाईस' में लिखा है 'मैं उनसे चिट्ठी ही बार मिला पर जब जब कि उनका नखर नरीर मट्ट हो चुका है (यहाँ पाठकों को याद दिलाई जाए कि वह मनीस्वरवासी थे) मेरी मन की बाँधों के सम्मुख केवल वह बुझ आ रहा है जब मैं उनसे अंतिम बार इतिम अस्पताल के सजिकस बाई नम्बर तीन और विस्तर नम्बर बाईस पर मिला।' '.....मैं तो यह समझता हूँ कि आचार्य चतुरसेन जी ऐसे महान् केबक को एक अनाप रोगी की भाँति जनरल बाई में भरी होना पड़े। हिंदी के पाठकों के लिए इससे बढ़कर म्यानि की बात और कुछ नहीं हो सकती।' '.....इस सम्बन्ध में यह स्मरण रहे कि आचार्य

चतुरसेन केसब आसोचकों के अनुसार एक महान् मेखक ही नहीं वे बल्कि बनता ने उन्हें अपनाया था और प्रेमचन्द के पश्चात् यदि किसी के उपन्यास अधिक से अधिक बिकते थे तो उन्हीं के बिकते थे। फिर भी उनकी यह हासत थी कि वह नर्सिंग होम में रहकर बहुमूल्य चिकित्सा नहीं करा सकते थे।”

‘जब मैं अपने साथी श्री बगबीर योगल ने साथ उनके पास पहुँचा तब स्वाभाविक रूप से पहली बात बाईं के सम्बन्ध में छिड़ी तो आचार्य चतुरसेन भी ने मुझे बतलाया कि मैं दो हजार का खर्च था इसलिए उन्होंने जतरण बाईं में रहना स्वीकार किया। जब वह वहाँ थे ही तो स्वाभाविक रूप से उसका समर्पण करना ही था और उन्होंने स्वयं भी यही कहा ‘हाँ ठीक है। यहाँ कुछ न कुछ प्लाट मिलने की सम्भावना है। सब तो यह है कि अभी एक बात सूझी है।’ इसके बाद गुप्त जी ने उस भयंकर बाईं का—जिसमें आचार्य चतुरसेन भी थे—दर्शन करते हुए मिला है ‘पता नहीं उस बैरक में कितनी बार्डें थीं और सब पर एक न एक भयंकर रोपी था। कुछ खोम कराह रहे थे और तरह-तरह के मरहमों और बजायों की बू-भारों तरह फैल रही थी। सबके चेहरों पर चिन्ता की काँधी छाया थी कई तो घायल जीवन और मृत्यु की सीमा-रेखा पर थे बातावरण बहुत ही विषादपूर्ण था। प्लाट प्राप्त करने का प्रयत्न निम्नविद् बहुत बड़ा प्रयत्न है फिर भी कठिन रोग से पीड़ित होकर ऐसे बातावरण में रहना केवल मजबूती में ही स्वीकार किया जा सकता है।’ इतना ही नहीं आचार्य चतुरसेन जी ने इस बड़ा म भी लिखना नहीं दिया था। गुप्त जी ने इस विषय में लिखा है “मैं तो इस प्रसंग में इस ओर दृष्टि आकर्षित करना भूल ही गया कि उस हासत में भी जबकि उनको कैम्पेटर से पेशाब कराया गया था उन्होंने पेशाब से लिखकर ‘बाजकल’ के सिधे सेल भेजा था सम्भव है इसी हासत में उन्होंने मत्रास भ्रमण पर वह सेल भी लिखा हो जो बाद में ‘साप्ताहिक हिन्दुस्तान’ में प्रकाशित हुआ। बानी एक दिन भी उस कलाकार की रोग घम्या नहीं बल्कि मृत्यु घम्या पर भी विधाय नहीं मिला।”^१

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ मार्च १९६० पृ ३३।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान आचार्य चतुरसेन अज्ञातलि बंक, ६ मार्च १९६०, पृ ३३।

३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान आचार्य चतुरसेन, अज्ञातलि बंक, ६ मार्च १९६० पृ ३३।

जिस समस्या में आचार्य चतुरसेन जी की मृत्यु हुई वह निश्चित ही हिन्दी भाषों के लिए कानि की बात है। यहीं इतिम अस्पताल में आचार्य चतुरसेन जी ने २ फरवरी, १९६० को दिन के दो बजे के लगभग अपने इस भौतिक शरीर को त्याग दिया।

स्वभाव और प्रकृति

किसी भी व्यक्ति के स्वभाव को समझने से लिए उसके पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को समझना आवश्यक है। अतः आचार्य चतुरसेन जी के स्वभाव एवं प्रकृति को समझने के लिये हम उनके घर और बाहर दोनों के चर्चों को रचना और समझना पड़ेगा।

घर में

आचार्य चतुरसेन जी के स्वभाव की कोमलतम भावनाओं के वास्तविक दर्शन इस प्रकार के संस्कार ने स्वयं उनके साथ उनके परिवार में रहकर किए। वहाँ एक ओर साहित्य में वे बौद्ध भिक्षुनी के घनी से वहीं घर में उनका अपूर्व बाल्यस्थ देखते ही बनता था।

आचार्य चतुरसेन जी का लेखन-कार्य रात्रि दो बजे से प्रारम्भ हो जाता था। उनके लिए उसी समय से प्रभात हो जाता और वह साहित्य साधना में निमग्न हो जाते। इस विषय में आचार्य जी की पत्नी कमलकिशोरी जी ने लिखा है "इसके बाद जब से पाँच में दर्द रहने लगा था तब से वह भोज के दूसरे सिरे पर साधारण पत्थी मार बैठते थे। बैठते ही एक बार मुँह पर हाथ फेरते और हाथ में अपना मोटा प्लेजन्टैन्पेन लेकर अपनी साधना में लीन हो जाते।" -- वह एक रस होकर फुलस्केप साइज के पन्ने भरते चले जाते। मैं बहुत बार रोषनी के कारण नींद खुल जाने पर उन्हें देखा करती थी। समाप्तिये के पुरुष की भाँति उनकी मुद्रा उस समय होती थी। अपनी लेखनी के पास और पाणियों के साथ उनका मुसकाना आँसू बहाना रीता खीसना क्रोध करने उनके मुँह के भाँचों से प्रकट होता रहता था। प्रारम्भ में मुझे यह पति आश्चर्यजनक लगी पर बाद में तो मैं इसकी सम्पत्त हो गई।"

"मुझसे कभी देर तक प्रतीक्षा के बाद जब मैं अन्दर जाकर बती बन्द कर देती तब बिना मरी और देखे ही वह बत्ती को फिर से जला देने का मसूरो

करते थे कहते थे 'थो मिनट ठहर जाओ अभी उठना है'। उस पन्द्रह मिनट बाद भी जब वह नहीं उठते थे तब मैं कसम छीन कर, हाथ पकड़कर उन्हें बग़रबस्ती खींच लाती थी। हंसते हुए कहते थे 'बाबा बड़ी बग़रबस्त स्त्री से पाका पड़ा है !'^१

एक ओर घर में साहित्य साधना करते समय वह छात्रक के समान गम्भीर और धान्त रहते थे तो दूसरी ओर साधना से निवृत्त होने के पश्चात् चाय के समय वह मुन्नी के साथ बच्चों के समान चहकने लगते थे। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने स्वयं देखा था उनकी उस एकाग्र साधना को भी एवं उस बचकाने स्वभाव को जिसके द्वारा वह विभिन्न प्रकार के अभिनय करके कभी नेश बंद करके कभी जोस कर मुन्नी को हँसाते रहते थे। चाय हम सभी को एक साथ होती थी। हम सभी चाय पीते थे तथा 'मुन्नी के लिए वह दूध ब्रह्म्य संभारते थे। स्वयं चाय की चुस्कियाँ छेत्ते जाते और साथ ही मुन्नी को दूध पिलाते जाते। एक दिन मुन्नी ने चाय पीने की हठ की। मुझे उस दिन का सनका मुन्नी को बहुसामान्य स्मरण है। उन्होंने दो ही मिनट में कितने ही प्रकार के अभिनय कर जाके कितने ही छोटे छोटे चुटकुले सुना जाके किन्तु मुन्नी दूध पीने को राजी न हुई। अन्त में उन्होंने उससे बड़ स्नेह के साथ कहा 'मुन्नी। जो चाय पीते हैं उनका रंग कैसा होता है ?

मुन्नी बालिका को ब मुँह कर तुरन्त ही बोल उठी थी "कासा"

'थो मेरा मुन्ना तो गोरा है वह चाय नहीं पीता दूध पीता है।' इतना कहकर उन्होंने दूध की प्लेट छट बच्ची के होठों पर रख दी थी। बच्ची कुछ देर तक हम लोगों की ओर देखती रही फिर आँसु बन्द कर उसने चुपके से दूध पी लिया था। इस समय भी दूध पिलाते समय आचार्य जतुरसेन जी का अभिनय चल रहा था। योंही मुन्नी दूध पीना अस्वीकार करती छट दूध की प्लेट उसके होठ पर रखकर स्वयं आँसु बन्द कर कहते 'हमने आँसु बन्द कर ली अब मुन्नी का दूध जाकर मोटा बन्दर पी जाएगा' उनका यह वाक्य सुनते ही मुन्नी चुपचाप दूध पी जाती थी। बड़े प्रसन्न होते थे वह उस समय।

नेत्रज मुन्नी को ही नहीं घर पर हम सभी को वह हँसाते रहते थे। प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक भी मैडिकोलेजरन गुप्त थी जैनेन्द्र एवं थी बनारसीदास चतुर्वेदी से मिलकर संघ्या समय लीना तो देखा आचार्य जतुरसेन जी हंसते-हंसते

छोट-मोट हो रहे हैं। माता जी (बाचार्य पत्नी) की भी बही दया थी। वह कुछ समझ न सका। उसे बेसते ही उग्होंने हंसते हंसते ही प्रश्न किया "कहो। सब पाठों के साहित्यकारों से मिल जाए? उसने अभी सिर ही हिला पामा था कि उग्होंने पुन कहा तुम उधर महान् साहित्यकारों से मिलता बड़ा रहे थे और इधर मैं किसी दूसरे कोऊ की यात्रा कर रहा था। वह अब भी हंस रहे थे।

"मैं समझा नहीं" मैंने (प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने) उनका मुह ठाकते हुए कहा था। उग्होंने "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" का एक बंक फेंकते हुए कहा 'इस कहानी को तुम पढ़कर देखो तुम्हें भी बही मानस्य जाएगा।'

मैंने देखा वह बैंगला हास्य लेखक श्री परसुराम की प्रसिद्ध कहानी को "बागवत द्वार"। मैंने उसकी एक ही दो पंक्तियां पढ़ी थीं कि इन्होंने स्वयं ही यह कहानी सुनाना प्रारम्भ कर दिया। एक तो कहानी जैसे ही हास्य की उस पर उनके सुनाने का डंग इतना रोचक था कि मैं (प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक) कहानी सुनते ही कोट-मोट हो गया। उस दिन हम सभी को वे रात्रि म्यारह बजे तक घुटनूके सुना-सुना कर हँवाते रहे थे। "मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या यह बही व्यक्ति जूमे हूयम से बरबोँ ऐसी क्लिककारियां मार-मार कर बात कर रहा है जो चौदह-चौदह बटे तक एकान्त साधक की भाँति बैठा साहित्य साधना किया करता है।"

बाचार्य चन्द्रसेन जी का पारिवारिक जीवन की कुछ शक्तियां उनके अनुज भी चन्द्रसेन जी ने भी विलखाई हैं। जिन्हें पढ़कर उनके अपूर्व वात्सल्य एवं विश्वास हृदय का स्पष्ट आभास प्राप्त होता है। उनकी उदारता एवं शरस हृदयता के विषय में श्री चन्द्रसेन जी ने लिखा है।

'समय बीतता गया मेरी बड़ी सन्तान (पुत्री) बढ़कर युवा हुई। उससे छोटे दो पुत्र प्रकाश और सुधीर स्कूल से निकल कर कालिज में पढ़ने योग्य हुए। वह इन तीनों को देख-देख कर जूमे न समाते थे। प्रीक्टिस त्यागने के बाद लेखनी की भाय ने कभी-कभी तमबस्ती के दिन भी दिखाए। परन्तु उग्होंने जिस लाइ प्यार हुकार और नियरानी से मुझे पाला-पोसा बड़ा किया और पड़ाया उसी भावना से उसी प्रकार मेरी इन तीनों सन्तानों को भी पाल-पोस कर बड़ा किया और प्रियत किया। कभी-कभी कई दिनों के बाद किसी लेख के पारिधमिक के २५-३० रुपये मनीबाहर से जाए, स्कूल से आकर सुधीर या प्रकाश ने बड़ाम से वह दिया 'ठाऊबी, करु मास्टर जी ने फीस मंगवाई है।' बस लीविए—बड़

मनीषाईर बच्चों के हाथों में गया और उन्होंने जो कई दिनों से सोच रक्खा था कि कहीं से स्पष्ट जाए तो दो चार दिन मकबल और फस खाऊँ, घुटनों के दर्द रुकनेकेसल खरीदूँ पाजामा फट गया है तो दो मए सिमबाऊँ सो सब प्रोग्राम रूय मए और सुधीर प्रकाश की फीस दे बी गई ।

मैं बेसकर तड़प जाता था और बड़े स्वर में माभी जी से कहता था आपने क्यों स्पष्ट देने दिये । फ़ीस अभी २४ दिन और रुक जाती ।

पर वह हंसती । कहती 'तुम्हें साहस हो तो उन्हीं से कहो' ।

बास्तब में मैंने जीवन भर कभी उनसे बिरोध प्रकट नहीं किया । बीसा मैं पहले दिन उन्हें बेसकर माता के पीछे छिप गया था—बीसे ही काब और विनय मेरे स्वभाव में उनकी मूरमु-बड़ी आने तक मसुन्म घनी रखी । मेरे बच्चे कभी कभी जोर से ताऊ जी से कोई बात कहते थे तो मैं पीछे उन्हें डाँटता था कि इनकी जोर से बोसते हो पर बच्चे निर्दम्य थे । उन्हें मेरा पूज्य पूजन ज्ञात न था ।^१

उनकी कोमलतम भावनाओं का परिचय देते हुए बालसेन जी ने आये किन्ना है 'बच्चों के प्रति उनके मन में असीम प्रेम था । वह बहुत चाहते थे कि भगवान उन्हें पुत्र-मुषियों से आप्यास्त करे । परन्तु उनकी यह इच्छा अन्तिम वसाधी में पूरी हुई । हम चारों भाइयों में सबसे प्रथम सन्तान हुई भद्रसेन जी के (पुत्री हुई) शुभ्रग्योति की भाँति उज्ज्वल और सुन्दर उध देख कर आचार्य बनुरसेन जी ने उसका नाम रखा 'घरर कुमारी' । वह उसे गोद में लेकर सिमाने की अत्यधिक आन्तरिक अभिसापा रखते थे परन्तु बालिका की माता इतनी उदार न थी वह अपनी बच्ची को "तडर रुय जाने" के मय से फिटी को नहीं सिमाने देती थी । डाई बर्य की जामु पूरी करके केवल चार पंटे बीमार रहकर एक दिन अचानक 'घररकुमारी' बरु बसी । उसे निम्नर देलकर आचार्य भी ने भर्राई आबाब में भद्रसेन से कहा "बब इसे मेरी गोद में दो ।"

वह उसे २३ पंटे अपनी गोद में लिटाये बीठे रहे । चुप-चाप पुत्र-पुत्र । सब रो रहे थे परन्तु आचार्य भी उसके घोले सुन्दर मुख पर अपसक बृष्टि डटाए हुए थे । यमुना तट पर उसे बिबाई देकर सब परिवजन डाँट जाए । अपने-अपने कामों में लब । परन्तु आचार्य भी अपनी मेड पर बीठे चुपचाप "घररकुमारी" से

गर्ते कर रहे थे। हाँठ फड़फड़ते थे और आँसु मासों पर डरक रहे थे। वह सारी एत बैठे रहे और उस बाबिका के ऊपर "ओ शारदे" एक लम्बी कविता लिखी। उसे बहुत समय तक वह छिया कर रखते रहे और एत को एकान्त होने पर पढ़ते। एक डेढ़ वर्ष के बाद वह कविता हम लोग पढ़ पाये।

उनका मन आतृप्रेम से पूर्ण था। वह पितृतुल्य सब अपराधों-भूलों को क्षमा कर भूट स्नेह रखते थे। सन् ११ में उन्होंने आरोग्य शास्त्र लिखा और उसे स्वयं प्रकाशित करने का प्रबन्ध बुटाया कि मद्रसेन पाँच दिन भयंकर एवर प्रस्त रहकर बल बसे। मद्रसेन की मृत्यु के आघात का आभास आरोग्य शास्त्र में किसी उनकी भूमिका से लपटा है। उसमें लिखा है 'मेरी अनगिनत विपत्तियों में सर्वोपरि विपत्ति मेरे पवित्र जीवी और परम आत्माकारी धुनाधिक माई मद्रसेन का अविश्वसित मौतकाल में ही बनायाच निषन है, जिसने मेरे साहस और जीवन की मधुरता की मस-नस तोड़ दी। मुझे मम है कि मेरी मानसिक निकसता और अस्थिरता से प्रथ में बहुत-सी भुटियाँ रह गई होंगी। जिसके क्रिये में अपनी उपयुक्त कथन दशा की तरफ विर्र पाठकों का ध्यान आकर्षित करके दया और क्षमा की आशा करता हूँ।'

इस प्रकार अनेक कठिनाइयों और न्यूनताओं के रहते हुए भी आचार्य चतुरसेन जी का पारिवारिक जीवन प्रसन्नता और उल्कास से भरप हुआ था। माई और बच्चों के प्रति उनकी अजस स्नेह धारा उन सबको आचार्य के प्रति अनाप यज्ञा में मग्न किए रहती थी। उनकी गहरी मातृकता और विनोदप्रियता का सहज रूप उनके पारिवारिक जीवन में ही प्रस्फुटित होता था।

आचार्य जी मित्रों एवं समाज के बीच

आचार्य चतुरसेन जी अपने मित्रों से भी जुसकर मिलते थे। यद्यपि उनके मित्रों की संख्या बहुत कम थी। वह सत्य रहने वाले मूहपट व्यक्ति थे इस कारण स कम ही लोगों को अपना मित्र बना सके थे। अपनी 'आत्मकथा' का प्रारम्भ करते हुए उन्होंने स्वयं यह बात स्वीकार की है 'मैं एक आहत किन्तु अपराजित योद्धा हूँ। अपने अितजीवन में मैंने सब कुछ खोया है पाया कुछ नहीं। मैंने एक मित्र जीवन में उत्पन्न नहीं किया। आज जीवन की संध्या में मैं अपने का सर्वथा एकाकी असहाय और निस्प्रेम अनुभव करता हूँ। मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है जो दिन भर निरन्तर मन्त्रिक काटता रहा

हो और अब निर्जन राह ही में सूर्य अस्त हो गया हो वह बेसरोसामान बक कर राह के एक बुझ के सहारे रात काटने पड़ गया हो—और मंत्रियों दूर अपने घर में बिछी मुबद दुब फेंक ली सय्या की सय्या की मति लिग्मा पत्नी की और फू के समान सुन्दर अपने पुत्र की केवल कल्पना मात्र कर रहा हो।^१

उन्होंने एक बार प्रस्तुत प्रबन्ध के डेसक से स्वयं कहा था पता नहीं क्यों मेरी किसी से नहीं निपट पाती। श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' से भी इस विषय की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था 'जाने क्या बात है जिससे मेम होता है उससे कड़ाई हो जाती है पर जाने क्या बात है कि तुमसे कनी कड़ाई नहीं होती।'^२

वास्तव में उनके स्वभाव की एक प्रमुख बृत्ति अहंकार थी। अपने भारत सम्मान को आहूत होते वह कभी भी बेज न पाते थे। श्री 'प्रभाकर' भी ने उनके स्वभाव की चर्चा करते हुए लिखा है 'अपने कड़ाकू पने से वह खुद नहीं थे पर मजबूर थे। उनके स्वभाव की एक प्रमुख बृत्ति अहंकार थी। वह महत्वाकांक्षी थे समाज में महत्व पाने के दायेंवार थे हूक्यार थे पर समाज ने उनके दावे को स्वीकार नहीं किया उनका हक उन्हें नहीं दिया। यही नहीं उनके मित्रों ने उनके अपनों ने उनके अहंकार पर डेसे फेंके उनके हक की उपेक्षा की और इस तरह एक उद्बुद्ध मानव को कुछ मानव बना दिया।'^३

समाज ने उनकी सदैव उपेक्षा की इसी कारण से उन्होंने भी कनी समाज की चिन्ता न की। उन्होंने समाज से आबर की आघा की किन्तु मिला बनादर, उन्होंने मित्रों से निश्चित प्रेम चाहा किन्तु स्वार्थी मित्रों ने उन्हें सदैव प्रबंधित ही किया। उनका उपन्यास 'बर्मपुत्र' की भूमिका को पढ़ने से उनके मस्तिष्क की यह निर्बलता स्पष्ट हो जाती है। उद् के कहानीकार की कृप्य चन्द्र को एक प्रकाशक ने पार्टी बी थी। उसमें आचार्य चतुरसेन भी भी निर्बंधित थे। आचार्य भी उस पार्टी में सम्मिलित हुए। वही पर उस पार्टी को देखकर उनके मस्तिष्क में जो मात्र उठे उन सभी को आचार्य चतुरसेन जी ने

१ चतुरसेन—प्रीतिपत्र अंक १ पृ ३५।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अगस्त १९६०।

३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ अगस्त १९६०, पृ ५।

इस भूमिका में लिख डाला है। वे लिखते हैं 'इराण चन्द्र-को देखा—निपट बालक सा लड़क है। मैं सोच रहा था इसे मला क्या पार्टी दी गई? ऐसी घामघार पार्टी तो मुझे मिलनी चाहिए थी। उसके बाद अकस्मात् मेरे मन में एक विचार पैदा हुआ—कि क्या कारण है अब तक मुझे किसी न ऐसी घामघार पार्टी नहीं दी। आखीर साक कलम पिछी पीछठ की बहुखीम पर पहुँचा धम्कों की संख्या एक सौ इक्कीस को पार कर गई, फिर क्या सोचो धन्ने हैं बहरे हैं मूर्ख हैं या साहित्य का समझते नहीं हैं। क्या बात है वास्तव में पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी तो मुझी को। मैंने एक बार आँक और गिर उठा कर चारों ओर देखा—जो मुझे एसा प्रतीत हुआ कि उस जमनाट में मुझसे बड़ा साहित्यकार तो कोई मजर नहीं आ रहा है। फिर भी पार्टी मुझे नहीं इराण चन्द्र को ही दी गई थी। इसमें ठनिक भी घुबहा न था। — — — बहूत गुस्सा था रहा था सब लोपों पर। क्यों नहीं लोप मुझे ऐसी पार्टियाँ देते। परन्तु बहू किससे? मन ही मन खीस रहा था कि मन में एक बक्का दिया कहा—अपनी इतनी पूजा करता है तो दुनियाँ से क्या? तू खुद अपनी ओर देख अपना साहित्य रचे जा अपनी कलम सम्पदा से भाव ही सम्पन्न रहे। मगन रहे। पार्टी पार्टी को गोली मार, और उठा अपनी कलम। बनी उठा। इस बख दिख चुटीसा है—ऐसी ही थोट खाबर साहित्यिक बेवनाएँ मूर्त हाजी है। खीब तो एक बर की तस्वीर।^१

स्पष्ट ही इन पंक्तियों में एक साहित्यकार का आवृत्त भावन-सम्मान लड़पता हुआ दीख पड़ता है। उनको इस बात का दुःख था कि 'आज तक किसी साहित्यकार, साहित्य संस्था या साहित्य सब ने कभी मेरे पास आकर नहीं कहा था कि तुमसे हम सम्मानित करें। तेरा जन्म नरक मनाएँ, तेरी कुद भूमपाव करें, पक्षिपिटी करें। न कभी किसी सम्मेलन का सम्पापति ही घूफ बनाया गया। इन्तजारी बहूत की। सम्पापति बनाना तो दूर—साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में कभी मुझे नियमन नहीं मिला। पिटडी बा-मरठ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन था—वहाँ मैं बिन बुलाये ही जमा गया—इसलिए कि—पास तो है ही—बहूत से साहित्य बंधुओं के दर्प-दर्प हा जामये। देखा सबने पर किसी ने भीतर संघ पर बल न

१. परन्तु बहू भूमिका 'बर की तस्वीर'।

बैठने तक को नहीं कहा। दो दिन बाहर ही बाहर भूम कर चला आया..... १

बहु सम्मान पाने के अधिकारी थे किन्तु कहीं भी सम्मान न मिला। यही कारण था कि उनका बाह्य धारम-सम्मान किञ्चित् मात्र झटका खाते ही फूट हो उठता था यही कारण था कि बहु समाज में अल्प समय तक अपना एक भी मित्र न बना सके थे। श्री 'प्रमाकर' भी ने उनके स्वभाव की आलोचना करते हुए लिखा है 'उनकी यह असफलता थी कि वह उद्बुद्ध होकर भी फूट हुए, पर इस असफलता की जड़ में समाज की गन्धगी थी। इस गन्धगी का सबसे गन्दा प्रदर्शन यह कि उन्हें फूट बनाने वाला समाज सदा यह नारा लगाता रहा कि वह फूट न होते तो मैं उनकी पूजा करता। 'मिने उनकी इस असफलता को कभी महत्व नहीं दिया और सदा पूरी ईमानदारी के साथ उसे एक बहुत छोटी छूट और नगण्य असफलता मानता रहा। क्यों? क्या उनकी मित्रता के कारण? नहीं उनकी एक महान् सफलता के कारण कि समाज द्वारा फूट किये जाने पर भी वह उद्बुद्ध रहे और अपने जीवन के अंतिम दिन तक उसी समाज को गुप्त स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक भोजन परोसते रहे। उनको छोड़िए, उनके इस मानसिक भोजन को भी समाज ने कभी उचित महत्व नहीं दिया पर महत्वहीनता के इस दमघोड़ बाठावरण में भी उन्होंने अपने भोजन का स्तर नहीं गिराया अपना कून पसीना एककर, उस ऊँचे से ऊँचा उठाया इसी में अपने माप को जपा दिया। यह क्या उनके दक्षिणायनी व्यक्तित्व की कोई साधारण सफलता है? २

इसके कठिपय मित्रों के संपत्तियों के संस्मरण बड़े रोचक हैं और वे मित्रों के व्यवहार और उनके द्वारा आचार्य जगुरसेन जी के मन पर प्रयट हुई प्रतिक्रिया के घोटक हैं। अतः उनमें से कुछ को देना-यहाँ प्रासंगिक है।

श्री जगदीशलाल माणिकलाल मुंशी उत्तर प्रदेश के गवर्नर थे और मैनीताल के राजभवन में गर्मी बिता रहे थे। समय की बात थी जगुरसेन भी अपने परिवार सहित मैनीताल जा पहुँचे। मुंशी जी एक युग पहले सोमनाथ पर उपन्यास लिख चुके थे और शास्त्री का 'सोमनाथ' इन्हीं दिनों छपा था। इस तरह दोनों समानकर्मा और समानकर्मा व्यक्ति थे। शास्त्री जी ने मुंशी जी को

१ बर्नगुज भूमिका 'दई की तस्वीर'।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ अगस्त, १९६० पृ ३।

पत्र लिखा कि मैं आपस मिलना चाहता हूँ पर सर्त यह कि गवर्नर मुझे हमारी बातचीत के बीच में न बाधें।

मुझे भी बहुत ज़ेबे बर्से के सामाजिक सुसम्पन्न व्यक्ति हैं उन्होंने घास्त्री जी को मिलने की तारीख और समय लिख दिया। पब्लिश की प्रार्थना भी की। नैनीताल पहुँची स्पान है। वहाँ टाया मोटर, दिल्ली की तरफ मुकम नहीं। घास्त्री जी ने चार आदिमियों वाली दो गाड़ियाँ किण्व पर कीं और अपनी पत्नी सहित वह समय पर राजमबल पहुँच।

राजमबलों के नियम पुराने समय से जैसे सचे बने आ रहे हैं। इतराक न घास्त्री जी से प्रार्थना की कि वह डाँडी प्रवेश द्वार पर छोड़ दें, क्योंकि राजमबल में डाँडी जाने का नियम नहीं है।

घास्त्री जी ने इतराक की आर नहीं देखा और डाँडी बाँधों से डटकर कहा "क्यों दे, हमन तुमस क्यूँयात्तक मुझे के बर बलने को कहा या पर तुम राजमबल आ धमक ? बड़े मूर्ख हो।"

इतराक ने कहा 'धीमन् महामहिम मुझे यहाँ रहते हैं। डाँडी वाले ठीक स्थान पर आपको साथे हैं।

फिर भी माँठ न कृषी तो इतराक ने प्रबान इतराक को फोन किया। वह आये पर घास्त्री जी की इतीक थी नियम गवर्नर के होंगे, पर हमें तो गवर्नर मुझे स मिलना ही नहीं। और तब उन्होंने अपन डाँडीवाले से कहा 'आदियाँ नीचे रख दो जितने समय के लिए हमें मुँगी जी ने बुलाया है हम उतने समय यहाँ द्वार पर बैठे रहेंगे और फिर लौट आयेगे।' प्रबान इतराक बकरया। उसने निजी सचिव को फोन किया और उसने महामहिम मुझे को सब हाल सुनाया। मुझे जी ने कहा 'द्वार लौक हो और उन्हें डाँडी पर ही खान दो। द्वार लुका और घास्त्री जी डाँडी पर बैठे हुए राजमबल के बरामदे तक पहुँचें वहाँ स्वागत के लिए उन्हें मुझे जी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।'

अपना घेष्ट उपन्यास 'बीघाली की नगर बबू' घास्त्री जी ने प्रबान मंत्र भी पब्लिशर लाल को समर्पित किया। वह समर्पण क्या या ठीक-ठीक पास करने की हिदायत थी। इस समर्पण का आरम्भ होता है 'ई बाह्यम। इ-

१ एक कठुवा अमृत क्यूँयात्तक मित्र 'प्रभाकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १. अक्टूबर १९६० पृ २।

बैठने तक को नहीं कहा । वो दिन बाहर ही बाहर भूम कर चला जाया' -----^१

बहु सम्मान पाने के-अधिकारी वे किन्तु कहीं भी सम्मान न मिला । यही कारण था कि उनका आहत आत्म-सम्मान किञ्चित् मात्र झटका खाते ही झुड़ हो उठता था यही कारण था कि बहु समाज में अन्त समय तक अपना एक भी मित्र न बना सके थे । श्री 'प्रभाकर' जी ने उनके स्वभाव की आलोचना करते हुए लिखा है 'उनकी यह असफलता थी कि वह उद्बुद्ध होकर भी झुड़ हुए, पर इस असफलता की जड़ में समाज की गन्धवी थी । इस गन्धवी का सबसे बड़ा प्रदर्शन यह कि उन्हें झुड़ बनाने वाला समाज सदा यह गारा मनाता रहा कि वह झुड़ न होते तो मैं उनकी पूजा करता । 'मैंने उनकी इस असफलता को कभी महत्व नहीं दिया और सदा पूरी ईमानदारी के साथ उसे एक बहुत छोटी झुड़ और मनस्य असफलता मानता रहा । क्यों ? क्या उनकी मित्रता के कारण? नहीं उनकी एक महान् सफलता के कारण कि समाज द्वारा झुड़ किये जाने पर भी वह उद्बुद्ध रहे और अपने जीवन के अंतिम दिन तक उसी समाज को पुष्ट स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक भोजन परोसते रहे । उनको छोड़िए उनके इस मानसिक भोजन को भी समाज ने कभी उचित महत्व नहीं दिया पर महत्वहीनता के इस बमबोदू बातावरण में भी उन्होंने अपने भोजन का स्तर नहीं गिराया अपना जून पसीना एककर, उसे ऊँचे से ऊँचा उठाना इसी में अपने आप को सजा दिया । यह क्या उनके क्षणिकाली व्यक्तित्व की कोई सामारण सफलता है ?^२

इनके कतिपय मित्रों के संपत्तियों के संस्मरण बड़े रोचक हैं और वे मित्रों के व्यवहार और उनके द्वारा आचार्य चतुरसेन जी के मन पर प्रगट हुई प्रतिक्रिया के द्योतक हैं । अतः उनमें से कुछ को देना-यहाँ प्रासंगिक है ।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी उत्तर प्रदेश के मधनर ये और मैत्रीलाल के राजभवन में पर्वी बिना रहे थे । समय की बात थी चतुरसेन भी अपने परिवार सहित मैत्रीलाल जा पहुँचे । मुंशी जी एक युव पहले सोमनाथ पर उपन्यास लिख चुके थे और शास्त्री का 'सोमनाथ' इन्हीं दिनों छपा था । इस तरह दोनों सभानमर्मा और सभानकर्मा व्यक्ति थे । शास्त्री जी ने मुंशी जी को

१ वर्षपुत्र जूनिका 'बद की तस्वीर' ।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अप्रैल १९६०, पृ २ ।

पर लिखा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ पर शर्त यह कि यवर्मर मुझी
हमारी बातचीत के बीच में न आये।

मुझी जी बहुत ऊँचे दर्जे के सामाजिक सुसभ्य व्यक्ति हैं उन्होंने शास्त्री
जी को मिलने की तारीख और समय लिख दिया। पधारने की प्रार्थना भी की।
नैनीताल पहुँची स्थान है। वहाँ टांगा मोटर, बिस्की की तरह सुखम नहीं।
शास्त्री जी ने चार आदमियों बाँधी हो यात्रियाँ किराये पर की और अपनी
पत्नी सहित वह समय पर राजमवन पहुँचे।

राजमवन के निम्न पुराने समय से बँधे सधे चले जा रहे हैं। द्वारपाल
ने शास्त्री जी से प्रार्थना की कि वह डाँडी प्रवेश द्वार पर छोड़ दें क्योंकि
राजमवन में डाँडी जाने का नियम नहीं है।

शास्त्री जी ने द्वारपाल की ओर नहीं देखा और डाँडी बाँधों से डाँटकर
कहा 'क्यों रे हमने तुमसे कन्हैयालाल मुझी के घर चलने को कहा था पर तुम
राजमवन जा सकेंगे ? बड़े मूर्ख हो।

द्वारपाल ने कहा 'भीमन् महामहिम मुझी यहीं रहते हैं। डाँडी वाले
ठीक स्थान पर आपको लाये हैं।'

फिर भी गाँठ न खुली तो द्वारपाल ने प्रधान द्वारपाल को फोन किया।
वह आये, पर शास्त्री जी को दभीक की 'नियम सर्वत्र क होंगे, पर हमें तो
यवर्मर मुझी से मिलना ही नहीं। और जब उन्होंने अपने डाँडीवाले से कहा
'डाँडियाँ नीचे रख दो मिलने समय के लिए हमें मुझी जी ने बुझाया है, हम
उतने समय यही द्वार पर बैठे रहेंगे और फिर लौट आयेंगे।' प्रधान द्वारपाल
चकरवा। उसने निजी सचिव को फोन किया और उसने महामहिम मुझी को
सब हाल सुनाया। मुझी जी ने कहा 'हां सोस दो और उन्हें डाँडी पर ही जान
दो। द्वार खुला और शास्त्री जी डाँडी पर बैठे हुए राजमवन के बरामदे तक
पहुँचे जहाँ स्वागत के लिए लड़े मुझी जी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।'

अपना घेष्ठ उपन्यास 'बैशाखी की नगर बन्' शास्त्री जी ने प्रधान यंत्र
धी बबाहर काल को समर्पित किया। वह समर्पण क्या था ठीक-ठीक साक्ष्य
कारण की हिदायत थी। इस समर्पण का आरम्भ होता है 'हे काश्यप। इ'

१ एक कड़ुवा अमृत, कन्हैयालाल मित्र 'प्रमाकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १
अप्रैल, १९६० पृ २।

धर्म्यात्मक संबोधन से। स्वामाधिक का कि नेहरू जी इसे पसन्द न करते थे। फिर इस तरह के समर्पण पूँछकर करने की प्रथा है और शास्त्री जी ने न पूछा था न स्वीकृति ली थी।

प्रधान मंत्री के निजी सचिव ने शास्त्री जी को पत्र लिखा 'आपने बिना पूछे प्रधान मंत्री को यह समर्पण क्यों किया ?

शास्त्री जी ने उत्तर दिया 'समर्पण का अर्थ है देना तो मैंने प्रधान मंत्री को अपने कई बयों के परिचय का फल दिया है। उनसे कुछ माँगा नहीं इस तरह मैं शानी हूँ' मिलारी नहीं कि पूछता फिर कि कुछ लेना है क्या ? फिर भी नेहरू को मेरा समर्पण पसन्द न हो तो उनसे कहना कि पुस्तक का वह पन्ना फाड़ दें।'

पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वामताप्यन डा सत्यपाल ने शास्त्री जी को बहुत आपस से बुझाया। वह जिस पार्टी से गये उसी से समय की बात सम्मेलन के उद्घाटनकर्ता भी मनोच वासुदेव मावळकर (अम्पस लोकसभा) भी गए। स्टेज पर बहुत बुरबाम से स्वागत हुआ पर इस स्वागत में मावळकर जी पर ही पूरा बर्षा होती रही। शास्त्री जी प्लेट फार्म पर अपने सामान के पास लड़े रहे उनके पास कोई नहीं आया। बाद में एक स्वयं सेवक रिक्शा में बैठकर उन्हें निवास स्थान पर छोड़ आया। घाम को वह उत्सव में गए तो वहाँ भी वही बात कि मावळकर जी का स्वागत राजकीय ढंग से और शास्त्री जी मंच के एक कोने पर। उद्घाटन मापन और स्वागत मापन के बाद उल्काघमरे बातावरण में शास्त्री जी से मंचक बचन कहने का अनुरोध किया गया तो शास्त्री जी माइक पर आये और प्रसन्नता से स्वर से बोले 'मावळकर जी की इस बात में आकर बहुत प्रसन्नता हुई। इन्हा तो सुन्दर है ही बाउठ भी नून सजी है और प्रबन्ध भी धानधार है पर साहित्य रूपी दुर्लभ इस घुमबाम में ऐसी दम बर्ई है कि सुई-सुई सी बूँट में लिपटी लगी बीटी है कहीं रिकार्ड नहीं देनी। 'मुनकर बर्षाओं शोनाओं ने तालियों से पंजाब बुबा दिया पर मंच पर तो शानी ही पड़ गया।'

- १ एक कड़ुवा अमृत बर्गुमाताल मिष 'प्रजाकर' साप्ताहिक हिन्दुस्तान
१७ अप्रैल १९६०, पृ ३।
२ एक कड़ुवा अमृत बर्गुमाताल मिष 'प्रजाकर' साप्ताहिक हिन्दुस्तान
१७ अप्रैल १९६०, पृ ६।

हिन्दू विश्वविद्यालय की एक परिषद् में भाषण देने के लिए उन्हें (आचार्य चतुरसेन जी को) बुझाया गया। बुझाने वालों में श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी भी थे। घास्वी जी ने अपने भाषण में कहा 'आणभट्ट की 'आत्मकथा' के लेखक श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं और एक पुस्तक का उन्होंने नाम किया थापर 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के लेखक भी श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। क्या ये दोनों एक ही हैं? यदि एक ही हैं तो मैं कहता हूँ कि इनमें से एक ही पुस्तक उनकी किसी हुई है या तो पहली या दूसरी दोनों पुस्तकें एक लेखक की नहीं हैं। मैं चाहता हूँ आप इस पर खोज करें।

बड़ी हड़बड़ी मची साठ बातावरण व्यस्तव्यस्त हो गया और उत्सव के बाद की टी-पाटी सज्जी-उज्जड़ी रही।^१

इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तक 'बातायन' में ऐसे कितने ही संस्मरण प्राप्त हैं जहाँ इनका उद्बुद्ध मानव क्रुद्ध हुआ दीखता है। 'मुबलिग पाँच बपए'^२ श्री बनेन्द्र का बिबाह^३ 'ठंडी हवाई'^४ आदि उनके ऐसे ही संस्मरण हैं।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने आचार्य चतुरसेन जी के इस प्रकार के संस्मरणों के आशार पर उनके स्वभाव का विरलेपण करते हुए लिखा है—

१९५९ की गर्मियों के अन्त में वह (आचार्य चतुरसेन जी) हृत्कार से छोटते हुए कुछ घंटे मेरे पास टिके तो अन्तिम (हजारीप्रसाद द्विवेदी) वासा संस्मरण उन्होंने मुझे सुनाया। गुनकर मुझे बड़ा अजीब सा क्या और मन में पहुँचि अस्मि का भाव आया। वह साठ बात कहते थे तो साठ बात मुन भी सक्ते थे मैंने कहा 'उन्होंने आपका अपने उत्सव की घोषा बढ़ाने के लिए बुझाया था पर आपने उनकी घोषा पर तारकोल छिड़क दिया। यह क्या कोई अच्छी बात है ?

घास्वी जी ने पूरे सम्बुद्ध से उत्तर दिया 'ऐसी बातें अच्छी पोड़े ही हुमा करती हैं।

१ एक कड़ुका अमृत, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ अगस्त १९६०, पृ ६।

२ बातायन, आचार्य चतुरसेन, पृ १३९-१४४।

३ बातायन, आचार्य चतुरसेन पृ १६१-१६६।

४ बातायन, आचार्य चतुरसेन पृ १७१-१७२।

उनके सन्तुष्टन और उत्तर से मुझे बड़ा-बा मिसा और बपों की जिज्ञासा एक प्रश्न में सरकर गिने उनके सामने रख बी 'नैनीताल गए तो आप मुझी की से भिड़ गए, अमृतसर गए तो माबलकर बी से आ टकर गए और काशी गए तो डिबेदी बी को उभेड़ बैठे। अब आप मानते हैं कि ये बातें अच्छी नहीं हैं तब आप यह सब करते क्यों हैं ?

बच गम्भीर रहे तब मुस्कुराये कुछ सोचते रहे फिर बोले 'यह रहस्य बही तक मुझे याद है आज तक मैंने किसी को भी नहीं बताया। शास्त्रों की भाषा में यह 'ब्रह्मात् गुह्यतरे परम्' है पर मुझें बताया है। गद्य लेखक के जीवन का यह रहस्य पद्यमय है और जाने मुझसे पहले ही इसे कौन लिखकर रख गया है। और तब उन्होंने यह घोर पढ़ा—

और आए, घर में बस गए और झूठ से गए,
बंदा कर सकता था क्या बाँसु सेने के सिवा।

सुनकर मैरा मन गम्भीर हो गया पुछ
बैठा "तो यह सब क्या सबकुरी का कायना है ?" उन
का उत्तर एकदम साफ़ था "और क्या ?

मैं एक बम किनारे पहुँच गया "तो फिर
यह तो गाँधी देना है।।

उनका उत्तर एक बम साफ़ था 'और क्या ?

सुनकर सोचने लगा "शास्त्री जी अपने साहित्य में ही नहीं अपने जीवन में भी स्पष्ट हैं। वह स्वप्न बूट्टा ही नहीं स्पष्ट भी हैं। यहाँ तक कि अपनी कामियों को कुरियों का जामा पहनाना उन्हें पसन्द नहीं। समाज ने उनके साथ बन्ध्याय किया है तो वह उसे गाली देते हैं उनके झूँकार को मज्जता का अर्थ न देकर, कोई अपने झूँकार से बकियाए, तो वह बर्बर हो उठते हैं।

इसी बातचीत में उनकी नई पुस्तकों की बर्नी बल पड़ी तो मैंने पूछा
'आपको टायस्टी के रुपये मिल जाते हैं ?'

प्रश्न साधारण था पर उनके उत्तर ने घंटे बसाधारण बना दिया 'बहुत दिन मुटने के बाद मैंने प्रकाशकों पर अपने कुछ आदमी होने की धौंस जमा बी है इसलिए कुछ न कुछ मिल ही जाता है। 'बही बात कि उनका मानस उद्बुत था हमने उसे झूठ बना दिया था और अपने काम की कुरूपता को छिपाने

के लिए हम जोर जोर से बिस्वासे रहे—यह मानन नुस है। सच यह कि वह कड़वा अमृत थे।”^१

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य चतुरसेन जी में आत्म-सम्मान की मात्रा आश्चर्यकृता से अधिक थी। जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं कि उनका आहत आत्म-सम्मान किंचित् मात्र झटका जाये ही नुस हो उठता था। उपर्युक्त समस्त संस्मरण उनके कृद आत्म-सम्मान को ही प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन जी की एक विशेषता और थी। यदि उनके आहत आत्म-सम्मान पर आघात न किया जाय तो उनका हृदय सर्वत्र नवनीत के समान सुद एवं कोमल रहता था। अपने मित्रों के साथ वे एक सभ्य मित्र थे। वे स्वभाव से अद्वेष्यन नहीं थे। जिन स्वानों पर उनके अहं की तुष्टि हुई, जिन मित्रों ने उनके आत्म-सम्मान का ध्यान रखा उन स्वानों पर उन्होंने कैसा व्यवहार किया, इसको यहाँ देना अनुपयुक्त न होगा। इस प्रकार उनके मित्रों के कुछ संस्मरण यहाँ हम प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्री हरबंसराय ‘बच्चन’ का आचार्य चतुरसेन जी से अनिष्ट परिचय था। ‘बच्चन’ भी उन्हें अपना अग्रज और आचार्य चतुरसेन जी उन्हें अपने मधु भ्राता के समान मानते थे। यहाँ आचार्य जी से सम्बंधित उनके जीवन का एक संस्मरण उद्धृत है—

‘इसके बाद मैं शास्त्री जी को सन् १९३९ में किसी कवि सम्मेलन में मिला। १९३६ में मेरी पत्नी का बेहाबसाग हो चुका था “मधुघाता” की मस्ती मुझे छोड़ चुकी थी ‘निष्ठा निर्मरण’ के बाद मैं ‘एकांत संगीत’ गीत लिख रहा था उन्हीं को प्राम्य सुनाता भी था। एक बबसाद विपाद की छाया मुझे पड़ी थी। शास्त्री जी मुझे देखकर बोले “मधुघाता” और मधुघाता के मसक की यह बधा। तुम्हें हो क्या गया है ? मैंने उन्हें अपनी कथा ब्यथा बवाई। वह बोले “तुम अस्वस्थ हो इसी से तुमने जीवन का एक अस्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया है इसे छोड़ो मेरे पास आओ मैं तुम्हारा इलाज करूँगा। घरीर और मन कोई अलग सत्ताएँ नहीं हैं’ शास्त्री जी ने मेरे प्रति जो आत्मीयता दिखाई उससे मैं कृतकृत्य हो गया।

शास्त्री जी को सचमुच मेरी बिठा थी। उन्होंने कई पत्र मुझे लिखे अंततः अंततः सन् १९४० में मैं दिल्ली आया और दो-तीन दिन उन्हीं के साथ

१ एक कड़वा अमृत साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ अप्रैल १९६०, पृ ६।

शास्त्राचार्य छायाचरण में ठहरे। शास्त्री जी को व्यक्तिगत निकट से देखने का अवसर मिला। उनको मैंने अनेक परिभ्रमी अवस्य उत्साही और अबाध कर्मठ के रूप में देखा। वह नियमित रूप से दो बजे रात को उठते और बारह बजे दिन तक काम करते फिर स्नानादि कर भोजन करते और बोर्डी देर आराम करते। शाम को उनके रोमी मित्र मिलने वाले वाले और वह उन्हें बसा देते और उनसे बातें करते। छेत्तन से जो वामदनी उन्हें होती थी उससे वे असंतुष्ट थे वह चाहते थे कि बैठक छोड़कर अपना सारा ध्यान साहित्य सृजन की ओर बसाएँ, पर परिस्थितियाँ उन्हें मजबूर करती थीं कि वह पेशे से कुछ बन करवाते रहे। वह निराश नहीं थे और उसे सत्य करने की विद्या में लगे रहना चाहते थे उपसम्पि हो कम हो कुछ भी न हो।

मुझे उन्होंने अपनी हार्दिक संवेदना दी स्नेह दिया। मेरी विधिवत स्वास्थ्य परीक्षा की बंटों बैठकर बचपन से मेरी इमारियों-बीमारियों का इतिहास पूछा। अंत में उन्होंने मुझ अपनी सलाह दी। "तुम्हें अभी बहुत दिन बीता है तुम घर परिवार बसा कर ही पाते और सुखी रह सकते हो तुम फिर से विवाह करलो। मैं बिल्कुल तुम्हारी वैसी मन-स्थिति से गुजर चुका हूँ। इसलिए तुम मेरे अनुभवों से लाभ उठाओ। फिर कुछ स्तंभ हँसकर बोले अगर तुम प्राक्-प्राक् का बंधन नहीं मानते तो तुम्हारे सिधे एक सुपड़ कन्या भी मेरी दृष्टि में है ----- "

"मैं केवल इतने पर राजी हो सका कि यदि कोई कड़की अनिवार्य रूप से मेरे जीवन में आएगी तो मैं विवाह कर लूँगा। शास्त्री जी को बड़ा संतोष हुआ। मैं अत्यंत-समा तो उन्होंने मुझे एक बीपशि ही आनपान संयम नियम भी बताया। एक राजा के लिए उन्होंने एक रसायन तैयार किया था बोले तुम्हें इससे बड़ा लाभ होगा। मैंने पूछा बाम ? बोले बाम इसका कुछ नहीं पर कुछ मरीजों को दवा उस फायदा करती है जब वह जानें कि दवा महीनी है, इसलिए कहता हूँ कि पूरी लुपक के लिए अगर हजार रुपये भी माँगे जायें तो हमारा बाम कम है। तीन महीने की दवा करम हो गई तो उन्होंने तीन महीने की दवा वासंत से अपने लार्च पर मित्रबाई की। मेरे स्वास्थ्य में अद्भुत परिवर्तन हुआ और शायद उसके कारण मेरे मन-स्वास्थ्य में भी।

कभी सोचता हूँ शास्त्री जी से इतनी संवेदना "ममता" हुआ जाने का अधिकारी मैं किंतु बाते था ? केवल द्विती केनन सेव में उनका एक छोटा सा

सहकर्मि होने के माते । वह अपना सच्चा माता साहित्यकारों से ही मानते थे ।^१

“बच्चन” जी के उपर्युक्त संस्मरण से स्पष्ट होता है कि उनके जीवन के निर्माण में आचार्य चतुरसेन जी का बहुत बड़ा हाथ था । इसी प्रकार आचार्य जी से मिलने ही साहित्यकारों और रोगियों को प्रेरणा प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त हुई थी । उनके हृदय में कोमल भाव थे इस बात को स्पष्ट करने के लिए उनके जीवन से सम्बंधित एक और संस्मरण देना मैं उचित समझता हूँ । जैसा कि पिछले पृष्ठों में लिखा गया था वुका है कि हाजी मुहम्मद से उनकी अत्यंत अनिच्छता थी । दोनों मित्र थे माल्मीयता थी किन्तु मुसलमान होने के कारण आचार्य चतुरसेन जी अपने उस मित्र के महर्षि का जल भी न पीते थे । इसी प्रसंग से संबंधित आचार्य जी द्वारा लिखित प्रस्तुत संस्मरण महर्षि उत्सवचनीय है—

‘एक दिन आकर देखा—किसी मित्र से मिलने जा रहे थे । कपड़े पहिनकर तैयार । देखा तो पार से अट्टहास करते कहा—बूब माये बल्लो, एक जगह जाना है । एक खोजा महिषा है, उनसे मिलने जाना है । साहित्य में रस लेती है । भीख खेगी । तब तक भी मैं महिषा मित्रों से मिलना बहुत संकोच की बात समझता था । पर इस मित्र का न साप छोड़ सकता था न अनुरोध । वह एक सम्पन्न धनी बिबवा खोजा पुबठी थी । बैतकस्सुपी की मुलाकात । परिचय देकर मेरा मित्र बुबराठी में कुछ मिल कर बातें करने लगा । बीच में दोनों मेरी खातिर द्विती भी बोझ लेते । कुछ देर बाद एक बाटिका कोई इस प्याछ बरस की, किन्तु स्वप्न की परी के समान सुन्दर, एक ट्रे में तीन सैमोनेड लेकर थीर गति से आई । प्रथम सम्मान मुझ गये अतिथि को देने के लिए पहले वह मेरी ओर बढ़ी । मैं मन ही मन बबरा उठा । जैसे इस मुसलमान लड़की का छुआ पानी विरू ? मैं भा’ करने को ही था कि उसकी माता ने कहा बुबराठी में “मा ना के नहीं विरमे ठेरे हाब का छुआ । और साप ही मुझरे बहा—पास ही में हिंदू होटल है, वहाँ से आपके लिए मैपाठी हूँ उसने नीकर का आवाज की “रामा” ।

और लड़की का हँसता हुआ मुँह मूल गया । उसने एक विचित्र दृष्टि मेरी ओर देखा । उसका स्पष्ट अभिप्राय था कि वह मुझसे पूछ रही है कि ! उसके हाथ का छुआ न पीकर उस सबे नीकर के हाथ का क्योंकर पी सकूँगा ।

और मेरी अंतःप्राप्ति ने मुझसे बिना पूछे ही कह दिया नहीं-नहीं मैं पिर्युगा बिटिया केजा सेजा। और तब वह बप्सरा ध्यानर बबेरती हुई मेरे निकट आई, अपनी जम्मे की कली बीसी रेंवकियों से गिलास उठा मेरे हाथ में दिया हाथी चुपचाप मेरा पीना देखता रहा। फिर उसने बड़े होकर अनुत्पाप के स्वर में कहा—“बड़ी गलती हुई। मैं नाहक समझा आप घास्त्री हैं सुमा-सूत का क्या करते होने। इसी से कभी मैंने आपसे जाने-पीने की बात पूछी ही नहीं। आप ऐसे दरियाविल हैं। और तब मैंने कहा—‘मित्र यह आज ही जीवन में पहलीबार कुछ थोड़ा है। मजा ऐसी सुन्दर बिटिया की भी बनहेकना की जा सकती है ? और फिर सब विषय बाठपीठ के स्वर्गित होकर साग-सान सुमा-सूत पर बाठपीठ हुई हम तीनों मित्रों की।”

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य चतुरसेन जी मित्रों के गहरे मित्र और शत्रुओं के भयंकर शत्रु थे। वे आत्म सम्मानी थे महत्वाकांक्षी थे। वहाँ उनके आत्म-सम्मान को किंचित मात्र भी आघात लगता था वे अपने को रोक न पाते थे। ब्रह्मचर्य में सत्य यह है कि उनको एक ब्रह्मचर्य सदैव चरकटा रहा और वह वा प्रत्याशित सम्मान का ब्रह्मचर्य प्रत्याशित सुस्थांकन का ब्रह्मचर्य साधना की प्रत्याशित प्रतिष्ठा का ब्रह्मचर्य। इस ब्रह्मचर्य ने ही व्यक्तिगत विद्वान का रूप धारण कर लिया था।

आचार्य चतुरसेन जी चिकित्सक के रूप में—

ऐसा कि हम पिछले पृष्ठों में लिखता चुके हैं कि आचार्य चतुरसेन जी ने अपने जीवन का प्रारम्भ एक चिकित्सक के रूप में किया था। बयपुर संस्कृत महाविद्यालय से सम्मान 'आयुर्वेदशास्त्र' की उपाधि देने के पश्चात् अपने चिकित्सा कार्य प्रारम्भ कर दिया था। आचार्य जी एक उच्च कोटि के साहित्यकार होने के साथ-साथ एक कारगर चिकित्सक भी थे। यही हम उनके चिकित्सा सम्बन्धी कुछ संस्मरण देकर प्रस्तुत ब्रह्मचर्य को समाप्त करेंगे।

डा० लक्ष्मीनाथदास शर्मा आचार्य चतुरसेन जी के परिवार के चिकित्सक थे और आचार्य जी स्वयं उनके। डा० साहब ने आचार्य चतुरसेन घास्त्री से अपनी चिकित्सा कराई थी। उसका विवरण देते हुए उन्होंने लिखा है “मैं पुराने नज्जे से परेदान था। आनिफ 'राइमाइटीज' लक्षण आठ वर्ष से चल रही

थी, नाक से बहबूदार बलगम आता था। डाक्टरों द्वारा से कोई काम नहीं-
 हा पाया था। इरविन अस्पताल में नासारापों के विशेषज्ञ डा० घोहमसिंह को-
 भी कन्सल्ट कर चुका था। उन्होंने दो बार नाक में पंचर मी किया। किन्तु
 फिर भी कोई काम न हुआ केवल आपरेसन अंतिम उपाय रह गया था।
 घास्त्री जी को मैंने अपने रोग का हाल बताया तो बोले 'मैं आपकी चिकित्सा
 करने और आपका यह रोग निश्चित रूप से खाता रहेगा। लेकिन बायबा
 कोबिए कि ईनामशारी से आप मेरी औपचि ४० दिन जाएँ। देखिये। इसमें
 कापरवाही नहीं होनी चाहिये। साथ ही आप मुझसे यह न पूछें कि क्या औपचि
 दे रहा हूँ।'

मुझे उनकी बातें मान लेम में भला क्या आपसि हो सकती थी। उन्होंने
 मुझे ४० दिन सेवन करने के लिए बैर के बराबर किसी औपचि की गोक्षि
 थीं। १५ दिन औपचि सेवन करने के बाद मुझे बहुत काम दिखाई दिया और
 एक मास में तो रोग बिल्कुल खाता रहा। दोप दस दिन की गोक्षि फिर
 मैंने खाई ही नहीं। मैं घास्त्री जी को बन्धबाद देने पहुँचा मैंने कहा 'घास्त्री
 जी आपकी औपचि ने वास्तव में जम्कार कर दिया।

मेरे भारोम्य काम से उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई। बोले 'माई! आप
 तोप बड़े डाक्टर हैं बड़ी-बड़ी ही बातें सोचते हैं। छोटी बातें आपकी नजर
 में नहीं आती।' इसके परभाव उन्होंने स्पूटन का दुष्टान्म बेते हुए कहा 'जैसे
 स्पूटन पैदा महान् बीजालिक छोटी बात न सोच सका इसी तरह आपने भी
 पंचर और आपरेसन की तरफ ध्यान दिया। लेकिन आपको तो सामारण सा
 रोग था। आप का कफ (बलगम) दूषित हो गया था। और मैंने 'गोक्षि'
 आपको दी थी वह साधारण 'ओपचि' बटी थी।'

आचार्य चतुरसेन जी में एक सफल चिकित्सक के सभी गुण विद्यमान
 थे। अपनी चिकित्सा में कुछ आरम-विरवास चिकित्सक का सर्वश्रेष्ठ मुम मान
 जाता है। आचार्य जी न आरम विरवास का अभाव न था। डाक्टर कर्णी
 नापयन धर्मों ने उनके वैद्य बीजन का एक संस्मरण उद्घुष्ट करते हुए लिखा है
 'वर बलक घास्त्री जी को अपने निदान पर बड़ा कुछ आरम-विरवास रूठा था।
 और यही उनकी चिकित्सा सम्बन्धी सफलता का कारण था। एक बार तो पण

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १३ अप्रैल १९६०, चिकित्सक चतुरसेन घास्त्री डा०
 लक्ष्मीनारायण धर्म, पृ ६७।

मारवाड़ी सेठ के केस में सिबिल सर्जन से शास्त्री जी की बहुत ठन पई। रोपी को तिरन्तर प्वर रहता बा और बहु बुझार में बहुत बक-सक भी बरता बा। सिबिल सर्जन का निवान बा कि रोगी को 'टाइफाइड' हो गया किन्तु शास्त्री जी का कबल बा कबल के कारण रोपी के पेट में मस सड़ र्हा है। इसीलिए जेठे प्वर और प्रकाप है। शास्त्री जी रोगी को एनीमा लगाने के पक्ष में बे और सिबिल सर्जन उनकी एक्सीक के बिरुद्ध। बहु कहता बा कि एनीमा देने से रोपी की हाकल बियड़ बाएगी। सेठ जी का शास्त्री जी में अटक बिश्वास बा फरक उनकी बात मानकर रोगी को दो बार एनीमा सबाया गया जिससे उसके पेट से समभग हो छेर मस की सूजी नाठें बाहर आई। अगले दिन ही रोगी प्वर मुक्त होकर भूख-भूख बिस्थाने सया। सिबिल सर्जन महोपय ने अगले दिन बेबा ठो बंग रह गए बोले 'टाइफाइड न होकर घायब पैरा टाइफाइड बा।'

आचार्य चतुरसेन जी की बिबिदता सम्बन्धी 'अमीरों के रोग' में इस प्रकार के कितने ही संस्मरण प्राप्त हो बाते हैं।

बिचित्ररु में प्रत्युत्पन्नमति का होना भी आवश्यक गुण माना गया है। आचार्य चतुरसेन जी में यह गुण भी पर्याप्त मात्रा में बा। उनकी बुद्धि कठिन से कठिन अवसरों पर भी स्थिर रहती थी। प्रत्युत्पन्नमतिस्व उनके स्वभाव की प्रमुख बिधेयता थी। उनकी इस बिधेयता को स्पष्ट करने के लिए उनके जीवन के कुछ संस्मरण ही पर्याप्त होंगे—

'बात सन् १९४७ की है। बिमानन के वगे बक रहे बे। घाम को जाठ बजे से कर्पयू कम जाता बा। साढ़े सात बजे एक मित्र शास्त्री जी के पास पहुँचे मित्र की पत्नी को बहुत कष्ट बा और कर्पयू सजने में सिर्फे आधा बंट बा सैप बा। आनन-अदान में शास्त्री जी कपड़े पहन कर उनके साथ हो लिए, कर्पयू की सीटी बजते-बजते बिस्ली में कित्ती प्रकार बहु उनके घर बाबिल हुए। मित्र की पत्नी के सिधु प्रसन्न हुआ बा। और कित्ती कारण से उनका एक स्तन पक गया बा। बेबीनी और पीड़ा से रोगिनी कणह रही थी। सिबिल शास्त्री जी ठो खाली हाप बे न कोई औपधि न केप न इन्जेक्शन न प्लास्टर क्या करें। शहर में कर्पयू लगा हुआ बा। अस्तुत' इस समय कोई हिकमत लड़ाने की जरूरत थी। उर्हींने रोगिनी की परीसा की और फिर कुछ बेर सोच

बिचार कर मित्र से बोले— मई, तुम्हारे घर में हस्ती तो होगी ही। मित्र
से भाए।

‘बोड़ा नमक और साबो।

नमक भी घर में ही निक गया।

‘अब बरा सा तेरा गरम कर ली।

और शास्त्री जी ने हस्ती और नमक की पोटसी बनाकर धरम तेरा में
डुबो कर उसका सेंक शुरू कर दिया। पाँच मिनट के सेंक से ही रोगिणी की
कटाहट बन्द हो गई। आधा घंटे की सिकाई के बाद स्नान-भूषण से दूब
और मबाव रिसने लगा। बबादबा कर बहु बबाव निकाला ३०-३५ सिकाई
की जो उत्तरोत्तर काम होता गया और २३ बंटे परचाए तो बहु
सो गई। किन्तु शास्त्री जी रात भर उसके उपचार में लगे रहे। सुबह रोगिणी
को कोई पीड़ा छेप न रही। दोस्त और बंधु दोनों ही के कर्तव्यों को शास्त्री जी
ने बखूबी निभाया।^१

इन संस्मरणों के अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन जी के बीच जीवन के अन्य
कितने ही संस्मरण प्राप्त हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास ‘मोक्षा’ की भूमिका
में स्वयं लिखा है। ‘माया का कोई ही मामांकित राजा रहा होया जिसकी
सेवा करने की प्रतिष्ठा मुझे न मिली हो।’^२

आचार्य चतुरसेन जी ने एक बार प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को स्वयं बीच
जीवन के संस्मरण सुनाते हुए कहा था ‘डा० अम्बेडकर उबर रोप से बहुत बिनो से
पीड़ित थे। उनके उस रोप को मैंने केबल भुट्टे खाकर ठीक कर दिया था।
मेपाल क प्रबान मनी को केबल ‘भबरल’ पहिलाकर ही उनको मैंने पुराने रोप
से मुक्त किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वयं ही प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक के एक
प्रश्न के उत्तर में अपने बीच जीवन के कितने ही अनुभव बतला दाले थे।

आचार्य चतुरसेन जी बीच होते हुए भी लड़िवादी न होकर नवीनता के
पक्षपाती थे। ‘संस्कृतम बीच होते हुए भी बहु चिकित्सा सम्बंधी सामुनिक
विज्ञान की लोको पबेपनाओं और सिद्धांतों को पूर्ण साम्यता देते थे। वैज्ञानिक

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अगस्त १९६०, चिकित्सक चतुरसेन शास्त्री, डा०
सहमीनारायण शर्मा, पृ ४०।

२ मोक्षा, आचार्य चतुरसेन, बूटे हुए तिहासन बीत्कार कर उठे।

प्रगति में वह विश्वास रखते थे। स्टेपस्कोप, म्स्डप्रेसर, इन्स्ट्रुमेन्ट मून परीक्षा मल परीक्षा एकदरे जादि आधुनिक निदान विधियों से वह अपने चिकित्सा कार्य में सहायता लेते थे। वह अक्सर कहा करते थे कि आयुर्वेद में वैज्ञानिक जोशों की बड़ी माटी मानस्यकता है और यदि इसमें शोध कार्य न किया गया तो यह विज्ञान एक दिन मर जायगा। आधुनिक विज्ञान और आयुर्वेद के समन्वय से उन्होंने 'आरोप्य शास्त्र' नामक एक काफ़ी बड़ा चिकित्सा सम्बंधी ग्रंथ भी अपने चिकित्सा काल में लिखा था जो केवल बीजों के लिए ही नहीं अपितु जनसाधारण के लिए भी बड़ा उपयोगी है। किन्तु बहुत दिनों से वह बाजार में उपलब्ध नहीं है।^१ बीसा कि 'रचना-परिचय' बाके अध्याय में हमने रिलताया है कि आचार्य चतुरसेन जी ने चिकित्सा सम्बंधी लगभग ४ ग्रंथ लिखे हैं।

आयुर्वेद और विज्ञान के समन्वय की चर्चा करते हुए आचार्य चतुरसेन जी ने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक से कहा था 'मेरा पूर्ण विश्वास है, कि यदि विज्ञान का उपयोग मृज्ज के कार्यों में हुआ तो मनुष्य की बीसत आयु बढ़ जायगी। कैंसर हृदयरोग रक्तचाप और सिफ़लिस इन चार रोगों का अभी तक कोई निश्चित निदान नहीं हुआ है, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि अगले दस वर्षों में विज्ञान इन रोगों पर विजय पा लेगा तब निश्चित ही मनुष्य अफ़ास मृत्यु से बच सकेगा।'^२ कुछ इककर उन्होंने आगे कहा "परन्तु सर्व यह है कि मुझ के बावज़ वैज्ञानिक आविष्कारों पर छ न आवें।"^३

आचार्य चतुरसेन जी स्वयं आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की नवीन जोशों पर मनन करने को सम्यस्त हो गए थे। वे रोगियों की चिकित्सा दोनों पद्धतियों के समन्वय द्वारा ही करते थे। उनके चिकित्सा सम्बंधी गहन मनन की छाप उनके कथा-साहित्य में भी यथ-सत्र प्राप्त होती है। आधुनिक विज्ञान की नवीन जोश हारमोन्स के विषय में चर्चा करते समय एक बार आचार्य चतुरसेन जी ने डा० लक्ष्मीनारायण घर्मा से कहा था संसार के लिए "हारमोन्स और नलिका विहीन चर्बियों" की बात चाहे गई हो किन्तु आयुर्वेद में "ओज" वातु के नाम से इसका उल्लेख बहुत पुराना है। 'ओज' शुक से भी

१ साप्ताहिक शिशुस्तान १७ अप्रैल १९६०।

२ धर्मपुर, ९ अगस्त १९४९, आचार्य चतुरसेन व्यक्तिगत एवं लिखार, पुनकार नाथ कपूर, पृ ४।

झंभी पातु है। इसी की पुष्टि इस नई बोज में भी की है।^१ आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यास 'बैद्याली की नगर बधू' में जीबक कोमार भूत्य नामक पात्र की रचना इन्हीं गणितविहीन प्रविषियों पर प्रकाश डालने के लिए ही की है। बूढ़े और कामुक राजा प्रसेनजित की चिकित्सा को जीबक बुझाया गया था किन्तु उसकी चिकित्सा से महाराज प्रसेनजित को लाभ न पहुँच सका था। राजकुमार बिम्बम से महाराज की धारीरिक अवस्था का वर्णन करते समय यह कहता है 'तनिक भी नहीं राजपुत्र मैंने उनके प्रथम ही कह दिया कि उनकी जीवन प्रविषियों और बुल्लक प्रविषियों निष्क्रिय हो गई हैं। हृदय पर बहुत मेघ चढ़ गया है। ... अतः रसायन से कोई लाभ नहीं पहुँचेगा।'^२

आचार्य चतुरसेन जी के समस्त चिकित्सा सम्बंधी ग्रंथों एवं संस्मरणों को पढ़ने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आचार्य जी एक सफल चिकित्सक थे। यहाँ एक प्रश्न और उठ सकता है कि इतने सफल चिकित्सक होते हुए भी अंततः जन्तु चिकित्सा कार्य त्याग क्यों किया ? उनकी जीवनी से स्पष्ट है कि चिकित्सा कार्य से संन्यास लेने के पश्चात् से उनके जीवन में आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गई थीं। एक बार डा० सखीनारायण शर्मा ने उनके इसी विषय पर प्रश्न किया था "आपने चिकित्सा कार्य से क्यों संन्यास किया।"

उत्तर देते हुए आचार्य चतुरसेन जी ने कहा था "बैद्य का जीवन त्याग और सेवा का जीवन होना चाहिए, यदि मैं भी उन्हें जी वीसा बैद्य बन सकूँ तभी मेरी बैद्यक सार्थक है।"

'मैंने जी बैद्य अपने समय में देहली में अत्यंत लोकप्रिय बैद्य प और शास्त्री जी के माड़े दास थे।'

"राज जी के चौक" में मैंने जी का 'मठक' था। मुबह से शाम तक उनके यहाँ मरीजों की भीड़ लगी रहनी थी। एक दिन शास्त्री जी मुबह से शाम तक मैंने जी के साथ उनके मठक में बैठे रहे मैंने जी दिन भर रोगियों में व्यस्त रहे। शाम को शास्त्री जी ने मैंने जी से उनकी संतुष्टि की चामी मांगी और सोलकर देखा तो बैद्य जी की दिन भर की भाव सिर्फ पीने दो रूप थी। किन्तु मैंने जी का जैसे भाव से कोई सरोकार ही न था वे बहुत ही भाँति उन्हें तो

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १७ अक्टूबर, १९६०, चिकित्सक चतुरसेन शास्त्री, डा० सखीनारायण शर्मा पृ २८।

२ बैद्याली की नगरबधू, आचार्य चतुरसेन पृ १६१-१६२।

रोगियों की सेवा में ही परम सन्तोष मिलता था। छात्रों की जगह बहुत प्रभावित हुए थे। मर्त्यों की के लिए उनके मन में बड़ा आंदोलन था। इन्होंने मर्त्यों की सेवा को अपने सपनास "बोली" में छात्रों की सेवा में चित्रित भी किया है।

इसके पश्चात् छात्रों की सेवा में बड़ा "अपनी कार और अपनी कोठी के लिए रोगियों से सम्बन्धी-सम्बन्धी फीसें बसूल करना चिकित्सा कर्म का उद्देश्य नहीं होगा चाहिए।

छात्रों की सेवा का इच्छा एक निरस्तुम्भ (फी) औपचारिक बोझों का भी था और उन्होंने इसके लिए अपने मकान में एक कमरा विशेष रूप से बनवाया था किन्तु उनकी इस इच्छा की पूर्ति न हो सकी।^१

आचार्य अनुरोध की के सम्पूर्ण जीवन पर एक दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन त्याग और उपस्था का जीवन था। उन्होंने अपने जीवन का प्रारंभ एक राजकीय के रूप में किया था और अंत एक साहित्यकार के रूप में। चिकित्सक रह कर वे एक सीमित क्षेत्र की एक निश्चित काम तक ही सेवा कर सकते थे किन्तु साहित्यकार होकर उन्होंने कुछ ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत कर दी हैं कि उनके द्वारा सम्पूर्ण संसार का अनन्त काम तक वे कल्याण कर सकते हैं। अभी उन्होंने केवल भारत के ही पाठकों के हृदय में स्थान पाया है वहीं के अनेक हृदयों को साहित्यमय से व्यापित किया है किन्तु अब वह दिन दूर नहीं है जब उनकी रचनाएँ विश्व के पाठकों के हृदय का द्वार बन पायेंगी और उनकी कीर्ति उन्नी प्रकार विश्वव्यापी हो जायेगी जैसी टास्टराय इयूमा इयो वास्टरस्काट योर्की आदि विदेशी लेखकों की है। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी भाषा जापी दूसरे देशों की भाषियों के पुत्र माने के साथ-साथ अपनी सुदृढ़ के छिपे हुए कामों की भी पहचान लें।

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७ अगस्त, १९६०, चिकित्सक अनुरोध छात्रों, डा० अमीनारामच घर्मा।

अध्याय—२

आचार्य चतुरसेन की रचनाएँ एवं उनके कथा-साहित्य
का वर्गीकरण

आचार्य चतुरसेन जी की रचनाएँ एवं उनके कथा-साहित्य का वर्गीकरण

आचार्य जी एक बहुप्रतिभाशाली साहित्यकार थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में बड़े-से ही पाँच व्यक्तियों के द्वारा करीब १६० रचनाएँ लिखीं। आपने विविध विषयों पर लगभग १९० रचनाएँ की हैं। आप द्वारा प्रस्तुत रचनाओं में कनिष्ठ रचनाएँ कहानी, नाटक एवं स्तव्य गद्य की हैं। वहीं हम उनकी रचनाओं को क्रमक्रमानुसार प्रस्तुत कर रहे हैं —

आचार्य जी द्वारा रचित पूर्ण एवं अपूर्ण, प्रकाशित पुस्तकों की सूची (कालक्रमानुसार)

संख्या	नाम पुस्तक	विषय	प्रथम बार कब प्रका- शित हुई	प्रथम बार कितने प्रकाशित किया	विवरण
१	शिशुओं की छाती पर चहरीसी घुरी माथेर साकिरा	विमला विवाह की कुलीधियों पर एक गिनत गुरितका घरीर विमान संबंधी गरिपम गुरितका	१९११	स्वयं	अप्राप्य
२	अप्राप्यतरण	रोनी की गार-यमाल देवा और पापारण शिक्रिता संबंधी गुरितका	१९१५	स्वयं	अप्राप्य
३			१९१५	स्वयं	अप्राप्य

1	2	3	4	5	6
४	पेयज विभागत	भाषार्थ की का सर्व प्रथम उपस्थाप	१९१४	सर्व (मेरी भाष्य कहानी में बाह्र दै उलका कुछ इसको संशोधित करके अथ भाषार्थ की प्रकाशित किया गया है)	अप्रकाशित ही रहा
५	हरस्य की परस	उपस्थाप	१९१५	हिंदी एलाकर कार्यालय बम्बई	अप्राय
६	व्यवहार	इसी का मुद्रणती अनुवाद	१९२४	बीजबीसवी कार्यालय बंबई	अप्राय
७	अंतस्तान	हिंदी का सर्व प्रथम बहकास्य	१९१८	सर्व	अप्राय
८	इसी का मण्डलिकमुवाद	उपस्थाप	१९२१	हिंदी एवं एलाकर, बंबई	अप्राय
९	सामाज्य और अठहूनीय	उपस्थाप	१९२६	सर्व	अप्राय
१०	बनाय स्वरेस	इसी का मुद्रणती अनुवाद	१९२१	भाषी एवं भंडार, बंबई	विटिठ एरकार मे वष कर की थी।
११	उत्सर्ग	उपस्थाप	१९२६	सर्व	अप्राय
१२	पव्याप्य	उपस्थाप	१९२४	सर्व	अप्राय

करने की आजकालीपूर्व पुस्तिका

भारतीय संस्कृति, साहित्य ऐतिहासिक और सामाजिक प्रवृत्ति से परिपूर्ण विवेचनात्मक ; युगबोधि युग २५.०० गुणों का गुरुत्व एवं महत्त्व सिद्धि पंजाब यह लेख में प्रकाशित भारत वर्ष में सरकार द्वारा प्रकाशित

ब्रिटिश कालीन भारत

क्यों लेख में ब्रिटिशों द्वारा युद्धों के कारण छिद्र पंजाब में भविष्य में भारत का निर्माण किया होगा यह

हिंदू समाज में चरित्र और राष्ट्र निर्माण के विकास संबंधी पत्र-व्यवहार भारत में १९२१ से १९३० तक भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की विवेचनापूर्ण राजनीतिक पुस्तक

उपन्यास

कहानी संघर्ष

संघर्ष में हुई राष्ट्र-देवता का संघर्ष के कारण और उसका परिणाम

राजनीतिक पत्रों का हिंदी भाषांतर

स्वदेशी एवं राष्ट्रीय ज्ञान साधारण ब्रिटिश विज्ञान, औद्योगिक, संबंधी एवं युष्मिष्टान्त एतों के आधार पर लिखा गया उपन्यास

ब्रह्मचर्य एवं संघर्ष ज्ञान संबंधी युद्धों के लिए पत्र प्रदर्शनक पुस्तक

१२ यह वर्ष, क्यों और फिर

१३ हिंदू राष्ट्र का नव निर्माण

१४ २१ जनवरी १० भारत में ब्रिटिश राज्य

१५ हृदय की व्याध

१६ मयूह

१७ गोम सभा

१८ नरर के पत्र

१९ भारतीय शासन

२० यथात का म्याह (पूर्णाङ्कित)

२१ ब्रह्मचर्य शासन

पत्र

गंगा पुस्तकालय सञ्चालक

ब्रह्मचर्य

गंगा पुस्तकालय सञ्चालक

१	२	३	४	५	६
२२	मुझे जीवन	लड़कियों को आरम्भ से ही अपना जीवन किस प्रकार निर्माण करना चाहिए और विकास के बाद अपना जीवन किस प्रकार सुग्री बना सकती है विषय पर उपदेशात्मक पुस्तक	१९३३	"	
२३	अमीरों के रोम	अमीरों के स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी पुस्तक	१९३३	स्वयं	
२४	पुत्र	माता-पिता को अपनी संतान और विशेष कर पुत्र को किस प्रकार सिलित एवं पालन करना चाहिए	१९३३	"	
२५	क्यादर्पण (हयारी बुकिया कीमी हों)	कन्याओं को शिक्षा उपदेश बोधमोक्ष का प्राथमिक ज्ञान विवाहिक जीवनयापन संबंधी पुस्तक	१९३३	"	
२६	रजकण (बाबुलिन)	कहानी संग्रह	१९३३	कर्मयोगी प्रेस इलाहाबाद	
२७	अमर अभिलाषा (बहुते जीयू)	उपन्यास	१९३३	साहित्य संघटन दिल्ली	
२८	आदर्श बालक	बच्चों के संर्बन्ध की आदर्श उपदेशात्मक कहानियाँ	१९३३	मेखनछ मिट्टेरकर पब्लिशर्स घरं कलकत्ता	
२९	वीर गाथा	बच्चों से संबंधित जीष्णायुर्ब कहानियाँ	१९३३	साहित्य संघटन दिल्ली	

३०	इस्लाम का विप्लव (भारत में इस्लाम)	इस्लाम धर्म का इतिहास और उसका भारत में आगमन	१९३३
३१	बुद्ध और बौद्ध धर्म	बुद्ध की जीवनी और धर्म का विस्तार विवेचन	१९३३
३२	धर्म के नाम पर	धर्म की व्याख्या उसकी ओट में समाचार पाप, उन्नी, भयंकर परिणाम समाज में अथ विप्लव की व्याख्या राक्षस कति-कारी सामाजिक पुस्तक	१९३३
३३	पराजित गांधी	महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन के कि-सुसा के कारणों पर वर्तमान प्रकाश ऐतिहासिक नाटक	१९३४
३४	अमर राक्षस (अमरनिष्ठ)		स्वयं
३५	आत्मशास्त्र	उपन्यास	राष्ट्रीय मंडल विस्सी
३६	केर और उनका	केर संबंधी ज्ञान	
३७	राष्ट्रीय		
३८	प्राच्य		
३९	हिन्दुओं का जीवन	प्राच्य के विपरीत प्राचीन और वर्तमान मनीषियों के प्रमाण	१९३५
४०	राजपूत बंधु	राजपूतों की बीररूप कथाओं का सर्वप्रथम ध्वन्यात्मक एकांकी	मध्यभारत विन्नी राक्षस अप्राच्य समिति देवी
४१	मेघनाद	राजपूतों के उत्कर्ष की कथाओं का संक्षेप	
४२	अनीतनिष्ठ	गीतात्मक नाटक	शाखा मंदिर विन्नी
४३	जवाहर	ऐतिहासिक नाटक	
४४		पराजित गणराज्य	१९३७

मोदीसास बनारसीबाग
लाहौर
विस्सी रो

१	२	३	४	५
---	---	---	---	---

४३ मुक्त बाइपाहों की बच्चों के लिए कहानियाँ
र.मोती बाई
(मुक्त बाइपाहों
की सतक)

४४ सीतापय
वैचारिक नाटक

४५ विदुषकविजय
४६ राजसिंह

साहसपूर्ण बीरता की ऐतिहासिक कहानियाँ
ऐतिहासिक नाटक

४७ मुक्त चिन्किटा
साधारण शैली चिन्किटा विज्ञान

४८ आरोप्य प्रवेष्टिका

विद्यार्थियों के लिए स्वात्म्य एवं सटीर विज्ञान

४९ शैली राज्ञ
५० नीलमणि
५१ भोरपय
५२ सीतापय
५३ काम कला के भेद

बाब के लिए कुछ-सूट-सूट बहाइयाँ
उपन्यास
वैचारिक नाटक
वैचारिक नाटक
काम विज्ञान शैली काव्ययज्ञ पुस्तक

५४ एषाकल्प

एषाकल्प के अतीन्द्रिय प्रेम भाव एकांकी
नाटक

१९३८ मेहरपंख लक्ष्मणराव
काहीर

१९३९ गंगा पुस्तकमाला लखनऊ
एस० एस० भटनागर,
उदयपुर

१९४० सस्ता साहित्य मंडळ
रिस्की

१९४० रिस्की के कोई प्रकाशक
अत्राय्य

" १९४१ पटना के कोई प्रकाशक
१९४० मेहरपंख लक्ष्मणराव काहीर

" १९४३ एस० आर० सेन एंड
कम्पनी रिस्की

संशोधित परिशिष्ट नाम श्रिया श्रियो
संस्करण रिस्की के के लिए मिला गया
प्रकाशन में छया सर्वप्रथमरीटिवोरूपक

२२	द्वितीया भाषा और साहित्य इतिहास का इतिहास के इसकी सूचिका सिन्धी का	मेहरबख्त	तत्पश्चात्
२६	मुसलमानों की भाषा	साहीर	स्वयं
२७	संस्कृत की भाषा	मीरमनसुख	द्वितीय वेदकी
२८	सिन्धी भाषा का इतिहास	स्वयं	
२९	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३०	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३१	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३२	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३३	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३४	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३५	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३६	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३७	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३८	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
३९	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	
४०	संस्कृत भाषा का इतिहास	स्वयं	

४०. सत्यदीप

१९५१ पंजाब पब्लिशिंग कम्पनी
 १९५२ आगरा स्वयं

१	२	३	४	५	६
---	---	---	---	---	---

७१	वीर आवाकिय	समस्या परिण कशुक्तियाँ	१९५२	स्वयं	
७२	साक्षात्	मुपलक्षणीय संघर्ष	"	"	
७३	अनजन	काम विद्यालय से संबंधित शैक्षणिक जीवन की कठिनाइयों का विश्लेषण और उन्हें दूर करने के उपाय	१९५२	"	
७४	मोट के पत्रों में चिह्नो की कठोर	राजनीति विषयक		"	
७५	कैरी	कहानी संघर्ष	"		अप्राप्य
७६	दुरदा में कावे कर्तु	"	"	"	"
७७	सोने की पत्नी	"	"	"	"
७८	आशादास	"	"	"	"
७९	कमल किशोर	"	"	"	"
८०	शियाएकारई की चिह्निया	"	"	"	"
८१	आरोग्य पाठ्यक्रम	स्वास्थ्य एवं शरीर विद्यालय संबंधी विद्यार्थियों के लिए पुस्तक	१९५२	एस एंड एंड कम्पनी दिल्ली	
८२	१२ बाल	बॉपी बारी नाटक		आसमादास एंड संघ दिल्ली	
८३	पगपनि	उपन्यास		"	
८४	अपराधिता	विद्यार्थियों के लिए हिंदी साहित्य का समिप्य परिचय		राजपाम एंड संघ दिल्ली	

८३	मुलमुल भारत	मुक्त कालीन मनोरंजक कश्चिनियां	१९५२	दिल्ली से प्रकाशित	अप्राप्य
८६	बर्ना रोड	कश्मीरी संस्कार	१९५३	स्वयं	
८७	बहल-बहल	उपन्यास	"	श्रीपरी पंड संस	
८८	पाल के मुक्ति- बाल	भारतीय स्वाधीनता संग्राम के नायकों की जीवनियों विद्याविधियों के लिए	"	एम० गुलाबसिंह पंड संस देहली	
८९	गंभीरबाह	अर्थ, बलि और गंभीर अनुभव पर आधारित सिवालय काव्य	"	स्वयं	
९०	भियों के रोम और उनकी चिकि त्सा	स्वास्थ्य समु संस्करण	"	श्रीपरी पंड संस बादायजरी	
९१	दुयारियों के मुल पत्र	स्वास्थ्य एवं काम विज्ञान	"	स्वयं	अप्राप्य
९२	अविवाहियों के वैधीय मुल पत्र	स्वास्थ्य एवं काम विज्ञान	"	अंतराय कपूर पंड संस देहली	
९३	छत्राल	ऐतिहासिक नाटक	"	स्वयं	अप्राप्य
९४	संकेत बीजा	कश्मीरी संस्कार	१९५४	स्वयं	
९५	पञ्चा शाह की पतन	"	"	"	
९६	कासरी के कूल पर	राजनीतिक भाष काव्य	"	"	अप्राप्य
९७	अपेक्षाकृत्या का शामल	स्वास्थ्य एवं कामविज्ञान	"	"	
९८	गुलाबका के रोम स्वास्थ्य	स्वास्थ्य	"	"	

1	2	3	4	5	6
---	---	---	---	---	---

१९	बाहार और चीन स्वस्थ	पाक विज्ञान एवं गृहस्थ विज्ञान	१९३३	स्वयं	अप्राम्य
२००	जाप कैंसे अपुर	स्वास्थ्य एवं काम विज्ञान	१९३४	"	अप्राम्य
२०१	मीरें वो सफरी है	स्वास्थ्य	"	"	अप्राम्य
२०२	बन्ने कैंसे पाके	स्वास्थ्य	"	"	अप्राम्य
२०३	बन्ने कैंसे पाके	स्वास्थ्य	"	"	अप्राम्य
२०४	जीनी का रलोई-कार	पाक विज्ञान एवं गृहस्थ विज्ञान	"	"	अप्राम्य
२०५	विवाहित चीन का जार्नल	स्वास्थ्य एवं काम विज्ञान	"	"	अप्राम्य
२०६	पत्नी प्रवर्धिका	पत्नी के लिए पतिपूज, पति-परिचरम एवं पति के प्रति कर्तव्य	"	"	अप्राम्य
२०७	बाकमपीर	उपवास	"	"	अप्राम्य
२०८	सोमनाथ	उपवास	१९३४	स्वयं	अप्राम्य
२०९	बर्गुब	उपवास	"	"	अप्राम्य
२१०	जाप अधिक कैंसे	स्वास्थ्य एवं जीवन	"	"	अप्राम्य
२११	बुंदर का सफरी है	स्वास्थ्य एवं जीवन	"	"	अप्राम्य
२१२	महारा आणम और वंदुस्ती	स्वास्थ्य एवं जीवन	१९३३	"	अप्राम्य
२१३	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१४	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१५	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१६	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१७	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१८	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२१९	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२०	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२१	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२२	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२३	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२४	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२५	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२६	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२७	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२८	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२२९	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३०	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३१	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३२	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३३	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३४	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३५	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३६	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३७	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३८	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२३९	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४०	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४१	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४२	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४३	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४४	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४५	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४६	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४७	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४८	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२४९	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य
२५०	मणिकर्षा	"	"	"	अप्राम्य

११२	बच्छा-शाओ	स्वल्प	"	१९४४	छात्रा प्रकाशन भायकपुर
११३	बच्छा वियो	"	"		
११४	मरीर कपड़े पर की सफाई	"	"		
११५	सोपनी बुलार— मनेरिया	"	"		
११६	साठ हवा	"	"		
११७	प्रकाश हवा का आकामन	"	"		
११८	छूत की बीमारियां	"	"		
११९	उन्ही रोकथाम	"	"		
१२०	तमालू का गुलाम	"	"		
१२१	स्वामाधिक विक्रियाएँ	"	"		
१२२	बरबाद करनेवाली वो मुवीकट्टे— कर्वा बौर सतब	"	"		
१२३	बीमारी फीलाने	"	"		
१२४	बांसे कीड़े-मकोड़े	"	"		
१२५	धमा	"	"		
१२६	जुजा	"	"		
१२७	उत्पन्न हरिषन्न	"	"	१९४४	स्वयं
१२८	साहित्य सन्ध्या	"	"	"	"
१२९	बयं रसाम (को जागो से)	"	"	"	"

१	२	३	४	५	६
१२७	पञ्चपापा पर मुक्त महिला प्रभाव		१९२५	सारखा प्रकाशन	भायसपुर
१२८	सन्ध्या के विकास संस्कृति एवं इतिहास की कहानी		"	"	"
१२९	मातृकथा	रिश्तों के जामने योग्य स्वास्थ्य के नियम तथा कर्षों की पाठ्य विधि	१९२६		
१३०	स्त्री मुक्तोप	घाईस्व्य बर्नसिखा	१९२६	पी० सी० डार्लन योपी असीगङ्क	
१३१	जाहनी भोजन	स्वास्थ्य	१९२७	राजपाठ एंड संस	
१३२	स्वास्थ्य एका	"	"	"	"
१३३	निरीय बीजन	"	"	"	"
१३४	जो बया कपाका बहु कही बया	प्रोङ एवं मानसिक विकास			
१३५	ह्याउ एरीर	स्वास्थ्य एरीर बिज्ञान	"		
१३६	बड़े माहमियों का बकपन	प्रोङ विद्या	"		
१३७	अच्छी आरतें		"		
१३८	परमराज	साम्राट बसोक के जीवन पर नाटक	१९२७	राजपाठ एंड संस	रेहमी

१३९ भारतीय संस्कृति संस्कृति का गुरुद्वय ग्रंथ
का इतिहास
१४० गोपी उपन्यास
१४१ बट्ट संकन संस्कृत के बाठ प्रसिद्ध भाषकों का हिंदी
एकांकी
१४२ सोना और पून उपन्यास
१ भाग
२ भाग

रस्तोमी एंड कम्पनी
मेरठ
राजहंस प्रकाशन देहली
भारत भारती प्राइवेट
सिमिटेड दिल्ली
राजहंस प्रकाशन, दिल्ली

१९५८
"

इसकी पचास वर्षों
एवं इस भागों में
सिलाने की आचार्य
जी की योजना थी
किंतु केवल वो ही
भाग सिख सके
पूछते माग का
उत्तरार्द्ध उनकी
मृत्यु के बाद प्रका-
शित हुआ था।

१४४ आभा
१४४ उपन्यास
१४५ मेरी प्रिय कहानियाँ " कहानी संग्रह
१४६ आना इलाक़ भाग चिकित्सा ग्रंथ
गुरु कीभिए
१४७ साल पानी उपन्यास
१४८ बगुला के पंग
१४९ रासाल

हिंदी पाकेट बुक
राजपाल एंड संस देहली
" १९५९
राजहंस प्रकाशन, दिल्ली
बय प्रकाशन, वाराणसी
राजपाल एंड संस दिल्ली
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

,
" १९५९
,
"
" १९६१

१	२	३	४	५	६
---	---	---	---	---	---

१२०	महूपात्रि की बट्टारों	"	१९९१	प्रभात प्रकाशन	
१२१	बिला विद्या का महूर	"	"	भजनगा पाकेट बुक लिस्सी	
१२२	तखर हल के दो बुत	"	"	राजपाम एंड संव लिस्सी	
१२३	हरण निर्मलन	उपस्थाप यह उपस्थाप आचार्य जी के 'रक्त की प्यास' नामक उपन्यास के कथानक पर ही आधारित है।		साएरा प्रकाशन सायमपुर	
१२४	सोया हुआ लहर	कहानी संग्रह	१९९१	राजपाम एंड संव	
१२५	दुलबा कामे कहे	"	"	"	
१२६	बरती और बातमान	"	"	"	
१२७	बाहर बीतर	"			
१२८	कहानी लख हो गई	"			
१२९	सोनी	उपस्थाप			

कुछ अन्य अप्रकाशित एवं अपूर्ण रचनाएँ

अपरामी—

यह एक अचूक उपन्यास है। केवल हस्तलिखित तीस पृष्ठ प्राप्त हैं। इनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस उपन्यास की रचना उपन्यासकार किसी वातिकारी घटना से प्रभावित होकर कर रहा था। उपन्यास का रचनाकार सन् १९१८ आठ होता है। पाण्डुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर २४-८ १८ लिपि पढ़ी हुई है। (इसे 'मेरी मातृकहानी' में सप्रहीत किया गया है।)

दो—

यह भी एक अचूक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके लगभग दो सौ हस्त लिखित पृष्ठ प्राप्त होते हैं। इसमें द्वितीय महायुद्ध के पूर्व के जापान की आंतरिक दशा का वर्णन प्राप्त होता है। प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथाएँ जापान की राजकुमारी ईबो के चरित्र के चारों ओर घूमकर घटती हुई आठ होती हैं। प्रासंगिक रूप से इसमें हिटलर की कथा भी आ गई है। कथा अंत में किस दिशा की ओर जाती इसका भाव इस अचूक उपन्यास से पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। इस उपन्यास का प्रारंभ आचार्य अनुरासेन भी ने सन् १९४९ के समय में किया था। किन्तु किन्हीं कारणोंवशा यह अचूक ही रह गया। बाद में उनका विचार इस उपन्यास की सामग्री को अपने 'सोना और जून' उपन्यास के आठवें भाग में लेने का था किन्तु वे 'सोना और जून' के दो ही भाग पूर्ण कर सके। इसी से यह उपन्यास भी अचूक रह गया। (इसको उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुब बंडोसेन भी ने पूर्ण किया है। प्रकाशित होने का रहा है।)

चैतन्य—

महात्मानु चैतन्य व जीवन से संबंधित इस उपन्यास का लेखन उन्होंने प्रारंभ ही किया था। हस्तलिखित केवल चारित्रिक पृष्ठ प्राप्त हैं। इनमें केवल चैतन्य के जन्म की घटना एवं उस कास की स्थिति पर प्रकाश प्राप्त होता है। घटनाओं का नाम अल्पवस्थित है ऐसा मान होता है कि इन पृष्ठों में वे उपन्यास का ढाँचा बड़ा करने की योजना बना रहे थे।

आर्य आदर्श—

प्रस्तुत उपन्यास के विषय में आचार्य अनुरासेन की का कथन था कि यदि यह पूर्ण हो गया तो यह मध्य संबंधित उपन्यास होगा। इसके हस्तलिखित केवल

बीस पृष्ठ प्राप्त हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास को लखना प्रारम्भ किया किन्तु किन्हीं कारणों से उन्होंने इसे उठाकर बीच ही में रखा दिया। बहुत सम्भव है (जैसा कि उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक से कहा था) कि प्रस्तुत उपन्यास के विषय में समस्त प्राप्त सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात् ही उन्होंने इस उपन्यास को लिखना उचित समझा हो। इसीलिए इसका लेखन उन्होंने स्थगित कर दिया हो। इन प्राप्त बीस पृष्ठों में उन्होंने प्रथम बेद से पूर्ण का इतिहास प्रकृत्य आदि के विषय में संक्षेप में बतलाया है। उसके पश्चात् कथा प्रारम्भ होती है। शूद्र राजा महाभयनन्द के पुत्र जन्म से। इसके पश्चात् महाभयनन्द के अनुचर उदयेन द्वारा एक स्त्री बसात् उठा ले जाने की वेष्टा का वर्णन है। यही जालक्य एवं राजस का मिलन होता है। जालक्य स्त्री की रक्षा के लिए उदयेन के सामने लड़वार लेकर आ जाता है। यही राजस भी जालक्य के मत का समर्थन करता है। केवल इतनी ही कथा प्रस्तुत बीस पृष्ठों में प्राप्त है। इस उपन्यास का प्रारम्भ आचार्य जी ने सन् १९२९ के पून बुधवार माह में किया था। उन दिनों प्रस्तुत प्रबन्ध का लेखक उनके समीप ही था। इस विषय में उनसे उसका वातावरण भी हुआ था। जिसका वर्णन बीस पृष्ठ वाले अध्याय में किया गया है।

इसके अतिरिक्त आचार्य जी की कुछ और रचनाएँ भी अभी अप्रकाशित हैं। इनमें प्रमुख हैं—

१ रसार्णव-भाष्य—यह एक चिकित्सा सम्बन्धी ग्रंथ है।

२ मिथुन शास्त्र—यह एक काम-कला सम्बन्धी ग्रंथ है। इसमें आचार्य जी ने स्त्री पुरुषों के पारस्परिक वैदिक एवं आध्यात्मिक सम्बन्धों की सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचनाएँ एवं व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं।

३ आत्मगीत उपन्यास का उत्तरार्ध—इसमें उपन्यासकार ने अपने 'आत्मगीत' नामक उपन्यास में बर्णित घटनाओं के माते की कथा की है। वास्तव में यह उन्नीसव्यास का उत्तरार्ध है जो किन्हीं कारणोंसे प्रकाशित न हो सका था। संभव है कि आत्मगीत उपन्यास का दूसरा संस्करण होने पर यह सामग्री भी उसके साथ प्रकाशित हो जाय। इसमें आत्मगीत के वाचनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें औपन्यासिकता पर इतिहास हावी है।

४ भारतीय संस्कृति का इतिहास (उत्तरार्ध)—इसका पूर्वार्ध एक हजार पृष्ठों में प्रकाशित हो चुका है। उसमें आपने भारतीय संस्कृति के मध्य युग तक का इतिहास दिया है। उसके आगे का इतिहास प्रस्तुत अप्रकाशित ग्रंथ में है। इस ग्रंथ का भी कुछ बंध अपूर्ण रह गया है।

अब हमने आचार्य अनुराधन जी द्वारा रचित पूर्ण एवं अपूर्ण प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकों की कालक्रमानुसार सूची प्रस्तुत की है। किम विषय की बातें ही पुस्तक है इसकी सूचना भी प्रस्तुत सूची से प्राप्त हो जाती है। इसी कारण अब यही विषयानुसार पुस्तकों की सूची पुनः प्रस्तुत करना व्यर्थ ही है। प्रस्तुत प्रबन्ध में हमें केवल आचार्य अनुराधन के कथा-साहित्य का अध्ययन करना है। कथा-साहित्य में केवल कहानी और उपन्यास को स्थान दिया जाता है। आचार्य अनुराधन जी के सब मिलाकर २९ उपन्यास एवं २३ कहानीसंग्रह प्रकाशित हुए हैं। यही हम उनके इन समस्त उपन्यासों एवं कहानियों के वर्गीकरण पर ही विचार करेंगे। वर्गीकरण के पूर्व यहाँ हम "उपन्यास" एवं कहानी के विभिन्न तत्वों एवं प्रकारों पर विचार करना आवश्यक समझते हैं।

उपन्यास के तत्व—

उपन्यास के छे प्रमुख तत्व माने गए हैं। इन्सोन ने इन तत्वों का नाम १ कथानक २ पात्र ३ कथोपकथन ४ दृष्टिकाल (वातावरण) ५ टीसी तथा ६ उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना व्याख्या अथवा जीवन-दर्शन दिया है।^१

उपन्यास के यही छे तत्व कथनग सभी विज्ञान मानते हैं। कुछ विद्वानों ने "जीवन दर्शन के स्थान पर" "उद्देश्य" को छठा तत्व माना है।^२

उपन्यासों के प्रकार—

उपन्यासों के विभिन्न दो आधारों पर किये जा सकते हैं। प्रथम तत्वों के आधार पर और दूसरे वर्ण्य बस्तु के आधार पर। तत्वों के आधार पर उपन्यासों को निम्न वर्णों में विभाजित किया जा सकता है—

१ कथानक प्रधान

२ चरित्र प्रधान

१ दि लवडी आक लिट्रेचर, पृ १७०।

२ काव्यशास्त्र डा० जयदीप मिश्र पृ ८३।

साथ ही देखिये साहित्यालोचन डा० इयामनुवरदास पृ १९२।

१ माटकीय

२ वातावरण प्रदान

४ ढीली प्रदान

६ उर्दस्य प्रदान

जिस उपन्यास में जिस तरह का प्राबाल्य होता है उस उपन्यास को उसी वर्ग के उपन्यासों में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कथानक प्रधान उपन्यासों में कथानक ही केंद्र में रहता है। उसमें अन्य तत्वों की प्रधानता न होकर केवल कथा विकास घटनाओं द्वारा ही किया जाता है। अन्य तत्वों का समावेश केवल घटनाओं के स्पष्टीकरण के लिए ही किया जाता है।

इस प्रकार चरित्र प्रधान उपन्यासों में उपन्यास का ढाँचा चरित्रों पर आधारित होता है। इसमें पात्रों के चरित्र का प्रस्तुतम एवं विकास घटनाओं के द्वारा न होकर घटनाओं का सूत्रपात पात्रों के द्वारा होता है।

इसी प्रकार ढीली वातावरण और उर्दस्य प्रधान उपन्यासों में सभी वातावरण और उर्दस्य का प्राबाल्य होता है। यदि ढीली प्रधान उपन्यासों में ढीली प्रायः होती है तो वातावरण प्रधान उपन्यास में वातावरण। ढीली प्रधान उपन्यासों में उपन्यासकार की ढीली अपनी विविधता और रोचकता रखती है। यह ढीली अत्यन्त काव्यात्मक अथवा टकसाजी हो सकती है। उदाहरण के लिए बाणभट्ट की काव्यमयी अपनी सभी वाक्यावली एवं समास पदावली के लिए प्रख्यात है। इसी प्रकार वातावरण प्रधान उपन्यासों में यह विशेषता होती है कि पाठक अपने को उपन्यास में विहित युग के अन्तर्गत निश्चय करना हुआ पाता है। वह जोड़े समय के लिए मूक जाता है कि वह वर्तमान युग का व्यक्ति है। यह वातावरण की सृष्टि लेखक विभिन्न दृश्यों के चुनाव और वर्णन द्वारा करता है। उर्दस्य प्रधान उपन्यासों में कथानक किसी उर्दस्य या समस्या को लेकर चलता है।

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर—

उपन्यासों का सूत्रपात वर्गीकरण वर्ण्य वस्तु के आधार पर किया जाता है। विचार से उपन्यासों को प्रागैतिहासिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक वैज्ञानिक आर्थिक आदि अनेक विधियाँ किये जा सकते हैं।

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर आधार्य अनुरोधन जी के उपन्यासों का वर्गीकरण—
आचार्य जी के सबसे उपन्यासों को वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से हम निम्न
चार वर्गों में रग सकते हैं—

- १ प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास
- २ सामाजिक एवं राजनीतिक उपन्यास
- ३ मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- ४ वैज्ञानिक उपन्यास

अब हम यह दसन का प्रयत्न करेंगे कि ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक एवं वैज्ञानिक उपन्यास कौन होते हैं तथा आचार्य जी के कौन कौन से उपन्यास किन-किन वर्गों में रखे जा सकते हैं। प्रथम हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों पर विचार करेंगे कारण आचार्य जी एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही अधिक विख्यात हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास —

जी० एम० इर्बीस्मिथ ने एक स्थान पर लिखा है “नीरस इतिहास सच्चा इतिहास नहीं, कारण बीनी बटनार्गे कभी रसहीन होकर नहीं पटी थी।”^१ इसी कारण एक विद्वान ने यहाँ तक कह डाला था कि “इतिहास में नामों और तथ्यों के अनिश्चित सब कुछ वास्तविक नहीं और उपन्यास में नामों और तथ्यों के अनिश्चित सब कुछ वास्तविक है।” अंद्रेजी समाजवादी वास्तु वैज्ञानिक ने ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना करते हुए एक प्रवाह में पकी हुई प्राचीन दुर्ग मीनार की छाया से की है। जस नहीं है। बिल्कुल परिवर्तनशील है परंतु मीनार पुष्टनी है और अपने स्थान पर खड़ी हुई है। ऐतिहासिक उपन्यास सचक की भाँति समझा है कि उसका पैर तो इस पृथ्वी पर ही है वह सच इस युग और विषय में खड़ा है। परंतु उसका स्वरूप पुष्टतन है। और फिर भी नहीं है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखते हैं।^२ इतिहास और कथा का पायक्य विभिन्न रूप में विज्ञान युग का स्वाभाविक परिणाम है। और यह लगभग दो सत्राशियों पूर्व की घटना है। इसके कुछ पूर्व दोनों अतिशय समीप थे और यदि कुछ सत्राशियों के व्यवधान को धीरे धीरे देखें तो वे प्रायः अमित दिशाई लेते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की इस पुष्टतन समीपता की नूतन समन्वयक अभिव्यक्ति है जिसके पीछे युग-युग के अतीतम्युनी संस्कार निहित हैं। उसकी उत्पत्ति विद्वानों में आत्म-विश्वास की आंतरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिहासिक उसी प्रकार आने को सबया मुक्त नहीं

१ ‘यूनेस्को आथ हिस्ट्री’ से।

२ आत्मोचना—२ अथवा, ३३ ‘ऐतिहासिक उपन्यास’ पृ १०-१३।

३ नाटक्रीय

५ वातावरण प्रदान

४ शैली प्रदान

६ उद्देश्य प्रदान

जिस उपन्यास में जिस तरह का प्राणम्य होता है उस उपन्यास को उसी वर्ग के उपन्यासों में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कथानक प्रदान उपन्यासों में कथानक ही क्षेत्र में रखा है। उसमें अन्य तत्वों की प्रभावता न होकर केवल कथा विकास घटनाओं द्वारा ही किया जाता है। अन्य तत्वों का समावेश केवल घटनाओं के स्पष्टीकरण के लिए ही किया जाता है।

इस प्रकार चरित्र प्रदान उपन्यासों में उपन्यास का ढाँचा चरित्रों पर आधारित होता है। इसमें पात्रों के चरित्र का प्रस्तुतन एवं विकास घटनाओं के द्वारा न होकर घटनाओं का सूत्रपात पात्रों के द्वारा होता है।

इसी प्रकार शैली वातावरण और उद्देश्य प्रदान उपन्यासों में शर्त वातावरण और उद्देश्य का प्राणम्य होता है। यदि शैली प्रदान उपन्यासों में शैली प्राप्त होती है तो वातावरण प्रदान उपन्यास में वातावरण। शैली प्रदान उपन्यासों में उपन्यासकार की शैली अपना विशिष्ट आकर्षण और रोचकता रखती है। यह शैली अलंकरण काव्यात्मक अथवा टकसाही हो सकती है। उदाहरण के लिए वाचस्पति की काव्यमयी अपनी लम्बी वाक्यावली एवं समास प्रवाहनी के लिए प्रख्यात है। इसी प्रकार वातावरण प्रदान उपन्यासों में यह विशेषता होती है कि पाठक अपने को उपन्यास में चित्रित युग के अन्तर्गत विचारण करता हुआ पाता है। यह बड़े समय के लिए भूल जाता है कि वह वर्तमान युग का व्यक्ति है। यह वातावरण की सृष्टि केवल विभिन्न दृश्यों के चुनाव और वर्णन द्वारा करता है। उद्देश्य प्रदान उपन्यासों में कथानक किसी उद्देश्य या समस्या को लेकर चलता है।

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर—

उपन्यासों का मुख्य वर्गीकरण वर्ण्य वस्तु के आधार पर किया जाता है। विचार से उपन्यासों के प्रागैतिहासिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक वैज्ञानिक आर्थिक आदि अनेक भेद किए जा सकते हैं।

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों का वर्गीकरण—
आचार्य जी के समस्त उपन्यासों को वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से हम निम्न
रूप में रख सकते हैं—

- १ प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास
- २ सांसाहिक एवं राजनीतिक उपन्यास
- ३ मनोवैज्ञानिक उपन्यास
- ४ वैज्ञानिक उपन्यास

अब हम यह देखना का प्रयत्न करेंगे कि ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक एवं वैज्ञानिक उपन्यास कौन होते हैं तथा भाषार्थ जो क कौन कौन से उपन्यास विन-विन वर्गों में रखे जा सकते हैं। प्रथम हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों पर विचार करेंगे कारण भाषार्थ जो एक ऐतिहासिक उपन्यास का क के रूप में ही अधिक विख्यात है।

ऐतिहासिक उपन्यास—

जी० एम० ड्यूबोसियन ने एक स्थान पर लिखा है "नीरस इतिहास सच्चा इतिहास नहीं कारण बीबी क्लॉपर्टे कनी रसहीन होकर नहीं पटी थी।" इसी कारण एक विद्वान ने यही एक कह जाता था कि "इतिहास में नामों और तिथियों के अनिश्चित सब कुछ वास्तविक नहीं और उपन्यास में नामों और तिथियों के अनिश्चित सब कुछ वास्तविक है।" अंग्रेजी समालोचक वास्टर बैंगहीट ने एतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना करते हुए एक प्रवाह में पढ़ी हुई प्राचीन युग मीनार की छाया से की है। जल नवीन है। नित्य परिवर्तनशील है परंतु मीनार पुरानी है और अपन म्यात पर टटी हुई है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की जो पढ़ी समझा है कि उसका वैर तो इस पृथ्वी पर ही है वह सोस इस युग मीनार निमित्त में ल रहा है। परंतु उसका स्वप्न पुरातन है। और फिर भी नवीन है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे।" इतिहास और कथा का पापक्य निश्चित रूप से विज्ञान युग का स्वाभाविक परिणाम है। और यह लगभग दो शताब्दियों पूरा की घटना है। इसके कुछ पूरा दोनों अक्षिप्त समीप से और यदि कुछ शताब्दियों के व्यवसाय की और कर देंगे तो वे प्रायः विभिन्न दिशाई वेत हैं। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की इस पुरातन समीपता की नूतन समन्वयान्तरक अन्विष्टि है जिसके पीछे युग-युग के अतीतानुगामी सम्प्रदाय निहित हैं। उसकी उत्पत्ति विद्यत में भाष्य-विचार की आंतरिक मानवीय बुद्धि से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विद्यत अथवा ऐतिहासिक उसी प्रकार माने की संख्या मुक्त नहीं

१ 'यूमेरेड आठ हिल्ली' से।

२ 'आलोचना'—२ अगस्त, २३ 'ऐतिहासिक उपन्यास' पृ. १०-१३।

कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से वृथक नहीं कर सकता ।^१ अंत में हम निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि इतिहास और कथा के धानुपातिक समन्वय से ऐतिहासिक कथा की सृष्टि होती है ।

ऐतिहासिक उपन्यास की कसौटी —

ऐतिहासिक उपन्यास के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें उसकी ऐतिहासिकता की पूर्ण रसा की गई हो । उसमें प्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों को ठोड़ा मरोड़ा न गया हो-कथानक एवं वातावरण की कल्पना करते समय उपन्यासकार को उसकी ऐतिहासिकता पर पूर्ण ध्यान देना पड़ता है । किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर ने सामने हुक्का रखा जामगा गुप्त काष्ठ में बुलाबी और फिरोजी रंग की साड़ियाँ इन मेज पर सजे मुकबस्ते झाड़ प्यनुस काये जायेंगे समा के बीच लड़े होकर व्याख्यान दिए जायेंगे और रंग पर कल्लत ध्वनि होगी बात-बात में बम्पबाद सहामुभूति ऐसे सब तथा धार्शनिक कार्यों में भाग लेना ऐसे फिकरे पायेंगे तो काफी हँसने वाले और नाक नीं छिकोड़ने वाले मिलेंगे ।^२ अतः ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए एक सीमित क्षेत्र रहता है उसमें वह स्वच्छंद विचारण कर सकता है किंतु तत्कालीन इतिहास बेष और काष्ठ की उपेक्षा करके सीमा का अतिक्रमण करके मनमानी कुलांशे मारने से रचना की ककारमकता एवं ऐतिहासिकता समाप्त हो जाती है । इस विषय से सम्बन्धित राहुक सांस्कृत्यायन का कथन सस्तेबनीय है 'ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सबा के लिए विमुक्त हो चुका है । किंतु, उसने पर-चिह्न कुछ लेकर छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते । इन पर चिह्नों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तीर से अध्ययन को यदि अपने लिए बुम्डर समझते हैं तो गौल नहता है, आप लेकर ही इस पत्र पर कदम रखें ? 'ऐतिहासिक उपन्यास कार का विवेक वैया ही होना चाहिये वैया कि इतिहासकार का होता है । उसे समझना चाहिए कि कौन सी सामग्री का मुख्य अधिक है और किसका कम है । लिखित सामग्री नहीं प्रथम श्रेणी की मानी जायेगी जिसे उसी समय लिपि बढ किया गया हो ।' ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिये जिस तरह

१ जालोचना (उपन्यास अंक) इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार, अपरीश गुप्त पृ १७४ ।

२ शिखी साहित्य का इतिहास भाचार्य रामचन्द्र गुप्त ।

तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है। -- जिस तरह ऐतिहासिक मानदंड स्थापित करने के लिये तत्कालीन राज्यों के राज्य और शासनकाल की पहचान ही तात्पर्य बनाकर उसमें वर्तनीय घटनाओं के अध्ययन का एक सेना प्रकृति है उसी तरह भौगोलिक स्थानों उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक-ठीक ज्ञान रखने के लिये तत्कालीन नक्शों का साफ़ हार बल सामने रखना चाहिये। ऐसा न करने से अत्यन्त गहरी हो जाती है।^१ इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखना सरल नहीं है। ऐतिहासिक उपन्यासकार की वैयक्तिक भावों से ऊपर उठकर निष्पक्ष दृष्टि एवं निर्मल ऐतिहासिक दृष्टि में तत्कालीन जन जीवन का देखना पड़ता है। उस अचरणीय कल्पना के माध्यम से उस युग में विचारण करना पड़ता है। तत्कालीन इतिहास श्रुतक सामाजिक रीति-रिवाज रहन-सहन सभी की पूर्ण जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है अन्यथा उक्तका ऐतिहासिक उपन्यास लिखना एक बचकाना शिक्षण मात्र बन कर रह जाता है।

भाषाई जी का दृष्टिकोण —

भाषाई जी का दृष्टिकोण इससे कुछ भिन्न है। उनका मत है कि साहित्यकार ऐतिहासिक तथ्यों से विस्तृत बंधन नहीं बन सकता यदि वह ऐसा करेगा तो अपनी कृति में उस 'रस' का संचार नहीं कर सकता जो साहित्य को अमरत्व के साथ ही साथ माधुर्य और हृदयप्राप्ति प्रदान करता है। इतिहास और साहित्य में अंतर ही यह है कि जहाँ इतिहास देग और काल से बंधकर एक जड़ सत्य बनकर रह जाता है, वहाँ साहित्य उस सत्य को प्रतिबान संबन्धी बनता है और उसकी प्रायः को देग तथा काल की सीमा को ताड़ निमित्त विषय का व्यापारिण बनने की समता प्रदान करता है। पाठक उसे पढ़कर केवल ज्ञान का अर्थ नहीं करता अपितु कनिष्ठ देग और काल में मधेह पहुँचकर सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन करता है।^२ वे ऐतिहासिक रस की दृष्टि के लिए जान बूझकर ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना भी उचित समझते

१ आलोचना उपन्यास अंक ऐतिहासिक उपन्यास राहुत साहित्यायन पृ १७० से १७२ तक।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान सम्पादकीय 'उपन्यास और ऐतिहासिक साध', २ जून १९५२ साथ ही डेली, 'शैली की नयनकण' मूनि पृ ७४४।

है।^१ वे ऐतिहासिक सत्तों को स्थिर नहीं समझते। उनका कथन है 'यह कहा जा सकता है कि उसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहिले ऐतिहासिक विषय सत्तों को जानना चाहिए। परंतु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता क्योंकि ऐतिहासिक विषय सत्तों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता उनमें गवेषणा करनेवाले विद्वानों के द्वारा मई-नई जानकारी होते रहने से निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर-सत्य के आधार पर—जिसमें गवेषणा की कोई सुझाव ही नहीं—रचना करे और ऐसी रचनाएँ जो साहित्य संक्षिप्त हैं और जिनका आरम्भ एक अनिश्चित रस है—अपने स्थान पर प्रेषित हों। साहित्य के आधारों में भी मूक रसों को साहित्य-सूत्र में महत्त्व दिया है, परंतु उनके सिवा कुछ और 'अनिश्चित रस' है जिनमें एक 'इतिहास-रस' भी है।^२ स्पष्ट है आचार्य चतुरसेन भी भी रबींद्र बाबू^३ की भाँति 'ऐतिहासिक-रस' में विश्वास करते हैं उसके सत्य में जतना नहीं। उन्होंने एक स्थान पर एक बटना की बर्णना करते हुए स्पष्ट कहा है 'इतिहासकार तो इतिहास में संशोधन कर बिये पर उपन्यासकार कैसे संशोधन करे। मैंने देखा इतिहास के चिर-सत्य के आधार तो बुरा वसत्य कोई पृष्ठी पर है ही नहीं। इतिहास में तो सदैव ही एक सत्य को इकट्ठा कर बुरा सत्य उसका स्थान लेता जाएगा। पर साहित्य में ऐसा नहीं हो सकता। मैंने चिर-सत्य और चिर-सत्य के आधार पर ऐतिहासिक साहित्य को इतिहास से पृथक् कर दिया।'^४ इसी कारण से उन्होंने 'ऐतिहासिक उपन्यास' शब्द का प्रयोग न करके 'इतिहास रस का उपन्यास' का प्रयोग किया है। वास्तव में उनका यह कथन एक सीमा तक उचित ही है, कारण ऐतिहासिक उपन्यासों के न तो पात्र ही भाँतों-भेद होते हैं और न ही उनकी परिस्थितियाँ एवं बटनाएँ ही ऐसी होती हैं। ऐसी दशा में हम किसी भी उपन्यास को पूर्ण ऐतिहासिक कैसे कह सकते हैं। इतिहासकार को स्वयं भी तो कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है फिर तो उपन्यास कुछ कल्पना की दैन है उसके अभाव में उसका निर्माण ही असम्भव है। सत्य यह है कि 'इतिहास विवरण देता है, उपन्यास चित्रण

१ वैद्यनाथ की नगर-नवू मुद्रि०, पृ ७७३।

२ नगरनवू-मुद्रि, पृ ७७३-७६।

३ सुप्रभात शीपावलि विशेषांक, १९३४ पृ १२९।

४ वातायन आचार्य चतुरसेन पृ ९७-९८।

करता है। विभिन्न में अथवा के आंतरिक मंत्रियों का निर्दयता होता है, इसी कारण यह अधिक सूक्ष्म एवं अधिक व्यक्त होता है जब कि विवरण अधिक स्पष्ट निर्दयता का सूत्र होता है। उपन्यास का पाठक पढ़ते समय इतिहास की घटनाओं को नहीं जानना चाहता नाम भी नहीं याद करना चाहता वह तो विभिन्न युग के आंतरिक मंत्रियों उसके 'अज्ञान प्रवाह' को जानना चाहता है और इस प्रकार इतिहास की बजती हुई शक्तियों की अवगति नहीं बिम्ब ग्रहण' की प्रक्रिया स्वीकार करता है। उपन्यास का अर्थ इस 'बिम्ब ग्रहण' की इकाई बनता है जब कि इतिहास में घटना का निवारण उसके बोध की इकाई होता है।^१ उपन्यास में इतिहास के उस 'बिम्ब ग्रहण' के कारण पाठक का जो आनंद (या और कुछ) मिलता है, उसी का आचार्य अनुराग भी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में समावेश किया है। इसी को उन्होंने 'इतिहास रस' का नाम दिया है।

आचार्य अनुराग जी का उद्देश्य किसी युग विशेष के पुनर्निर्माण (Reconstruction) का रहा है। इसके लिए उन्होंने प्रमुख और अग्रमुख दोनों ही प्रकार के पात्रों को माध्यम बनाया है। उन्होंने उत्तमानीन काताकरण का निर्माण करते उसमें उन पात्रों की स्थापना कर दी है। अपने इन उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने केवल इतिहास ग्रंथों का ही आशय नहीं लिया है बल्कि अवशिष्ट काताकरण परम्परायें अवशेषों आधारक चित्रों विवरणियों को कल्पनाओं का भी आशय लिया है। इन सबके ऊपर उनकी प्रकृत कल्पना शक्ति रही है। इसी कारण उनका दृष्टिकोण अन्य विद्वानों से भिन्न रहा है। उन्होंने युग विशेष के बाह्य और आंतरिक मंत्रियों विचारवादाओं इतिहास की विचारमान शक्तियों एवं 'सोनास-मोरम' को विभिन्न करते समय इतिहास के तथ्यों की कभी विज्ञा नहीं की है।^२ अतः उनके

१ सुमनाथ शीपावलि विशेषांक १९३८ ऐतिहासिक उपन्यास देवीशंकर अवस्थी पृ १२३।

२ एक स्थान पर आचार्य अनुराग जी ने अपने इन दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा है 'ऐतिहासिक उपन्यासों में तथ्यों को पीछे धकेल देता हूँ। स्थिर तथ्य के आधार पर कल्पना मुक्तियों को आगे ले जाता हूँ। मेरी यह कल्पना मुक्तियाँ बनती हैं कल्पना और ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं बरतने। कल्पना में आनंद अर्थ का नहीं अर्थ के प्रेरक भावों को अधिक विस्तृत करता हूँ। परन्तु विचार व्याख्या विचारों पर मैं कुछ अध्ययन और प्रभावों को ध्यान से आगे बढ़ता हूँ।

है।^१ वे ऐतिहासिक सत्यों को स्थिर नहीं समझते। उनका कथन है 'वह कहा जा सकता है कि उसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहिले ऐतिहासिक विषय सत्यों को जानना चाहिए। परंतु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना बीजान में नहीं कर सकता क्योंकि ऐतिहासिक विषय सत्यों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता उनमें बबेयणा करनेवाले विद्वानों के द्वारा गई-गई जानकारी होते रहने से निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर-सत्य के आधार पर—बिनाम बबेयणा की कोई गुंजायश ही नहीं—रचना करे और ऐसी रचनाएँ जो साहित्य संक्षिप्त हैं और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है—अपने स्थान पर पुरित हों। साहित्य के आचार्यों ने भी मूक रसों को साहित्य-सृजन में महत्व दिया है परंतु उनके सिवा कुछ और 'अनिर्दिष्ट-रस' हैं जिनमें एक 'इतिहास-रस' भी है।^२ स्पष्ट है आचार्य 'अतुरसेन भी भी रबींद्र बाबू'^३ की भाँति 'ऐतिहासिक-रस' में विश्वास करते हैं उसके सत्य में उतना नहीं। उन्होंने एक स्थान पर एक बटना की बर्णना करते हुए स्पष्ट कहा है 'इतिहासकार तो इतिहास में संशोधन कर बने पर उपन्यासकार जैसे संशोधन करेंगे। मैंने देखा इतिहास के स्थिर-सत्य के बराबर तो बूसरा असत्य कोई पृथ्वी पर है ही नहीं। इतिहास में तो सदैव ही एक सत्य को हकेल कर बूसरा सत्य उसका स्थान लेता आया। पर साहित्य में ऐसा नहीं हो सकता। मैंने स्थिर-सत्य और चिर-सत्य के आधार पर ऐतिहासिक साहित्य को इतिहास से पृथक कर दिया।^४ इसी कारण से उन्होंने 'ऐतिहासिक उपन्यास' शब्द का प्रयोग न करके 'इतिहास-रस का उपन्यास' का प्रयोग किया है। वास्तव में उनका यह कथन एक सीमा तक उचित ही है कारण ऐतिहासिक उपन्यासों के न तो पात्र ही आँखों-देखे होते हैं और न ही उनकी परिस्थितियाँ एवं बटनाएँ ही ऐसी होती हैं। ऐसी दशा में हम किसी भी उपन्यास को पूर्ण ऐतिहासिक कैसे कह सकते हैं। इतिहासकार को स्वयं भी तो कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है फिर तो उपन्यास कुछ कल्पना की देन है, उसके जमाव में उसका निर्माण ही असम्भव है। सत्य यह है कि 'इतिहास विवरण देता है उपन्यास विचित्र

१ बीजानी की नगर-बबू भूमि० पृ ७७३।

२ नगरबबू-भूमि पृ ७७३-७६।

३ मुद्रमार्त, बीजाबलि विज्ञेयांक, १९३५ पृ १२९।

४ बातायन आचार्य अतुरसेन पृ २७-२८।

करता है। विश्व में जन के आंतरिक मत्तम्यों का नैरंतर्य होता है, इसी कारण यह अधिक सूक्ष्म एवं अधिक व्यापक होता है जब कि विवरण अधिक स्पष्ट और तथ्य का सूत्र होता है। उपन्यास का पाठक पढ़ते समय इतिहास की घटनाओं को नयी जानना चाहता मान भी नहीं पाय करना चाहता वह तो विविध युग के आंतरिक मत्तम्यों उसके 'जनता प्रवाह' को जानना चाहता है और इस प्रकार इतिहास की बड़ी हुई शक्तियों की अवगति नहीं 'विश्व ग्रहण' की प्रक्रिया स्वीकार करता है। उपन्यास का चरित्र इस 'विश्व ग्रहण' की इकाई बनता है, जब कि इतिहास में घटना का निवारण उसके बोध की इकाई होता है।^१ उपन्यास में इतिहास के उस 'विश्व ग्रहण' के कारण पाठक को जो आनंद (या और कुछ) मिलता है, उसी का आभास 'जुलियन सी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में समावेश किया है। इसी की दृष्टि 'इतिहास रस' का नाम दिया है।

आचार्य जूलियन सी ने अपने विज्ञान युग विशेष के पुनर्निर्माण (Reconstruction) का रस है। इसका लिए उन्होंने प्रमुख और महत्त्वपूर्ण दोनों ही प्रकार के पाठों को साम्य बनाया है। उन्होंने ठाकानीन वातावरण का निर्माण करके उसमें उन पाठों की स्थापना कर दी है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने बहुत इतिहास पंथों का ही साम्य नहीं किया है बल्कि अतिरिक्त वातावरण परम्पराओं अवशेषों म्यारक चिह्नों विवरणों को समावेशों का भी साम्य किया है। इन सबके ऊपर उनकी प्रथम कल्पना शक्ति रही है। इसी कारण उनका दृष्टिकोण अन्य विद्वानों से भिन्न रहा है। उन्होंने युग विशेष के बाह्य और आंतरिक मत्तम्यों विचारवाचकों इतिहास की विचारमान शक्तियों एवं 'सोशल-सोल्स' का विशिष्ट करते समय इतिहास के तथ्यों की नयी विज्ञान नहीं की है।^२ अतः उनके

१ सुप्रसिद्ध बीबाबलिस विशेषांक १९३८ ऐतिहासिक उपन्यास हेतुशाकर अक्षयी ५ १२९।

२ एक स्थान पर आचार्य जूलियन सी ने अपने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए स्वयं लिखा है 'ऐतिहासिक उपन्यासों में तथ्यों को पीछे छोड़ देता हूँ। स्थिर तथ्य के आधार पर कल्पना मूर्तियों को आगे से जाता हूँ। मेरी यह कल्पना मूर्तियाँ बनती हैं दुर्गा और ऐतिहासिक तथ्य इन बातें हैं बरानी। कहानी में आनंद चरित्र का बड़ी चरित्र के प्रेरक भावों को अधिक विशिष्ट करता हूँ। परन्तु विचार व्याख्या विषयों पर मैं कुछ सम्पन्न और प्रभावी को ध्यान से आगे बढ़ता हूँ।

उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय उनके इस दृष्टिकोण को सामने रखना अनिवार्य है फिर भी किसी ऐतिहासिक तथ्य की अवहेलना करना ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासकार को बहुबोधित होना चाहिए, जिस युग का ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का यह उपक्रम कर रहा है उस युग की ऐतिहासिक घटनाओं परम्पराओं जीवन की नतिविधियों आदि के विपरीत यदि वह कुछ विमल करता है तो इसे उसकी सूझ ही माना जायगा। बाचार्म जतुरसेन भी का यह मत कि इतिहास सर्वत्र संशोधित होता रहता है इसलिये उपन्यासकार को ऐतिहासिक तथ्यों से बँधकर नहीं चलना चाहिए बल्कि फिर सत्य को ग्रहण करना चाहिए भी मान्य नहीं हो सकता। फिर सत्य ऐतिहासिक सत्य के विरोध में पड़े यह बात नहीं हो सकती और जिस समय उपन्यास लिखा जा रहा है उस समय तक प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का विरोध ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए मान्य नहीं है। वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राप्त ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को समझा और समीच तो बनाता ही है, इसके साथ ही वह उनसे निकली-जुम्मी और सामंजस्य रखनेवाली अनेक परिस्थितियों और घटनाओं की कल्पना करता है जिससे ऐतिहासिक तथ्यों से प्रभावित व्यक्तिगत और वातावरण पूर्वतः जिस उठे। इस प्रकार की कल्पना करने में उसकी स्वच्छंदता मर्यादित होनी चाहिए।

उपर्युक्त कसौटी पर कसने पर बाचार्म जतुरसेन भी के निम्न बाह्य उपन्यास ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं—

- १ पूर्वावृत्ति (अवाध का व्याह)
- २ बीछाली की नगरवधु
- ३ रक्त की व्याध
- ४ बेबागना (मंदिर की मर्तकी)
- ५ सोमनाथ
- ६ आत्ममयी
- ७ बरबरताम
- ८ कामपानी
- ९ सहायिकी की अज्ञान
- १० बिना विरान का शहर
- ११ घोला और जून (अपूर्ण)
- १२ हरण निर्मलन ।

इन बाह्यों ऐतिहासिक उपन्यासों को हम निम्न पाँच वर्गों में रख सकते हैं—

प्रथम कुछ ऐतिहासिक—जिसमें हम 'आत्ममयी' को रख सकते हैं। इसमें इतिहास के वास्तविक मासह के कारण औपन्यासिकता पाई जाती है।

दूसरे 'बटीठ रस' के अध्ययन प्रचाल उपन्यास इसमें अध्ययन की सामग्री बकात करने बटीठ की कितनी ही स्मृतियों को एक साथ चिहित करने तथा तत्कालीन सांस्कृतिक प्रयासों को मूचितान करने के कारण तत्कालीन संस्कृति एवं इतिहास प्रमाण और औपन्यासिकता गीण हो गई है जैसे 'वर्यराम' ।

तीसरे के इतिहास रस के उपन्यास जिनमें बटमाएँ तो कुछ ही ऐतिहासिक हैं । किन्तु जिनमें तत्कालीन ऐतिहासिक सामाजिक नातिक बातावरण बिल्कुल सही है । पार्श्वों के नाम भी ऐतिहासिक हैं । प्रस्तुत इसमें ऐतिहासिक बातावरण में एक नात्यनिक रोमाटिक कथा कही गई है । कल्पना का आचार एक दो बन श्रुतियाँ ही हैं । इस कोटि में हम 'बैशाखी की मगर वधु' 'बिना चिराम का बहुर' आदि उपन्यासों को रख सकते हैं ।

चौथी कोटि में के उपन्यास जिनमें मूल कथा तो ऐतिहासिक है किन्तु जन-श्रुतियों परम्परकों एवं अपने निजी निष्कर्षों को प्रस्तुत करने तथा कथा में इतिहास रस का संचार करने के लिए उसने उस ऐतिहासिक बाबटों के के बखर ही मनमानी उड़ानें मरी हैं । जैसे 'सोमनाथ' 'लासपासी' 'सहाद्री की बट्टानें', 'रस की व्यास' 'हरण निमंत्रण' 'धोना और कून' आदि उपन्यास ।

पाँचवीं कोटि में आचार्य जी के उन ऐतिहासिक उपन्यासों को रख सकते हैं जिनमें अप्रमुख पात्र को ही माध्यम बनाकर एक ऐतिहासिक बातावरण प्रस्तुत करके कथा कही गई है । इस कोटि में हम बैशाखी (मंदिर की गर्तकी) को रख सकते हैं ।

इन उपन्यासों के कथानक विभिन्न मुकों एवं कालों से सम्बंधित हैं । अतः कालक्रमानुसार इनका एक अन्य वर्गीकरण भी किया जा सकता है—

- १ प्रागैतिहासिक युग एवं रामायण काल—बयं रसाध
- २ जैन-बौद्ध प्रमाण के गुप्त-मौर्यादि युग से सम्बंधित—बैशाखी की मगर वधु ।
- ३ मध्ययुग से सम्बंधित—सोमनाथ, रस की व्यास हरण निमंत्रण मंदिर की गर्तकी (बैशाखी) पूर्वाहुति (लास का व्याह) बिना चिराम का बहुर, लासपासी
- ४ मुख्य कालीन—आत्मवीर, सहाद्री की बट्टानें
- ५ वैदिकी राज्यकाल के प्रारंभ से वर्तमान तक सोना और कून (दो पाय)

उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय उनके इस दृष्टिकोम को सामने रखना अनिवार्य है फिर भी किसी ऐतिहासिक तथ्य को बहुरूपता करना ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासकार को बहुजनीत होना चाहिए, जिस युग का ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का यह उपक्रम कर रहा है उस युग की ऐतिहासिक घटनाओं परम्पराओं जीवन की गतिविधियों भावि के विपरीत यदि वह कुछ विचित्र करता है तो इसे उसकी भूमि ही माना जायगा। आचार्य चतुरसेन जी का यह मत कि इतिहास सबसे संशोधित होता रहता है इसलिए उपन्यासकार को ऐतिहासिक तथ्यों से बँधकर नहीं चलना चाहिए बल्कि फिर सत्य को प्रकृत करना चाहिए भी मान्य नहीं हो सकता। फिर सत्य ऐतिहासिक सत्य के विरोध में पड़े यह बात नहीं हो सकती और जिस समय उपन्यास लिखा जा रहा है उस समय तक प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का विरोध ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए मान्य नहीं है। वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राप्त ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को संप्राप्ता और सजीव तो बनाता ही है इसके साथ ही वह उनसे मिस्रती-मुकती और सामंजस्य रखनेवाली अनेक परिस्थितियों और घटनाओं की कल्पना करता है जिससे ऐतिहासिक तथ्यों से प्रभावित व्यक्ति और वातावरण पूर्णतः पिस उठे। इस प्रकार की कल्पना करने में उसकी स्वच्छंदता मर्यादित होती चाहिए

उपरोक्त कड़ी पर करने पर आचार्य चतुरसेन जी के निम्न बाखू उपन्यास ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं—

- १ पूर्वाहृति (कबास का ब्याह) २ बैराली की ममरबबू
- ३ रक्त की प्यास ४ बैरांगमा (मंदिर की गर्तकी) ५ सोमनाथ
- ६ जाकमनीर, ७ कपूरखाम ८ काकपानी ९ सहायति की घट्टाओं
- १० बिना बिदाम का सहा, ११ सोना और कून (अपूर्ण) १२ हल्क निर्मलन।

इन बाखूँ ऐतिहासिक उपन्यासों को हम निम्न पाँच वर्गों में रख सकते हैं—

प्रथम पुख ऐतिहासिक—जिसमें हम 'जाकमनीर' को रख सकते हैं इसमें इतिहास के वास्तविक साधु के कारण औपन्यासिकता गीर हो गई है।

उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर विचार करते समय उनके इस दृष्टिकोण को सामने रखना अनिवार्य है। फिर भी किसी ऐतिहासिक तथ्य की अवहेलना करना ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासकार को बहुबिध होना चाहिए, जिस युग का ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का यह उपक्रम कर रहा है उस युग की ऐतिहासिक घटनाओं परम्पराओं जीवन की गतिविधियों आदि के विपरीत यदि वह कुछ चित्रण करता है तो इस उसकी भ्रष्ट ही माना जाएगा। आचार्य बतुरसेन जी का यह मत कि इतिहास सदैव संशोधित होता रहता है इसलिए उपन्यासकार को ऐतिहासिक तथ्यों से बँधकर नहीं बसना चाहिए बल्कि चिर सत्य को प्रहृष करना चाहिए भी मान्य नहीं हो सकता। चिर सत्य ऐतिहासिक सत्य के विरोध में पड़े यह बात नहीं हो सकती और जिस समय उपन्यास लिखा जा रहा है उस समय तक प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का विरोध ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए श्रेय नहीं है। वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यासकार प्राप्त ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों की संप्राप्ति और सजीव हो बनाता ही है, इसके साथ ही वह उनसे निकली-बुझी और धार्मिकत्व रखनेवाली अनेक परिस्थितियों और घटनाओं की कल्पना करता है जिससे ऐतिहासिक तथ्यों से प्रभावित व्यक्तित्व और बाधाकरण पूर्वक विचित्र उठे। इस प्रकार की कल्पना करने में उसकी स्वच्छंदता मर्यादित होनी चाहिए।

उपरोक्त कड़ी पर कसने पर आचार्य बतुरसेन जी के निम्न बाण्ड उपन्यास ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं—

- १ पूर्वाहुति (अवास का ब्याह), २ बैसामी की नगरवधु
- ३ रक्त की प्यास ४ देवांगना (मंदिर की कर्तकी) ५ सोमनाथ
- ६ आत्मगौरव ७ धर्मरक्षामः, ८ छाकपानी ९ सङ्घर्ष की चट्टानें
- १० बिना चिराग का सहर, ११ घोना और बून (अपूर्ण) १२ हरण निर्मलन।

इन बाण्डों ऐतिहासिक उपन्यासों को हम निम्न पाँच वर्गों में रख सकते हैं—

प्रथम दृष्ट ऐतिहासिक—जिसमें हम 'आत्मगौरव' को रख सकते हैं। इसमें इतिहास के वास्तविक आधार के कारण औपन्यासिकता पाई हो गई है।

दूसरे 'अतीत रस' के अध्ययन प्रधान उपन्यास इसमें अध्ययन की सामग्री बसाद् मरने अतीत की कितनी ही स्मृतियों को एक साथ चित्रित करने तथा उत्कालीन सांस्कृतिक प्रयासों को मूर्तिमान करने के कारण उत्कालीन संस्कृति एवं इतिहास प्रधान और औपन्यासिकता गीण हो गई है जैसे 'अपराधनाम' ।

तीसरे वे 'इतिहास रस' के उपन्यास जिनमें बटनाएँ तो कुछ ही ऐतिहासिक हैं। किन्तु जिनमें उत्कालीन ऐतिहासिक सामाजिक धार्मिक बातावरण निस्सुक्त सजीव हैं। पात्रों के नाम भी ऐतिहासिक हैं। प्रस्तुत इसमें ऐतिहासिक बातावरण में एक काव्यनिक रोमांटिक कथा कही गई है। कल्पना का आधार एक दो वन स्मृतियाँ ही हैं। इस कोटि में हम 'बैयाली की नगर बधू' 'बिना बिपय का सहर' आदि उपन्यासों को रख सकते हैं।

चौथी कोटि में वे उपन्यास जिनमें मूल कथा तो ऐतिहासिक है किन्तु जन-स्मृतियों परम्पराओं एवं अपने निजी निष्कर्षों को प्रस्तुत करने तथा कथा में इतिहास रस का संचार करने के लिए उसमें उस ऐतिहासिक बौद्धों के अन्दर ही मनमानी उद्गारें मरी हैं। जैसे 'सोमनाथ' 'आठपानी' 'सह्याद्रि की बट्टारें' 'रक्त की प्यास' 'हरम निर्मलन' 'सोना और जून' आदि उपन्यास ।

पाँचवीं कोटि में आचार्य जी के उन ऐतिहासिक उपन्यासों को रख सकते हैं जिनमें अप्रमुख पात्र को ही माध्यम बनाकर एक ऐतिहासिक बातावरण प्रस्तुत करके कथा कही गई है। इस कोटि में हम देवायता (मंदिर की नर्तकी) को रख सकते हैं।

इन उपन्यासों के कथानक विभिन्न युगों एवं कालों से सम्बंधित हैं। बत कालक्रमानुसार इनका एक अन्य वर्गीकरण भी किया जा सकता है—

- १ प्रागैतिहासिक युग एवं रामायण काल—अपराधनाम
- २ जैन-बौद्ध प्रभाव के पुष्ट-भौतिक युग से सम्बंधित—बैयाली की नगर बधू ।
- ३ मध्ययुग से सम्बंधित—सोमनाथ रक्त की प्यास, हरम निर्मलन मंदिर की नर्तकी (देवायता) पूर्वाहुति (अवास का प्याह) बिना बिपय का सहर, आठपानी
- ४ मुगल कालीन—आठपानी सह्याद्रि की बट्टारें
- ५ अंग्रेजी राज्यकाल के प्रारंभ से वर्तमान तक सोना और जून (दो भाग)

सामाजिक उपन्यास —

सामाजिक उपन्यासों का सीधा सम्बंध समाज से होता है। स्थायी तथा सर्वाधारण महत्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए धार्मिकपूर्वक प्रयत्न-धीक सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्यों या व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बंध (धार्मिकपूर्वक सहमस्तित्व मतभेद इ. इ. आदि) तथा उनकी सामान्य हित पूर्ति की दिशा में आई आवश्यकने प्रयत्न एवं निष्कर्ष ही सामाजिक उपन्यास की रीढ़ की हड्डी का कार्य करते हैं।^१

सामाजिक उपन्यास कई प्रकार के हो सकते हैं। जैसे समास्यामूलक राजनीतिक नैतिक मनोवैज्ञानिक (इसका आगे प्रथक वर्णन करेंगे) आदि। इस वर्ग में आचार्यजी के निम्न ठेरह उपन्यासों को रखा जा सकता है—

१ हृदय की परत २ हृदय की प्यास ३ आत्मबाह ४ बहते बाँसू (जमर यमिन्नावा) ५. दो किनारे, ६ मरक-बदल ७ भरमेज ८ अपराधिता ९. बर्म पुत्र १ गोली ११ उदयास्त १२ बगुला के पंख एवं १३ मोठी ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास^२

मनोवैज्ञानिक उपन्यास कीत ?—मनोवैज्ञानिक एवं अन्य उपन्यासों के मध्य हम कोई ऐसी सीमा रेखा नहीं खींच सकते जिसके द्वारा हम उन्हें सहज ही पहचान

१ उपन्यासकार बुध्दानन्दनाथ वर्मा, आ० सिंहल पृ १५ ।

२ 'मनोविज्ञान का अर्थ, बहुत तक उपन्यास कला का प्रकल है, है अनुसूति का विषय-मत तथा आत्मनिष्ठ रूप (सबदेरिद्व आत्पेद आठ एकसपीरियेन्स) । यदि किसी उपन्यास में घटना या अनुसूति के आत्म-निष्ठ रूप की अविध्यति पर आग्रह पावे तो हम उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे । उपन्यास का बहु अंश वहाँ घटना के मूल में पैठकर उसके आत्मनिष्ठ कारणों की व्याख्या की गई हो जबवा उसके द्वारा उत्पन्न आत्मनिष्ठ क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया गया हो मनोवैज्ञानिक ही कहा जायेगा । इस तरह इस बात की सम्भावना ही सकती है कि पूरे उपन्यास में मनोविज्ञान का कोई विशेष आग्रह न हो पर उसके विशेष अंश में या कुछ अंशों में मनोविज्ञान की स्पष्ट झलक हो । (आ० हि० क० सा० में मनोविज्ञान डा० देवराज उपाध्याय पृ १४) ।

सकें। 'पर साधारणतः यह बात कही जा सकती है कि जिसमें सेलक मानसिक प्रतिधिया को एक सुनिश्चित और सीधी-सारी प्रणाधी से प्रवाहित होती हुई न दिखता कर टैडी-मड्री यह से बॉम को तोड़ उफन उभती हुई दिखतामे यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास ही होगा। यह हो सकता है कि कहीं प्रधिया चेतन स्तर पर चलती हा कहीं अचेतन स्तर पर। कहीं सेलक पार्श्वों की मानसिक क्रियाओं को तोड़-भराड़ को (Twists) को मन्त्रिता को स्वयं दिखताता आय। यह भी संभव है कि सेलक पार्श्वों के जीवन में होने वाले उलट-फेर को दिखताता तो जाम पर उनको प्रेरित करने वाली आन्तरिक प्रकृतिया की चर्चा न करे कारण कि सेलक और सेलक-निबद्ध-यात्र होना के अचेतन स्तर पर उन प्रकृतियों की व्यापार छीला प्रारम्भ होती है। ऐसे ही अबसर्तों पर व्याख्याता को स्वतंत्रता रहती है कि वह मनोवैज्ञानिक प्रचलित सिद्धांतों की सहायता लेकर पार्श्वों को तथा घटनाओं को समझन-समझाने का प्रयत्न करे।^१ मनोवैज्ञानिक उपन्यास के लिए विषय का भी महत्व है। कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनके समावेश में उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता का समिन्धेय सहज साम्य हा जाता है। पचा—एक प्रेमी की दो प्रमिकायें दो प्रैनिकाओं का एक प्रमी समाज से निरावृत्त ब्यक्ति का विषय बातकों के विरोधत व्यष्ट कनिष्ठ या एककौते बालकों के क्रिया-कलाप का बर्णन प्रचलित सामाजिक प्रथाओं और रूढ़ियों के विरुद्ध जाति करने वाले पात्र अकर्मण्य आत्मधीन तथा हाय पर हाय भरे कल्पना जगत के प्राणी, परस्पर विरोधी आचरण निरत पात्र किसी विविष्ट मनोबुति (Master spirit) से संचालित न होकर एक दान और और दूसरे ही दान कायर की तरह आचरण करने वाले ब्यक्ति इन सब विषयों की अवतारणा से जीवन्त्यासिक को अधिक मनोवैज्ञानिक जटिलताओं और बाधकियों का दिखताने का अवसर मिलता है।^२

केवल विषय ही नहीं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की टेक्नीक भी अन्य उपन्यासों से भिन्न होती है। डा० देबराज उपाध्याय ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के टेक्नीक पर विचार करते हुए लिखा है 'उपन्यास के क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रयोग के मापदू के साथ ही उसके बाह्य कलेक्टर, अभिव्यक्ति क रंग-रंग म

१ आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और मनोविज्ञान डा० देबराज उपाध्याय पृ २८।

२ आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और मनोविज्ञान डा० देबराज उपाध्याय पृ २८-२९।

परिवर्तन आ जाना अनिवार्य ही है। ठीक उसी तरह जैसे मार्गों के परिवर्तन होने से तत्सूचक अनुमात्रों में सङ्घ परिवर्तन हो जाते हैं। 'मनोवैज्ञानिक' उपन्यास का ध्येय 'मात्र' अनुभूति का ही नहीं परंतु अनुभूति के आत्मनिष्ठ तथा विषय-मत् रूप का प्रदर्शन होता है। अतः इसमें (१) सुसंगठित कथावस्तु के प्रति उदासीनता होती है। इसमें इस बात की इतनी परवाह नहीं होती कि कथा की कड़ियाँ इतनी बारीकी से मिटाई जायँ कि कहीं भी थोड़ा सा झुम न पड़े। इसमें बटनायें गौण होंगी, उपरुपाय मात्र होंगी। उनके सहारे पात्रों के आन्तरिक-मावक को जोरकर रखना ही उद्देश्य होगा। (२) कथा भी कोई समझी-बौड़ी शीर्षकासीन और महाकाव्य की तरह जीवन के बृहदंश को घेरने वाली न होगी। विस्तार से अधिक यहराई की ओर लेखक का ध्यान अधिक रहेगा।

.... (३) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कम से कम पात्रों से ही काम चकाने की चेष्टा होती है। (४) बाताँझाप की छटा मनोविज्ञान के प्रदर्शन में अधिक सहस्यक होगी। 'उपन्यास' का अधिकतम बाताँझाप से विरत रहना है। (५) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्णनारमकता (Narration), से अधिक नाटकीयता (Dramatisation) की प्रवृत्ति होगी। अर्थात् बटनाओं का संयोजन कुछ इस ढंग से होया कि वे स्वयं-स्फूर्ति हों स्वयं-उत्थित हों उनमें अपने स्वरूप को स्पष्ट करने की क्षमता हो पद-पद पर लेखक के साप चमके की आवश्यकता न हो। लेखक के अस्तित्व का जहाँ तक कम ज्ञान हो वही अच्छा। अतः इस तरह के उपन्यासों में कुछ विशिष्ट उद्दीप्त और उदात्त क्षणों और बटनाओं को ही स्थान प्राप्त हो सकेगा। 'बटनायें छोटी सी मत्के ही हों पर मानव मन के उन्माद से समन्वित हैं (हों)। (६) मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अध्ययन से पाठक में जो प्रतिक्रिया होती है अत्योपन्यासोत्पन्न प्रतिक्रिया से भिन्न होगी। वर्णनारमक उपन्यास का पाठक शोका होता वह आश्चर्य-चकित हो औप-यासिक के मुख की ओर देखेगा अर्थात् उसका ध्यान उपन्यास की ओर न होकर उपन्यास के बाहर की ओर होगा। पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पाठक की दृष्टि उपन्यास के पात्रों की ओर होगी। वह बहिर्मुखी न हाकर अन्तर्मुखी होगा वह पात्रों के क्रिया-कलाप से अधिक उनकी मूल प्रेरणा को देखेगा। उसका सम्बंध ब्रह्मा और शोका का न होकर अभिनेता और दर्शक का होगा। दर्शक नाटककार की ओर न देखकर अभिनेता के अभिनय-नीचक और उसके सहारे मूल वृत्तियों को ही देखता है। वर्णनारमक उपन्यास के पात्रों के साप पाठक का सम्बंध बहुत कुछ वैसा ही रहता है जैसे इतिहास के पात्रों के साप, नीरम, निर्जिव। हम उन्हें जैसे ही जानते हैं जैसे अकबर और असोक

को जानते हैं। पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पात्रों की जातकारी में आत्मीयता की भारता रहती है हम उन्हें इस तरह जानते हैं जैसे अपने साथी को, अपने स्वयं को। (७) मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रणेता और उसके निर्मित पात्रों के पारस्परिक संबंध में भी बिभ्रता है। बटना प्रभाव उपन्यास के लेखक और उसके पात्रों के सम्बंध से यह भिन्न है। बटना प्रभाव उपन्यास के पात्रों का सृष्टा तटस्थ दर्शक है वह पात्रों से अलग हटकर अपनी सर्व-व्यापिनी दृष्टि से पात्रों की गतिविधि का अवलोकन करता रहता है, और उनकी रिपोर्ट देता रहता है। दोनों में संभ्रम का भाव नहीं वे दोनों 'यम के साथी' हैं और 'बटाऊ की माई' कभी भी एक दूसरे को छाड़कर चल दे सकते हैं। पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास का निर्माता अपने पात्रों का घनिष्ठ मित्र होता है। वह अपने मित्र के घरे में लिखता है उसके कथन में जीवनानुसृष्टि होती है। यही कारण है कि मनो-वैज्ञानिक कथाकार को धार-धार अपनी ओर से कहने सुनने की उपस्थिति देने की नीति पालनता के बारे में दुर्लभ करने की आवश्यकता नहीं होती। वह भी कुछ कहता है स्वयं पूर्ण है उसे किसी वाह्य सहायता की अपेक्षा नहीं होती। (८)

“मनोवैज्ञानिक उपन्यास में सम्बेक्षित भाष्य एम्पेक्ट एक्सपीरियेंस (Subjective aspect of experience) अर्थात् अनुसृष्टि के आत्मनिष्ठ रूप की अभिव्यक्ति ही कल्प रहता है। लेखक चाहता है कि जो भी कथा हो जो भी बटनायें हों वे अपनी प्रधानता को त्यागकर पात्रों की मानसिकता उसके मानस की प्रबलमानता को प्रस्तुति कर सकें स औसत हो जाय। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसी कथा की मोरता हो जिसमें मनोनीत ध्येय की सेवा भी एक जाने की अधिक से अधिक धमता हो। --(९) मनोविज्ञान के अपने क्षेत्र में अधिक से अधिक मुक्तिपायें प्रदान करने के विषये उपन्यास को अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। कभी आत्म-व्यापक तो कभी पत्रात्मक, कभी डायरी नुमा कभी चेतना प्रवाहात्मक (Stream of consciousness) और कभी सबों का सम्मिश्रण अर्थात् उपन्यास कथा नाभावेन धारण कर मनुष्य के सम्बन्ध स्वरूप को प्रदर्शित करने की क्षमता अपने में छाने की चेष्टा करती रही है और सफलता भी प्राण करती रही है। मनुष्य के सम्बन्ध स्वरूप का अर्थ वहाँ पर उसके बाह्य विज्ञानकारों के साथ बाह्यरिक प्रेरणाओं का भी सम्बन्धन करता है।”

जब हम इस कसौटी पर आचार्य बतुरसेन जी के उपन्यासों को कसते हैं। इस कसौटी पर उनके केवल दो उपन्यास ही—'आमा' और 'पत्थर युग के दो बूट'—एक सीमा तक बरे उतरते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके अन्य उपन्यास मनोविज्ञान से विस्तृत बंधूते हैं। 'हृदय की परत' हृदय की व्यास' 'गोली' आदि उपन्यासों में यद्यपि यत्र-तत्र मनोविज्ञान का पर्याप्त पुट उपन्यासकार ने दिया है किन्तु इन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इन उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विक्षेपण की अपेक्षा भावुकतापरक व्यक्तिवादिता अधिक प्राप्त होती है। इसी कारण यहाँ हम उपर्युक्त उपन्यासों (आमा एवं पत्थर युग के दो बूट) पर ही विचार करेंगे और बेतने का प्रयत्न करेंगे कि वे किस सीमा तक कसौटी पर बरे उतरते हैं। वहाँ तक विषय का सम्बन्ध है दोनों ही उपन्यासों के विषय मनोवैज्ञानिक हैं। दोनों में ही एक प्रेमिका के दो प्रेमियों का विषय हुआ है। इन उपन्यासों की प्रधान पात्रियाँ भी बीनेन्द्र के उपन्यास की नायिकाओं की ही भाँति हैं। वे उनमें एक धोर तो देवस्वरूप पति के प्रति स्वयं प्रेरित संस्कार प्राप्त यत्कि एवं कर्तव्यनिष्ठा की प्रबल भावना और दूसरी ओर प्रेम का आकर्षण। इस द्वैत का संघर्ष ही इनके उपन्यासों को नाटकीय आकर्षण प्रदान करता है। नायिका का जीवन प्रेम और पत्नीत्व के बीच बड़ा ही बर्णनीय एवं व्यामम हो उठता है। एक ओर तो यह देखती है कि उसके कारण एक व्यक्ति (प्रेमी) का जीवन व्यर्थ हुआ जा रहा है और दूसरी ओर निराश आत्मानुबर्ती निरीह पति के प्रति दुरास एवं अंतर के मार से यह बची-खी रहती है। इस विषम परिस्थिति में उसका जीवन बड़ा ही भयनापूर्ण हो उठता है। संघर्षरत उसके मन की यह व्याधा ही कथा को एक विधिय मोहकता प्रदान करती है। 'आमा' की समस्या कुछ इसी प्रकार की है। उसे अपने प्रेमी के साथ पञ्चायन करने के पश्चात् अपने सतीत्व का मोह होता है उसका निजत्व जाब उठता है। कुछ समय के अंतर्द्वन्द्व के पश्चात् वह अपने सतीत्व को सुरक्षित सिधे हुए पुनः अपने पति के समीप लौट जाती है। उसका पति अनिच्छ भी देखा ही है अतः उसे पुनः रख केता है किन्तु 'पत्थर युग के दो बूट' का सुनील निष्क्रिय दृष्टा मात्र नहीं है बल्कि एक निष्क्रिय या अपुंसक पति नहीं है, न ही वह बीनेन्द्र के सम पुरुष पात्रों की भाँति है न 'आमा' के अलिख भी भाँति जो पत्नी के मनोनुभूत आचरण करते बसे जाते हैं जैसे वे स्वयं व्यक्तिगत विहीन हों। किन्तु सुनील देखा होते

दृष्ट भी पत्नी को प्यार करते दृष्ट भी ऐसे अवसर पर हिसक बन जाता है। इस प्रकार विषय की दृष्टि से हम इन दोनों उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक कह सकते हैं किंतु केवल विषय के निर्वाचन मात्र से कोई उपन्यास मनोवैज्ञानिक नहीं हो जाता जब तक कि उद्योग प्रतिपादन भी मनोवैज्ञानिक ढंग से न किया गया हो।

जहाँ तक टेक्नीक का प्रश्न है यह दोनों उपन्यास भी उस कसौटी पर पूर्ण रूप से खारे नहीं उतरते। कमालस्तु यद्यपि दोनों में ही सक्षिप्त है किंतु सम्पूर्ण घटनाएँ उसी के चारों ओर चक्कर खाटनी स्पष्ट ज्ञात होती हैं। यह स्पष्ट है कि इसमें उपन्यासकार ने पात्रों के आंतरिक भावचक्र को खोजने का प्रयास किया है किंतु उसने जिन सूत्रों को खोला है उनके परिपारण में इन किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत या सूत्र को बनस्पृह नहीं पाते। अर्थात् प्रथम दृष्टि में इन उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक होने का जो भ्रम होता है वह स्वयं बुर हो जाता है। यद्यपि इन दोनों उपन्यासों में मं० २ से लेकर मं० ६ तक के सिद्धांत किसी न किसी प्रकार से खोज करके निकाले जा सकते हैं। इतना ही नहीं अंतिम पुनः (मं० ९) भी इन दोनों ही उपन्यासों में स्पष्ट देखा जा सकता है, किंतु तो भी इन्हें पुनः मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं माना जा सकता। क्यों ? कारण इन दोनों ही उपन्यासों में सम्बन्धित आस्फेक ज्ञात एक्सपीरिन्स (Subjective aspect of experience) अर्थात् अनुभूति के आत्म निष्ठ रूपात्मिकता (मं० ८) पर अधिक बल नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के लिए यह आवश्यक रहता है कि उसमें मनोविज्ञान की बातें कहीं तो स्वाभाविक रूप से अनायास ही आ जायें तो नहीं केवल मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को दृष्टि में रख कर अपने उपन्यास का ढाँचा सजा करता जाय। किंतु हमारे आलोच्य इन दोनों ही उपन्यासों में हम ऐसा कुछ नहीं पाते। मनोविज्ञान के सिद्धांत कथा के प्रवाह में स्वतः यदि आ गए हों, तो दूसरी बात है अन्यथा उपन्यासकार ने उपन्यास में अल्पपूर्वक किसी सिद्धांत विषय को खाने की चेष्टा नहीं की है। उसे सिद्धांत से कथा अधिक प्रिय है अर्थात् सिद्धांत को अल्पपूर्वक कहीं भी उसने कथा में नहीं टँसा है। उसका उद्देश्य अर्थ कथा कहने का रहा है, उसके ध्यान से अत्यंत पुनः एकरार भाषि के सिद्धांतों के प्रतिपादन का नहीं। इस प्रकार से उपर्युक्त दोनों उपन्यासों का विषय तो मनोवैज्ञानिक रहा है किंतु उनके प्रतिपादन की पद्धति बहुत कुछ अमनोवैज्ञानिक है। अतः हम इन दोनों ही उपन्यासों को गुड

मनोवैज्ञानिक नहीं कह सकते। इनको हम मनोविश्लेषणपरक चरित्र प्रदान उपन्यासों की संज्ञा दे सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का एकत्रम अभाव है। उनके कई उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की छटा देखने योग्य है किन्तु वह समग्ररूप में नहीं अंशरूप में ही आई है। ये अंशरूप में आए हुए सिद्धांत व्यत्यस्त एवं स्वतः प्रवर्तित ही कथा में जा गए हैं। इन्हें उपन्यासकार ने स्वयं कथा में लाने की चेष्टा नहीं की है। यदि हम किञ्चित् तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हम कह सकते हैं आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में जीवन और उसको प्रभावित करनेवाली कथा प्रथम है। मनोविज्ञान इतिहास आदि सभी कुछ उसके पश्चात्। बीनेंद्र अज्ञेय बोधी की कथा से उनकी कथामिश्र है। तथा कथित मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी बीनेंद्र अपूरे चित्र देते हैं, वे एक एककर जाने बढ़ते हैं। स्थान छोड़ते हुए, कुरते हुए, वर्णन के सिद्धांतों को साध में लिए हुए अज्ञेय कथा को परिपार्श्व में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का आलम्बन किया कथा पर एकत्रम दृष्ट पड़ते हैं। बोधी जी मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आलम्बन को सामने करके अमनोवैज्ञानिक शैली से कथा को बसीटते हुए बढ़ते जाते हैं। उन्हें अपने सिद्धांतों की अपने विश्लेषणों की अधिक चिंता है कथा की चिंता नहीं। किन्तु इन तीनों से भिन्न आचार्य चतुरसेन जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। वे किसी सिद्धांत के पीछे नहीं पड़े हैं न कोई प्रिय ही सुलझाई है। मनोवैज्ञानिक शैली को जाने करके किन्तु उसके सिद्धांतों को दूर फेंक कर वे निरंतर कथा को साधे बढ़ते गए हैं। उन्होंने अपनी कथा कहने के लिए नये और पुराने सभी प्रकार के कौशलों का प्रयोग किया है किन्तु उसके चक्कर में पड़कर उन्होंने कहीं भी कथा का बहिष्कार नहीं किया है। इस प्रकार इनके इन उपन्यासों में भी मनोविज्ञान का कोई शैक्षणिक आग्रह नहीं है, बल्कि चरित्र स्वयं एक मानसिक कोटि के चरित्र होने के कारण सूक्ष्म विश्लेषण की अपेक्षा रखते हैं। अतः मनोविश्लेषणात्मक चरित्र प्रदान उपन्यासों में ही इनकी परिवर्धना होनी चाहिए।

वैज्ञानिक उपन्यास

हिंदी में अभी तक वैज्ञानिक उपन्यास की कोई कड़ी नहीं बन सकी है। साधारणतः 'वैज्ञानिक कहानी' वह कही जा सकती है जिसमें कहीं न कहीं

किसी न किसी प्रकार विज्ञान का समावेश हो अथवा नाम सार्थक न होगा - परंतु इतना व्यापक अर्थ लेने से तो प्रायेण सभी उपन्यास और कल्प वैज्ञानिक कहानों की कोटि में आ जायेंगे। ऐसा मानना तो किसी को मनीष्य नहीं है। जहाँ एक ओर विज्ञान पर शास्त्रीय प्रवचन करना वैज्ञानिक कहानी का उद्देश्य नहीं है वहीं यह भी जान लेना चाहिए कि दैनिक जीवन की वैज्ञानिक घटनाओं के समावेश-भाव से कोई कहानी वैज्ञानिक कहानी नहीं बन जाती। किसी कहानी में ऐसी आश्चर्यजनक बातों का उल्लेख होना जिनके लिए उस समय के विज्ञान संसार से आचार न मिलता हो उस कहानी को कोटी कल्पना बना देता है। बल्लुज: क्या असम्भव है यह कहना बहुत कठिन है, परंतु किसी काल विशेष में सन्धी बातों को सम्भव कहना चाहिए जो उस काल के वैज्ञानिकों के अनुभवों से बहुत दूर न हों। इतनी दूर न हों कि वैज्ञानिकों ने उनके सम्भव में सोचना भी आरम्भ न किया हो।^१ इस दृष्टिकोण को समझ रखकर देखने पर आचार्य चतुरसेन जी का कथन 'अज्ञान' उपन्यास वैज्ञानिक कहा जा सकता है। कारण वैज्ञानिकों ने अज्ञान की यात्रा के लिए प्रयास आरम्भ कर दिए हैं। उनके 'नीकबनि' उपन्यास में भी कुछ वैज्ञानिकता का पुत्र है किंतु आचार्य चतुरसेन जी ने उसमें वैज्ञानिक अंग की बातों का उसी प्रकार तथा उसी दृष्टि से उपयोग किया है जो खोलेपादन के दृष्टिकोण के सामने सहीपन विचार ने काम लेने समय रहती है। • तब मैं उनके 'अज्ञान' उपन्यास को भी कुछ वैज्ञानिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उसमें ऐसी बातों की प्रमुखता है। जिनको विज्ञान की नहीं विज्ञानमास की ही कहा जा सकता है। उसमें जोरोबस्की कुछ ही दिनों में अज्ञान की यात्रा कर जाता है, जब कि वैज्ञानिकों का मत है कि अतिम्वनि गति से यात्रा करने पर भी निकटतम तारे के पास जाकर लौटने के लिए १० वर्ष चाहिए^२ किंतु पीढ़ियों तक पीकाने से बहुली की रोचकता समाप्त हो जायेगी इसी कारण से वैज्ञानिक उपन्यासों में विज्ञानमास से अर्थ लिया जाता है। इसी प्रकार आचार्य चतुरसेन जी का 'अज्ञान' उपन्यास विज्ञान का नहीं विज्ञानमास का उपन्यास कहा जा सकता है।

१ आलोचना उपन्यास द्वितीयक वैज्ञानिक कथा-साहित्य डा० सम्पूर्णान्त
पृ. १५४।

२ आलोचना उपन्यास द्वितीयक वैज्ञानिक कथा-साहित्य डा० सम्पूर्णान्त
पृ. १५६।

भाचार्य चतुरसेन जी की कहानियों का वर्गीकरण

भाचार्य जी के २३ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं^१ इनमें उनकी कहानियों की सूच्या लगभग तीन सौ के हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम उनकी समस्त कहानियों को उपस्थाओं की भाँति ही कुछ प्रमुख बर्गों में रख सकते हैं। उनके उपस्थाओं की भाँति तत्त्व विधेय की प्रमुखता एवं बर्णन विषय के आधार पर उनकी कहानियों का वर्गीकरण भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कहानियों के वर्गीकरण की एक और पद्धति प्रचलित है। जिसमें हम किसी भी कहानीकार की कहानियों को उसके जीवन के कुछ प्रमुख मोड़ों के आधार पर अथवा उसकी कहानियों के क्रमिक विकास की कुछ प्रमुख बिन्दुओं के आधार पर विभक्त कर लेते हैं। इसे हम 'काष्ठ विभाजन' की पद्धति भी कह सकते हैं। डॉ० सक्तीनारायणसाहू ने अपने प्रबंध 'हिंदी कहानियों की सिस्प बिधि का विकास' में प्रेमचंद और प्रसाद की समस्त कहानियों का अध्ययन इसी पद्धति के द्वारा किया है। किन्तु भाचार्य चतुरसेन जी की कहानियों का अध्ययन इस प्रकार के वर्गीकरण के द्वारा सम्भव नहीं है। कारण भाचार्य जी के कहानी संग्रहों में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं प्राप्त होती कि एक कहानी किसी एक ही संग्रह में प्राप्त हो। कोई-कोई कहानी तो पाँच-छे संग्रहों में एक साथ प्राप्त होती है। साथ ही एक समय के प्रकाशित संग्रहों में उसी समय के आस-पास की कहानियाँ भी नहीं हैं। उनमें नवीन और प्राचीन सभी कहानियाँ एक साथ प्राप्त हो जाती हैं। उन्हीं कहानी के बीच-बीच में आदि भी नहीं दिया है, जिससे यह बात हो सके कि अमुक कहानी अमुक संग्रह की धिसी हुई है (संग्रहों के प्रकाशन के अनुसार यदि हम उनकी कहानी

^१ १ अलोक २ रजकण (आर्षाजिन) ३ बीरपाषा, ४ राजपूत बर्णन, ५ मुजल बाध्याहों की सतक, ६ नवाय नगदू ७ सम्बन्धों के पीर-निर्वासिप ८ लाला बन्दे ९ कबी ११ बुधबा में कसे कर्तु १२ सोम की पत्नी १३ अबातारगई १४ कमलकिशोर, १५ दियासलाई की डिब्बियाँ, १६, पुतपुत हजार हास्तान, १७ बर्मा रीठ १८ सखेर कीजा १९. रामा साहब की पतनू २० श्री-शिव कहानियाँ २१, सोया हुआ सहर, २२ बुधबा में कसे कर्तु २३ परती और भातमान २४ बाहर भीतर, २५ कहानी उल्टा ही गई। अस्त 'स' छे संग्रहों में उनकी प्रथम संग्रहों में प्राप्त दोष कहानियाँ सम्पादित करके व्यवस्थित रूप से रखी गई है।

जसा में विकास बिलक्षण का प्रयत्न करें, तो निरिच्छत ही वह भ्रमपूर्ण एवं बुद्धिपूर्ण होगा कारण एसी कोई श्रुतिका उनके प्रकाशित 'कहानी संग्रहों' में नहीं प्राप्त होती। उदाहरण के लिए हम उनके 'सम्बन्धीय' नामक कहानी संग्रह को ल सकते हैं। इसमें सात राजनीतिक भाव कहानियाँ ही हुई हैं जो सन् १९३० से लेकर सन् १९५० तक के समय में विभिन्न अवसरों पर लिखी गई हैं। इस कारण इस पद्धति के द्वारा हम वर्गीकरण करते आचार्य जी की कहानियों का अध्ययन व्यर्थ समझते हैं।

विभिन्न तत्वों की प्रभुता के आधार पर उपर्युक्तों की भाँति उनकी कहानियों को भी छै बर्गों में रखा जा सकता है। बर्ण बस्तु के आधार पर उनकी समस्त कहानियों को हम निम्न चार बर्गों में रख सकते हैं।

- १ ऐतिहासिक
- २ सामाजिक एवं राजनीतिक
- ३ मनोवैज्ञानिक एवं
- ४ विविध।

भाग (कहानी बंध में) आचार्य चतुरस्रन जी की समस्त कहानियों के बयानकों को हम उपर्युक्त चार बर्गों में रखकर ही उनका अध्ययन करते।

अध्याय—३

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के कथानक

अध्याय—३

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के कथानक

कथानक की परिभाषा

कथानक का अर्थ क्रमानुसार श्रुत कथा कहें वह घटनाक्रम है जो कि उपन्यास के माध्यम अथवा अन्य पात्रों के जीवन में योजनाबद्ध रूप में घटित होता है।

कथानक का महत्व—

यह तरह उपन्यास के अन्य तत्वों से अधिक महत्व का है। वास्तव में यही वह तत्व है जिस पर उपन्यास के अन्य भवन का निर्माण होता है। विद्वानों ने इसके अभाव में किसी सभ्य उपन्यास का रचना सम्भव नहीं है। डा० भगीरथ मिश्र ने उपन्यास के इस तत्व के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है 'यद्यपि आधुनिक काल में कथानक का महत्व कम समझा जाता है पर यह उपन्यास का मूल है। उपन्यास में व्याप्त कुतूहल का तत्व कथानक के सहारे ही विभाजित पाता है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही विकसित होता है। कथानक का चुनाव और निर्माण उपन्यासकार की प्रमुख विजय है और लेखक के कौशल का संकेत इसमें मिल जाता है। कथानक के समस्त अंगों का सुंदर संयोजन घटनाओं का समुचित विन्यास उपन्यास को सुंदर बनाने के लिए आवश्यक होता है। यह धारणा सही है कि उपन्यास में कथानक का कोई महत्व नहीं या सामान्य कथानक को भी वर्णन-कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है। क्योंकि यदि वर्णन-कौशल के साथ कथानक की उत्कृष्टता भी मिल जाय तो अधिकारण योग्य होगा।'¹

कुछ विद्वानों का कथन है कि 'उपन्यास में कथा-वस्तु अनावश्यक है। हमारे जीवन का संघटन किसी पूर्व निर्दिष्ट योजना से तो होता नहीं फिर उपन्यास में—जो जीवन का प्रतिरूप मात्र है—इस विधि से योजना अथवा वस्तु की आवश्यकता ही क्या? निद्रो ने एक बार कहा था कि पूर्वनिर्दिष्ट सभी

बार्ते समयवार्ध होती है (आठ बेट एक प्रीजरेंज्ड इज फास्य) । इसमें उदिह नहीं कि जीवन के अधिकतर अनुभव किसी योजना से सम्बद्ध नहीं होते तथा जीवन के स्वच्छन्द प्रवाह में कोई निश्चित क्रम नहीं होता तो भी सेन्सक का यह कर्तव्य है कि जीवन की इस विशुद्ध सलता में भी वह कोई न्यु सलता कोई क्रम कोई योजना ढूँढ निकाले । रूपारमक वैशिश्यपूर्ण जयत का सौंदर्य स्पष्ट करने के लिए उसे किसी विशेष क्रम से ही हमारे सामने रखना होगा ।^१

भी पबुमकाळ पन्नाकाळ बळ्दी ने भी उपन्यास में इस तत्व का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है कि क्या में मानव चित्त का विकास प्रशिक्षित किया जाता है, और बुकि उसका सकल प्रदर्शन ही मुख्य बात है अतः इस तत्व का महत्त्व सर्वोपरि है ।^२ भी इयाम बोधी ने भी अपनी पुस्तक 'उपन्यास सिद्धांत' में इस तत्व को सर्वप्रधान मानते हुए लिखा है 'उपन्यास का जो अस्वि-नंबर है वह कथानक ही है । यह कथानक ही वह मूलाधार है जिस पर उपन्यास का भव्य भवन खड़ा किया जाता है । अतः जब तक यह आधार पृष्ठ न होया इस पर खड़ा किया गया भवन भी टूट नहीं बन सकता । यदि यह आधार ही सम तल न हुआ और उसके बीच में संश्लिषा रह गई तो भवन क खण्ड-खण्ड हो जाने की सम्भावना है ।^३ डा हुजारीलाल त्रिबेदी ने भी कथा साहित्य में इस तत्व को सर्वप्रधान बतलाया है ।^४ डा प्रताप नारायण टंडन ने प्रस्तुत तत्व की प्रधानता का कारण बतलाते हुए लिखा है । 'वास्तव में उपन्यास के तर्कों में कथानक की प्रधानता का कारण यही है कि इसके अभाव में न केवल उपन्यास की रचना नहीं हो सकती बल्कि उपन्यास एक कथा-इति ही नहीं बन सकता । उपन्यास के जो सामित्य हैं उनका निर्वाह भी आधार रूप से इसी तत्व पर निर्भर होता है । विशेष रूप से आनकल उपन्यास के जिस सामित्य पर बल दिया जाता है वह है मानवजीवन की व्याख्या तथा मानवीय बुद्धिकोण पर आधारित वर्तन । स्पष्ट है कि इनका निर्वाह तब तक सम्भव नहीं है जब तक एक विस्तृत कथानक की पृष्ठभूमि न हो । यही कारण है कि कथानक को उपन्यास के अन्य तर्कों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है ।^५ अंत में हम इसी

१ हिन्दी उपन्यास—भी त्रिबेदीनारायण भीशास्त्र, पृ ४७४ ।

२ साहित्य परिचय—पृ ९२ ।

३ उपन्यास सिद्धांत—भी इयाम बोधी, पृ ९१ ।

४ साहित्य का सार—डा० हुजारीलाल त्रिबेदी पृ ४२ ।

५ हिन्दी उपन्यास में कथा-तत्त्व का विकास—डा० प्रताप नारायण टंडन पृ ११० ।

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथानक के अन्त में उपन्यास उपन्यास नहीं बन सकता वह भीर मले कुछ बन जाय। इस प्रकार विविध रूप से कहा जा सकता है कि उपन्यास के अन्य तत्वों की अपेक्षा इस तत्व का महत्व नहीं अधिक है।

कथानक की प्रमुख विशेषताएँ

कमबख़ता एवं सुगठन—

कथानक का कमबख़त एवं सुगठित होना उपन्यास की अन्ततमक महत्ता को विवक्षित कर देता है। बटनार्यों को एक मूकका में स्यूत कर देने में ही कथानक का कौशल प्रकट होता है। बटनार्य इस कौशल से ख़ुशी गई हों कि वे एक दूसरे की आश्रित प्रतीत हों। कथा के मध्य से यदि एक भी कथा मूल बिन्दुका चिन्ना जाय तो कथानक में तुरन्त खटक उत्पन्न हो जावे तभी उपन्यास पूर्ण सुगठित कहा जा सकता है। कथानक के सुगठन के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें अनावश्यक का त्याग और आवश्यक को ग्रहण किया गया है। कोई आवश्यक बात छूटी नहीं हो। (*A brevity that exclude every thing that is redundant & leaves nothing that is sufficient.*)^१

रोचकता—

कथानक यदि रोचक न हुआ तो उसकी अन्य समस्त विशेषताएँ ही महत्व हीन हो जाती हैं। पाठक मनोरंजन के लिए ही प्रायः उपन्यास को हाथ में लेता है किन्तु यदि उसे उससे इसी बस्तु की उपलब्धि न हो सके तो वह उस कृति को महत्वहीन ही समझेगा। अतः प्रत्येक उपन्यासकार अपनी रचना को अधिक से अधिक रोचक बनाने के लिए प्रयत्नशील रहना है। केवल इस गुण की सृष्टि के लिए ही वह कथा के प्रत्येक मुण्ड को धीरे धीरे बसा देता है। इसी के लिए उपन्यासकार आकस्मिक और अप्रत्याशित का आशय लेता है जिनकी सहायता से वह पाठक की कुतूहल प्रवृत्ति को अन्त तक अगाध रखने में पूर्ण सफल रहता है। 'यह आकस्मिक सम्भावना और कार्य-कारण मूलका से अलग न होते हुए भी पाठक के अनुमान और कल्पना से बाहर होता है। इसके साथ ही साथ वह नये रंग से बहानी कहता है नये प्रकार के पात्रों की सृष्टि करता है नयी

१ काव्यशास्त्र—डा० जपीराम त्रिपाठी, पृ ८५।

बटनाओं का संयोजन करता है तथा अग्य नवीनतर तत्वों को कृति में समावेशित करने को प्रस्तुत रहता है।^१ रोचकता-सम्पादन के लिए पद-पद पर आकस्मिकता का संयोजन उचित नहीं है अप्रत्याशित का संयोजन जो आकस्मिक न हो अधिक संयत माना जाता है।

प्रबन्ध कौशल —

उपन्यासकार की प्रतिभा का वास्तविक परिचय उसके प्रबंध कौशल से ही प्राप्त सकता है। कथानक की आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं को किस प्रकार संगठित एवं सुयोजित किया गया है इस पर उपन्यास का ककारत्मक महत्व बहुत कुछ निर्भर करता है। उपन्यासकार का कौशल बटनाओं के योजन में है। जीवन के विस्तृत-बोध से वह किन-किन प्रसंगों का निर्वाचन करता है और उन्हें किस गहराई तक आकर साज और संवार कर प्रस्तुत करता है इसी पर उसकी सफलता निर्भर करती है। अतः हम कह सकते हैं कि उपरोक्त बटनाओं का ककारत्मक ढंग से संयोजन ही उपन्यासकार का प्रबंध कौशल है और इससे कथानक का सर्वत्र बढ़ जाता है।

मीलिकता —

इस संसार में जो कुछ है वह पुरातन है किन्तु उसे जोड़ निकालने उसका निर्वाचन करने और उसे एक नवीन ढंग से प्रस्तुत करने में ही उसकी मीलिकता है। मीलिकता एक ऐसी कसौटी है जिस पर खरी उतरने पर ही उस वस्तु का महत्व सिद्ध होता जाता है। अतः कथानक में इस वस्तु की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि विषय के अनुसार देखा जाय तो संसार के सभी उपन्यासों का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण करके उन्हें निश्चित विषयों के अंतर्गत रखा जा सकता है। परंतु एक समर्थ उपन्यासकार की दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय इस बात से मिलता है कि वह जीवन की गहनता से किस सीमा तक परिचित है तथा उसकी मूलभूत समस्याओं और उनके सम्बन्धित तथ्यों का उसने सायात्मक क्रिया है अथवा नहीं क्योंकि इन्हीं कुछ बातों से इस बात का पता चलता है कि उपन्यासकार ने कभी जीवन के यथार्थ का टीका अनुभव किया है या नहीं। यदि कोई उपन्यासकार किसी एक अनुभूति की अभिव्यक्ति अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से कर सकता है तो वह उसही मीलिक दृष्टि का परिचय दे सकते योग्य है क्योंकि एक उपन्यासकार के दृष्टिकोण में मीलिकता ही कितनी

सम्भावनाएँ हैं यह इन्हीं कुछ बातों पर निर्भर करता है ।^१ इसके साथ ही साथ उपन्यासकार की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि पाठक आगामी घटना त्रिव्याकलाप अपना अंतिम परिणाम का अनुमान न लगा सके । अतः कथानक की मौलिकता विषय की नवीनता नवीन घटनाओं की कल्पना और उनके संयोजन के इस वर्णन और विन्यास की विशेषताओं में देखी जा सकती है ।^२

समाजना —

उपन्यासकार कल्पना की उद्धान भले ही क्यों न भरे किन्तु उसे ध्यान रखना चाहिए कि उसकी सृष्टि विस्तृत होने पर भी संछलन और असंगत होने पर भी सुसंगत भाव हो अन्यथा बुद्धि की कसौटी पर यह खरी न उतर सकेगी । इसके लिए यह अनिवार्य है कि उपन्यासकार अपने एवं अपनी अनुसूतियों के सामे पूर्ण सत्यता का व्यवहार करे । उसे उन सभी बातों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, जिनका समावेश वह अपनी रचना में करना चाहता है । घटनाएँ सम्भावना के क्षेत्र का उल्लंघन न करें इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि स्वार्थों के विवरण पारिवारिक एवं सामाजिक दृष्टियों के विवरण आर्थात्मक वेद्यमूपा आदि के वर्णन भी उपन्यासकार के परिपक्व अनुभवों से जोतप्रोत होने चाहिए । केवल ऊपरी वर्णन ही नहीं पात्रों के अन्तर्ग से रहस्य के उद्घाटन में भी पूर्ण सत्यता एवं यथार्थता की आवश्यकता होती है । इसीलिए अंग्रेजी उपन्यास केल्लिका भीमती इस्मिण्ट ने एक बार उपन्यास-केल्लिकार्थों को फटकार बतलाते हुए कहा था कि पुरुष और स्त्री में प्रकृति भेद है । इसलिये स्त्रियों को कभी पुरुषों की भाँति उनके दृष्टिकोण के अनुसार कितने का प्रयत्न न करना चाहिए । उनका अपना ही क्षेत्र क्या कम है जो वे इसका बाहर माने का प्रयत्न करती हैं । कोई केल्लिका स्त्री-समाज का उसकी आत्मा आकांक्षा प्रेम करुणा मैत्रस्य आदि का जितना सफल अंकन कर सकती है उतना पुरुष समाज का नहीं । यह बात पुरुषों के विषय में भी कही जा सकती है । अतएव एक केल्लिक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वह संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन कदापि न करे । उसे चाहिए कि वह जिस कल्पना पर भी अपने

१ हिन्दी उपन्यास में क्या नित्य का विकास—डा० प्रतापनारायण डंडन पृ ७७ ।

२ काव्यशास्त्र—डा० मनीरथ मिश्र पृ ६४ ।

उपन्यास के कथानक की नींव रखे यह शक्तिशाली एक ठस हो। बिना अनुभूत आचार की कल्पना के कथानक में सत्यता नहीं आ पाती वह जीवन से सर्वत्र दूर ही रहता है वत- ऐसे कथानक जम साधारण का मनोरंजन भके ही कर दें किन्तु इनकी कलात्मक एक साहित्यिक महत्ता निरिचत ही स्पून पड़ जाती है। इतीकिए हेनरी जेम्स ने इस गुण की महत्ता बतलाते हुए लिखा है 'यह कहना व्यर्थ है कि सत्यता के विवेक के अभाव में आप एक अच्छा उपन्यास नहीं लिख सकते किन्तु उस सत्य को अपने जीवन में पाने की कोई विधि आपको बता सकना कठिन है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि सत्यता का बातावरण एक उपन्यास का सबसे बड़ा अवयुग है जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर हैं। यदि वह नहीं है तो सब कुछ होना व्यर्थ है। यदि वह है तो वह उन प्रभावों का श्रेणी है जिनके द्वारा केवलक ने जीवन के भ्रम को खड़ा किया। इस संकल्पना को पाने की प्रणामी उपन्यासकार की कला का प्रारम्भ और अंत है।'

कथानक के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण

कथानक गठन की दृष्टि से दो वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—

१. निश्चित-वस्तु-उपन्यास (नावेल्स आफ मूव प्लाट)
२. संघटित-वस्तु-उपन्यास (नावेल्स आफ आर्गोमाइज्ड प्लाट)

वे कथानक जिनमें सम्बद्धता का अभाव होता है तथा जो सूत्रों में बिखरे हैं उन्हें प्रथम काटि के अंतर्गत रखा जा सकता है। ऐसे उपन्यासों में घटनाओं का बाहुल्य होता है। इसमें कथानक एक दूसरे से फूटने वाली घटनाओं से संयोजित नहीं रहता वरन् मुख्य पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने वाली परस्पर असम्बंधित अनेक घटनाओं को केवलक उनका निर्माण होता है। उन घटनाओं में कारण-कारण का संबंध नहीं रहता वे केवलक मुख्य पात्र के चारों ओर घूमती हैं। सुवर्धित कथानक (संघटित-वस्तु-उपन्यास) में किसी निश्चित योजना की दृष्टि में एकते हुए घटनाओं को परस्पर गुंथा जाता है। ऐसी दशा में उपन्यासकार के अन्तिम में कथा का पूरा व्योरा उपन्यास रचना से पूर्व रहता है। उस योजना में पात्र और घटनाएँ उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेते हैं। उन

सबके मूल में रूप-रूप रहता है जो सबको मिलाता हुआ 'परिणाम' या 'अंत' की ओर जाता है।

'सुगठित तथा पूर्ण नियोजित कथानक अपनी कुस्ती और सौंदर्य के कारण पाठकों के आकर्षण का विषय रहता है किंतु कथानक अत्यधिक योजनाबद्ध होना पर उसमें सयोग, वैययोग या आकस्मिकता के बहुप्रयोग के फलस्वरूप यह रचना शक्तिहीन और अस्वभाविक हो जाता है। सयोग जीवन में आते हैं। किंतु उपन्यास में पण-पण पर मनोव्यक्ति विधि से घटनाओं का घटना और पात्रों का पदार्थ पाठकों को उपन्यासक की मनमानी जैसा जान पड़ेगा। उनकी बुद्धि संयोग की बाढ़ के प्रति विद्रोह कर उठेगी। अतः पूर्ण नियोजित कथानक को स्वाभाविक गति से अग्रसर होना चाहिए।

कथानक एक या एक से अधिक कथाओं द्वारा निर्मित होने की दृष्टि में सरल तथा पेचीला कथानकों की दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। सरल कथानक में केवल एक कथा होती है। पेचीला कथानक में दो या दो-से अधिक कथाएँ मिलकर बनती हैं। ऐसी रचना में कथाओं का परस्पर ऐसी रीति से रूपा जाना आवश्यक है कि वे सब किसी बड़ी सरिता में स्वतः या मिलने वाली जल-धाराओं जैसी स्वाभाविक और कथानक की अनिवार्य अविभाज्य अंग ही जान पड़ें।

उपन्यास में कथावस्तु नाटक की भाँति दो प्रकार की होती है आधिकारिक और प्रासंगिक। आधिकारिक प्रमाण पात्रों से संबंध रखने वाली मुख्य कथा है इसका मूल प्रारम्भ से फल-प्राप्ति तक रहता है। प्रासंगिक—प्रसंगगत आभी या गीत कथा है। इसका संबंध सीधा नायक से न रहकर अन्य पात्रों से रहता है यह मूल कथा की गति को बढ़ाने के लिए रहती है। इसकी फल सिद्धि नायक के अतिरिक्त किसी अन्य को होती है। यह नायक की अभीष्ट फल-सिद्धि से मिला होती है किंतु नायक का इससे हित साधन अवश्य होता है। इसके दो प्रकार हैं—पताका और प्रकरी। आधिकारिक के साथ अंत तथा चलने वाली प्रासंगिक कथा पताका तथा उसके बीच में ही दफ्त जाने वाला कथा प्रसंग 'प्रकरी' है।

आगे हम आचार्य अनुराग जी के उपन्यासों की कथावस्तु पर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे। पीछे हम उनके उपन्यासों का वर्गीकरण प्रस्तुत कर उनके

है। बर्धन-वस्तु के बर्णिकरण के आधार पर यदि उनके उपन्यासों का विश्लेषण किया जायेगा तो उपन्यासकार के मनोविकास का सहज ज्ञान हमें न हो सकेगा। अतः जागे हम उनके उपन्यासों की कथावस्तु का काळक्रमानुसार विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे जिससे उनके उपन्यास-साहित्य का विकास कम भी स्पष्ट हो सके।

11

हृदय की परख

प्रस्तुत उपन्यास आचार्य चतुरसेन जी का प्रथम प्राप्त प्रकाशित उपन्यास है। यह उनका एक सामाजिक उपन्यास है। कथा का आरम्भ एक अप्रत्याशित घटना से होता है। बूढ़े लोकनाथ सिंह के पास एक बार सवार अपनी लक्ष्मी कन्या (सरसा) को एक रात्रि के लिए छोड़ आठा है किन्तु वह झूट कर उसे लेने नहीं आठा। अतः वह कन्या लोकनाथ सिंह के संरक्षण में ही पाकिष्ठ-नोपिठ होती रहती है। एडवर्क आगामी घटना के प्रति पाठक की सहज उत्सुकता जाग्रत होती है। सरसा की सरसता लोकनाथ की उस पर असीम ममता अ कि को लेकर प्रमुख कथा आये बढ़ती है। इसी समय लोकनाथ द्वारा अंतिम समय सरसा के वास्तविक रहस्य का उद्घाटन और उसका मार्ग से हट जाना आदि घटनाएँ मुख्य घटना की निष्पत्ति कर देती हैं। सरसा के हृदय में उठने वाला संतर्पण उसकी वैदम्ब प्रकृति सत्य का उसकी ओर आकर्षित होना और सरसा द्वारा उसके प्रेम की उपेक्षा आदि प्रकृतियाँ तथा घटनाएँ मुख्य घटना निष्पत्ति की व्याख्या करती हुई कथा का आये बढ़ती है। व्याख्या के पश्चात् ही मुख्य कथा एक नाटकीय मोड़ लेती है और कथानक में बात-प्रतिबात प्रारंभ हो जाते हैं। सरसा का इसी समय अपनी वास्तविक माता ससिकला से परिचय होता है। वह अपनी माता की उपेक्षा करती है। इस घटना के पश्चात् ही कथा पुनः मोड़ लेती है। सरसा सरन का आश्रय त्याग कर बृषपाय माय आड़ी होती है। रूक में उसका परिचय सुन्दरलाल से होता है और वह उसी के साथ उनके आश्रम में पहुँच जाती है। यहीं सरसा का सुन्दरलाल की बहुत धारणा से परिचय होता है। दोनों का सहज आकर्षण देखकर पाठक कुछ सतर्क होता ही है कि इसी समय पुनः कथानक में एक नाटकीय मोड़ आ उपस्थित होता है। सरसा धारणा के साथ अपनी वास्तविक माता ससिकला के यहाँ आ पहुँचती है। प्रथम मिलन में ही दोनों-दोनों को पहचान लेती है। दोनों के हृदय में अंतर्पण प्रारंभ होता है। बात-प्रतिबात की अवस्था को पार करता हुआ कथा एक तीव्रवर्ति से अन्त सीमा की ओर अग्रसर होता है। सरसा अपनी वास्तविक

माता के गृह से उन्हे वीरों ही पीट पड़ती है। पुत्री की यह अपेक्षा घातकता सहन नहीं कर पाती। इस आघात के फलस्वरूप ही उसकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के पूर्व सरला की उत्पत्ति का रहस्य वह पति को बतला देती है। इन अप्रत्याशित घटना के घटित होने से मुख्य कथा का प्रवाह कुछ मंद पड़ जाता है। ऐसा आभास होने लगता है कि चरम सीमा समय से पूर्व ही आ गई किन्तु विद्याधर की प्रार्थना तथा सरला की आधिकारिक कथा से कुछ ऐसी उलझ जाती है कि कथानक में पुनः एक लहर आ जाती है। सरला विद्याधर से विवाह करने को तैयार हो जाती है किन्तु विद्याधर बर्षोंकर मंताग होने के कारण विवाह करना मस्वीकार कर देता है। सरला इस आघात को सहन नहीं कर पाती। उसका मस्तिष्क विह्वल हो जाता है। एक रात्रि वह सारला के गृह से भाग कर पुनः सत्य के पास पहुँच जाती है। कथा दुखान्त हो जाती है। सरला की सत्य के बाधन में ही मृत्यु हो जाती है। और सत्य सबके लिए सुख हो जाता है। उपसंहार में उपन्यासकार ने सरला के पिता भूदक का अपनी वास्तविक पत्नी सारला से पुनः मिलाने दिया है।

समं आधिकारिक कथा सरला एवं सत्य की है। विद्याधर की कथा भी सरला की कथा से पूर्णसम्बन्ध युक्तमिद गई है। भूदक घातकता सारला सुखरत्नक आदि की कथाएँ मूल कथानक में प्रार्थना कथाओं का कार्य करती हैं। किन्तु वस्तुतः यह सभी प्रार्थना कथाएँ सारला के चरित्र के विभिन्न पक्षों का उन्मूलन के लिए ही प्रस्तुत उपन्यास में संयोजी गई हैं।

प्रस्तुत उपन्यास कथानक-संगठन की दृष्टि में पूर्ण संगठित है। कथानक की सभी घटनाएँ एक दूसरे से अनस्यूत हैं। प्रार्थना कथाएँ भी आधिकारिक कथा का अग्रसर करने में सहायता देती हैं। कई नाटकीय मोड़ों के कारण कथा का क्वचित् कृत्रिमता आ गई है। वास्तव में प्रस्तुत कथानक संयोगों एक अप्रत्याशित घटनाओं का माध्यम बनाकर अंत तक पहुँच रहा है। अप्रत्याशित रूप से ही सरला की अन्तिम मृत्यु के बाधन में जाती है संयोगवत् ही उसका परिचय अपनी वास्तविक माता घातकता में होता है, इसी प्रकार संयोग के ही उन्मूलन सुखरत्नक सारला एवं विद्याधर में परिचय होता है और अंत में नाटकीय संयोग में ही उन्मूलन माता-पिता पुनः अपनी माता घातकता में होता है। इससे परचाहूँ भी भी अधिकांश कथाएँ एवं नाटकीयता से पूर्ण हैं। इस प्रकार प्रस्तुत कथानक संयोगों एवं नाटकीयता की बहुलता के कारण रोचक अंश ही बना रहा है किन्तु उन्मूलन स्वाभाविकता मूल अन्तर्गत हो गई है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक पूर्णरूप से मौलिक है। यह उपन्यास सन् १९१८ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। उस समय तक हिंदी में इस प्रकार कथानकों का प्रायः अभाव ही था। इसमें एक बर्षांपंकर संतान की समस्या को उठाना नया है। सरला का जन्म भूरेव एवं सच्चिदा के अवैध संबंध से हुआ था। सरला के खरिब को लेकर ही प्रस्तुत उपन्यास की आधिकारिक कथा खड़ी की गई है। भारत संतान का समाज में क्या स्थान है प्रस्तुत कथानक इस पर किचित् मात्र ही प्रकाश डाल पाता है कारण सरला और सच्चिदा दोनों ही को उपन्यासकार कीम ही मार्ग से हटा देता है। उपन्यासकार ने यह दिखाने का प्रयत्न अवश्य किया है कि समाज में किसी व्यक्ति के कर्मचरण का उत्कृष्ट प्रभाव उतना नहीं पड़ता जितना उसकी जन्म विषयक बटनाओं का। विद्याधर सरला से पूर्णरूप से प्रेम करता है उसके आचरण और पांडित्य को देखकर वह उसे बेबी समझने लगता है किन्तु उसके जन्म का रहस्य प्रकट होते ही वह उससे दूर रहने का प्रयत्न करता है उससे विवाह करना भी स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार उपन्यासकार ने प्रस्तुत कथानक के माध्यम से एक चिरंतन समस्या— समाज में भारत-संतान का क्या स्थान हो—को सुझाने का प्रयत्न किया है। किन्तु वास्तव में उपन्यासकार ने बड़े कौशल से जिस समस्या को सामने ला रखा है उसका कोई भी मौलिक हल निकालने में वह असमर्थ ही रहा है। सम्भव है उपन्यासकार का वास्तविक उद्देश्य प्रस्तुत समस्या को सामने लाना ही रहा ही हल की ओर उस समय (सन् १९१८ में) उसका ध्यान भी न गया हो तभी उसने सच्चिदा और सरला दोनों को ही मार्ग से बकात् हटा दिया है।

भारत-संतान-समस्या को जाने के कितने ही उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के कथानक का विषय बनाया है। श्री बयलकर 'प्रसाद' ने 'कंकाल' (१९२९) में तथा श्री इन्द्रावर जोशी ने 'प्रेम और छाया' (१९४६) में प्रस्तुत समस्या को ही किसी न किसी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इनमें अंतर यह है कि आचार्य अनुराधेन जी ने सीबे और सरला डम से प्रस्तुत समस्या को अपने कथानक में सूब दिया है जब कि प्रसाद जी ने उसे आर्थिक आह्वारों के मध्य रखकर और जोशी जी ने उस पर मनोविज्ञान का आचरण डाल कर प्रस्तुत किया है। 'कंकाल' में 'प्रसाद' जी ने भी समस्या का कोई हल प्रस्तुत नहीं किया है। अतएव भी भारत-संतान विषय को मार्ग से उसी प्रकार हटा दिया है जिस प्रकार आचार्य अनुराधेन जी ने प्रस्तुत उपन्यास से सरला को। जोशी जी ने 'प्रेम और छाया' में पारस नाथ के भारत संतान होने की कल्पना

मान को है वा तब में बहू है नहीं। उन्होंने केवल एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि के विश्लेषण के लिए ही प्रस्तुत समस्या को चुना है अतः उनसे समस्या के उचित हल की कोई आशा करना ही व्यर्थ था।

दृष्ट्य की प्यास

इस उपन्यास में मुख्य कथा का प्रारम्भ प्रवीण और सुखवा के असफल वैवाहिक जीवन से होता है। सुखवा एक आर्वा पत्नी है किन्तु प्रवीण एक उच्च स्तर एवं अनृष्ट पति। एक को पति से संतोष है तो दूसरे को पत्नी से असंतोष। प्रवीण के हृदय का यही असंतोष कथा को अग्रसर करता है। यह अपनी पत्नी को अपने जीवन का सबसे महान् अभिघात समझता है। इसी अवस्था में जब उसका साक्षात्कार अपने बाम-सखा भगवती की पत्नी से होता है तो प्रथम परिचय में ही वह अपनी मित्र-बन्धु पर आसक्त हो जाता है। उसका यह आकर्षण पाठक की महब उत्पुष्टता को जाग्रत करता है। इस आकर्षण का परिणाम और सुखवा के निष्कपट सेवा और त्याग का फल धीमे धीमे जानने को बहू उत्पुष्ट होता है। यहीं से मुख्य कथना का उत्कर्ष प्रारम्भ होता है। भगवती की बहू के पुत्र होना प्रवीण को बहू को एकान्त में देखने का अवसर मिलना उसका आकर्षण और बढ़ना भगवती का प्रवीण पर संवेह हो जाना आदि कथनाएँ मुख्य कथना की निष्पत्ति में पूर्ण माप देती हैं। अग्नी मुख्य कथना की उपन्यासकार व्याख्या प्रस्तुत भी नहीं कर पाता कि एक अप्रत्याशित घटना के प्रवेश के कारण कथानक में घात-प्रतिघात प्रारम्भ हो जाता है। भगवती अपने मित्र प्रवीण को अपनी पत्नी के साथ एकान्त में देख लेता है। पुत्र कथा ज्ञात किए बिना ही वह अपनी पत्नी को कुटी तरह से प्रभावित कर अपने गृह से निकाल देता है। राष्ट्रीय डग से प्रवीण का पुत्र भगवती की पत्नी से मिलना उसे मृत्यु के मुख से निकालना तथा उसे लेकर चुपचाप भाग जाना ज्ञाति घटनाएँ कथानक को चरम सीमा की ओर बढ़ी स्तर के उत्पन्न होने से जाती हैं किन्तु इसी समय भगवती द्वारा अपनी पत्नी के निष्वासन की कथना के उत्पन्नकथ प्रवीण के स्वभाव में परिवर्तन कथानक को बलान् आन्दोलनी अंत की ओर मोड़ देना है। कथानक का प्रवाह चरम-सीमा पर पहुँच कर मंद हो जाता है। भगवती के विचार भी अपनी पत्नी एवं प्रवीण के पत्रों की पढ़कर परिवर्तित हो जाते हैं और वह कुछ हृदय से दोनों का पना समाने निश्चलता है। कथा में पुनः कुछ घटित होने लगती है। इसी समय भगवती और प्रवीण का विमल, प्रवीण द्वारा विप-मान ज्ञाति घटनाएँ कथानक को पुनः

अपनी शरम सीमा पर ला लड़ा करती है। उपसंहार में प्रवीण और सुबाना भगवती और उसकी पत्नी का मिश्रण कर दिया गया है।

कथा से स्पष्ट है कि मुख्य कथा प्रवीण सुखदा एवं भगवती की बहू की है। भगवती की कथा मुख्य कथा से इस प्रकार भुंपी हुई है कि उसे प्राचीन कहना कठिन हो जाता है। वास्तव में यह चरित्र प्रबान उपन्यास है मत् इसमें प्रवीण के चरित्र को ही केंद्र बनाकर कथा का विकास हुआ है। प्रवीण के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए ही कथानक में कितनी ही नाटकीय एवं अप्रत्याशित घटनाओं की संयोजना की गई है। प्रवीण की चारित्रिक विशेषताओं को अधिक महत्त्व देने के कारण कथानक का महत्त्व अपेक्षाकृत त्रुट हो गया है। चरित्र को निसारने के कारण ही कथानक को बलात् पद्यार्थ से आदर्श की ओर उपन्यासकार ने मोड़ दिया है। परिणामस्वरूप कथानक की कलात्मक निरसंगता को गहरा आघात पहुँचा है।

यह सत्य है कि उपन्यासकार ने घटनाओं का संघटन इस कलात्मक ढंग से किया है कि कथा अंत तक रोचक बनी ही रहती है तथापि यह भी सत्य है कि अप्रत्याशित घटनाओं के बाहुल्य अस्वाभाविक रूप से स्वभाव में परिवर्तन एवं बलात् आदर्शवादी मोड़ ने संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन कर दिया है परिणाम यह हुआ है कि कथानक की अंतिम घटनाएँ अपने यथार्थ रूप में सामने नहीं आ पाई हैं।

प्रस्तुत कथानक के पूर्वार्ध में जीवन की कुछ अवस्थाओं के चित्रण बने ही उचित हैं। प्रवीण की मानसिक उद्वेगों में अनुभूतियों का पूर्णस्वेन समावेश रहने से तथा यथार्थ का प्रचुर पुट पाठक के हृदय को बरबस स्पर्श कर लेता है। प्रस्तुत कथानक के माध्यम से उपन्यासकार ने यह प्रदर्शित करना चाहा है कि मुख्य को (पति को) नारी का (पत्नी का) केवल रूप ही नहीं बल्कि हृदय भी देखने का प्रयास करना चाहिए।

पूर्वाहुति (सुबान का ब्याह)

प्रस्तुत उपन्यास आचार्य अनुराधेन जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कथानक महाराज पुष्पीराज चौहान के जीवन से संबंधित है। इसमें एक प्रबान और दो उप प्रबान कथाएँ एक साथ भुंपी हुई हैं। प्रबान कथा दिल्लीपति पुष्पीराज की है। उपन्यास की कथा का ब्यावहारिक प्राण्य भी इसी कथा से हुआ है। तथा उपप्रबान कथाएँ अमरद एवं बोरी से संबंधित हैं। अमरद की

क्या संयोगिता के माध्यम से पृथ्वीराज की कथा से आ मिली है। संयोगिता का रूप वर्णन सुनकर पृथ्वीराज और पृथ्वीराज का रूप वर्णन सुनकर संयोगिता एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। मुख्य घटना की तैयारी यही से प्रारम्भ हो जाती है। पृथ्वीराज से छ प मानने के कारण जयचंद उन्हें यज्ञ में एक राजा के सम्मान के अनुसार निर्मानित नहीं करता। पृथ्वीराज को और भी अपमानित करने के लिए जयचंद अपने यज्ञ द्वार पर उनकी स्वर्ण-प्रतिमा को द्वारपाल के स्वात पर लटका कर देता है। राजकुमारी संयोगिता उसी स्वर्ण-प्रतिमा को जयमाल पहना कर बरज कर सेठी है। मुख्य घटना की निष्पत्ति यहीं हो जाती है। व्याख्या में पृथ्वीराज के अंतर्द्वंद्व एवं तैयारियों का वर्णन है। इसके पश्चात् ही पृथ्वीराज एवं जयचंद के परस्पर संबंधों का वर्णन प्राप्त होता है। प्रथम अपरोक्ष रूप से और फिर परोक्ष रूप से। पृथ्वीराज जयचंद के दरबार में चंद कवि के साथ लबास बन कर जाता है। यहीं पृथ्वीराज एवं संयोगिता का माटवीय डग से मिलन हो जाता है। वहीं दोनों का विवाह भी संपन्न हो जाता है। नात के कहन पर पृथ्वीराज राजकुमारी संयोगिता का अपहरण कर अपनी सेवा के साथ जयचंद की अपार बाहिनी को रौंढता हुआ अपनी राजधानी आ पहुँचता है। यह उक्त घटना की चरम-सीमा है और यही से जयचंद की कथा समाप्त हो गई है।

दूसरी प्रधान कथा गोरी की है। संयोगिता-हरण के पश्चात् ही पृथ्वीराज पर गोरी का आक्रमण हो जाता है। दोनों में जम कर युद्ध होता है किंतु अंत में पृथ्वीराज गोरी द्वारा पराजित होकर बंदी होता है। गोरी उसे बंदी बना कर गजनी से जाता है। वहाँ उम पर अमानुषिक शरणाचार होने लगते हैं। उसको नेत्रहीन कर दिया जाता है। इसी समय पृथ्वीराज का मित्र चंद छपबेण में उससे समीप पहुँच जाता है। यही वह पृथ्वीराज के शय्यमेदी नाम के अमत्कार का प्रदर्शन करवा कर गोरी को पृथ्वीराज के कराँ से ही समाप्त करवा देता है। अंत में पृथ्वीराज और चंद स्वयं भी आत्म-हत्या कर लेते हैं। यहीं प्रस्तुत उपन्यास की कथा का अंत हो जाता है। पृथ्वीराज की आधिपतिक कथा जयचंद एवं राजा राहानुरीन गोरी की प्रासंगिक कथा को अग्रसर करने के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक दशा का भी चित्रण करने में पूर्ण सहायता करती है। अंत इनका महत्व स्वभावतः बड़ जाता है।

कथाकार प्रस्तुत कथानक की मौलिकता एवं रोचकता की पूर्ण रत्ना करने में अत्यंत सफल रहा है। किंतु इसमें हम कथानक को बोधी कथापि नहीं कह

पक्षों के कारण उसने भूमिका में ही कह दिया है 'इस पुस्तक में सब कथानक पृथ्वीराज रासो के आधार पर बणित हैं। केवल कथानक ही नहीं भाषा भाव और बर्णन-शैली भी रासो ही की है। मैंने केवल उसे अपने हँस पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वहाँ-वहाँ कुछ परिवर्तन भी मेरी हैं।' जब ऐसी रक्षा में कथानक में मौलिकता खोजना बर्नन शैली में दोष निकालना एवं बहिः नाटकीयता के आविर्भाव को सामने ला खड़ा करना व्यर्थ ही होगा।

बहते आँसू (अमर अमिल्लाया)

आचार्य अत्रसेन की का प्रस्तुत उपन्यास समस्या प्रधान है। इसमें हिंदू विचाराओं की समस्या को उठाना गया है। भगवती नारायणी सुधीला कुमुद माळती और बसंती नाम की छे विचाराओं की कथाएँ इसमें एक साथ गूँथी गई हैं। यह सभी कथाएँ एक साथ अपसर होते हुए भी एक दूसरे की बाधित नहीं जात होतीं। प्रत्येक कथा अपने में स्वतंत्र है अपना भिन्न अस्तित्व रखती है। इन भिन्न-भिन्न कथाओं का कोई नैसर्गिक संबंध भी नहीं है किन्तु तो भी लेखक ने इन सभी को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया है। यद्यपि यह सूत्र गिठांत कीच है। भगवती और नारायणी परस्पर बहते हैं और कुमुद एवं माळती छविवाँ। सुधीला और बसंती का परिचय मात्र है। जब इन सभी कथाओं को लेखक ने बड़े बल से एक साथ पिरोना चाहा है। सुधीला की राजा साहब से रत्ना प्रकाश नाम का एक युवक करता है। प्रकाश कुमुद का मनेप भाई है। इस प्रकार सुधीला की कथा का संबंध परोक्ष रूप से कुमुद की कथा से स्थापित हो जाता है। बसंती और भगवती की कथा का संबंध भी इसी प्रकार सीधे तान कर स्थापित किया गया है। भगवती और बसंती दोनों ही विचाराएँ एक ही व्यक्ति (हरमोदिर) द्वारा प्रवर्धित की जाती हैं। यों इन सभी-कथाओं को लेखक ने एक साथ जोड़ आवश्यक किया है किन्तु इससे कथानक की ककारमकता की रक्षा नहीं हो सकी है।

प्रस्तुत कथानक में कौन सी आधिकारिक कथा है और कौन सी प्रासंगिक यह ज्ञात नहीं हो पाता। इन सभी के मध्य में प्रकटी कथाएँ व्याप्त हैं जिन्होंने सूत्र कथानक को अपसर होने में सहायता की है।

प्रस्तुत उपन्यास की सभी मुख्य कथाओं में विचार की पाँचों अवस्थाएँ किसी न किसी रूप में प्राप्त अवश्य हो जाती हैं किन्तु कथा सूत्र के खीन होने के

कारण उन सभी का परिपाक पूर्ण रूप से नहीं हो सका है। कहीं कहीं प्राप्पाया और नियताप्ति की अवस्थायें परस्पर इतनी घुल-मिल गई हैं कि उनके मध्य भेद देना बीचना कठिन हो गया है। सामकारिक ङग से सभी कथामों का संबंध परस्पर स्थापित कर देने के कारण सभी कथामों की "अज्ञायम" अवस्था भी स्पष्ट नहीं उभर पाई है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथा कित्त्व की दृष्टि से सबसे बड़ी बिद्येपता यह है कि इसमें लेखक ने एक साथ छः कथाओं को सामकारिक ङग से परस्पर सम्बद्ध करके अग्रसर किया है किन्तु अपने इस प्रयास में वह सफल नहीं हो सका है इसी कारण प्रस्तुत उपन्यास का कथानक बिखर सा गया है और इसके फलस्वरूप कथानक में असम्बद्धता और निमित्तता का दोष आ गया है। कथानक में बिल राव आ जाने पर भी आचार्य अनुरसेन जी बत तक रोचकता बनाये रखने में सफल रहे हैं यह उनकी क्षमता का ही प्रमाण है।

घटनाओं का बाहुस्य होने पर भी वे संभावना के क्षेत्र का उत्सर्जन नहीं कर सकी हैं यद्यपि कहीं-कहीं पर कथानक में नाटकीय मोड़ आ गए हैं। जैसे मुषीला की रक्षा के लिए प्रकाश का अकस्मात् आ उपस्थित होना एक दुष्ट क शत्रु से छूटकर भागती हुई मालती का अकस्मात् दूसरे दुष्ट के शत्रुत्व में पड़ जाना आदि घटनाएँ अप्रत्याशित एवं नाटकीय हैं। किन्तु इससे कुतूहल आयुक्त होने के साथ-साथ कथा स्वाभाविक रूप से जागे बढ़ती हुई बीज पकती है। इसमें कथानक में अति नाटकीयता का दोष नहीं आने पाया है। कथा में रोचकता साने के लिए आचार्य अनुरसेन जी ने एक दो स्थानों पर नाटकीय स्थलों का भी प्रयोग किया है जिससे कथानक की ककारमकता में कुछ बृद्धि ही हुई है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक किसी पुस्तक बिद्येप से प्रभावित न होकर यथार्थ घटनाओं से प्रभावित होकर लिखा गया है। यह सन् १९३३ ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। हिन्दू समाज के इतिहास को देखने से स्पष्ट सात होता है कि उस समय हिन्दू विचचारों की रक्षा अत्यन्त दयनीय थी। उस समय के सभी प्रयत्नशील विचारकों ने समाज के इस रूप को दूर करने का पूर्ण प्रयास किया था। आचार्य अनुरसेन जी के प्रस्तुत उपन्यास में भी समाज के इस रूप को दूर करने के लिए एक सर्वथा निर्दोष मार्ग प्रगल्भ करने का सपन

प्रयत्न किया था। यही कारण है कि सेक्स का सुधारत्मक एवं उपदेष्टात्मक दृष्टिकोण होने के कारण जहाँ एक ओर प्रस्तुत उपन्यास का सामाजिक एवं प्रचार्यात्मक महत्त्व बढ़ा है वहीं दूसरी ओर बीच-बीच में उपदेष्टात्मक कठमे मापनों के कारण कथा तत्त्व बाधित हुआ है। फलस्वरूप कथानक की कलात्मक महत्ता क्षीय हो गई है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक मध्य वर्ग की हिंदू विधवाओं के जीवन से लिया गया है। जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है प्रस्तुत कथानक अपने विषय की नवीनता अभिव्यक्ति के दृंग वर्णन एवं विन्यास की विशेषताओं के कारण एक सीमा तक सफल हुआ है। किन्तु अनुसृतियों के बनीसूत हो जाने के फलस्वरूप उपन्यासकार कथानक में सूक्ष्मता गहनता एवं मार्मिकता ज्ञाने में सफल नहीं हो सका है। इसका प्रमुख कारण यही है कि कई समानान्तर कथाओं को एक साथ बसाने के कारण विषय की सूक्ष्मता एवं गहनता किसी में भी पूर्णरूप से नहीं जा सकी है। एक चित्र पाठक के मस्तिष्क में पूर्णरूप से उमर भी नहीं पाठा कि उपन्यासकार दूसरे चित्र में रंग भरना प्रारम्भ कर देता है। इससे पाठक कथानक से पूर्णरूप से तादात्म्य स्थापित करने में सफल नहीं हो पाता फलस्वरूप उसका सहज ही साधारणीकरण नहीं हो पाता। किन्तु यह दो निश्चित रूप से स्वीकार करना पड़ता है कि इसमें उपन्यासकार ने कुशलता से उन हृदयकर्मों का बर्साया है जिनका आशय लेकर पुरुष की काम बुभुक्षा मारी के शरीर के साथ शिल्पबाह्य करना चाहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में हिंदू समाज में व्याप्त विधवा समस्या को उठाया गया है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत समस्या कोई शास्त्रत अथवा सर्वकालीन समस्या नहीं है। अतः प्रस्तुत कथानक से किसी शास्त्रत निष्कर्ष की आशा करना ही व्यर्थ है किन्तु इतना निश्चित है कि आचार्य चतुरखेल जी ने जिस समस्या को उठाया है उसका निष्पत्त उपस्थित करने में वह निरसदिह सफल रहे हैं। प्रस्तुत कथा का अध्ययन करने के पश्चात् एक ओर जहाँ पाठक को बाल-विवाह के प्रति घृणा उत्पन्न होती है वहीं दूसरी ओर निर्वोप समाज द्वारा प्रस्तावित एवं ठुकराई गई, विधवाओं के प्रति सहानुभूति ही व्याप्त नहीं की है वरन् उसने उनके पुनर्विवाह का भी विधान किया है। सन् १९३३ में 'विधवा विवाह' का विधान प्रस्तुत करना एक बड़े साहस का कार्य था।

प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिक्सन अपने समय प्रचलित उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे उपन्यासों द्वारा समाज सुधार के उपदेशों की इतने

मनोरंजक एवं प्रिय ङग से जनता तक पहुँचाते थे कि जनता को यह आभास भी न हो पाता था कि उस पर कोई उपदेश लाया या बोधा था रहा है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में हम कथा का बहू विकास नहीं पाते । इसमें कुछ उपदेशात्मक भाँषों को हम सरलता में निकाल सकते हैं ।^१ उन भाँषों के हट जाने पर भी कथा में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं जाने पाता । इतना होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि लेखक समस्या और उसका निष्कर्ष प्रस्तुत करने में किसी सीमा तक सफल रहा है ।

प्रस्तुत उपन्यास में किञ्चित् असावधानी के कारण कुछ गलतियाँ रह गई हैं जिनका परिहार उपन्यासकार थोड़ा सा सतर्क रह कर सरलता से कर सकता था । एक स्थान पर प्रकाश सुनीला को एक चित्र दिखाता हुआ कहता है 'सुनीला यदि माता जीवित होती तो तुम्हें प्यार करतीं पर अब तो यह काम मुझ करना पड़ेगा'^२ इससे यह स्पष्ट भाव होता है कि प्रकाश की माता का देहांत हो चुका है किन्तु सम्भवतः भावे बढ़ने पर आचार्य बलुरसन जी अपने इस वाक्य को झूठ गये कारण प्रकाश के जेठ ज्ञान पर जब सुनीला वायसठय के यहाँ स्त्रियों का डेपुटेसन ठे जाने की बात प्रकाश के पिता से कहती है तब पास ही खड़ी प्रकाश की माँ भावे आकर कहती है 'मैं सहायता करूँगी'^३ जिससे यह आभास होता है कि प्रकाश की माता जीवित हैं । प्रकाश की विमाता की तो कथा में कहीं खर्चा है नहीं फिर यह दो विरोधी बातें मिलती हैं । बसंती की कथा में भी इनी प्रकार के कुछ विरोधी नामों के प्रयोग की भी उपन्यासकार ने कई स्थानों पर गलती की है । कुमुद के स्थान पर कुमुद^४ हरवीविद के स्थान पर मोविद सहाय^५ आदि के प्रयोग के कारण पाठक भ्रम में पड़ जाता है । इन दोषों के कारण जयाबस्तु में अस्वाभाविकता एवं दीक्षित्य के दोष जा जाते हैं जिनसे कथानक की स्वाभाविकता को भारी आघात पहुँचता है ।

१ थी रामचन्द्र द्वारा दिए गये लम्बे भाषण ।

२ बहते भाँसू—पृ. ३८ ।

३ बहते भाँसू—पृ. २८५ ।

४ बहते भाँसू—पृ. १७१ ।

५ बहते भाँसू—पृ. २३१ ।

आत्मदाह

आचार्य चतुरसेन भी का प्रस्तुत उपन्यास चरित्र प्रधान है। एक ही चरित्र के चारों ओर कथा बिकसरी हुई है। अन्य चरित्र-प्रधान उपन्यासों की भाँति इसमें भी सुधीन्द्र का चरित्र कथा-वस्तु का एक भाग होकर नहीं आया है बल्कि उसका अपना निज का व्यक्तित्व है। कथावस्तु स्वयं उसके व्यक्तित्व के आधीन है। कथा का प्रारम्भ उसकी प्रिय पत्नी माया की मृत्यु से हुआ है। यहीं से उपन्यासकार माया के कुण कर्षण के साथ-साथ अपरोक्ष रीति से सुधीन्द्र का चरित्र भी उभारता गया है। उसे अपने प्रिय बनों का बिछोह सहन करना पड़ता है आत्मीय बनों से प्रबंधित होना पड़ता है। एक के उपरोक्त वृत्तरी विपत्ति से संघर्ष करना पड़ता है। प्रथम पत्नी माया की मृत्यु के पश्चात् उसे वृत्तरी विवाह सुधा से करना पड़ता है। सुधा के भाई मधुसूदन की रक्षा के लिए उसे उसके साथ युद्ध में विवेक जाना पड़ता है। वहाँ से मधुसूदन एक टाँग का होकर लौटता है। जल्मियान बाला कांड में वह पुच्छिंद की गोत्री का शिकार होता है। प्रतिशिक्षास्वरूप सुधीन्द्र अपनी पत्नी सहित स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेता है। परिणामस्वरूप उसे कालेपानी में डूबा दिया जाता है। लौटने पर पत्नी पिता और नवजात पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर वह विभिन्न हो जाता है।

प्रस्तुत कथानक से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण कथानक सुधीन्द्र के ही चारों ओर घूमता है। सुधीन्द्र की मुख्य कथा के साथ जयगोपाल एवं मधुसूदन की प्रासंगिक पटाका कथा चलती है। इन कथाओं को आगे बढ़ाने के लिए सरला भववती आदि की प्रकृति कथाओं का भी समावेश हुआ है किन्तु इन सभी कथा आदि का प्रयोग कथानक को सुसज्जित बनाने के लिए नहीं हुआ है बल्कि पात्र विशेष के चरित्र को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है। प्रस्तुत कथानक में विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों की योजना केवल सुधीन्द्र में पहले से वर्तमान विशेषताओं के प्रदर्शन के लिए हुई है।

कथानक में घटनाओं की बहुलता होने के कारण कथा बिलंब गई है। चरित्र प्रधान उपन्यासों में यह दोष अधिकघट प्राप्त होता है। कारण चरित्र की पूर्ण रूप से जनाकृत करने के लिए नई-नई स्थितियों की आवश्यकता होती है। उसमें वैचित्र्य बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह कथावस्तु द्वारा परिचित न हो। अतः सुधीन्द्र के चरित्र के निर्माण एवं उसे उभारने के लिए

साईं यई अनेक बनाबस्यक कथामों के जमघट के कारण कथाबस्तु तिथित हो गई है। उदाहरण के लिए हम सुबीर के मित्र हरिप्रसाद सूर्यकुमार एवं प्रियवर्मा की कथामों को ले सकते हैं।^१ इन कथामों का मूल कथा से कोई सौवा सम्बंध नहीं है किंतु तो भी इनका समावेश किया गया है वास्तव में सुबीर के बाह्य चरित्र के उद्घाटन के लिए ही यह कथा प्रस्तुत उपन्यास में सेजोई गई है। इसी प्रकार सरला की कथा का समावेश भी उसकी चरित्रिक दृढ़ता को प्रकट करने के लिए ही किया गया है। इस प्रकार कथानक गठन की दृष्टि से प्रस्तुत कथानक तिथित बस्तु कथानक की कोटि में रखा जा सकता है। इसमें सुबीर ही समस्त घटनाओं का जोड़नेवाला है सादकीय संयोजना का भी इसमें पूर्ण अभाव है।

कुछ आलोचकों ने प्रस्तुत उपन्यास के कथानक को दोष मुक्त बताते हुए कहा है 'अधिकोप पात्र और अतिकोप घटनाएँ इसमें दूँसी गईं सी लगती हैं तिनका न नामक से सम्बंध है और न मूल कथा से।'^२ यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास में कितनी ही घटनाएँ दूँसी हुईं सी मात्र होती हैं किंतु यह कहना कि उन घटनाओं अथवा पात्रों का नायक से कोई सम्बंध नहीं है सर्वथा असंगत है। जैसा कि प्रथम ही कहा जा चुका है प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों एवं घटनाओं का बाहुल्य केवल नायक सुबीर के चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए ही हुआ है। यह सत्य है कि प्रस्तुत उपन्यास का कथानक गूँझलाबूझ न रहने के कारण बिखर गया है किंतु उपन्यासकार पर यह दोष लगाना 'उसके पास कोई एक पूर्ण कहानी नहीं थी। भिन्न-भिन्न कहानियों अथवा घटनाओं का बजान करने के लिए एक पात्र चुन लिया और उसे देव विदेह में प्रकटते फिरें'^३ चरित्र प्रधान उपन्यासों के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करना है।^४

कथानक में बिगू सतृता एवं बिखराव होने के फलस्वरूप भी उसमें रोचकता अंत तक बनी रहती है। पाठक का ध्यान सुबीर के चरित्र पर ही

१ आत्मदाह—पृ ६८ से ७९ तक ।

२ हिन्दी उपन्यास के कथा-विशेष का विकास डा० प्रतापनारायण टंडन पृ ३००

३ हिन्दी उपन्यास की शिक्षानारायण श्रीवास्तव पृ १७० ।

४ हिन्दी उपन्यास की शिक्षानारायण श्रीवास्तव पृ ३४ से ३६ एवं उपन्यासकला की विशेषांकक व्यास पृ १६ १७ ।

केंद्रित रहता है। मानक के चरित्र को निखारने के लिए भटनाओं को कई स्थानों पर अप्रत्यासित एवं नाटकीय ढंग से तोड़ा मरोड़ा जी मया है,^१ जिससे कमानक में कुतूहल एवं रोचकता की वृद्धि हुई है किन्तु उसकी कक्षात्मकता अवश्य कुछ क्षीण हो गई है।

प्रस्तुत कमानक मानव जीवन का एक पूर्ण चित्र उपस्थित करता है। इसमें उपन्यास नायक सुधीन्द्र के बाल-काल से लेकर अंत तक की विविध अवस्थाओं को चित्रित किया गया है। एक ओर यहाँ इसमें जीवन की विविध अवस्थाओं को किया गया है वहीं उपन्यासकार ने युग विधेय की कुछ समस्याओं को भी इसमें जनस्यूत किया है।^२ अतः यहाँ एक ओर पाठक चित्रण की सूक्ष्मता यथार्थता एवं गहनता से प्रभावित होता है वहीं कमानक द्वारा उस युग समाज एवं देश की रक्षा के आमात के साथ-साथ उनकी अन्ततः समस्याओं की व्याख्या पाकर आश्चर्य भी होता है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार अपनी कुछ अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में भी पूर्ण सफल रहा है। जैसे पत्नी की मृत्यु के पश्चात् सुधीन्द्र के हृदय में दूसरे विवाह के प्रश्न पर उठने वाली उचल-पुपल का एवं विवाह के पश्चात् भी बरतित एवं अंतर्द्वन्द्व का सश्रीव चित्रण उपन्यासकार की निराली अनुभूतियों से पूर्ण जात होता है।^३

प्रस्तुत उपन्यास में भी उपन्यासकार की असावधानी के कारण कुछ भ्रम कर भूके हो गई हैं। पात्रों के नामों में इसमें भी कई स्थानों पर उल्टट फेर हो गया है। एक स्थान पर कहा गया है कि सुधीन्द्र की छोटी बहन इंदु के पनि

१ आत्मदाह सुधीन्द्र का निरर्द्धय चर से पञ्चायत सरला सत्याजी जी एवं कितानों धारि की कथाएँ इसी प्रकार की हैं। पृ. ९१ १४३ मनुसूदन के साथ सुधीन्द्र का विदेश जाना भी नाटकीय ढंग से होता है अन्तर्द्विबाह्य भाग की कथा भी नाटकीय है।

२ अ सरला की कथा के माध्यम से विधवा समस्या पर एवं स्त्री-मुक्त के सम्बन्ध के विषय में विचार (आत्मदाह) पृ. १२५-१२९।

३ वेदया समस्या पर विचार (आत्मदाह) पृ. १५१ १७।

४ पुत्र हिंसा एवं अहिंसा पर विचार (आत्मदाह) पृ. १०४ १०५।

५ देश और प्रेम की समस्या पर विचार पृ. १०४ १०५।

६ आत्मदाह पृ. ८२ ८३, ८८-९०।

का नाम राजाराम एवं पुत्री का नाम मुभा था।^१ किन्तु भागे राजाराम नाम का प्रयोग मुभीन्द्र के छोटे भाई रामब्रह्म^२ के लिए सर्वथा किया गया है।^३ इसी का उलटफेर मुभीन्द्र के छोटे भाई राजेंद्र और बीरेंद्र के नामों के साथ हुआ है। वहीं पर राजेंद्र के स्थान पर बीरेंद्र^४ और वहीं पर बीरेंद्र के स्थान पर राजेंद्र का प्रयोग किया गया है। इस अज्ञानकारी के परिणामस्वरूप कई अन्य मही भूतों भी हो गई हैं। जैसे माया की मृत्यु के समय बीरेंद्र के विवाह की तैयारी हो रही थी उसकी बचत आदि का भी विस्तार से बर्णन किया गया है^५ किन्तु भागे एक स्थान पर भूल से उसे अविवाहित लिख दिया गया है।^६ इसी प्रकार एक स्थान पर राजाराम (रामब्रह्म) की दुमैरी पत्नी का नाम रेवती दिया है किन्तु वही भाग बचकर बचती^७ हो गई है। बीरेंद्र और राजेंद्र के नाम की मड़बड़ी अंत तक चलती है। इसी से पुस्तक में ता बीरेंद्र की मृत्यु की बर्षा की गई है^८ किन्तु एक स्थान पर अन्यासकार कह जाता है कि मधु और राजेंद्र की मृत्यु ने उन्हें हिला दिया था।^९ राजाराम का नाम तो अंत आते-आते मुबारकर रामब्रह्म पुनः हो जाता है किन्तु अन्य नामों की मड़बड़ी क्यों की ली जाती रही है। इसी प्रकार आचार्य अनुरागन जी प्रस्तुत अन्यास में कई स्थानों पर काष्ठ की अर्थात् एव पाशों की मायु भी भूल गए हैं जिससे पाठक भ्रम में पड़ जाता है।^{१०} यह मही भूलें कपालक के कलासक हीन्य को मध्य तो बखी ही है साथ ही पाठक की स्थानुभूति को आघात पहुँचाने के कारण उपस्थासकार के प्रति उसकी घटा को भी बटाती है।

१ आत्मवाह पृ ४५।

२ आत्मवाह पृ ४८।

३ आत्मवाह पृ ३८ पर राजाराम और रामब्रह्म दोनों ही नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हैं। साथ ही देखिए पृ २०९, २१०, २११, २२६।

४ आत्मवाह पृ ६३ पर कहा गया है कि सबसे छोटे भाई का नाम राजेंद्र था किन्तु पृ २३२ पर कहा गया है कि बीरेंद्र भाता को सबसे छोटी बहनता था।

५ आत्मवाह, पृ ११ से १४ तक, पृ ६५।

६ आत्मवाह पृ २३२।

७ आत्मवाह पृ २४१।

८ आत्मवाह पृ २४४।

९ आत्मवाह पृ २९०।

१० आत्मवाह पृ २३ पर कहा गया है कि लुधीन्द्र का विवाह १९ वर्ष की अवस्था में माया से ही गया था, वह १४ वर्ष तक उनकी माया रही

नीलमणि

प्रस्तुत उपन्यास का व्यावहारिक प्रारम्भ नीलम और उसकी माता के बाह-विबाह से होता है। नीलम विवाहिता होने पर भी आवश्यकता से अधिक स्वच्छन्द है। वह अपने बाळ सखा बिनय के साथ पूर्ण युवती हो जाने पर भी गैरवध की भाँति ही किलोसेँ किया करती है। यह उसकी माता को रपिकर प्रतीत नहीं होता। वह बिनय और नीलू दोनों पर ही प्रतिबन्ध स्थापना चाहती है। इसी समय अप्रत्याशित रूप से नीलू के पति महेंद्र का आममन होता है। प्रथम ही बेंट में नीलू पति का अपमान करती है किन्तु महेंद्र सहन कर चाते हैं। इसके पश्चात् ही नीलू पति क साथ समुदास जमी जाती है। मुख्य कथा की यहीं निष्पत्ति हो जाती है। अब कथानक एक समस्या के चारों ओर चक्कर काटता हुआ अग्रसर होता है। नीलू शिक्षित नवयुवती है किन्तु तो भी उसका विवाह बिना उसका मत लिए बिना उसकी रधि जाने एक अपरिचित से कर दिया जाता है। नीलू इसी बात से असंतुष्ट है। अब कथानक में इसी समस्या को कि स्त्रियों की बिना मर्जी के बिना उनकी रधि जाने माता-पिता जिनके साथ चाहे बांध दें चाहकर जब स्त्रियाँ शिक्षित हों? क्या यह स्याय है? को लेकर ही बात-मतिबात-मार्म हो जाता है। यह संघर्ष बाह्य जगत से होकर मनोजगत में पैठता है। महेंद्र नीलू से अपमान पर अपमान सहन कर भी प्रेम किए जाते हैं किन्तु बिना उसकी इच्छा के उसका स्पर्श तक नहीं करते। नीलू भी पति से प्रेम करने लगी है किन्तु उसका वह प्रेम बाहर नहीं जा पाता बरन् वह हृदय में ही मूलगता एवं बहुकता रहता है। उसका शरीर चुकने जगता है किन्तु वह अपरिचित पति के समक्ष नत कैसे हो? आकर्षण और विकर्षण के मध्य होना हुआ कथानक अग्रसर होता है। इसी समय नीलू अपने बाम्बसखा बिनय से मिलती है। उसके समझ भी वह अपनी बही समस्या प्रस्तुत करती है। और अंत में बिनय ही समस्या का निष्कर्ष उसके समक्ष प्रस्तुत कर उसकी लंकारों का समाधान करता है। इसके पश्चात् ही कथानक त्वरा के साथ अंत

(पृ २५ २६) किन्तु उसकी मृत्यु के समय सुवीर की आयु २५ वर्ष की (पृ २७) ३३ वर्ष से २५ वर्ष कैसे रह गए? इसी प्रकार पृ १०१ पर उपन्यासकार ने कहा है सरला ९ वर्ष की अवस्था में विवाह हुई थी इस समय वह १७ वर्ष की नवयुवती थी किन्तु पृ ३२३ पर ही वह मूल गए हैं। सुवीर के एक प्रसंग पर सरला १७ वर्ष की अवस्था में अपने को विवाह हुए पाँच ही वर्ष बताती है जब कि होगा चाहिए ५ वर्ष।

की ओर मामता है। और अंत तक आते-आते पति-पत्नी का मिलन हो जाता है।

प्रस्तुत कथानक में नीकू और महेंद्र की कथा ही आधिकारिक कथा है। मणि की कथा प्रासंगिक प्रकरी का कार्य करती है। बिनय की प्रासंगिक कथा संलग्न कर ही नीकू की कथा में अटिक्ता उत्पन्न होती है। किंतु अंत में बिनय की प्रासंगिक कथा ही प्रस्तुत कथानक के अंत का कारण बनती है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रमुख समस्या है 'अपरिचित व्यक्ति से विवाह करने के पूर्व माता-पिता को कन्या की इच्छा अथवा इति ज्ञात करना आवश्यक है अथवा नहीं? प्रमुख समस्या आधुनिक युग की एक प्रमुख समस्या है। इसका हल प्रस्तुत करने में एक ओर कथाकार ने वहीं प्राचीन मत-मतांतरों का आश्रय लिया है वहीं उसने ठर्क एवं विचारों का संबल भी नहीं त्यागा है। एक ओर यदि उसने महेंद्र एवं उनकी माता के मुक्त से नियति प्रारम्भ एवं जन्म जन्मान्तरों की बात कहलाई है तो वहीं दूसरी ओर उसने बिनय को माध्यम बनाकर यह भी कहला दिया है कि कन्या के स्वयं के निर्वाचन से माता-पिता का ही निर्वाचन अधिक उत्तम है। कन्या अपनी अनुभवहीनता के कारण स्वयं के निर्वाचन में बहुत सफल है अपरिचित व्यक्ति से स्वयं परिचय प्राप्त करने में अपनी पवित्रता को गलत कर सकती है अतः माता पिता का निर्वाचन ही अधिक श्रेष्ठ एवं स्थायी है।"^१

समस्या का हल ककारमकता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि कहीं भी कथा सूत्र की श्रृंखला विकारने या टूटने नहीं पाई है। एक ही स्थल ऐसे अवश्य आ गए हैं जहाँ विचार कथानक पर छा गए हैं किन्तु उनसे कथा बोधिन नहीं हुई है बरन् उसके मध्य से समस्या का निष्कर्ष प्रस्फुटित होने के कारण उनकी ककारमक महत्ता में कृति ही हुई है। कथानक की रोचकता अंत तक बनी रही है। कथानक में नाटकीय एवं अत्रत्याजित घटनाएँ एक-दो स्थल पर अवश्य आ गई हैं किन्तु उनके प्रयोग से कथा कहीं भी समावना के क्षेत्र का उत्सर्जन नहीं कर पाई है। कथा में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग भी इस कुचलता के साथ किया गया है कि वह कथानक के साथ एक रस हो गए हैं। इससे उत्पन्न विज्ञानामास प्रस्तुत कथानक को समस्या प्रधान कथानकों से कुछ परे खींच ले जाता है।

१ नीलमणि पृ २३।

२ नीलमणि पृ १०६।

३ नीलमणि पृ ८३ ११२, १२२।

जाते हैं। उपन्यास के उत्तरार्ध में सोमप्रभ और कुम्भनी दोनों की कथाएँ निम्न निम्न व्यवसर होती हैं। सोम वैशाखी में कभी निम्नकार के रूप में तो कभी बलभद्र बस्तु के रूप में कार्य करते लगता है। कुम्भनी भी वही भद्रवर्दिनी वैश्या के रूप में मगध की ओर से कार्य करते लगती है। यही कुम्भनी का अंत एक सामकारिक घटना के द्वारा होता है। सोम वैशाखी महायुद्ध में मगध के महासेनापति के रूप में कार्य करता है किन्तु क्यों ही उसे ज्ञात होता है कि युद्ध केवल अम्बपासी के लिए हो रहा है वह तुरंत रोक देने की योजना कर देता है। इसी बात पर वह महाराज विम्बसार से भी इच्छा युद्ध करके उन्हें परास्त करता है। इस कथा के अन्त में आर्या मार्तण्डी द्वारा बो रहस्य प्रकट किए जाते हैं—प्रथम सोमप्रभ सन्न्यात विम्बसार का पुत्र है और अम्बपासी सोम की भगनी। सोम और अम्बपासी की माता एक और पिता दो हैं। अम्बपासी के पिता आर्य बर्षकार हैं। अम्बपासी की माँति सोमप्रभ भी अन्त में निम्न हो जाता है।

तीसरी मुख्य कथा है कोसल मरेक महाराजा प्रसेनजित एवं उनके ब्राह्मी पुत्र विद्भम की। बृद्धावस्था में भी महाराज प्रसेनजित सोलुप कामी एवं बिकारी हैं। उनका पुत्र विद्भम भी इसी कारण से उनका विरोधी हो जाता है। उसे सर्वाधिक कोष इसी बात का है कि महाराज ने अपनी वासना पूर्ति के लिए उसे ब्राह्मी से क्यों उत्पन्न किया। उसे इसी कारण पम-पग पर अपमानित होना पड़ता था। अन्ततः वह अपने बिकारी एवं मर्दाव पिता के विरुद्ध पश्यन् प्रारंभ कर देता है। बंबुकमस्त महाराज की सहायता करते हैं तथा सोमप्रभ विद्भम की। अन्ततः सोमप्रभ के कारण ही विद्भम अपने पिता पर विजय प्राप्त करता है और उन्हें वैश-निजाका दे देता है। मार्ग में ही महाराज प्रसेनजित एवं बेबी मत्सिका की कुक्षय मृत्यु हो जाती है। सोमप्रभ कोसल के सिंहासन पर विद्भम का अभियेक कर चम्पा की राजकुमारी चन्द्रमया से उसका पाणि ग्रहण करा देता है। यह कथा यहीं समाप्त हो जाती है।

इन तीन प्रमुख कथाओं के अतिरिक्त प्रस्तुत उपन्यास में निम्न प्राचीनिक कथाएँ भी हैं हर्षिक की कथा^१ पाल्मपुत्र गीतम की कथा^२ कुक्षुपुत्र मय की कथा^३ वैज्ञानिक धाम्बस्य काश्यप की कथा^४ मगध महामात्य आर्य की कथा^५

१ नगरबधू, पृ० ४१-४३ तथा ११७ से १७२। २ नगरबधू, पृ० ४६-४२।

३ नगरबधू, पृ० ३३-३४।

४ नगरबधू, पृ० ७२-७६।

५ नगरबधू, पृ० १२-१७ ३६६ ३७० ४२१ ४२३।

धार्मा मार्तण्डी की कथा^१ ज्ञातिपुत्रसिंह एव रोहिणी की कथा^२ राम्बर असुर की कथा^३ महाराज बबिबाहूत की कथा^४ महाराज उपमन की कथा^५ शिवराजम ध्यास की कथा^६ अजित केराकम्बरी की कथा^७ चीलमत्र की कथा^८ भगवान महावीर की कथा^९ कृत्विग सेना की कथा^{१०} सनापति काराधम की कथा^{११} बभ्रुल की कथा^{१२} मुखराज स्वर्णसेन की कथा^{१३} हरि केसीबल की कथा^{१४} नंदन शाहु की कथा^{१५} छाया पुरुष की कथा^{१६} जयराज की कथा^{१७} ये कथाएँ कहीं मुख्य कथामों के सहायकार्य आई हैं तो कहीं स्वतंत्र विकसित हुई हैं। इन कथामों का नाम कहीं-कहीं इतना उलझा हुआ है कि मुख्य कथा से ही गई है।

शास्त्र में प्रस्तुत उपन्यास की कथा का सम्बन्ध किसी एक राज्य जयवा व्यक्ति विशेष से न हो कर अनेक राज्यों एवं राज्य कथों से है कूल की प्रमुख कथाएँ चार राज्यों—बैजाती मगध कम्पा एवं कोरल से सम्बन्धित हैं। चारों ही राज्यों की राजधानियाँ प्रस्तुत कथानक की बीड़ा भूमि हैं। जिससे इसमें कितनी ही कथाएँ समानांतर चलती हुई दीख पड़ती हैं कलस्वरूप कथानक बिभ्रर गया है। कई स्थानों पर बिबरण की अधिकता के कारण कथा की मति सबकट हो गई है।^{१८} कई स्थानों पर विचारार्थिक्य भी कथा की मति को

- १ नगरबधू, पृ १८ से १०८ तक। २ नगरबधू, पृ १२१ से १३६ तक।
 ३ नगरबधू, पृ १८१ से २०२ तक। ४ नगरबधू, पृ २०७ से २३३ तक।
 ५ नगरबधू, पृ १११ से १२० तक। ६ नगरबधू, पृ २४१ से २६४ तक।
 ७. नगरबधू, पृ २४४ से २३० तक। ८ नगरबधू, पृ ३२१ से ३२३,
 ३२८ से ३३१ तक।
 ९ नगरबधू, पृ ३२४ से ३२७ तक। १० नगरबधू, पृ २८७ से २९४ तक।
 ११ नगरबधू, पृ ४१२ से ४१३ तक। १२ नगरबधू, पृ १३७ से १४३ तक।
 १३ नगरबधू, पृ ३२९ से ३३१ तक। १४ नगरबधू, पृ ३१७ से ३२०, ३३२
 से ३६० तक।
 १५ नगरबधू, पृ ३४७ से ३४८ तक। १६ नगरबधू, पृ ३८३ से ३९६
 ६०२ ६०४ ७०८-७१३।
 १७. नगरबधू, पृ ६३० से ६३२ तक। १८ नगरबधू, पृ ४४ ४८, ८२ ९१
 २८३ २९४ २९९ ३०८ २२१ से
 २३१ आदि।

बाधित करता है। इस दोषों के कारण एक ओर जहाँ कपा-वस्तु विकार गई है वहीं अनावश्यक विकारों के आधिक्य के कारण बोलिस भी हो गई है। किन्तु उपन्यासकार की यह बहुत बड़ी सफलता है कि पूर्वाह्न की इस विकृति हुई कपा को उसने उत्तरार्द्ध में बड़ी कुशलता से समाप्त किया है। यद्यपि सभी कपाओं को एक साथ समेटने की सीधता में उसे कई अस्वाभाविक एवं आकस्मिक मोड़ देने पड़े हैं, जिससे कहीं-कहीं पर कथानक संन्यासित सा ज्ञात होने लगा है। जैसे कुन्दनी की मृत्यु चम्बल^१ एकान्त वन में चित्रकार का छाहसे, छया पुरुष की कपा^२ आदि कई स्थलों पर मारतेंदु-मुग के तिलस्मी उपन्यासों के समान ही इसमें भी बटनाएँ कथानक को आक्रांत कर देती हैं जिसके कथानक इनके बोझ से बजा हुआ अल्पत्र संवगति से अप्रसर हो पाता है। जैसे कौशल दुर्ग से राजकुमार बिहड़म के निकालने की कपा^३ शम्बर असुर की कपा^४ चम्पा में पर्वतपुरी के रत्न विनेता की कपा^५ आदि कपाएँ इसी प्रकार की हैं। इनमें उपन्यासकार ने नाटकीय ढंग से कपा को अकस्मात् इच्छित पथ पर मोड़ दिया है। जिससे कपा एक झटके के साथ रुककर, दूसरी दिशा में मुड़कर मित्र पति से भाग चलती है। इससे पाठक की कुतूहल वृत्ति आप्रत हो जाती है। जिससे कपा नक की रोचकता तो बढ़ जाती है किन्तु इससे कथानक की स्वाभाविकता को गहरा आघात जपता है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक विकार मसे ही गया हो किन्तु उसकी श्रुत कथा कहीं टूटी नहीं है। साथ ही उपन्यासकार कपा को जन्त तक पूर्ण रोचक बनाए रखने में सफल रहा है। उपन्यास में रोचकता लाने के लिए ही उसने उपर्युक्त नाटकीय एवं आकस्मिक घटनाओं की संयोजना की है। इसलिये एक आलोचक ने प्रस्तुत उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है 'इस उपन्यास में विविध प्रसंगों की रोचकता के कारण कथा इतनी अरोचक तो नहीं होनी पाती है परन्तु घटनाओं का भारी संयोजन आसूरी उपन्यास के कथानक की भाँति भी है जिसमें स्थान-स्थान पर अनेक घटनाएँ चलती हैं। अन्तर इतना है कि जहाँ आसूरी उपन्यासों में इस प्रकार की घटनाएँ एक दम आमतकारिक रूप से

१ नगरवधू, पृ १८१ से २०५ तक। २ नगरवधू, पृ ४८६ से ५१७ तक।

३ नगरवधू, पृ ५०५-५१६ ६०२ ४ नगरवधू, पृ ४४१-४५५।

६०४ ७०० से ७१६ तक।

५ नगरवधू, पृ १५१-२०५।

६ नगरवधू, पृ २१७-२२९ तक।

सम्मिश्रित होती है वहाँ इस उपन्यास में उनका समावेश नाटकीय रूप से किया है।^१

उपन्यासकार ने ब्रितिसम घटनाओं को भी युक्तियुक्त और असंगत प्रसंगों को भी सुमंगल बनाने का पूरा प्रयत्न किया है किन्तु तो भी कई स्थलों पर क्या समावेश का क्षेत्र का उत्सर्जन कर गई है। उसने सन्तुष्ट कथानक को बुद्धि संपन्न बनाने की चेष्टा की है। किन्तु क्या के कुछ स्थल बुद्धि के लिए अघाह्य हो गए हैं। महाराज उदयन का आकाश मार्ग से सम्बन्धी के समझ बीजा-बावन एवं पुनः उसी मार्ग में प्रत्यावर्तन^२ राजाओं के तमर का वर्णन, उसमें प्रदर्शित अलौकिक आकर्षण शक्ति^३ ब्रिय कन्या कृष्णी द्वारा मृत्यु-बुम्बन और असुरों का विनाश^४ छाया पुरन का प्रथम^५ आदि कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिन पर साधारण पाठक विस्मय नहीं कर पाता। उपन्यासकार ने स्वयं भी परकाया प्रवेश को भूमिका में कपोल-कल्पित ही माना है^६ किन्तु फिर भी कुछ प्राचीन माण्डव्याओं के कारण उसने ऐसे प्रसंगों को स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त भी कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो कुछ लटकते हैं। जैसे मलय सम्राट विम्बसार का मुद्र के बाठाकरण में सम्बन्धी के आवास में मूर्तिभंग पहुँच जाना^७ राजकुमार विद्दम को बन्दी गृह से मुक्त करना^८ अशामी में प्रवेशन नायी की शक अमान के लिए ईषी प्रकोप का बाठाकरण एक नाटकीय घटना का संयोजन करके उत्पन्न करना^९ आदि घटनाएँ, किन्तु यह घटनाएँ निर्गत काल्पनिक नहीं जात होतीं कारण इनके प्रसृत करने में उपन्यासकार ने कार्य-कारण सम्बन्ध का ध्यान रखा है, जिससे यह स्पष्ट बुद्धि के लिए अघाह्य नहीं होत पाय है।

शास्त्र में यही उपन्यास आचार्य अनुरोध जी का सबसे प्रथम मौखिक इतिहास रस का उपन्यास है। इसी उपन्यास में उन्होंने 'इतिहास रस' की स्थापना की है। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु का आधार बौद्ध-ग्रन्थों में उल्लिखित बीजासी की गणिका सम्बन्धी है। उपन्यासकार ने स्वयं इस कथा-वस्तु के

१ हिन्दी उपन्यास में कथा-शास्त्र का विकास डा० प्रतापनारायण टंडन पृ ३३०-३३१ तक।

२ नगरवपु पृ १११ से १२० तक। ३ नगरवपु, पृ १२१ से १२२ तक।

४ नगरवपु, पृ २०० से २०५ तक। ५ नगरवपु, पृ २०२ २१६ ३०० ३१३।

६ नगरवपु भूमि पृ २६१। ७ नगरवपु, पृ ३०३ से ३०७ तक।

८ नगरवपु पृ ४३३ से ४४२। ९ नगरवपु पृ ४२२ से ४६० तक।

विषय में कहा है 'बहुत विम हुए सम्भवत' अब से बीस बरस पहले मेरी दृष्टि इस गजिका से सम्बन्धित एक बौद्ध उपन्यास पर पड़ी (महाभाग १/४/७) जिसमें इस बात का उल्लेख था कि बज्रिका जम्बपाली ने वैशाखी में आने पर कुछ को भोजन का नियन्त्रण दिया था और उस पर वैशाखी के राजपुरुषों ने ईर्ष्या की थी। यह भी मैंने सुना कि वैशाखी गजिका में एक ऐसा कानून था जिसके आकार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को बलिबाहित रखकर उसे वैद्या बना दिया जाता था (पवेणी पोष्यकम्)।^१ इन्हीं दो सूक्ष्म सूत्रों पर ही उसने इतने विद्यालय कथानक का निर्माण किया है। अब देखना यह है कि प्रस्तुत उपन्यास में कितनी कथाएं ऐतिहासिक हैं और कितनी कल्पना प्रसूत। बीसा कि हम बिल्ला चुके हैं कि इस उपन्यास में तीस प्रमुख कथाएं हैं जम्बपाली एवं विम्बसार की प्रसेनजित एवं विद्भम की एवं अन्तिम सोम प्रम एवं कुडली की।

हृदयिक बाबरदास व्यास बन्धुलमस्क बर्बकार, बार्पा मातंगी बाबि की लगभग २१ प्रासंगिक कथाएं इन्हीं तीनों कथाओं की आश्रित हैं। वास्तव में उपन्यास की प्रथम एवं द्वितीय दोनों ही प्रमुख कथाएं एकरम कास्मिक नहीं हैं। जम्बपाली और मयब सम्राट विम्बसार के सम्बन्ध की कथा इतिहास में भी प्राप्त है। उपन्यासकार ने विम्बसार के सम्बन्ध से एक औरस पुत्र भी होना बिल्लाया है वह भी काल्पनिक नहीं ऐतिहासिक है। इतिहास में स्पष्ट उल्लेख है कि विम्बसार का जम्बपाली से बिलल कोत्रक नामक एक पुत्र था।^२ जम्बपाली का मृत्यु में भयानक कुछ की धरम में भागा सो ऐतिहासिक है ही।^३ इसके अतिरिक्त प्रस्तुत उपन्यास की द्वितीय प्रमुख कथा प्रसेनजित एवं विद्भम की भी बहुत कुछ इतिहास सम्मत है। विद्भम का नाम विद्भक भी इतिहास में प्राप्त होता है। इतिहास में प्राप्त होता है कि प्रसेनजित काशी तथा कोशल का अधिपति था।^४ महाकाव्य जलक के अनुसार शाक्य बौद्ध भी उसी के प्रमुख के अन्तर्गत था। (महाकाव्य जलक ४ पृ ११४) शाक्य जोषों ने वर्द्धन करके

१ नगरवपु सुमि।

२ भाव १ दिवसवरी माक पाली प्रापर मेस पृ १३३।

तथा ९ : हिन्दू सम्प्रदाय डा० राधाकुमुद मुकुर्जी अनुबादक डा० बालदेवसारथ्य अध्यायक पृ १८१।

३ मेरी बापा मैग्जी अनुबाद पृ ५५।

४ दिवसवरी माक पाली प्रापर मेस पृ १३३।

५ अन्तिममिकाय (बाभी देव सोतापिटी) बाण्डुम २ पृ १११।

अपने यहाँ की एक नीचकुलोत्पन्ना कुमारी सासमा(बतिया) से कोशल नरेश का विवाह कर दिया। इसी महादेवी (दंभुचतनिकाब पाठी टेकस्ट सोसाइटी) वास्वूम १ पृ १७) का पुत्र विद्भम अथवा विरुडक वा जो प्रसेनजित के उपर्युक्त कोशल का शासक बना। कासांतर में जब इस कुमार को अपने मातृ पक्ष की हीनता का ज्ञान हुआ और साक्ष्यों की पुर्नति का पता चला तब वह बड़ा क्रुपित हुआ। शासन भार अपने हाथों में लेकर उसने साक्ष्यों से भरपूर वर चुकाया—बड़ी निरईयता एवं क्रुटा से उनका मात्र किया (धम्मपड अट्ठकपा पाठी टेकस्ट सोसाइटी वास्वूम १ पृ ३३९ जातक वास्वूम १ पृ १९१ वास्वूम ४ पृ १४४) प्रसेनजित को जब अपनी महादेवी के कुकशील का पता चला तब उसे और उसके पुत्र को उसने अपदस्थ कर दिया था।^१ इसके पश्चात् ही विरुडक ने अपने पिता के विरुद्ध विप्लव भी किया था। इस विषय में प्रधान सेनापति बीचकाण्यम—दीर्घकारायण ने उसको बड़ी सहायता की थी और उषी की सहायता से विरुडक सिंहासन पर बैठने में समर्थ हो सका था। अशुभ के साथ विस्वासघात और विरुडक के यही पर बैठने के कुछ से दुखी होकर ही प्रसेनजित की मृत्यु हुई (क) धम्मपड पट्ठ कपा वास्वूम १ पृष्ठ २२८ ३४९ ३६ जातक वास्वूम ३ पृ १४८ (ख) आर० एच० बिपाठी (हिस्ट्री ऑफ एंडिया) पृ ९२^३ इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में प्राप्त अंशुक मत्स्य एवं मत्सिका बाबी कथा भी एक सीमा तक ऐतिहासिक है। (बिचानरी ज्ञान पाठी प्रापर नेम्स वास्वूम २ पृ २६६-७१)^४ तीसरी प्रमुख कथा—सोमप्रभ एवं कुम्भनी की ऐतिहासिक नहीं है। वह एकदम कल्पना प्रसून है। उसका निर्माण उपन्यासकार ने तत्कालीन परिस्थितियों के विप्लव के निमित्त किया है।

१ आचार्य अणुरसेन जी ने इसका नाम लखिनी रिया है।

२ प्रसार के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन डा० अणुप्राय प्रसार शर्मा पृ ४२०।

३ प्रसार के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—डा० अणुप्रायप्रसार शर्मा—पृ० ४२ ४६ साथ ही रेजिए—हिन्दू सम्प्रदा डा० रामानुज मुक्तजी—अनुवादक—डा० बानु देवदारण अणुवाल पृष्ठ १७८।

४ प्रसार के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—डा० अणुप्राय प्रसार शर्मा—पृष्ठ ४२, साथ ही रेजिए हिन्दू सम्प्रदा डा० रामानुज मुक्तजी अनुवादक डा० बानुदेव शरण अणुवाल, पृष्ठ १७८ से १७९ तक।

प्रस्तुत उपन्यास की उपर्युक्त दो कथाएँ इतिहास सम्मत होते हुए भी उसे हम कुछ ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कह सकते कारण उपन्यासकार ने रेघ-काल की सीमा का अधिक्रमण करके कई बाली पात्रों को एक साथ भाजड़ा किया है जिससे कथानक में यत्रतत्र 'काळ दोष' का भी आभास होने लगा है। वास्तव में प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार का उद्देश्य ऐतिहासिक कथा कहने का नहीं रहा है बरन् इसमें उसने एक युग-विशेष का पुनर्निर्माण किया है। वास्तव में आचार्य चतुरसेन जी का प्रस्तुत उपन्यास डा. बृन्दावनकाष्ठ वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'बिराटा की पथिनी' की भाँति ऐतिहासिक आचरण में लिपटा रोमांस मात्र है।

'वैशाखी की नगरबधू' के युग से सम्बंधित कितने ही उप-यात्रों की रचना हो चुकी है। उलूक ने "अप योषेय" 'सिंह सेमापति'। यक्षपाल ने 'बिम्बा' और 'अमिता' के माध्यम से बौद्ध युग के पुनर्निर्माण की चेष्टा की है तो डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'वाचस्पत्य की आत्मकथा' में उस युग को साकार करने का सफल प्रयत्न किया है। 'प्रसाद' अपने अपूर्ण उपन्यास 'हर बती' में भी इसी युग को लेकर आ रहे थे। भगवती चरण वर्मा के 'बिजछेला' और रामरतन भटनागर के 'अम्बपाखी' उपन्यास की पृष्ठभूमि में भी इसी युग का आतावरण प्रदर्शित किया गया है। केवल हिंदी में ही नहीं बरन् अन्य भाषाओं में भी इस युग से सम्बंधित व्यक्तियों और घटनाओं पर उपन्यासों की रचना हुई है। बंगला के उपन्यासकार राजानबास बन्धोपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास 'सर्लाक' और कथना बुजबुती के प्रसिद्ध चरित्र चिन्पी 'बृहन्नेतु' के उपन्यास 'नगर सुन्दरी' 'भगवति' 'वैशाखी' 'महामात्य वाचस्पत्य' एवं 'अश्वमेध' मौर्य तथा भी मुंशी के 'भगवान् कौटिल्य' मराठी के उपन्यासकार भी बा० नासाह का 'सम्राट असोक' तथा हरमनहेस का 'सिद्धार्थ' आदि उपन्यास इसी युग की पृष्ठभूमि पर लिखे गये उपन्यास हैं। अब हमें बेलना यह है कि इन उपन्यासों के मध्य रखने पर आचार्य चतुरसेन जी का 'नगरबधू' उपन्यास कहीं तक अपना स्थान बना पाता है। जहाँ तक कथा शैलियों का प्रश्न है 'नगर बधू' किसी भी उपन्यास से पीछे नहीं है। उदात्त वाक्, दृष्टा एवं अन्य श्रेष्ठ उपन्यासकारों की भाँति आचार्य जी भी कहानी कहने में बड़े पटु हैं। वे किसी पात्र को तब तक गौणनीय रखते हैं जब तक उसकी आवश्यकता न हो। पाठक

१ इस पर विशेष प्रकाश आये 'रेघकाल एवं आतावरण कृति' नामक अध्याय में डाला गया है।

का शीतलुप्त अन्न चरम-सीमा पर पहुँच जाता है, तब ठीक समय पर वे प्रकट कर देते हैं। इससे पाठक की उत्सुकता अन्त तक बाधित रहती है।

किन्तु यहाँ तक इतिहास का प्रश्न है, आचार्य जी का यह उपन्यास राजास बाबू के उपन्यासों अथवा डा० हुमायी प्रसाद त्रिवेदी के उपन्यास 'आम मट्ट' की 'आत्मकथा' से बहुत पीछे है। 'अपर बधू' में इतिहास कथा के नीचे बसकर रचना मूल्य हो गया है। तो भी यह राजक मधुपाक मयवती चरण वर्मा के उपन्यासों से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं इतिहास सम्मत है।

नरमेघ

प्रस्तुत उपन्यास की कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ एक अप्रत्याशित घटना से होता है। एक स्त्री मगर के प्रसिद्ध एडवोकेट अनरस योपाध्याय की निर्मम हत्या कर देती है। हत्या के परिचाय ही वह पुलिस के समक्ष आत्म-समर्पण भी कर देती है। इस प्रारम्भिक घटना के परिचाय ही सर ठाकुरदास और उनके पुत्र विभूवनदास की कथा प्रारम्भ हो जाती है। इस कथा के साथ ही सर शादीकास एवं उनकी पुत्री किरण की कथा भी सहायक कथा के रूप में चलती है। किरण और विभूवन का विवाह निश्चित हो चुका है। उसी समय सर ठाकुरदास का निधन हो जाता है और अन्तिम समय में अपनी समस्त सम्पत्ति किरण के नाम कर जाते हैं। साथ में अपने पुत्र विभूवनदास को किरण से विवाह न करने का आदेश दे जाते हैं।

स्वर्गीय पिता की आज्ञा पूर्ति के लिए विभूवन अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं अपनी प्रेमसी किरण को त्याग कर मगर में बस्यत्र जाकर रहने लगते हैं। वहीं से हत्याकारिणी की कथा पुनः प्रारम्भ होती है। पुलिस उस पर केस चलाती है। विभूवनदास रीरिस्ट है। उस हत्याकारिणी का केस में स्वयं करने को प्रस्तुत हो जाते हैं मुक्त रूप से वे हत्या के विषय में ज्ञात करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं प्राप्त होती। अन्त में उन्हें कुछ मूख ऐसे प्राप्त हो जाते हैं कि जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि विभूवनदास स्वयं उस हत्या कारिणी के पुत्र हैं। प्रस्तुत यह हत्याकारिणी एक पवित्र देवी थी। यदि वे मुझे, पुत्र से सम्पन्न किन्तु बोरानदास के कारण ही उसे पाप फंके में डूबना पड़ा था। इसी कारण उसने उस दुष्ट की हत्या कर दी थी। यह रहस्य केवल ठाकुरदास को जान था। उनकी इसी आज्ञा के कारण मृत्यु भी हुई थी। विभूवनदास अपनी माता को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अथवा प्रयत्न करते हैं किन्तु निष्फल रहते हैं। हत्याकारिणी को मृत्युदण्ड की आज्ञा होती है।

त्रिभुवनदास के बन्ध के इस रहस्य के ज्ञात होते ही छाबीराम उससे मुक्त करने लगते हैं। किन्तु उनकी पुत्री किरण अपने प्येमी (त्रिभुवनदास) से और अधिक प्रेम करने लगती है। अंत में वह अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध त्रिभुवनदास से विवाह कर लेती है। यही प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा है।

प्रस्तुत उपन्यास में आधिकारिक कथा त्रिभुवनदास और किरण की है। इस कथा को अग्रसर करने के लिए छाबीराम गोबर्द्धन तिलोक बाबू आदि की प्राथमिक कथाओं का समानेष्ट किया गया है। त्रिभुवन की माता हत्या कारिणी की कथा मूल कथा में पताका-स्वानक का कार्य करती है कारण त्रिभुवन दास की आधिकारिक कथा इसी कथा से उत्पन्नकर विस्तार पाती है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक एक नूतनता में बद्ध होने का कारण संगठित कहा जा सकता है, किन्तु जहाँ तक रोचकता का प्रश्न है केवलक की विचर आत्मक शैली उसमें बाधक हुई है। जहाँ कहीं केवलक बिना किसी प्रसंग के अपने विचार देने लगता है वहीं कथा कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो गई है। वास्तुनिक उपन्यासकारों की भाँति केवलक इस कथा के पीछे रहकर कथा को संक्षिप्त द्वारा नहीं प्रस्तुत करता बरन् वह भारतीय युगीन उपन्यासकारों की भाँति पद्य-मय पर सामने आकर कथा कहता हुआ बीच पड़ता है। इस विचरआत्मक पद्धति के कारण कथा की कलात्मकता को मारी जायात पहुँचा है। यद्यपि प्रस्तुत उपन्यास के कथानक में प्रयुक्ति आकर्षण शक्ति है किन्तु उसे प्रस्तुत करने का ढंग आकर्षक न होने के कारण उसकी आकर्षक शक्ति मूल्य हो गई है।

प्रस्तुत उपन्यास में 'हृदय की परख' नामक उपन्यास की समस्या पुनः सामने आती है। इसमें भी उपन्यासकार ने यह विचारने का प्रयत्न किया है कि समाज में किसी व्यक्ति के कर्माचरण का तत्काल प्रभाव उतना नहीं पड़ता जितना उसकी बन्ध विषयक घटनाओं का। त्रिभुवनदास की माता का रहस्य ज्ञात होते ही छाबीराम आदि उससे मुक्त करने लगते हैं। किन्तु इसमें उपन्यासकार 'हृदय की परख' से कुछ आगे बढ़ गया है। 'हृदय की परख' का विधावर समाज भीष है किन्तु यहाँ किरण समाज यहाँ तक माता-पिता की चिंता किए बिना ही त्रिभुवनदास से विवाह कर लेती है। 'हृदय की परख' में उपन्यासकार ने केवल एक चिरन्तन समस्या पर प्रकाश डाला है किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में उसने उस समस्या का हल प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

रक्त की प्यास

प्रसूत उपन्यास की मुख्य कथा है राजकुमार भीमदेव एवं राजकुमारी इच्छवी कुमारी के असफल प्रणय की।

कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ महाराज अजयपाल देव के राज्याभिषेक से होता है। यहीं से राजकुमार भीमदेव आबू के परमार की कसमी सेने उसने अन्धपुर में आते हैं। यही परमार की पुत्री इच्छवी कुमारी के सौंदर्य पर बहुरूप हा जाते हैं। और राजकुमारी भी उनके पराक्रम से प्रभावित होकर उनकी ओर आकर्षित होती है।

भीमदेव राजकुमारी को प्राप्त करने के इच्छुक हैं। किन्तु प्राप्त करें तो कैस ? अन्ततः उन्होंने राजकुमारी से प्रणय निवेदन करके पूछा कि क्या मैं तेरे पिता से तेरी याचना करूँ ? राजकुमारी ने ईसते हुए उत्तर दिया—'छि'। राजपूत भी कहीं किसी की बेटी माँवते हैं ? मुझे चाहते हो तो हरम करने आबू जाना। भीमदेव के हृदय को यह बात लग गई। वह उसे हरम करने के लिए आबू जाना चाहता है किन्तु वे उसे उसकी भाभी महारानी नायिका देवी आबू जाने से रोक लेती हैं। महारानी नायिका देवी परमार के समीप उनकी पुत्री के लिए प्रस्ताव भेजती है किन्तु छत्रवारी राजा को ही अपनी पुत्री देना स्वीकार करते हैं। इसी समय महाराज अजयपाल के विरुद्ध जनता विद्रोह कर देती है। भीमदेव जाहि की अनुपस्थिति में महाराज अजयपाल विद्रोहियों के हाथ मारे जाते हैं। भीमदेव उनके एकमात्र पुत्र मूलदेव का उनकी मृत्यु के परचात अभिषेक कर देता है। किन्तु धीरे ही रोम से उस बाठक की भी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार इन अकल्पित घटनाओं के अग्रत्यापित रूप से यन्त्रित हो जाने के कारण राजकुमार भीमदेव ही छत्रवारी राजा हो जाते हैं। राजा होते ही उन्हें परमार की बेटी की बात स्मरण हो जाती है और नर जो असत शत्रिय होते हैं कथा माँवते नहीं हरम करत हैं। '.....हरम करना हो तो आबू जाना कुमार, अपने जुमार सौतकी भनों को साथ लेकर।' वे आठ सी चुने हुए मर्तों और साठ सामन्तों की दुबड़ी लेकर आबू जा पहुँचते हैं। किन्तु वहाँ उन्हें बात होना है कि राजकुमारी का बागदाज महाराज पृथ्वीराज से प्रणय ही हा चुका है। वे एकान्त में पुनः राजकुमारी से मँद करते हैं किन्तु राजकुमारी अब

उनके साथ जाना एक हम अस्वीकार कर देतीं हैं। भीमदेव उठे वीर लौट पड़ते हैं। राजकुमारी के विवाह के अवसर पर वह जाहू पर चढ़ाई कर देते हैं किन्तु महाराज पृथ्वीराज एवं परमार की संयुक्त सेनाओं के समझ ठहर नहीं पाते। उनकी पराजय होती है। विवाह मंडप में ही भीमदेव को उन्हीं की पयड़ी से बांधकर लड़ा कर दिया जाता है और उन्हीं के देखते-देखते परमार की बेटी पृथ्वीराज की पत्नी हो जाती है। अन्त में प्यार और उल्लास दोनों का बाध साकर, भीमदेव को पराजित होकर गुजरात की खोर लौटना पड़ता है। किन्तु बीम ही उन्हींने इस पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर पर आक्रमण कर दिया। सोमेश्वर मारा गया। पिता के बध का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज ने गुजरात पर आक्रमण किया। भीमदेव पराजित हुआ। इधर भारत के ये दोनों अतिशक्तिशाली राजे परस्पर टकरा रहे थे और उधर उसी समय अवसर देखकर भारत पर गोरी ने आक्रमण कर दिया। पृथ्वीराज और भीमदेव इस परस्पर संघर्ष के कारण शक्तिहीन हो चुके थे। अतः गोरी ने इन दोनों को बीम ही परास्त कर दिया। प्रेम की यह व्यास अन्त में मौर्य की परतन्त्रता का कारण बनी।

प्रस्तुत कथामय में आधिकारिक कथा भीमदेव एवं इच्छमी कुमारी की है। इस कथा को गतिशील बनाने के लिए कितनी ही प्रासंगिक-वटाका और प्रकृति-कथामयों की सृष्टि की गई है। जिनमें मुख्य हैं पृथ्वीराज की कथा महाराज ब्रजपाल एवं महाराणी नायिका देवी की कथा रामचन्द्र पण्डित महामंत्री कपर्दि एवं राज माता पद्मावती की कथा बजरसिंह एवं बालभद्र की कथा। पृथ्वीराज की कथा प्रासंगिक-वटाका-कथा है। परमार की राजकुमारी इच्छमी के लिए भीमदेव मुद्र करता है। यहीं से पृथ्वीराज की कथा का उदय होता है। राजकुमारी के लिए ही भीमदेव पृथ्वीराज का प्रतिद्वन्दी बनता है। संघर्ष आरम्भ होता है। प्रासंगिक कथा प्रचलित कथा की अपूर्ण में पूर्ण रूप से एकत्र कर ली जाती हुई, उसे मोड़कर आगे निकल जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास की भीमदेव पृथ्वीराज एवं गोरी के युद्ध की कथा तो ऐतिहासिक है।^१ येप कथाएँ कल्पना प्रसूत हैं। प्रस्तुत उपन्यास के कथामय पर ही आचार्य बसुरायण जी ने अपने उपन्यास 'हरण निमग्न' की भी रचना की है। वास्तव में उनके 'हरण-निमग्न' उपन्यास को हम इसी उपन्यास का विस्तृत संस्करण कह सकते हैं।

देवांगना (मंदिर की नर्वेकी)

प्रस्तुत कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ विक्रमचिन्ता के नगर सेठिठ बनंइय के इकलौते पुत्र दिबोदास के प्रव्रम्या लेकर मिश्रबुद्धि ग्रहण करने से होता है। मिश्र होकर दिबोदास अल्प मिश्रकों के साथ काफी पहुँचता है। यहीं उसका परिचय देवदासी मंजुषोपा से होता है। प्रथम दृष्टि में ही दोनों परस्पर प्रेम करने लगते हैं। मंजुषोपा का साधन-वासन मंदिर के महल सिद्धेश्वर न किया था। उसी के मंजु की माता मुनयना को भी बन्धी बना कर मुक्त स्थान पर गल छोड़ा था। युवती हो जाने पर वह मंजुषोपा के सौन्दर्य पर स्वयं मुग्ध हो जाता है। बचपन में एक दिन एकान्त में वह मंजुषोपा से प्रायः मिश्रित करता है। मंजु उसका इस व्यवहार से अस्विकार हो उठती है। अन्त में महल मंजु के साथ बसाकार करना चाहता है किन्तु इसी समय अकस्मात् दिबोदास अपने दो सहयोगियों के साथ वहाँ आ पहुँचता है। इन्हीं मुक्त में सिद्धेश्वर पण्डित होता है। उसके मूर्च्छित होने ही दिबोदास मंजु को लेकर भाग निकलता है। निरापद स्थान पर पहुँचने पर निबन्धन का मेवज मुनयना मंजु के समय एक रहस्योद्घाटन करता है। मंजु का बन्धी तक यह ज्ञात न था कि देवी मुनयना कौन है और उनसे उसका क्या सम्बन्ध है? मुखदास ने उसे ज्ञान होता है कि देवी मुनयना उसकी जन्मदात्री माँ है और वे बाल्य में लिच्छ-विद्युत की पट्टाज महिषी मुनीति देवी हैं। वे अपनी पुत्री के कारण ही अपनी पर्याय और प्रतिष्ठा को लाल मारकर सिद्धेश्वर के यहाँ रहित जीवन व्यतीत कर रही थीं। मुनयना के बहने पर मंजु और दिबोदास मंदिर में पुनः पहुँचते हैं किन्तु यहाँ मंजु पुनः एक अपराध कर बैठती है जिसके फलस्वरूप कागिराज की जागा से दोनों बन्धी बना लिए जाते हैं। अन्त में मुखदास की युक्ति और उद्योग से मंजु और देवी मुनयना बन्धनरूप से मुक्त होकर मुखदास के साथ भाग निकलती हैं। मार्ग में ही मंजु के पुत्र उत्पन्न होता है। इसी समय राज कौनिक भी आ पहुँचते हैं। मुनयना मंजु के तबज्यात् पुत्र की सैनिकों से रक्षा करने के लिए पुत्री को मूर्च्छित अवस्था में ही त्यागकर बन्धी जाती है। कथा आदि से अल्प तक अटिक बनी रही है। अन्त में मातृकीय रस में उपन्यासकार ने मुनयना मंजु दिबोदास आदि सभी को परम्परा-दिला दिया है। जिसमें कि उपन्यास की कलात्मक महत्ता अधुन नहीं रह सकी है।

इस मुख्य कथा के साथ-साथ प्रस्तुत उपन्यास में मुखदास-मुनयना-महामणिक बयसिद्ध एवं महल सिद्धेश्वर, सिंह बर्मा एवं कागिराज महापत्नी

सुनयना राजा के साथे बरबाहे, कापालिक एवं आनधी मित्र आदि की कबाएँ भी प्राप्त होती हैं ।

प्रस्तुत कथा में आधिकारिक कथा विद्योबास और मञ्जुशोपा की है । इस कथा को गति देने के लिए कितनी ही प्राथमिक-पताका एवं प्रकरी-कथाओं की योजना की गई है । सुखबास की कथा पताका राजा के साथे एवं बरबाहे आदि की कबाएँ प्रकरी का कार्य करती हैं । सिद्ध एवं सिद्धेश्वर की कथा पताका-स्वानक का कार्य करती है । बन्धसिद्ध एवं सिद्धेश्वर की कबाएँ विद्योबास एवं मञ्जुशोपा की कथा की उन्नतता बढ़ाती हैं और उसे एक नए मार्ग पर जा बढ़ी करती हैं । प्रस्तुत कथानक की शुरुआत अंत तक बनी ली रखी है किंतु इसे हम पूर्ण संमिश्र कथानक नहीं कह सकते कारण कुछ स्वार्थों पर बटनाओं में इतना विकसित हो गया है कि कथा की गति अवरुद्ध हो गई है । कथा की गति में त्वरित होने के लिए नाटकीय एवं अप्रत्याशित बटनाओं की संयोजना की गई है । कथा का अंत भी एक अतिनाटकीय बटना के द्वारा होता है । प्रतिभा के स्वान पर अप्रत्याशित रूप से मञ्जुशोपा के प्रकट होने की बटना एक ऐसी ही बटना है ।

जैसा कि हम प्रथम ही कह चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास है । किन्तु इसमें उपन्यासकार ने ऐतिहासिक बटनाओं को अधिक महत्व न देकर बीबी के विद्वत् बन्धमान के दुराचारों और पद्मिनी का संडाफोड़ किया है ।

दो किनारे

प्रस्तुत उपन्यास में दो सर्वथा स्वतंत्र कथानक हैं । प्रथम "दो ली की बीबी" और दूसरा "राजा पार्स" । अतः हम इन दोनों स्वतंत्र कथानकों का अध्ययन करेंगे ।

"दो ली की बीबी" की कथा का प्रारंभ रमाधंकर की बीबी की मृत्यु से होता है । रमाधंकर अपने प्यारह वर्षीय पुत्र राजीव के साथ अकेला रह जाता है । इसी समय वह अपने पुत्र के लिए घोड़ा खरीदने जाता है किन्तु खरीद लाता है मासती नाम की एक स्त्री को । यही मुख्य कथा की भूमिका तैयार हो जाती है । कथा निष्पत्ति की ओर बढ़ती है । राजीव प्रथम मासती से प्रेमाशंकर है किन्तु उसके सहज स्नेह से प्रभावित होकर प्रेम करने लगता है रमाधंकर भी हृदय से उससे प्रेम करने लगता है किन्तु ऊपर से वह कठोर बना

रहता है। इसी समय इन दोनों के मध्य में रमासंकर का मित्र रामनाथ आ जाता है। मासुडी का उसके प्रति आकर्षण देखकर रमासंकर के हृदय में ईर्ष्या एवं सखिह का प्रादुर्भाव होता है। पटना निष्पत्ति होते ही पाठ प्रतिभाग प्रारंभ हो जाता है। रमासंकर की प्रताड़ना सहन न कर पाने से कारण मासुडी उनका आशय स्पष्टकर रामनाथ के आशय में पहुँच जाती है। कथा तीव्र गति में चरम सीमा की ओर दौड़ती है। रामनाथ उसे अपने यहाँ आशय देता है किन्तु पत्नी नहीं भावी मानकर। मासुडी उसी की होकर रहना चाहती है। रामनाथ ने उसका प्रस्ताव स्वीकार ही किया था कि इसी समय रमासंकर अपने पुत्र के साथ बहूँ आ पहुँचता है। कथानक अब अस्तु की ओर बड़ी लवण्य में दौड़ता है। रमासंकर की दीन अवस्था एवं राजीव का स्नेह देखकर मासुडी पुनः उसके साथ लौटना स्वीकार कर लेती है। उपसंहार में रमासंकर और रामनाथ की कटुता समाप्त हो जाती है। और मासुडी को साथ ले जाने के माध-माध रमासंकर, रामनाथ को भी साथ ले जाता है। प्रस्तुत कथानक एक सरल कथानक है। इसमें केवल मुख्य कथा ही स्पष्ट है प्रायोगिक कथाओं का सर्वथा अभाव है।

“दादा माई” की कथा-अस्तु भी सीधी है। इसमें से भी कथा-विकास की पाँचों अवस्थाएँ अव्यक्त सरलता से निकाली जा सकती हैं। कथा का प्रारंभ नरेन्द्र (दादा माई) के कारागार से छूटने से होता है। कारागार में छूटते ही वह पुनः एक होलम बाले में भिड़ जाता है इसी समय मातृकीय डंग से उसका परिचय जयदम्बा बाबू से होगा। वह नरेन्द्र को अपने साथ ले आते हैं। मुख्य कथा की प्रविष्टि तीमार हाँ जाती है। जयदम्बा बाबू नरेन्द्र को काम का व्यक्तिसमस्तपर अपने आशय में रस लेते हैं। नरेन्द्र के व्यक्तित्व को निवारणी हुई मुख्य कथा अग्रसर होती है। इसी समय जयदम्बा बाबू की अनुपस्थिति में उनकी पुत्री नरेन्द्र से अवर्तिष्ठ होने के कारण उन्हें मृतेय जयसंकर करने पर से निश्चल देती है। यही मुख्य पटना की निष्पत्ति हो जाती है। इसी समय नरेन्द्र मोरर कुर्वटना का विचार हो जाना है। कुछ देर नरेन्द्र को वर-वत्र मटपान के पश्चात् उपन्यासकार उसे पुनः कथा के एक मोड़ पर ला लवा करता है। कथा में पाठ-मतिपाठ प्रारंभ हो जाता है। जयदम्बा बाबू का मार्ग में हटना रवेण और कैलाश में मिल मजदूरों एवं नरेन्द्र का संघर्ष मुषा का नरेन्द्र की ओर आवर्तिष्ठ होना आदि घटनाओं को पार करना हुआ कथानक तीव्रगति में चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। कैलाश एवं रवेण के अंतुल के

सुनयना राजा के सारे चरबाहे कापाकिरक एवं ज्ञानभी सिन जादि की कबाएँ भी प्राप्त होती हैं ।

प्रस्तुत कथा में आधिकारिक कथा विबोदास और मंजुबोवा की है । इस कथा की गति देने के लिए कियगी ही प्रासंगिक-पताका एवं प्रकरी-कथाओं की योजना की गई है । सुखदास की कथा पताका राजा के सारे एवं चरबाहे आदि की कबाएँ प्रकरी का कार्य करती हैं । सिद्ध एवं सिद्धेश्वर की कथा पताका-स्वानक का कार्य करती है । बन्धसिद्ध एवं सिद्धेश्वर की कबाएँ विबोदास एवं मंजुबोवा की कथा की उत्तमन बढ़ाती हैं और उसे एक नए मार्ग पर ला लड़ी करती हैं । प्रस्तुत कथानक की शुरुआत अंत तक बनी तो रखी है किन्तु इसे हम पूर्ण संगठित कथानक नहीं कह सकते कारण कुछ स्वानों पर बटनाओं में इतना बिखराव आ गया है कि कथा की गति अनकड़ हो गई है । कथा की गति में त्वरत जाने के लिए नाटकीय एवं अप्रत्याशित बटनाओं की संयोजना की गई है । कथा का अंत भी एक अतिनाटकीय बटना के हाथ होता है । प्रतिमा के स्वान पर अप्रत्याशित रूप से मंजुबोवा के प्रकट होने की बटना एक ऐसी ही बटना है ।

वैसा कि हम प्रथम ही कह चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास है । किन्तु इसमें उपन्यासकार ने ऐतिहासिक बटनाओं को अधिक महत्व न देकर बीबी के विहृत बन्धमान के दुःखारों और पड़यत्नों का संशोधन किया है ।

दो किनारे

प्रस्तुत उपन्यास में दो सर्वथा स्वतंत्र कथानक हैं । प्रथम 'दो ली की बीबी' और दूसरा 'दादा मारि' । अतः हम इन दोनों स्वतंत्र कथानकों का अध्ययन करेंगे ।

'दो ली की बीबी' की कथा का प्रारंभ रमाचंकर की बीबी की मृत्यु से होता है । रमाचंकर अपने स्याह बर्षीय पुत्र राजीव के साथ बकेला रह जाता है । इसी समय वह अपने पुत्र के लिए बड़ा लड़कने जाता है किन्तु लरीव जाता है मासती नाम की एक स्त्री को । यही मुख्य कथा की भूमिका तैयार हो जाती है । कथा निष्पत्ति की ओर बढ़ती है । राजीव प्रथम मासती से प्रेमा कष्टा है किन्तु उसके सहज स्नेह से प्रभावित होकर प्रेम करने लगता है रमाचंकर भी हृदय से उससे प्रेम करने लगता है किन्तु ऊपर से वह कटोर बना

रहता है। इसी समय इन दोनों के मध्य में रमासंकर का मित्र रामनाथ भा जाता है। माकली का उसके प्रति आकर्षण देखकर रमासंकर के हृदय में ईर्ष्या एवं संदेह का प्रादुर्भाव होता है। बटना निष्पत्ति होते ही बात प्रतिपाठ प्रारंभ हो जाता है। रमासंकर की प्रताड़ना सहन न कर पाने से कारण माकली उसका आश्रय त्यागकर रामनाथ के आश्रय में पहुँच जाती है। क्या तीव्र गति में चरम सीमा की ओर बढ़ती है। रामनाथ उसे अपने यहाँ आश्रय देता है - किन्तु पत्नी नहीं मानी मानकर। माकली उसी की होकर रहना चाहती है। रामनाथ ने उसका प्रस्ताव स्वीकार ही किया था कि इसी समय रमासंकर अपने पुत्र के साथ वहाँ जा पहुँचता है। कचानक जब अन्त की ओर बढ़ी तब से बोड़ता है। रमासंकर की बीम अवस्था एवं रज्जिब का स्नेह देखकर माकली पुनः उसके साथ लौटना स्वीकार कर लेती है। उपसंहार में रमासंकर और रामनाथ की कटुता समाप्त हो जाती है। और माकली को साथ ले जाने के साथ-साथ रमासंकर, रामनाथ को भी साथ ले जाता है। प्रस्तुत कथानक एक सरल कथानक है। इसमें केवल मुख्य कथा ही स्पष्ट है प्राथमिक कथाओं का सर्वथा अभाव है।

“बाबा भाई” की कथा-वस्तु भी सीधी है। इसमें से भी कथा-विकास की पाँचों अवस्थाएँ अव्यक्त सरलता से निकाली जा सकती हैं। कथा का प्रारंभ नरेन्द्र (बाबा भाई) के कारागार से छूटने से होता है। कारागार से छूटते ही वह पुनः एक होटल वाले से मिड़ जाता है। इसी समय नाटकीय ढंग से उसका परिचय जगदम्बा बाबू से होता है। वह नरेन्द्र को अपने साथ ले जाते हैं। मुख्य कथा की भूमिका तैयार हो जाती है। जगदम्बा बाबू नरेन्द्र को काम का व्यक्ति समझकर अपने आश्रय में रख लेते हैं। नरेन्द्र के व्यक्तित्व को निष्कारणी हुई मुख्य कथा अक्षर होती है। इसी समय जगदम्बा बाबू की अनुपस्थिति में उनकी पुत्री नरेन्द्र से अपरिचित होने के कारण उन्हें लुटेरा समझकर अपने घर से निकाल देती है। यहाँ मुख्य बटना की निष्पत्ति हो जाती है। इसी समय नरेन्द्र मोटर दुर्घटना का शिकार हो जाता है। कुछ देर नरेन्द्र को यत्न-श्रम बरकामे के पश्चात् उपन्यासकार उसे पुनः कथा के एक मोड़ पर ला लड़ा करता है। कथा में बात-प्रतिपाठ प्रारंभ हो जाता है। जगदम्बा बाबू का मार्ग से हटना रमेश और ईलाच से मिल मजदूरों एवं नरेन्द्र का संघर्ष, मुखा का नरेन्द्र की ओर आकर्षित होना आदि घटनाओं को पार करता हुआ कथानक सीधे-सीधे से चरम-सीमा पर पहुँच जाता है। ईलाच एवं रमेश के चंगुल में

नरेश हाथ मुखा का उद्यार एवं अन्य नाटकीय घटनाओं के मध्य से होता हुआ कथानक मन्थ की ओर अग्रसर होता है। उपसंहार में मुखा एवं नरेश का विवाह सम्पन्न हो जाता है।

जैसा कि प्रथम ही कहा जा चुका है प्रस्तुत उपन्यास के दोनों ही कथानक सर्बथा स्वतंत्र हैं। बहूँ ठक रोचकता का प्रश्न है दोनों ही कथानक रोचक हैं। "बाधा भाई" में नाटकीय एवं अप्रत्यासित घटनाओं के आधिक्य के कारण कथानक की कलात्मकता न्यून हो गई है। किसी-किसी स्थान पर तो कथा संभावना के क्षेत्र का भी उल्लंघन कर गई है। जैसे नरेश के कारागार से बुराबाग भागने सेक तक पहुँचने एवं पुनः कारागार में पहुँचने की घटनाएँ। वास्तव में इन घटनाओं की योजना नरेश के व्यक्तित्व को निखारने के उद्देश्य से हुई है, किंतु व्यक्तित्व को निखारने समय कथाकार कथा के स्वाभाविक विकास को मूक बना है।

बस प्रश्न यह उठता है कि इन दो स्वतंत्र कथानकों को एक उपन्यास में क्यों रखा गया है? उपन्यास का नाम है 'बो किनारे'। यह नाम ही इन दोनों कथानकों को एक मूखमा में बाँध देता है। दो प्रकार के कथानक होते हुए भी दोनों का उद्देश्य एक है। "बो ली की बीबी" में स्त्री के त्याग की ओर 'बाधा भाई' में पुरुष के त्याग की कथा है। एक में स्त्री अपनी सेवा और त्याग से पुरुष को अपने बस में कर लेती है तो दूसरे में बर्बर एवं डाकू समझे जाने वाला पुरुष अपने निस्वार्थ कार्यों से एक स्त्री को अपनी बना लेता है। दोनों के किनारे दो हैं किन्तु मन्थ एक। बस, 'बो किनारे' नाम सर्बथा सर्बक है।

अपराजिता

प्रस्तुत कथा का आरम्भ एक अप्रत्यासित घटना से होता है। राज और बजरज में परस्पर प्रेम है दोनों का विवाह निश्चितप्राय है किन्तु इसी समय राज अपने पिता गजराज सिंह के वार्षिक सम्मान की रक्का के लिए अपने इस प्रेम को उत्तर पर उत्सर्ग कर देती है। वह ठाकुर रामचंद्रसिंह से विवाह कर लेती है। साथ ही वह अपने प्रेमी बजर का विवाह अपनी प्रिय सखी राधा से कर देती है। अपने विवाह में प्राप्त बहेज भी वह अपनी सखी का दे देती है। राज की अनुपस्थिति में बहेज के इस प्रश्न पर बाद विचार शरारत हो जाता है। इसी प्रश्न पर राज से समकाले पति और स्वगुर दोनों कूट जाते हैं। राज बहेज को स्वीकार करके अपने कार्य का उचित बतलाती है। इस पर राज के स्वगुर

उसके पिता को अपत्य कह कर बैठते हैं। राज इसके विरोध में सत्याग्रह का मनोप्य अत्र प्रयोग करती है। हठबर्मी एवं सत्य का द्वंद्व प्रारम्भ होता है। बरतन-सीमा उस समय जाती है जब समस्त ग्राम निवासी राज के सत्याग्रह का साथ देने लगते हैं। और अन्त में राज के समक्ष उनके स्वसुर को झुकना पड़ता है।

इसी समय एक अन्य आकस्मिक घटना घटित होती है। राज के पति ठाकुर उपर्युक्तसिंह माटर एक्सीडेंट से सख्त घायल हो जाते हैं। अपने सखे पति के समीप राज सेवा-सुभूषा के लिए आ पहुँचती है। ठाकुर उसकी सेवा से स्वस्थ तो हो जाते हैं किन्तु उनके मन जाने रहते हैं। अंधे हो जाने पर भी वे राज के समक्ष नत हाना नहीं चाहते। राज अपना कर्तव्य-पालन कर पुनः अपने स्वसुर के साथ अपने निवास स्थान पर सौट जाती है। इसी प्रकार राज को अपने पति से अलग रहते २१ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। किन्तु दोनों में से कोई भी एक दूसरे के समक्ष नत होना नहीं चाहता। इस बीच राज के स्वसुर का भी देहाव हो जाना है। राज के पति ने पुत्र रूप से एक अन्य स्त्री से विवाह भी कर लिया था। उससे एक पुत्र भी था। मीनहीन होने के परिणाम से उनके आचरण अराजक हो गए थे। परन्तु और पुत्र के साथ भी उनका व्यवहार कठोर हो गया था अन्त में उनकी दूसरी पत्नी अपने पुत्र को राज के समीप पत्र लेकर भेजती है। राज पति की दया सुनकर अपने को रोक नहीं पाती। उसका सम्पूर्ण अहं गल जाता है। वह पति के समीप आ पहुँचती है। अपने व्यवहार से वह अपने सखे पति को क्षमा करने पर तैयार होती है। अंत में वह अपने सम्पूर्ण अहं का त्याग कर अपने पति के समक्ष आत्म-समर्पण कर देती है। ठाकुर भी सम्पूर्ण दम्भ एवं वाग्म-सम्मान को बिसार कर राज को अपना सेते हैं। अन्त में ठाकुर राज से कहते हैं "जीवन गया अर्धे गई पर जीना तो मैं ही मैंने तुम्हें पा लिया।" राज का उत्तर है "स्वीकार करती हूँ तुम जीन गये प्रिय मैं हार कर ही तो तुम्हारे पास आई हूँ।" किन्तु अन्त में राज पति से पराजित होकर भी अपराजिता रहती है।

इस मुख्य कथा के साथ-साथ राधा और ब्रज माधव और दक्षिणी जयसाम रघुमंजन आदि की शार्मिक कथाएँ भी प्राप्त होती हैं।

१ अपराजिता-पृष्ठ १३३।

२ अपराजिता-पृष्ठ १३३।

इसी प्रकार प्रस्तुत कथानक की व्यक्तिगत कथा राज की है। उसके साथ ही राजराज एवं राजा की कथा प्रासंगिक पताका के रूप में कथानक के अंत तक चली है। जयराम रजुनंदन नारायण शर्मा आदि की कथाएँ प्रकटी का कार्य करती हैं। माधव की कथा कथानक की रोचकता बढ़ाने के साथ-साथ पताका स्थानक का भी कार्य करती है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक संयोजित है। कथानक की समस्त घटनाएँ एक शृंखला में जनस्यूत हैं। अमरवट होने के कारण कथानक की एक सूत्रात्मकता अंत तक बनी रह सकी है। प्रथम और राजा की प्रासंगिक कथा राज की व्यक्तिगत कथा से मध्य में एकरम हुए गई थी लगती है किंतु अंत में पुनः दोनों कथाएँ संयुक्त हो गई हैं।

उपन्यासकार कथानक की रोचकता की रक्षा अंत तक करने में सफल रहा है। माधव एवं अमर मंगल आदि की कथाएँ रोचकता बृद्धि के लिए ही कथानक में आई गई हैं। कथानक की संभावना के अंत से अंदर ही सीमित रहने का प्रयत्न किया गया है। कहीं-कहीं कथानक में कुछ व्युत्पत्ति की बीज अवश्य पड़ी है किंतु वे जन्माएँ ऐसी नहीं हैं जो पूर्वसूचक असम्भव ही हों। उदाहरण के लिए राजा एवं राज के विवाह की घटना एवं राज द्वारा स्वसुर हठ के विषय में सत्याग्रह करने और उसके सत्याग्रह की बेला-बेसी रात के सभी लोगों द्वारा उसके अनुकरण करने की बात कुछ अटपटी ही अवश्य लगती है किंतु यह असम्भव नहीं है। जो सत्याग्रह राजनीति में सत्य एवं सफल हो सकता है समाज में उसकी सत्यता एवं सफलता पर विश्वास करना उचित नहीं। राजा और राज का विवाह इस मानकीय ढंग से कराया गया है जिससे वह कुछ असंभव या अवश्य बात होने लगी है किंतु जब पाठक का राजा के पिता से साक्षात्कार हो जाता है तो उसकी यह धंका स्वतः निर्मूलक सिद्ध हो जाती है।

अहाँ तक मौलिकता का प्रदान है कथानक पूर्णरूप से मौलिक है। मेरा अनुमान है कि हिंदी में सम्भवतः इस प्रकार का कोई भी कथानक आज तक लिखा नहीं गया है। बहुरंग की समस्या पर तो कितने लेखकों ने विचार किया है किंतु वे ही उसके कितने ही ममापात प्रस्तुत किये हैं। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती और परवर्ती कितने ही लेखकों ने प्रस्तुत समस्या को उठाया है किंतु यहाँ आचार्य चतुरसेन जी ने इन पिटे-पिटाये कथानक को भी सर्वथा मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। गांधी जी ने जिस सत्याग्रह का राजनीति में प्रवेश कराया उसी सत्याग्रह का उपयोग उपन्यासकार ने सामाजिक कुरीतियों के निवारण में भी करना चाहा है।

जिस प्रकार गांधी जी ने परतंत्रता की शुरुआत में आन्दोलन भारतीयों के लिए एक नैतिक पद प्रदर्शित किया था उसी प्रकार उपन्यासकार राज के माध्यम से पंजाब पर कथित और प्रताड़ित हिन्दू अल्पसंख्यकों को भी एक मार्ग प्रदर्शित कर रहा है। उसका कथन है यह "राज" को सारे सत्कार की सम्पन्न-सम्पन्न गारियों से वृषक बनेसी ही खड़ी है। केवल अपनी ही सामर्थ्य पर। वह असहाय नहीं है परमुद्रापेक्षी नहीं है जोष दैन्य भावना बर्बर सबसे पाक-साक है। वह संयम कर्तव्य और जीवन के सुखे तत्त्वों की अग्रिष्ठात्री है वह मात्र की गारीमान की पथ प्रदर्शिका है। मैंने उसे अपराजिता स्वीकार किया है।^१

इसमें सन्देह नहीं कि यद्यपि प्रस्तुत उपन्यास में उठाई गई समस्या पुरानी है किन्तु उसकी व्याख्या और निष्कर्ष नितान्त मौलिक है।

अदल-बदल

प्रस्तुत उपन्यास भी समस्या प्रधान उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार म पत्नी के अदल-बदल की समस्या को उठाया है। प्रस्तुत कथानक में दो कथाएँ एक साथ चलती हैं। डाक्टर कृष्ण गोपाल अपनी साथी पत्नी विमला से असन्तुष्ट हैं तो मायादेवी अपने सरल स्वभाव के सज्जन पति मास्टर हृदयसाहब से। इन दोनों असन्तुष्टियों का क्लेश में परस्पर परिचय हो जाता है। दोनों कथाएँ यही आकर परस्पर सम्बद्ध हो जाती हैं। मायादेवी का आकर्षण डा० कृष्ण गोपाल की ओर बढ़ता जाता है। डा० कृष्ण गोपाल अपनी पत्नी की ओर माया अपने पति की उल्लास करने लगती है। डाक्टर अपनी पत्नी को और माया अपने पति को त्याग कर परस्पर विवाह करने का निश्चय करते हैं। कथानक में मात्र प्रतिमात्र अधिक नहीं मिलने पाता कारण उपन्यासकार ने एक पक्ष को सर्वथा धूक दिखलाया है। कथानक एक ही दो आधा पाकर अदल-बदल की आरंभ गति से चलता है। माया देवी और डाक्टर का विवाह सम्पन्न हो जाता है किन्तु मुझसे रात्रि के दिन ही अचानक मायादेवी के विचारों में परिवर्तन होता है और वह भागकर पुनः अपने पति के समीप आ जाती है। उपन्यास में मास्टर हृदयसाहब पुनः माया को अपने आश्रय में रख लेते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक महज यति में चलता है। घटनाओं में शुरुआत है। प्रारम्भिक कथाओं का अभाव है। एक दो प्रारम्भिक कथाओं नाममात्र

इसी प्रकार प्रस्तुत कथानक की बहिष्कारिक कथा राज की है। उसके साथ ही ब्रह्मराज एवं राधा की कथा प्रासंगिक पताका के रूप में कथानक के अंत तक चक्की है। जयराम रघुनंदन नारायण रमा आदि की कथाएँ प्रकृति का कार्य करती हैं। माधव की कथा कथानक की रोचकता बढ़ाने के साथ-साथ पताका स्थानक का भी कार्य करती है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक संयोजित है। कथानक की समस्त घटनाएँ एक शृंखला में जगस्यूत हैं। कमबख्त होने के कारण कथानक की एक सूत्रात्मकता अंत तक बनी रह सकी है। राज और राधा की प्रासंगिक कथा राज की बहिष्कारिक कथा से मध्य में एकरम हट गई थी जबी है किंतु अंत में पुनः दोनों कथाएँ संयुक्त हो गई हैं।

उपन्यासकार कथानक की रोचकता की रक्षा अंत तक करने में सफल रहा है। माधव एवं मणू मंगल आदि की कथाएँ रोचकता नृद्धि के लिए ही कथानक में लाई गई हैं। कथानक को संभावना के क्षेत्र के अंदर ही सीमित रखने का प्रयत्न किया गया है। कहीं-कहीं कथानक में कुछ अत्युक्ति सी बीज अवश्य पड़ती है किंतु वे अन्तर्गत ऐसी नहीं हैं जो पूर्वकल्पेण असम्भव ही हों। उदाहरण के लिए राधा एवं ब्रज के विवाह की घटना एवं राज ठाण स्वसुर हठ के विद्वान् में सत्याग्रह करने और उसके सत्याग्रह की बेबा-बेबी गाँव के सभी लोगों द्वारा उसके अनुकरण करने की बात कुछ अटपटी सी अवश्य लगती है किंतु यह असम्भव नहीं है। जो सत्याग्रह राजनीति में सत्य एवं सफल हो सकता है समाज में उसकी सत्यता एवं सफलता पर संदेह करना उचित नहीं। राजा और ब्रज का विवाह इस नाटकीय ढंग से कराया गया है जिससे वह कुछ असंभव सा अवश्य जाण होने लगा है किंतु जब पाठक का राजा के पिता से साक्षात्कार हो जाता है तो उसकी यह शंका स्वतः निर्मूल सिद्ध हो जाती है।

अहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है कथानक पूर्वरूप से मौलिक है। पैदा अनुमान है कि द्विती में सम्भवतः इस प्रकार का कोई भी कथानक आज तक लिखा नहीं गया है। एहेज की सम्भवा पर तो कितने लेखकों ने विचार किया है किंतु वे ही उसके कितने ही ममावात प्रस्तुत किये हैं। प्रेमबंध के पूर्ववर्ती और परवर्ती कितने ही लेखकों ने प्रस्तुत समस्या को उठाना है किंतु यहाँ आचार्य चतुरसेन जी ने इस पिटे पिटाये कथानक को भी सर्वथा मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। पापी जी ने बिल सत्याग्रह का राजनीति में प्रवेश कराया उसी सत्याग्रह का उपयोग उपन्यासकार ने सामाजिक कुटीरियों के निवारण में भी करना चाहा है।

जिस प्रकार पानी की जे परलंबता को गुरुत्वा में बाधक भारतीयों के लिए एक मौखिक पत्र प्रेषित किया था उसी प्रकार उपस्थासकार राज के माध्यम से पत्र-पत्र पर लक्षित और प्रकाशित हिंदू अर्थशास्त्रों का भी एक मार्ग प्रशस्त कर रहा है। उसका कथन है यह "राज" को सारे सभार की सम्य-असम्य मारियों से पृथक करने की ही सही है। कथन अपनी ही सामर्थ्य पर। वह अग्रहान नहीं है परमुखादेशी नहीं है जो ब्रह्म ईश्वर साक्षात् अर्थों सबसे पाक-प्राक है। वह संयम कर्तव्य और जीवन के सच्चे तथ्यों की अभिप्रेता है वह धर्म की गौरीमात्र की पत्र-प्रदक्षिणा है। किन्तु उस अग्रराशिता स्वीकार किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि यद्यपि प्रस्तुत उपायों में उदाई गई समस्या पुण्यी है किन्तु उसकी व्याख्या और निष्पत्ति निम्नलिखित मौखिक है।

अदल-बदल

प्रस्तुत उपस्थास भी समस्या प्रधान उपस्थास है। इसमें उपायकार ने पानी के अदल-बदल की समस्या को उठाया है। प्रस्तुत कथानक में दो कथाएँ एक साथ चलती हैं। डाक्टर इन्द्र योगेश अपनी माँ की पत्नी विमला से अलग हुए हैं ता मानादेशी अपने मूल स्वभाव के मूलतः पति का स्वरूप हृदयगत है। इन दोनों अलग हुए पत्नी का स्वभाव में परस्पर परिचय हो जाता है। दोनों कथाएँ यहाँ आकर परस्पर सम्बद्ध हो जाती हैं। मानादेशी का आकर्षण डा० इन्द्र योगेश की ओर बढ़ता जाता है। डा० इन्द्र योगेश अपनी पत्नी की ओर माना अपने पति की उपाय करने लगती है। डाक्टर अपनी पत्नी को और माना अपने पति को त्याग कर परस्पर विचार करने का निश्चय करते हैं। कथानक में मान प्रतिक्रिया अधिक नहीं निश्चय पत्र कारण उपस्थासकार ने एक पत्र का सर्वथा सूत्र विचारना है। कथानक एक ही दो भाषाएँ पाकर अर्थ-श्रीमा की ओर ही प्रतिक्रिया में जाया है। माना देशी और डाक्टर का विचार अलग हो जाता है किन्तु मुझसे यदि क दिन ही अग्रहान मानादेशी के विचारों में परिवर्तन हुआ है और वह अदल-बदल सूत्र अपने पति के समीप आ जाती है। उपस्थास में अग्रहान हृदयगत ही मान की अर्थ-श्रीमा में एक भेदे है।

प्रस्तुत उपस्थास का कथानक सूत्र पत्र के कारण है। अग्रहानों में गुरुत्वा है। प्रार्थनिक कथानकों का अर्थ है। एक ही प्रार्थनिक कथानकों अर्थ-श्रीमा

को ही आई हैं। वो कथा सूत्र मिस्र स्त्रियों से बसकर मध्य में एकाकार हो जाते हैं किन्तु अन्त में दोनों पुनः अपने-अपने स्त्रियों पर लौट आते हैं। यद्यपि उपन्यास का अंत गांठक्रीय ढंग से दिया गया है किन्तु वह असम्भव नहीं ज्ञात होता कारण माया के विचार परिवर्तन के परिपार्श्व में मनोवैज्ञानिक व्यापोग को स्थान दिया गया है।

गारी और पुंस्य के अधिकार और कर्तव्यों पर दिये गये हीर्षकाय सैद्धांतिक भाषणों से भले ही कथानक की रोचकता को अधिक आघात न पहुँचा हो किन्तु उसकी कथात्मक असम्भता निरिपट रूप से बहिष्कार हो उठी है।

प्रथम ही कहा जा चुका है कि प्रस्तुत उपन्यास समस्या प्रधान है। पति पत्नी के अदल-बदल की समस्या इसमें उठाई गई है। उपन्यासकार इस समस्या को 'गए युग का सबसे कठिन प्रश्न' मानता है।^१ उसका कथन है 'आज की स्त्री पुरुष की संपत्ति-परिग्रह बन कर रही रह सकती। वह पुरुष की सच्चे बर्तों में सगिनी समभाविणी बन कर रहेगी। पुरुष यदि स्त्री के इस प्राप्तव्य को देने में आनाजानी करता है तो निस्संदेह उसे स्त्रियों से ऐसी क्षुभी लड़ाई लड़नी पड़ेगी जैसी आज तक मनुष्य इतिहास में मनुष्य ने इस स्त्री-सम्पत्ति को अपहरण करने के लिये भी युग-युग में कभी नहीं लड़ी। फिर भी उसकी भीत नहीं होगी। भीत होगी स्त्री की। यह मैं अभी से कहे देता हूँ। वीर पुंस्यो को आसकर पठियों को यह नेक सुझाव देता हूँ कि वे अब केवल परिचय-भ्रम और सहृदयता से स्त्री को अपनी जीवन-संगिनी बनाना सीखें जिससे उनका घर बसा का बसा रह जाय। क्योंकि यह 'अदल-बदल' की जो हवा योरोप ने घरों को उखाड़ कर यहाँ आई है यदि उनके घरों में बस गई तो वे किसी बिन दक्तर से लौटकर अपने घर को सूना और पड़ोसी के घर को आघात पहुँचेंगे।^२ इस प्रकार उपन्यासकार ने घुमिका में ही प्रस्तुत कथानक में प्रसृत समस्या की ओर संकेत कर दिया है। आज के युग में प्रस्तुत समस्या अपना निज का महत्व रखती है इसमें संदेह नहीं। किंतु अब देखना यह है कि उपन्यासकार क्या प्रस्तुत कथानक के माध्यम से समस्या का कोई उचित निष्कर्ष निकालने में समर्थ रहा है? कथानक के अंत में उद्यते दोनों ही पति-पतिवर्तों को पुनः मिला दिया है किन्तु इसके लिए उसे मास्टर हथकण्डा ऐसे आदर्श पुरुष

१ अदल बदल घुमिका १।

२ अदल बदल घुमिका १।

और बिमला ऐसी आदर्श नारी की सृष्टि करनी पड़ी है। अविशय आदर्शवादी होने के कारण मास्टर साहब का चरित्र स्वाभाविक नहीं रह गया है। कथानक के अंत तक पहुँचते-पहुँचते पाठक ऐसा अनुभव करने लगता है कि समस्या के निष्कर्ष को उस पर बलात् लाया जा रहा है। यद्यपि भामादेवी के मनोवैज्ञानिक विचार परिवर्तन का माध्यम केवल एक सीमा तक उपन्यासकार समस्या का निष्कर्ष प्रस्तुत करने में सफल रहा है फिर भी यह निष्कर्ष एकांगी ही रह जाता है।

आत्ममगीर

प्रस्तुत उपन्यास का संबंध मुगलशासक से है। कथा का प्रारंभ मुगल सम्राट् साहजहाँ के शासन काल से होता है। कथा प्रारंभ होने के साथ ही कई छोटी छोटी कथाएँ एक साथ चलने लगती हैं। शास्त्र में प्रस्तुत उपन्यास में एक व्यक्तिको सक्षय बनाकर कथा नहीं कही गई है बल्कि एक परिवार का विनाश कथा का मकसद है। अनेक कथाओं के समानांतर चलने से कथा बिखर गई है। इन मुख्य कथाओं के साथ सहायक कथाएँ और सहायक कथाओं के साथ प्रारंभिक कथाएँ एवं अंतर्कथाएँ भी लगी हुई हैं। जिससे कथानक में पर्याप्त जटिलता आ गई है। वस्तुतः इसमें केवल दो मुख्य कथाएँ हैं। प्रथम मुख्य कथा माह जहाँ की है। इस प्रधान कथा में विकास की शुरुआत पाँचों अवस्थाएँ आ जाती है। मीरजुमला की बालसाहू की मेंट बालसाहू क बीमय एव बिलासिना के बर्षम प्रारंभिक अवस्था में आते हैं। बालसाहू के भोग विकास के बर्षम से ही मुख्य घटना की शिखर प्रारंभ हो जाती है। बेगम साहस्ता की वाडी घटना में ही कथानक में संघर्ष का प्रारंभ हो जाता है। इसको हम प्रारंभिक संघर्षमय घटना कह सकते हैं। बालसाहू के अस्वस्थ होने का समाचार केंद्रने की घटना तक आते-आते मुख्य घटना की निष्पत्ति की अवस्था आ जाती है। यहाँ आकर यह प्रधान कथा कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो जाती है। दूसरी प्रधान कथा है औरपनेब की। यहाँ से साहजहाँ की कथा को पीछे छोड़ औरपनेब की कथा सामन आ जाती है। 'रूब का नवकाश' (अध्याय ३६) से कथानक में पाठ प्रतिपाठ की अवस्था प्रारंभ हो जाती है। अब कई प्रधान और सहायक कथाएँ परस्पर उलझ कर आये बढ़ती हैं। राज्य के लिए भाई भाई एवं पिता पुत्र में संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। औरपनेब अपना पिता साहजहाँ के अस्वस्थ होने का समाचार पाते ही बिराह का संडा सड़ा कर बैठा है। अबसर देगकर वह राज्य

को हस्तगत करने के लिए आक्रमण कर देता है। साहजहाँ का श्वेष्ठ पुत्र द्वारा इनसे मिड़ने के लिए जा पहुँचता है। दोनों बलों का सम्मुख युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। कषा औरंगजेब मदिघ्न की ओर शिप्रता के साथ बग़र होती है। दोनों कषाएँ अपनी पूर्ण शक्ति के साथ परस्पर टकराती हैं। जिससे कुछ समय के लिए कषा की गति स्थिर हो जाती है। किन्तु कुछ ही क्षण स्थिर रहने के पश्चात् औरंगजेब बाघ को परास्त कर जाये बड़ जाता है। साहजहाँ को भी परास्त कर यह उसे बन्दी बना लेता है। पिता को बन्दी बना लेने के पश्चात् औरंगजेब की गद्दी प्राप्त हो जाती है। अठ में यह स्वयं आकमवीर की उपाधि धारण करता है। इसके पश्चात् यह अपने भाताओं सुजा और दारा को भी समाप्त कर देता है। 'आसिरी शिकार' में जाकर प्रस्तुत कषा समाप्त हो जाती है।

जैसा कि प्रथम ही कहा जा चुका है कि प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कषा विकारी हुई है। किसी एक प्रधान कषा सून के अंत तक न होने के कारण कषा की श्रुतला भी कई स्थानों पर टूट गई है। ऐतिहासिक विवरणों के आधिक्य एवं अनेक छोटी-छोटी कषाओं की भरमार के कारण प्रस्तुत उपन्यास का कषा एक संमठन की दृष्टि से सिद्धिस हो गया है किन्तु छोटी छोटी प्रासंगिक कषाओं के माध्यम से केवलक तत्कालीन सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहा है।

कथानक में बिखराव होने पर भी उपन्यासकार अंत तक उसकी रोचकता की रक्षा करने में सफल रहा है। मत्र तत्र ऐतिहासिक विवरण अवश्य कुछ नीरस हो गए हैं। किन्तु वो भी कषाकार ने बड़ी कुशलता से कषा की रोचकता की रक्षा की है।

आचार्य बनुरसेन जी का यह उपन्यास विगुह ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कषा नायक अठिम मुयक सम्राट औरंगजेब है। उसने किस प्रकार से सत्ता हस्तगत की इस भाग में उपन्यासकार ने इसी का वर्णन विस्तार से किया है। दूसरे भाग में (जो अभी अप्रकाशित है) उसके बही पर बैठने के पश्चात् का वर्णन है। प्रथम भाग की कषा का प्रारंभ सन् १६५९ ई० की एक घटना से

दिप्यची—यह उपन्यास का पूर्वार्द्ध ही है। इसका उत्तरार्द्ध अभी प्रकाशित नहीं हो सका है। उसमें औरंगजेब के आत्मगीर ही जाने के पश्चात् की कषा विस्तार से भी हुई है।

हीठा है जब भीरुबहा ने मायनर मुयल बरख २ में छरण की थी^१। वास्तव में प्रस्तुत उपन्यास को लिखते समय आचार्य जी ने श्री यमुनाम सरकार के प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ 'औरंगजेब' का अध्ययन किया था। अतः प्रस्तुत उपन्यास के अधिकांश ऐतिहासिक तथ्य उन्हें उसी ग्रंथ के आधार पर लिखे हैं। साथ ही वहाँ की विकासप्रियता प्रसिद्ध है। उसकी इस विकासप्रियता का बड़ा यथार्थ वर्णन उपन्यासकार ने किया है। यह वर्णन कपोल कल्पित नहीं है बल्कि इतिहास सम्मत् है। उदाहरण सभी इतिहासकारों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 'विकासप्रियता के कारण यह (शाहजहाँ) इस बात को भूल गया कि निरंकुश शासक के चारों ओर कैसे चलने लगे रहते हैं। इसका (विकासप्रियता का) परिणाम यह हुआ कि जब संकट का समय आया तो उसके भक्तियों में विश्वास पाव किया और उसके एहसानों की कुछ भी परवाह न की। किये जाने में इस दुःखमयी बृत्तावस्था में उन अपनी प्यारी बेटी जहाँगिरा से बड़ी सात्वना मिली।^२ राजगद्दी के लिए हुए शाहजहाँ के चारों पुत्रों के पारस्परिक संघर्ष के रेखा चित्र विस्तृत यथार्थ हैं।^३ प्रस्तुत उपन्यास के पात्र चम्पारण, स्थान भाँति सभी कुछ ऐतिहासिक हैं। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम 'प्रबन्धन' में और अंत में 'निष्पत्ति' में औरंगजेब के जीवन की लगभग सभी प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं को प्रस्तुत किया है। यद्यपि उपन्यासकार ने इसमें जहाँ पर भी यह कहा सिला है कि प्रस्तुत उपन्यास की सामग्री जहाँ से ली गई है। किन्तु वास्तव में सत्य यह है कि औरंगजेब के जीवन पर इतनी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है कि उसका 'सूचना' में लिख देना भी कठिन कार्य था। वैसे इनकी लगभग सभी प्रमुख घटनाएँ इतिहास सम्मत् हैं। इतिहास के आसक्ति भाव के कारण कई स्थानों पर कथा कुछ बोसित हो गई है जिसमें 'इतिहास रस' का पूरा परिपाक नहीं हो पाया है। बस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य अनुराग जी के उपन्यासकार की अपेक्षा उनका इतिहासकार अधिक प्रबल हो उठा है। इस उपन्यास को हम डा० कृष्णबलकांत वर्मा के 'माँसी की रामी लक्ष्मीबाई' नामक उपन्यास की भाँति कुछ ऐतिहासिक उपन्यास कह सकते

१ भारतवर्ष का इतिहास डा० ईश्वरी प्रसाद पृष्ठ ३४१।

२ भारतवर्ष का इतिहास-डा० ईश्वरी प्रसाद-पृष्ठ ३३१।

३ भारतवर्ष का इतिहास डा० ईश्वरी प्रसाद-पृष्ठ ३४६-४९।

साथ ही देखिए—औरंगजेब नामा—अनुवादक राय मुन्गी देवी प्रसाद जी प्रथम भाग पृष्ठ ३ पृष्ठ ३२ से ४८ तक।

है। वास्तव में इसको आचार्य चतुरसेन जी ने अन्य उपन्यासों की भाँति इतिहास का रंग देकर नहीं सजाया है। वरन् इस इतिहास को उन्होंने उपन्यास का रूप देकर सजाया है। 'स्नान-स्नान पर रोमांस का पुट होने के कारण उपन्यास अरोचक तो नहीं हो पाया है किन्तु कथा और इतिहास का उपयुक्त समन्वय होने के स्नान पर ऐतिहासिकता अधिक प्रखर हो गई है। जिससे उपन्यास यत्र-तत्र नीरव हो गया है।

सोमनाथ

'सोमनाथ' की कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ एक सर्वथा अकल्पित एवं अप्रत्याशित घटना से होता है। यही से कथा के दोनों प्रधान पात्र—भीमदेव एवं महमूद—परस्पर टकरा कर अलग हो जाते हैं। 'निर्मास्य' के लिए चौला सोमनाथ महात्म्य आई जाती है। फोट के भीतर ही छपबेसी महमूद की दृष्टि उस पर पड़ जाती है। वह उसका बन्धाव हरण करना चाहता है। चौला के रक्षक से उसका सम्मुख कुछ प्रारम्भ हो जाता है। इसी समय रक्षक की सहायता के लिए कुबराज भीमदेव आ उपस्थित होते हैं। छपबेसी महमूद एवं कुबराज भीमदेव की टक्कर प्रारम्भ ही हुई थी कि नव सर्वज्ञ आकर दोनों को शान्त करते हैं। वह महमूद को पहचान कर भी छोड़ देते हैं। यहीं से कथा दो सूत्रारम्भ होकर अग्रसर होती है। एक सूत्र गंग सर्वज्ञ एवं भीमदेव के साथ महात्म्य में रह जाता है और दूसरा सूत्र महमूद के साथ निर्मास्य से बाहर चला जाता है। इस घटना को हम प्रारम्भिक संघर्षमय घटना कह सकते हैं। गंग सर्वज्ञ एवं भीमदेव की कथा अपनी कुछ अन्य सहायक कथाओं जैसे खडभद्र एवं अन्य कापालिकों की कथा के साथ विप्र गति से महात्म्य के अन्दर ही विस्तार पाने लगती है। इस मध्य महात्म्य में कुछ प्रमुख घटनाएँ घटित होती हैं जैसे खडभद्र द्वारा चौला का हरण गंग सर्वज्ञ एवं भीमदेव द्वारा चौला का उद्धार, चौला एवं भीमदेव का परस्पर आकषित होना आदि। इस समय कथा के दो केन्द्र हो जाते हैं। प्रथम सोमनाथ महात्म्य और दूसरा त्रिपुरमुन्दरी का मन्दिर। यहीं से चौला के प्रसंग पर सोमनाथ देवालय के प्रधान नव सर्वज्ञ एवं उनके प्रधान शिष्य खडभद्र में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। खडभद्र त्रिपुर मुन्दरी के मन्दिर में अपने बुद्ध के बिबुध मुलक्षण से वक्ष्य प्रारम्भ कर देता है। इसके पश्चात् ही दूसरी ओर से महमूद की कथा प्रारम्भ होती है। महमूद अपने आगामी आक्रमण के लिए भूमिका बनाता हुआ पत्रनी की ओर बढ़ता है। अपने गुप्त कृतों से समाचार मिला हुआ वह गवनी पहुँच जाता है।

गजनी में महमूद सोमनाथ अभिषेक की पूर्ण तैयारी करने के पश्चात् अपनी विशाल बाहिनी के साथ भारत में प्रवेश करता है। उसके मुत्तबर भारत में प्रथम से ही सजग है अतः उसे भारत प्रवेश में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। उसने एक गुप्तचर अभीविन उस्मान अलजबीसी के कारण ही मुल्तान नरेश अजयपाल स्वयं मार्ग से चले हैं। इसके पश्चात् महमूद घोषामङ्ग के महाराज घोषाबापा के समीप भी संधि के लिए अपना दूत भेजता है, किन्तु घोषाबापा मार्ग देना अस्वीकार कर देता है। यही आकर महमूद कुछ समय के लिए घोषा बापा से सवर्ष करने को इच्छता है। यहीं से घोषाबापा की कथा से उनके पुत्र सज्जनासिंह और पौत्र सामंतसिंह की कथा अलग हो जाती है। ये दोनों ही सोमनाथ महालय की रक्षा के लिए घोषाबापा की आत्मा से संघ सवर्ष के समीप चले जाते हैं। इन्हें महमूद और घोषाबापा का युद्ध प्रारम्भ होता है और घोषा बापा सपरिवार वीरगति को प्राप्त होते हैं। इससे पश्चात् महमूद का मार्ग स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि महमूद के मार्ग में कई अन्य छोट छोट अवरोध भी आते हैं किन्तु सपादलक्ष तक जाने में उसे किसी प्रकार की विशेष कठिनाई नहीं होती। महमूद सपादलक्ष में रुकने को बाध्य होता है। वह मुल्तान नरेश महाराज अजयपाल को अपना दूत बनाकर सपादलक्ष के महाराज अर्जुनदेव के समीप उन्हें अपने पक्ष में मिलाने के लिए भेजता है किन्तु उसे सफलता नहीं प्राप्त होती। अन्ततः उसे युद्ध के लिए बाध्य होता पड़ता है। वह युद्ध में महाराज अर्जुनदेव से पराजित होकर संधि कर बैठा है किन्तु वीर ही संधि का अतिक्रमण कर वह कपट से महाराज अर्जुनदेव की मिशाल पूरक करते समय हत्या करने उन्हें अपने मार्ग से हटा देता है। इसके पश्चात् उसे ससैम्य सोमनाथ महालय तक पहुँचने में किसी प्रकार की विशेष कठिनाई नहीं होती।

इस कथा के साथ-साथ देवपट्टन में मुबराज भीमदेव मुबराज नरेश की चामुण्डाय एवं मंत्री विमल वैजनाह की कथा भी चलती जाती है।

महमूद के आगमन का समाचार प्राप्त होते ही मुबराज भीमदेव ससैम्य सोमनाथ महालय की रक्षा के हेतु प्रयास में आ जाते हैं। उनके अतिरिक्त देव रक्षा के लिए कुछ अन्य हिन्दू राजा जैसे चामुण्डराज सीरठ का राज आदि भी आ उपस्थित होते हैं।

सोमनाथ महालय के प्रधान संघसर्जक मुबराज भीमदेव को महामेनापति बनाकर महालय की रक्षा का भार उनको सौंप देते हैं। किन्तु महालय के अन्दर गृह-कलह प्रारम्भ हो जाता है। इन्द्रस्य संघसर्जक एवं भीमदेव की उपेक्षा करने

कमता है। उसका इन दोनों के विरुद्ध गुप्त रूप से पहलू का कार्य और तीव्र हो जाता है। इस प्रकार गृह कलह के कारण परस्पर उन्नती हुई प्रस्तुत कथा किसी अन्धकारमय भविष्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। इसी समय महमूद अपनी विशालबाहिनी के साथ समस्त अबरोहों का अतिक्रमण करता हुआ सोमनाथ महाकल्प को गंम करने के लिए प्रयास में जा पहुँचता है। अब दोनों ही कथाएँ समीप आकर मुड़ के पूर्व अपनी पूर्ण क्षिति को केन्द्रित करना प्रारम्भ कर देती हैं। यहाँ आकर कथा की गति स्थिर हो जाती है। किन्तु उत्सुकता बढ़ जाती है कुछ समय तक स्थिर रहने के पश्चात् कथा में गति आ जाती है। महमूद अपने विपत्ती भीमदेव के पक्ष को निर्बल बनाने के लिए अपनी कूट नीति का प्रारम्भ कर देता है।

कथामक में उन्नतता आने लगता है। धीमे ही दोनों पक्षों में मुड़ प्रारम्भ हो जाता है। कथामक तीव्रगति से अरमसीमा की ओर बढ़ता है। निर्वासक मुड़ प्रारम्भ हो जाता है। इस स्वक पर प्वास अबबड कर देने वाली पाठक की उत्सुकता अपनी अरम सीमा पर पहुँच जाती है। इस समय महमूद अपनी कूट नीति में सडक होता है। और वह प्रबोधन द्वारा अरम को अपने पक्ष में मिका लेता है। मुड़ का निर्वासक क्षम आ जाता है। इसी समय वेस होह करके अरम महमूद की सेना को गुण्ट डार के डार महाकल्प में बुलवा मिका है। परिचामस्वरूप भीमदेव की विजयी होती हुई सैन्य को महमूद की सैन्य से परामित होना पडता है। इसके पश्चात् महमूद सोमनाथ महाकल्प को प्वस्त कर गंम सर्वज्ञ की निर्मम कृपा करता है। साथ ही वह वेस के साथ विप्लासबात करने वाले अरम आदि को भी यहीं समाप्त कर देता है।

सोमनाथ महाकल्प के प्वस्त होने एवं गंम सर्वज्ञ की मृत्यु के पश्चात् ऐसा मात होना है कि कथा समाप्ति पर है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। कारण महमूद के प्रयास प्रतिद्वन्धी मुकराव भीमदेव अभी मुरखित बचा लिए गए हैं। बात उन्हीं को समाप्त करने के लिए कुछ समय तक महमूद इनका पीछा करता है किन्तु असफल रहता है। अन्ततः विजय होकर उसे अपनी विद्या परिवर्तित करनी पडती है। अब पुनः महमूद और भीमदेव की कथाएँ अलग-अलग स्वतंत्र रूप से विकसित होने लगती हैं। महमूद अपने उद्देश्य में सफल होने के पश्चात् गजनी छोटना चाहता है किन्तु उसके प्रयावर्तन के पक्ष पर अनेक अबरोह माना प्रारम्भ हो जाने हैं। वह भीमदेव के भय से कच्छ प्रदेश से होकर जाता है किन्तु वहाँ भी सोमनाथ के पुत्र अरम द्वारा उत्तम प्रतिरोध किया जाता है।

सम्पन्नविह्व की अनुरता के समक विजेता महामुद को भी पराजित होना पड़ता है। वह कच्छ के महारत में मार्ग बतलाने के ब्याज से महामुद की सम्पूर्ण सैन्य को मटका कर छोड़ देता है। अन्त में अपनी सम्पूर्ण शक्ति गवाकर अवेसा महामुद ही एक भारतीय रमणी रोमना की कृपा से बचकर मजनी पहुँच पाता है। भीमदेव भी महामुद के प्रत्यावर्तित होने के पश्चात् पुनः अपनी राजधानी पाटन में लौट आता है। यहाँ राजा होने के पश्चात् भी भीमदेव अपनी प्रेमिका गर्तकी बीसा से कुछ राजनीतिक बचनों के कारण विवाह करने में असमर्थ रहता है। अन्त में बीसा के नृत्य के पश्चात् प्रस्तुत उपन्यास समाप्त होता है।

प्रस्तुत उपन्यास की दोनों ही प्रधान कथाओं में कथा-विकास की पार्श्व अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं। दोनों ही अपनी-अपनी चरम-सीमा पर परस्पर गुंथ जाती हैं। पाठ प्रतिपाठ तक की अवस्थाएँ दोनों ही कथा सूत्रों की निम्न निम्न जाती हैं। दोनों ही कथा सूत्रों का प्रारम्भ एक साथ होता है। अतः दोनों ही की प्रारम्भिक अवस्था 'निर्मस्य' से ही ज्ञात होती है। 'अधोर सम्मबा' तक आते-आते भीमदेव एवं मंग सर्वज्ञ की कथा में मुख्य घटना की निष्पत्ति हो जाती है, 'कठिन अभियान' (अध्याय २१) तक महामुद की कथा में भी मुख्य घटना की निष्पत्ति हो जाती है। इन दोनों अध्यायों के पश्चात् ही क्रिश्चित् ब्याख्या के पश्चात् दोनों ही मुख्य कथाएँ 'पाठ-प्रतिपाठ की अवस्था में पहुँच जाती हैं। दोनों में ही यह अवस्था 'देस्य आया' (अध्याय १९) नामक अध्याय से प्रारम्भ हो जाती है। 'पाठ-प्रतिपाठ की अवस्था के पश्चात् ही 'चरम-सीमा' का जाती है। 'उपमंग' (अध्याय २२) से ऐसा ज्ञात होने लगता है कि दोनों ही कथा सूत्रों की चरम-सीमा का गई है किन्तु वास्तव में चरम सीमा अभी दूर है। भीमदेव की कथा 'पाटन की ओर' नामक अध्याय से विपिक हो जाती है। वास्तव में इस अध्याय तक आते-आते महामुद द्वारा मंग सर्वज्ञ की निर्मल हत्या के पश्चात् भीमदेव की कथा अकेली पड़ जाती है। अतः ऐसा ज्ञात होने समता है कि भीमदेव की कथा अपनी 'चरम-सीमा' को पार करती हुई 'उपमंग' की ओर जाने को उन्मुख है। उपन्यास की कथा के कार्य को दृष्टि में रखकर यदि देखा जाय तो महामुद की कथा में 'चरम-सीमा' की अवस्था 'कच्छ के महारत' (अध्याय १२०) नामक अध्याय पर जाती है। यहाँ आकर महामुद की कथा में अबरोध उपस्थित हो जाता है। अतः यह कथा भी निमित्त गति से 'उपमंग' की ओर अग्रसर होती है। इससे पश्चात् ही भीमदेव एवं महामुद दोनों ही की कथाएँ समाप्त हो जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी 'चरम-सीमा' के पश्चात् 'उपमंग' का क्रम है।

समता है। उसका इन दोनों के विरुद्ध गुप्त रूप से पक्षयंत्र का कार्य और तीव्र हो जाता है। इस प्रकार गृह कलह के कारण परस्पर उलझी हुई प्रस्तुत कथा किसी मन्मथकारमय मन्दिष्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। इसी समय महमूद अपनी विद्यालम्बाहिनी के साथ समस्त अबरोहों का अधिकमण करता हुआ सोमनाथ महात्म्य को रंग करने के लिए प्रयास में आ पहुँचता है। अब दोनों ही कथाएँ समीप आकर युद्ध के पूर्व अपनी पूर्ण शक्ति को केन्द्रित करना प्रारम्भ कर देती हैं। यहाँ आकर कथा की गति स्थिर हो जाती है। किन्तु उत्सुकता बढ़ जाती है कुछ समय तक स्थिर रहने के पश्चात् कथा में गति आ जाती है। महमूद अपने विपक्षी भीमदेव के पक्ष को निर्बल बनाने के लिए अपनी कूट नीति का प्रारम्भ कर देता है।

कथानक में उद्वेगान् बनने लगता है। सीधे ही दोनों पक्षों में युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। कथानक तीव्रगति से अग्रसरता की ओर बढ़ता है। निर्णायक युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। इस स्वरूप पर स्वास्य अबस्य कर देने वाली पाठक की उत्सुकता अपनी अग्र सीमा पर पहुँच जाती है। इस समय महमूद अपनी कूट नीति में सफल होता है। और वह प्रकोपन द्वारा राजमेरु को अपने पक्ष में मिला लेता है। युद्ध का निर्णायक अंश आ जाता है। इसी समय वेद्य ब्रह्म करके राजमेरु महमूद की सेना को युद्ध द्वार के द्वार महात्म्य में बुलवा लेता है। परिणामस्वरूप भीमदेव की विजयी होती हुई सैन्य को महमूद की सैन्य से पराजित होना पड़ता है। इसके पश्चात् महमूद सोमनाथ महात्म्य को ध्वस्त कर रंग सर्वज्ञ की निर्मम कल्पना करता है। साथ ही वह वेद्य के साथ विद्यालम्बाह करके राजमेरु आदि को भी यहाँ समाप्त कर देता है।

सोमनाथ महात्म्य के ध्वस्त होने एवं रंग सर्वज्ञ की मृत्यु के पश्चात् ऐसा मात होता है कि कथा समाप्ति पर है किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। कारण महमूद के प्रयास प्रतिद्वन्द्वी बुधराज भीमदेव अभी मुरझित बचा लिए गए हैं। अतः उन्हीं को समाप्त करने के लिए कुछ समय तक महमूद उनका पीछा करता है किन्तु अतफल रहता है। अन्ततः विवश होकर उसे अपनी विद्या परिवर्तित करनी पड़ती है। अब पुनः महमूद और भीमदेव की कथाएँ अलग-अलग स्वतंत्र रूप से विकसित होने लगती हैं। महमूद अपने उद्देश्य में सफल होने के पश्चात् राजमी छोटना चाहता है किन्तु उसके प्रत्यावर्तन के पक्ष पर अनेक अबरोह माना प्रारम्भ हो जाते हैं। वह भीमदेव के भय से कण्ठ प्रदेश से होकर जाता है किन्तु वहाँ श्री योषाबापा के पुत्र सज्जन द्वारा उसका प्रतिरोध किया जाता है।

सुज्जनसिंह की अनुराधा के समस्त विजेता महमूद की भी पराजित होना पड़ता है। वह कच्छ के महारण में मार्ग बतलाने के ब्याज से महमूद की सम्पूर्ण सैन्य को भटक कर छोड़ देता है। अन्त में अपनी सम्पूर्ण शक्ति गवाकर अकसा महमूद ही एक भारतीय रमणी सोभना की कृपा से बचकर पश्चिमी पहुँच पाता है। भीमदेव भी महमूद के प्रत्यावर्तित होने के पश्चात् पुनः अपनी राजधानी पाटन में लौट आता है। यहाँ राजा होने के पश्चात् भी भीमदेव अपनी प्रेमिका नर्तकी बीसा से कुछ राजनीतिक सम्बन्धों के कारण विवाह करने में असमर्थ रहता है। अन्त में बीसा के मृत्यु के पश्चात् प्रस्तुत उपन्यास समाप्त होता है।

प्रस्तुत उपन्यास की दोनों ही प्रधान कथाओं में कथा-विकास की पौधों अबस्थायें प्राप्त हो जाती हैं। दोनों ही अपनी-अपनी चरम-सीमा पर परस्पर गुंथ जाती हैं। बात प्रतिबात तक की अबस्थायें दोनों ही कथा सूत्रों की भिन्न भिन्न चलती हैं। दोनों ही कथा सूत्रों का प्रारम्भ एक साथ होता है। अतः दोनों ही की प्रारम्भिक अबस्था 'निर्मस्य' से ही श्राव्य होती है। 'अधोर सम्भवा' तक आते-आते भीमदेव एवं गंग सर्वज्ञ की कथा में मुख्य घटना की निष्पत्ति हो जाती है 'कठिन बभियान' (अध्याय २१) तक महमूद की कथा में भी मुख्य घटना की निष्पत्ति हो जाती है। इन दोनों अध्यायों के पश्चात् ही क्रिश्चित् ब्याख्या के पश्चात् दोनों ही मुख्य कथाएँ 'बात प्रतिबात' की अबस्था में पहुँच जाती हैं। दोनों में ही यह अबस्था 'दय माया' (अध्याय ६६) नामक अध्याय से प्रारम्भ हो जाती है। 'बात प्रतिबात' की अबस्था के पश्चात् ही 'चरम-सीमा' आ जाती है। 'उत्तमय' (अध्याय ८२) से ऐसा श्राव्य होने लगता है कि दोनों ही कथा सूत्रों की चरम-सीमा आ गई है किन्तु वास्तव में चरम सीमा अभी दूर है। भीमदेव की कथा 'पाटन की धार' नामक अध्याय से विपिन हो जाती है। वास्तव में इस अध्याय तक आते-आते महमूद द्वारा गंग सर्वज्ञ की निर्मम हत्या के पश्चात् भीमदेव की कथा अकेली पढ़ जाती है। अतः ऐसा श्राव्य होने लगता है कि भीमदेव की कथा अपनी 'चरम-सीमा' को पार करती हुई 'उपसंहार' की ओर जाने को उमुक्त है। उपन्यास की कथा के 'कार्य को दृष्टि म रखकर परि देखा जाय तो महमूद की कथा में 'चरम सीमा' की अबस्था 'कच्छ के महारण' (अध्याय १२०) नामक अध्याय पर आती है। यहाँ आकर महमूद की कथा में अचरान्त उपस्थित हो जाता है। अतः यह कथा भी विपिन यदि वे 'उपसंहार' की ओर अग्रसर होती है। इन्हीं पश्चात् ही भीमदेव एवं महमूद दोनों ही की कथाएँ समाप्त हो जाती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी 'चरम-सीमा' के पश्चात् 'उपसंहार' का क्रम है।

प्रस्तुत उपन्यास की अधिकारिक कथा भीमदेव और महमूद की है जो वि से बँट तक समानान्तर चलती है—कहीं परस्पर संघर्ष करते हुए तो कहीं संघर्ष करने के लिए उद्यत इस अधिकारिक कथा के साथ-साथ उसको अग्रसर करने के लिए कितनी ही प्रासंगिक कथाएँ सम्पूर्ण उपन्यास में छाई हुई हैं। सोमना एवं फ़ोह मुहम्मद तथा 'वामों महता' की कथा मूल कथा के साथ 'ताका' का कार्य करती है। बीबाबापा बर्मगजदेव विमलदेव साहू बहा बामुण्य आसकरव सेठ आदि की कथाएँ मूल कथा में 'प्रकरी' की भाँति प्रयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कितनी ही छोटी-छोटी कथाएँ मूल कथा को अग्रसर करने के लिए प्रस्तुत उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं। 'खरभर' की कथा 'ताका स्वातक' का कार्य करती है कारण यह भीमदेव की अधिकारिक कथा को उत्तमन बढ़ा देती है और इसी से प्रोत्साहित होकर एवं सहानुभूति प्राप्त कर महमूद की कथा भीमदेव की कथा को आक्रान्त करती है।

प्रस्तुत उपन्यास की पर्येक प्रासंगिक कथा सोरोप्य है। फ़ोह मुहम्मद-सोमना की कथा सामने रखकर उपन्यासकार ने तत्कालीन हिंदू समाज की स्थिति को प्रकट करना चाहा है। उसने 'आचार' में स्पष्ट कहा है सबसे कम मेरा ध्यान हिन्दुओं के कटिबन्ध भ्रान्त बर्मन्धता कट्टरता तथा जाति और आरम-कसह पर पया। मैंने स्वीकार किया कि इसी ने हिन्दुओं को नित किया पराजित किया है। मैंने इसकी प्रतिक्रियाम्बुप बासी पुन देवा स्वामी-फोह मुहम्मद की सृष्टि की। दूसरी जिस बसौदिक मूर्ति की कथा मुझे करनी पड़ी—यह थी 'सोमना' एक विचित्रा ब्राह्मण कुमारी 'सोमना' की प्रकार बामुण्य विमलदेव आदि की प्रासंगिक कथाएँ भी सोरोप्य है। अरण के सोमंकी राजा बामुण्य की कथा उस काल के हिंदू राजाओं के स अद्यतमान जीवन की ओर संकेत करती है—जिसके कारण हिंदू राजा अरण पराजित होते गए। विमलदेव साहू की कथा के पीछे भी एक महत्वपूर्ण संकेत है। उस कथा द्वारा लेखक ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि पराजय का एक प्रमुख कारण मुद्राण भी तत्कालीन राजनीति थी थी। उस काल में अरण के राजा वीर और मंत्री वीर थे। प्रजाजन में जन साधारण वीर और साहूकार वीर थे। इनमें उन दिनों साम्प्रदायिक झगड़े होते रहते थे। इनमें अत्यन्त राजा और मंत्री में विभाजित रहती थी। हिंदू राज्यों के पतन का यह भी एक कारण है।^१ इसी कारण के स्पष्ट करने के लिए विमल देव साहू

की कक्षा को उपन्यासकार ने इसमें रखा है। यद्यपि की प्रासंगिक कक्षा भी इसी प्रकार से सोहेस्य है।

कषालक संगठन की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास आचार्य की वा सर्वयेच्छ उपन्यास है। इसमें मूल तथा प्रासंगिक कक्षाओं का अभूतपूर्व समन्वय हुआ है। यद्यपि किठनी ही प्रासंगिक कक्षाएँ अधिकारिक कक्षा के साथ अनस्यूत हैं किन्तु उनके आधिक्य से भी कक्षा बोधित नहीं होने पाई है। सभी कक्षा सूत्र प्रारंभ से लेकर अंत इस कौशल के साथ मुनियोजित किये गए हैं कि सबका सम्बंध अबाध एवं अदृष्ट रहता है। प्रत्येक कक्षा मूल के विकास में संतुलन और अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा गया है। इस मुन्यगठित कषालक का मही रहस्य है कि सभी प्रासंगिक कक्षाओं के मूल में वही अधिकारिक कक्षा मूल है जो सभी को संयुक्त करता हुआ अंत तक कक्षा बोधत्व के साथ सीधे ले गया है। वास्तव में कक्षात्मक ढंग से प्रत्येक कक्षा मूल के संयोजन के कारण ही प्रस्तुत कषालक का स्वाभाविक गति से विकास सम्भव हो सका है।

प्रस्तुत उपन्यास इतना विशालकाय होने पर भी अंत तक रोचक बना रहता है। यह उपन्यासकार की आदर्शव्यंजनक सफलता है कि १४७ पृष्ठों के इस उपन्यास में पाठक को कुतूहलबुद्धि कहीं भी न्यून नहीं होती। प्रस्तुत कषालक को पूर्ण रोचक बनाने के लिए ही उपन्यासकार ने 'अधोर बन' (अध्याय १०) आदि पौसी कुछ सर्वथा अमत्कारिक घटनाओं का भी इसमें समावेश किया है।

इतिवृत्तात्मक एवं रमात्मक स्वलों का अभूतपूर्व समन्वय प्रस्तुत कषालक में हुआ है। इन दोनों के आनुपातिक समन्वय के कारण पाठक के हृदय में बाँधित प्रभाव उत्पन्न करने में उपन्यासकार पूर्ण सफल रहा है। उपन्यास के अन्त तक रोचक होने का कारण यह भी रहा है।

प्रस्तुत कषालक श्रुतलाभक एवं योजनाभक अवस्य है, किन्तु इसमें भी उपन्यासकार ने अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा है। वही कषालक अत्यधिक योजनभक होने के कारण अस्वाभाविक एवं अग्रजाहित-सा नहीं होने पाया है। कक्षा मूल को पकता देने के लिए पद-गण पर वैयक्तिक संयोग अथवा आकस्मिकता का भी प्रयोग नहीं किया गया है। त्रिसये कषालक अन्त तक स्वतः गतिमान रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास में मानव जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण बड़ा ही सजीव एवं स्वामासिक है। एक ओर जहाँ इसमें युद्ध की कासी बटाएँ उमड़ी हुई बीज पड़ती हैं वहीं दूसरी ओर पायल की छूमछनतनन में प्रेमियों का विप्रलम्भ भी बख्ता है। बीर में शू गार, कश्म में हास भावि सभी कुछ एक साथ प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिल जाता है। प्रस्तुत उपन्यास की सर्वप्रधान विशेषता उसके यथार्थ एवं सूक्ष्म चित्रण में है। उपन्यासकार ने जिस कथा सूत्र का भी पकड़ा है, वह पूर्णरूप से उभर कर सामने आ गया है। छोटे छोटे कथा सूत्र भी सेखक की सेखनी का एक ही आभात पाकर पूर्ण सजीव हो उठे हैं। उपन्यास के प्रत्येक कथा सूत्र में सेखक की उर्बरा कल्पना शक्ति, यथार्थ सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण कला परिष्पाप्त है। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण उपन्यासकार अपनी अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में सफल रहा है। उपन्यासकार की यह बहुत बड़ी सफलता रही है कि उसने जिस युग का कथावस्तु चुना है उस युग को पाठक के नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष आ बड़ा किया है। उसने उस युग को इतने ससक्त और प्रखर रूप में प्रस्तुत किया है कि पाठक अपने मानव बस्तुओं से उस युग की प्रत्येक समस्या प्रत्येक रहस्य यहाँ तक कि उस काळ के प्रत्येक पात्र का प्रत्यक्षीकरण करने में पूर्ण सफल रहता है।^१

प्रस्तुत उपन्यास एक ऐतिहासिक उपन्यास है। अतः स्वभावतः ही यह प्रश्न हो सकता है कि क्या इसकी कथा इतिहासानुमोदित है? प्रस्तुत उपन्यास की मूल घटना एवं प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं। उपन्यास की मूल घटना है मूर्तिभञ्जक महामुद गजबबी का सोमनाथ महाकल्प पर अभियान और प्रमुख पात्र हैं महामुद और भीमवेव। यह घटना ईस्वी सन् १२५ में घटित हुई थी जबकि मूर्तिभञ्जक महामुद गजबबी अपनी विद्याल बाहिनी लेकर गुजुर गजनी से मुस्ताक और अजमेर की राह देव मूर्ति को भ्रम करने के लिए पाटन पहुँचा। इस घटना का उल्लेख 'रोबत उत सफा (पृ १५ भी घटाही में लिखी गई थी) में भी प्राप्त होता है। इसके अनिश्चित उपन्यासकार ने 'फरिस्ता' एवं अस्बकनी के "तबारीखे हिन्य" का आशय लिया है।^२ इस प्रकार इतिहास से उपन्यासकार ने बेहल निम्न तथ्य लिए हैं—

१ ईस्वी सन् १२५ में महामुद ने आक्रमण किया।

१ इस विषय पर आगे "वैद्यकाल एवं पातावरण" नामी अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

२ सोमनाथ आचार पृ ३४।

- २ सभी राजाओं के भय से उसे मस्मक की राह से माना पड़ा।
- ३ रास्ते में गुर्जरेश्वर भीम के भय से उसे कच्छ के महाराज से वापस जाना पड़ा।
- ४ उसने सोमनाथ का मन्दिर तोड़ा।

इनके अनिश्चित इस आक्रमण के विषय में अन्य तथ्य प्राप्त भी नहीं होने। इस आक्रमण को उस समय इनका कुछ समझा गया कि हेमचंद्र सोमेश्वर और मेरुंग जैसे इतिहासकारों ने इसकी खर्षा तक न की।^१ मुजरात में कुछ विज्ञानज्ञ ऐम अब्दुल विमते हैं विमते महमूद के इस आक्रमण का उल्लेख है।^२

इन प्रमुख घटनाओं के अनिश्चित उपन्यासकार ने दोष घटनाओं की मूर्ति बननी उभर बल्बना के द्वारा की है। उसने भी बम्बैयासास भाणिकसास मुशी के उपन्यास 'त्रय सोमनाथ' के कुछ प्रमुख पात्र एवं घटनाएँ अब्दुल छी हैं। उपन्यासकार ने स्वीकार किया है 'भी मुशी बूँकि मुसलम प्रबय 'त्रय सोमनाथ' किज बूके से—इसलिए इस कथा में मैंने भी मुनी को बाप्ट पुरय मान लिया। उनकी अन्तर्-कात्पनिक स्थापनाओं को मैंने सरय की भाँति प्रह्न कर लिया। इसमें मेरे उपन्यास में परंपरा मूलक रसोदय हुआ। दोनों उपन्यास पढ़ने पर पाठक के मन पर उभ घटना का दिगुय प्रभाव होमा। बिराधी भाबना नहीं पैदा होती। इसमें रस भंग का दोष नहीं बाएया यहीं मैंने सोचा। ऐतिहासिक सत्यों की मैंने परबाह नहीं की। इतना ही काफी समझा कि महमूद ने सोमनाथ का आक्रमण किया था। उसने मुजरात की लाज कूटी थी।^३ इसमें उपन्यासकार ने स्पष्ट कहा है कि मैंने ऐतिहासिक सत्यों की परबाह नहीं की। उसने इसमें 'इतिहास रम' की स्थापना की है। यद्यपि इसमें बहु ऐतिहासिक तथ्यों में बंबनर नहीं बन्ना है उमने इसमें मतमानी बुलावे भी मारी है। किंतु तो भी उमने संभावना के क्षेत्र का कहीं भी अनिश्चयन नहीं किया है। 'कच्छ का महाराज' में महमूद की सम्पूर्ण सेना का बिलान अब्दुल अब्दुल-मा सात होता है किन्तु यह कथा मूल भी कात्पनिक न होकर ऐतिहासिक है। मुस्लिम इतिहासकार कीरणा बहना है कि महाराज

१ सोमनाथ व्यापार पृ ६७।

२ ऐनिये इत्यादी की रत्नमाता में उक्तिधित विज्ञानज्ञों का बिलान और इमी विषय पर रामनाथ बन्नीनाथ का लेख।

३ सोमनाथ व्यापार पृ ८।

(अनहिलबाइ) का राजा बिरहुम देव (भीमदेव) बजमेर के नरेश तथा अन्य राजाओं की सेनाओं को एकत्रित करके सुस्तान का रास्ता रोकने की भारी तैयारी कर रहा था इसीलिए उसने सिन्ध के मार्ग से मुसलान जाने का विचार किया। मार्ग में बसह्य परमी और पानी के निरंतर अभाव के कारण सेना का अधिकांश भाग पागल होकर मर गया।^१ इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ तो ऐतिहासिक हैं किंतु उपन्यास में अन्य अनेक घटनाओं की कल्पना लेखक ने की है। जिनका कि इतिहास में उल्लेख नहीं है ऐसी घटनाओं की कल्पना करने का ऐतिहासिक उपन्यासकार को पूर्ण अधिकार है।

तत्कालीन शातावरम तथा घटनाओं की स्पष्ट रेखा बनाने में पुजराठी साहित्य और पुरखें विद्वानों के किये संस्कृत प्राकृत आदि के अनेक ग्रंथों का लेखक ने आश्रय लिया है।^२ तत्कालीन भारत की राजनीतिक धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को चित्रित करने के लिए उपन्यासकार ने कुछ विस्तृत कल्पित पात्र तथा सूत्रों को कथानक में अनसूत किया है।^३

उपन्यासकार ने भूमिका में कहा है कि मैंने इस कथा में श्री मुंशी को भाग्य माना है। इसके अतिरिक्त मुंशी के 'जय सोमनाथ' के विषय में उसका कथन है 'इसी समय श्री मुंशी का 'जय सोमनाथ' मेरे सामने आया। पहले मैंने उसे मूक गुजराती में पढ़ा पीछे हिंदी अनुबाह पढ़ा। मुझे इस बात का क्या ही न रहा कि यह उपन्यास श्री मुंशी ने लिखा है या मैंने। मैं यही सोचने लगा कि क्या वास्तव में सोमनाथ लिख दिया गया है। परन्तु मेरा मन मग नहीं। और किसी एक अतर्कित भावना ने मेरे हृदय में एक ऐसी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न कर ली कि अब मैं सोमनाथ पर कलम बिना उठाने रह ही न सकता था। अब मैंने यह विचार किया कि मैं श्री मुंशी के इस उपन्यास से कुछ प्राप्त कर सकता हूँ या नहीं। मैंने दो तीन बार उसे आरीपी से पढ़ा। इस समय तक मेरा 'बैशाखी की नगरबधू' उपन्यास प्रकाशित हो चुका था। श्री मुंशी के 'जय सोमनाथ' के प्रति मैंने एक प्रतिस्पर्धी की दृष्टि डाली। मन में कहा—यदि मेरा उपन्यास इससे निरूप्य बना लोपों ने उसे न पढ़ा तो क्या

१ हरिस्ता—विन्ध, पृ ७५ रतिकान्त महू गुजरिस्वर भीमदेव सोलंकी, बुद्धिप्रदास बुलाई-सितम्बर, १९३२ का अंक।

२ सोमनाथ आचार पृ ८।

३ सोमनाथ भाष्यार पृ ९।

हामा ?^१ अब देखना यह है कि क्या बाल्य में ही यह उपन्यास मुषी के 'जय सोमनाथ' से उत्पन्न बन सका है। दोनों उपन्यासकारों का सोमनाथ लिखन समय उद्देश्य भिन्न-भिन्न रहा है। इस उपन्यास में वेरा उद्देश्य सुझाना महमूद के आशय का वर्णन करना नहीं मुझरठ द्वारा किये गए प्रतिरोध का वर्णन है।^२ इसके विपरीत आचार्य जतुरमेन जी का उद्देश्य इससे कहीं अधिक विस्तृत है। उन्होंने केवल प्रतिरोध का ही नहीं बल्कि उत्कामीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियों को भी चित्रित किया है। महमूद का चित्रण में भी हमने अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक कौशलता भावुकता और प्रेम की सम्पन्नता उल्लेख की है। बाल्य में उनका उद्देश्य आक्रमण का सांस्कृतिक प्रभाव दिखाना या केवल प्रतिरोध का वर्णन करना नहीं।

बाल्य में सभी दृष्टियों से देखने पर आचार्य जी का यह उपन्यास "जय सोमनाथ" से उत्पन्न बन सका है। कम से कम कथानक की दृष्टि से तो यह उससे अधिक उत्कृष्ट सुसंयोजित एवं बलात्मक है ही। मुषी के उपन्यास में व्यर्थ विवरणों की भरमार के कारण कथानक कई स्थानों पर अवरुद्ध हो गया है किन्तु इसके विपरीत आचार्य जी के प्रस्तुत उपन्यास का कथा सूत्र कहीं भी किन्तु अठ अथवा अवरुद्ध नहीं होने पाया है।

सोमनाथ पर महमूद के इस आशय की तुलना हम नैपोलियन के मास्को पर किए गए आक्रमण से कर सकते हैं। नैपोलियन के मास्को पर किए गए इस आक्रमण का चित्रण कम के विरुद्ध विख्यात उपन्यासकार बालूट जियो टास्यटाप ने अपने अमर उपन्यास "युद्ध और शांति" में किया है। अब यहाँ आचार्य जी के "सोमनाथ" और टास्यटाप के "युद्ध और शांति" पर एक तुलनात्मक दृष्टि दालना अनुपयुक्त न होगा। दोनों की कथाओं में भारी साम्य है। दोनों आशय का ही महत्वाकांक्षी थे—दोनों ने ही पर राज्य में बलात् प्रवेश किया। नैपोलियन प्रवृत्ति के द्वारा अवरुद्ध होकर पीछे घिरा किन्तु महमूद को शत्रुओं से भय शांति प्रवृत्ति का जोष होना पड़ा। जिस प्रकार नैपोलियन अपने विजययोग्यता में इस पर आशय करता है वैसे ही महमूद भारत पर। जिस प्रकार उपर नैपोलियन की विनाशकारी नीति को अवरुद्ध करने के लिए प्राय की गिनत युद्ध समय के लिए अगस्त्य प्रदान करती है किन्तु अंत में उन सभी की कुशलता

नैपोक्तिमय मान्को में उसी प्रकार प्रवेश करता है जिस प्रकार महामूय घोषाबापा धर्मगजदेव भीमदेव भावि को छत्र बस से पराजित करके सोमनाथ महात्म में । नैपोक्तिमय और महामूय दोनों ही देश के शरीर पर अधिकार अवश्य कर सके हैं किन्तु देश की आत्मा सबैव प्रतिघोष के लिए तड़पती रहती है । और अंततः बोना को ही विपत्ताबस्था में अपने देश की ओर प्रत्यावर्तित होना पड़ना है । अपने इस उपन्यास में श्री आचार्य चतुरसेन जी ने रमाबाई के मुक्त से टास्सटाय की भाँति 'पुत्र और धाँड़ि' की समस्या पर प्रकाश डरुवाया है । परंतु अपने समाधान में आचार्य जी टास्सटाय से प्रभावित नहीं रहे जा सकते ।

धर्मपुत्र

'धर्मपुत्र' उपन्यास की मुख्य कथा है एक मुस्लिम माता पिता की अर्धव्यवसायिक विधीय के एक निष्ठावान् आस्तिक हिंदू परिवार में पालन-पोषण एवं एक भावि अल्प आय साहब की पुत्री माया से उसके पानिग्रहण की । इस उपन्यास के कथानक में विकास की समग्र सभी अवस्थाएँ आ जाती हैं । कथा के प्रारम्भ में ही पाठक के सामने एक अद्भुत समस्या आ जाती है । एक मुस्लिम बालक एक हिंदू परिवार में पाला जाने लगता है । अतः आगामी घटना के प्रति पाठक की सहज उत्सुकता जाग्रत होती है । आरम्भ का सूत्र मुख्य घटना को उभारने के लिए व्यपसर होता है । दिल्ली की वास्तविक माता हुसैन बानू मार्ग से हट जाती है । और संघार के सामने डा० अमृतराय और अरुणा उसके पिता तथा माता के रूप में सामने आते हैं । मुख्य घटना की निष्पत्ति हो जाती है । और पाठक स्वभावतः आपसी घटना के विकास को धीमे से धीमे देखने को उत्सुक हो जाता है । इसी समय दिल्ली के विवाह की समस्या आ उपस्थित होती है । उपन्यासकार अभी घटना निष्पत्ति की व्याख्या दे भी नहीं पाता कि कथानक में बात प्रतिपात प्रारम्भ हो जाता है । डा० अमृतराय और अरुणा प्राचीन धार्मिक मान्यता के अनुसार दिल्ली को जम्म के विवाहीय मानने के कारण उसका विवाह अपनी भाँति ही किसी भूमि कन्या से करना अर्धम समझते हैं । इसी कारण से वे उसका विवाह भाँति अल्प आय साहब के बेटे से करना अवश्य ही विचारित करने लगे हैं किन्तु दिल्ली नष्ट हिंदू होने के कारण इस संबंध की अस्वीकृत कर देता है । यह घटना कथानक को भाँसे बढ़ाती है । राय साहब विवाह के प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात सुन पुत्री सहित डा० अमृतराय के यहाँ आ पहुँचते हैं । अब पाठक की कौतूहल क्षिति पूर्वकल्प जाग्रत हो जाती है । इसी समय दिल्ली और माया का अप्रत्याक्षित रूप से धार्मिक भिन्न और दोनों का

पारस्परिक रूप में आकर्षित होना कथानक में एक नाटकीय मोड़ का देता है। दोनों-दोनों के लिए ब्याकुल होते हैं अंतर्द्वन्द्व प्रारम्भ होता है। विभीषण माया को जस्वीकार करके भी उसी के लिए ब्याकुल हो उठता है और उबर माया भी विभीषण द्वारा अपमानित होने पर उसी को अपना मान बैठती है। बाद प्रतिपात एवं अंतर्द्वन्द्वों का अतिव्यमज करता हुआ कथानक तीव्रगति से चरम सीमा की ओर बढ़ता है। इसी समय पुनः कथानक में एक नाटकीय मोड़ आता है। विभीषण का अपनी वास्तविक माता हुस्नबानू से अप्रत्याशित रूप से साम्राज्यकार हो जाता है। यही उसे वास्तविक रहस्य कि वह मुमलमान है बात होता है। वह इस घटना से इनका प्रभावित होता है कि अपना घर त्यागने तक को प्रस्तुत हो जाता है। कथानक अपनी चरम सीमा तक पहुँचते-पहुँचते अकस्मात् मुड़ जाता है। संयोग से माया भी उस समय वहाँ उपस्थित थी उस अनिश्चित अवस्था में भी अपनी प्रेयसी की सहानुभूति और प्रेम पाकर विभीषण पुनः रुक जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत कथानक की चरम सीमा अपनी नाटकीयता एवं संयोग से चरितार्थ होने के कारण उसे ब्रह्माद् आदर्शवादी अंत की ओर खींच ले गई है फलतः कथानक की कलात्मकता को गहरा आघात पहुँचा है। चरम सीमा के पश्चात् भी उपम्यासकार आगे बढ़ता है। और उपसंहार में दोनों का शुभ पाधिग्रहण करा देता है जो प्रेमबंध सुगीत उपम्यासकारों की एक प्रमुख विशेषता है।

इसमें अधिचारिक कथा विभीषण और माया की है। इस मूल कथा को अपसर करने और उसमें सौरभ्य वृद्धि करने के लिए डा० अमृतदास हुस्न बानू तथा जहाँगीर खीर जली पेशिद, मुषीक आदि की प्रासंगिक कथाओं का भी प्रयोग हुआ है। विभीषण की अधिचारिक कथा के साथ डा० अमृतदास एवं अरणा हुस्न बानू एवं तथाक की कथा पठाया एवं तिलर सुगीक आदि की कथाएँ प्रकटी वा कार्य करनी हैं। स्वामी जी की कथा का प्रयोग यद्यपि लेखक ने यदिक अंधविश्वासों का मूलोद्घेदन एवं हास्य मूर्च्छि के लिए ही किया है किन्तु वह प्रस्तुत कथा में पठाया-त्यागक वा कार्य करती है।

कथानक संगठन की दृष्टि में प्रस्तुत कथानक संगठित है। कथानक की समस्त घटनाएँ परस्पर सम्बन्ध हैं। अधिचारिक कथा के साथ आई हुई प्रासंगिक पत्रिका और प्रकटी कथाएँ भी कथानक के विकास में योग देती हैं और उनसे एतदुत्पत्ता बनाए रखती हैं। कथानक के मध्य में हुस्नबानू एवं तथाक की प्रासंगिक कथा ब्रह्म अधिचारिक कथा से दूर जा पड़ती है। किन्तु अंत तक पहुँचते-पहुँचते वह पुनः पुनः कथा से आकर संयुक्त हो गई है। मूल कथा इस प्रासंगिक कथा को

सेवर तीव्रता से आगे बढ़ती है। एक के ऊपर एक क्रुतुहस की सृष्टि होती है। और चरम सीमा को पार करते-करते कबानक घटना और संयोगों के मध्य में सबकर अपना संतुलन खो बैठता है जिससे कबानक अपनी मूल समस्या के निष्कर्ष के समीप आते-आते नाटकीय ढंग से मुड़ जाने के कारण उसका एकत्रित प्रभाव नष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत कबानक की रोचकता अंत तक बनी रहती है। रोचकता की सृष्टि के लिए ही उपन्यासकार ने द्वितीय विधिर एवं सुधील के माध्यम से बेध-काक को चित्रित किया है। नाटकीय मोड़ मबाब साहब का विचित्र स्वभाव और उसके पार्श्व में घड़कते चार-चार अम्बान व्यक्तित्व किन्तु पवित्र मारी हृदय एवं स्वामी की कीतुहस एवं मनोरंजनबर्भक कथाओं की सृष्टि इसी उद्देश्य से उपन्यासकार ने की है। रोचकता समाप्त के प्रयत्न में कथा कहीं कहीं बिखरने लगती है किन्तु अंत तक आते आते उपन्यासकार ने उसे बड़े मत्न से संभार लिया है।

कबानक को यथासाध्य संभावना की सीमा में बांधने का प्रयत्न किया गया है किन्तु तो भी एक दो अप्रत्याशित एव नाटकीय घटनाएँ सीमा का उल्लंघन करती हुई आठ होती हैं। उदाहरण के लिए कट्टर हिंदू द्वितीय माया से प्रथम बार मिलकर ही इतना आत्म विस्मृत हो जाता है कि उसके जन्म से प्राप्त पोषित समस्त संस्कार जड़मूस से उड़न-खू हो जाते हैं। वही मारी जिसका कुछ अंग पूर्व ही उसने अस्मान किया था—उसी मारी को एक ही बुद्धि में अपना हृदय खणित कर देना—विजयपट की घटनाओं के अतिरिक्त यथार्थ जीवन में नहीं बीत पाइता। कुछ इसी प्रकार की घटना अंत में भी संजोयी गयी है। वही द्वितीय जो अपने आभयदाता माता पिता के ध्वन की उद्देशा करके अपने अन्य भारतीय जनों के प्रेम एवं स्नेह को दुर्लभ कर कर त्यागने को उद्यत है वही केवल माया की सहायुक्ति एवं प्रेम पाकर अमत्कारिक ढंग से रुक जाता है। यद्यपि कथाकार ने इन दोनों घटनाओं को इस प्रकार संजोया है कि कथा संभावना के क्षेत्र का किंचित उल्लंघन न करके पुनः सीमा में बँध जाती है। कथाकार ने यदि दोनों घटनाओं के मूल में संयोग और नाटकीयता के स्थान पर मनोविज्ञान का पूर्ण आभय लिया होता तो कथा संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन संभवतः न कर पाई होती। साथ ही जो कथा सीमा का उल्लंघन करके पुनः संजीम हो गई है उसका श्रेय भी उन्हीं मनोवैज्ञानिक स्पष्टों को है जो घटनाओं से मूल में यत्किंचित् एवं अवलन आ गए हैं।

अब स्वभावतः एक प्रश्न उठता है कि क्या कृपाकार उस समस्या का निष्कर्ष देने में सफल रहा है जो कबालक के प्रारम्भ में उठाई गई थी? स्पष्ट है कि कृपाकार एक ऐसी समस्या को लेकर बना है जो किसी सीमा तक पारलभ्य नहीं जा सकती है। समस्या है धर्म का सीमाबंधन जन्म एवं रक्त से होता है अथवा संस्कारों से? मुहम्मद रबीअ बालू ने भी अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' में प्रस्तुत समस्या को उठाया है। इसमें सदेह नहीं कि समस्या महत्वपूर्ण है। उसके प्रस्तुत करने का ढंग भी मौलिक एवं यथार्थ है किंतु कृपाकार अंत तक बात-आते इतनी द्रुतगति से भाया है कि मूल समस्या पीछे ही छूट गई है। अब समस्या का निष्कर्ष भी पूर्वबोधेन निकल नहीं पाया है। कृपा की जरूरत सीमा के साथ ठाढ़ात्म्य स्थापित कर लेने के कारण पाठक अंत तक आते-आते कुछ-कुछों के ध्यामाह्व के मध्य यन्त्री मूल समस्या को मूल जाता है किंतु कृपा समाप्त करते ही मूल समस्या केन्द्रों के सम्मुख पुनः भूमि जाती है। परीक्षा रूप से उठा मूल समस्या का कोई भी समाधान कृपाकार में दीख नहीं पड़ता किंतु किञ्चित् मात्र ध्यान देने पर उन्ने कृपाओं के मध्य मूल समस्या का निष्कर्ष आब नित हील पड़ता है। अप्रत्याशित एवं नाटकीय ढंग से विभीषण और माया का परिणामफल कराकर उपन्यासकार ने रक्त एवं जन्म द्वारा प्रवर्तित धर्म विषयक मान्यताओं एवं सीमाबंधनों का मूल से उखाड़ डेकन की चेष्टा की है। कसक र्थ में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों प्रगतिशील होता जायेगा त्यों-त्यों उन्नती धर्म विषयक मान्यताओं में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आते जायेंगे। जहाँ भी मानव की क्रोमस वृत्तियाँ परस्पर संघर्ष करने लगेंगी वहीं धर्म की रक्त जन्म अथवा संस्कार संबंधी-मान्यताएँ स्वयं विरोधित हो जायेंगी।

प्रस्तुत कृपाकार की कलात्मकता समस्या की ध्याम्या के साथ-साथ जीवन की विविध दृष्टिकोणों के चित्रण के समावेश के कारण सिमुलित हो गई है। कुछ स्थानों पर पात्रों के अंतर्द्वन्द्व का चित्रण बड़ा मार्मिक बन पड़ा है। यद्यपि नाटकीयता के समावेश के कारण कृपाकार यद्यपि ही मनोविज्ञान का पस्ता छोड़कर पदमाओं और संयोगों की संवर में पड़कर अक्षरर होने लगता है। किंतु जहाँ भी कृपाकार इन दोनों के जंजाल में निरन्तर मनोविज्ञान के स्वस्थ वातावरण में स्थान देता है वहाँ उपन्यासकार की अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति दिगने ही बनती है।

अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें भी अभावधानी के कारण कुछ घटी नूनें हो गई हैं। एक दो स्थानों पर कृपा का प्रयोग हुआ है। सम्भव है यत्र

बाप सेखक वा नहीं अपितु मुद्रण की असावधानी के कारण हुआ हो किन्तु तो भी दोष तो है ही।

सूर्य रश्मि

प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा है रावण के विविधवय एवं राम द्वारा उसकी पराजय की। इनमें कथा का प्रारम्भ एक दैत्यबाला के मृत्यु के वर्णन से होता है। यहाँ प्रस्तुत उपन्यास के नायक रावण की उस दैत्यबाला से नेंट हो जाती है। रावण उस दैत्य मुन्दरी के शीर्ष पर मुग्ध हो जाता है। वह मुग्ध के लिए स्वर्ण बैकर उस दैत्य बाला को अपने साथ ले जाता है। अब वही से रावण की प्रभान कथा सनै- सनै- अपसर होती है। विबर्णात्मक और वर्णनात्मक ऐतिहासिक खोजों से पूर्ण अध्यायों के बीच-बीच में जा जाने के कारण यह प्रभान कथा अपनी बहुरक्ति से ठिठक-ठिठक कर अपना मार्ग स्वयं निमित्त करती हुई जाने बढ़ती जाती है। वास्तव में उपन्यास के इस माय में इस प्रभान कथा की गति उस शीबकिली की गति प्रतीत होती है जो पर्वतीय प्रदेश में पिला खड्डों से टकराती उम्हें तोड़ती अपने में सनेटजी कमी बक कमी ऊर्ध्व कभी स्थिर तो कभी क्षिप्रगति से पर्वतों को पार करती समस्त मैदान की ओर स्वतः प्रेरित ही मापती बनी जाती है।

'राससेंद्र रावण' (अध्याय ३१ पृष्ठ १५०) तक प्रभान कथा की यही बया रहती है। इसके पश्चात् से इस कथा में गति जाती है। रावण एकाकी ही विभिन्न करने के लिए संका से बाहर निकल पड़ता है। इस बिजय यात्रा में रावण दो स्वानों पर पराजित हुआ—प्रथम किष्किन्धापुरी में शक्ति से^१ और दूसरे माहिष्यती में बहुरती अर्जुन से^२। किन्तु इन दोनों बीरों से पराजित होकर भी उसने इन दोनों से ही मैत्री संबंध स्थापित कर लिया था। वैजयन्ती-पुरी में अपने साङ्ग अमुरराज विभिन्न रावण से भी वह पराजित हुआ था। असुर की गपटी में ही रावण ने उसकी पत्नी मायावती से अनुचित संबंध स्थापित करने की कोशिश की थी। अमुर ने उसकी इस सम्मटता को देख लिया था। इसी बात से क्रोधित होकर अमुर ने मत्स्यपुर में रावण को पराजित करके बंधी बना लिया था। किन्तु 'देवासुर-संग्राम' में अमुर के मारे जाने के कारण अमुर पत्नी मायावती इस बंधी गृह से मुक्त कर स्वयं अपने पति के साथ चली हो गई थी।^३ रावण

१ सूर्य रश्मि पृ २१०-२११।

२ सूर्य रश्मि पृ ३४६-३४७।

३ सूर्य रश्मि पृ १०६-११६ तक।

की इन स्थाओं के अतिरिक्त सर्वत्र विजय हुई थी। उसने मम कुंवर, बरुण और इंद्र तक को अपनी विद्यास बाहिनी क द्वारा अपने आधीन कर लिया था।

प्रस्तुत उपन्यास की दूसरी मुख्य कथा है राम की। मिथिला में 'मनुष्य यज्ञ' के अवसर पर रावण प्रथम बार राम के बर्तन करता है। इस बटना' क परबाद् से ही प्रस्तुत उपन्यास में राम की कथा प्रारम्भ होती है। यहीं से राम और रावण दोनों ही की कथाएँ समानांतर चलने लगती हैं। उद्धर रावण बेब सोक संबर्बलोक नागकोक यल माट्ट आदि पर विजय प्राप्त कर रहा था और इधर कैकेयी के हठ के फलस्वरूप राम को चौदह वर्ष के लिए बनवास की आज्ञा हो चुकी थी। राम इस अवधि को पूर्ण करने क लिए बन-वन मटक रहे ब। इसी समय रावण की भविनी सूर्पनखा क माध्यम से राम रावण की समा नांतर बन्दी हुई कथाओं में संबर्ष प्रारंभ हा जाता है। यह संबर्ष भर्षकर युद्ध का रूप धारण कर लेता है। रावण राम की पत्नी सीता का हरण करता है और राम सदैव्य उस पर आक्रमण। अंत में धनधोर सग्राम के परबाद् राम रावण का बध कर अपनी पत्नी सीता को प्राप्त करते हैं। यही प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा है।

इसमें अधिकाधिक कथा राम और रावण की है। प्रासंगिक पंथाका और प्रपरी एवं अप्रासंगिक कथाओं की प्रस्तुत उपन्यास में भरमार है। इसमें प्राचीनहासिक कालीन देव ईत्य दानव असुर, किन्दर गण्यर्ष आर्य अपार्य आदि की संस्कृतिव गति विधियों को विभिन्न कथा भूतों में पिरोने का प्रयत्न किया गया है। इसी कारण से इसमें राम रावण की अधिकाधिक कथा के साथ-साथ प्रत्येक नागहों द्वारा भरती का उद्धर, देवामुर-संघाम ठारनामक बायराज-संघाम सम्बर-संघाम आदि की कितनी ही अप्रासंगिक कथाएँ बलान् लाई गई हैं। कितनी ही इसमें ऐसी भी कथाएँ हैं जिनका अपरोक्ष रूप से रावण की अधिकाधिक कथा से सम्बंध स्थापित किया गया है। रावण के प्रथम अधिपानों का विस्तृत विवरण देकर कितनी ही प्रासंगिक कथाओं को एक म समेटने का प्रयत्न अवश्य किया गया है किन्तु तो भी अनेक ऐसी प्रासंगिक कथाएँ रह गई हैं। जिनका मूल कथा से किसी प्रकार का सम्बंध स्थापित नहीं हो सता। जैसे मनुभरठ प्रथम बरुण बह्या आदित्य, ईत्य-मानव देवामुर संघाम आदि अध्याओं की कथाएँ।

इसमें क्या राबन के चरित्र के चारों ओर बसकर काटती हुई अन्त तक बची है इसमें कितने ही कथामुक्त बिस्तर पए हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसे भी चरित्रों का समावेश हुआ है जो भारत मूमि मध्य एशिया बरब मधीका और पूर्वी द्वीपसमूह तक फैले हुए हैं। इससे क्या और भी विस्तृत हो गई है। इसमें क्या की एकसुधारमयता तो समाप्त हो ही गई है। साथ ही साथ पद्याओं म्यु गार-सज्जा सामग्री बरब-बान्ध के नामों एवं प्राचीन राजाओं की बंधावतियों के बिबरणों के आधिक्य क कारण क्या की रोचकता को भी मह्य आघात मया है। मेरा अपना विश्वास है कि यदि आचार्य जी इस बिबरणमय और अप्रासंगिक सामग्री को मूल क्या से निकाल कर माध्य में से हटे तो निरिचत रूप से प्रस्तुत उपन्यास की क्या की कलात्मक महता अंत तक क्या को सरस एवं रोचक बनाये रखने में पूर्ण सफल रहा है।

वैसा कहा जा चुका है प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य कथानक अत्यंत प्राचीन है। राम-रावण की क्या ही उसके मूल में है जिसे आदि कवि वास्तीक से लेकर आज तक के कवियों ने अपनी क्या का माध्यम बनाया है। इतनी प्रचलित क्या को उठाने पर भी उपन्यासकार ने इसे मिठांत मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उसने स्वयं कहा है इस उपन्यास में प्राग्बैदनातीन नर, नाम देव ईत्य दानव आर्य जनार्थ आदि विविध नृबर्णों के जीवन के से विस्तृत पुरातन रेखाचित्र हैं जिन्हें बर्न के रंधीन छोड़े में देखकर सारे संसार में उन्हें अंतरित का देवता मान लिया वा। मैं इस उपन्यास में उन्हें नर-रूप में आपके समग्र उपन्यत करने का साहस कर रहा हूँ। बर्न रत्नाम एक उपन्यास तो अवश्य है परंतु बाल्य में बहु देव पुराण बर्णन और वैदिक इतिहास-ग्रंथों का दुस्सह अध्ययन है।^१ प्रस्तुत उपन्यास की इस विशेषता के साथ-साथ इसकी यह मौलिकता भी उल्लेखनीय है कि इसमें राम-कथा को एक तबीन दृष्टिकोण से देखा गया है। आज तक के महाकाव्यों में केवल राम परिवार का आध्य लेकर क्या विपणित हुई थी किन्तु इसमें आधिकारिक क्या राबन के परिवार का आध्य लेकर बर्न कवि माइकेल मधुपुरन बत को 'मेघनादबध' का प्रभाव प्रस्तुत क्या पर रख्य है किन्तु दोनों का दृष्टिकोण एकदम भिन्न है। इसमें 'उपन्यासकार ने बर्न पुराण बर्णन आह्वान और इतिहास की प्राणियों की एक बड़ी सी पठनी बांधकर इतिहास रत्न में एक दुबकी से भी है। सबको इतिहास रत्न में रत्न किया

है। फिर भी यह इतिहास रस का उपयोग नहीं 'अतीत रस' का उपयोग है। इतिहास रस का ता इसमें केवल रस है स्वार है अतीत रस का।^१

इस उपयोग के विगुण का ही जान का एक कारण और है। उपयोग का ने इसमें प्रागैतिक और अदार्शनिक कथानों के ध्यान से तत्कालीन धार्मिक सामाजिक एक राजनीतिक परिस्थितियों का विचार में विवरण देना का प्रयत्न किया है। यह सत्य है कि प्रस्तुत कथानक के माध्यम से उपन्यासकार उस युग समाज तथा संस्कृति का आभास देने में पूरा सफल रहा है किन्तु इस सफलता के लिए उसे कथानक के सुगठन का बलिदान करना पड़ा है।

प्रस्तुत कथा में कई स्त्रियों पर नाटकीय मोड़ है। उदाहरण के लिए 'बाबे पुष्पमाममेन्' 'अमुर का विजय' आदि अध्यायों को लिया जा सकता है। किन्तु इसमें भी 'अति नाटकीयता' नहीं आने पाई है। कथा कुछ अंशों का छोड़कर आदि में अंत तक आते ही पंरों पर चरनी है किन्तु जहाँ पर प्रचलित कथानकों को बलात् मोड़ने का प्रयत्न किया गया है वहाँ कथा संतुलित तो एव अन्धा भाविक हो गई है। उदाहरण के लिए 'सागर-तरंग' 'पराक्रम का मनुज' 'पुर्बटि का साभिष्य' में आदि अध्यायों का ले सकते हैं। उपन्यासकार ने सभी तथ्यों को बुद्धिमत्ता बनाम का पूर्ण प्रयत्न किया है किन्तु इदानीय का पराक्रम प्रयत्न में वह 'मेघनाद बघ' में धार्मिक प्रभावित होने के कारण इस संतुलन का निर्वाह नहीं कर सका है। कभी-कभी कथानक अनिश्चित हो गए हैं जिससे कथा के माड़ टूटे-टूटे संकीर्ण पड़ते हैं। उपन्यासकार ने अपनी पूर्ण प्रतिभा का उपयोग कथा का अध्यात्मिक और धार्मिक एक बुद्धिमत्ता बनाम में हा कर दिया है। कथा के बीच-बीच में आगे हुए मनुज के बर्तानाव इसी बात का साक्ष्य है। इसमें कथा का अन्त ही आभास पड़ेगा है किन्तु इस कथानक का समाप्ति कथाकार ने सम्भावना एक भीषण के निर्वाह के लिए हा किया है। बहुत संभव है कथानक की भाँति मनुज के अन्त का अन्त भी उद्भव रहा है।

यैसा प्रथम ही कहा जा चुका है कि प्रस्तुत कथा-कथानक प्राचीन है और जिन्ने ही महान् संघों की रचना इसी कथा का आधार बनाकर हो चुकी है। अब देवता यह है कि प्रस्तुत उपन्यास किस सीमा तक अपनी पुरखनी रचनाओं में प्रभावित है? इस उपन्यास पर बाष्पीकृत समाप्ति के 'उत्तरवाह' मादरेण मनुज के 'मेघनाद बघ' का प्रभाव अत्यंत ही गहरा है। कथा की रचना उस प्रस्तुत कथानक का अंत आदि उपन्यासकार के अंत है। कथानक

विशिष्ट स्वक तो पूर्णरूप से उपरोक्त दोनों बंधों के आधार पर ही सिद्धे यवे हैं । उदाहरण के लिए 'रवीन्द्र का अभिगमन' मेघनाद-अभियेक^१ 'पूर्वदि के सानिध्य में'^२ 'अभिसार'^३ 'समागम'^४ रवीन्द्र-बन्ध^५ आदि अध्यायों को से सकते हैं जो मेघनाद-बन्ध के पष्ठ और सप्तम सर्ग से बहुत कुछ प्रयावित है । कोई कोई बंध तो दोनों में एक से भीक पड़ते हैं । उदाहरण के लिए यहाँ हम केवल एक तुलना देते हैं—

'रुक्मिणी तथा धरमों की मनमताहट
सुन रवीन्द्र मेघनाद ने चौकला होकर
नेत्र लोल सौमित्र की सौम्य मूर्ति को
देखा । उसने समझा प्रसन्न हो भगवान्
वैश्वानर ने ही प्रत्यक्ष दर्शन देने का
अनुभव किया है । उसने उठकर, दूर
ही से मूठक में गिर, साध्यांग प्रणाम
कर बड़ाबलि हो कड़ा— 'देव वैश्वानर,
यह बात आज आपकी आराधना कर
रहा है क्या इसीलिए आपने इस
रूप में प्रकट होकर बात पर अनुभव
किया है ? हे देव मैं आपको प्रणाम
करता हूँ'

सौमित्र अब्ज लिए आये बड़े ।
मेघनाद ने पीछे हटते हुए कहा— 'ठहर
तू यदि सत्य ही रामानुज कथनक है
तो मैं अभी ठीकी मुठ कामना पूरी
करता हूँ ।' 'सत्य भर मेरा आतिथ्य
ग्रहण कर । मैं तनिक भीर—साज सज
नूँ वासन से नू ।

सहमन मैं यत्न कर कहा "अरे मुड़

चौककर, बंद आँसू लोलकर सहसा
देखा बली रावणि ने देवाकृति सामने
ठेजस्वी-महारथी हो तरंग तरणि क्यों
बंभुमाली !

करके प्रथम पड़ पृथ्वी में हाथ जोड़
बोला तब बासक बिजेता यों— 'पूजा
कुमयोप में है आज है विभाव सो
क्रिकर ने तुमको तभी तो प्रभो तुमने
करके पश्चात्पन पश्चिम किया संका को ।

रौद्रमूर्ति बाभरथि बोले भीर-दर्प
से— 'पावक नहीं मैं देव रावणि
निहार के । रुक्मिण है नाम मेरा
वगम रघु-कुम में । मारने को धूर-सिंह
तुमको समर में बाया हूँ यहाँ मैं
अबिलम्ब मुझे मुठ दे ।'

विस्मय से बोला बली "सत्य ही जो
तुम हो रामानुज तो हे रथि किस छत्र
से कही राससराज-धुर में बुसे हो तुम ।

'रामानुज रुक्मिण हो यदि तुम
सत्य ही तो हे महाबाहो मैं तुम्हारी
रण—नामसा मैतृमा अबसन हो

१ बर्ष रत्नाम अध्याय १०७ ।

२ बर्ष रत्नाम अध्याय १११ ।

३ बर्ष रत्नाम अध्याय ११४ ।

४ बर्ष रत्नाम अध्याय १११ ।

५ बर्ष रत्नाम अध्याय ११२ ।

६ बर्ष रत्नाम अध्याय ११२ ।

बाप व जाल में घोंघने पर क्या किरात उभे छोड़ देता है । मैं तुम्हें इसी क्षण निरल्प बच करूँगा ।

मेघनाद ने क्रुद्ध होकर कहा— 'भरे, जबम मानव निरल्प घनु पर आवात करना बीरकुल की मर्यादा नहीं । तुने जोर की भांति मेरे मंदिर म प्रवेश किया । ठहुर, मैं तुम्हें जोर ही की भांति दण्ड दूँगा ।' उसने एक गृहपात्र उठाकर लक्ष्मण के सिर पर दे मारा । 'अपि' १

मुझ में मरता । कभी हाता है बिरल इंद्रजित रण-रंज से । सब लूँ जरा मैं बीर-साह से ।"

बोले तब लक्ष्मण गम्भीर मन-बोप से "छोड़ता किरात है क्या पा के नित्र जाल में बाप को बबोध ? मभी बैठे ही करूँगा मैं तेरा बच । "

बोला तब इंद्रजित "मन-कुल का है तू कसक तुम्हें बिक है ।

लक्ष्मण । नहीं है तुम्हें सज्जा किसी बात की मूँद लेगा काज बीर-बुन्द पुजा करके मुनकर तेरा नाम ।

मरवा उठाकर सुरंत महाबीर ने माण बोलानपुल लक्ष्मण के माल में ।" १

इसके अतिरिक्त भी कई अन्य स्थानों पर उपन्यासकार 'मेघना' बध' से प्रभावित हुआ है । तिन स्थानों पर उपन्यासकार माइकेल से प्रभावित है, वे स्थान प्रभावशाली नहीं रह पाये हैं । उनके चरित्रों का बिकास उन स्थानों पर स्वतंत्र बन से नहीं हो सका है । 'मेघनाद बध' से 'पण्ड सूर्य का पूर्व रूपम अनुकरण करते से इसके उत्तरार्ध में भी बही होप जा मये हैं जो 'मेघना' बध' में थे । 'मेघनाद बध' के बण्ड सूर्य के विषय में भी पुत्र योपीन्द्रनाथ बमु ने कहा पा 'मेघनाद बध' का पण्ड सूर्य ही सारे काव्य म सबसे निहण्ड है । मधुसूदन त्रिष कारण ल इत सूर्य की इत प्रचार रचना करते के भ्रम में पड़े हैं उसके हो कारण से । पशुता कारण राबन-बंध पर उनकी अत्यधिक सहानुभूति है (आचार्य जी भी राबन बन्दीरवर के तैत्र से अत्यधिक प्रभावित म) और दूसरा कारण बाम्पीकि जो छोड़कर होमर की आदर्श रूप मानकर उनका अनुकरण की बेवटा है । उन्नत बीरों के बीरत्व ने मधुसूदन को ऐसा मुग्ध कर दिया पा कि इसने प्रतिपत्नी भी बीर है इन्हे के एक बार ही भूक गए म । "लक्ष्मण" लक्ष्मण

१ बध रत्नामः पृ ७०९ [०]

२ मेघनाद बध—माइकेल मधुसूदनरत्न अनुबादन—मधुप पण्ड सूर्य पृ १७८

[८२] तब ।

उन्ने इन्द्र बिम्बी महावीर की न्याययुद्ध में बध करे कवि के लिए यह मातों
 जसह्य था। इसी से उन्होंने कश्मिर को एक वाकिबा की अपेक्षा भी दुर्बल बना
 दाका। नायक का गौरव भ्रान्त के लिए प्रतिनायक को भी गौरव मुक्त
 रखता पड़ता है। ज्ञान पड़ता है। मेवनाद बध के कवि को इस बात का भी स्मरण
 नहीं रहा है। त्रिन स्वर्णों पर आचार्य भी मे 'मेवनाद बध' का अनुकरण
 किया है वहाँ निरिक्त रूप से यही बोध उनके उपन्यास में भी उभर आया है
 किन्तु वहाँ उन्होंने अपनी कल्पना से बाष्पीक रामायण एवं 'मेवनाद बध'
 की कथाओं का समन्वय प्रस्तुत किया है अथवा किसी नवीन घटना की उद्भावना
 की है वहाँ पर निरिक्त रूप में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। ऐसे ही स्वर्णों पर
 उनकी प्रतिभा निरर आई है। नवीन उद्भावनाओं की दृष्टि से इसी कारण
 से प्रस्तुत उपन्यास का पूर्वार्ध अधिक सफल रहा है। यद्यपि कथा संगठन की
 दृष्टि से उत्तरार्ध अधिक सुगठित है।

प्रस्तुत कथा वस्तु क संज्ञक में उपन्यासकार ने दोनों ग्रंथों के अतिरिक्त
 अन्य कितने ही प्राचीन ग्रंथों का आश्रय लिया है। उपन्यासकार का गंभीर
 अध्ययन उसने तीन सौ पृष्ठों के भाष्य से प्रकट होता है। उसने स्वयं कहा है
 उपन्यास में व्याख्यात तारों की बिबेचना मुझे उपन्यास में स्वान-स्वाम पर करनी
 पड़ी है। मरे लिए वृत्तय मार्ग का नहीं। फिर भी प्रत्येक तथ्य की सप्रमाण टीका
 के बिना मैं अपना बचाव नहीं कर सकता था। अतः आई सौ पृष्ठों (यद्यपि हो
 तीन सौ पृष्ठों का मया है) का भाष्य भी मुझे अपने इस उपन्यास पर रखना
 पड़ा।^१ वास्तव में उक्त भाष्य से और प्रस्तुत कथानक से स्पष्ट बात होना है कि
 केवलक न सब वेद पुराण दर्शन ब्राह्मण और इतिहास ग्रंथों को निचोड़ कर
 एक ही भाजन में भर दिया है। जिससे कि यह उपन्यास से अधिक इन प्राचीन
 ग्रंथों का व्याख्या ग्रंथ बन गया है।

यहाँ तक प्रस्तुत उपन्यास की ऐतिहासिकता का प्रश्न है मैं नहीं समझ
 पाता कि इसे इतिहास कहें या उपन्यास। स्वयं उपन्यासकार ने लिखा है 'वर्ष
 रघुम की गणना अब तक प्रचलित उपन्यासों की श्रेणी में नहीं की जा सकती।
 कथा की दृष्टि से हमस रावण की कथा है। अरिष मन्वन्वी नहीं सांस्कृतिक
 प्रयाम की वादना में यह रामछरित का विपर्याय है और उसकी पृष्ठभूमि में

१ मेवनाद बध—मादिकत मनुसूत्रनदत अनुवाक—'मपुप' अरिषय और
 आलोचना पृ १२१ २७।

२ वर्ष रघुम दुर्ब निवेदन पृ ४।

देव शत्रु देव तथा शत्रुशील जातियों के जीवन संघर्ष है। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास की ऐतिहासिकता प्रदर्शित करने के लिए समय-समय पर पृष्ठों का एक-दो-तीन भी प्रस्तुत किया है। इनमें उमर उपन्यास की सगन्ध श्रवण प्रस्तुत पन्ना की ऐतिहासिकता पर विश्वास किया है। आचार्य जी ने प्रस्तुत उपन्यास को 'इतिहास रस का नहीं बल्कि 'अनीन रस' का मोक्ष उपन्यास माना है।^१ शास्त्र में हमें प्राग्देवकालीन जातियों के सम्बन्ध में मर्यादा अत्यन्त-अज्ञानित कई स्थापनाएँ हैं मुक्त मर्यादा है विद्यमान विचरण है हरप और पलायन है। दिन देव की उपलब्धा है वैदिक-अवैदिक अत्यन्त विषय है। नरपाम की लुप्ते काका म विनी है लुप्ते है यह है उमर अनाकृत जीवन है।^२ इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के विषय का मुख अल्पमन का और प्रमाणी की घूमघाम स्वर आचार्य अनुमन की अद्वय हृण है। जिसने 'इतिहास रस' पर 'ऐतिहासिक-सत्य (यहाँ 'अनीन रस पर अनीन-सत्य') काही हा गया है जिसने यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास न होकर शत्रुशील संस्कृति का इतिहास अधिक हो गया है किन्तु ता भी इसकी अनक अनीन की स्मृतिनी देखा बिना बड़ सुत्रीय और उन्ने हृण है। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत उपन्यास का कथानक भी अनीन के इतिहास के बीच म शान्तता अल्पमन रहा है किन्तु यह इतिहास का आकर्षण इतना स्पष्ट हो गया है कि कथानक पूर्णरूप से उभर नहीं पाया है जिसमें 'अनीन-रस' का पूर्ण

१ कातायन पृ २९।

२ अर्ध रत्नाम-पुर्व निवेदन पृ ४२।

३ अर्ध रत्नाम-पुर्व निवेदन पृ २। उपन्यासकार ने इसके अनिश्चित भी लिखा है हम उपन्यास में प्राग्देवकालीन नर नाग देव देव दानव आर्य अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन देखा बिना हैं जिन्हें धर्म के रंगीन छीने में देवदेव नारे संसार ने उन्हें अनिश्चित का देवता मान लिया था। मैं इन उपन्यास में उन्हें नर रूप में आर्यके समस्त उपस्थित करने का साहस कर रहा हूँ। 'अर्ध रत्नाम एक उपन्यास तो अर्थात् है परन्तु शास्त्र में वह बेर पुरातन दार्शनिक और वैदिक इतिहास पन्नों का दुम्नह अल्पमन है। तात्पर्य में मैंने यह बेर पुरातन दार्शनिक साहस्य और इतिहास के धारों की एक बड़ी भी मन्तो कोषकर इतिहास रस में एक दुबली दे दी है। सचने इतिहासरस में रंग दिया है। कि भी यह इतिहास रस का उपन्यास नहीं अनीन रस का उपन्यास है। इतिहास रस का तो हममें देवता रस है तब है अनीन रस का। अर्धरत्नाम-पुर्व निवेदन पृ ४२।

संसार नहीं हो पाया है। हाँ ऐतिहासिक तथ्यों के समष्ट के कारण उपन्यास में ऐतिहासिकता निश्चित रूप से उभरी हुई है।

इस युग से सम्बन्धित हिंदी में तथा भारत की विभिन्न भाषाओं में अल्प कितने ही उपन्यास प्राप्त हैं। मगधत चरम उपन्यास के संदर्भ सपेय गर्बन रागेय राबब का मुर्दों का टीका बुन्दाबन जाल बर्मा के 'सुबन-बिक्रम' एवं राहुक की 'बोल्गा से गर्मा' की कुछ आरम्भिक कहानियों में प्रायैतिहासिक युग का ही चित्रण प्राप्त होता है किन्तु इनमें से 'सुबन-बिक्रम' को छोड़कर अन्य उपन्यासों में व्याख्यात्मकता से कथारमकता ही अधिक है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि 'बयं रत्ताम' में कथा पर विद्बता हावी हो गई है। मुंली का 'नमबान् परमुत्तम' भी इसी काल से सम्बन्धित उपन्यास है किन्तु उसमें भी कथाकार कथाकार ही रहा है, इतिहासकार बनने की उसने कहीं भी चेष्टा नहीं की है। हाँ इस उपन्यास में भी 'बयं रत्ताम' के समान ही कुछ चरित्रों में कलात्मकता अवश्य जा गई है। उदाहरण के लिए हम बुंदाना बबोरी के चरित्र को ले सकते हैं। चाहे जाचार्य जी हों चाहे मगधतचरण उपन्यास हों और चाहे मुबराती के कथा-सिद्धी मुंली और भूभक्त्यु हों पौराणिक संस्कारों के कारण पौराणिकता को वे पूर्णरूप से नहीं त्याग पाये हैं।

गौली

प्रस्तुत उपन्यास आत्म-कथात्मक ढंग में लिखा गया है। कथा का व्यावहारिक आरम्भ प्रधान पात्री जम्पा के अपनी स्वयं की कथा लिखने से होता है। वह कथा के आरम्भ में ही कहती है 'मैं जय-जात बभाबिन हूँ। स्त्री जाति का कलंक हूँ। स्त्रियों में कथम हूँ। परन्तु मैं निर्वोप हूँ निष्पाप हूँ। मेरा दुर्भाग्य मेरा अपना नहीं है मेरी जाति का है। जाति-भरम्भण का है। हम पैदा ही इस लिए होती हैं कि कलंकित जीवन व्यतीत करें।' इस आरम्भ से ही पाठक की सहज उत्पन्नता आगूत हो जाती है। प्रधान कथा जम्पा के जीवन के साथ ही चलने लगती है। वह अपने जीवन की प्रायः सभी प्रबाल बटनाओं की ओर संकेत प्रथम अध्याय 'जय-जात कलंकिनी' में ही कर देती है। जब यह सभी कथाएँ अपने परिपार्थ में एक रहस्य को समेटे, जिज्ञासा वृत्ति को जवाबी रानी-रानी गतिशील होने लगती हैं। कथा के कुछ ही चलने पर यह स्पष्ट होने लगता है कि वह एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जो स्त्री होने हुए भी अन्य स्त्रियों से भिन्न है जो एक राजा की पर्वकथायिनी होने पर भी उसकी रानी नहीं है उसकी

विवाहिता पत्नी नहीं है। उस राजा के औरस उसके पाँच सन्तानें हुईं पर वह उसका पिता न था पिता या उसका पति जिसका कर-स्पर्श उसने केवल एक बार जब वह पन्द्रह वर्ष की थी विवाह-मग्न्य में किया था। किञ्चित् मात्र कथा के और विकसित होते ही पाठक को ज्ञात हो जाता है कि यह एक 'गोमी' की भात्मकथा है जिन्हें स्त्री होते हुए भी मेड़ बकरियों के रेवड़ की भाँति बेचा जा सकता था। दहेज में बान दिया जा सकता था दहेज में साकर सब गोमियों को उस राजपूत कन्या के पति की उप-पत्नी या खेत की भाँति रहना पड़ता था किन्तु उनका विवाह उनकी ही जाति के किसी गोले से कर दिया जाता था। पर वह विवाह केवल इसलिए हुआ था कि वह माती की संतान का केवल वैधानिक पिता बन जाय। पति से पत्नी का मोसे से गोभी का घरीर सम्बन्ध प्राप्त नहीं हो पाता था। वे उस राजपूत की पर्यक्यायिनी होती थीं किन्तु पत्नी होती थीं गान्धे की। इस प्रकार न पति का पत्नी पर अधिकार था, न पत्नी का पति पर। उनका अपनी सन्तानों पर भी कोई अधिकार न था और न वे कोई अपनी निजी सम्पत्ति ही रख सकती थी। राजस्वान् विलय के समय इस जाति के १० हजार से भी अधिक गान्धे-माछिया राजाओं और ठाकुरों के रतबाओं में उनकी स्वेच्छ-धारिता और बिलास-बाधना का विचार बने हुए था। इस 'विगत इतिहास' का परिचय कराती हुई जम्पा की आत्मकथा छन-छन अक्षर होती है। अपने सम्पूर्ण जीवन पर एक विहंगम दृष्टि शक्य रूप उपन्यास की भाँति अब एक-एक कथा-मूल को खोलना प्रारम्भ कर देती है। कथा टिप्पण कर पीछे लौट आती है। जम्पा के चौदह बाल की कथाओं उसके पारिवारिक विवरणों को समेटती हुई कथा अत्यन्त विचित्रता से अक्षर होती है। 'महाराजापिराज' से परिचय होने के पश्चात् जम्पा का व्यक्तित्व छन-छन उन्हीं के व्यक्तित्व में बिलीन होने लगता है। यद्यपि जम्पा उनकी विवाहित पत्नी नहीं है वह केवल दहेज में मिली एक गोमी मात्र है। किन्तु तो भी वह महाराज की पटवणियों के ऊपर पर्वण्य जाती है। जम्पा बंबई के विवाह में प्रान्त की गई एक गोमी है। महाराजापिराज विवाह करके बंबई को लाते हैं किन्तु प्रथम रात्रि में ही वह अपनी मर-विकसिद्ध पत्नी को छोड़कर विवाह में मिली गोमी जम्पा के घर में जा बैठते हैं। बंबई भी एक ठाकुर की बेंटी थी, फिर भला उसे यह अन्याय कैसे सह्य होगा? विवाहिता पत्नी को छोड़कर जीव गोमी का सम्मान? अमहा! का अपने विना न शक्य अपने इस सम्मान का गणित भेज देती है। तथा स्वयं एतन्म में जा बैठती है। महाराजापिराज में भी वह पिन्ना अम्बीदार कर देती है। महाराजापिराज में अपनी बेटी के अन्याय का प्रतिगोप लेने के लिए बंबई

संसार नहीं हो पाया है। हाँ, ऐतिहासिक तथ्यों के प्रसंग के कारण उपन्यास में ऐतिहासिकता निश्चित रूप से उभरी हुई है।

इस युग से सम्बन्धित हिंदी में तथा भारत की विभिन्न भाषाओं में अल्प कितने ही उपन्यास प्राप्त हैं। भयबत धरम उपाध्याय के संवर्ष सपेरा पर्वत रावेय राजव का मुर्खों का टीला ब्रह्मचरन सास बर्मा के 'मुबन-विक्रम' एवं राजकुल की 'बोस्गा से पंगा' की कुछ आरम्भिक कहानियों में प्रायैतिहासिक युग का ही चित्रण प्राप्त होता है, किन्तु इनमें से 'मुबन विक्रम' को छोड़कर अन्य उपन्यासों में व्याख्यात्मकता से कथात्मकता ही अधिक है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि 'बयं रसाम' में कथा पर निष्पत्ता हावी हो गई है। मुर्खों का 'भगवाम् परशुराम' भी इसी काल से सम्बन्धित उपन्यास है किन्तु उसमें भी कथाकार कथाकार ही रह्य है, इतिहासकार बनने की उसमें कहीं भी श्रेय नहीं की है। हाँ इस उपन्यास में भी 'बयं रसाम' के समान ही कुछ चरित्रों में व्यक्तिकता अत्यन्त आ गई है। उदाहरण के लिए हम बुद्धनाथ अचोरी के चरित्र को ले सकते हैं। चाहे आचार्य भी हों चाहे भयबतधरम उपाध्याय हों और चाहे मुजराती के कथा-विष्णु मूँसी और ब्रह्मकेतु हों पौराणिक संस्कारों के कारण पौराणिकता को वे पूर्णरूप से नहीं त्याग पाये हैं।

गोली

प्रस्तुत उपन्यास आरम्भ-कथात्मक शैली में लिखा गया है। कथा का व्यावहारिक आरम्भ प्रधान पात्री अम्मा के अपनी स्वयं की कथा लिखने से होता है। वह कथा के प्रारम्भ में ही कहती है 'मैं जन्म-जात अमागिन हूँ। स्त्री जाति का कर्लक हूँ। स्त्रियों में अन्धम हूँ। परन्तु मैं निर्दोष हूँ मिथ्याप हूँ। मेरा दुर्भाग्य मेरा अपना नहीं है, मेरी जाति का है। जाति-परम्परा का है। हम पैदा ही इस लिए होती हैं कि कर्लकित जीवन व्यतीत करें।' इस प्रारम्भ से ही पाठक की सहज उत्सुकता जाग्रत हो जाती है। प्रधान कथा अम्मा के जीवन के साथ ही चलने लगती है। वह अपने जीवन की प्रायः सभी प्रधान घटनाओं की ओर संकेत प्रथम अध्याय 'जन्म-जात कर्लकिनी' में ही कर देती है। अब यह सभी कथाएं अपने परिपार्श्व में एक रहस्य की समेटे जिज्ञासा वृत्ति को जमाती रानी सनी यंत्रिणीत होने लगती हैं। कथा के कुछ ही चलने पर यह स्पष्ट होने लगता है कि यह एक ऐसी स्त्री की आत्मकथा है जो स्त्री होते हुए भी अन्य स्त्रियों से भिन्न है जो एक राजा की पर्यकराजिनी होने पर भी उसकी राजी नहीं है उसकी

विवाहिता पत्नी नहीं है। उस राजा के औरस उसके पाँच सन्तानों हुईं पर वह उसका पिता न था पिता था उसका पति, जिसका कर-म्पण उसने केवल एक बार जब वह पन्द्रह वर्ष की थी, विवाह-मंडप में किया था। किञ्चित् मात्र कथा के भीर विकसित होते ही पाठक को आठ हो जाता है कि यह एक 'गोपी' की आत्मकथा है जिसे स्वी होते हुए भी भेड़ बकरियों के रेवड़ की भाँति बेचा जा सकता था। देखें मैं दान लिया जा सकता था वही म बाँकर सब मोसियों को उम राबपून कन्या के पति की उप-पत्नी या खेत की भाँति रहना पड़ता था किन्तु उनका विवाह उनकी ही भाँति के किसी गोभे से कर दिया जाता था। पर वह विवाह केवल दर्शनिए होता था कि वह गोली की संज्ञान का केवल वैधानिक निशान बन जाय। पति से पत्नी का मोक्ष से गोभी का शरीर सम्बन्ध प्रायः नहीं हो पाता था। वे उस राबपून की पर्यवधानिणी होती थी किन्तु पत्नी होती थी पति की। इस प्रकार न पति का पत्नी पर अधिकार था न पत्नी का पति पर। उनका अपनी सन्तानों पर भी कोई अधिकार न था और न वे कोई अपनी निजी सम्पत्ति ही रख सकती थी। राजस्युक्त विषय के समय इस जाति क ६० हजार में भी अधिक पास-गोसियाँ राजाओं और ठाकुरों के राजाओं में उनकी स्वेच्छा-कारिता और विनाश-जातना का विचार बने हुए थे। इस विषय इतिहास का परिचय कदाही हुई जन्मा की आत्मकथा वही वही अक्षर है। अपने सम्पूर्ण जीवन पर एक विहंगम दृष्टि डालकर उपन्यास की शक्ति अब एक-एक कथा-भूय को खोलना प्रारम्भ कर देती है। क्या रिश्ता कर दीने लीट जाती है। जन्मा के दीगम जाल की कथाओं उसका पारिवारिक विवरणों को समझती हुई क्या अत्यन्त विरयति में अक्षर होती है। 'महापराधिगत' में परिचय होने के परवान् जन्मा का व्यक्तित्व वही वही उन्हीं के व्यक्तित्व में बिलीन होने लगता है। यद्यपि जन्मा उनकी विवाहित पत्नी नहीं है वह केवल देखें में मिली एक गोपी मात्र है। किन्तु जो भी वह महापरा की पराधिगत का पढ़ें पाती है। जन्मा कृषी के विवाह में प्रयत्न की गई एक कथा है महापराधिगत विवाह करते कथी को जाने है किन्तु प्रयत्न करने में ही वह अपनी मध-विवाहिता पत्नी को छोड़कर विवाह में निर्धर होने के पढ़ें या पढ़ें है। कृषी भी एक ठाकुर की कथी थी कि वह एक कथा है प्रयत्न में या बिलीनी है। महापराधिगत में ही वह विवाह करने के पढ़ें है। महापराधिगत में कथी की के पढ़ें है।

के पिता माते हैं किन्तु कृषरी उन्हें शान्त कर देती है। विवाह के पश्चात् कृषरी उन्नीस वर्ष बीबित रहती है किन्तु उसका फिर महाराजाधिराज से सम्बन्ध न हो सका। उसने अपने जीवन के यह उन्नीस वर्ष त्याग और तपस्या में ही व्यतीत कर दिये थे।

शम्पा का महाराजाधिराज से इक्कीस वर्ष तक सम्बन्ध रहा। जब प्रथम बार महाराजाधिराज से उसके गर्भ रहा उसी समय महाराजाधिराज न उसका विवाह किमुन नामक एक गोखे से कर दिया था। वह केवल नाम मात्र का पति था। वस्तुतः महाराज के औरस से उत्पन्न बच्चों का पिता कहलाने के लिए ही शम्पा का किमुन से विवाह किया गया था। इसी समय मातृ जी ललास के चरित्र को आधार बनाकर एक नवीन सहायक कथा का जन्म होता है। इसके शम्पा की कथा से उलझते ही कथा में बिबाह उत्पन्न हो जाता है। शम्पा और मातृजी ललास में शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। यह जानाकी से महाराजाधिराज को शम्पा की ओर से विमुक्त करके शम्पा को राज्य से निष्कासित करने की योजना प्रारम्भ कर देता है। अन्त में वह अपने पदचक्र में सफल होता है। महाराजाधिराज शम्पा को त्याग देते हैं। केवल त्याग ही नहीं देते बल्कि उसको समाप्त कर देने का भी पदचक्र करते हैं। किन्तु भंडा फूट जाता है और उसमें जालजी ललास री हाथों पकड़ा जाता है। महाराजाधिराज इस घटना से शम्पा से अप्रसन्न हो जाते हैं। उनकी आज्ञा से शम्पा को द्योदियों के नारकीय जीवन में डाक लिया जाता है। अतः उसी के चारों ओर कथा बन्द कर फाटने लगती है। कथा द्योदियों के नारकीय जीवन की छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन करती बड़ी से बड़ी विपदाओं का विवरण करती बचरोबों का अतिक्रमण करती हुई अन्त तक पहुँचती है। कथा के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते महाराजाधिराज और किमुन की मृत्यु हो जाती है। अन्त में घाट स्वर्ण होन के पश्चात् प्रथम पापी शम्पा सब बन्धनों का अति क्रमण कर द्योदियों के नारकीय शातावरण से मुक्ति पाकर अपने परिवार सहित स्वच्छन्द शातावरण में श्वास लेती है।

प्रस्तुत कथानक में विकास की क्रमशः सभी अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं। 'भारतों का प्रभाव' नामक अध्याय (अध्याय १) एक कथा के प्रारम्भ की अवस्था है। इससे पश्चात् 'ही यौवन की देहरी पर' (अध्याय ६) से मुख्य घटना की तैयारी की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। 'नए जीवन की राह पर' (अध्याय १२) तक आते आते मुख्य घटना निष्पत्ति की अवस्था आ जाती है। इससे पश्चात् ही विविध मात्र ध्यायों के पश्चात् कथानक में घाट प्रतिपादन

प्रारम्भ हो जाते हैं। कुंवरी चम्पा, महाराजाबिराज किमुन आदि के चारों ओर कपानक भूमिमें समता है। इसमें 'चरम-सीमा' और 'घात प्रतिघात' की अवस्थाएँ दो बार प्रयुक्त हुई हैं। एक में मुस की चरम सीमा होती है तो दूसरे में दुस की। 'घात प्रतिघात' की अवस्था भी दोनों बार चरम-सीमा के पूर्व आई है। इसमें भी चरम-सीमा के पश्चात् 'उपसहार' का रूप है।

प्रस्तुत उपम्यास में आधिकारिक कथा चम्पा की ही है। इस प्रधान कथा को गति प्रदान करने के लिए कितनी ही प्रासंगिक-मताका एवं प्रकरी-कथाएँ भी स्वयं आ गई हैं। कुंवरी किमुन आदि की कथाएँ पताका एवं बन्दर राजा, बामुदेव महाराज आदि की कथाएँ प्रकरी की भाँति प्रयुक्त हुई हैं। साऊजी कवास एवं गंगाराम मोला की कथा प्रस्तुत कथात्मक में पताका-स्वामक का कार्य करती हैं।

कथा संगठन की दृष्टि से प्रस्तुत उपम्यास का कथात्मक निर्दोष है। आचार्य जी के अन्य विशालकाय उपम्यासों-विशेषतया 'बैयाली की नगरबम्' 'बय रसाम' 'सोमा और कुन'—के कथानकों में बिखराव का एवं अनावश्यक कलेवर-बुद्धि का जो दोष है, वह इसमें नहीं आ पाया है। इसमें उपम्यासकार ने निरर्थक भरती की प्रवृत्ति नहीं बीस पढ़ती। यही कारण है कि प्रस्तुत कथा आदि से अंत तक अपलकृत स्वतः प्रवर्तित है।

कथा वहीं भी संभावना के अन्त का उस्मयन नहीं करमे पाई है। कथा में पूर्ण विश्वसनीयता माने के लिए बड़े ही रोचक ढंग से उपम्यासकार ने कथा का इस प्रकार अन्त किया है "मुम अभागिन की पाप कथा समाप्त हो गई। सभी मेरा जीवन रोच है। " कित्ती दिन आइए मेरे घर मेरे मुक्ताव देखने। बैलिए और पाठ दीजिए। " "सास गुमाव तो प्रधान मंत्री मेहरू के लिए है। हर सोमवार को मैं और मेरी लड़की एक टोकरी सास मुक्ताव लेकर प्रधान मंत्री के घर लुब मोर ही में पहुँच जाते हैं। बहुत गुण होते हैं वे मेरे कुलों से। मेरी दुस-भाषा मुनकर वे भाँसे पीती कर चुके हैं। पर अब तो बेराते ही हसते हैं। अब मेरी बेटी एक सास बसी अपने हाथ से उनकी परबानी में लया देनी है तो वे उत्तकी छोड़ी परदकर अपना दुस्तर करते हैं। क्या बहू बिना जाय पिलाए माने देखे ही पही। "

कथाचित् किनी दिन आप मेरे यहाँ आए, जब मन हो लभी आइए ४२०
पृथ्वीराज रोड नई दिल्ली कृपया ४२० को न भूलिए।"

कथा का प्रस्तुत अन्त उसमें यथार्थता का अम उत्पन्न करने के लिए ही संश्लेषित किया है किन्तु कुछक कथाकार ने अतिम वाक्य 'कथा ४२० को न सुनिए ।' कहकर सतर्क पाठकों के हृदय में सुबसुवी भी उत्पन्न कर दी है । कथा को स्वाभाविक बनाने के लिए ही उपन्यासकार ने स्थान-स्थान पर आधिक्यता का पुट देने के लिए स्थानीय बोली के शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

उपन्यासकार ने पूर्ण ठग्ममता एवं कान के साथ कथा कही है । कथा में पूर्ण गठिममता एवं रोचकता है । पाठक बिना प्रयास के ही पात्रों के साथ वाचारास्य कर सकेता है । पात्र मुखोद्धारित आत्म-कथा के रूप में कही जाने के कारण उपन्यासकार पात्री के अस्तसु के रहस्य को उद्घाटन करने में पूर्ण सफल रहा है । इसमें रोचकता सम्पादन के लिए उपन्यासकार को बलात् अप्रत्याशित आकस्मिक अवस्था अति नाटकीय घटनाओं की संयोजना नहीं करनी पड़ी है ।

प्रस्तुत कथानक के माध्वम से कथाकार ने तत्कालीन राजस्थान की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का भी सफल चित्रण प्रस्तुत किया है । यद्यपि यह एक धोनी की आत्मकथा है किन्तु तो भी इस कथानक में व्यक्तिगत भावनाओं के स्थान पर बर्गगत भावनाओं की प्रचुरता है । इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत उपन्यास आत्मनिष्ठ कथाकार वीनेन्द्र एवं इलाचन्द्र जोषी के उपन्यासों से प्रेमचन्द के बर्गगत उपन्यासों के अधिक समीप है । आत्मक में इसमें आत्मनिष्ठता की भावनाओं के परिपार्श्व में एक समाज विरोध की व्यक्त एवं अव्यक्त भावनाओं को विरोधा गया है ।

प्रस्तुत कथानक की सर्वप्रधान विशेषता इसकी मौलिकता है । हिंदी में यही प्रथम उपन्यास है जिसमें राजस्थान की इस प्रमुख समस्या पर प्रकाश डाला गया है । असा कहा जा चुका है राजस्थान विषय के समय ६० हजार में भी अधिक धोने-धोन्नी राजाओं और अकुरों के रतवासों में उनकी स्वेच्छाचारिता और विभ्रान्त-वासता का सिद्धार बने हुए थे । अब भी स्वतंत्र भारत में भी इन धोन्नीयों का निरास समाज नहीं हो गया है । आज भी यह प्रथा कुप्त रूप से अवस्था किसी अन्य रूप में चल रही है । इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रस्तुत उपन्यास एक आत्मिकारी रचना है । केवल विषय की नवीनता के कारण ही नहीं बल्कि नवीन वस्तुताओं उद्भावनाओं कलात्मकता विवरणों एवं कथा विन्यास की दिशेयताओं के कारण भी प्रस्तुत कथानक मौलिक है । उपन्यासकार की यह बहुत बड़ी सफलता है कि उसने समाज के त्रिष क्षेत्र से कथानक का चुनाव किया है जहाँको मुख्य दृष्टि से देना समाज है । वह उस क्षेत्र विरोध की प्रत्येक

सम्भावनाओं, उसके प्रत्येक रहस्यों से पूर्ण रूप से अवगत है। यही कारण है कि वह अपनी बात को सदासत एव प्रसर रूप से प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहा है।

उदयान्त

कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ एक रियासत के राजा साहब के परिवार से होता है। मुरेख उसी रियासत के राजकुमार है। उनके पिता राजा साहब में राजाओं की सभी विधवनाएँ समाविष्ट हैं। प्रस्तुत कथा का विकास राजा साहब एवं मंगू नाम के एक जमार के बाद-विवाद से होता है। मंगू भाग्य निक प्रगतिशील नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है और राजा साहब रुढ़िवादी सामंजसवादी का। मुरेख राजा साहब और मंगू की मध्यस्थता करते हैं किन्तु समझौता करने में असफल रहते हैं। दोनों में संघर्ष बढ़ने लगता है। कावेस इस की सहायता से मंगू राजा साहब के समक्ष जा डटता है। कथानक में पाठ प्रतिपाद प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्यासा की अवस्था तक आठे-आठे प्रस्तुत कथा एकदम मंद पड़ जाती है। उपम्यासकार प्रस्तुत कथा को यही छोड़ देता है। इसी के पश्चात् कुबर मुरेखसिंह अपनी पत्नी को साथ ले दिल्ली भ्रमण को जाते हैं। प्रथम कथा उनक साथ ही साथ दिल्ली पहुँच जाती है और इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक वृत्तियों को प्रदर्शित करने वाली किंवदन्ती ही प्रस्तुत कथाएँ मूल कथानक के साथ सम्बन्ध हो गई हैं। प्रथम दिल्ली में आई सभी प्रासंगिक कथाओं को ज्यों का त्यों छोड़कर पुन कबर मुरेख सिंह के साथ अपने पूर्व स्मार पर आकर अपनी पूर्वगति से चलने लगती है। मंगू एवं राजा साहब वाली कथा पुन प्रारम्भ हो जाती है। पान-प्रतिपाद पुन प्रारम्भ हो जाता है। कावेस-बल की सहायता पाकर मंगू ने राजा-साहब के विपक्ष से मान हासिल का दावा कर लिया था साथ ही कावेस ने जंगे निर्वा पान में राजा-साहब के सामने लड़ा कर बिधा था। अब कथानक को पाठ प्रतिपाद चरम सीमा की ओर गीच ले आता है। कथानक चरम सीमा पर उस समय पहुँचता है जब राजा साहब मान हासिल क दावे में मंगू से पराजित होने हैं और जिसका आधान न सहन कर पाने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। आत्महार आकाशवादी ढंग से किया गया है। कबर मुरेख की उदारता के ममता मंगू को नत होना पड़ता है और जंग में बहु कुबर के साथ ही उनके पार्श्व पर चार्य करने लगता है।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपम्यास की आधिपारिक कथा राजा साहब मुरेख एवं मंगू की है। कथानक एवं पद्मा सरला रमेण एवं रमि आनि की कथाएँ

कथा का प्रस्तुत अन्त उसमें यथार्थता का अम उत्पन्न करने के लिए ही संशोधा गया है किन्तु कुछ कथाकार ने अन्तिम वाक्य "कृपया ४२० को न भूलिए।" कहकर सतर्क पाठकों के हृदय में गुरुदुःखी भी उत्पन्न कर ही है। कथा को स्वाभाविक बनाने के लिए ही उपन्यासकार ने स्वान-स्वान पर आधिक्यता का पूर देने के लिए स्वाधीय बोधी के सभ्यों का भी प्रयोग किया है।

उपन्यासकार ने पूर्ण सम्मता एवं जगन के साथ कथा कही है। कथा में पूर्ण यथिमयता एवं रोचकता है। पाठक बिना प्रयास के ही पाठों के साथ साक्षात्स्य कर लेता है। पात्र मुजोद्धारित आत्म-कथा के रूप में कही जाने के कारण उपन्यासकार पात्री के अन्तर्भूत रहस्य को उद्घाटन करने में पूर्ण सफल रहा है। इसमें रोचकता सम्पादन के लिए उपन्यासकार को बहार्त् अप्रत्यासित आकस्मिक अथवा अति माटफीय घटनाओं की संयोजना नहीं करनी पड़ी है।

प्रस्तुत कथामक के माध्यम से कथाकार ने तरकासीन राजस्वान की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का भी सफक विवरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह एक मोनी की वारधकथा है किन्तु तो भी इस कथानक में व्यक्तियुक्त भावनाओं के स्वान पर वर्णित भावनाओं की प्रचुरता है। इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत उपन्यास आत्मनिष्ठ कथाकार अनेत्र एवं इच्छाचन्द्र बोधी के उपन्यासों से प्रेमचन्द के वर्णित उपन्यासों के अतिक समीप है। वास्तव में इसमें आत्मनिष्ठता की भावनाओं के परिपार्ष में एक समाज विक्षेप की व्यक्त एवं व्यक्त भावनाओं को पिरोया गया है।

प्रस्तुत कथानक की सर्वप्रधान विक्षेपता इसकी मौलिकता है। हिंदी में यही प्रथम उपन्यास है जिसमें राजस्वान की इस प्रमुख समस्या पर प्रकाश डाला गया है। अंता कहा जा चुका है राजस्वान विक्षेप के समय ६० हजार से भी अधिक धाने-गोतिया राजाओं और ठाकुरों के रनवासों में उनकी स्वेच्छाचारिता और विनाम-वासना का घिकार बने हुए थे। अब भी स्वर्तव भारत में भी इन गोतियों का नितांत अभाव नहीं हो गया है। अब भी यह प्रथा गुप्त रूप से अथवा फिरी अन्य रूप में चल रही है। इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रस्तुत उपन्यास एक वास्तिकारी रचना है। केवल विषय की मवीनता के कारण ही नहीं बल्कि नवीन वस्वनाओं उद्भावनाओं कसात्मकता विवरणों एवं कथा विन्यास की विरोपताओं के कारण भी प्रस्तुत कथानक मौलिक है। उपन्यासकार की यह बहुत बड़ी सफलता है कि उसने समाज के अिन क्षेत्र से कथानक का चुनाव किया है उसकी मूलम दृष्टि से देता सना है। वह उस क्षेत्र विक्षेप की, प्रत्येक

सम्भावनाओं, उसके प्रत्येक रहस्यों से पूर्ण रूप से अवगत है। यही कारण है कि वह अपनी बात को सफल एवं प्रखर रूप से प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहा है।

उदयास्त

कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ एक त्रियासत के राजा साहब के परिवार से होता है। मुरेश उसी त्रियासत के राजकुमार हैं। उनके पिता राजा साहब में राजाओं की सभी विशेषताएँ समाविष्ट हैं। प्रस्तुत कथा का विकास राजा साहब एवं मंगनू नाम के एक जमार के बाद-बिबाद से होता है। मंगनू भाषु निरु प्रगतिशील नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है और राजा साहब कठिनायी सामंतीशाही का। मुरेश राजा साहब और मंगनू की मध्यस्थता करते हैं किन्तु समझौता कराने में असफल रहते हैं। दोनों में संघर्ष बढ़ने लगता है। काँग्रेस बल की सहायता से मंगनू राजा साहब के समझ सा बटता है। कथानक में पाठ प्रतिपाद प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्याशा की अवस्था तक आते-आते प्रस्तुत कथा एकदम मंच पड़ जाती है। उपन्यासकार प्रस्तुत कथा को यहीं छोड़ देता है। इसी के परभाव कुंवर मुरेशसिंह अपनी पत्नी को साथ से दिल्ली भ्रमण को जाते हैं। प्रधान कथा उनके साथ ही साथ दिल्ली पहुँच जाती है और इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक दशाओं को प्रदर्शित करने वाली कितनी ही प्रासंगिक कथाएँ मूल कथानक के साथ सम्बन्ध हो गई हैं। प्रधान दिल्ली में आई सभी प्रासंगिक कथानकों को ज्यों का त्यों छोड़कर पुनः कुंवर मुरेश सिंह के साथ अपने पूर्व स्थान पर आकर अपनी पूर्वगति में चलने लगती है। मंगनू एवं राजा साहब वाली कथा पुनः प्रारम्भ हो जाती है। पाठ प्रतिपाद पुनः प्रारम्भ हो जाता है। काँग्रेस-बल की सहायता पाकर मंगनू ने राजा-साहब के विपदा से मान हानि का दावा कर दिया था साथ ही काँग्रेस ने उस निर्बाधन में राजा-साहब के सामने लड़ा कर दिया था। अब कथानक को पाठ प्रतिपाद चरम सीमा की ओर लीच ले जाता है। कथानक चरम सीमा पर उस समय पहुँचता है जब राजा साहब मान हानि क दावे में मंगनू से पराजित होते हैं और जिसका आपात न सहन कर पाने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। उन्मत्त आदर्शवादी बंग से किया गया है। कुंवर मुरेश की उदारता के समय मंगनू को नग होना पड़ता है और अंत में वह कुंवर क साथ ही उनके धर्म पर कार्य करने लगता है।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास की आधिकारिक कथा राजा साहब मुरेश एवं मंगनू की है। रीतान एवं पद्मा सरसा रमेश एवं रतिम आदि की कथाएँ

मुख्य कथा में प्रार्थनिक पताका का कार्य करती है। शुभ्र भी हृदयस्थ सिंह तथा साहज आदि की कथाएँ मुख्य कथा में प्रकटी के समा। प्रयुक्त हुई हैं। मुख्य कथा में करामत अमी एवं राजा भैया की कथा का प्रयोग पताका-स्वानक के रूप में हुआ है। आनंद स्वामी की कथा केवल विचारों और सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए ही बजातु आई गई है। इससे कथानक की कलात्मकता का भाव आचान पहुँचा है।

कथानक की बटनाएँ संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन नहीं कर पाई हैं। अधिकतर बटनाएँ सेलक की क्षेत्रों के भी ज्ञान होती हैं। सभी उनमें अपनी सभी बटा एवं मार्मिकता आ पाई है। कुछ स्थानों के वर्णन ऐसे अवश्य हैं जिन्हें सेलक ने देखा नहीं है जैसे असोक होटल का वर्णन। किन्तु यह कोई ऐसी वृत्ति नहीं है कारण होटल का काल्पनिक वर्णन भी किया जा सकता है।

उपन्यासकार कथानक की रोचकता का निर्वाह अंत तक करने में एक सीमा तक सफल रहा है। आनंद स्वामी के प्रचारार्थक सभी भाषणों ने कथा की बोधिम अवश्य बना दिया है किन्तु सिद्धांतों का दृष्टिकोण मौलिक एवं नवीन होने के कारण पाठक की उत्सुकता एवं कथानक की रोचकता घटती नहीं होने पाती। रोचकता वृद्धि के लिए श्री उपन्यासकार ने कितनी ही प्रार्थनिक कथाओं की सृष्टि की है। नाटकीय ढंग से संयत के हृदय का परिवर्तन कुछ आदर्शवादी अवश्य हो गया है किन्तु न उसने कथानक की रोचकता ही नष्ट हो पाई है और न ही वह आनी कवन तैत्री के कारण संभावना के क्षेत्र का ही उल्लंघन करने पाई है।

प्रस्तुत कथानक में युग वेद्य एवं समाज का सफल चित्रण हुआ है। संयत की कथा नव आवरण का संदेश देती है। ईसायत-यद्मा पुरुषोत्तम सेठ एवं रेवुका सरला रमेश एवं रवि आदि की कथाएँ तत्कालीन देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को चित्रित करने के लिए प्रस्तुत कथानक में अनुस्यूत की गई हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में मानव जीवन की पूर्ण झलकी तो नहीं है किन्तु उसकी विभिन्न विविध अवस्थाओं का समावेश इसमें किया गया है। वे अपने चित्रण की पारदर्शिता एवं सूक्ष्मता के कारण मार्मिक बन गई हैं।

प्रस्तुत कथानक में उपन्यासकार ने एक समस्या को भी उठाया है। समस्या है छात्राध्यक्ष अंध-नीच की जायना का अंत किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रभु कथानक के सम्मिलन से उन्मादकार ने दिखलाया है कि छुद्राछूट का उन्मत्त मन समझा प्रकाशना से कनी नहीं बिना या सक्ता। मात्र दुःख परि कर्णित हो चुका है। सब बजार का बजार बह कर दुःखालय उमक हृदय के बा में नहीं बिना या सक्ता बन्नु मात्र उसके हृदय को जीवन के लिए जो हरिक भावनाओं महासुक्ति एवं प्रेम भादि की आवश्यकता है। मंगु बजार है। उसमें एक प्राणिकीय उन्माद सबनुक का हृदय बहक रहा है। रात्रा सहर गाय मधनीय एव अन्नादिज लिए करने पर बह नड नहीं होगा बन्नु मनमान का प्रतिहार मेन के लिए रात्रा सहर के समझ मा लड़ा होता है किन्तु जब बुरा सुनेगिह स्वयं उमक पर जाकर मनमान के लिए उमने सदा दण्डना बग्न है जब उसका सहर बह दूक-दूक हो जाता है और बह बुरा के बानों पर गिर पडता है। बहर भी उसे जाना ही समझ कर जाने नहीं ही भाषन द देते हैं। इस प्रकार उन्माद न समझा का एक भाग्यवानी हव प्रभुज बिना है जो कि बह क दुःख की भाषनाओं के प्रति निरहट है।

प्रभुज उन्माद का अंत होने प्रदर्शन के उन्मादों—विचारर एवत एवं प्रमापम के उन्माद का स्वरुप बिना देना है। उनमें कथानक का भाग्यवानी अंत भाषम की स्याना से हुआ है और इसमें बुरा सुनेगिह हाथ घम की स्याना से। अंत इन सभी का भाग्यवानी है और सभी में यह भाग्यवानी अंत बन्नु कना हुआ का अंत होता है।

भामा

प्रभुज कथानक का प्रारम्भ ही पत्र प्रसिद्ध म होता है। माना उ० अक्षि की पत्नी है। उसने उससे एक पुत्री की हा चुकी है किन्तु वह पति को पकि ही दे जाता है प्रेम नहीं। वह अक्षि के लिए सदा के प्रति अक्षिप्त होती है। सदा भी उदरी और अक्षिप्त होता है। इन दोनों के पारम्यिक भावर्ण का विविध मात्र मात्रम अक्षि को प्रत्य हो जाता है। वह सदा पर एक दिन प्रसिद्धि कर के विदह उठता है। इस घटना से ही प्रभुज कथा का पारम्यिक प्रारम्भ होता है। अक्षि सदा और माना पर विदह हो उठता है किन्तु पीछ ही उसे जाने बार्द पर परबालन होते लगता है। वह सदा और माना के सदा सदा कहता है किन्तु इसी समय माना के हाथ उसे अंत होता है कि वह सदा के साथ उसको त्याग कर प्रकत कहती है। अक्षि प्रथम इस अन्नादिज अक्षिप्त को समझ नहीं कर पाता किन्तु वह पीछ ही जाने की बा में वह माना की भाव की समझ दे देता है। पत्नी देर समय अक्षि के

मुख्य कथा में प्रासंगिक पटाका का कार्य करती है। सुनक पी, इरबक्य मिह नबाह साहब जाबि की कथाएँ मुख्य कथा में प्रकरी के समाप्त प्रयुक्त हुई हैं। मुख्य कथा में करामत जाली एवं राजा भैया की कथा का प्रयोग पटाका स्पानक के रूप में हुआ है। आनंद स्वामी की कथा केवल विचारों और विद्वानों का प्रचार करने के लिए ही बलात् लाई गई है। इससे कथानक की कलात्मकता को मारी जाचान पहुँचा है।

कथानक की बटनाएँ संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन नहीं कर पाई हैं। अधिकांश बटनाएँ लेखक की नेत्रों देखी जात होती हैं तथा उनमें इनकी सजी बत्ता एवं मानिकता का पाई है। कुछ स्वानों के वर्णन ऐसे अबस्य हैं जिन्हें लेखक ने देखा नहीं है जैसे बसोक होटल का वर्णन। किन्तु यह कोई ऐसी त्रुटि नहीं है कारण होटल का कार्यात्मक वर्णन भी किया जा सकता है।

उपन्यासकार कथानक की रोचकता का निर्वाह बत करके में एक सीमा तक सफल रहा है। आनंद स्वामी के प्रचारारामक कथे भाषनों ने कथा को बौद्धिक अबस्य बना दिया है किन्तु विद्वानों का दृष्टिकोण मौलिक एवं मनीष होने के कारण पाठक की उत्सुकता एवं कथानक की रोचकता म्यून नहीं होने पाती। रोचकता वृद्धि के लिए श्री उपन्यासकार ने कितनी ही प्रासंगिक कथाओं की मृष्टि की है। नाटकीय बंग सं मंगू के हृदय का परिवर्तन कुछ आदर्शबारी अबस्य हो गया है किन्तु न उसमें कथानक की रोचकता ही लपट हो पाई है और न ही वह आनी कवन तैती के कारण संभावना के क्षेत्र का ही उल्लंघन करने पाई है।

प्रस्तुत कथानक में गुण देष एवं समाज का सफल चित्रण हुआ है। मंगू की कथा तक जागरण का संदेश देनी है। कैलाश-यदुमा पुरुषोत्तम सेठ एवं रेणुका सरला रमेष एवं रविम जाबि की कथाएँ लकाकीत बेम की भावित और सामाजिक स्थिति को चित्रित करने के लिए प्रस्तुत कथानक में अतृप्त की गई है।

प्रस्तुत उपन्यास में मानव जीवन की पूर्ण झांकी तो नहीं है किन्तु उसकी विभिन्न अबस्थाओं का समावेश इसमें किया गया है वे अपने चित्रण की यथार्थता एवं गुरुमत्रा के कारण मानिक बन पड़ी है।

प्रस्तुत कथानक में उपन्यासकार ने एक समस्या को भी उठाया है। समस्या है दूभाट्ट अँब-नीच की जाबना का बंग किन्न प्रकार किया जा सकता है।

प्रस्तुत कथानक के माध्यम से उपन्यासकार ने दिखाया है कि छुड़ाहूँ का उन्मुक्त मन अथवा प्रताड़ना से कभी नहीं किया जा सकता। बाबू मुम पर कठिण हो चुका है। अब बमार का बमार कह कर दुस्कारन से उसका हृदय को बग में नहीं किया जा सकता बल्कि बाबू उसके हृदय को जीतने के लिए भी हार्दिक भावनाओं सहानुभूति एवं प्रेम भाँति की आवश्यकता है। मंगू बमार है। उसमें एक प्रपिनीय अल्प आयुवक का हृदय बहक रहा है। राजा साहब द्वारा भयभीत एवं अपमानित किए जाने पर वह तब नहीं होता बल्कि अपमान का प्रतिहार मन के लिए राजा साहब के समझ भा बड़ा होता है किन्तु जब कुँवर सुरेशसिंह स्वयं उसके बर बाहर अपमान के लिए उससे लमा पाचना करते हैं तब उसका साहस बह दूक-दूक हो जाता है और वह कुँवर के चलने पर गिर पड़ता है। कुँवर भी उसे बचना ही समझ कर अपने सही ही आशय से चले हैं। इस प्रकार उपन्यास में समस्या का एक आदर्शवादी रूप प्रस्तुत किया है जो कि बाबू के युग की भावनाओं के प्रति निकट है।

प्रस्तुत उपन्यास का अंत हूँ प्रेमचंद के उपन्यासों—विदियकर मदन एवं प्रेमामम के उपसंहार का स्वरूप दिया देता है। उनमें कथानक का आदर्शवादी अंत आशय की स्थापना में हुआ है और इसमें कुँवर सुरेशसिंह द्वारा धर्म की स्थापना से। अतः इन सभी का आदर्शवादी है और सभी में यह आदर्शवादी अंत बसन्त काया हुआ या प्राप्त होता है।

आमा

प्रस्तुत कथानक का प्रारम्भ ही धातु प्रतिभात में होता है। आमा डा० अनिल की पत्नी है। उसने उसके एक पुत्री भी हा चुकी है किन्तु वह पति का निकट ही रहे पाती है प्रेम नहीं। वह अनिल के दिन रम्य के प्रति आकर्षित होती है। रम्य भी उसकी ओर आकर्षित होता है। इन दोनों के पारस्परिक आकर्षण का किञ्चित् मात्र आभास अनिल को प्राप्त हो जाता है। वह रम्य पर एक दिन अस्वस्थित रूप से विचार उठता है। इस चिन्ता से ही प्रस्तुत कथा का प्लागहारिक प्रारम्भ होता है। अनिल रम्य और आमा पर विचार ही उठता है किन्तु धीमे ही उस अपने कार्य पर परचात्ताप होने लगता है। वह रम्य और आमा से लाना मँदना चाहता है किन्तु इसी समय आमा के द्वारा उसे प्राप्त होता है कि वह रम्य के साथ उसका त्याग कर जाना चाहती है। अनिल प्रथम इस अत्यासंगित आघात को सहन नहीं कर पाता किन्तु वह धीमे ही अपने को बग में कर आमा को जाने की आमा दे देता है। लोड़ी देर लकाक घादि के

बाद विबाध के कारण कथा कुछ समय के लिए स्थिर होकर पुनः एक घटके के साथ तीव्रगति से अपसर होती है। जामा रमेश के साथ बसती जाती है। जब कथा पूर्ववर्ति (Flush back) चेतना प्रवाह (Stream of conscio usness) एवं अंतर्दृष्टि के आभय बनाकर रेंगती हुई आगे बढ़ती है। बाह्य दृष्टि से प्रस्तुत कथा का विकास अत्यंत मंद गति से होता दीख पड़ता है किन्तु वास्तव में उसका अंतप्रमाण हो चुका है। उसी बाह्य वस्तुनिष्ठ वयत के स्वान पर मनोजवत को अपना क्रीड़ा क्षेत्र बना लिया है। रमेश के साथ जामा बसती तो गई किन्तु अपने साथ पूर्व स्मृतियों एवं अंतर्दृष्टियों का आचार केती गई और यही दोनों बस्तुएँ वह अनिल को समीप भी छोड़ गईं। इन्हीं के माध्यम से कभी कथा बात प्रतिबाध की अवस्था से प्रारम्भिक अवस्था में जा पहुँचती है तो कभी प्रारम्भिक घटना की तैयारी एवं कभी निष्कर्ष पर। तात्पर्य यह कि कथा की गति अब किञ्चित् बढ़ हो गई है वह अब सीधी न चलकर सर्व पति से रेंगती हुई अंत की ओर लपटा कुछ मंत्र और कुछ ठिठकती हुई पति से पटुच रही है। वास्तविक कथा बाह्य घटना से ही प्रभावित है अतः उसका अन्त भी बाह्य घटना से ही होता है। कथा मनोजवत से जब बाह्य संसार की ओर झटकर खेजना चाहती है तभी तभीन घटना का अन्त होता है। जामा रमेश के साथ कितने ही स्वानों पर झूमती फिटी किन्तु न उसे मानसिक भाँति की उपलब्धि हो सकी न ही वह रमेश के समस्त आत्म-समर्पण ही कर सकी और न ही वह अनिल को मूक सकी। वह इसी उच्चापोह के विवर्त में जककर फाट रही थी कि इसी समय उसे भाव होता है कि वह गर्भवती है। इस विचार मात्र से ही वह बय से नाप उठती है किन्तु मय से पत्नी समाप्त नहीं होता। क्यासमय रमेश के यहाँ ही जामा के पुत्र उत्पन्न होता है। अनिल डाक्टर के रूप में उस समय बुलाया जाता है कथा अब चरम सीमा पर पर्यार्जन कर चुकी है। कथा यहीं में घनी घनी अंत की ओर जाती दीख पड़ती है। कुछ दिनों के पश्चात् जामा पुत्र को लेकर अमर्यादित रूप से अपने पति अनिल के यहाँ पुनः पहुँच जाती है। विदांत बर्षों के पश्चात् कथा समाप्त हो जाती है। अनिल पुनः जामा को अपनी पत्नी की भाँति स्वीकार कर लेता है।

जैसा कि हम प्रथम ही कह चुके हैं कि जामा एक शुद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं है बल्कि इसमें मनोवैज्ञानिक विदांतों के प्रचार को ईदना व्यर्थ ही होगा।

जामा अनिल एवं रमेश की त्रिकोणात्मक आधिपारिक कथा के साथ

साथ गंधू की प्रासंगिक कथा भी बसती है। यह कथा-सूत्र प्रधान सूत्र की गति देने और उसके दूसरे पक्ष पर प्रकाश डालने का कार्य करती है।

प्रस्तुत उपन्यास कुछ खरिब प्रधान उपन्यास है। अतएव इसमें कथानक एवं घटना-प्रसंगों का आकर्षण कम है। किंतु आंतरिक स्पर्शों से सिद्ध होने के कारण कथानक में अंत तक प्रवाह एवं आकर्षण रहा है। यही कारण है कि घटना चमत्कार से विजात रहित होने पर भी प्रस्तुत उपन्यास में पर्याप्त रमणीयता एवं सबीबता आयी है।

प्रस्तुत उपन्यास बौद्ध के खरिब प्रधान उपन्यासों सुमीठा एव सुखदा एवं रवि बाबू के उपन्यास 'बर-बाहर' का स्मरण दिखाने देता है। 'रविबाबू' ने अपने उपन्यास 'बर-बाहर' में 'बर' (पति पत्नी) में 'बाहर' का प्रवेश करमा है जिससे 'बर' विरुद्ध हो उठा है और यदि सीधीप बाहर का प्रतीक पसायन न कर जाता तो बर के टूट जाने की आशंका थी। किंतु प्रस्तुत उपन्यास में न तो 'बर' टूटा है और न 'बाहर' के प्रति उसे बंद ही किया गया है। 'बर' (ब्याभा और अतिक) और 'बाहर' (रमेश) दोनों परस्परपेक्षाशील हैं। यही प्रस्तुत उपन्यास का उच्चारण है किंतु यह निष्कर्ष वास्तविक जीवन से कुछ हटा हुआ बद्रस्य है।

ज्ञान पानी

प्रस्तुत उपन्यास भी एक ऐतिहासिक उपन्यास है। मुख्य कथानक अब से कोई पांच सौ वर्ष पूर्व बटिठ काठियावाड़ के कच्छ प्रांत के दो स्वतंत्र राजाओं के पारस्परिक संघर्ष पर आधारित है। अन्य कथानकों की भांति इसका कथा विकास भी सामान्य पद्धति से हुआ है। इसमें कथा विकास की पांचों अवस्थाएँ स्पष्ट परिसरित होती हैं। मायावों और ठाकुरों के राजाओं भीम जी एवं जाम राजनसिंह के परिषय से कथा का ब्यावहारिक प्रारंभ होता है। भीम के पुत्र जाम हम्मीर से जाम राजन सिंह हादिक द्वेष मानता है। जाम हम्मीर राजनसिंह का घोले से बच कर देता है। राजनसिंह हम्मीर का बच करने के पश्चात् उनके पुत्रों का भी संशय करने का प्रयत्न करता है किंतु छण्ठर बूटा नामक जाम हम्मीर का विद्वस्त नौकर उनके दोनों पुत्रों संपार जी और सायब जी को गुप्त रूप से लेकर कच्छ त्यागकर भाग खड़ा होता है। यहीं मुख्य कथा की निष्पत्ति हो जाती है। छण्ठर बूटा कुमारों की रक्षा करता हुआ गुजरात की ओर गुप्त रूप से अग्रसर होता है। इसी समय राजनसिंह के सैनिक कुमारों का पता लगाते हुए बीच में ही आ पहुँचते हैं। इन सैनिकों से मियाणा मियां

बपने पुत्रों की बलि देकर दोनों कुमारों की रक्षा करता है। इसी समय मार्ग ही में ठाकुर आबिनासिंह की पुत्री से बड़े कुमार एवं बीरसिंह की कन्या से छोटे कुमार का विवाह हो जाता है। विवाह कार्यों से निवृत्त होकर दोनों कुमार छण्डर के साथ पुन मुठरूप से गुजरात के लिए चल पड़ते हैं। वे सनी अबरोधों का धैर्यपूर्ण करते हुए सकुसुम गुजरात पहुँच जाते हैं। यहाँ गुजरात के मुस्तान मुहम्मद बैगड़ा से इनका परिचय एक आकस्मिक घटना के द्वारा होता है। मुस्तान सिंह का शिकार करने जाते हैं किन्तु उनके प्राम संकट में पड़ जाते हैं। उस समय उनकी प्राण रक्षा दोनों कुमार ही करते हैं। प्रसन्न होकर वह कुमारों को सैनिक सहायता देते हैं मुस्तान से सैनिक सहायता लेकर कुमार, जाम राजासिंह पर आक्रमण करते हैं और उसे बन्दी कर लेते हैं। यही मुख्य कथा की चरम-सीमा होती है। उपसंहार में राज लंघार की का राजा होना और राजासिंह को क्षमा प्रदान करना बखि जा जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत कथानक में जाम राजासिंह राज लंघार एवं छण्डर बूटा की कथा आधिकारिक है। इस कथा को सहायता देने के लिए कितनी ही प्रासंगिक-घटना-प्रकटी कथाएँ भी प्रस्तुत कथानक में आ गई हैं। मियाना मियाँ एवं आबिनासिंह की कथाएँ प्रस्तुत कथानक में पताका का तथा सिब की गुहाणा बार्डि पार्वती बार्डि, बाजूषाया के सेठ बार्डि की कथाएँ प्रकटी का कार्य करती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में गुजरात के मुस्तान मुहम्मद बैगड़ा का चरित्र भी बृत्वाबममान बर्मा की 'मृगययनी' के महामुब बर्मा के चरित्र का स्मरण बिना देना है। 'मृगययनी' एवं प्रस्तुत उपन्यास का कथानक एक ही काल से संबंधित है किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि प्रस्तुत कथा कण्ठ से गुजरात और गुजरात से कण्ठ तक ही सीमित है। जबकि 'मृगययनी' की कथा का क्षेत्र व्यापक है। और उसी में अन्य स्वानों के कथा सूत्र भी आकर मिलते और विद्युत्ते पड़ते हैं।

इस उपन्यास में उपन्यासकार न भूमिका में स्वयं ही कइ है 'यह उपन्यास सामन्ती युग के रक्त मरे दिनों की एक रोमांचकारी तथ्य ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। उपन्यास में कण्ठ के प्रसिद्ध लंघार की का चरित्र व्याख्यात है। इस समय तक भी कण्ठ का कोई सांभोत्साय बण्डा इतिहास उपलब्ध नहीं है। बांधे पत्रेदियर की पांचवीं शिख में कण्ठ के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला गया है। तथा आनिपोनीत्रिक सर्वे की रिपोर्ट में योड़ा घूट

पुत्र वर्धन किया है इमियट ने 'हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोडैज माई इट्स' और 'हिस्टोरियन्स' नामक इतिहास ग्रंथ में कच्छ राज्य का योड़ा वर्धन किया गया है। मिसेत्र पास्टन्स के पत्र और 'रेडम स्केचेज' नामक ग्रंथ में कच्छ का यत्किञ्चत विस्तृत वर्णन है। भारतीय लेखकों में आत्माराम केसब जी त्रिवेदी ने एक छोटा सा 'कच्छ का इतिहास' ग्रंथ गुजराती में लिखा है। इन्हीं सब ग्रन्थों के आधार पर इस उपन्यास की आधार भूमि बनाई गई है। श्री केसब जी जोशी ने संसार जी के चरित्र पर आधारित एक उपन्यास भी लिखा था। उसमें कुछ दस्त कथाओं का भी आशय लिया था तथा कुछ कल्पना का भी उपयोग किया था। इसके बाद टक्कर नारायण किशन जी ने एक उपन्यास 'कच्छनो कातिकेय' नामक लिखा था। इन्हीं सब कथा वस्तु पर आधारित यह उपन्यास लिखा गया है। विशेषकर अतिम ग्रंथ को आश्रय माना गया है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास का कथानक एक सीमा तक ऐतिहासिक है।

धुगुला के पक्ष

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक का व्यावहारिक प्रारम्भ जुगनु नाम के एक अक्सरपारी भंगी के प्रारंभिक जीवन के परिचय से होता है। इस परिचय के पश्चात् ही कथानक उस व्यक्ति के जीवन के चारों ओर बहकर उगावा हुआ अक्षर होता है। जुगनु की यह कथा अपनी स्वाभाविक पति से बटनार्यों के वारधाचक्र को पार करती हुई आगे बढ़ती है। किन्तु धीमे ही जुगनु की आनिक वसा चित्तमीय हो जाने के कारण इस कथा का प्रवाह सिबिल पड़ जाता है। कारण इसके निकलने के पश्चात् जुगनु अपने जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग टटोड़ने लगता है। इसी समय उसका परिचय अपने एक पुराने मित्र सोमाराम से होता है। जुगनु की दयनीय स्थिति को देखकर सोमाराम उसे आश्रय प्रदान करता है। सोमाराम हिस्की की कांग्रेस पार्टी का एक प्रभावशाली सदस्य है। सिधित और दूरदर्शी किन्तु अस्वस्थ रहने के कारण शरीर से विवध। ऐसे अक्सर पर जुगनु को उसका आश्रय प्राप्त हो जाता है। सोमाराम के प्रभाव का जुगनु पूर्ण लाभ उठाता है। सोमाराम भी स्वयं अस्वस्थ होने के कारण अपने स्थान पर जुगनु को ही आगे बढ़ाता है। यही धर्म जुगनु अपने आश्रयदाता सोमाराम के व्यक्तित्व पर इस प्रकार हावी हो जाता है कि सोमाराम का व्यक्तित्व उसके व्यक्तित्व के नीचे दब जाता है। जुगनु अपने भ्रष्ट आचरण का परिचय यहाँ भी देता है। यह सोमाराम की पत्नी पद्मा की ओर आकर्षित होता है। और यह आकर्षण निरवप्रति बढ़ता ही

जाता है। इसी समय एक भोज जुगनू शोमाराम श्री पूर्व शक्ति प्राप्त कर मिनिस्टर बन बैठता है। जो दूसरी ओर शोमाराम अधिक अस्वस्थ हो जाने के कारण पद्मा को साथ ले निकलिसा करने मसूरी बना जाता है। मसूरी में ही उसका स्वर्णवास हो जाता है। पद्मा निराश्रय रह जाती है। अन्ततः उसे जुगनू की हया का आकांक्षी होना पड़ता है। जुगनू की आश्रित होने के कारण पद्मा को बियस होकर उसके समस्त आराम-समर्पण करना पड़ता है। किंतु धीम धी जुगनू पद्मा को मसूरी में ही छोड़कर स्वयं पुन दिल्ली भौट जाता है। यहाँ भी वह अपने दूषित चरित्र का परिचय देता है। पद्मा ऐसी साध्वी रमणी के सतीत्व को भंग कर वह उसे भी प्रभावित करता है।

मंत्री हो जाने के परभाव दिल्ली में जुगनू की मान प्रतिष्ठा निरय बढ़ती जाती है। शोमाराम की मृत्यु के परभाव उसका वैयक्तिक चरित्र और भी पतित हो जाता है। पद्मा का अष्ट कर उसकी काम बुभुक्षा और तीव्र हो जाती है। बही स्पष्ट करने के लिए गोमती की कथा उपन्यासकार ने संयोजित की है। गोमती की कथा का अंत पद्मा से भी अधिक कष्ट होता है। वह जुगनू द्वारा अष्ट हो जाने के कारण एवं पति द्वारा आमानित होने के कारण आराम-हत्या परिवर्तन नहीं होता। मंत्री होने के कारण उसे तमर के कुछ प्रतिष्ठित भक्तियों का सहयोग प्राप्त हो जाता है। वह उनके सहयोग से एक संभ्रांत परिवार की सुविधित कन्या शारदा से विवाह करता चाहता है। अपन इस प्रयास में उसे सफलता भी प्राप्त होती है। किंतु यहीं से कथा बड़ी तीव्रपति से भयान होती है। शारदा का जुगनू से विवाह हो के पूर्व ही गौडकीय बौन से कथा क समाप्ति हो जाती है। अर्थात् जुगनू से विवाह होने का एता वा इसी समय गौडकीय बंग से उसका संबंध होने का पता चल जाता है। यही से कथा एकदम मुड़ जाती है। जुगनू विवाह मरण से माग लड़ा होता है और शारदा के अत्यायव परशुराम क साथ उसका विवाह सम्पन्न हो जाता है। यही गौडकीयता की चरम सीमा है। बान्धव म यह विवाह कथना ही इस गौडकीय बटना के समाप्ति का प्रधान उद्देश्य रहा है किंतु इस उपाय के निष्प-यज्ञ को मारी आपात पहुँचा है। चरम सीमा के परभाव उपसंहार का क्रम इनमें भी है।

कथा से स्पष्ट है कि आधिकारिक कथा जुगनू की है। उनी के चरित्र के गुण दोषों को निगारने के लिए दिल्ली ही अन्य प्रामाणिक कथाओं का सन्तुष्ट बनाया गया है। उपरोक्त एवं गामनी परशुराम एवं शारदा आदि की कथाएँ

प्रस्तुत कथा में पठाका का कार्य करती हैं। सारवा की प्रासंगिक कथा तो आधिकारिक कथा की अपने में पूर्ण रूप से अकड़ कर इतनी त्वष्ट के साथ उसे भीचती है कि वह अप्रत्याशित रूप से मुड़ जाती है और यही प्रासंगिक कथा संत में प्रदान होकर कथा का उपसंहार करती है। काका फकीरखंद एवं नवाब की कथामें इसमें पठाका स्वानक का कार्य करती है। यह दोनों ही कथाएँ आधिकारिक कथा के विकास में पूर्ण सहामता देती हैं। फकीरखंद और नवाब की कथा ही जुगनु की कथा में उल्लेख बढ़ाकर उसे नित्य नबीन मार्ग प्रदर्शित करती है।

जुगनु की आधिकारिक कथा के महत्व के साथ-साथ प्रत्येक पठाका एवं प्रकटी कथा का भी अपना स्वतंत्र महत्व है। यदि फकीरखंद की कथा धनिक वर्ग के उन कुत्सित कार्यों को निराकरण करती है जिनके द्वारा वे अपने स्वार्थ साधन के लिए राजतंत्र में उमटकेर किया करते हैं तो विद्यासागर नियोगी की कथा चुनाव के विभिन्न हथकंडों का परिचय देती है।

कथाकार प्रस्तुत कथा की रोचकता की रक्षा करने में किसी सीमा तक सफल तो रहा है किंतु जिन स्थानों पर वह सिद्धांतों की आलोचना^१ प्रचार^२ सबका विद्वता का प्रदर्शन^३ करने लगा है उन स्थानों पर कथानक का प्रवाह विचित्र हो गया है। और उसकी रोचकता को भी महत् धावात पहुँचा है। नाटकीय एवं अप्रत्याशित घटनाओं के बाहुस्य के कारण यत्र-तत्र कथा संभावना के क्षेत्र का उल्लंघन करने लगी है। नाटकीय बंध से खोभायम के माध्यम से जुगनु का सम्य समाज में प्रवेश तो समझ में आता है किंतु उस समाज में पूर्णरूप से बुझमिछ जाने पर भी उसकी कसई का न खुम्भाना कुछ बुद्धि संगत नहीं प्रतीत होता। कम से कम पद्मा जैसी बिदुषी मारी को उसकी प्रत्येक भेट्टा से परिचित है—का उसके समझ इतनी धीमटा से आरम-समर्पण कर देना उचित नहीं ज्ञात होता। जब गोमती ऐसी अशिक्षिता स्त्री भी जुगनु को प्रथम दृष्टि में ही पहचान गई थी तब क्या कारण था कि पद्मा जैसी सञ्चरित्र एवं बिदुषी उस न पहचान सकी! जुगनु की कथा को संयोगों एवं अप्रत्याशित घटनाओं के माध्यम से एकदम चरम सीमा पर पहुँचा देना और वहाँ से पुन एक अप्रत्याशित नाटकीय घटना के माध्यम से उसे पुन लड्ड में फँक देना कथानक की ककारमक महत्ता को झूठ कर देता है। मंत्री एवं नगर का एक प्रभावशाली व्यक्ति बन

१ जुगनु के पंच पृष्ठ २३६-३८।

२ जुगनु के पंच पृष्ठ २३६-३८।

३ जुगनु के पंच पृष्ठ १९४-९७।

जाने के पश्चात् पुनः को केवल इसी कारण से कि उसके यंगी होने के रक्ष्य का उद्घाटन हो गया है, मुख्य कथा से उतका पकापन करा देता व्यावहारिक नहीं बात होता। यदि पुनः के पकापन की इस माटकीय घटना को संबन्ध में किञ्चित् मनोविज्ञान का कथाकार ने आशय किया होता तो कथा का यह अंग संभावना के क्षेत्र का उन्मूलन करापि न कर पाता। एव हो स्मार्तो पर पूर्व संकेतो (Dramatic Ioy)^१ के प्रयोग के कारण कथात्मक ही कलात्मकता एवं रोचकता बढ़ी है।

यहाँ तक कथात्मक की मौलिकता का प्रश्न है उसके प्रस्तुत करने में भले ही कोई मौलिकता न हो किन्तु प्रतिपाद्य विषय सर्वथा मौलिक है। इस उपन्यास को पूर्व घायल ही किसी अन्य उपन्यास में एक यंगी को जीवन की इन अनेक परिस्थितियों में डाल कर किञ्चित् दिया गया हो। स्वतंत्रता व पूर्व यंगी के जीवन की कल्पना भी क्या हो जा सकती थी। किन्तु इसमें भी पुनः यंगी बन कर नहीं बरत् मुंशी (बायस्क) बनकर उभरति करता है अतः उसके जीवन के परिपामर्ष के यंगी जीवन का विशेष चित्रण नहीं हो पाया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कथाकार प्रस्तुत कथात्मक को माध्यम से किन तथ्यों का उद्घाटन करना चाहता है। वास्तव में वह बाब के घायल की बढ़ती हुई पारसो एवं जनसंघ के नाम पर अनसंरवाही स्थितियों का घुट बनाकर मम मूल्य करना चित्रित करना चाहता है। उन्मो ल्यट्ट सभ्यो में कहा भी है बेमो लेखी का क्या ही बेहूरा और अईमानी है मरा हुआ ठीका है यह पुनाव का सिस्म। जिसके लिए दुनिया भर के अनीतिपूलक काम घूम-काम से किए जाते हैं। दुनिया भर की घुंझापर्यो करके पुनाव भीते जाते हैं और तब अपने का जनता का पुना हुआ प्रतिनिधि बहुकर बेहमाई की सीमा लांघ भी जाती है। 'पक्षतर्षो वा दृक नाटी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुणों के प्रतिनिधि को अधिकार मिलता है। जाहे उसमें योग्यता हो या नहीं।'^२ इन्हीं दोष को स्पष्ट करने के लिए ही कथाकार ने प्रस्तुत कथात्मक एवं चरित्र को सामने ला लड़ा किया है।

प्रस्तुत कथात्मक में वर्तमान राखनीतिक जीवन पुनाव यहाँ गुटबाजियों आदि का बड़ी मूर्खता एवं यथार्थता के साथ चित्रण किया गया है। यह मस्य है कि कथाकार ने जीवन की इन विविध अवस्थाओं को दूर से ही देखा है तथा अन्तः उनमें एक और मूर्खता एवं यथार्थता या पाई है वहीं दुमरी कोर अज्ञान

कला एवं अतिनाटकीयता का भी प्रवेश हो गया है। किन्तु यह सत्य है कि कला-कार प्रस्तुत कथानक के माध्यम से एक सीमा तक वर्तमान युग समाज एवं एक वर्ग विशेष का चित्रण करने में सफल रहा है। वास्तविकता तो यह है कि प्रस्तुत कथानक वर्तमान सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों एवं उनसे उद्भूत बीबन-कुंठारों के संघर्ष में व्यक्ति की नित्य परिवर्तित होती हुई वास्तवों एवं सञ्जनित उसकी दुर्बलताओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ रहा है।

सुप्रास

प्रस्तुत उपन्यास का व्यावहारिक प्रारम्भ एक स्त्री तन्त्र्य वैज्ञानिक जोरोवस्की की चंद्रलोक की सफल यात्रा के विवरण से होता है। यह स्वयं अपनी प्रसिद्ध किताब की चंद्रलोक में झौटने के पश्चात् वहाँ की सफल यात्रा की कथा सुनाता है। सब यही कथा धर्मे धर्मे विस्तार पाते लगती है। अगम्य खानों' धीरे-धीरे अन्धाय तक' जोरोवस्की अपनी चंद्रलोक की यात्रा का ही विवरण सुनाता है। इस प्रधान कथा के साथ-साथ अमेरिकन वैज्ञानिक स्मिथ की कथा भी उलझती हुई चलती है। चंद्रलोक की यात्रा का विवरण समाप्त होते ही कुछ दूर कर जोरोवस्की कुछ अन्य वैज्ञानिकों के साथ दक्षिणी ध्रुव की यात्रा पर चल देता है।^१ इस यात्रा में उसकी प्रसिद्ध किताब भी उसके साथ है। दक्षिणी ध्रुव प्रदेश की इस यात्रा में भी जोरोवस्की की प्रधान कथा के साथ-साथ स्मिथ की प्रासंगिक कथा भी पुनः उलझती हुई चलती है। 'बहु गर्भ अमिमान' में अन्धाय स्मिथ की कथा को हृदय स्वतंत्र रूप से विकसित हाते हुए देखते हैं। इन दोनों कथाओं के अतिरिक्त किन्हीं ही अन्य सहायक एवं स्वतंत्र कथाएँ भी इन दोनों कथाओं से उलझती हुई चलती हैं। कई स्थानों पर स्वतंत्र कथाओं के कारण प्रधान कथा अवरुद्ध भी हो गई है। उपन्यास के अन्तिम चर्च में आकर जोरोवस्की एवं स्मिथ की प्रधान कथा मिलिष्ट हो गई है। 'गूढ़ पुरुष' धीरे-धीरे अन्धाय तक आते-आते यह प्रधान कथा समाप्त हो गयी है। और इसके स्थान पर भारतीय वैज्ञानिक की कथा प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रधान कथा के साथ-साथ त्रिबारी की सहायक कथा भी चलती है। उपन्यास का अंत भी गूढ़ पुरुष एवं त्रिबारी की कथा से ही होता है। भारतीय वैज्ञानिक 'गूढ़ पुरुष' के अन्तर्गत के पन्नात् उसकी पुत्री प्रतिभा का त्रिबारी

से विवाह हो जाता है। इस प्रकार यह अंतिम दोनों कथार्थ अंत में परस्पर संयुक्त हो जाती हैं और यही कथा समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक का सबसे बड़ा दोष है उसका विमृष्ट बलिष्ठ होना। उपन्यास में तो सर्वथा स्वतंत्र कथानक है जिनमें किसी प्रकार का पीर्वापर्य नहीं है। इसके अनिश्चित इसमें कितनी ही अन्य कथार्थ भी आती और संबंध नहीं है। जिनमें किसी प्रकार का पीर्वापर्य नहीं है कथानक के इस विषय के कारण प्रस्तुत उपन्यास किसिम बटनावों का संग्रह सा ज्ञात होता है। यह बटनाय भी परस्पर संयुक्त न होकर पृथक-पृथक है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक सबका मौलिक है। इसमें संदिह नहीं कि उपन्यासकार को प्रस्तुत उपन्यास लिखने में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा होगा। ज्ञान को अधिक से अधिक कथानक में छुड़ देने के मोह ने अन्य प्रमुख उपन्यासों की भांति इस उपन्यास के कथानक को मने ही विकारा विद्या हो किन्तु उसकी मौलिकता में किंचित मात्र भी संदिह नहीं किया जा सकता। जहाँ तक मुझे ज्ञात है हिंदी में यह प्रथम वैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें ब्रह्मलोक एवं उत्तरी ध्रुव की भाषा का वर्णन इतने विस्तार के साथ किया गया है। नबीन से नबीन वैज्ञानिक प्रगतिषों का समावेश भी प्रस्तुत उपन्यास की अपनी मौलिक विशेषता है।

विज्ञान ऐसे नीरस विषय में भी रस संचार करके लेखक उपन्यास की रोचकता की अल्प तक रक्षा करने में पूर्ण सफल रहा है। वैज्ञानिक एवं राजनीतिक विचारधारा के बाल्याचक्र में क्या ही कथानक भटकने लगता है त्यों ही उपन्यासकार अपनी प्रबल कल्पनाशक्ति के माध्यम से उसे पुनः सरस बनाकर एक नूतन मार्ग पर ला लड़ा करता है। यद्यपि पुनः पुनः नबीन कल्पनाओं के प्रयोग ने कथानक बिलर गया है, किन्तु हमसे उपन्यास की रोचकता न्यून नहीं हुई है।

प्रस्तुत कथानक की सबसे बड़ी विशेषता उमक समन्वय में है। इसमें विज्ञान राजनीति एवं साहित्य का स्पष्ट समन्वय किया गया है। उपन्यासकार

१. परिचयी एशियाई नबीन साहित्य का उदय पृष्ठ १०६-१०७। धनहृतज्ञात अल अरबी (पृ० १०८ से ११०) की तितारे (पृ० ११०-१११) तक उपन्यास सवि सम्मेलन (पृ० १२१-१२४) विरल समयाओं की उत्सवों इण्डोनेशिया माटी दाहसनहावर का पत्र नए गाल का वक्त (पृ० १४०-१४३) का साहित्य अकादमी कथार्थ इमी प्रकार की है।

ने प्रस्तुत उपन्यास की रचना ही साहित्य एवं विज्ञान के समन्वय के लिए की थी।^१ उसने भूमिका में स्पष्ट कहा है 'बिना यति से विद्वान् वर्तमान में आगे बढ़ रहा है उसे देखते हुए यही उचित है कि साहित्य में प्राविधिक और वैज्ञानिक पुट अधिक रचना आय।'^२

प्रस्तुत उपन्यास में वर्तमान मानव जीवन की कितनी ही प्रमुख समस्याओं को भी उठाया गया है। आज के युग का सबसे उच्चतम प्रश्न है कि विज्ञान को मानव मान के लिए मुक्तिदूत बनाया जाय या मृत्युदूत। इस प्रश्न का उपन्यासकार ने भारतीय वैज्ञानिक की पुत्री प्रतिभा के मुँह से स्पष्ट उत्तर दिलाया है। ठिठारी के यह प्रश्न करने पर कि तुम्हारे पापा भारत सरकार की सहायता क्यों नहीं करते प्रतिभा उत्तर देती है 'पापा तो विज्ञान को मनुष्य के लिये मृत्युदूत नहीं बनाया चाहते। वे तो विज्ञान को मानव मान के लिए मुक्तिदूत बनाया चाहते हैं।'^३ यह छांति की शक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति मानते हैं। आचार्य अनुरसेन भी ने भारतीय वैज्ञानिक को ही सर्वश्रेष्ठ दिखलाकर यही सिद्ध करना चाहा है कि बड़ी बेस संसार में सर्वश्रेष्ठ हो सकेगा जो छांति के पथ का अनुसरण करेगा। इसी प्रकार की कई अन्य उच्चतम समस्याओं को भी उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में उठाया है। जन संख्या वृद्धि^४ पापियों के सुभार^५ हिंसा और माहिंसा की समस्या आदि पर भी उपन्यासकार ने इसमें विचार किया है।

जब रहा संभावना भवना सत्यता का प्रश्न। क्या प्रस्तुत उपन्यास की घटनाएँ संभावना के क्षेत्र का उद्भवन तो नहीं करतीं। यदि हम साधारण दृष्टि से देखें तो इसमें ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं जिन्हें हम असम्भव कह सकते हैं किन्तु उपन्यासकार ने उन घटनाओं को विज्ञान के उस गहरे रंग में रंग दिया है जो विकसित होने पर भी संरक्षण और असंगत होने पर भी सुसंगत प्राप्त होती हैं। उपन्यासकार ने अपनी सर्वत्र कल्पना शक्ति का आश्रय लेकर स्वानुभव से परे स्थानों एवं वस्तुओं का बड़ी सफरता के साथ विषय किया है। यह एक वैज्ञानिक उपन्यास है। इस उपन्यास का एक और भी उद्देश्य है। इस कथा के व्याज से उपन्यासकार सरल और कठिन भाषा में जन साधारण को विज्ञान के

१ धर्मपुत्र आचार्य अनुरसेन व्यक्तिगत और विचार सुनकार नाथ कपूर ९ अगस्त १९३९।

—२ अग्रत भूमिका पृष्ठ २१।

३ अग्रत पृष्ठ २७३।

४ अग्रत पृष्ठ २७४।

५ अग्रत पृष्ठ २८८।

नवीन आविष्कारों से अवगत कर रहा था। जिस प्रकार कविता में काँटा छम्मित शैली से नीति और धर्म का उपदेश किया जाता है उसी प्रकार कथा-कथ से नई चीजों का परिचय प्राप्त करवाया जाता है। कथा तो बहाना मात्र है उससे कोरे वैज्ञानिक वर्णन का स्थापन दूर हो जाता है। इस उद्देश्य के साथ-साथ लेखक ने विज्ञान की वर्तमान ओर नवी प्रगति का भी आवास देना चाहा है। नवी प्रगति की जो उपन्यासकार ने कल्पना की है उसी की सरयता एवं संभावना पर विचार करना स्रेय रह जाता है। उपन्यासकार ने आज की वैज्ञानिक प्रगति को अपनी कल्पना का आधार बनाया है। उस ओर अमेरिका बसों ही ओर से वैज्ञानिक की यात्रा के प्रयास चल रहे हैं। अंतरिक्ष यात्रा के प्रयास तो दोनों के सफल भी हो चुके हैं। ऐसी रचना में लेखक ने जो कल्पना की है, वह असम्भव नहीं कही जा सकती। अब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कथात्मक कथी से भी संभावना के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करने पाया है। कथा के जो प्रसंग असम्भव ज्ञात भी होते हैं वे भी विज्ञान का कथम चारण कर लेने के कारण संदिग्धता का आभास करने से सुरक्षित हैं।

सद्मात्रि की सृष्टानें

प्रस्तुत उपन्यास का प्रारम्भ ही एक सटके के साथ होता है। तारा की नाम का एक मुकक पावल अवस्था में लक्षपति सिवाजी को मिलता है। सिवाजी उसकी प्राण रखा करते हैं और उसे अपने साथ से लेते हैं। यह कथा यहाँ तक जाती है। इसके आगे सिवाजी के प्रारम्भिक जीवन की कथा प्रारम्भ हो जाती है। किन्तु कठिनाइयों से सिवाजी की माता ने उसका काकल-पालन किया किन्तु प्रकार सिवाजी ने विवाह प्राप्त की किन्तु प्रकार बुद्ध रामदेव सत्याजी से उन्होंने शस्त्र संघापन में विपुलता प्राप्त की आदि का वर्णन ताराजी मसूरी (अध्याय १०) तक प्रारम्भ होता है। अब ताराजी भी सिवाजी के साथ कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। सिवाजी की सैनिक सक्ति नियम प्रति बढ़ती जाती है। ताराजी के प्रताप से वे अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते जाते हैं। इसी समय मुगल सम्राट औरंगजेब से सिवाजी का संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। संघर्ष बढ़ता जाता है। औरंगजेब सिवाजी को समाप्त करने की कितनी ही योजनाएँ बनाता है किन्तु असफल रहता है। उसे इस प्रयास में अपना नई अनुभवों सरदारों से भी हाथ बँटा पड़ता है। औरंगजेब अब दूरी पूर्वना की आल बल्ला है। सिवाजी मिर्जा राजा जयसिंह के कठने में औरंगजेब से मिलने आगम जाते हैं किन्तु आगम

में औरंगजेब उनका अपमान करता है और उन्हें बंदी बना लेता है। शिवाजी यहीं से अपनी मुक्ति के लिए प्रयास प्रारम्भ कर लेते हैं। औरंगजेब का रागार में ही उन्हें समाप्त करना चाहता है। दोनों ही अपनी कुटिल चालें चलते हैं। अंत में शिवाजी एक दिन मिठाई के बॉच में बैठकर मुत्तक्य से बंदीगृह से पलायन कर पाते हैं।

समस्त बचपनों का अतिक्रमण करते हुए गुप्त रूप से शिवाजी अपने राज्य में सकुशल पहुँच जाते हैं। महाराष्ट्र में आकर वे औरंगजेब के राज्य की पट्टे हिकाना प्रारम्भ कर लेते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का अंत सिहपट्ट की विजय से होता है। सिहपट्ट पर विजय प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने बीड़ा रखा था। उस बीड़े को तानाजी ने ही पहूँचा दिया था। तानाजी गढ़ पर विजय तो प्राप्त का क्रेते हैं किन्तु उनकी मृत्यु विजय के पश्चात् किसे में ही हो जाती है। अपने इष्टी बीर सेनापती को मृत्यु देखकर शिवाजी के मुख से अनायास ही निकल जाता है 'गढ़ जाला, पर सिंह गया।'^१

इसमें अधिकारिक कथा शिवाजी एवं औरंगजेब की है। इस प्रधान कथा को अपसर करने के लिए अहमदशाह, अफजल खान, शाहस्ताखान तानाजी मिर्जा यवा अयासिह, उदयभानु बाबि की प्रासंगिक कथाओं का भी प्रयोग हुआ है। शिवाजी की प्रधान कथा के साथ तानाजी की कथा पठाका का एवं अन्य कथाएँ प्रकटी का कार्य करती हैं। यान अस्तुस्वयम की कथा यद्यपि प्रकटी की शक्ति प्रकृत हुई है किन्तु कथा में संघर्ष को बढ़ाने एवं सम्पूर्ण कथा के मूल में रहने के कारण प्रस्तुत कथा-पठाका स्वात्मक का कार्य करती है।

प्रस्तुत उपन्यास शिवाजी के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं से सम्बन्धित है। वास्तव में प्रस्तुत उपन्यास की हम आचार्य जी के 'आसमयीर' नामक उपन्यास का पूरक कह सकते हैं। किन्तु यह उससे एक बात में भिन्न है। 'आसमयीर' में ऐतिहासिकता का प्राधान्य है तो इसमें औपन्यासिकता का। वास्तव में इसमें उपन्यासकार ने 'ऐतिहासिकता' और औपन्यासिकता का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास की शिवाजी एवं औरंगजेब के संघर्ष संबंधी घटनाएँ पूर्ण ऐतिहासिक हैं।^२

१ तानाजी की अहमदशाह पृष्ठ १२६।

२ औरंगजेबनामा अनुवादक श्री बीबी प्रसाद जी इतरा नाम काष्ठ ११ औरंगजेब अतिक्रम में पृष्ठ ११२ से ११५ तक।

मराठी के प्रसिद्ध उपन्यासकार ह० म० जाटे ने गज खाद्यापम सिंह बेसा' उपन्यास जिसका हिंदी में बबुबाब 'सिंहमड' के नाम से हुआ है—के कथानक का प्रभाव इस पर स्पष्ट जात होता है।

बिना चिराग का शहर

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक तेरहवीं शताब्दी के मातल से सम्बन्धित है। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर बनावहीन सुघोषित था। प्रस्तुत उपन्यास की कथा का ब्यावहारिक प्रारम्भ २४ अप्रैल सन् १३११ ईस्वी की एक बड़ा बारण बटना से होता है। मुस्तान ने अपने प्रिय गुलाम मलिक काफूर की बलिबिजय से प्रसन्न होकर उसका भव्य स्वागत करने के लिए दरबार किया था। इसी दरबार में एक बिल्कुल अपत्याधित बटना हो जाती है। एक पत्नी लेकर मुस्तान के सामने ही मलिक काफूर का प्रतिहन्दी मनोक दरबार ग्यु खी उल्लेख जा भिड़ता है। संघर्ष में उरगू खी का बाब मलिक काफूर एक नेत्र निकाल देता है। बाबखाह के सामने ही यह बटना बटित हो जाती है। इस बटना के पश्चात् ही उरगू खी दरबार से मुक्त रूप से पलायन कर जाता है।

मुख्य बटना को स्पष्ट करने के लिए उपन्यासकार ने मलिक काफूर की बलिबिजय से पूर्व की कथा उपर्युक्त बटना के पश्चात् जा रखी है किन्तु यह कथा में उल्ट केर किती कमरामक पद्धति से नहीं किया गया है। जिससे कथानक की कलात्मक महत्ता क्षीण हो गई है। यदि इस कथा के उल्ट केर को पूर्व कीर्ति (Flesh back) पद्धति से उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया होता तो निश्चित ही प्रस्तुत कथानक का महत्व बढ़ गया होता। मलिक काफूर की बलिबिजय की कथा सामने जा जाती है। कुछ समय के लिए उरगू खी की कथा मुक्त प्राय हो जाती है।

मलिक काफूर के देवगिरि के भात्रमन के माध्यम से उपन्यासकार ने राजा कर्ण राजकुमार संकर देव एवं राजकुमारी देवस देवी बारि की कथा भी सामने जा रखी है।

कर्णदेव गुजरात का राजा था। वह बायर, मामसी ब्रह्मीन का ब्यसनी और मवही प्रद्वि का था। उसकी पत्नी कमलावती ब्रह्मनिम सुंदरी थी। पराज्य होने पर कर्णदेव अपनी पत्नी को छोड़ केवल अपनी पुत्री देवस देवी के साथ भागकर देवगिरि के राजा रामचंद्र की घरम बना गया था। कमलावती

बंदी हुई मंत्र में वह अपने पति को त्याग कर सुल्तान अकबर की बेगम बन जाती है। इतना ही नहीं वह अपनी निर्दोष बेटी देवक देवी को भी साहूकारा जिन्य खाँ के लिए बछाव पकड़ मंगवाती है। राज्यों को परास्त करके सुल्तान की आज्ञा से मलिक मलिक काफूर देवक को तो मर जाता है किन्तु वह स्वयं देवक से प्रेम करने लगता है। इसी समय दिल्ली में उलखु खाँ वाली उपर्युक्त बट्टा बन्धित हो जाती है। मलिक की प्रेमिका देवक का विवाह जिन्यखाँ से हो जाता था। बनी वह इस आघात को झुक भी न पाया था कि उलखु खाँ उसका बंग भंग कर गुप्त रूप से देवक का अपहरण कर देवमिरि के नए राजा हरपाल की शरण जाता है। सुल्तान की आज्ञा से मलिक देवमिरि पर आक्रमण करता है। युद्ध में उलखु खाँ मारा जाता है और राजा भीबित पकड़ लिया जाता है। मलिक की आज्ञा से राजा की जिंदा लाश खींची जाती है। किन्तु तो भी उसे देवक प्राप्त नहीं हो पाती। दिल्ली की आर प्रत्यावर्तित होते समय मलिक को भी जही के सैनिक समाप्त कर देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक विशुद्ध है। एक साथ कई समाप्तांश रचवाई जाती हैं। जिससे एक व्यस्तित्व एवं गुरदित प्रधान कथा को अपनी अन्विष्टि से पाठक पर पूर्ण प्रभाव डाल सके का मंत्र तक अभाव रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास की केवल पृष्ठभूमि मात्र ही ऐतिहासिक है कथानक कास्वनिह ही है। उपन्यासकार ने तो स्वयं ही कह दिया है इस उपन्यास में अद्यपि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है पर इन्से कुछ ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। पाठक इसे ऐतिहासिक कथनों की जातवाणी की दृष्टि से न पढ़ें। इसमें केवल उस युग की जिसकी चर्चा इस उपन्यास में है—राजनीतिक और सामाजिक अस्त व्यस्त स्थिति तथा मुस्लिम सुल्तानों की गुंथस उच्छ्वसता का जिसकी साधी अंतर्द्वय है दिया गया है।^१

प्रस्तुत उपन्यास का सम्बंध सुल्तान अकबर की बेगम से है। सुल्तान अकबर की ई० सं० १२९६ में उत्तर पर बैठ और बनवरी सं० १३१९ में मर गया। उसने केवल बीस वर्ष सामन किया। परंतु उसका यह बीस वर्ष का शासन ऐसा अद्भुत रहा कि उसने समूचे भारत का नक्का बरक दिया। सबसे पहले यही सुल्तान इतिहास में अपने सवार से गया। तब सबसे पहिले इसी ने यत्किंचिद् मुसलिम सुल्तानों में भारतीयता का पुट दिया। "किन्तु उसकी हिंसक प्रवृत्ति और नृपस अत्याचार अप्रतिम रहा।" उपन्यास में बीधा

कि होता ही है कल्पना से काम लिया गया है। क्योंकि इस काल का इतिहास भी पक्षपातपूर्ण और भ्रान्त है। इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिकता की अपेक्षा व्याख्यात्मकता के अधिक समीप है।^१

परमर युग के दो युत

आचार्य चतुरसेन जी का यह उपन्यास कथा शिल्प की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों से सर्वथा भिन्न है। इस उपन्यास का महत्त्व शिल्प की महीनता एवं प्रयोगात्मकता की दृष्टि से आचार्य जी के अन्य सामाजिक उपन्यासों से अधिक है।

कथावस्तु प्रारंभ होने के पूर्व ही केवलक ने भूमिका में स्पष्ट कहा है पत्थर-युग के दो युत मुझे मिले हैं—एक औरत और दूसरा मर्द। जमाने ने इन्हें सम्यता के बड़े-बड़े विवाह पहनाये इन्हें सजाया संभार सिखाया पड़ाया। जमाना आगे बढ़ता गया और वह सम्यता के चिन्मर पर जा बैठता पर वे दोनों युत अपने विवाह के भीतर आस-सी बैसे हो परमर युग क युत हैं। इनमें एक बाह्य बरामद की संतर नहीं पड़ा है—एक है औरत और दूसरा है मर्द।

इस भूमिका के परचात् ही कथा प्रारम्भ हो जाती है। भूमिका से ऐसा भास होता है कि कथा दो सूत्रात्मक होगी किन्तु वास्तव में प्रस्तुत कथानक छ सूत्रात्मक है। बुध और गारी दोनों ही के तीन-तीन पात्रों के कथा सूत्र एक साथ चलचलित हुए हैं। वास्तव में यह उपन्यास 'अज्ञेय' के 'मही के द्वीप' नामक उपन्यास की भाँति कई स्त्रों में भिन्ना गया है। कथा को छ कंठों में विभक्त किया गया है। कथा के यही छ कंठ कथा के छ विभिन्न सूत्र हैं। प्रस्तुत उपन्यास में रेखा की कथा प्रधान है। कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ भी इसी प्रधान कथा से होता है।

रेखा एक विवाहित माँ है। उसका पति सुनीलवत्स सुय का प्रेमी है। रेखा को सुय से दुःखा है। वह पति को सुय सेवन से विरक्त करना चाहती है किन्तु इसी बात की लेकर दोनों में विचार-वैभिन्य हो जाता है। रेखा की प्रधान कथा को आगे बढ़ाने लिए बल राय, माया बर्मा एवं नीला आदि की पाँच सहायक कथाएँ भी साथ-साथ चली हैं। रेखा पति की अपेक्षा सहन नहीं कर पाती। उसके अंतर में पति से प्रतिकोध लेने की भावना उमड़ जाती है। माय ही वह अपने पति के अनन्य मित्र दिलीपकुमार राय की ओर धीरे-धीरे आवर्तित होने लगती है। राय प्रथम से ही रेखा को अपनी अत्यंत सामर्थी

समझता था। रेखा सीधे ही अपने पति सुनीलवत्त के साथ बिस्वासघात करके राय को आत्म-समर्पण कर देती है। इन दोनों कथानों के साथ-साथ रेखा के पति वत्त की कथा भी चलती है। वह सुरा का प्रेमी होते हुए भी एकनिष्ठ पति है रेखा को हृदय से प्यार करता है। रेखा को बुझी देलकर वह सुरा त्याग देता है किन्तु तो भी रेखा को वह प्रसन्न नहीं कर पाता। अब वह तीनों ही कथार्थ परम्पर उलझती हुई अग्रसर होती है। इन कथानों के साथ-साथ तीन अन्य कथामें भी चलती हैं। इन कथानों का मुख्य सम्बन्ध राय की कथा से है। राय की पत्नी माया अपने पति के आपराध से अर्धतुष्ट है। यद्यपि राय से उसकी एक पुत्री-सीता हो चुकी है किन्तु तो भी वह अपने पति की अपेक्षा सहन नहीं कर पाती। मर्त्य से कथा में बात प्रतिघात प्रारम्भ हो जाता है। माया वर्मा नाम के एक अन्य अविवाहित नवयुवक की ओर आकर्षित हो जाती है। पति की ओर से पूर्ण स्वतंत्रता पाकर वह अपने पति और पुत्री को त्यागकर वर्मा से पुनः विवाह कर लेती है। इधर राय भी सुनीलवत्त की पत्नी रेखा को अपने बध में कर चुका है। रेखा एक दिन अकस्मात् अपने पति से अपने और राय के सम्बन्ध में कह देती है और साथ ही राय से विवाह करने की भी इच्छा प्रकट करती है। कथा अब चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वत्त पूर्ण बटना सुनकर मीन हो जाता है। उसका अंतर्हृदय बड़ जाता है। वह अग्रसर पाकर दुष्टरूप से राय के समीप पहुँचकर रेखा के साथ विवाह करने की बात कहता है किन्तु राय इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। राय का उत्तर था 'तब तो जो जो औरतें मेरे साथ सोती हैं मुझे उन् सचसे दाबी करनी पड़ेगी।' वत्त को उसके इस उत्तर पर क्रोध आ जाता है और वह राय को गोली का निशाना बना देता है। यही कथा की चरम सीमा है। चरमसीमा के पश्चात् उपसंहार का भी क्रम है। अंत में वत्त को मृत्यु दण्ड की आज्ञा होती है। उपसंहार में रेखा के पश्चात्ताप का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है।

प्रस्तुत कथा में यद्यपि रेखा की कथा प्रधान है किन्तु तो भी उसे अन्य कथानों से विलग अधिकारिक कथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती कारण उन सब कथानों से विलग उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रह पाता। कथा खण्ड-खण्डों में प्रधान पात्र-पात्रियों को आचार बनाकर चलती है। सभी पात्र अपनी दृष्टि से ही अपने से सम्बन्धित कथा कहते हैं जिससे अन्य पात्रों की कथानों की विकास देने में किसी भी एक पात्र की कथा अपने में स्वतंत्र पूर्ण

नहीं रह पाती। सब मिटाकर कच्चा संमट्टि है। अंतराज हीली के माध्यम से सभी स्वतंत्र कथा-खंडों को केन्द्रक में बड़े मूल और कौशल से एक ही श्रुतता में अनसूट किया है।

कथानक के विभिन्न खंडों में विभक्त होने पर भी उसकी रोचकता अंत तक बनी लो रही है। किन्तु कर्मा एवं बला के अंतराज के ये खंड जिसमें उन दोनों ने घात के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है^१ से कथा कई स्थानों पर अवरुद्ध हो गई है। कथा के माध्यम से इस प्रकार के सिद्धांतों के प्रतिपादन ने कथा की कलात्मक महत्ता को स्थूल कर लिया है।

'अज्ञेय' के उपन्यास 'नयी के द्वीप' की भांति यह उपन्यास भी सामाजिक विधि-विरोध से किंचित् तटस्थ परम्परागत जीवन व्यवस्था से कुछ विचित्रता समाजगत रुढ़ियों बंधनों व्यवधानों से मुक्त यह कुछ व्यक्तियों का अपना व्यवहार है जो अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार आचरण करते हैं और जीवन की एक नई विद्या की ओर संकेत करते हैं।^२ किन्तु इस उपन्यास में अपनी निज की विरोधता है इसमें परम्परागत जीवन व्यवस्था के प्रति विद्रोह के संकेत प्रकट ही प्राप्त हो पाएँ किन्तु उन संकेतों के परिपार्श्व में उपन्यासकार ने स्पष्ट यह निर्वेस किया है कि इस व्यवस्था के प्रति विद्रोही होकर उन्मुख बनना ही वास्तविक ही पाठक है। उपन्यासकार ने कथा के प्रारंभ में जो भूमिका दी है उसमें भी उसका स्पष्ट संकेत है कि मनुष्य की काम विषयक भावनाओं में आदिम युग से एक बाल बराबर भी अंतर नहीं आया है। आज भी वह वैसा ही हिंसक है वैसा तब था। वहाँ उसकी प्राचीन मायताओं को किंचित् मात्र भी ठेस पहुँची नहीं वह विद्रोही हो जाता है। वास्तव में प्रस्तुत उपन्यास पारिवारिक जीवन के माध्यम से उसमें के नित्य परिवर्तित होते हुए मूर्तियों को बेजान का बड़ा सुन्दर प्रयास है।

इस उपन्यास की प्रमुख समस्या काम विषयक है। निश्चित ही समस्या महत्त्वपूर्ण है। इसके पाँच प्रमुख पात्र हैं और उन सभी की समस्याएँ सममम एक ही हैं। देखा विवाहित होते हुए भी अपने पति बला से अस्तुष्ट है उबर राय भी विवाहित है किन्तु वह भी अपनी पत्नी माया के मीरत समर्पण से ऊँच चुका है। दोनों ही अष्टुष्ट हैं। माया भी अपने पति राय से उपेक्षित होने के कारण एक दूसरे अष्टुष्ट नवयुवक का आँचक कामठी है। इस

१ पत्परयुग के बी बुक-नं० २५, २०।

२ किन्तु उपन्यास-सूच ११५।

प्रकार इसके समान सभी प्रमुख पात्र विर धृष्ट कामासक्त हैं। सभी काम के दुर्दम्य आकर्षण से पराभूत होकर अपनी वास्तविक स्थिति को भूल चुके हैं। समाज के जर्जर बंधन इनकी काम बुमुझा के मार्ग में अबरोध बनने में असमर्थ हो चुके हैं। मनुष्य की वास्तविक पशु प्रकृति अपने मूल रूप में सामने आ चुकी है। किन्तु आज की सभ्यता के कृत्रिम आवरणों ने इस सभ्यता को ढक दिया है केवल मुनीश्वरता की मन्मता ही इस आवरण से परे है कारण वह पुरानी ककीर का फकीर है वह अपनी पत्नी की उपेक्षा पर किसी दूसरी रमणी का आचल नहीं मामता बरन् वह अपनी पत्नी को पपञ्चट करने वाले गरपशु की हत्या कर डाकटा है। कथा का यह अंत विभाकर सेलक ने उपर्युक्त सभी समस्याओं का निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया है। उसका स्पष्ट रूप से कहता है 'वह आदमी जो घर की पवित्रता को भंग करता है, दूसरे की विवाहिता स्त्री को व्यभिचारिणी होने में सहायता देता है व्यभिचारिणी बमाता है उसकी कन से कम सजा मौत है। वह समाज के लिए एक भयंकर खतरा है। अंत में उपन्यासकार ने सेक्स की मूल समस्या का समाधान आदर्शवादी ढंग से दिया है। उसका कथन है 'हो सकता है कि स्त्री पुरुषों को मूहस्य जीवन में घाटीरिक्त बाधायें हों मानसिक बाधायें भी हों—इतनी बड़ी इतनी दक्षितवान कि जिनके कारण जीवन का साध आनंद ही खत्म हो जाय। इस समय स्त्री या पुरुष दोनों को अपने उच्च चरित्र का त्याग और निष्ठा का सहारा लेना चाहिए, वासना का नहीं।' इसके विस्तृत विपरीत अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' में प्रस्तुत सेक्स समस्या का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। आचार्य चतुरसेन भी उद्यमवादी निष्कर्ष को समाज के लिए वातक मानते हैं, इसी कारण से उन्होंने अपना आदर्शवादी निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। 'नदी के द्वीप' की भांति यह उपन्यास खंडों में तो विभक्त है किन्तु इसमें उसकी भांति खंडों के मध्य 'अंतराल' नहीं है जिससे इसकी कथा जगत् तक संगठित एवं सुखसावय रही है। डा० लक्ष्मीनारायण ठाकुर का 'काक फूलों का पीना' सिद्ध-विधान की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास से कुछ-कुछ साम्य रखता है।

वास्तव में आचार्य चतुरसेन जी ने प्रस्तुत उपन्यास का कथानक 'हृदय की प्यास' 'बदल बदल' एवं 'आभा' के समान ही है। 'बदल बदल' के मास्टर-हुरप्रसाद एवं 'आभा' का अनिस एक प्रकार से निष्क्रिय दृष्टा मान है। वे प्रेम तथा सहानुभूति के द्वारा हृदय-परिवर्तन के मोदीवादी आदर्शों के पक्ष में हैं

इन दोनों ही पाशों का निब का कोई व्यक्तित्व नहीं। यह केवल पत्नी के हाथों की कञ्जुसकी मात्र है। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास का सुनील पुरुष है—ठेक पुस्तक प्रकृता आदि गुणों से पूर्ण। प्रथम हीनों उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन जी ने पानीवासी सिद्धांतों का ही आशय किया है। उनमें वे मार्क्स की ओर अधिक उन्मुख बिल पड़ते हैं, जबकि प्रस्तुत उपन्यास आचार्य की भाव भूमि पर आधारित है।

आचार्य चतुरसेन जी ने प्रस्तुत उपन्यास की रचना कैप्टेन नापावटी-कांड से प्रभावित होकर की थी।

सोना और खून

प्रस्तुत उपन्यास यदि पूर्ण हो गया होता तो केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं बल्कि विश्व की समस्त भाषाओं में सबसे विशालकाय उपन्यास होता किन्तु पुस्तक है कि इसे पूर्ण करने से पूर्व ही आचार्य चतुरसेन जी इस संसार को त्याग कर चल दिए। उनकी प्रस्तुत उपन्यास की कुल पचास खंडों और इस भागों में समाप्त करने की योजना थी किन्तु वे केवल दो भाग एवं लगभग बारह खंड ही पूर्ण कर सके। दूसरे भाग का उदाहरण उन्होंने निम्न से कुछ दिन पूर्व ही पूर्ण किया था। आचार्य जी का प्रस्तुत उपन्यास हमें 'मार्क्स डिसेन्स' के अधूरे उपन्यास 'द मिस्ट्री आफ एडविन बुड' का स्मरण दिला देता है। कथा संघटन की दृष्टि से अथवा उपन्यासकार का 'साहस बीबी मुकाम' उपन्यास प्रस्तुत उपन्यास का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। उसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी से जब तक के कलकत्ता की कथा है और प्रस्तुत उपन्यास में १९२७ से १९३७ तक के इतिहास की घटनाओं का विषय उपन्यासकार करना चाहता था। प्रस्तुत उपन्यास की रचना करते हुए उन्होंने कहा था कि 'यह अंगरेजों के भारत आने से भारत छोड़ने तक के समस्त ऐतिहासिक काल की बृहद् भाषा होगी जिसमें एक विदेशी जाति के क्रांतिकेगमनिकी बीरता कूटनीति स्वार्थपरता और क्रूरता के साथ पश्चिम और पूर्व की विचारधाराओं का टकराव नये और पुराने का संघर्ष भारत का राष्ट्रीय फल और उत्थान कडिबार पर विज्ञान की विजय स्वतंत्रता आंदोलन त्याग और बलिदान के सजीव दृश्य प्रस्तुत किये जायेंगे।' के इन दो भागों में केवल सन् १८२७ तक की कथा को ही रोचक रूप में प्रस्तुत कर सके हैं। सन् १८२७

१. मार्गद्वय-दिसम्बर १ १९२७ 'आचार्य चतुरसेन सिलक और मानव की हंस 'रुबर'।

के विषय में उनका दृष्टिकोण अन्य विद्वानों से भिन्न था। एक बार उन्होंने प्रस्तुत प्रश्न के लेखक के एक प्रश्न के उत्तर में बतलाया था मैं सत्तावन का विद्रोह देशभक्तों ने किया यह नहीं मानता कारण उस समय भारत एक राष्ट्र और एक देश नहीं था। अतः राष्ट्रीयता और देशप्रेम का प्रश्न ही नहीं उठता। और साथ ही मैं यह भी नहीं मानता कि भारत के वर्तमान स्वतंत्रता संग्राम में सन् सत्तावन की कोई प्रतिक्रिया थी कारण जब उस समय राष्ट्रीय परम्परा ही नहीं तो उसकी प्रतिक्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता है।^१ इसमें स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास में आचार्य जी ने चित्रने ही मौखिक प्रश्नों को उठाना है।

यहाँ हम दोनों मानों एवं बारहों खंडों की प्रकाश कथाओं को एक साथ के रहे हैं। एक ही हज़ार पृष्ठों के बृहत् उपन्यास में लगभग १०९ प्रकाश और प्रासंगिक कथाएँ प्राप्त होती हैं। प्रथम भाग के छ खंडों में ही कई कथा सूत्र हैं किंतु इन दोनों में चौबरी प्रायनाथ के परिवार की कथा प्रधान है। चौबरी प्रायनाथ की कथा प्रथम भाग के पूर्वार्द्ध में समाप्त हो जाती है उत्तरार्द्ध में कथा चौबरी परिवार के एक उत्प-साथकसिंह को लेकर विकसित हुई है। यह कथा प्रथम भाग के पीछे खंड में ही समाप्त हो जाती है। इसके परभाव प्रथम भाग के ही पाँचवें और छठे खंड में अन्य छोटी-छोटी स्वतंत्र कथाएँ विकसित हुई हैं। प्रस्तुत उपन्यास के इस भाग का विनाम कुछ-कुछ इयूमा के 'पी मस्केटिमर्न' और 'टुबैंगी इयर्न ऐण्ड मान्स्टर' के रूप पर हुआ है। श्री बेबकी नंदन शर्मा के 'खंडकांठा तथा 'खंडकांठा खंडति' नामक उपन्यासों में भी एक ही परिवार की दो पीढ़ियों की कथा नहीं गई है।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम भाग (पूर्वार्द्ध) के प्रथम खंड की कथा का व्यावहारिक प्रारम्भ मियाँ कुरीश मुहम्मद खाँ उर्फ बड़े मियाँ के परिचय से होता है। मियाँ की कथा यहीं से घनी घनी विकसित होने लगती है। तीसरी ही चौबरी प्रायनाथ की कथा भी इससे सा संयुक्त होती है। दोनों कथाएँ कुछ बढ़कर एक जाती हैं। द्वितीय खंड में मही कथा पुनः और बढ़ती है। अब इसमें कथा का प्रारम्भ उपर्युक्त कथा के वैनीस कर्पे पूर्व खंडित घटना से होता है। इस कथा के केंद्र में चौबरी और बड़े मियाँ का ही खरिद है। वास्तव में उपर्युक्त दोनों कथाएँ ही पीछे लौटकर पुनः जाती हैं। इसको हम 'नाल नम में

१ पंचपुग-अग्रस्त ९, १९३९ आचार्य कनुरसेन-व्यक्तित्व और विचार-गुणकार नाम कपुर।

उत्कट-घण्ट (Time Shift) वाली टेकनीक कह सकते हैं। किन्तु वास्तव में यह पूर्व-रूपेण यह टेकनीक नहीं है। इसकी जागे हम ब्याख्या करेंगे। द्वितीय एंड का प्रारम्भ चौथरी की कथा से ही होता है। इसके साथ-साथ नितनी ही सहायक कथाएँ एवं स्वतंत्र कथाएँ भी विकसित होती रीज पड़ती हैं। 'तृतीय एंड' में भी यही कथा रीज पड़ती है। कुछ दूर तक तो यह कथा सहायक कथाओं को अपने साथ लिए हुए चलती है किन्तु मध्य में जाकर यह कथा सहायक कथाओं के पीछे बबकर भुण्डप्राय हो जाती है। छोटी-छोटी फिटनी ही सहायक कथाएँ आ-आ कर कथानक को किसबाने लगती हैं जिससे कथा ठिठकती हुई अक्सर हाने लगती है। गाजी नहीं-सहीन हीटर की कथा अबस्य कुछ समय तक श्रु कनाबद चलती है किन्तु धीरे-धीरे इस कथा का भी अन्तिमक करती हुयी चौथरी की कथा पुनः प्रकट हो जाती है। चौथरी की यह कथा 'प्रथम एंड' में आई हुई घटनाओं के पश्चात् की है। यहीं पुराने बरानों का सारांश हो जाता है। चौथरी प्राचनिक की मृत्यु हो जाती है और बड़े मियां कुछ रूप से पकामन कर जाते हैं। यहीं दोनों प्रमाण कथाएँ समाप्त हो जाती हैं। प्रथम भाग 'पूर्वांड' की समाप्ति भी यहीं हो जाती है।

प्रथम भाग के उत्तरांड की कथा का प्रारम्भ चौथरियों के नामी घराने के एक उरुप साबन्सिंह के चरित्र को आधार बनाकर होता है। चौथरी के परिवार में केवल यही शेष रह गया था। यह चौथरी के सबसे छोटे बेटे सुसुपास का बेटा था। चौथे अण्ड में कथा सुन इसी के चरित्र के चारों ओर घुमता रहता है।

प्रथम भाग के 'उत्तरांड' के 'पश्चिम अण्ड' में एकदम नवीन कथा का प्रारम्भ होता है। इस कथा का प्रारम्भ सनहरीं सारांश की 'दुनिया' से होता है। इस अण्ड की कथा भारत भूमि इंग्लैंड फ्रांस एवं अन्य द्वीप समूहों को आधार बनाकर विकसित हुई है। छोटे-छोटे फिटने ही कथा सुन जाते जाते रहते हैं। कथा में कोई श्रु कला नहीं रह पाई है। कहीं कथा यूरोप के नगरों की प्रस्तुत पन्नाओं को आधार बनाकर चली है तो कहीं भारत की। कथाकार का उद्देश्य केवल उन घटनाओं को प्रस्तुत करना है जिनमें सोने के लिए लूट बहाया गया है। उन् अण्ड में भी कथा का यही क्रम रहा है। कथा में कोई श्रु भी नहीं रहा है। कहीं कथा प्रथम भाग के पूर्वांड की घटनाओं के भी रं की आ गई है तो कहीं एकदम बाद की। उदाहरण के लिए इन छे अण्ड के कुछ अध्यायों को ले सकते हैं। अध्याय चालीस 'सीबा ए जात' में सन्

१९०८ की एक बटना भी गई है 'मंज ए सवाई' में सन् १९९५ की एक बटना भी गई है इसके परचाव ही मुमल सम्राट आसममीर की कपा जा गई है^१ कुछ ही अम्प्याओं के परचाव सन् १७२० की एक बटना आ गई है^२ इस प्रकार १७वीं सताब्दी से लेकर १९वीं सताब्दी की कपाएँ छोट-छोट कर आती गई हैं। कपा का क्रम भंग है। सेलक ने विशेष क्रम मिलाने की चेष्टा भी नहीं की है। वैसे कि ऊपर कहा जा चुका है कि उपन्यासकार का उद्देश्य बिन्दु की उन समस्त बटनाओं को प्रस्तुत करने का रहा है जो 'सोना और लून' के लिए हुई हैं। सेलक ने बारह पृष्ठों की भूमिका में यह स्पष्ट रूप से कह भी दिया है।^३

प्रस्तुत उपन्यास का द्वितीय भाग भी छै खंडों में विभक्त है। प्रस्तुत भाग के प्रथम खंड में अद्वारहवीं सताब्दी की सामाजिक स्थिति को विभिन्न कपाओं के माध्यम से साकार करने का प्रयत्न किया गया है। कई स्थानों पर एक ही कपा सूत्र में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को भूज दिया गया है उदाहरण के लिए हम साहौर की छापी पर^४ देखी राज्यों की काए^५ टोपों का कुड^६, मृगों वाली मस्जिद^७ मिरवे की मुलाकात^८ आदि अम्प्याओं के कपा सूत्रों को ले सकते हैं सन् १८२७ के यदर की पृष्ठभूमि इसी खंड से बननी प्रारम्भ हो जाती है। इसी भाग के उत्तरार्द्ध में आकर कपा इसी पृष्ठभूमि पर घनी घनी बिस्तार पाने लगती है। छोटे-छोटे कपा सूत्र इस कपा को घनी घनी आबसर करने लगते हैं। तीसरे खंड में भी यही कपाएँ बनी हैं। इनके माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन आशावरण को सम्मुख ला सका किया है। तीसरे खंड के अन्तिम अम्प्याय में सत्तावन की जाग बढ़क उठती है। इसके अन्त खंडों में इस बढ़की हुई जाग का विस्तृत वर्णन किया

१ सोना और लून-प्रथम भाग उत्तरार्द्ध-अम्प्याय ४३ पृ० २७७ ।

२ सोना और लून-प्रथम भाग उत्तरार्द्ध-अम्प्याय ४४ पृ० २८० ।

३ सोना और लून-प्रथम भाग उत्तरार्द्ध-नया आबमी ।

४ सोना और लून-प्रथम भाग पूर्वार्द्ध-पृ० ९ से २० ।

५ सोना और लून-दूसरा भाग पूर्वार्द्ध-अम्प्याय ३२ ।

६ सोना और लून-दूसरा भाग पूर्वार्द्ध-अम्प्याय ३३ ।

७ सोना और लून-दूसरा भाग पूर्वार्द्ध-अम्प्याय ३७ ।

८ सोना और लून-दूसरा भाग पूर्वार्द्ध-अम्प्याय ३९ ।

९. सोना और लून-दूसरा भाग पूर्वार्द्ध-अम्प्याय ४९ ।

पात्र और चरित्र-चित्रण

जिस प्रकार से संसार का अस्तित्व-विवर्धन कि हम विचारण करते हैं— प्राणि-मात्र पर निर्भर है उसी प्रकार से किसी भी कथानक की आघार त्रिमा भी उसके पात्र हैं। जिस प्रकार से हम बिना प्राणियों के संसार की कल्पना नहीं कर सकते उसी प्रकार से पात्रों के अभाव में किसी कथानक की भी कल्पना करना असम्भव है। इसी कारण से पात्र को उपन्यास-कला में कथानक के पर्याप्त रूप में महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

चरित्र—

“चरित्र से तात्पर्य है पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का बाह्य और आंतरिक स्वरूप। मनुष्य का बाह्य (उसका आकार-प्रकार, बेष-भूषण आचार-विचार, रहन-सहन आत-बाह्य आदर्शों का निजी ढंग तथा कार्य-कलाप) उसके अंत-करण का बहुत कुछ प्रतीक होता है।^१ उसका यह अंत क्या है? मनोवैज्ञानिक मानव के चरित्र के अंतर्गत उसके आंतरिक भुजों पर ही विचार करते हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञान मनोवैज्ञानिक एस का मठ है कि चरित्र हमारी मूल-प्रवृत्तियों तथा स्थायी भावों से सुसंगठित शासक स्थायी-भाव है। इस संगठन की पूर्णता या वैधित्य पर ही चरित्र की सबकता और दुर्बलता निर्भर है।^२ मूल-प्रवृत्ति प्राणियों में पाई जानेवाली एक जन्मजात मानसिक गठन या वृत्ति है। यह वृत्ति की हुई परिस्थितियों में प्राणी की पंक्ति विधि विशेष को निर्दिष्ट करती है। मनुष्य में ये चारही मूल-प्रवृत्तियाँ—संतान-कामना, सुख-सुखा कुतूहल योवनाम्बेपम विरक्ति पलायन सामूहिकता आत्म-शौर्य हैम्य काम-प्रवृत्ति विधायक-वृत्ति धरणागति तथा हासवृत्ति स्वीकार की है।^३ इन्हीं के आचार-पर सम्बन्ध

१ काव्य के रूप—बालु गुलाबराय पृ० १७८।

२ एम्बेडजनल साइकालोजी रास पृ० १२९।

३ एम्बेडजनल साइकालोजी रास पृ० २९ से ३२ तक।

वात्सल्य-स्नेह श्रेय, आश्चर्य मूक-व्यास तथा बुद्धा आदि १५ संवेग उत्पत्ते माने हैं ।^१

‘मूक बुद्ध, पीडा आदि आंतरिक राग कहलाती हैं । किसी कारण से जब ये राग सबल रूप धारण कर व्यक्त हो उठते हैं संवेग कहलाते हैं । जब अनेक संवेग किसी एक वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार से सम्बन्ध हो हमारे मन में एक संस्कार उत्पन्न कर देते हैं उस समय मानसिक गठन में संस्कारों का यह स्थायी संगठन स्वामी पात्र की संज्ञा पाता है ।’^२

‘अतः मनुष्य के व्यक्तित्व का आंतरिक पक्ष उसके हृद्द मांस के बाह्य व्यक्तित्व के किसी कोने में अंतःकरण में सुप्त सा छिपा रहता है । अरिष चित्रण करते समय उपन्यासकार पात्र के आंतरिक गुणों को मुख्य अंककार से जगत के प्रकाश में लाने के उद्योग में मग्न रहता है । वह पात्र की मूक प्रवृत्तियों सबिधों तथा स्वामी भावों को क्लिष्ट नहीं बनाने परित्यक्तियाँ उत्पन्न करता है कि जिनसे पात्र का संवर्ध होने पर उसके बड़े-बड़े गुण स्वतः स्वामी विक रूप से बाहर उभर आते । इस प्रकार पात्रों के अरिष को स्पष्ट और विकसित करने का कार्य परिस्थितियाँ बटनाने या उपन्यास की कथा स्वतः करती है । अरिष का विकास सही नहीं होने पर ही उसकी स्वाभाविकता और आकर्षण की रक्षा सम्भव है ।’^३

पात्रों का वर्गीकरण

सभी पात्र समान नहीं होते । कुछ आदर्श होते हैं तो कुछ साधारण कुछ में मानवीय गुणों की प्रचुरता होती है तो कुछ में अमानवीय गुणों का बाहुल्य । कभी एक ही पात्र किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता हुआ जयसर होता है, तो कभी कोई अपना निज का व्यक्तित्व प्रस्तुत करता हुआ सामने आता है । इस दृष्टि से हम पात्रों को निम्न दो वर्गों में रख सकते हैं—

१ सर्वप्रथम प्रतिनिधि या सामान्य पात्र—जब पात्र अपनी कुछ सामान्य विशेषताओं के कारण किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने लगे ।

२ व्यक्तित्व प्रधान-पात्र—अपनी निज की विशेषताओं के कारण यह उपन्यास के अन्य पात्रों में किंचित भिन्न एवं विलक्षण होते हैं ।

१ उपन्यासकार गुणाचलनाथ वर्मा डा० दशिमूष्य सिंहल पृ० १३८ ।

२ निराला मनोविज्ञान की रूप रैता विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी पृ० १२१ १२९ ।

३ उपन्यासकार गुणाचलनाथ वर्मा डा० सिंहल पृ० १३८ तः १३९ तक ।

किन्तु जहाँ तक बर्ग पत्र एवं व्यक्तिगत प्रधान पात्रों का प्रश्न है किसी भी उपयोग के पात्रों का निर्माण इस कमीनी पर बस कर नहीं किया जाता। एक सामान्य पात्र में सामान्य एवं व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार की विशेषताएँ होती जा सकती हैं। जब उसमें सामान्य गुणों का आधिक्य हो जाता है तो उसे हम बर्गगत पात्र और जब उसमें व्यक्तिगत प्रधान गुणों का बाहुल्य हो जाय है तो उसे व्यक्तिगत प्रधान पात्र कहते हैं। बर्गगत पात्रों में भी केवल उस समाज विधेय में प्राप्त होने वाले सामान्य गुण ही नहीं बल्कि कुछ गुण उनके निज के व्यक्तिगत को प्रकट करने वाले भी रहते हैं। यह गुण पात्र विधेय स्वयं अपने साथ लाता है उस बर्ग विधेय में उन गुणों का होना अनिवार्य नहीं है।

वास्तव में उसी पात्र का चरित्र-चित्रण अधिक सफल कहा जाता है जिसमें सामान्य एवं विधेय दोनों ही गुणों का सानुपातिक सम्बन्ध हो। सामान्यता एवं विशिष्टता दोनों के ही अतिरेक से पात्र निर्जीव एवं अस्वाभाविक हो जाते हैं।

कुछ विद्वानों ने पात्रों का एक अन्य विभाजन भी किया है। उनके अनुसार पात्रों को दो भागों में रखा जा सकता है—

- १ स्थिर
- २ गतिशील या परिवर्तनशील

स्थिर चरित्रों में बहुत कम परिवर्तन होता है। और गतिशील चरित्रों में उत्थान और पतन अपना पतन और उत्थान दोनों ही बातें होती हैं।^१

थी ई० एम० फ़ास्टर ने कुछ इसी से मिश्रता-युक्तता पात्रों का बर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उक्तने पात्रों के 'फ़ैट' तथा 'राउण्ड' दो श्रेणियाँ दी हैं। 'फ़ैट' वह उन चरित्रों को मानता है जो मूलतः एक ही विचार या विधेयता के चारों ओर उसी की केन्द्र मानकर घूमते रहते हैं। जैसे ही उनका यह केन्द्र या विचार या विधेयता एक से अधिक हो जाती है, तब उन्हें 'राउण्ड' कहा जाता है। इस प्रकार में ये दोनों ही प्रकार के पात्र सहज ही पहचाने जाने योग्य होते हैं। उन्हें पाठक बहुत सरलतापूर्वक स्मरण रख सकता है। बुद्धि परिष्कारियों के परिवर्तन का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसलिए वे सदा समान विशेषताएँ रखते हैं।^२

१ काव्य के रूप—डा० गुलाबराय वृ० १७९।

२ हिन्दी उपयोग में कथा-सिद्धांत का विकास डा० प्रतापनारायण टंडन पृ० ४८।

चरित्र चित्रण की शैलियाँ

उपन्यासकार चरित्र चित्रण के लिए प्रायः निम्न दो प्रकार की शैलियों का सबसे अधिक प्रयोग करता है —

१. विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष (एनोसिटिक)

२. नाटकीय या अभिनयात्मक अथवा पराक्ष (ड्रामेटिक)

१. विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष —

इसमें उपन्यासकार स्वयं अपने पात्रों को निरसंग दृष्टि से देखता है और एक वैज्ञानिक या आलोचक की भाँति उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों, विचारों, मनोवृत्तियों आदि का ठटसठ भाव से विश्लेषण प्रस्तुत करता जाता है और कभी-कभी उस पात्र विशेष के संबंध में अपना स्वयं का मत या निर्णय भी दे बैठता है। इससे पाठक को स्वयं अपना निर्णय अथवा मत निर्दिष्ट करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता जिससे वह पात्रों को अपना भारतीय नहीं समझ पाता। जब भी वह पात्र को अपना भारतीय समझना चाहता है, अथवा उसे निकट से देखना चाहता है, अथवा स्वयं एक मध्यस्थ के रूप में पात्र और पाठक के मध्य आ उपस्थित होता है। इससे पाठक पात्र को स्वयं अपना ही समझकर एक दूर का व्यक्ति समझने लगता है जिससे उसका पूर्ण साधारणीकरण नहीं हो पाता। संस्रक की पग-पग पर उपस्थिति के कारण पाठक पात्र को एक बिंदु की समान ही समझता रहता है जिससे कि वह उसकी भाषा न ज्ञात होने के कारण एक 'बुमापिण्ड' के द्वारा बातचीत करता है। इस पद्धति का यदि कुछ बंधों में प्रयोग किया जाय तो पाठक को चरित्र को समझने में सरलता रहती है किन्तु इस पद्धति का अधिक प्रयोग उपन्यास को बोझिल बना देता है। पग-पग पर पाठकों को सम्बोधित करते हुए चलना स्थान-स्थान पर अपनी उपस्थिति का आभास देते रहना पात्रों के विषय में पाठक के स्वयं के निर्णय की उम्मीद कर अपना स्वयं का आधिकारिक निर्णय दे बैठना यौग पात्रों को अपने व्यक्तिगत के परिपार्श्व में छिपा कर स्वयं पाठकों के समझ आ उपस्थित होना उपन्यासकार की अनुभवहीनता एक उपन्यासकता के प्रति उसकी अनिश्चितता के चोकर हैं। ऐसी दशा में उपन्यासकार के पात्र स्वयं अपना व्यक्तिगत नहीं निहार पाने के प्रत्येक क्रियाकलाप को कार्यान्वित करते समय अपने निर्माता उपन्यासकार के मुखापेक्षी रहते हैं जिससे वे सजीव पात्र न रह कर बटुनुमी के पात्रों के समान आचरण करने लगते हैं। अतएव वह नितांत आवश्यक है कि उपन्यासकार इस पद्धति का प्रयोग अनर्कता एवं समय पूर्वक करे।

किन्तु इससे हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि इस पद्धति की सर्वथा उपेक्षा की जाय। इसका सर्वथा बहिष्कार करने पर हम औपन्यासिक क्षेत्र में निम्न अभिव्यक्ति के एक महीन साधन छूटना भास हाथ भी बैठे। नाटक रचना में विस्लेषणात्मक पद्धति का कोई स्थान नहीं है किन्तु उपन्यासकार इसका प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है। बात उपन्यासकार को इस स्वाभाविक क्षेत्र से बहिष्कृत करने का अर्थ होगा उसकी स्वतंत्रता का हनन तथा उस पर नाटककार को अक्षुब्धक घोषणा।^१

२ नाटकीय या अतिनाटकीय —

इसमें उपन्यासकार पात्रों की सृष्टि करके उन्हें कार्य क्षेत्र में विधाता की भाँति छोड़कर स्वयं दूर भाग जाता है। पात्र कार्य क्षेत्र में प्रवृत्त होकर स्वयं अपने व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं। उनके कार्यकलाप पारस्परिक क्रमोपक्रमन स्वगत क्रमन एव अंतर्द्वारा ही उनका चरित्र स्वयं स्पष्ट होता चलाता है। पात्र विभिन्न परिस्थितियों में पड़कर बात-प्रतिबात खाता हुआ उत्कर्ष अपकर्ष को पार करता हुआ अपने निकटस्थ पात्रों का स्वयं विस्लेषण करता हुआ रंगस्वकी पर अभिगम करता जाता है। उपन्यासकार की यह सृष्टि भी विधाता की सृष्टि की भाँति अपरोक्ष से संभावित होती है। एक बार पात्र की सृष्टि करने के प्रस्ताव उपन्यासकार उसे अपने पैरों पर चढ़ाने देता है अपने स्वयं के गुणों अथवा गुणों पर अपने मविष्य का निर्माण करने की स्वतंत्रता देता है। उपन्यासकार स्वयं विधाता की भाँति सृष्टा होते हुए भी पाठक की भाँति दृष्टमान रह जाता है। वह भी अन्य पाठकों की भाँति तटस्थ भाव से अपने निर्मित पात्र के एक एक गुण अथवा गुण को अभाव्य होवें देखता है। पाठक के समान ही वह उसमें रस लेता है। पाठक भी पात्र के प्रति अपनी ही आत्मीयता का अनुभव करता है, जितना स्वयं लेता है। इस पद्धति के द्वारा केवल पात्र की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों का उद्घाटन अपरोक्ष में रहते हुए भी करने में पूर्ण सफल रहता है। पात्रों के क्रमोपक्रमन लम्बे विस्लेषणात्मक वर्णनों से नहीं अधिक रोचक एवं प्रभावशाली होते हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उपर्युक्त दोनों ही विधियाँ परस्पर विरोधी हैं। डा० अगीरय की निम्न ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'इसमें (नाटकीय शैली में) भी पृष्ठभूमि में उपन्यास-लेखक विस्लेषण-पूर्ण विवरण

१ नि स्वामी आनन्द मिश्रेश्वर पृ १९४ पृ १४० उद्धृत उपन्यासकार कथाचरितकार अर्थात् डा० तिलक ।

प्रस्तुत करता है। यह सोचना कि एक घंटी सर्वथा दूसरी से निरपेक्ष रूप में बानी है भ्रमात्मक है। एक को अधिक आधुनिक समझना भी उचित नहीं क्योंकि मनोबैज्ञानिक बुद्धियों के स्पष्ट करने के लिए विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। अतः उद्देश्य और चरित्र के अनुसार इन दोनों में से जो घंटी अधिक उपयुक्त हो उसका प्रयोग करना चाहिए। वास्तव में भावकस के सफल उपन्यासों में समन्वित घंटी का उपयोग होता है। जिसमें नाटकीय और विश्लेषणात्मक दोनों विधियाँ यथावश्यक रूप में प्रयुक्त होती हैं।^१

आचार्य जी ने अपने प्रौढ़ उपन्यासों में समन्वित घंटी का ही प्रयोग किया है। अपने प्रारम्भिक उपन्यासों यथा 'हृदय की परत' 'हृदय की व्यास' 'बहते भाँसू' 'आत्मवाह' 'पूर्वाहृति' आदि में उन्होंने विश्लेषणात्मक पद्धति का कुञ्जर प्रयोग किया है। इन उपन्यासों में स्वान-स्वान पर से पाठकों को सम्बोधित करते करते हैं।^२ परंतु अपने आगे के उपन्यासों यथा—'नगरबन्धू' 'सोमनाथ' आदि में उन्होंने इन दोनों ही पद्धतियों का परिष्कृत एवं संतुलित प्रयोग किया है। इन उपन्यासों में दोनों प्रजातियों का समन्वय आवश्यक है किन्तु फिर भी इनमें विचरण का प्रयोग अपेक्षाकृत स्थूल ही है। अपने पात्रों के विषय में उसके स्वयं एकाध वाक्य ही कहा है। उसने यह वाक्य आप्त वाक्य के रूप में अन्त तक सहायता देते हैं। इन वाक्यों में उसके उस पात्र के चरित्र का बीज रहता है। जो परिस्थिति कार्य व्यापार, कथोपकथन स्वयं कथन आदि उपकरणों के द्वारा पस्करित होता चला जाता है। उदाहरण के लिए हम उसके 'सोमनाथ' उपन्यास में चित्रित भीमदेव महमूद एवं गंग सर्वज्ञ के चरित्रों को ले सकते हैं। इन तीनों ही पात्रों के विषय में उसने उपन्यास के प्रारम्भ में (निर्मात्या नामक अध्याय में) जो उक्त बने हैं^३ उनसे जिन विशेषताओं को उसने ध्वनित करना चाहा है—वही विशेषताएँ उपन्यास में आदि से अंत तक भिन्न-भिन्न अवसरों और परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में व्यक्त होती रही हैं।

पात्र और कथानक

उपन्यास के सभी तलों में कथानक और पात्र का महत्व सबसे अधिक है। दोनों में किमता महत्व अधिक है इस पर भी विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ

१ वाघ्यनाटक डा० भारद्वाज विम्व-पृ० ८६।

२ बहते भाँसू-पृ० ९६।

३ सोमनाथ-पृ० ८९।

विद्वान् उपन्यास के सभी तर्कों में कथानक को सर्वप्रमुख स्थान देते हैं 'उपन्यास के सभी तर्कों में कथानक सर्वप्रमुख है'^१ इसी ओर कुछ विद्वान् पात्रों को उपन्यास में कथानक से अधिक महत्वपूर्ण बतलाते हैं। उनका मत है 'पात्रों का क्रियाकलाप कथा को जन्म देता है और कथा की नूतन परिस्थितियाँ पात्रों को उनका व्यक्तिगत विकसित करने का सबसे प्रबल प्रदान करती हैं। यदि दोनों में से किसी एक क अपेक्षाकृत अधिक महत्व का प्रदान उठाया जाय तो उपन्यास में पात्र निश्चित रूप से अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार करने होंगे। उपन्यास का ध्येय है मानव चरित्र का चित्रण। इस चरित्र के चित्रण के हेतु घटनाओं का संयोजन आवश्यक है। अतः उपन्यास में साम्य है मानव चरित्र का चित्रण और साधन है घटनाएँ। यही घटनाएँ कथानक हैं। यदि इन घटनाओं को श्रुत्समावृत्त कर एक सत्य की दृष्टि में संयोजित कर दिया जाय तो कथा की रोचकता की दृष्टि से आकर्षण तथा लक्ष्य विधेय की दृष्टि से महत्व कहीं अधिक हो जाए।'^२ किंतु मेरा विचार है कि इन दोनों ही तर्कों का उपन्यास में समान महत्व है। बिना कथानक के पात्र स्वच्छन्द हो जायेंगे उनके विकास का कोई सन्ध न होगा और बिना पात्रों के कथानक मन्त्रचाकित सा एवं अस्वाभाविक हो जायेगा। अतः यह दोनों ही तर्क मूल में एक दूसरे से सम्बंधित हैं। अतः इन दोनों के बीच संतुलन का सर्वत्र ध्यान रखना चाहिए।

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों के पात्रों पर सर्गीकरण

आचार्य जी के कुछ प्रमुख एवं गौण पात्रों की संख्या एक सहस्र के लगभग है। इनमें से पात्र भी सम्मिश्रित हैं जो कुछ समय के लिए पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके लुप्त हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त राह चलते पात्रों की संख्या तो अत्यन्त है। इन सदस्य पात्रों का हम चार वर्गों में रक्त सकते हैं—

- १ कथा को प्रति प्रदान करने वाले प्रमुख पात्र
- २ कथा को प्रति प्रदान करने वाले सहायक पात्र
- ३ काल विधेय के परिचायक व्यक्तिगत प्रबल पात्र
- ४ कथा प्रवाह में गौण सपिक स्थान ग्रहण करने वाले पात्र।

आचार्य जी के उपन्यासों में पात्रों की संख्या बढ़ाने का बाधित अंतिम कर्म के पात्रों पर ही है। ऐतिहासिक उपन्यासों में तृतीय कर्म के पात्रों की संख्या

१ हिन्दी उपन्यास के कथा शिल्प का विकास-डा० प्रतापनारायण टंडन-पृ ९०-९१

२ उपन्यासकार बुम्बाबलाल वर्मा डा० सिंहल-पृ० १४१।

भी अधिक है। परंतु बान्द्र में उपन्यास की कथा को गतिशील बनाने में प्रथम और द्वितीय वर्ग के पात्रों का ही महत्व है। इस प्रकार के पात्रों की संख्या आचार्य जी के समस्त उपन्यासों में कबल २५३ है। इन पात्रों के चरित्र की रीताएं पर्याप्त उमरी हुई एवं पुष्ट हैं। इन प्रमुख पात्रों में केवल १०९ पात्र उनके उपन्यासों के मायक^१ प्रतिनायक धरुनायक एवं नायिकाएं हैं। जिनको हम प्रथम वर्ग में और शेष को द्वितीय वर्ग में रख सकते हैं।

आचार्य जी के इन समस्त पात्रों को हम प्रथम दो वर्गों—पुरुष एवं नारी पात्र—में विभक्त कर लेते हैं। ये पात्र वर्गगत भी हैं और व्यक्तिनिष्ठ भी। स्तिर भी हैं गतिशील भी। 'पलैट भी हैं और राजकुं भी। किंतु हम आचार्य चतुरमेत जी के समस्त पात्रों को उपन्यास के कथानक की दृष्टि से निम्न तीन वर्गों में रख सकते हैं —

- १ पौराणिक पात्र—पुरुष—रावण राम भयनाद कदमण आदि
नारी—सूर्यणका सीता मन्वोदरी त्रया आदि
- २ ऐतिहासिक पात्र—पुरुष—सोमप्रभ बिम्बसार, भीमदेव महमूद आदि
नारी—बम्बपाली चौला संयोगिता आदि
- ३ सामाजिक पात्र—पुरुष—बिलीप सुधीन्द्र किमुन आदि
नारी—माया सुभा हुसलवानू चम्पा आदि

उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार भी हम आचार्य जी के पात्रों को निम्न तीन वर्गों में रख सकते हैं —

- १ वर्गगत या प्रतिनिधि पात्र
- २ व्यक्तिगत प्रधान पात्र
- ३ अलौकिक या असाधारण पात्र ।

१ प्राचीन आर्यों और वर्तमान आर्यों में इस बात का अंतर हो गया है कि पहले नायक प्रक्यात और उच्चकुलोद्भव होता था अब होरी कितान भी उपन्यास का नायक बन जाता है। पहले प्रक्यात नायक इसीलिए रहता था कि जिससे लहृष्य पाठकों का सहृदय में आवात्म्य हो जाय अब लोगों की मनोवृत्तियां कुछ बदल गई हैं। साम्रिआत्म्य का अब उतना मान नहीं रहा है इसीलिए होरी के सम्बन्ध में पाठकों का सहृदय की तावात्म्य हो जाता है। पात्र के कश्चित होने से भी उसके साधारणोदरस्य में बाधा नहीं पड़ती क्योंकि वह प्रायः अपनी जाति का प्रतिनिधि होता है।

तिज्ञान और अन्वयण पृ २८० ताप ही रेडिए टिम्बी उपन्यास पृ १९ १७ तथा समीक्षा के तिज्ञान पृ ११९ १४० ।

वर्गगत पात्र

राजका एवं मामन्त वर्ग—

साधारण जी के पौराणिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों के अधिकारा पात्र राजवर्ग एवं मामन्त वर्ग के ही हैं। इन दो प्रकार के पात्रों की इच्छा पूर्ति के लिए कृत्रिम ही साधारण श्रेणी के पात्र निर्मित एवं घोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करना पड़ेगा। इनका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं कोई स्वयं व्यक्तित्व नहीं। किसी न किसी प्रकार न उनका सम्बन्ध राजवर्ग या मामन्त वर्ग के पात्रों से स्थापित मिलता है। उनका ऐतिहासिक उपन्यासों के कथावस्तुओं को गति एवं प्रवाह प्रदान करने का ध्येय उनका राज एवं सामन्तवर्गीय पात्रों पर ही है। उनके 'योसी' एवं 'उदयास्त' नामक सामाजिक उपन्यासों में भी तथा इन्हीं दो वर्गों के पात्रों के कारणों और घूमनी हुई देखा पड़ती है। इस वर्ग के पात्र और इनमें सम्मिलित पात्रों को हम सामक और शासित (घोषित) वर्गों में रखकर देख सकते हैं। दोनों ही वर्गों में मले और बुरे, सज्जन और दुर्जन दोनों ही प्रकार के पात्र मिलते हैं।

सासक और शासित दोनों ही वर्गों के पात्रों के भी तीन प्रकार हैं। सासक वर्ग की प्रथम श्रेणी में हम उन पात्रों को रख सकते हैं जो आदर्श शासन हैं जिनका ही रक्षा विनया आदर्श है। वे ईमानदार, नीर, साहसी और अपने कर्म के लिए कुछ संकल्प हैं। दूसरे वे जो किसी सर्वद्वेष के लिए ही अपनी शक्ति का व्यय करते हैं। जैसे भोवाभावा, धर्मगणदेव बहा श्रीमुख्य भीमदेव रामो मेहता सामन्तसिंह, सज्जनसिंह बुल्लभराय आदि (सोमनाथ) सोमनाथ (मयराज) राम लक्ष्मण मयनाथ (कर्म रत्नाकर) पिशाची (सहायि की अट्टारों) खमार भी (लाल पानी) राजा हरपाठ (बिना विरग का घहर) आदि। दूसरी श्रेणी में हम उन नीर किन्तु बिलसी राजाओं तथाओं आदर्शों सामन्तों आदि को रख सकते हैं जो केवल मात्र सुंदर स्त्री को प्राप्त करने के लिए कर्मचारों को बर्बाद करने को तैयार रहते हैं। वे नीर हैं किन्तु बुद्धिमान नहीं। वे सुन्दरी और भूमि को नीर भोवा मामन्त के सम्पाती हैं। इस प्रकार के पात्रों में हम महसूद मसऊद (सोमनाथ) बिम्बसार, रविबाहन बिम्बसार (मयराज) राजन (कर्म रत्नाकर) पृथ्वीराज गौरी (पूर्वाश्रुति) कुमारपाठ सज्जनपाठ नौमदेव (रक्त की प्यास) औरंगजेब (आत्मघोष) मलिक आदर उमरू खाँ (बिना विरग का घहर) आदि को रख सकते हैं।

सासक बर्ग की तीसरी श्रेणी में हम उन पात्रों को रख सकते हैं जो केवल नाममात्र के सासक हैं। जिनके जीवन का प्रधान लक्ष्य केवल भोग करना मात्र है। उसवार केवल उनका आभूषण मात्र है। वे कायर डरपोक सिविल प्रमादी लोभुष कामुक बिलामी एवं स्वेच्छप्रचारी हैं। आचार्य जी के उपन्यासों में इस प्रकार के पात्रों का बाहुल्य है। प्रचेनचित्त सूर्यदेव हर्षदेव (नगरबधू) अजयपाल चामुण्डाय (सोमनाथ) साहजहाँ बाघ पुत्रा (बालकमीर) महाराजपिपरा (गोली) नबाब जहाँगीर, बजीरखानी (बर्मपुत्र) राजा अश्रप्रताप (उदयास्त) आदि पात्रों को हम इसी श्रेणी में रख सकते हैं।

राज एवं सामंत वर्ग के मारी पात्र भी तीन प्रकार के हैं। प्रथम वे जिनमें राजपूती मौरव बूट-बूट कर भरा हुआ है जो अपनी मर्यादा रक्षा के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करने को तत्पर रहती हैं। अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि परमार्थ के लिए त्याग करती हैं। इनके जीवन का उद्देश्य महत्त्वपूर्ण होता है। इस प्रकार की मारी पात्रियाँ उत्सर्ग की भावना से पूर्ण होती हैं। जैसे कलिकमेला चंद्रप्रभा रोहिणी (नगरबधू) सीता मंदोदरी सुलोचना (बर्मरक्षाम) तुलसीदास (बर्मपुत्र) कृष्णी (गोली) बीला सोमनाथ रमा (सोमनाथ) बेगम शाहस्ताबाई (बालकमीर) लक्ष्मीबाई (सोना और जून) मंजुषोया बेबांगना आदि। इसरी श्रेणी में हम उन मारी पात्रों को रख सकते हैं जो बीर तो हैं किन्तु उनका उद्देश्य धुपित है। उनके सामने अपना अपने प्रेमी का ही स्वार्थ रहता है, पैसा और जालि के मौरव की उन्हें चिंता नहीं होती। अम्बपाली (नगरबधू) जूर्नलता मायावती (बर्मरक्षाम) इच्छनी कुमारी (रक्त की प्यास) आदि।

इस वर्ग की तीसरे प्रकार की मारी पात्र वे हैं जिनके जीवन का उद्देश्य बचक मात्र भोग है। जिनके समीप मर्यादा नाम की कोई चीज नहीं। जो केवल मात्र पुरुष मात्र की भोग सामग्री बनकर जीवनयापन करती हैं। जैसे जहाँबाघ रोशनबाघ हीराबाई (बालकमीर) देवकदेवी (बिना चिराय का पहर) चंद्रमहल (गोली) आदि।

धोषित वर्ग के पात्रों का भी हम इसी प्रकार तीन श्रेणियों में रख सकते हैं। इसकी प्रथम श्रेणी में हम उन पात्रों को रख सकते हैं जिनके जीवन का प्रधान लक्ष्य अपने स्वामी के लिए ही उत्सर्ग करना मात्र होता है। उनका जीवन लड़ने-भिड़ने और अपराधना की सेवा में व्युत्पन्न करने में ही जाता है। वे स्वामिभक्त, मरुके ईमानदार बीर माहमी एवं त्यागी होते हैं। इनके लिए शान्ति की भांति ही सब कुछ हाथी है। इस श्रेणी के पात्रों में हम विभिन्न

उपन्यासों में प्राप्त सच्चे एवं स्वामिमत्त सैनिक पात्रों को ले सकते हैं। जैसे— हनुमान (बर्ष रजाम) राजाजी (सहायि की चट्टानें) बाबू बन्दू (पूर्वाहुति) छक्कर बूटा (साक पात्री) आदि। हनुमान के लिए पं० रामचन्द्र दुग्गल का यह कथन सत्य ही है 'सेवक में जो-जो गुण चाहिए, सब हनुमान में साकर इकट्ठे कर दिये गए हैं। सबसे आवश्यक बात तो यह है निरलसता और तत्परता स्वामी के कार्यों के लिये सब कुछ करने के लिये उनमें हम हर समय पाठे हैं। 'सेवक को यमानी होना चाहिए। प्रभु के कार्य साधन में उसे अपने मांग अपमान का ध्यान न रखना चाहिए।' लभभग सभी गुण 'बर्ष रजाम' के हनुमान में भी प्राप्त हैं।

दूसरी श्रेणी में हम उन पात्रों को ले सकते हैं जो धीर, साहसी एवं बुद्धिमान हैं किन्तु वे अपनी शक्ति का उपयोग अभी करते हैं जब उनकी बुद्धि एवं आत्मा प्रेरित करती है। वे स्वामी के पास ठा हाते हैं किन्तु अवकाश नहीं कहीं-कहीं तो वे स्वामी के भी अभिभावक बन जाते हैं। इसी श्रेणी में हम उन पात्रों को भी रख सकते हैं जो अन्धकार उच्छेद एवं सतकी होने के कारण अपनी ममताली घासक के नाम पर करते हैं। जैसे साकजी लबास बासुदेव महापद्म रंगाचम मोला (गोली) आदि।

साधित पात्रों की तीसरी श्रेणी में हम उन पात्रों को ले सकते हैं जो सामन्तशाही सोपन के प्रतीक हैं। जो अपने घासकों का अत्याचार सहन करके भी मुक्त हैं। वे अत्याचारों के विरुद्ध जिज्ञा खोसना चाहते हैं, किन्तु उसके पूर्व ही जिज्ञा विहीन कर दिए जाते हैं। उनके घासन, उनकी शक्ति को उनकी बुद्धि को उनकी मर्यादा को बन और शक्ति पर कम कर लेते हैं। बर्ष और समाज के कृत्रिम बंधनों के द्वारा भी ऐसे निरीह पात्रों को जकड़ दिया जाता है। आचार्य जी के उपन्यासों में सबसे कदम इसी श्रेणी के पात्र हैं। जैसे किमुन (गोली)।

साधित बर्ष की माटी पात्रियां भी इसी प्रकार तीन श्रेणियों में रखी जा सकती हैं। प्रथम श्रेणी में हम उन पात्रियों को रख सकते हैं जिनके जीवन का उद्देश्य केवल मात्र स्वामिनी की सेवा करना मात्र है। वे अपनी स्वामिनी के लिए ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर देती हैं। इस श्रेणी में हम एक सीमा तक पोषणा (सोमनाय) के चरित्र को रख सकते हैं। दूसरी श्रेणी में हम उन पात्रियों को ले सकते हैं जिनमें उत्सर्ग की भावना होती हुए भी स्वयं का विवेक

होता है। ऐसी पात्रियाँ अपने गुणों का सर्वुपयोग कर बुरे शासक को अपनी उद्विग्नियों पर नबाया करती हैं। सोभना (सोमनाथ) के चरित्र में इस वर्ग के भी कुछ गुण प्राप्त होते हैं। तीसरी श्रेणी में हम उन पात्रियों को ले सकते हैं जिनको अपने रूप के कारण ही सामन्तछाही के अत्याचारों को सहन करना पड़ता है। इनमें से कुछ इन अत्याचारों को सहन करते हुए ही जीवन त्याग देती हैं। और जन्म तक अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं और कुछ ऐसी हैं जो मृत्यु लेकर अपने को बच देती हैं अथवा विधवा होकर उन्हें ऐसा करना पड़ता है। जैसे चम्पा केसर (मोती)

इसके अतिरिक्त इसी वर्ग में हम उन पात्रों को भी रख सकते हैं जो शासक वर्ग के आश्रित होते हुए भी उनके द्वारा आश्रित नहीं हैं। इस श्रेणी में हम विद्वत् समाज एवं कलाकार वर्ग को रख सकते हैं। इस वर्ग के पात्र अपने दुर्मम दुर्गों के कारण पूज्य हैं। शासक उनको अपना आश्रय देकर अपने को ही गौरवान्वित अनुभव करता है। जैसे गंग सर्वज्ञ (सोमनाथ) बशिष्ठ विश्वामित्र (वर्ष रत्नाम) गौतमबुद्ध महावीर, बादरायण व्यास श्रीधर मारुताम आत्यापन-शौनक बोधायन राम्भय्य (नगरबन्धु) आदि।

कुछ अन्य वर्गगत पात्र—

आचार्य चतुरसेन जी के ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में राजवर्ग एवं सामन्त वर्ग से सम्बंधित पात्रों के अतिरिक्त भी कितने ही अन्य वर्गों के पात्र आते हैं। उनके उपन्यासों में समाज द्वारा शोषित वर्गों के पात्र भी हैं। इस प्रकार के पात्रों में हम हिन्दू समाज की विधवाओं एवं पय-पय पर प्रताड़ित अन्य विभिन्न नारी पात्रों को रख सकते हैं। जैसे सुपीला भगवती शारदापत्नी कुमुद मालती (बहुते भांगू) राज (अपराजिता) विमलादेवी (अरुण-अरुण) पद्मा गोमती (बपुला के पंख) आदि।

आधुनिक युग में उत्पन्न कितने ही नवीन वर्ग के पात्रों का विवरण आचार्य जी के उपन्यासों में प्राप्त होता है। उम्हेंनि वांछित समाजवादी साम्यवादी एवं जनतन्त्र सभी पार्टियों के पात्रों का अपने उपन्यासों में समावेश किया है। 'बपुला के पंख' नामक उपन्यास के दोनों प्रधान पात्र जुबनू एवं सोभाराम वांछनी हैं। जुबनू वांछन के नाम पर लेख करने वाले कविद्वियों का प्रतिनिधित्व करता है और सोभाराम त्यागी और तपस्वी देवामल वांछनियों का। 'अर्मपुत्र' उपन्यास का नायक विभीष जनार्णवी है तथा उसके अन्य भाई अग्निहारी एवं कांवेसी।

इसके अतिरिक्त उनके 'सोना और लून' एवं 'अपास' उपन्यासों में कितने ही विदेशी पात्र भी आये हैं। यह अपने कुछ गुणों के कारण अपने देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

व्यक्तित्व प्रधान पात्र

आचार्य जतुरसेम जी के कई उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं। इन उपन्यासों का सम्पूर्ण आकर्षण उनके विभिन्न प्रकार के पात्रों पर ही केन्द्रित रहता है। इनमें व्यक्ति विशेष का हील-वैलक्षण्य कमजोर इस प्रकार उद्घाटित किया जाता है कि उनकी सब कृतियाँ स्पष्ट झलक उठें। जीवन की विविध परिस्थितियों के भीतर पड़ा हुआ व्यक्ति इस प्रकार से अपने कर्म आचरण और विचार व्यक्त करता है कि उसका आचरितिक मठन और मनोबल प्रभावशाली रूप धारण कर लेता है। इन उपन्यासों के चरित्र कथावस्तु का ही एक भाग नहीं होते उनकी पृथक सत्ता होती है और घटनाएँ उनके अधीन होती हैं। ये परिस्थितियाँ या घटनाओं के दास नहीं बल्कि परिस्थितियाँ या घटनाएँ स्वयं उनके हथियार पर नाचती हैं। ये चरित्र प्रायः आदि से अन्त तक एक रस रहते हैं। आरम्भ से ही इनमें एक पूर्णता तथा अपरिवर्तनशीलता रहती है। उदाहरण के लिए हम आचार्य जी के उपन्यास 'हृदय की परख' की सरला और 'हृदय की व्यास' की मुल्ला को ले सकते हैं। इनमें आरम्भिक पृष्ठों में ही हमें इनके प्रधान पात्रों का जो परिचय मिलता है उसमें अन्त तक हमें उलट फेर करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। यही उन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है। वे एक सुपरिचित भूदृश्य के समान होते हैं जो कभी-कभी छाया-प्रकाश के विशेष प्रभाव द्वारा परिवर्तित सा होकर अथवा किसी दूसरे कोण से देखने पर हमें आश्चर्यामिष कर देता है। पात्रों के घुम बोध आदि उनमें आरंभ से ही रहते हैं वे नहीं बदलते। केवल बदलता है तद्बिषयक हमारा ज्ञान^१ आचार्य जी ने इस प्रकार के उपन्यासों के पात्र अधिकाधिक व्यक्तिमुखी हैं। इन्हें हम आत्मकीन पात्र कह सकते हैं जिनकी समस्याएँ जिनके हृदय का संघर्ष उनकी अत्यधिक लविहनात्मकता के परिणाम हैं। ऐसा सपना ही मागों सेवन ने अपने कथना लोक में कल्पित पात्रों की सृष्टि कर रही है जो उस अत्यधिक प्रिय है। इन्हें स्वरूप देने के लिए विभिन्न स्थितियों का निर्माण करके और उनमें उन्हें रखकर उनमें चरित्र के उभ विशेष पक्षों को प्रकाशित करने का प्रयास किया

गया है।^१ इस प्रकार के पात्रों में हम सरसा (हृदय की परल) सुवशा (हृदय की प्यास) माया देवी (अदक-बवस) बाभा (बाभा) रेखा (परवर युग के दो कुत) तथा पुस्य पात्रों में सत्य (हृदय की परल) प्रवीण (हृदय की प्यास) सुपीत्र (आरमयाह) हृत्प्रसाद (अदक-बवस) अनिल (माभा) विसीपरम सुनीमरत (परवर युग के दो कुत) आदि को ले सकते हैं। इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है इन पात्रों का अपना निज का व्यक्तित्व। और अपने इस व्यक्तित्व के कारण ही ये आदि से अन्त तक आकर्षण के बँध बने रहते हैं।

अलौकिक या असाधारण पात्र

अलौकिकता के अर्थ हैं अपौरुष्यमानविक असाधारण विविध कल्पनाओं का संयोजन (तित्तिस्म तथा आहू के चमत्कार, ईवी कारनामे) ऐसी घटनाओं अथवा वर्णनों के समावेश से एक असाधारण और मिथ्या वातावरण पैदा हो जाता है। इससे मानवीय भावनाओं की प्रवीणता कम हो जाती है यही साधारणीकरण में बाधा डालती है।^२ अलौकिकता एवं असाधारणता में भी अन्तर है। जब पात्र में असाधारण घाटीरिक या आरिभक बल दिखाई दे तो वह महामानव बन जाता है। अतिहीन मानव में जब अलौकिकता का समावेश हो जाता है तब वह पौराणिक राजस पिशाच या राजस कहलाने लगता है।^३ आचार्य जी के उपन्यासों में इन दोनों ही प्रकार के पात्र प्राप्त होते हैं। कुम्हनी अया पुरुष उदयन अमुर आदि (नमरवधू) इन्द्र इन्द्र मेघनाथ मारीच आदि (अर्थ रसाम) में अलौकिक पात्र हैं। सोमप्रम हरिकेशीबक अम्बपाली (नमरवधू) राजस राम आदित्य हनुमान आदि (अर्थ रसाम) संयोजन अमर आदि (सोमनाथ) असाधारण पात्र हैं।

आचार्य जी के उपन्यासों के कतिपय प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्र

पीछे हमने आचार्य अतुरसेन जी के समस्त पात्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यहाँ हम उनकी चरित्र-चित्रण शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले कतिपय प्रमुख पात्रों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं कि आचार्य जी के प्रमुख पात्रों की संख्या भी लगभग १०६ है। इनमें चरित्र चित्रण शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले पात्रों की संख्या भी साठ से

१ त्रिशी उपन्यास, पृ २३६।

२ उपन्यासकार अम्बालाल अर्मा डा० त्रिहल-पृ. १३७।

३ ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार डा० गोपीनाथ त्रिहारी—पृ २५-२९

रम न होगी। इन सभी के चरित्र का विरलेपण करना यहाँ निश्चित रूप से इच्छित है। अतः यहाँ हम केवल उदाहरण के लिए पाँच प्रमुख पात्रों के चरित्रों का विरलेपण प्रस्तुत करेंगे। आगे इसी विरलेपण के आधार पर हम आचार्यों की ही पात्र-निर्मायकता एवं चरित्र-चित्रण विषयक प्रमुख विशेषताएँ देने का प्रयत्न करेंगे।

रावण अगदीश्वर

चरित्र से सम्बन्धित घटना पत्र—

'बर्ष रत्नाम' उपन्यास का नायक प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने राम को परमेश्वर एवं रावण को अपदीश्वर माना है। आदि से अंत तक रावण का चरित्र ही प्रस्तुत उपन्यास में छाया हुआ है। इसी चरित्र के कारण प्रस्तुत उपन्यास का सम्पूर्ण घटनाचक्र घटित पाता है। उपन्यास का प्रारंभ ठीक तंतुम नामक अभ्यास से होता है। यहीं से उन्मुक्त विचारण करता हुआ रावण उपन्यास में प्रवेश करता है। उपन्यास के पूर्वार्ध में इस चरित्र के साहसिक कार्यों संघटन कुशलता, बीरता एवं विभवों का ही वर्णन प्राप्त होता है। उपन्यास के पूर्वार्ध के अन्त में राम की पत्नी सीता के हरण के पश्चात् इसका चरित्र पठित होना प्रारंभ होता है और इस पठन का अंत होता है इसके कुछ संहित विनाश द्वार। इसी के पश्चात् प्रस्तुत उपन्यास समाप्त हो जाता है।

शाहीरक रूप रंग और व्यक्तित्व—

रावण का प्रारंभिक परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है 'इतने में एक लक्ष्म भीड़ में आये आया। उसका किशोर वय था उज्ज्वल स्वामन्त्र काकपक्ष पीवा पर लहलहा रङ्गे में कमर में हृष्णाग्नि कण्ठ पर वनुव तूषीर, हाथ में द्रुक, विधाम बल बड़ी-बड़ी बालें प्रघस्त सजाट भीमती मर्से कंचित मृकृटि केहरि सी कटि कठोर पिङ्गलिये, बभय मुद्रा, सुहासमुक्त बभिनन्वित मुखयी।' रावण का यह प्रारंभिक परिचय एक उन्मुक्त, स्वच्छन्द बीर एवं रसिक व्यक्तिके रूप में प्राप्त होता है और उसके यही पुत्र आये उपन्यास में विकसित होते हुए दीख पड़ते हैं।

प्रकृति, शीत स्वभाव, योग्यता और क्षमता—

रावण स्वभाव से ही बीर, साहसी, भोयी निर्भीक एवं दुर्धन्य होता था। वह रणसाधन का महापण्डित होने के साथ-साथ नीति शास्त्र का भी मर्मज्ञ था।

गया है।^१ इस प्रकार के पात्रों में हम सरखा (हृदय की परत) सुजरा (हृदय की प्यास) माया देवी (बदल-बदल) जामा (जामा) रेखा (पत्थर युग के दो बुत) तथा पुरुष पात्रों में सत्य (हृदय की परत) प्रवीण (हृदय की प्यास) सुधीन्द्र (आरमदाह) हृदप्रसाद (बदल-बदल) अनिक (जामा) बिलीपराय मुनीन्द्रत (पत्थर युग के दो बुत) आदि को ले सकते हैं। इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है इन पात्रों का अपना निज का व्यक्तित्व। और अपने इस व्यक्तित्व के कारण ही ये आदि से अन्त तक आकर्षण के केंद्र बने रहते हैं।

अलौकिक या असाधारण पात्र

अलौकिकता के अर्थ हैं अपौरुषेय दानवीय असम्पन्न विभिन्न कल्पनाओं का संयोजन (तिलिस्म तथा जादू के चमत्कार, ईवी कारनामे) ऐसी घटनाओं अपना वर्णनों के समावेश से एक अवास्तविक और मिथ्या साक्षात्करण पैदा हो जाता है। इससे मानवीय भावनाओं की प्रवीणता कम हो जाती है यही साक्षात्करण में बाधा डालती है।^२ अलौकिकता एवं असाधारणता में भी अन्तर है। जब पात्र में असाधारण सांख्यिक या आरिफिक बल दिखाई दे तो वह महामानव बन जाता है। अतिहीन मानव में जब अलौकिकता का समावेश हो जाता है तब वह पौराणिक राजस पिशाच या दानव कहलाने लगता है।^३ आचार्य जी के उपन्यासों में इन दोनों ही प्रकार के पात्र प्राप्त होते हैं। कुन्नी छाया पुरुष उदयन शम्बर जमुर आदि (नगरबन्धु) क्व इन्द्र मेघनाथ मारीच आदि (बयं रक्षाम) में अलौकिक पात्र हैं। सोमप्रम हरिकेशीबल अम्बपाली (नगरबन्धु) राजन राम आदित्य हनुमान आदि (बयं रक्षाम) गंगसर्वत्र चरमत्र आदि (सोमनाथ) असाधारण पात्र हैं।

आचार्य जी के उपन्यासों के फतिपय प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्र

पीछे हमने आचार्य अनुरसेन जी के समस्त पात्रों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। यहाँ हम उनकी चरित्र-चित्रण शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले चरित्रपय प्रमुख पात्रों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। वैसे कि हम पीछे कह चुके हैं कि आचार्य जी के प्रमुख पात्रों की संख्या भी लगभग १०९ के है। इनमें चरित्र चित्रण शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले पात्रों की संख्या भी साठ से

१ हिन्दी उपन्यास पृ २२३।

२ उपन्यासकार बुद्धाचलनाथ वर्मा डा० तिहल-पृ १३७।

३ ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार डा० मोदीनाथ तिवारी—पृ २८ २९

राम न होमी। इन सभी के चरित्र का विश्लेषण करना यहाँ निरिच्छ रूप से कठिन है। अब यहाँ हम केवल उदाहरण के लिए पाँच प्रमुख पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। आगे इसी विश्लेषण के आचार पर हम आचार्य जी की पात्र-निर्माणकला एवं चरित्र-निर्माण विषयक प्रमुख विशेषताएँ देने का प्रयत्न करेंगे।

रावण जगदीश्वर

चरित्र से सम्बन्धित बटना शब्द—

'बर्ष रजाम' उपन्यास का नायक प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने राम को परमेश्वर एवं रावण को जगदीश्वर माना है। आदि से अंत तक रावण का चरित्र ही प्रस्तुत उपन्यास में छाया हुआ है। इसी चरित्र के कारण प्रस्तुत उपन्यास का सम्पूर्ण बटनाशक पति पाठा है। उपन्यास का प्रारंभ 'ठिक तंदुल' नामक अध्याय से होता है। यहीं से उन्मुक्त विचरण करता हुआ रावण उपन्यास में प्रवेश करता है। उपन्यास के पूर्वार्ध में इस चरित्र के साहसिक कार्यों संपन्न कुसुमता वीरता एवं विजयों का ही वर्णन प्राप्त होता है। उपन्यास के पूर्वार्ध के अन्त में राम की पत्नी सीता के हरण के पश्चात् इसका चरित्र पतित होना प्रारंभ होता है और इस पतन का अंत होता है इसके कुछ सखि बिनाश द्वारा। इसी के पश्चात् प्रस्तुत उपन्यास समाप्त हो जाता है।

शाारीरिक रूप रंग और व्यक्तित्व—

रावण का प्रारंभिक परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है 'इतने में एक तरफ भीड़ में जाने आया। उसका किरीट बग या, उज्ज्वल श्यामवर्ण काकपल ग्रीवा पर लहर रहे थे कमर में इन्द्राग्नि शस्त्र पर अनुप सूचीर, हाथ में ध्रुव बिजाल बल बढ़ी-बढ़ी बाँधे प्रसन्न लज्जा भीमती मर्से कंचित मृदुलि केहरि सी कटि, कठोर पिंडकिरे, अमय मुद्रा सुहासयुक्त अभिमानित मुसभी।'^१ रावण का यह प्रारंभिक परिचय एक उन्मुक्त, स्वच्छन्द वीर एवं रक्षिक व्यक्ति के रूप में प्राप्त होता है और उसके यही गुण आगे उपन्यास में विकसित होते हुए ही लक्ष पड़ते हैं।

प्रकृति, शील स्वभाव, योग्यता और क्षमता—

रावण स्वभाव से ही वीर, साहसी यौमी निर्भीक एवं दुर्बल योद्धा था। यह स्वभाव का महापण्डित होने के साथ-साथ नीति शास्त्र का भी समर्थक था।

१ बर्ष रजाम आचार्य बंगुरसेव—पृ. २५।

‘उसके शरीर में कुछ कार्य और वैश्यवंश का रक्त था। उसका पिता पौषस्थ विद्यवा कार्य ऋषि था और माता वैश्य राजपुत्री थी। उसका पालन-पोषण कार्य विद्यवा के आश्रम में उन्हीं के तत्त्वाश्रयान में हुआ।’ वास्तव में राजा के मन में तीन तरह काम कर रहे थे। उसका पिता कुछ कार्य और विद्वान वैदिक ऋषि था उसकी माता कुछ वैश्य वंश की थी उसके अनुबान्धव बहिष्कृत कार्यवशी थे। उन्हें त्रिआकर्म तथा यज्ञ से श्रुत कर दिया गया था।^१ इसी कारण से उसने भारत और भारतीय कार्यों को दक्षिण करने उन पर आधिपत्य स्थापित करने और सब कार्य जनार्थ बातियों के समूचे नृवंश को एक ही ‘रस संस्कृति’ के आधीन समान भाव से वीक्षित करने का विचार किया था। तत्कालीन परम्पराओं के अनुसार उसने अपने इस नृवंश के सब धार्मिक और राजनीतिक मेलक अपने हाथ में लेने का संकल्प बृद्ध किया।^२ उसने अपने इस बृद्ध संकल्प को शीघ्र ही पूर्ण करना प्रारंभ कर दिया था। उसने शीघ्र ही देवों और आर्यों के बृद्ध संगठन को अपने पुरोपाय से हिला दिया। उसने सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों ही प्रकार के विप्लवों का सूत्रपात किया था। इस कार्य के लिए मेधावी मन्त्रिण्य और साहित्यिक शरीर ही यथेष्ट था तिस पर उसने साय सद्भ्योगी मुमाम्बी मयप्रवण प्रहस्त महोदर अजम्पन आदि महारथी सुमट और विचक्षण मन्त्री थे। कुम्भकर्ण-सा माई और मेघनाद-सा पुत्र था। इसी कारण उसकी शक्ति अपनी अरमसीमा पर पहुँच गई थी। उसने अपनी इस शक्ति और योग्यता के द्वारा शीघ्र ही यम कुबेर, वरुण और इंद्र के चारों देवलोको के लीकपाशों और आर्यावर्त के प्रमुख राजाओं को जय कर लिया था। आर्यावर्त के बड़े-बड़े सम्राटों को उसने एकाकी ही जय किया था। इस जय यात्रा में उसे केवल तीन स्थानों पर पराजित होना पड़ा था। प्रथम मायावती नगरी में अपने साङ्ग अनुराज शम्बर से दूसरे^३ काहिष्मती में अकवर्ती अजुन से^४ और तीसरे वातराज वाली से। अंतिम दो से पराजित हुए भी उसने मीठी सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।^५

१ अर्थ रत्नामः आचार्य अनुरतेन—पृ १६१।

२ अर्थ रत्नामः आचार्य अनुरतेन—पृ १६१।

३ अर्थ रत्नामः आचार्य अनुरतेन—पृ १६१ १६२।

४ अर्थ रत्नामः आचार्य अनुरतेन—पृ १६६।

५ अर्थ रत्नामः आचार्य अनुरतेन—पृ ३४६ ३४७।

६ वास्मीकि राजावध उत्तरकांड सर्ग १८ १९ में भी यह प्राप्त है।

किसी संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार किस प्रकार करना चाहिए इसका उस मनीमांति ज्ञान वा ठनी उसने अपने द्वारा स्थापित 'रस संस्कृति' के प्रचार के लिए सर्वप्रथम वेद का सम्पादन किया। उस समय वह ही एक मात्र कार्य साहित्य था—वह भी मौखिक। अपने पिता से उसने वेद पढ़ा था। उस पर विचार किया। इसी वेद का उसने सम्पादन किया। ऋचाओं पर उसने टिप्पणियाँ तैयार कीं। मूक मंत्रों की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच-बीच में बृद्धि मठ किया। इस प्रकार मूक बंध और रावण इत त्रिपिण्डियाँ और व्याख्याएँ सब मिलाकर वेद का एक ऐसा संस्करण तैयार हो गया जो चम्पूरीप के सब आर्यों तथा ब्राह्मणों के लिए मान्य हो गया कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव से। आगे चलकर यही रावण भाष्य लिपिपी सहित 'कृष्णयजुर्वेद' के नाम से विख्यात हुआ। इसमें पशुपत मद्यपान स्त्री समर्पण विपनपूजन यौवज मरण शाङ्गणमन कुमारीपण आदि का विधान सम्मिश्रित कर दिया गया जो ब्राह्मण में बहिष्कृत आर्यों एवं असुरों की परिपाटी थी।^१ इसके अतिरिक्त उसने इसमें मांसभक्षण और प्राणिपण के साथ-साथ मद्यपान एवं पर स्त्री-गमन भी बिहित कर दिया था।^२ यह था उसका सैद्धांतिक सांस्कृतिक प्रभाव इन सिद्धांतों को ही आगे चलकर उसने व्यावहारिक रूप भी प्रदान किया। वह चिस्त पूजक था। जहाँ कहीं वह जाता—एक स्वयं निमित्त सिंग साथ के बाठा उसे बाहु की बेदी पर स्थापित करके वह सिंग पूजन करता था।^३ इतना ही नहीं इसने बलपूर्वक वैदिक यज्ञानुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किये—इसने सहस्रों राजसों को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं कार्य श्रुति रावण विरोधी क्रिये से मत्र कर रहे हों वहाँ बलपूर्वक बलि मांस और मद्य की आहुति दो।^४ अपनी 'रस संस्कृति' को स्थापित करने में उसने बर्म को त्याग दिया नियमों का उल्लंघन कर दिया। केवल इतना ही नहीं अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए वह अधिक से अधिक बलाचार और पाप करने तक को प्रस्तुत हो गया था। उसने अपनी संस्कृति के प्रसार के लिए राजसों द्वारा मत्र कर्ता श्रुतियों ही को मार कर बलि देना प्रारम्भ कर दिया। नर मंसज उसका और उसके अनुयायियों का एक व्यापार हो गया था।^५ वह मधर्मी होने हुए भी बीर, साहसी और निर्भीक था। इसी रावण की योग्यता और क्षमता पर उसके प्रतिद्वन्द्वी राम भी विमोहित

१ अर्थ रत्नाम-भाष्य पृ १६२।

२ अर्थ रत्नाम-भाष्य पृ १६३ १६४

३ अर्थ रत्नाम-भाष्य पृ १६५ साथ ही देखिए वास्तवीक राजायण उत्तरकांड ।

४ अर्थ रत्नाम-पृ १६९।

५ अर्थ रत्नाम-भाष्य पृ १६९।

ही उठें थे। उनके मुख से जगन्नाथ ही निकल गया था 'राजसराज राजा का ठेक तो अपरिचीम है। इसकी अंग सुपमा देवताओं से भी अधिक छोमायमान है और इसके पार्षद भी बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं। कौन कहता है कि लंका धीरों से शून्य हो गई है।' इतने पराक्रमी भीरु को भी उपरिचार क्यों मष्ट होना पड़ा। इसका कारण भी उसी के अनुचर जिमीयन के शब्दों में सुनिए—'राजब जिस प्रकार महातेज राजा इन ममानक आकृति वाले भूतों से विरा है उसी प्रकार इसकी अन्तरात्मा भी कनुपपूर्व है। यही कारण उसके प्रबल पराक्रम के अंग होने का है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि इस महावीर के पतन का कारण उसकी अन्तरात्मा का कनुप ही था। वास्तव में सत्य तो यह है कि तुमसा के राजा के समान ही अर्ध रत्नाम के राजा के अरि में भी आचार्य अनुरसेन भी ने 'एक प्रवृत्ति प्रमुख अरि' (टाइप) उपस्थित किया है और यह 'प्रवृत्ति प्रमुख अरि' आदर्शवादी नहीं बरन् वस्तुवादी कल्पनावादी नहीं बरन् प्रत्यक्षवादी निराशावादी नहीं बरन् आशावादी अवृष्टवादी नहीं बरन् संकल्पवादी संशयवादी नहीं बरन् निरक्षरवादी और आत्मिक नहीं बरन् अआत्मिक का है।^१

इतिहास से साम्य और भिन्नता—

यद्यपि आचार्य अनुरसेन जी ने अपने इस उपन्यास में राजा को जगदीश्वर के रूप में चित्रित करना चाहा है किन्तु अपने इस प्रयास में वे सफल नहीं हो सके हैं। उनका राजा भी अपत के पालक के रूप में नहीं बरन् एक दुःखी के रूप में ही चित्रित हुआ है। वह तुमसा के राजा से किंचित् मात्र भी भिन्न नहीं है। तुमसा के राजा के लिए जो शब्द पं० रामचन्द्र गुप्त ने कहे हैं उनसे बड़ी सध्व अर्ध रत्नाम के राजा के लिए भी कहे जा सकते हैं। उनका कथन है जिस प्रकार राम-राम से उसी प्रकार रायण-रायण था। वह भगवान् का उन कसकारने वालों में से था जिनकी कसकार पर उन्हें आना पड़ा था। बालराज में गोस्वामी जी ने पहले उसके उन अत्याचारों का वर्णन करके जिनसे पीड़ित हुए दुनिया पनाह मांगती थी तब राम का अवतार होना कहा है। वह उन राजाओं का सरदार था जो गाँव जलाते थे खेती उखाड़ते थे चौपाए मष्ट करते थे श्रमियों को यज्ञ आदि नहीं करने देते थे किमी जी कोई अच्छी चीज देगते थे तो छीन ले जाते और जिनके नाए हुए

१ अर्ध रत्नाम आचार्य अनुरसेन पृ ७३४।

२ अर्ध रत्नाम आचार्य अनुरसेन पृ ७३४।

३ तुमसावाल—डा० नातप्रसाद गुप्त, पृ २६६।

लोगों की हृदयों में दक्खिन का बमल भरा पड़ा था। अथर्व षाँ और नादिर पाह तो मार्गों लोगों को उसका कुछ अनुमान करने के लिए आए थे। राम और रावण को चाहे अहुरमग्न और अहमान समझिए, चाहे जुवा और शीतान। फर्क इतना ही समझिए कि शीतान और जुवा की लड़ाई का मैदान इस दुनिया से बरा दूर पड़ता था और राम-रावण की लड़ाई का मैदान यह दुनिया ही थी।^१ आचार्य अनुरसेन जी ने अपने रावण को अष्ट विज्ञान एवं वेत्पाठी माना है। तुलसी का रावण भी वेत्पाठी एवं तपस्वी था। तुलसी के रावण में भी कल्प सहिष्णुता थी। वह बड़ा नारी तपस्वी था। उसकी बीरवा में भी कोई खिह नहीं है। माई, पुत्र कितने कृटुम्बी से सबक मारे जाने पर भी वह उसी उत्साह के साथ लड़ता रहा। अब रहे बर्म के सत्य आदि और अंध जो किसी बर्म की रक्षा के लिए आवश्यक होते हैं। उनका दासन राज्यों के बीच वह अवश्य करना रहा होगा। उसके बिना राजस कुछ खूँसे सकता था? पर बर्म का पूर्ण प्राव लोक-व्यापकत्व में है। यों तो बोर और डाकू भी अपने दक क भीतर परस्पर के व्यवहार में बर्म बनाए रहते हैं। सारांश यह कि रावण में केवल अपने लिये और अपने दक के लिये शक्ति अत्रित करने भर को बर्म या समाज में उस शक्ति का सहुपयोग करने वाला बर्म नहीं था। रावण पंडित था राजनीति कुशल था बीर था बीर था पर सब गुणों का उसने सहुपयोग किया। उसने मरने पर उसका ठेक राम के मुख में समा गया।^२ आचार्य जी के रावण का ठेक ही राम के मुख में न समाया हो किन्तु अन्य गुणों में वह बाल्मीकि एवं तुलसी के रावण से विचित्र भाव भी भिन्न नहीं है। ही अपने कुछ गुणों में आचार्य अनुरसेन जी का रावण स्वर्गीय माइकेस मधु मुरनदत्त क रावण से भी प्रभावित है। बाल्मीकि व्यास काकिरास एवं तुलसी रावण के क्रोमल भावों को स्वर्घ नहीं कर सके हैं किन्तु आचार्य अनुरसेन जी ने मधुमुरनदत्त दत्त के समान ही अपने इस उपव्यास में रावण के क्रोमल भावों का भी अनावृत्त करके रक्त किया है। इन्द्रजीत से पुत्र के निबत पर पिता रावण के हृदय की कल्प बसा दर्मनीय है। परलोकमत बीर पुत्र की सम्बोधन करके रावण का वह मममशी विहाय मुक्तकर पापापहृदय मनुष्य भी दहक जायगा। यहाँ पर आचार्य जी का रावण जगदीश्वर भी मान्यवासी हो गया

१ तुलसी-प्रवाहनी तृतीय खंड-सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल-प्रस्तावना पृ १९४
१९५।

२ तुलसी-प्रवाहनी तृतीय खंड-सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रस्तावना पृ १९६।

है।^१ वह ईश्वर को बोध देता हुआ कहता है कि हे विषाता क्या अभाग्य रावण को यही सुनाने के लिए जीवित रक्ता वा ? वास्तव में रावण के इस वाक्य दुःख के सामने रामचन्द्र के घोषित बाणों की तीक्ष्णता क्या थीक है ? वह मेघनाद-सदृश पुत्र एवं प्रमीमा-सदृश पुत्र बभ्रू को विठान्नि में आहुति देने के लिए माया है। उसके हृदय के इन भावों का वर्णन क्या सम्भव है ? बाणी से हृदय के भाव प्रकट करने की दक्षिण उसमें न थी अथवा आत्मसंभव की क्षमता भी वह न रख सका। धीरे धीरे पुत्र की पिता के समझ जाकर वह बोला अरे मेघनाद मैंने आटा की धी कि तुझे राज्यभार देकर महायात्रा करूंगा। परंतु अदृष्ट ने कुछ और ही रचना कर डाली। स्वर्ण सिंहासन की जगह तुझे आज पुत्र-बभ्रू सहित इस अग्निरथ पर बैठा मैं देख रहा हूँ। हाय इसीलिए मैंने तेरा देव साभिष्य करवाया वा ? इसीलिए मैंने उद्धारयता की धी ? हा पुत्र! हा धीर खेच !

अपमर्षी रावण अगरीश्वर सिर झुंटा हुआ भूमि पर गिर पड़ा।^२ वास्तव में पुत्रघोक से कातर रावण को बखर पाठक उसके समस्त अत्याचारों को भूल जाना है और उसकी दुरवस्था पर सहानुभूति प्रकट करने की उसकी इच्छा होनी है। निश्चित रूप से आचार्य चतुरसेन जी अपने रावण अगरीश्वर के हृदय के इस कदम भाव को दिखला कर उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने में एक सीमा तक सफल रहे हैं। अतः हम कह सकते हैं आचार्य जी का रावण भी उतना ही अत्याचारी पापी अधर्मी एवं दुराचारी है जितना बास्मीकि एवं तुस्सी का रावण किन्तु वह अत्याचारी हाते हुए भी सहृदय है अधर्मी होते हुए भी धर्म और माम्य के समझ नत होने वाला है। घोष-वर्धित रावण के व्यवहार में आचार्य जी ने मानव हृदय के इस कूड़ तत्व का उद्घाटन करके उसे पौराणिक रावण के चरित्र से कहीं अधिक सजीव स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक एवं पूर्ण बना दिया है।

असाधारण-चरित्र-नायक सोमप्रभ

'बैराली की नगरवधू' उपन्यास का नायक। प्रस्तुत कथा में उसके चरित्र का चित्रण कुछ इस प्रकार से हुआ है कि उसके चरित्र की रीखाएँ एक-एक कर कथा के अन्त तक उमरनी रही हैं। कथा की समाप्ति के साथ-साथ उसका चरित्र भी पूर्ण रूप से सामने आ पाता है। अथ ने इन तक यह चरित्र अपने

१ अर्थ रत्नाम आचार्य चतुरसेन पृ १५३।

२ अर्थ रत्नाम आचार्य चतुरसेन पृ ७२०।

में एक रहस्य छिपाये हुए रहता है। इसका प्रारम्भिक परिचय ही एक रहस्यमय मुक्क के रूप में दिया जाता है।^१ वह पाठकों के समक्ष एक 'अज्ञात कुसुमीस मुक्क के रूप में आता है।^२ उसका प्रारम्भिक परिचय स्मृति-संचारी वाच ही पाठकों को प्राप्त होता है 'उसे अपने वासनास की विस्मृत स्मृतियाँ याद आने लगीं। आठ वर्ष की अवस्था में उसने यही से तत्परिता का एक सार्वबाह के साथ प्रस्थान किया था। तब से अब तक १८ वर्ष निरन्तर उसने तत्परिता के विद्वत्विमूत विद्यालय में विविध शास्त्र-शास्त्रों का अध्ययन किया था। इन १८ वर्षों में उसने केवल सस्थाभ्यास और अध्ययन ही नहीं किया पार्श्वपुर पवनवेध तथा उत्तर—दुर्ग तक यात्रा भी की। देवासुर सभाम में सचिव्य भाग लिया। पार्श्वपुर के शासतृयास से सिन्धुनद पर मोहा किया। इसके बाद लम्बय सम्पूर्ण अम्बुद्वीप की यात्रा कर वासी।^३ इतने परिचय के पश्चात् यह तबय स्वयं ही पाठकों के मानस में अपना स्थान बना लेता है।

प्रकृति, शीघ्र स्वभाव योग्यता एवं क्षमता—

साम स्वभाव में ही वर्तमान परामण कीर एवं निर्भीक है। निर्दोषों पर होते हुए आत्याचार की वह सहन नहीं कर पाता। सभी कुदमी पर होते हुए आत्याचार को देखकर वह अपने गुरु का भी विरोध करने को तत्पर हो जाता है। किन्तु उसके इस विरोध में भी अशिष्टता नहीं करने नम्रता एवं निर्भीकता है। उसने गुरु के आत्याचार का विरोध अवश्य किया किन्तु उनकी आत्मा की अक्षतता उससे न हो सकी। अहय रखने की गुरु की आज्ञा होते ही एक अतर्कित अनुशासन के बलीभूत होकर उसने तुल्य अहय त्याग दिया' पद्यपि इसमें उसे अपने प्राणनाश की ही सम्भावना अधिक थी।^४

उसकी यह निर्भीकता उचित के लिए अड़ने की प्रकृति एवं उसका यह अटूट आत्म विरवास आदि भव्य गुणों के कारण ही उसका अरिज धारि ने अल्प तक निलसता ही गया है। अपनी निर्भीकता कीरता पुकारके स्वाकम्बन एवं आत्मविरवास के संभव को केहर ही वह विद्वान को सुझाने के लिए दुर्बल कारणगृह में एकाकी प्रवेश करके विरोधियों को पराजित करके राजकुमार

१ बीशाली की नगरबधू, आचार्य अनुरसेन, पृ ७४।

२ बीशाली की नगरबधू, आचार्य अनुरसेन पृ ९४।

३ बीशाली की नगरबधू पृ ७६। ४ बीशाली की नगरबधू पृ ७०।

को निर्विघ्न विकास लाता है। इतना ही नहीं कोचल की घरी समा में वह सभी विरोधियों की उपेक्षा करके रामकुमार विश्वम्भ के सम्राट होने की घोषणा करता है।

सोम में एक ओर जहाँ पर बीरता और निर्भीकता बीज पड़ती है वहीं उसरी ब्यबहार-बुद्धि तथा ए प्रत्युत्पन्नमदित्व भी कम सराहनीय नहीं है। वह प्रत्यक स्थिति के अनुकूल ही अपने को ढालने का प्रयत्न करता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसके चरित्र में इतनी अधिक उभरी हुई है कि कई स्थानों पर अम्बामाविक्र भी ज्ञात होने लगी है। महामात्य बर्षकार के सामने वह एक योद्धा है^१ अपनी जननी आर्यामार्तवी के समक्ष वह एक निपट वाक्क है^२ मसुरों के नगर में वह एक आजापालक के रूप में^३ और जम्मा मगरी में पार्लपुरी के रत्न विक्रेता के रूप में हमारे सामने आता है।^४ अम्बपाली की रक्षा करने के लिए वह एक विचकार बन कर पहुँच आता है और बीणा बालन करके वह उस पूर्णरूपेण अपनी ओर आकर्षित कर लेता है^५ वस्तु बलभद्र बनकर वह बीपाली के बीच हीनों की सहायता करता है^६ मगध का सेनापति बनकर वह बीपाली की सैन्य को पराजित करता है और मगध सम्राट के लुह स्वार्थ को जानकर वह अपने सम्राट से भी युद्ध करके उन्हें प्रत्यक्ष युद्ध में पराजित करता है।^७ इस प्रकार सोम के चरित्र में अनेकव्यपता माने के स्थान पर अस्थामाविक्रता भा गई है। कहीं-कहीं वह जामुषी एवं अम्बारी उपम्यास के नयक की भाँति अभिनय करता हुआ ज्ञात होना लगता है। इसी कारण हमने इनके चरित्र को असाधारण कहा है।

मगध महामात्य बर्षकार से उसका परिचय साम्राज्य एवं महामात्य के प्रति एकनिष्ठ रहने की प्रतिज्ञा और बुद्धि के साथ उसका जम्मा अभियान बाबि घटनाएँ उसके चरित्र के उकाएक मुर्षों को जमघा स्पष्ट करती चकती है। आर्या मागगी से उस जीवन में प्रथम बार ज्ञात होता है कि वही उमकी जननी है। जननी के बर्षन के परचात् भी उसे अपने जनक का परिचय नहीं प्राप्त हो

१ बीपाली की नगरवधु पृ ८०। २ बीपाली की नगरवधु पृ १०६।

३ बीपाली की नगरवधु पृ १८ से २०० तक।

४ बीपाली की नगरवधु पृ २१२ से २१६ तक।

५ बीपाली की नगरवधु पृ ४८९ से ५१७।

६ बीपाली की नगरवधु पृ ५२७ से ५२९।

७ बीपाली की नगरवधु पृ ७२७ से ७२९।

पाठा । केवल उसे इतना ही ज्ञात हो पाठा है कि 'वे विश्वविभूत विभूति के अधिकारी हैं और जीवित हैं ।' इससे उसका स्वामाजिक आत्म सम्मान बाधत हो उठता है । वह आर्या भारतंगी से कहता है 'तो अभी यही प्रयेष्ट है माँ सेप सब मैं अपने कौशल से जान लूँगा । किंतु उसकी माँ का आदेश है 'इस उद्योग मत करना इससे तुम्हारा अनिष्ट होगा । अपनी माँ के इस आदेश को वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है । उसे ही उसे मज्ञात कुलधीक की असह्यगीय सामाजिक पन्थना क्यों न सहन करनी पड़े । यह कर्तव्यपरायण भी ऐसा है कि उसे माँ की ममता और उसका आराधत्य कर्तव्य पय से विमुक्त नहीं कर पाठा ।

सोमप्रथ के अरिष की सबसे बड़ी विशेषता है—उसका साम्राज्य प्रेम । साम्राज्य की रक्षा के लिए वह सम्राट की आज्ञा की मी अवहेलना करने की प्रतिज्ञा कर लेता है । वह सम्राट की आज्ञाओं का अंशानुकरण करने के पक्ष में न होकर साम्राज्य के हित साधन में ही अधिक तत्पर रहता है । उसके देश-प्रेम की भावना के मूल में केवल साम्राज्य की अंगक कामना ही निहित है अपना स्वयं का कोई स्वार्थ नहीं । वह ममक साम्राज्य का विस्तार चाहता है किंतु मगध सम्राट की व्यक्तिगत इच्छाओं के लिए स्वयं के रक्तपात के पक्ष में वह नहीं है । उसने मगध साम्राज्य के विस्तार के लिए अपना पर अभियात किया और अपनी कूटनीतिक चालों से उसे विजित किया^१ साम्राज्य के हित साधन के लिए ही उसने वैशाखी को बस्तु बरुमद बनकर आर्तकित किया^२ एवं वैशाखी से प्रत्यक्ष युद्ध के समय उसने सेना संशालन का सम्पूर्ण भार अपने कंधों पर ले लिया किंतु ज्यों ही उसे ज्ञात हुआ कि इस युद्ध का अर्थस्य रूपित है, यह युद्ध 'एक स्त्रीस कामीपुरुष कर्तव्यव्युत सम्राट की इच्छापूर्ति के लिए किया जा रहा है वैसे ही उसने युद्ध रोक देने की आज्ञा दे दी थी ।'^३ सम्राट विम्वहार के प्रसन्न करण पर उसका उत्तर था कि मैंने तत्तद्विद्या के विश्वविभूत विद्या केन्द्र में राजनीति और रणनीति की शिक्षा पाई है । मेरा यह निश्चित मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए साम्राज्य की सेना का उपयोग होना चाहिए ।

१ वैशाखी की तपारबधू, पृ १०६ ।

२ वैशाखी की तपारबधू पृ २१२-२१६ ।

३ वैशाखी की तपारबधू पृ २२७-२२९ तक ।

४ वैशाखी की तपारबधू पृ ७३१ ।

सम्राट की अभिकाषा और भोवनिष्ठा की पूर्ति के लिए नहीं।^१ सम्राट के विरोध करने पर वह सम्राट से युद्ध करने को उत्तर हो जाता है। वह सम्राट की युद्ध घोषणा को टुकुरता हुआ कहता है। 'इस कार्य के लिए रक्त की एक बूँद भी नहीं गिरायी जाएगी और देवी अम्बपाली मयब के राजमहात्म्य में पट्टराजमहिषी के पक्ष पर अभिपिक्त होकर नहीं जा सकती। 'यदि गयी' 'तो या सम्राट नहीं या मैं नहीं।'^२ इस घोषणा के पश्चात् वह साम्राज्य की मान रक्षा के लिए सम्राट से भिड़ जाता है। ईद युद्ध में वह सम्राट से बिजयी होता है किन्तु अम्बपाली की मिला पर वह सम्राट को प्रामदान देता है।^३ इस युद्ध के पश्चात् ही उसे अपनी अननी आर्या मार्तयी से ज्ञात होता है कि वह सम्राट विम्बसार का ही सर्वप्रपुत्र है और अम्बपाली आर्यवर्षकार से उत्पन्न उसकी भविनी है।^४

सोमप्रभ कर्तव्यपरायण और एवं निर्भीक होने के साथ-साथ उदार एवं त्यागी भी है। वह दूसरे के हित के लिए अपने महान् से महान् स्वार्थ के त्याग करने को प्रस्तुत रहता है। राजकुमार बिद्बम के साथ उसने जो अलौकिक ब्या उदारता का व्यवहार किया वह भारतव में अम्य है। प्रसेनजित की बुद्ध मृत्यु और राजकुमार बिद्बम के बही होन के पश्चात् कोसल राज्य निराभित हो रहा था इस अवसर पर सोम निबिष्ण कोसल का सम्राट बन सकता था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। एक बा —के मस्तिष्क में विचार आया जबस्य (यदि यह विचार उसके मस्तिष्क में न जाता तो वह मानव न रहकर महामानव हो जाता) किन्तु धीम्र ही उसने अपने मस्तिष्क से बलात् ऐसे विचारों को निकाल फेंका। उसने अपने पुरुषार्थ के बलपर कसस राजकुमार बिद्बम को कोसल की यही पर ही नहीं बैठायी बल्कि अपनी प्रेमिका राजकुमारी चण्डप्रभा को भी उसने बिद्बम के लिए त्याग दिया। उसने अपने स्वार्थ के कारण चण्डा राजनन्विनी का अहित करना उचित नहीं समझा उसे इतना ही संतोष है कि आज तक उसने अपनी प्रेमिका का अहित ही किया है। उसके पिता का हनन किया उसे निराभित किया—किन्तु आज हम अज्ञात कुमसील नमस्य बंधक की पानी बनने के स्थान पर वह उस छोड़े त्याग के हाथ राजमहिषी

१ बीराली की नगरवपु पृ ७३१-७३२।

२ बीराली की नगरवपु पृ ७३२-७३३।

३ बीराली की नगरवपु पृ ७३३-७३४।

४ बीराली की नगरवपु पृ ७३२-७३३।

बना सकता है। यही विचार उसे अपनी प्रेमिका के त्याग के लिए प्रेरित करते हैं। प्रेम के ऊपर कर्तव्य हावी हो जाता है। राजकुमारी के इस कथन पर कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ सोम केवल तुम्हें। वह उत्तर देता है और मैं भी तुम्हें प्राणाधिकारी। किन्तु पृथ्वी पर प्यार ही सब कुछ नहीं है। सोचो तो यदि प्यार ही की बात होती तो मैं बिद्बम का क्यों उधार करता। क्यों अपने हाथों उसके गिर पर कोशल का राजकुमुट रखकर कोससेपर कहकर भविष्यवाणी करता। प्रिये आरुहीसे निष्ठा और कर्तव्य मानव-जीवन का धरम उत्कर्ष है। मैंने उसी को निवाहा। अब तुम मुझे सहाय दो।^१ इस वाणी में सच्चे त्याग उधारता एवं आरम बिश्वास से पूर्ण अयाच प्रेम छलकता हुआ झलकता है। उसके इस महान उत्कर्ष से प्रभावित होकर ही राजकुमारी चन्द्रप्रभा कहती है मैं जानती थी तुम नहीं करोगे। सोम प्रियदर्शन किन्तु मेरे प्रत्येक रोम में तुम्हारा वास है और आजीवन रहेगा। जीवन के बाद भी यदि चिरन्तन काल तक।^२ अपने सूत्र स्वार्थ त्याग के द्वारा उसने कितनी सरलता से राजकुमारी के हृदय को विजयी कर लिया।

राजकुमार बिद्बम भी सोम के इस महान उत्कर्ष एवं उसकी बीरता से प्रभावित है। वे इसे हृदय से स्वीकार करते हैं कि कोशल राज्य उन्हें सोम के कारण ही प्राप्त हो सका। उन्होंने अन्तिम बिद्या के अक्षर पर सोम से कहा भी था 'मित्र सोम अधिक रहन के योग्य नहीं हैं। परन्तु मित्र कोशल का वह राज्य तुम्हारा ही है। किन्तु सोम बिद्बम की विवशता समझता है। वह यह जानता है कि उसका राजकुमार के निकट रहना कोशल के हित में नहीं। बिद्बम के इस कथन पर कि 'मित्र राजनीति ही तुमसे मेरा बिछोह कराती है। वह राजकुमार से कहता है 'और मैं बहुत कुछ महायज्ञ। परन्तु राजनीति मानव-जनपद की धरम व्यवस्था है। उसके लिए हमें त्याग करना ही होगा।^३ और वास्तव में वह सभी कुछ यहाँ तक कि अपनी प्रेमिका भी बिद्बम को देकर छूटे हुए कोशल त्याग कर चल देता है। उसकी विदा के समय राजकुमार बिद्बम का केवल यह वाक्य ही कोशल को सब कुछ देकर मित्र।^४ (तुम जा रहे हो) सोम की महानता का उसके मध्य त्याग को एवं

१ वैशाखी की नगरवधू पृ. ४७०।

२ वैशाखी की नगरवधू पृ. ४७१।

३ वैशाखी की नगरवधू पृ. ४६६-४६७ तक।

४ वैशाखी की नगरवधू पृ. ४६७।

विद्वज्ज के कृतज्ञ स्वभाव को व्यक्त कर देता है। वास्तव में सत्य तो यह है कि सोमप्रभ के शौर्य कौशल और सरसाहस के समान ही उसका प्रेम भी उद्दीप्त है। वह दुस्साहस कर जम्पा विजय करता है जम्पा की राजकुमारी को उसके भेष के लिए विसर्जित करता है और अम्बपाली को उसके सम्मान के लिए। उसमें त्याग और विसर्जन के ऊँचे तत्व हैं। ऐसे ऊँचे कि कदाचित ही मनुष्य वहाँ तक पहुँच सक। अतः सोमप्रभ को एक असाधारण चरित्र नायक कहा जा सकता है।

उपन्यास में प्रस्तुत चरित्र का महत्व और अर्थ चरित्रों पर उसका प्रभाव—

जैसा कि प्रथम ही कहा जा चुका है कि 'नगरवधू उपन्यास का यह नायक है। उपन्यास का सम्पूर्ण घटना चक्र इस पर और इसकी मगिनी अम्बपाली के चरित्र पर ही आधारित है। यदि प्रस्तुत उपन्यास से इसके चरित्र को निकाल दिया जाय तो निश्चित रूप से उपन्यास का कथा-सौंदर्य समाप्त हो जायगा। अब रहा प्रभाव का प्रश्न? प्रस्तुत उपन्यास के लगभग सभी प्रमुख पात्र इसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए बीज पड़ते हैं। बँसाली की नगरवधू अम्बपाली मगधसम्राट विम्बसार राजकुमार विद्वज्ज राजकुमारी अन्नप्रभा एवं कुन्ती आदि प्रस्तुत उपन्यास के सभी मुख्य पुरुष एवं माटी पात्रों पर इसके व्यक्तित्व का प्रभाव छाया हुआ स्पष्ट बीज पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास में चार प्रमुख राज्यों—बँसाली मगध कोसल एवं जम्पा की कथाएँ प्रथम-प्रथम चली हैं इन चारों राज्यों की कथाओं में एक शृङ्खला इसी पात्र के कारण सम्भव हो सकी है। वह जन्म से मागध है किन्तु इसका कार्यक्षेत्र बँसाली कोसल एवं जम्पा तक व्याप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं प्रस्तुत उपन्यास की कथा से इस पात्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसके क्रियाकलाप घटनाओं को जन्म देते हैं और चटनाएँ कथा को अग्रसर करती चली हैं। इससे कथा जन्त तक अपनी स्वानादिक गति से बढ़ती चली गई है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सोमप्रभ ही बँसाली की नगरवधू उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरुष पात्र है।

धर्मान्ध, दुर्दान्त विज्ञेता महमूद

चरित्र से संबंधित घटना चक्र—

'सोमनाभ' उपन्यास का प्रतिनायक। उपन्यास का सम्पूर्ण घटनाचक्र यही चरित्र के कारण गति पाता है। कथा का प्रारंभ और अन्त दोनों ही

इसके बरिब से सम्बन्धित घटना मृग से होते हैं। सोमनाथ महात्म्य को विजय करने के दृढ़ संकल्प को लेकर ही यह बरिब प्रस्तुत उपन्यास में प्रवेश करता है। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह प्रथम एकाकी साधुबेध में महात्म्य का चक्कर लगाता है। यहीं निर्मात्म्य के लिए छाई गई चौका के रूप पर यह मुग्ध हो जाता है। यह उसका बसाव् हरण करता चाहता है किन्तु भीमदेव एवं नृपसर्बज के मध्य में आ जाने के कारण असफल रहता है। मग इसे पहचान कर भी भीम के प्रतिरोध करने पर भी समा दान देते हैं। इस घटना के पश्चात् ही यह अपने जन्म स्थान गजनी लौट कर महात्म्य पर अधिमान के लिए तैयारी करता प्रारंभ कर देता है। ईब के मोर ही इसने अपनी सम्पूर्ण योजना के साथ सोमनाथ विजय के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में कितने ही जबरजस्त भाए, किन्तु महामुह अपने साहस और विवेक के बल पर इन समस्त अवरोधों का अतिक्रमण कर प्रपति के पथ पर बढ़ता ही गया और अंत में उसने छत्र-बछ से सोमनाथ महात्म्य पर विजय प्राप्त कर उसे ध्वस्त किया। महात्म्य को लूटने के अविरलित उसका उद्देश्य भीमदेव की प्रेरिका और महात्म्य की देववासी चौका को प्राप्त करने का भी था, किन्तु वह चौका के स्थान पर सोमना का प्राप्त कर सका। और अन्त में वह सोमना की ही रूपा से जीवनदान पा उसी के आश्रय की छाँह में अपना सर्वस्व बना चुपचाप गजनी की राह प्रत्यावर्तित हो सका।

शारीरिक स्मरण और व्यक्तित्व—

महामुह उपन्यास के आरंभ में एक छत्रबेधी साधु के रूप में ही आता है और उसके कथा में प्रवेश करते ही कथा में स्थिर आने लगी है इस कारण से उपन्यासकार आरंभ में ही उसके व्यक्तित्व का स्थूल रेखाचित्र देने का अवकाश नहीं निकाल पाया है। यद्यपि उसने अन्य प्रबल पात्रों के व्यक्तित्व का परिचय देते समय ऐसी चित्रण-कला का प्रयोग किया है जिससे उस पात्र विशेष का सजीव चित्र पाठक के कल्पना क्षेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष आ जाता है। इससे एक और वही पात्र के परिचय करते ही पाठक उसके रूप एवं शारीरिक यत्न एवं व्यक्तित्व से पूर्ण परिचित हो जाता है वही दूसरी ओर पात्र के प्रति पाठक का आकर्षण भी स्थूल पड़ जाता है। वह पात्र के समूचे व्यक्तित्व को एक साथ आत्मसात् करने में असफल रहता है। अन्त तक बरिब के प्रति पाठक का आकर्षण बना बचपन रहता है किन्तु वह बरिब से दुःख व्यक्तित्व के कारण नहीं बल्कि बुद्धिपूर्वक कथा के कारण। महामुह के बरिब के प्रति पाठक का उसके व्यक्तित्व एवं कथा दोनों ही के कारण अन्त तक आकर्षण बना रहता है। उक्त

व्यक्तित्व का निर्माण उपन्यासकार ने स्पूल रेखाओं खींचकर नहीं बरन् सूक्ष्म और मंगल्य रेखाओं द्वारा किया है।

प्रकृति एवं शील स्वभाव—

महमूद एक बीर, निर्मय साहसी एवं दुर्भय योद्धा था। उपन्यासकार ने उसके चरित्र का बिस्लेषण करते हुए स्वयं किया है 'महमूद का सच्चा चरित्र बाहे जो हो वह एक बड़ा यादगार आक्रमता और बीर पुरुष था। उसका जीवन ही कठिन अभियानों में बीता। पर उस व्यक्ति में मानवोचित गुण न थे वह मैं कहने का साहस कैसे करूँ ? निस्संदेह वैसा कि मैंने पहले कहा बिभाजन-की विभीषिका से प्रभावित मैंने सभी सम्भव अत्याचारों का आरोप इस अभियान के नायक महमूद पर किया है। परंतु वह मेरी सीमा ही तो थी। कुछ हिंदू होने के नाते नहीं मनुष्य होने के नाते भी। इसीलिए उस सीमा में आकर मैं एक ऐसे महान विजेता के साथ अत्याचार ही करता रहूँ यह मेरी माहित्यक निष्ठा नहीं। अतः मैंने अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक कोमलता भावुकता और प्रेम की सम्पन्नता उसे प्रदान कर दी। मुझे यह याद ही न रहा कि वह मनुष्यों का राजा, सूनी और डाकू है। अस्पृश वह मनुष्य है यह मैं कैसे भूल सकता था। किंतु वह मनुष्य भी साधारण नहीं। महान् विजेता योद्धा और नियन्ता। अतः उसमें जो धर्मशास्त्र के योग्य वा उसका धर्म्य कर उसमें जो पूजा है उसकी मैंने पूजा की। और ऐसा करके मैंने अपना साहित्यिक धर्म पासन किया।'

इस प्रकार उपन्यासकार ने प्रस्तुत चरित्र को अत्यन्त कुशलता के साथ संभारा है। कठोरता और कोमलता दोनों ही प्रकार के गुणों का समन्वय महमूद के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है। महमूद स्वभाव से बड़े कार्यों में साहसी राजसूयों के लिए फटार और मित्रा के लिए कोमल था। उसके दरबार में कवियों तथा दार्शनिकों के विद्वान् दार्शनिक जनों का भी सम्मान होता था। फिरबीसी और अस्मकनी जैसे विद्वानों का वह पोषक था। उसने देश-देश की पुस्तकों का एक बहुत भारी संग्रह बनाने का राजकीय पुस्तकालय में किया था। इस अत्यन्त धन धामर को एकत्र करने में उसने पानी की तरह खर्च किया था। यत्रगी और बैहानों में उसने राज्य घर में बच्चों की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की थी। उसने मुक्त हाथ में लालों खर्च इस कार्य में व्यय किया था। यद्यपि वह स्वभाव से बंजूम और घनलोभुष था पर विद्याविभाष में वह रिल लोभकर नहीं करता था। कविता सुनने का वह अत्यन्त शीरीन था। फिरबीसी

के पूर्ववर्ती कवि अंधारी तथा ईरानी कवि दाकिनी को उसमें छाहतामा लिखने की आज्ञा दी थी जिसे फिरवौसी न पूरा किया था ।^१

नामिक कट्टरता एवं स्वच्छाचारिता के कारण उसका स्वभाव क्रूर, बठोर एवं जिद्दी हो गया था । वह अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों को हीन दृष्टि से देखता था । अन्य धर्मावलम्बियों के लिए वह घृणुघूठ था । हिंदुओं की पवित्र एवं पूज्य मूर्तियों को ध्वस्त करने में वह अपना गौरव समझता था । उसका विद्वान्त था कि 'मैं बुद्धा का बंधा महमूद बुद्धा के हुक्म से कुछ छोड़ता हूँ ।'^२ सामनाप महात्म्य को ध्वस्त करना अपने प्राण रसक गणसर्वत्र की निर्मम हत्या करना निरीह प्राणियों का रक्तपात करके प्रसन्न होना कैदियों के काफिले पर अत्याचार करने गौरव का अनुभव करना आदि कार्य महमूद की क्रूर, जूनी निर्दम एवं दुर्गन्ध रक्त पिपासु प्रकृति को प्रकट करते हैं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उपन्यासकार ने महमूद के कठोर स्वभाव के साथ-साथ उसकी कोमल भावनाओं को भी उल्लेख है । वह एक क्रूर एवं दुर्गन्धि घुटेरा ही नहीं बल्कि एक प्रेमी का हृदय रखने वाला मानव भी है । बीता का अस्मिन्ध करने वाली सोमना के सामने वह प्रेम का मिथारी बन कर आता है ।^३ वह सोमना से कहता है 'आनेमन प्यार की इस खोट से मैं अब तक बैठकर था । आज देखता हूँ जैसे मैंने अपनी सारी जिंदगी ही बर्बाद की । अब महमूद जिंदा नहीं रह सकता ।'^४ उसके इन वाक्यों में उसके हृदय की तड़पन स्पष्ट है ।

उसके क्रूर स्वभाव में कोमलता का समावेश उपन्यासकार ने रमाबाई की शर्त्ता के परभाव से करना प्रारम्भ किया है । वह रमाबाई से स्वर्ण कहता है— 'बहुत लोप मुझसे अपने राज्य और शौकत के लिए सड़े । लेकिन इस्लाम के लिए आज तक मुझसे कोई नहीं कड़ा ।'^५ और इस्लाम के लिए सड़ने वाली औरत का हुक्म मानकर ही उसने उसी क्षण देव पट्टन को छोड़कर सना को कूच करने का हुक्म दे दिया था ।^६ इसके परभाव सोमना के सामिन्ध में आज के परभाव तो उपन्यासकार उसके क्रूर स्वभाव में स्वान-स्वान पर कोमलता का स्पष्ट देता ही गया है । यह कोमलता के गुण उसके क्रूर स्वभाव के परिपार्श्व से निकल कर उसी

१ सोमनाथ पृ ७७ ।

२ सोमनाथ पृ ४४७ ।

३ सोमनाथ पृ ३८६ ।

४ सोमनाथ पृ ३८४ ।

५ सोमनाथ पृ ४४८ ।

६ सोमनाथ पृ ३८७ ।

के पूर्ववर्ती कवि मराठी तथा ईरानी कवि बाकिनी का उसने चाहामा लिखने की जामा बी बी जिसे फिरबीसी ने पुरा किया था ।^१

बार्मिक कट्टरता एवं स्वच्छाचारिता के कारण उसका स्वभाव क्रूर, कठोर एवं जिद्दी हो गया था । वह अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों को हीन दृष्टि से देखता था । अन्य धर्मविश्वियों के लिए वह मृत्युव्रत था । हिन्दुओं की पवित्र एवं पूज्य मूर्तियों को ध्वस्त करने में वह अपना पौरुष समझता था । उसका विश्वास था कि 'मैं कुवा का बंरा महमूद कुवा के हुक्म से कुफ़ तोड़ता हूँ ।'^२ सोमनाथ महात्म्य को ध्वस्त करना अपने प्राण रक्षक गंधसर्वत्र की निर्मम हत्या करना निरीह प्राणियों का रक्तपात करके प्रसन्न होना शैदियों के काफिले पर अत्याचार करके यौरव का अनुभव करना आदि कार्य महमूद की क्रूर, कुनी निर्मम एवं दुर्दान्त रक्त पिपासु प्रकृति को प्रकट करते हैं ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उपन्यासकार ने महमूद के कठोर स्वभाव के साथ-साथ उसकी कोमल मानवताओं को भी उल्लेख है । वह एक क्रूर एवं दुर्दम्य मुठेरा ही नहीं बरन् एक प्रेमी का हृदय रखने वाला मानव भी है । चौका का अभिमुख करने वाली शोमना के सामने वह प्रेम का मिखायी बन कर आता है ।^३ वह शोमना से कहता है 'आभेमल प्यार की इस चोट से मैं अब तक बेवचर था । मान देखता हूँ जैसे मैंने अपनी साथी जिद्दी ही बर्बाद की । अब महमूद जिवा नहीं रह सकता ।'^४ उसके इन वाक्यों में उसके हृदय की तड़पत स्पष्ट है ।

उसके क्रूर स्वभाव में कोमलता का समावेश उपन्यासकार ने रमाबार्द की बार्दा के पश्चात् से करना प्रारम्भ किया है । वह रमाबार्द से स्वयं कहता है— 'बहुत लाम मुझसे अपने राज्य और बीमता के लिए लड़े । लेकिन इस्लाम के लिए आज तक मुझसे कोई नहीं लड़ा ।'^५ और इस्लाम के लिए लड़ने वाली बीरता का हुक्म मानकर ही उसने उसी धन देन पट्टन को छोड़कर सेना को कूच करने का हुक्म दे दिया था ।^६ इसके पश्चात् शोमना के साभिध्य में आने के पश्चात् तो उपन्यासकार उसके क्रूर स्वभाव में स्थान-स्थान पर कोमलता का स्पर्श देता ही गया है । यह कोमलता के पुत्र उसके क्रूर स्वभाव के परिपार्त्न से निकल कर उसी

१ सोमनाथ पृ ८७ ।

२ सोमनाथ पृ ४४७ ।

३ सोमनाथ पृ ३८६ ।

४ सोमनाथ पृ ३८२ ।

५ सोमनाथ पृ ४४८ ।

६ सोमनाथ पृ ३८७ ।

यवन आक्रमणकारों को सब सम्भव सहायता देते थे ।^१ मुसलमान के चौहान राजा ब्रजमपाल का समर्थन महमूद ने एक ऐसे ही मौकिया के द्वारा प्राप्त किया था ।^२ शाह मदार की कृपा से ही बहू बर्मगजदेव के सेनापति को कालच देकर छोड़ सका था ।^३ इस प्रकार महमूद ने अपनी दूरदर्शी राजनीति के कारण कुछ के पूर्व ही एक सुपुङ्ग मूमिना निमित्त कर ली थी । उसकी विजय का सम्पूर्ण श्रेय उसकी इस दूरदर्शी राजनीति को ही है ।

उपन्यास में उसका महत्त्व और अर्थ चरित्रों पर उसका प्रभाव—

जैसा कि हम चरित्र से सम्बन्धित बटना जब में लिखता चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक केवल महमूद के चरित्र पर ही आधारित है । यदि केवल इस चरित्र को उपन्यास से निकाल दिया जाये तो कथानक का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा । कल्पना कीजिए कि प्रस्तुत उपन्यास से महमूद के चरित्र को निकाल दिया जाये तो कथानक किस रूप में हमारे सामने आयेगा ? महमूद के चरित्र को निकाल देने पर भारत पर आक्रमण का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है । जब आक्रमण ही नहीं रहा तो उसके अवरोध का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है । अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि महमूद का चरित्र प्रस्तुत उपन्यास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । इतना ही नहीं अन्य महत्त्वपूर्ण चरित्रों का अस्तित्व भी केवल इसी चरित्र के कारण है ।

इतिहास से साम्य और भिन्नता—

आचार्य जी ने महमूद का चित्रण ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किया है । ऐतिहासिक महमूद के चरित्र में भी वे सभी विवेपताएँ प्राप्त होती हैं^४ जो हम पीछे महमूद की 'प्रहति और धीर स्वभाव' में लिखता चुके हैं । आचार्य जी का महमूद केवल दो बातों में ऐतिहासिक महमूद से विभित भिन्न दीख पड़ता है । प्रथम ऐतिहासिक महमूद की सोमनाथ महालय पर अभियान के समय अवस्था लगभग ३५ वर्ष की थी^५ जबकि आचार्य जी का महमूद एकादश उमर हीन पड़ता है । द्वितीय ऐतिहासिक महमूद केवल कुछ दिक्कत नामी एवं बट्टर मुनसमान था किन्तु आचार्य चतुरमेत जी के महमूद में यह सब गुण होने के साथ साथ उसमें एक प्रमी का व्याकुल हृदय भी लिखताया गया है । और

१ सोमनाथ पृ ८० ।

२ सोमनाथ पृ ९८ से ९९ ।

३ सोमनाथ पृ १९४ से १९५ ।

४ इतिह्य भारतवर्ष का इतिहास डा० ईश्वरीप्रसाद पृ १०५-०६ ।

५ इतिह्य भारतवर्ष का इतिहास पृ १०४ ।

उसका यह पक्ष इतना प्रधान हो गया है कि वह उसके समस्त ऐतिहासिक गुणों के ऊपर हावी हो गया है। आचार्यजी का महमूद अपने मौखिक से कहता है कि 'वही (नाज़नीन) मेरा दीनो ईमान है' इतना ही नहीं वह इस्लाम की भी उस नाज़नीन के बाहरी चीज़ मानता है।^१ उसके यह वाक्य ऐतिहासिक महमूद के मुँह से निःसृत वाक्य नहीं छाठ होते। इसके अतिरिक्त आचार्य जी का महमूद अपने अन्य पुस्तकों में ऐतिहासिक महमूद के विस्तृत निरूपण है।

श्री मुंशी के 'अनसोमनाथ' के महमूद से आचार्य जी के महमूद का अरिज अधिक उभरा हुआ है। श्री मुंशी के महमूद का अरिज एक दूर से देखे हुए मुँदरे के अरिज के समान ज्ञात होता है जब कि आचार्य जी ने अपने महमूद की आत्मा में प्रवेश करके उसका अरिज किया है। प्रथम से हम केवल मय और नृणा मात्र करते हैं जबकि दूसरे से हम मय और नृणा के साथ-साथ सोमनाथ के कारण प्यार भी करते मयते हैं।

निष्कर्ष—

अब देखना यह है कि क्या प्रस्तुत अरिजका अरिज-अरिज कला की कसौटी पर पूर्ण रूप उतरता है? वास्तव में आचार्य अनुरसेन जी ने प्रस्तुत अरिज को बड़े संयम से संसाधन है, इसके अरिज का कृष्टि-जम बड़ी सुन्दरता से अरिज किया गया है। अरिजों और परिस्थितियों में अरिज-अरिज कर उसके अरिज को तथा तथा कर अरिज मया है। अरिज और कोमलता का समन्वय भी एक ही अरिज में अरिजकार ने बड़ी कृपाकता से मय है। अरिज को अरिज करने के लिए अरिजकार ने अरिज की दोनों रीतियों—अरिज और अरिज का अरिज किया है। अरिज अरिजक क अरिज ही अरिज मया है। अरिज और कोमलता दोनों ही अरिज अपने-अपने स्थान पर अरिज प्रतीत होते हैं। अरिज की पूर्णता के कारण ही अरिज अरिज पूर्ण अरिज ज्ञात होता है। उसके प्रेमी अरिज की अरिजकता अरिजकाले में अरिजकार ने अरिजकता का अरिज किया है। इसी कारण ऐसे अरिज, अरिज अरिज एवं अरिजही क अरिज भी हमारी अरिज अरिजकता बनी अरिज है। एक ओर अरिज अरिज देख कर यदि हमें अरिज पर अरिज आता है तो अरिज ओर अरिज 'नाज़नीन' के अरिज अरिजकता देख कर अरिज भी आती है। अरिज मुंशी के महमूद से अरिजकता होते हुए भी पूर्ण अरिजक और अरिज की अरिजकता में अरिज है।

असाधारण रमणी वैशाली की नगरवधू—अम्बपाली

चरित्र से सम्बन्धित घटना-वक्र—

भाषार्थ बनुरसेन जी ने प्रस्तुत चरित्र का निर्माण कल्पना एवं रोमांस के सूक्ष्म संतुलों द्वारा किया है। यह एक निरीह बालिका ने रूप में उपन्यास में परार्पण करती है किन्तु दीर्घ ही अपने अप्रतिम मौन्दर्य के कारण सम्पूर्ण वैशाली गणतन्त्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अपने इस अद्वितीय रूप के कारण ही उसे बन्नात् वैशाली गणतन्त्र के विषय का नान के कारण 'नगरवधू' बनना पड़ता है। नगरवधू बनने के लिए यह वैशाली गणतन्त्र से मुंहमांगा मूल्य तो लेती ही है किन्तु तो भी इसके हृदय से वैशाली गणतन्त्र के प्रति प्रतिशोध की आकाशा छाँट नहीं होनी। और छाँट हो भी कैसे? नगरवधू बनने के पूर्व यह संभागार में स्पष्ट शोषणा करती हुई कहती है 'बगरी संघ का यह विषय-कानून वैशाली गणतन्त्र के पक्षी गणतन्त्र का बखंड है। भले मेरा अपराध केवल मही है कि बिनाता ने मुझे यह असाह रूप दिया है। इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के औरत को छोड़ना और अपमान के पंच में डबो देने को विषय की जा रही हूँ। इसी से मुझे स्त्रीत्व के उन सब अधिकारों से वंचित किया जा रहा है जिस पर प्रत्येक कुसवधू का अधिकार है। अब मैं अपनी रजि और पसर से किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकती। उसे अपनी देह और अपना हृदय अर्पण नहीं कर सकती। अपना स्नेह मेरा हृदय और रूप से लभय यह अपमान देह लेकर मैं वैशाली की हाट में ऊँचे-नीचे बाम में इसे बेचन बैठूँगी। आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विषय कर रहे हैं वह एक बार नहीं—मात्र बार विच्छेद होना योग्य है जिसे आज ये स्त्रीत्व तरण सामन्तपुत्र अपने सङ्घ की तीखी धार और मासों की मोर के बल पर अधुण्य और सुरक्षा रक्षा चाहते हैं' १

इस स्पष्ट घोषणा के फलस्वरूप भी उसे बन्नात् नगरवधू बनना पड़ा फिर उसके हृदय की प्रतिशोध की आकाशा गाम्भ के हो सकती थी। उसने वैशाली गणतन्त्र से प्रतिशोध के लिए ही अपने प्रेमी हर्षदेव को गणतन्त्र के विच्छेद उत्तमिन किया २ महाराज उदयन को भी इस विषय का नान के विपदा में उतसाने की श्रेष्ठ की शोषण को भी अपने पक्ष में मिलाने का पूर्ण प्रयत्न किया और इन सभी के द्वारा अपने कार्य को पूर्ण होता न देना समझाति

महाराज विम्बसार से बहु धन का सौदा कर बैठी।^१ महाराज विम्बसार इसी के कारण बैशाही पर आक्रमण करते हैं।^२ किंतु अपने सेनापति सोमप्रभ के कारण उन्हें अन्त में सन्धि करनी पड़ती है।^३ उपन्यास के अन्त में अम्बरासी के जन्म का रहस्य ज्ञात होता है। उसके पिता भार्य बर्षकार एक माता भार्या मारपी है। सोमप्रभ उसका भ्राता है। अन्त में यह अपने जीवन से निराग होकर बौद्ध धर्म ग्रहण कर मयबान् बुद्ध की धरण में लक्ष्मी जाती है।

चरित्र-निर्माण का प्रेरणा स्रोत—

प्रस्तुत चरित्र का निर्माण केवल कल्पना पर ही आधारित नहीं है बल्कि इस चरित्र से उपन्यासकार कई बार स्वप्न में साक्षात्कार कर चुका था। इस चरित्र के निर्माण की प्रेरणा उपन्यासकार को सप्तप्रथम एलोरा और अजन्ता की मूर्तियों व स्त्री चित्रों से प्राप्त हुई थी। इस विषय में उसका कथन जल्दबानी है—
 "अम्बरासी की एक स्थिर मूर्ति का एक चित्र भी मेरे मस्तिष्क में अंकित होता गया। बहुत दिन पूर्व एलोरा और अजन्ता की मुठारें देखी थीं। अब जबकि स्त्री-चित्रों का मैं पसंदी देकर अम्बरासी की उनमें व्यक्ति करते था। बीरे-बीरे अम्बरासी की एक लोकोत्तर मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तत्पश्चात् उस प्राचीन काल में मुझे अम्बरासी का हिमायती बना दिया। मैंने साहित्य और श्रृंगार के रस में उस मूर्ति का दुबलियाँ दे देकर उसे अपने साथ इस प्रकार लगी-भूत कर लिया कि एक दिन जब मैं शीतल-स्निग्ध चरित्र में सोया हुआ था तो मैंने आकाश में वह उज्ज्वल सत्रीय मूर्ति स्पष्ट देखी। उसके होठ हिलते हुए, आँसू हवा में फटकर उड़ा हुआ तेज आकाश करते हुए स्पष्ट मैंने देखे। मेरे शरीर के सम्पूर्ण जीव रोप कल्पना के बर्णन हो गए और मैंने कहा 'आओ अम्बरासी। और अम्बरासी ने माथा। मैंने इन्हीं आँसू से उसे स्वच्छ नील यवन में चन्द्रमा के उज्ज्वल आकाश में उसे गाँधे देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी आकाश में ही उसक निकट पहुँच गया हूँ। मैं उसक दबाव से निकलते हुए शीतल और मृदु में सहज वैचित्रियों की ध्वनि प्रत्यक्ष अनुभव करता रहा। एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति पायल हो गई और मैं बेग से नीचे आ पड़ा।"

१ बैशाही की नगरवधू, पृ २२६ से २२८ तक।

२ बैशाही की नगरवधू, पृ ७३१ से ७३४ तक।

३ बैशाही की नगरवधू, पृ ७३४ से ७४६ तक।

सम्भवतः मेरे मूँह से नीच या घब्र निकला था, और पत्नी ने उठकर मुझे सावधान किया था। मैंने तुरंत उठकर उस मृत्यु का वर्णन किया जिसका संशोभित रूप इस उपन्यास में कल्पमबन्ध है।^१ यही स्वप्न में देखा अम्बपाली का रूप और सौन्दर्य ही प्रस्तुत चरित्र के निर्माण का प्रेरणा स्रोत है।

शारीरिक रूप रंग और व्यक्ति व—

अम्बपाली की जिस मूर्ति की आचार्य अनुरसेन जी ने स्थापना की है पढ़ देवी न होकर देवी और मानवी न होकर मानवी है। उस मूर्ति को वे कितना सुंदर संसृष्ट और उच्च भावनापुक्त बना सकते थे बनाया है। वह डोंगी भी नहीं है पत्थर भी नहीं है मिट्ट्याण भी नहीं है। हाइ-मांस की स्त्री है। दया उशाखा स्नेह के साथ आत्म-सम्मान गर्व और त्याग की चरम शक्ति अपने व्यक्तित्व में समेटे हुए है।^२ फिन्तु इतना सब होते हुए भी वह 'नगरबधू' है साधारण कुल बच्चों के अधिकारों से वंचित। अम्बपाली के अग्रिम शारीरिक सौन्दर्य का प्रथम परिचय उपन्यासकार ने इस प्रकार दिया है 'अम्बपाली ने सुभ्र कौशेय धारण किया था। उसके जूड़ाग्रजित केच-कुन्तल लाने फूँकों से बूधे हुए थे। ऊपरी बज्र कुला हुआ था। बेह्यपिठ जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अजन्म टुकड़े से मल्लपूर्वक खोदकर गड़ी थी। उससे तेज आभा प्रकाश माधुर्य कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप इतना शोच्य इतनी अपूर्वता कभी किसी ने एक स्थान पर देखी नहीं थी। उमने कंठ में बड़े-बड़े सिंहल के मोतियों की माला बाण की थी। कटिप्रदेश की हीरे-जड़ी करपनी उसकी सींग कटि को पुष्ट नितम्बों से विभाजित सी कर रही थी। उसक मुहोत्त गुच्छ मलिनचित्त उपानत से जिनके ऊपर स्वर्ण वैजनिया चमक रही थी अपूर्व घोमा का विस्तार कर रही थी। मानों वह संघागर में रूप योवन मग सौरभ को बधेरती कभी आई थी।^३ उसने इस रूप क प्रभाव को भी देखिए जनपद मुटा-या मुछित-या स्तम्भ सा पड़ा था। आत्र वैद्याली का जनपद देल रहा था कि बिद्व की योवन थी अम्ब पाली की बेह्यपिठ में एकीभूत हो रही थी। जिसे देल जनपद स्तम्भित चकित और जड़ हा गया था। वह अपने को जीवन को और जयत् की भी भूल गया

१ वैद्याली की नगरबधू भूमि पृ ७७९ से ७८० तक।

२ आतापन-आचार्य अनुरसेन पृ २६।

३ वैद्याली की नगरबधू पृ १८ से १९ तक।

वा ।^१ इस रूप विषय द्वारा अम्बपाली के पारिरीक साव्य एवं अप्रतिम सौन्दर्य को उभारने में तो उपन्यासकार सफल हुआ ही है साथ ही उसने अपनी बोमल कल्पना के द्वारा सौन्दर्य के प्रभाव को भी उभार कर रक्त दिया है ।

प्रकृति, शील स्वभाव, योग्यता एवं क्षमता

अम्बपाली प्रकृति से बोमल किन्तु स्वभाव से निर्भीक समन की पक्षी वृद्ध महत्वाकांक्षी स्वाभिमानी कसा एक साहित्य की प्रेमी नृत्य निपुण संयमी प्रयत्न तेजमुक्त आधावावी बुद्धिमती एवं प्रेरक शक्ति से पूर्ण असाधारण रमणी है ।^२ असाधारण इस कारण से कि उसका चरित्र अन्य मारी पार्श्वों से भिन्न है । वह नगरबधू होते हुए भी नगरबधू नहीं है तभी तो वह गगन सभाट विम्बहार के समस्त आत्मसमर्पण करते हुए कहती है आपकी चिरकिफरी अम्बपाली इस समय तक विमुक्त कुमारी है और वह आपकी आभरण प्रतीक्षा करेगी ।^३ उसकी बुद्धता एवं निर्भीकता का प्रथम परिचय उपन्यास के प्रारम्भ में ही संभाषार में की गई उसकी स्पष्ट बोधना से प्राप्त होता है ।^४ उसके स्वाभिमान का परिचय तो उपन्यास में कितने ही स्थलों पर प्राप्त होता है । अपने संयम और स्वाभिमान के कारण ही वह नगरबधू होते हुए भी अपने सतीत्व की रक्षा वम एवं काम सौमुप सामर्थ्य एवं सेद्धि पुत्रों से कर सकी थी । उसका असाधारण बुद्धि बल अद्भुत तेज एवं आधावावी दृष्टिकोण भी सराहनीय है । बकात् नगरबधू बना दिये जाने पर भी वह अपने जीवन से निरास नहीं हुई । उसकी तीव्र बुद्धि ने ऐसे कठिन अवसर पर भी उसका साथ नहीं छोड़ा । उसने अपनी इसी बुद्धि का उपयोग करके नगरबधू बनने के पूर्व ही यत्न से अपनी समस्त शर्तों को स्वीकार करवाया^५ और अपनी

१ बीघाली की नगरबधू पृ १९ ।

२ बीघाली की नगरबधू एक असाधारण रमणी है । उसका प्रेम भी असाधारण है । हर्ष रस को प्रेम करती है, वह उदयन से पराभित होती है, सौमप्रम को शरीर शान करती है और विम्बहार के लिये पुत्र उत्पन्न करती है । तिस पर भी उसके प्रेम को लेखक डँबा बताता है असाधारण रूप देता है । ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार डा० गोपीनाथ त्रिबारी पृ १६६ ।

३ बीघाली की नगरबधू पृ २६१ ।

४ बीघाली की नगरबधू, पृ २० ।

५ बीघाली की नगरबधू, पृ २० से २७ ।

इसी बुद्धि के द्वारा ही वह कामी पुरुषों को मूर्ख बनाती रही।^१ उसने अपने को बलात् नगरवधू बनाने का प्रतिशोध लेने के लिए इसी बुद्धि का उपयोग बैशाखी मजदूर को किण्वित करने के लिए भी किया था।^२ वह महत्त्वाकांक्षिणी भी कम नहीं। अपने हित साधन के लिए उसने मगध सम्राट बिम्बिसार का केवल आश्रय ही नहीं लिया बल्कि उससे यह प्रतिज्ञा भी करवा ली 'आपके औरस से मेरे धर्म में जो संशय हो वही मगध का आधी सम्राट हो।'^३

अम्बपाली संनीत की अत्यन्त प्रसिद्धि होने के साथ-साथ नृत्य कला में पूर्ण दक्ष भी। वास्तव में सत्य तो यह है कि केवल एक इसी व्यक्तित्व में उपन्यासकार ने काम और रति के सभी आशुषों को एक साथ का रखा है। उसके अक्षय नृत्य पर मुख होकर कौशाम्बीपति महाराज उदयन के मुक्त ने बनायास ही निकल आता है और न बिलोकी में कोई जीववारी बैशाखी की अपवाद कत्वाणी अम्बपाली के समान तीन शायों की छात्र पर नृत्य कर सकता है।^४ सोमप्रभ के समय किया गया उसका अपावित्र नृत्य तो और भी असाधारण है। इसमें उसके पादश्लेष के साथ बीमा आप ही ध्वनित हो उठी थी। वास्तव में यह नृत्य उसकी नृत्य-कला की चरम-परिचयि है।^५

उपन्यास में प्रस्तुत चरित्र का महत्व और अन्य चरित्रों पर इसका प्रभाव—

बैशाखी प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि अम्बपाली 'नगरवधू' उपन्यास की नायिका है। उसी के नाम पर प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण किया गया है। उपन्यास का सम्पूर्ण घटना-क्रम इसके एवं इसके भ्राता सोमप्रभ के व्यक्तित्व पर ही आधारित है। उपन्यास की सम्पूर्ण घटनाओं का केन्द्र प्रस्तुत चरित्र ही है। उपन्यास का प्रारंभ इसके बलात् नगरवधू बनाए जानेवाली घटना को लेकर हुआ है और अन्त इसके भिक्षुणी बनने वाली घटना से। उपन्यास के लगभग समस्त पुरुष-नाम इसके व्यक्तित्व में प्रभावित हैं। बैशाखी और मगध का युद्ध केवल इसी चरित्र के कारण हुआ है अतः स्पष्ट है प्रस्तुत चरित्र का उपन्यास की कथा में अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

१ बैशाखी की नगरवधू, पृ. ६२ से ६७।

२ बैशाखी की नगरवधू, पृ. ४२ से ४३, २३० से २६१ तक।

३ बैशाखी की नगरवधू, पृ. २६०।

४ बैशाखी की नगरवधू, पृ. ११६।

५ बैशाखी की नगरवधू, पृ. ३०१ से ३०२ तक।

इतिहास से साम्य और भिन्नता—

जैसा कि हम तृतीय अध्याय में अम्बपासी की कथा का विवेचन करते समय दिखाया आये है कि इतिहास में उसके विषय में केवल इतना ही उल्लेख प्राप्त होता है 'अम्बपासी वैशाखी के राज्यभाग में सहसा अचतुरित हुई और सौन्दर्य की प्रतिभा के रूप में विकसित हुई। आगे चलकर इसका सम्बंध केवल सामन्तों तक ही परिमित नहीं रहा बरन् इसके संरक्षक और प्रेमीरूप में सम्राट विम्बसार तक का उल्लेख प्राप्त है।^१ विशेषरूप में यह वैशाखी के राजकुमारों की प्रेमिका बनी रही। अन्त में बुद्ध के द्वारा सद्यः में सीमित हुई थी। बुद्ध को वैशाखी के समीप कोटिग्राम में आया सुनकर यह अपनी परिचारिकाओं के साथ स्वयं बही गई थी। और भगवान को भोजन के लिए निर्ममित कर आई दूसरे दिन बुद्ध उसके यहाँ गये और भोजन किया था। उसी विदाई में इसने अपना उद्योग अम्बपासिबन्त संघ को समर्पित कर दिया था। अंत में इसने अति पर प्राप्त किया था।^२ प्रस्तुत उपन्यास की अम्बपासी के चरित्र की स्मूल रेखाएँ इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों से भी गई हैं। उसके अन्त की कथा सोमप्रय, हृषिकेश आदि से उसके सम्बन्ध की कथा आदि काव्यनिक हैं और उसके चरित्र में पूर्णता आने के लिए इन कथाओं का समावेश किया गया है

निष्कर्ष—

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि अम्बपासी के चरित्र का निर्माण आचार्य चतुरसेन जी ने बड़ी ही सूक्ष्म भावना से किया है। उसका व्यक्तित्व एक ओर वहाँ वैश्वी आडोक से प्रकाशित है वहीं दूसरी ओर उसमें नायि सुलभ भावनाएँ भी भरी हुई हैं। जिससे उसका व्यक्तित्व पूर्ण सजीव चित्ररूप गतिशील एवं स्वाभाविक है। उसके चरित्र का प्रस्पृष्टन भी कथा के अनुकूल ही छन-छन उपन्यासकार ने किया है। उपन्यासकार ने उसका चित्रण प्रायः अभिनयात्मक या नाटकीय विधि से किया है। किन्तु उसके रूप एवं सौन्दर्य का वर्णन करते समय अधिकतर उसने विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया है।^३ वास्तव में हम अम्बपासी के सहज सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होते हैं, उसकी बुद्धता चातुरी एवं जगन से आनन्दित होते हैं उसकी अनुभूतियों की

१. वैश्वी माया प्रथम भाग पृ. १४६।

२. प्रस्ताव के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन डा० जयप्रयास प्रस्ताव शर्मा पृ. २१ से २२ साख ही देखिए महाभाग ६।४।७ नगरबन्धू सुमि पृ. ७७८।

३. वैशाखी की नगरबन्धू, पृ. १८-१९।

वीरता में हम अपने हर्ष विपार को ब्रूक बाते हैं उसके मूल्य की तन्मयता में तन्मयता संगीत की मुखा में मधुरता विह्वलता में कुक्ष बिठा में बिठा एवं उसके लोभ और लोभ में लोभ और पीडा का हमें अनुभव होने लगता है। इसी कारण उपन्यास समाप्त होने के पश्चात् अन्धपायी हमारे मानस पर एक अविस्मरणीय चित्र अंकित कर जाती है।

आदर्श रमणी शोभना

शोभना (शोभना) एक ब्राह्मण विपना कुमारी है। उसके चरित्र का निर्माण उपन्यासकार ने यथार्थ और आदर्श के ताने-बाने बुनकर किया है। उसके जीवन का प्रारंभ यथार्थ के कल्पित वातावरण से होता है और अंत तक पहुँचते पहुँचते उसका जीवन त्याग बलिदान एवं अपूर्व साहस का अप्रतिम उदाहरण बनकर रह जाता है। उपन्यासकार ने अपने इस गारी-चरित्र पर प्रकाश डालते हुए स्वयं लिखा है 'बुसरी जिस अतीतिक भूति की रचना मुझे करनी पड़ी—वह भी 'शोभना' एक नाम बिचवा ब्राह्मण कुमारी। इस भूति में मानवीय कोमलतम प्रेम की परफावटा की स्थापना करने की मीने केप्टा की। सत्साहस बर्ष प्रत्युत्पन्नमति सेवा दया धर्म कर्तव्य औरार्थ और आत्मार्पण की प्रतिष्ठा करने में मीने अपनी बुंभनी दृष्टि को न जाने कितनी बार एक बारगी ही अंधा बना दिया। एक ही शब्द में उस भियतमा युवनी को मीने अपनी सहृदयता के सम्पूर्ण अस्तुओं में आबूह स्नान कपकर ही अपने पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। जो स्त्री अपने एकांत प्रेमी का घिर नाट कर सकती है और धर्म और मानवता के धनु को अपना निरक्षर प्यार अर्पण कर सकता है और कितनी उसकी पुत्रा की जाय इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता हूँ आप ही वह निर्णय करें। मीने तो बुपचाप बजती के कुर्बत महसूर को उसरी आंचल की छाँह में पजती की राह में भेज दिया है।'

शारीरिक रूप रंग और व्यक्तित्व—

उपन्यासकार ने कल्पना और रोमान का पुट देकर शोभना के व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उसके व्यक्तित्व का प्रारंभिक परिचय उपन्यासकार ने इस प्रकार दिया है 'हृष्य स्वामी की एक नाम बिचवा पुत्री थी उसका नाम था शोभना। शोभना शोभा की गान थी। धामु अभी उसकी केवल पंद्रह बर्ष की ही थी। उसका रंग चन्दे के ताज फूल के समान अचवा आम के पम् और

शोभना आचार पृ ९।

के समान अपना केले के महीन पत्तों के समान था । बाठ बर्ष की बान्गु पूरी होने से प्रथम ही वह बिचका हा गई । बिचका होने पर भी वैश्व की मान वह मानती न थी । वह हर समय जब ठाट-ठाट का शू पार किए रहती । बिबि निवेश करते पद, समझाते-बुझाते पर वह सबकी सुनी अनसुनी करके नृत्य करने और हँसते छनती थी । "सब मिला कर वह एक 'कनक छुरी सी कामिनी' भी अपना फूलों से ली-देंदी एक शम्भु ।" इस प्रारंभिक परिचय के पश्चात् ही उपन्यासकार उसके और बासी पुत्र देवा के प्रथम की कहानी प्रारम्भ कर देता है । एक है बिचका बाह्यय कुमारी और दूसरा है अज्ञात कुम नाथ बासी पुत्र । इन दोनों के प्रारंभिक प्रेम का विकास बाळ मुकम मठशेखियों से होना है और धीरे धीरे यह प्रेम भासकता का अतिक्रमण करता हुआ निरप निकरता जाता है ।

महमूद के सोमनाथ महात्म के अधियाग का समाचार सुनकर महात्म के सम्पूर्ण बातावरण में हलचल मच जाती है । इसका अपरोक्ष प्रभाव सोमना पर भी पड़ता है । उसका प्रेमी देवा उससे प्रथम ही दूर हो चुका था । वह सामाजिक बन्धनों से तंग आकर अपने धर्म को भी त्याग चुका था । वह धर्म छोड़ी दे-छोड़ी बनकर देवा के शत्रु महमूद का सिपहसालार बन चुका था । प्रेमी की उल्लासि देखकर सोमना प्रसन्न हुई थी । देवा ने महमूद क कहने से सोमना पर बीजा के निरीक्षण का भार सौंपा था और उसने अपने प्रेमी की इस आज्ञा को सूर्य स्वीकार भी कर लिया था ।^१ सभी सोमना के चरित्र में छिछकापन है । किन्तु बीजा के विश्व सामिभ्य में आते ही उसके चारित्रिक गुणों में आसूक परिवर्तन होता है । वह बीजा के शत्रुगुणों पर पीम जाती है । यहीं से उसके चारित्रिक गुण उतरना प्रारम्भ हो जाते हैं ।

प्रकृति शीम स्वभाव गम्भिरता—

सोमनाथ महात्म्य एवं अज्ञात का पठन हो जाता है । महमूद बिचकी होता है । सभी एक वह कुछ में स्पष्ट था अतः बीजा देवी को प्राप्त करने की विधाता उसकी शान्त थी किन्तु महासंधाम को बच करने के पश्चात् उसको सर्वप्रथम बीजा का ही स्वरूप आता ।^२ सोमना के प्रेमी मुहम्मद (देवा) पर बीजा क निरीक्षण का भार था अतः उसी का बीजा को लाने भेजा गया । देवा का प्रथम साक्षात्कार सोमना से ही होता है । सोमना जब अर्ध की लालसामों भाषासामों और सारथीन

१ सोमनाथ पृ ६४ ६५ ।

२ सोमनाथ पृ २०९-२०४ ।

३ सोमनाथ, पृ ४२५ २६ ।

कल्पनाओं में विचरन करनेवाली छिछले चरित्र की बुबली नहीं रही है वह अब चौलाकपी पारस के समीप रहने के कारण अनेक मुर्कों से सम्पन्न हो चुकी है। अपने प्राणाधिक प्रेमी के द्वारा चौला की मर्ग होने पर प्रथम एक क्षण के लिए तो वह विचलित होती है किन्तु धीमे ही वह अपना कर्तव्य निश्चित कर लेती है। देवा द्वारा चौला के बदले में प्राप्त होने वाली बाबघाहूत की बात सुनकर वह उस पर तीव्र व्यंग करती हुई कहती है 'परन्तु देवा एक दिन न घोमना न रहेगी, न यह भील में मिली बाबघाहूत। केवल तुम्हारे यह काष्ठ कारनामे यह जायेंगे।' उसे केवल धर्म है तो इस बात की कि यह विश्वासवात देस और धर्म के दोह के सिद्धे में मिली बाबघाहूत उसका प्रेमी केवल उसके लिए प्राप्त करना चाहता है।^१ वह अपनी लज्जा को बोलने के लिए अपने प्रेमी से प्रायश्चित्त कथना चाहती है। वह अपनी सौम्य देकर उससे कहती है 'उस ईश्वर अमीर का सिर काटकर मुझे छा रो।'^२ देवा के अशक्तता कर पीछे हटने पर घोमना उसे पुन उत्तेजित करती हुई कहती है क्यों नहीं कर सकते ? जिसका पेसा कूट हत्या धर्मद्वारा अत्याचार और अन्याय है, जो लाखों मनुष्यों की उबाही का कारण है, जो मृत्युदूत की मर्ति समस्त बार भारत को तडकार और जाम की भेंट कर चुका वह इस क्षण तुम्हारे हाथ में है 'बहुल में है जामी अमी इसका सिर काट लाओ—घोमना देवी की यही तुमसे आरजू है।'^३ देवा के अस्वीकार करने पर घोमना प्रेयसी लंबी का रूप धारण कर लेती है। वह प्रेमी के प्रेम को उसके मुहावने स्वर्णों को भूल जाती है। अब देवा उसका प्रेमी देवा नहीं रहा वह सर चुका है। उसकी बात को अस्वीकार करनेवाला देवी चौला को मायनेवाला पूर्ण ईश्वरही अर्थात्ही अमीर का दाह फोहमुहम्मद है। उसके साथ वह वही व्यवहार करती है जो जाति धर्म और देस के समुहों के साथ भारतीय और एशियाई करनी आई है। अन्त में वह एक एकान्त अस्ति में अन्त करके अपने प्रेमी की देस के स्वाभ के लिए हत्या कर देती है। घोमना त्याग एवं अस्वर्ग का वह एक अनुपम उदाहरण है।

उपन्यासकार ने घोमना द्वारा प्रेमी की हत्या कर भी उसके प्रेम को जीवित रखा है। घोमना को अपने प्रेमी से नहीं उसके विचारों से, उसके बावों से प्यार हो गई थी। प्रेमी की हत्या करने आदेश में कर अन्याय की

१ लोमनाथ, पृ ४३३।

२ लोमनाथ, पृ ४३३।

३ लोमनाथ पृ ४३३।

४ लोमनाथ पृ ४३३ ३४।

किंतु चौका को सुरक्षित स्थान पर भेजने और महमूद पर विजय पाने के पश्चात् उसका प्रेमी रूप कुछ क्षण के लिए पुनः सजीव हो उठा है। यह प्रियतम के शव के समीप एकांत में पुनः पहुँचकर अपने हृदय के प्रत्येक उद्गार को व्यक्त कर बैठी है। इस उद्गारों में उसके व्याहत प्रेमी रूप का हाहाकार है।^१ इन मासुक उद्गारों के पश्चात् वह धीमे ही प्रकृतिस्म होकर पुनः अपने कर्तव्य के प्रति सजग हो जाती है।

दुरान्ति महमूद के समस्त चौका के रूप में अभिमन्यु करने में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। घोमना के इस साहित्यिक एवं रसागुणपूर्ण कार्य ने उसके चरित्र को और भी निहार दिया है। उसके इस कार्य को पढ़कर मनायास ही डा० वृन्दावनसाहू वर्मा के 'झोसी की रानी' नामक उपन्यास की 'समकारी कोरिंग' स्मरण हो जाती है। जिस प्रकार वह रानी के स्थान पर रानी बन कर वास्तविक रानी की रक्षा करती है उसी प्रकार जाकार्य चतुरसेन भी की घोमना चौका के स्थान पर वास्तविक भारतीय रमणी बन कर उसकी बड़ी कुशलता से रक्षा करती है। सरकारी अफिसों का ही पहचान नी गई थी किंतु घोमना को अन्त तक कोई भी पहचान नहीं पाता। अन्त में वह स्वयं ही अपना परिचय महमूद को देती है।

उसने यह महान् रसाय चौका की और चौका के साथ-साथ भुजरात की रक्षा के लिए किया था। चौका ने जब गुप्त रूप से दरबार मङ्ग में घोमना से मिलने पर उससे इस अचरितार्थ खेल के नियम में प्रथम किया था तो उसने निर्भय उत्तर दिया था 'जब लोग प्राणों की होखी खेल रहे हैं। तो वह भी उसी का एक माय है। अब इस माटक को अन्त तक चलने दो और देखो अन्त में क्या परिणाम होता है।'^२ इससे उसकी कर्तव्यनिष्ठ उत्सर्ग की भावना निर्भयता एवं समनता स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

कण्ठ के महारण में पहुँचकर तो उसकी प्रेम की उदात्त भावना और भी भव्य रूप धारण कर लेती है। प्रेम की भावना जो प्रेमी की हृदय के पश्चात् सुप्तावस्था में पड़ी थी, धीरे-धीरे अँपड़ाई लेकर उठने लगी थी। दुरान्ति महमूद के कुछ बुजुर्गों की और उसका प्रेमी रूप मनायास ही आकर्षित होता चला जा रहा था। वह महमूद को बनवाने और बनवाहे ही प्यार करने लगी। मुर-सागर पर पहुँचकर तो उसका यह गुप्त प्रेम प्रकट हो जाता है। प्रतापी एवं विजयी महमूद और उसका विद्यालय लखकर लगी मरुभूमि के धीमे बन गए

ने । इस भाव के आते ही सोमना का हृदय मलिन हो उठा । न जाने किध जलकित आकर्षण से अभिभूत हो वह मन में अमीर के लिए एक वैकल्प अनुभव करने लगी । उसने महमूद के हृदय का प्यार देखा था । और उसके मौजूगी । उन मौजूगी ने उसे इतित कर दिया था । इस समय वह अपनी सम्पूर्ण शैतना से अमीर की कल्पना कामना करने लगी ।^१ और उसकी कल्पना कामना का ही परिणाम था कि महमूद उस महारत में भी जीवित बच गया । वास्तव में सत्य यह है कि महमूद को प्राणदात सोमना ने ही दिया ।^२ अन्त में उसने महमूद से स्पष्ट कह दिया था कि 'मैं सोमना हूँ बीना नहीं । मैंने अमीर के बख्शवार सिपहसालार को कत्ल किया और अमीर को बोजा दिया है जब साहे गवनी जो सजा मुनासिब समझें, मुझे दें ।'^३ यह सत्य सुनकर भी महमूद ने सोमना से कहा था । जिसने महमूद को जिदवी गहन और लुगी की सब जिदगी ठीरे लटक ।^४ इसके उत्तर में जो सोमना के हृदय से उद्गार निकलते हैं वह उनके सम्पूर्ण जीवन की कबज कहानी कहने में पूर्व सफल हुए हैं । वह महमूद से कहती है 'ऐ सहम्पाह' मैं एक बदलसीब जीरत हूँ । जुटी हुई बर्बाद । और अब इतनी दूर जागे बड़ आई हूँ कि लौटने की सब राह बंद हो गई हैं । अब मेरे सामने एक बेइस और नयीब सहम्पाह है । जिसने जिदवी में लिया ही लिया दिया कुछ नहीं । और अब देखनी हूँ कि जो कुछ उसने किया है—उसके बोझ से वह दबा जा रहा है । उसक बर्ब को मैंने देखा है । जिसने बर्ब सहा है वह पराए बर्ब को दैख नहीं सकता । सहम्पाह इसलिए अपनी इन बन्दिनी की सजा कुछ नर्म कर सकें और गवनी के किसी कोने में पनाह दे सकें तो यह बदलसीब पात्रता इस लुगा के बन्दे मर्द के बर्ब को जितना और जीते बग पड़े कुछ कम करने में अपनी जिदवी की बची हुई बर्दिनी बिगाए ।^५ और इसके परभाव 'वह दिम्बिबवी महमूद उस युग परिणामपी ब्राह्मण कुमारी ने आबिल की छाह में काबुल की दुर्मय राह पर, बुबह खबर के दर में जो मजा ।'^६

निष्कर्ष—

सोमना का अरिज उपन्यास की कथा के अनुकूल ही चित्रित हुआ है । उपन्यासकार ने उसका विशय प्रायः नाटकीय या परोक्ष रीति में ही किया है । उपन्यास में उस अरिज का अपना स्वयं का महारत है । कथा के विषयवस्तु पात्र

१ सोमनाथ-पृष्ठ २३२,

२ सोमनाथ-पृष्ठ २४१,

३ सोमनाथ-पृष्ठ २४२,

४ सोमनाथ-पृष्ठ २३३ ३६,

५ सोमनाथ-पृष्ठ २४२,

६ सोमनाथ-पृष्ठ २४२,

महदूर एवं पार्थी शीला शोभों को ही यह प्राप्त दान देती है। इसी के व्यक्तित्व के कारण कथा को स्वानों पर अक्षय्य होते-होते पुनः मतिधील एवं प्रबाहुपूर्ण हो उठी है। यह चरित्र स्वयं परिस्थितियों को हाथ बनाकर उनका स्वामी एवं नियन्ता बन कर सामग्न आता है। इसी कारण चरित्र मानि से अतः तक पवि-
वीक है।

प्रस्तुत चरित्र मानि से अतः तक सजीव एवं स्वाभाविक है। कथानक में अपनी प्रतिभा का पुनः सहयोग इस चरित्र को दिया है। चरित्र की प्रत्येक रेखा उभरी हुई, प्रत्येक रंग निरूपण हुआ है। देवा की हत्या करने के पश्चात् उसने कथन विस्तार में उसके चरित्र को और भी अधिक स्वाभाविक सजीव एवं मनो-
वैज्ञानिक बना दिया है। चरित्र के विश्व अर्थ को भी उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है उसमें पूर्णता एवं सजीवता है।

वैसे 'सोमनाथ' के अतिरिक्त चरित्र श्री मूली के 'अथ सोमनाथ' के चरित्रों से प्रभावित है किन्तु सोमनाथ का चरित्र उपन्यासकार की स्वयं की सृष्टि है। उसकी प्रतिभा का स्पर्श प्रस्तुत उपन्यास में यदि किसी को प्राप्त हो सका है तो केवल सोमनाथ एवं उसके प्रेमी देवा को ही। तभी ये चरित्र सबसे अधिक प्राण-
वान् एवं मौखिक रह सके हैं।

आचार्य जी की पात्र-निर्माण एवं चरित्र-चित्रण विषयक कुछ मौखिक विवेचनाएँ—

कठिन प्रमुख पात्रों के चरित्र और उनके चित्रण का विश्लेषण करने में उपरोक्त आचार्य अतुरमेन जी की पात्र-निर्माण एवं चित्रण की कला के विषय में कुछ मौखिक विवेचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

पात्र कथानक के अतिरिक्त अर्थ—

आचार्य जी के उपन्यासों में कथा के संघटन में उनके पात्रों का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता है। यह उचित है कि उनके अतिरिक्त उपन्यासों की कथाएँ पूर्वनिर्दिष्ट होती हैं किन्तु तो भी उनके पात्रों के शिवायकल्प से ही घटनाओं को जन्म मिलता है और वही घटनाएँ उनके पूर्व निर्दिष्ट कथानक को गति प्रदान करती जाती हैं। इस प्रकार उनके पात्र कथा की परिधि में बंधे होने के साथ-साथ स्वाभाविक एवं सजीव होते हैं। इसके लिए उन्होंने पात्र-निर्माण की एक विशेष विधि का प्रयोग किया है। वे अतिरिक्त एक विशेष आभाषण एवं परिस्थिति में कुछ विशिष्ट मन-स्थिति वाले पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण करते कथा का सूत्रपाठ करते हैं। इसके उपरोक्त व्यक्ति या परिस्थिति की प्रतिधियाँ से कथानक

अपसर होना है। व्यक्ति के क्रिया रूपों में परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। और परिस्थितियों के अनुसार ही चरित्र का विकास होता है। यद्यपि चरित्र विषयतापूर्वक घटनाओं के साथ आबद्ध है फिर भी उनका मनोबल इतना प्रबल है कि घटनाओं को साम लिए बसता है। परिस्थितियों का मानव पर क्या प्रभाव पड़ता है। तथा मानव किस तरह स्वयं की परिस्थितियों की सृष्टि करता है इसका आचार्य अतुरसेन जी ने अत्यन्त सुन्दर आभास दिया है।

अब आये हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि आचार्य अतुरसेन जी के पात्रों में से कौन सी ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण आदि से अंत तक वे मानविक सजीव एवं जीवन्त बने रहें हैं।

पूर्णा —

आचार्य जी के पात्रों में व्यक्तित्व की पूर्णता प्राप्त होती है। ऐतिहासिक उपन्यास के पात्रों में इस गुण का होना निर्धारित आवश्यक है। पूर्णता से हमारा तात्पर्य पात्रों के जीवन के पूर्ण चित्र से है। ऐतिहासिक पात्रों के जो हमें मन्त्रित मिलते हैं वे अपूर्ण एवं सार्थक हाथ हैं। उन पात्रों के जीवन से सम्बन्धित कुछ ही घटनाएँ हमें ज्ञान होनी हैं किन्तु इन कुछ ही घटनाओं का सबसे केन्द्र उपन्यासकार उपन्यास की कथा का पूर्ण ढाँचा कड़ा कर देता है। कथा घटनाओं पर आभित अक्षय रहती है किन्तु पात्रों का चरित्र चित्रण पूर्ण रहता है। अपूर्ण सार्थक चित्र को पूर्णता प्रदान करना ही ऐतिहासिक उपन्यासकार की सबसे बड़ी कुशलता है। जीवन के जिस भाग को भी छेड़कर उठाये उसमें विग्रह चलता न हो बल्कि वह पूर्ण ज्ञान हो। सामाजिक उपन्यासों में यह पूर्णता ही महत्त्व का जाती है। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों में इसको साक्षात् कठिन कार्य होता है। कारण उसमें सामाजिक चित्र नहीं बल्कि ऐतिहासिक चित्र—एक ऐसे चित्र का जो सभी इस संसार में रह चुका है और जिसके चरम-विग्रह कुछ ही हैं—चित्रण करना होता है। उसके चरम विग्रहों की उपेक्षा करके हम उसके चित्र को साकार नहीं कर सकते। ऐसे पात्रों के चरम-विग्रह ही कुछ ही प्राप्त होते हैं, पूर्ण नहीं। इन्हीं प्राप्त विग्रहों का आभय लेकर चरित्र को पूर्ण करना पड़ता है और साथ ही ध्यान रगना पड़ता है कि चरित्र उनी शक्त का एक तत्कालीन आभास के समुद्र का ही है। यह तभी सम्भव हो सकेगा जब उनी चरित्र में निम्न विधायक पात्रों का समावेश होया —

- १ चरित्र का व्यक्तित्व
- २ उसके सौन्दर्य गुण
- ३ उसके पारिवर्तिक गुण ।

१ व्यक्ति के भीतर पात्र का आकार, रंग व रस भूषा आदि सम्मिलित होती है जिसके द्वारा हम उसे पहचानते हैं। यदि उपन्यास के भीतर इन बातों का विचार नहीं होता तो हम अपनी कल्पना और अनुभव के आधार पर उसके व्यक्तित्व का एक रूप बना लेते हैं। यह व्यक्तित्व जितना ही प्रभावशाली है तथा अन्य सहायक पात्रों से निम्न जान पड़े उतना ही अच्छा होता है।

२ बौद्धिक दुर्गा के भीतर उसका अभ्यन्त चरित्र संकट में बुद्धि वैभव आदि की विशेषताएँ मानी हैं। इसके लिए उसके गुण यदि सोक कल्पानकारी हुए तो हम सम्मान और प्रशंसा करते हैं और यदि अकल्पानकारी है तो हम निरा करते हैं। इन गुणों का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है।

३ चारित्रिक गुणों का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। उसके भीतर दुर्तों के मुक्त में सुखी और दुःख में दुःखी होने की कितनी शक्ति है वह कितना संवेदनशील और भावुक है परिस्थितियों का पाठ प्रतिपाद सङ्कर भी उसमें कितनी कठम और सहृदयता है इन बातों पर हमारा ध्यान उसके प्रति प्रेम या घृणा का भाव आसक्त होता है चारित्रिक विशेषताओं में उसके आचरण और दूसरों के प्रति व्यवहार को परखता है। अतः इन विशेषताओं का प्रत्यक्ष स्वीकरण उपन्यासकार की कुशलता का अंग है।^१

पीछे हमने आचार्य चरित्र भी के पात्र प्रमुख चरित्रों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उसमें हम चरित्र के इन तीनों ही गुणों पर प्रकाश डाल चुके हैं। आचार्य भी के अधिकार पात्रों में चरित्र विषय की उपयुक्त तीनों ही विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। वैसे कि हम उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं एवं रूप रंग पर प्रकाश डालते हुए लिखता चुके हैं कि उन्होंने चरित्र के व्यक्तित्व को पूर्णरूप से उभारने के लिए पात्रों की भावनाओं उनके रूप रंग एवं आत्म-बाल को बड़े ही संगुणित एवं सचे हार्यों से चित्रित किया है। जिससे प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व समानरूप से उभरता हुआ बीस पड़ता है। उनका प्रत्येक पात्र अपनी कुछ मौलिक विशेषताओं के कारण अर्थात् होते हुए भी सम्पूर्ण समाज में सहज ही पहचाना जा सकता है। जैसे समाज के प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है उसी प्रकार से उनके उपन्यासों के प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व उसके कार्यकलाप उसके विचार, व्यवहार, आदर्श एवं सिद्धांत भिन्न है वे अपनी स्वयं की कुछ विशेषताओं के कारण मौलिक हैं। उनके ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तित्व भी कम उमरे हुए नहीं हैं। उनके व्यक्तित्व में

भी पूर्णता है। यद्यपि इतिहास में उस पात्र के व्यक्तित्व के कुछ सन्तत भाग ही प्राप्त होते हैं। किंतु इन सन्ततों के आधार पर ही आचार्य चतुरसेन जी ने अपने ऐतिहासिक पात्रों के स्पष्ट पुष्ट एवं पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण किया है। पात्रों के व्यक्तित्व को निहारने के साथ-साथ उन्होंने चरित्रों को अधिक सजीव स्वामासिक मनोवैज्ञानिक मौखिक एवं कथा के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है।

सजीवता—

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों के पात्रों का सबसे प्रमाण गुण है कि वे सजीव हैं। वे काल्पनिक होते हुए भी काल्पनिक से न समझकर हमारे जीवन में देखे गये और सम्पर्क में आये व्यक्तियों के समान लगते हैं। उनके कुछ से हम अपने को दुःखी और कुछ से अपने को सुखी अनुभव करते हैं। उनके साथ हमारे हृदय में भी ममता पुष्पा सौहार्द कदा प्रेम आदि के भाव स्वतः जागने लगते हैं। ये पात्र हमारे चारों ओर चलने-फिरने उठने-बैठने वाले प्राणी ही ज्ञात होते हैं। ये कहीं बेपान वैद्य के बासी नहीं हमारे ही कुछ संतापपूरित संसार के निवासी लगते हैं। मानव की दुर्बलता अर्धबलता सभी की इन वस्त्रा विषों में प्राण-प्रतिष्ठा करके आचार्य चतुरसेन जी ने अपनी इस काल्पनिक सृष्टि को हमारे सामने सा नज़ा किया है। 'इनके स्वर-रंग शोक-खाम-वार्धप्रणामी मनोरथा रहन-सहन सबका इतना जीवन्त वर्णन किया गया है कि हमें आत्मचिन्ता का भ्रम ही जाता है। परिस्थितियों के बाध-प्रतिपात में ऐसे हुए इनके चरित्र मानव-सीधर्म एवं सीमा के प्रतीक हैं। इसी कारण चरित्र चित्रण कला में आचार्य जी एक सीमा तक सफल कहे जा सकते हैं। यदि पात्र हमें काल्पनिक वैद्य के भरो जन्ते आचरण साधारण भावों से भिन्न हों वे मानव में भिन्न हों वे मानव-मूर्ष्टि के प्राणी न ज्ञात होकर काल्पनिक सृष्टि के प्राणी ज्ञात हों तो निश्चय ही वे हमारी सहानुभूति में प्राप्त कर सकेंगे। ऐसे पात्र सजीव न होकर निर्जीव बटुनपी के समान आचरण करते से ज्ञात होंगे। ऐसे निर्जीव पात्र न कथा को बनिबान् करते में समर्थ होंगे और न ही हमारे स्मृति-कोष में सुरक्षित रह सकेंगे। 'अतीतिष्ठा तथा निर्जीवता पात्रों के व्यक्तित्व का आधारणीकरण नहीं होने देनी। वे हमारे राग-विराग के पात्र नहीं बन पाएँ। पात्र निर्माण में सफल ही बनना-मानि ही परीणा होती है। इसी उक्ति के द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व क्या बन जाना है कि वे हमें आश्चर्य करते हैं। ये नये बच्चे या कि मैं अपने पात्रों का अनुशासन करने में अनुभव्य हो जाना है। वे

मुझे बर्हा चाहते हैं से आते हैं। इसमें तथ्य इतना ही है कि पात्रों को लेखक ने स्वतंत्र सफल-सक्ति से सम्पन्न कर लिया है। स्वतंत्र मनोवैशेषों से प्रेरित होकर कभी-कभी वे ऐसे कार्य कर आते हैं कि जिनका लेखक को अनुमान भी नहीं होगा यह कल्पना सक्ति की चरम सीमा है। ऐसे ही पात्र हमारे जीवन में प्रेरक बन आते हैं। परन्तु जो पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं उनके व्यक्तित्व की परिभा नहीं रह जाती। मानवता की सामान्य मूर्ति पर लेखक कल्पना की कृषी से जो रंग भरता है वह अभ्याप्ति व अतिरंजना से बचकर सजीव पात्रों को बरम देता है। सजीव पात्र हमारे वास्तविक जगत की प्रतिकृति होते हैं जिनके चरित्र के विकास को उपन्यासकार कल्पना के द्वारा साक्षात्कार कर लेता है और उसे औपन्यासिक योजना के द्वारा प्रस्तुत कर देता है।^१ अतः सफल चरित्र-चित्रण के लिए सजीवता प्रधान मूल्य है। और यह सजीवता तभी वा सक्ती है जब उपन्यासकार मानवता की सामान्य पीठिका पर अपनी कल्पना की कृषी से रंग उरोहे रंग भरै जिसमें न तो अतिरंजना ही हो और न अभ्याप्ति ही।^१

पीछे हमने चरित्रों के दो प्रमुख प्रकार बिये हैं। इनमें वर्गगत चरित्र-चित्रण में सजीवता काना तो सरक है किन्तु व्यक्तित्व प्रधान पात्रों को सजीवता प्रदान करना निश्चित रूप से कठिन है। आचार्य बतुरसेन जी के शीर्षों ही प्रकार के पात्र सजीव हैं।

आचार्य बतुरसेन जी के अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक हैं। ऐतिहासिक पात्रों में सजीवता भरना और भी आवश्यक है, कारण इतिहास हमें शुद्ध तथ्य-कालों एवं घटनाओं की ओर इतिहास मात्र कर देता है उसमें मांस और रक्त का संचार करके प्राण फूँककर सजीवता भर देना ही ऐतिहासिक कथाकार की वास्तविक कला है। और इस कला में आचार्य जी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इतिहास से हमें केवल इतना ही ज्ञात होता है कि 'सन् १०२६ में महमूद गजनी ने सोमनाथ महात्म्य को भंग किया था। हिन्दू राजा पारसिक ईर्ष्या द्वेष के कारण उससे पराजित हुए थे।' इससे आगे अधिक और विवरण देना इतिहासकार अपना कर्तव्य नहीं समझता। महमूद भी साधारण मनुष्यों की भाँति एक प्रेमी था उसके भी एक मांसल हृदय बड़का रहा था और उसने उसके इस प्रेम को उरोवित किया और सोमनाथ में उसे घात किया। उसमें

१ समोका के सिद्धांत—डा० सार्वेन्द्र पृ १३६ १३७।

२ हिन्दी उपन्यास—श्री शिवनारायण श्रीवास्तव, पृ ४४८।

महात्म्य में अत्यन्त किन्ना किन्तु समाचारों की छत्रकार क समस्त उम दृग्गिजत ज्ञान पत्रा । राजा नीमवेक का पवित्र प्रेम शौचा का अनामिष मूल्य महामुद का धर्मियान संय सर्वत्र की सर्वज्ञता उन्नत की बुद्धता एवं रामो मेहता की शानुषी के द्वारा लक्ष्मीन भारत की सम्पूर्ण परिस्थितियों को उपन्यासकार न अपने उपन्यास में समीक कर किना है । यह समीकता इतिहास में नहीं बल् उपन्यास में ही प्राप्त हो सकती है । इस दृष्टि से साचार्य जी के ऐतिहासिक पात्र पूर्ण समीक हैं ।

स्वामाधिकता —

समीक पात्र स्वामाधिक भी हों यह आवश्यक नहीं विद्येकर पौराणिक पात्रों में स्वामाधिकता का सर्वत्र निर्वाह और भी कठिन होता है । पौराणिक कथाएँ अलौकिक अमलकारों से इतनी अधिक बोलित हो चुकी हैं कि उनका वर्णन करते समय कथा का उनसे सर्वथा अछूता रचना असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है । साचार्य जी ने इन पौराणिक कथाओं का बहुत कुछ सम्भावना एवं स्वामाधिकता की सीमा न बाँधने का प्रयत्न किना है किन्तु 'वयं उग्रान्' एवं 'शैघाती की तपरवधू' में तो कुछ अलौकिकता का भी समावेश हो गया है । यहाँ भी मालव की छोड़कर अतिमानव महामानव अपीरयेय आदि का चित्रण अतिरिचित कल्पनाओं के संयोजन द्वारा किया जानेवा यहाँ निरिचत रूप से अस्वामाधिकता एवं अवास्तविकता का बावणी । इससे चरित्र-चित्रण में कृत्रिमता तथा अस्वामाधिकता का जाने से मालवीन बावभावों की प्रपटीयता न्यून पड़ जाती है जिससे पात्रों के व्यक्तित्व निर्वाह से दूर होने लगे हैं और यह निर्वाहता एवं अस्वामाधिकता उनका साधारणीकरण होने में व्यक्तित्व बाधती है । किन्तु साचार्य जी के समस्त उपन्यासों में ऐसे स्थल कम ही हैं यहाँ उनका चरित्र-चित्रण अलौकिक एवं अमलकारिक हो जाने के कारण अस्वामाधिक हो गया है । उन्होंने राम रावण मेघनाथ आदि के पौराणिक चरित्रों को भी यथासम्भव अलौकिकता से बचाया है । उनके उपन्यास सभी पात्रों के चरित्र कारण कार्य की श्रु खण्ड में बंधे हैं । कुछ पात्र असाधारण अवश्य हैं किन्तु पुन विद्येय का प्रतिबिम्ब दिखाने के लिए उपन्यासकार ने कुछ पात्रों पर बलात् अलौकिकता का आरोपन किया है । उन्होंने 'वयं उग्रान्' में कितनी ही पौराणिक असाधारण एवं अलौकिक घटनाओं की कृत्रिम्य तर्किक व्याख्या की है किन्तु तो भी कुछ पौराणिकता रह गई है ।

उन्होंने हनुमान को उड़ने एवं मण्डर बनकर लंका में जाने से तो बचा

किया किन्तु मारीच को स्वर्णमृग बनने से न रोक सके ।^१ आचार्य जतुरसेन भी के रावण और राम के चरित्रों में अलौकिकता नहीं बसाया। उक्त बात बत कर उस में डाला और वह दिव्य धनुष बन गया । इसके अतिरिक्त भी कई स्थानों पर अलौकिकता रह गई है । उदाहरणतः सर्व के पेट में यज्ञ किन्नर, वेध मरु, पशु पक्षी सभी समा गए, सुपर्ण बैमतेय के स्वर्ण चरखे ही राम लक्ष्मण के प्राण भर गए^२ इन्द्रजीत रथ से कूब कर अंतर्धान हो गया और वह अदृश्य रहकर रावण पर बाण बर्षा करने लगा^३ बादि स्थल सर्वथा अलौकिक ही हैं । इसी प्रकार 'वीरगोपी की नगरबधू' में भी कुछ अलौकिक एवं अस्वाभाविक घटनाओं का समावेश बसाना किया गया है । यद्यपि आचार्य जतुरसेन भी को छाया पुस्तक के अदृष्ट होने पर बिस्वास नहीं है तो भी उन्होंने उसका चित्रण किया है ।^४ इस छाया पुस्तक के वीर पूष्पी पर नहीं पड़ते थे और वह सब सत्व की भाँति समूचा ही ओप्ली पुत्र के मुँह में प्रविष्ट हो गया ।^५ इसी प्रकार उदयन अदृष्ट होकर अम्बपाली के निकट पहुँच गए और नृत्य देखकर देखते ही देखते अन्तर्धान भी हो गए ।^६ कस्मिन् सेना दिव्य औषध जाकर ब्रह्मण्य यौवना बन गई ।^७ इसी प्रकार कुम्हनी का चरित्र एवं शम्बर समुर का चरित्र भी कुछ अस्वाभाविक एवं अलौकिक हो गया है । इस प्रकार अलौकिकता के प्रवेश के कारण कई चरित्र अस्वाभाविक हो गए हैं । किन्तु इन कुछ पात्रों के चरित्रों को छोड़कर आचार्य भी के दोष पात्रों के चरित्र का चित्रण स्वाभाविक उचित पर ही हुआ है ।

मनोविज्ञान—

आचार्य जतुरसेन भी इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि पात्र सजीव और स्वाभाविक ठीकी हो सकेगा जब उसके चरित्र चित्रण में मनोविज्ञान की सहायता ली जाय । अपने प्राथमिक उपन्यासों में उन्होंने चरित्र-चित्रण करते समय पात्र के व्यक्तित्व एवं उसके बाह्य गुणों तथा बाह्य परिस्थितियों पर ही अधिक ध्यान दिया है । किन्तु अपने प्रौढ़ उपन्यासों में मनोविज्ञान का आध्य लेने के कारण ही उनके पात्रों के अस्तित्व का उद्घाटन सम्भव हो सका।

१ वर्ष रत्नामः पृष्ठ ४२७ ।

२ वर्ष रत्नामः पृष्ठ ६३९ ।

३ वर्ष रत्नामः पृष्ठ ६३५ ।

४ वीरगोपी की नगरबधू, भूमि-पुष्ठ ८६१ ।

५ वीरगोपी की नगरबधू, पृष्ठ २९० ।

६ वीरगोपी की नगरबधू, पृष्ठ ११३ एवं १२० ।

७ वीरगोपी की नगरबधू, पृष्ठ ११८ ।

है। मनोविज्ञान का आभय लेने के कारण ही उनके पार्श्वों के बौद्धिक एवं चारित्रिक दोषों ही प्रकार के धुग स्वयं ही प्रस्तुतित हुए हैं। वे उपन्यासकार के कर्तों में कठपुतली न रहकर पूर्ण विकसित एवं पूर्ण मानव होकर सामने आए हैं। उनके हृदय और मस्तिष्क में इन्द्र सामने जीवन की समस्याएँ और संघर्ष और इन सबके परिपामों में मानव सुलभ भावनाओं से परिपूर्ण हृदय। अर्थात् उनके पात्र सत् असत् से संघर्ष करते हुए अथ से इति तक विकासमान रहते हैं।

आचार्य चतुरसेन जी ने अपने पार्श्वों के व्यक्तित्व के विकास में मनोविज्ञान का आभय जो किया है। किन्तु उन्होंने मानव मनोविज्ञान का सहज आभय ही किया है किसी मनोविज्ञानाचार्य (फ्रायड जूग आदि) के सिद्धांतों का बलात् आरोपण नहीं किया है। उन्होंने अपने ऐतिहासिक पार्श्वों में भी यद्यपि मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि दिखाते हुए भी उनके चरित्र को आधुनिक पार्श्वों की भाँति अधिक उलझने नहीं दिया है। उन्होंने पौराणिक पार्श्वों के व्यक्तित्व निर्माण में भी मनोविज्ञान को कहीं भी नहीं तपाया है, वहाँ कहीं उन्होंने मनोविज्ञान का बंधक तपाकर पौराणिकता या भौतिकता को बलात् साबना चाहा है, वहाँ उनका चरित्र चित्रण अस्वाभाविक हो गया है। आचार्य जी अपने अधिकांश ऐतिहासिक और सामाजिक पार्श्वों की अटिफताओं से भली-भाँति परिचित हैं इसीलिए वे उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में पूर्ण समर्थ रहे हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने पार्श्वों के मानसिक संघर्षों और हृदय की पुच्छित अंतर्दृष्टियों को बड़े ही कौशल से सुझाया है। 'बैसासी की नगरबन्धू' की अम्बपाठी और सोमप्रभ 'सोमनाथ' की घोषना बीमा मीमरेव महमूद गंग सर्वज्ञ सभी के व्यक्तित्व का निर्माण मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर ही हुआ है।

अनुकूलता—

आचार्य जी के पार्श्वों की एक विशेषता और है कि वे कथानक के अनुकूल हैं। यदि ऐतिहासिक उपन्यासों में आधुनिक युग की बेधभूपा एवं विचारधारा वाले पात्र भर दिए जायेंगे तो निश्चित ही वे कथानक के प्रतिकूल जात होने लड़ेंगे जिससे विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होने का भय रहेगा। कथानक के अनुकूल पात्र न होने से बाधाकरण सृष्टि में भी व्यवधान पड़ जाएगा। इसी तरह से आचार्य जी ने कथानक के अनुकूल ही पार्श्वों का सृजन किया है। 'काक विरोध के परिणामक व्यक्तित्व प्रधान पात्र' कथानक के अनुकूल बाधाकरण की सृष्टि के लिए ही उपन्यास में आए गए हैं। जैसे सुमाली प्रहस्त कुबेर,

अकम्पन कुम्भकरण मकराक्ष मय बाठंज देवेन्द्र नहुप, इन्द्र सूर्यनशा यमत्रिह्ला मकरा बाकि मुनीव भारि (भयं रसाम) महाराज उदयन बर्षकार, योवरायण मम्बष्य कावमप शातिपुत्र सिद्ध, आचार्य बहुलाद्व कर्तिसतेपा, आर्यामार्तमी जीवक कौमारनृष्य हर्षदेव बावरायण श्यास शाक्तिमत्र सर्वत्रिष्ट महावीर गौतमकुत्र अत्रिष्ठ केसकम्बनी राजनन्दनी अन्नप्रमा जयरात्र अष्ट मद्रिक (शैशाली की नगरबधु) इमत्र बामा महता इप्पा स्वामी रमाबाई, अष्टदिन उस्मान अक्षहृत्रबीसी नम्बिदत्त बामुकारयण बामुइराय बिमसदेव ग्राह मस्मोकरेव दुर्गमदेव अलवस्नी दहा चौसुक्य फलह मुहम्मद सोमना कंचनलजा वेवचन्द (सोमनाथ) आदि बात्र इसी प्रकार क हैं ।

आचार्य अनुराग जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के चरित्रों में एक विशेषता और उत्कृष्टता है । उनका इन उपन्यासों में हमें चार प्रकार के चरित्र देख सकते हैं । प्रथम तो जो पूर्णतः ऐतिहासिक हैं जैसे पृथ्वीराज गोरी (पूर्णाहुति) भीमदेव महमूद (सोमनाथ) शाहजहाँ औरंगजेब बारा आदि (आत्मवीर) दूसरे जिनके नाम तो ऐतिहासिक हैं किन्तु उनके कार्य अविश्वसनीय कल्पना प्रभूत हैं जैसे बिम्बसार, प्रसेनजित उदयन दमिबाहन बर्षकार (नगरबधु) तीसरे जो ऐतिहासिक नहीं हैं किन्तु उनका निर्माण किसी जनश्रुति अथवा किंवदन्ती के आधार पर हुआ है । कभी-कभी किसी पुस्तक को छात्र मान लेने के कारण भी आचार्य जी ने ऐसे पात्रों का निर्माण किया है । जैसे 'सोमनाथ' उपन्यास में मुसी के 'जय सोमनाथ' को छात्र मानने के कारण ही उन्होंने उसके ही कुछ कल्पित पात्रों के नामों को अपने उपन्यास में स्थान दिया है जैसे संम सर्वज्ञ गणतपासि आदि । अम्बपाली (नगरबधु) का चरित्र एक किंवदन्ती पर आधारित है । चौथे प्रकार के वे चरित्र हैं जो पूर्णतः काल्पनिक हैं और उपन्यासकार ने उन्हें ऐतिहासिक चरित्रों के मध्य ही स्वतन्त्र विकसित होने को छोड़ दिया है । जिससे वे ऐतिहासिक पात्रों में ही पूर्ण रूप से भुल गये हैं । बाल्य में आचार्य जी ने इस वर्ग के पात्रों के निर्माण में सबसे अधिक परिश्रम किया है । इस प्रकार के पात्रों में हम सोमप्रभ एवं कुन्दनी (नगरबधु) देवस्वामी (फलहमुहम्मद) एवं सोमना (सोमनाथ) आदि को रत सकते हैं । आचार्य जी के यह चारों ही प्रकार चरित्र पूर्ण सजीव स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक हैं ।

आचार्य अनुराग जी ने अपने पात्रों का अधिक से अधिक स्वभाविक एवं सजीव बनाने के लिए ही दबावबारी शैली का उपयोग किया है । उन्होंने

ट्रेडि-आइडी रेखाओं के द्वारा ही नहीं बल्कि कार्य-कलाओं कबोपकबनों एवं उनके बाह्य एवं अन्तर्द्वन्द्वों को विभित करके उनके सजीव व्यक्तित्व को मूर्तता एवं वास्तविकता प्रदान की है। यही कारण है उनके पात्र अत्यधिक जीवन्त एवं विप्लवसनीय हैं। उनमें क्रियाशीलता एवं गति आदि से अंत तक बनी प्युटी है।

जैसा कि हम देख सके हैं कि आचार्य जी के पात्रों में बितनी विविधता है उतनी सम्भवतः हिंदी के किसी भी उपन्यासकार के पात्रों में नहीं है। उन्होंने जहाँ एक ओर पीड़ित पग-पग पर प्रताड़ित क्षोभित और बलिष्ठ बर्ग की मूर्कता को मुखर किया है वहीं दूसरी ओर स्वार्थी अभिमानी सौजन्यविहीन आरामतच्छन्न विभासी राजाओं एवं नवाबों के चरित्रों को भी उरोहा है। उन्होंने कुछ आवर्णवादी पात्रों को भी मृष्टि की है। यह पात्र भी क्रियाशील एवं गतिवान् हैं। हमने अपने आदर्शों के लिए प्राण दे देने की क्षमता है। वे बीर, साहसी और निर्भीक हैं अपने राष्ट्रीय गौरव पर उन्हें अभिमान भी कम नहीं है और अपने इन्हीं गुणों के कारण ये पात्र अपने युग की प्रवृत्तियों को चरितार्थ करते हैं। वास्तव में ये पात्र सामन्तीय युग की सारी प्रवृत्तियों उसकी दुर्बलताओं और सुबलताओं के प्रतिबिम्ब हैं। जैसा कि हम 'वर्मगत पात्रों' का विश्लेषण करते समय लिखसते हैं कि आचार्य बगुरसेन जी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में व्यक्तियों का चित्रण न करके बर्गों का चित्रण किया है जिससे हमारा आसय केवल मात्र इतना ही है कि उनके यह पात्र बर्ग विशेष की मनोवृत्ति के परिचायक हैं। उन्होंने राजा मन्नाब सामंत बमीबार, बोली बिबवा अक्षय आदि विभिन्न बर्गों में से जहाँ तक व्यक्ति का चित्रण किया है वहाँ उस बर्ग की सभी विशेषताएँ उसमें एकत्र कर ली गई हैं और उस एक व्यक्ति के रूप में आचार्य बगुरसेन जी को काफी सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए 'बोली' उपन्यास के किमुन और बम्मा को हम के सकते हैं।

चरित्र चित्रण के लिए आचार्य जी ने बर्गन एवं कबोपकबन दोनों का ही बड़ी कुशलता से उपयोग किया है। इन दोनों के समन्वय से उनके पात्रों का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक एवं सख ब हुआ है। जिस प्रकार कुशल चित्रकार रतिपत्र रेखाओं से चित्र में सजीवता तथा व्यंजकता ला देता है उसी प्रकार आचार्य जी कुछ चुने हुए व्यंजक शब्दों के द्वारा पात्र विशेष को हमारे सामने खड़ा कर देते हैं। 'बहुला के पंख' के चुनू और 'वर्मपुत्र' के मन्नाब

बाह्यगीर असी का 'उदयास्त' के राजा साहब, 'मोती' की बौहृप और नवाब साहब 'अपराजिता' का माधव भावि क चरित्रों के निर्माण में यदि आचार्य जी ने हास्य व्यंग्ययुक्त शब्द चित्रों का आधय किया है तो वृक्षी ओर 'भर्मपुत्र' की हुस्नवानू 'अपराजिता' की राज 'बगुसा के पंख' की पद्मा 'सोमनाथ', की नीला और योमना 'बैशासी की मगरबपू' की अम्बपाठी मादि के चरित्रों का निर्माण उन्होंने कोमलता कस्यता एवं यथार्थता व्यंग्यक शब्दों के द्वारा किया है। जैसा कि हम पीछे चरित्रों का विश्लेषण करते समय विस्तार से बतलाने के हैं। प्रथम आचार्य जी अपने पात्रों की आकृति एवं रूप रंग का परिचय वर्णन द्वारा विश्लेषणात्मक शैली में देते हैं, तत्पश्चात् अभिनयात्मक शैली के द्वारा उनके क्रियाकलापों एवं बातों-बापों के द्वारा उस पात्र की स्वरूप रेखाओं में रूप रंग और प्राण की प्रतिष्ठा करके उक्तकी चरित्रमय विशेषताओं की पूर्ण स्पष्ट करते बतलते हैं।

आचार्य चतुरसेन जी की पात्र निर्माण-कला के मूल प्रेरणा-स्रोत—

आचार्य चतुरसेन जी की पात्र-निर्माण कला की यह एक प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने अपने अविभाज्य पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण केवल कल्पना के अदृश्य पर ही नहीं बरन् अपने अनुभव के आधार पर ही किया है। जैसा कि हम प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक से उन्होंने एक बार स्वयं कहा था कि 'आत्मदाह' के सुधीन्द्र का चरित्र बहुत कुछ उनके स्वयं के चरित्र से प्रभावित है। सुधीन्द्र के माता पिता के रूप में उन्होंने अपने ही माता पिता का चित्रण किया है। उन्होंने 'मोती' की नायिका चम्पा की चर्चा बधाते हुए स्वयं कहा था कि वह मेरे अनुभव की ही देन है। एक बँध के नाते उससे मेरा बपों सम्बन्ध रह चुका है। वैद्यक व्यवसाय में रहने के कारण आचार्य जी के अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त विराळ था। एक बँध के रूप में राजस्थान से उनका निकट का सम्बन्ध था। 'सोमनाथ' 'मोती' 'उदयास्त' आदि उपन्यासों के किरते ही पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण उन्होंने यहीं क कुछ व्यक्तियों से प्रभावित होकर किया है। कई स्थानों पर उन्होंने स्वयं अपने कुछ पात्रों के मूल प्रेरणा स्रोतों की बार-बार भी किया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'बैशासी की मगरबपू' की अम्बपाठी का निर्माण बम्बई प्रवास में देखी मिसेज जिन्ना के आधार पर हुआ है।^१ 'अपराजिता' की नायिका राज के वर्धन उन्हें बनारस में हुए थे।^२

१ आतापन-आचार्य चतुरसेन पृ ९१।

२ अपराजिता-तप्त अल कन।

टेडी-भाड़ी रेखाओं न हाथ ही नहीं बनू नार्म-कलाओं व उनके बाह्य एवं अस्तित्वों को चित्रित करके उनके सजीव व्यक्ति एवं वास्तविकता प्रदान की है। यही कारण है उनके पास अत्यंत एक विश्वसनीय है। उनमें क्रियाशीलता एवं गति बादि से खिल रही है।

जैसा कि हम देख सकते हैं कि आचार्य जी के पास में जितनी है उतनी सम्भवतः हिंदी के किसी भी उपन्यासकार के पास में उन्होंने नहीं एक और पीढ़ित पग-पग पर प्रताड़ित छोपित और बर्न की मुकता को मुकुर किया है वहीं इसी ओर स्वार्थी और सौख्यविहीन आरामतकब बिलाठी राजाओं एवं नबाबों के चरित्रों को उभेड़ा है। उन्होंने कुछ व्यावर्धवादी पात्रों को भी सृष्टि की है। यह पात्र क्रियाशील एवं प्रतिबानू है। इनमें अपने आदरों के लिए प्राण दे देने की है। वे बीर, साहसी और निर्भीक हैं अपने जातीय पौरव पर उन्हें अति भी कम नहीं है और अपने इन्हीं गुणों के कारण ये पात्र अपने युग की प्रवृत्ति को चरित्रार्थ करते हैं। वास्तव में ये पात्र सामन्तीय युग की सारी प्रवृत्ति, उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं के प्रतिबिम्ब हैं। जैसा कि हम 'बर्न पात्रों' का विश्लेषण करते समय दिखाते हैं कि आचार्य बनुरसेन जी ने अपने अधिकांश उपन्यासों में व्यक्तियों का चित्रण न करके बर्नों का चित्रण किया है जिससे हमारा आध्य केवल मात्र इतना ही है कि उनके यह पात्र बर्न विशेष की मनोवृत्ति के परिचायक हैं। उन्होंने राजा नबाब सामंत जमींदार, गोसी मिश्रवा बख्श आदि विभिन्न वर्गों में से जहाँ तक व्यक्ति का चित्रण किया है वहीं उस वर्ग की सभी विशेषताएँ उसमें एकत्र कर दी गई हैं और उस एक व्यक्ति के रूप में आचार्य बनुरसेन जी को काफी सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरण के लिए 'बोबी' उपन्यास के किमुन और बम्पा को हम ले सकते हैं।

चरित्र चित्रण के लिए आचार्य जी ने बर्न एवं कथोपकथन दोनों का ही बड़ी कुशलता से उपयोग किया है। इन दोनों के समन्वय से उनके पात्रों का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक एवं सभ्य हुआ है। जिस प्रकार कुशल चित्रकार बर्तिय रेखाओं से चित्र में सजीवता तथा व्यक्तता ला देता है उसी प्रकार आचार्य जी कुछ चुने हुए व्यक्त चरित्रों के द्वारा पात्र विशेष की हमारे सामने खड़ा कर देते हैं। 'बपुजा के पंख' के मुगल और 'बर्नपुत्र' के नबाब

पहांगीर यही सा 'उदयास्त' क राजा साहब 'गोठी' की जोहर और पदाव साहब 'अपराधिता' का मावय आदि के परिशों के निर्माण में यदि आचार्य जी ने ह्यास्य व्यंग्यामित शब्द चित्रों का आशय किया है तो इसी ओर 'वर्मपुत्र' की हुस्नवानू 'अपराधिता' की राज 'बगुला के पंख' की पद्मा, 'सोमनाथ' की बीजा और सोमना 'बैयाली की नगरबधू' की बम्बपाली आदि के चरित्रों का निर्माण उन्होंने कोमलता करुणता एवं मधुरता व्यंग्यक शब्दों के द्वारा किया है। बीसा कि हम पीछे चरित्रों का विरलेपन करते समय दिखाता चुके हैं। प्रथम आचार्य जी अपने पात्रों की आकृति एवं रूप रंग का परिचय व्यंग्यक शब्दों द्वारा विरलेपनकारक शैली में करते हैं, तत्पश्चात् 'अभिमत्यात्मक' शैली के द्वारा उनके क्रियाकलापों एवं वार्तालापों के द्वारा उस पात्र की स्वरूप रेशमों में रूप रंग और प्राय की प्रतिष्ठा करते उसकी चरित्रगत विशेषताओं को धीरे धीरे स्पष्ट करते चकते हैं।

आचार्य चतुरसेन जी की पात्र निर्माण-कला क मूल प्रेरणा-स्रोत—

आचार्य चतुरसेन जी की पात्र-निर्माण कला की यह एक प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने अपने अधिकोष्ठ पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण केवल कल्पना के परतक पर ही नहीं बरन् अपने अनुभव के आधार पर ही किया है। बीसा कि हम प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक से उन्होंने एक बार स्वयं कहा था कि 'आत्मसाह' के सुधीन्द्र का चरित्र बहुत कुछ उनके स्वयं के चरित्र से प्रभावित है। सुधीन्द्र के माता-पिता के रूप में उन्होंने अपने ही माता-पिता का चित्रण किया है। उन्होंने 'गोठी' की मायिका चम्पा की चर्चा बसाते हुए स्वयं कहा था कि वह मरे अनुभव की ही दिन है। एक बँद के नाते उससे मेघ चर्चा सम्बन्ध रह चुका है। बीसाक व्यंग्याय में रहने के कारण आचार्य जी क अनुभव का श्रेष्ठ अत्यन्त विद्याल था। एक बँद के रूप में राजस्थान से उनका निकट का सम्बन्ध था। 'सोमनाथ' 'गोठी' 'उदयास्त' आदि उपन्यासों के कितन ही पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण उन्होंने यहीं क कुछ व्यक्तियों से प्रभावित होकर किया है। कई स्थानों पर उन्होंने स्वयं अपने कुछ पात्रों के मूल प्रेरणा स्रोतों की ओर संकेत भी किया है। उन्होंने एक प्यान पर लिखा है कि 'बैयाली की नगरबधू' की बम्बपाली का निर्माण बम्बई प्रबन्ध में देली मिनत्र विद्या क आधार पर हुआ है।^१ 'अपराधिता' की मायिका राज के शर्मन उन्हें बनारस में हुए थे।^२

१ आचार्य-आचार्य चतुरसेन प ११।

२ अपराधिता-उपत अल अय।

वाचार्य जी की एक और विशेषता भी उल्लेखनीय है। वे अपने पात्रों के साथ पूर्ण तावात्म्य स्थापित कर लेते थे। उन्होंने अपने पैतृक अम्म दिवस के बचपन पर इस विषय पर प्रकाश डालते हुए स्वयं कहा था कम्पना कीबिए 'बैसाही की नगरबन्' के उक्त साभिष्य की जब उसकी पादुकिणि खुप ही पई थी और वो साक तक में बीबित ही अपनी आम में बसता रहा बा तब सुभी अम्बपाली ने बीसे मेरे कन्धों के पीछे से फुलफुटा कर मेरे कान में कहा था—सिन्धो-सिन्धो और उरका बहु देव दानव दुर्जन अपायिन नृत्य तो मीने अपनी इन्हीं आँसों से देखा था। मयज के सम्राट् विम्बसार के रूप में मैं ही तो अस्स भाव से उसके सपनावार में रूप और बँसव की मरिच पीठा और बखेरता रहा हूँ। मीने ही तो अम्बपाली के समझ उस दिन एक ही साथ तीन धामों की बीबा बजाकर नीस वगम में टिमटिमाते नक्षत्रों की साझी में कला को सुतिमयी किया था और हम-अम्बपाली और मैं—बीसे पृथ्वी का प्रक्य हो जाने पर, समुद्रों के सेप धीन हो जाने पर, वायु की बहरो पर ठँठे हुए, ऊपर बाकाय में उठते ही बने गये थे—जहाँ मू नहीं भुब नहीं स्व नहीं पृथ्वी नहीं बाकाय नहीं सृष्टि नहीं सृष्टि का बखन नहीं अम्म नहीं,—मरण नहीं एक नहीं बनेक नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं।

और इसके बाद मैं जब सोमनाथ की भूमिका में उतरा—तो अप्रतिरथ महारथी महामुव एक तिरौह बाकक की भाँति मेरे अनुपह का धरजापम हुआ और मीने इस दुर्गत योद्धा को किस प्रकार एक बिबवा स्त्री के बाँसल की छीह में बजनी भेज दिया है यह तो आप देस ही चुके हैं। अपराजिता की राज और 'बर्मपुत्र' की महामहिमामयी हुस्तबानू जिसने आठ साठ मुर्बे के साथ और २४ साक बिता की ठगड़ी राख में बैठकर बिताये मेरी अनुगता रखी। उनके हास्य और बाँसुओं का केबा-ओबा तो मीने ही रखा है।^१ और 'बर्म रक्षाम' का राजक बगरीस्वर बहु मर गया तो क्या। उसका पीवन तेज-बर्ष साइस 'बोप ऐस्वर्य' को मैं निरंतर इन म्याह मासों में रात दिन देस रहा हूँ उसके प्रभाव से कुछ-कुछ घीठम होते हुए मेरे रक्त बिन्धु अभी भी नृत्य उठते हैं। बर्म एक की भाँति उसमें गर्मी है बाप न सही गर्म रात तो है।^२ इससे स्पष्ट है कि वाचार्य चतुरदेव जी अपने पात्रों का बिबव करते समय इतने तन्मय हो जाते थे कि बहूबा के यह भी ज्ञान बैठते थे कि उन पात्रों का वे

१ वातावन—वैतठवाँ अम्म नक्षत्र पृ १७६ १७७।

२ बर्म रक्षाम: पूर्ण निवेदन पृ १।

कल्पना में साक्षात्कार कर रहे हैं या प्रत्यक्ष । यही कारण है कि उनके पात्र भी पूर्ण सजीव स्वामाबिक एव आकषेक हैं और वे पाठक की अनुसृतियों का एक अंग बनकर रह जाते हैं । आचार्य जी की पात्र (विशेषकर ऐतिहासिक पात्र) निर्माणकला बहुत कुछ डा० बृम्हाबतलाल वर्मा एवं मास्टर स्काट की भाँति ही है । इन तीनों के ही अधिकोद्य पात्रों का स्वरूप प्रथम से ही निश्चित रहने के कारण उपन्यास में पदार्पण करते ही वे पात्र तुरन्त अपनी स्पृक रूप रेखा प्रस्तुत कर देते हैं । इस रूप रेखा के आधार पर उनका सम्पूर्ण चरित्र विकसित होता है ।^१ यह तीनों ही पात्र को जीवन प्रदान करने के उपरांत उसे मौलिक गुणों के आधार पर विकसित होने के लिए छोड़ देते हैं । वे पात्र अत्यन्त तक प्रायः बदलते नहीं हैं अपने स्वभाव के विकट नहीं जाते ।^२ आचार्य जी के कई पात्र परिवर्तनशील भी हैं जैसे बेबस्वामी धोमना आदि । उनके कुछ ऐतिहासिक पात्रों पर ब्रह्मा की पात्र निर्माण कला का प्रभाव भी बीज पड़ता है । उनका सोमप्रभ (मयरवबू) ब्रह्मा के 'भी मस्केनियर्स' नामक उपन्यास के आर्तमान का स्मरण बिना देना है ।

१ उपन्यासकार डा० बृम्हाबतलाल वर्मा, पृ २०० ।

२ ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर एमिली लिगवे एण्ड सुई संग्रामिया
पृ १०२५ ।

आचार्य भी की एक और विषयता भी उत्केसनीय है। वे अपने पात्रों के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेते थे। उन्होंने अपने पैरुठों जम दिवस के अवसर पर इस विषय पर प्रकाश डालते हुए स्वयं कहा था कल्पना कीविए 'बैसाही की नगरबधू' के उस साक्षिण्य की जब उसकी पाण्डुसिपि चुरा ली गई थी और दो घाब तक में जीवित ही अपनी जाग में बरूटा रहा था तब मुन्नी अम्बपाली ने जैसे मेरे कन्धों के पीछे से फुसफुसा कर मेरे कान में कहा था—'छिन्नो-छिन्नो और उसका वह देव बानस बुर्लम अपाबिब मृत्य तो मीने अपनी इन्हीं आँसों से देखा था। मयब के सभ्राट विम्बसार के रूप में मैं ही तो अकत माव से उसके शयनागार में बन और बैधम की मरिया पीठा और बड़ेरटा रहा हूँ। मीने ही तो अम्बपाली के समझ उस दिन एक ही साथ तीन प्रार्थों की बीषा बजाकर नीक गगन में टिमटिमाते नक्षत्रों की छाकी में कका को प्रतिपयी किया था और हम-अम्बपाली वौर मैं—जैसे पृथ्वी का प्रलय हो जाने पर, समुद्रों के सेप जीत हो जाने पर, वायु की बहुरों पर तैरते हुए, ऊपर धाकाध में उठते ही चले गये थे—वहाँ पू नहीं भुव नहीं स्व नहीं पृथ्वी नहीं आकाश नहीं सृष्टि नहीं सृष्टि का अम्भन नहीं अग्न नहीं—अरन नहीं एक नहीं बनेक नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं।

और इसके बाद मैं जब सोमनाथ की भूमिका में उतरा—तो अग्रतिरब महारथी महामूर एक निरौह बालक की प्रति मेरे अनुपह का धरणापन हुआ और मीने इस बुबूठ मोटा को किस प्रकार एक विषया स्त्री के आचल की छाँह में बजनी भेज दिया है यह तो आप देख ही चुके हैं। अपराधिता की राज और 'बर्षपुत्र' की महामहिमायमी हुलबानू बिचने आठ घास मुदों के साथ और २४ घास बिठा की ठम्ही राज मे बैठकर बिताये मरी अनुमता रही। उनके हास्य और आँसुओं का लंबा-बोका तो मीने ही रखा है।^१ और 'बर्ष रत्ताम' का राजग अमरीबवर वह भर क्या तो क्या। उसका बीबन ठेक-बर्ष साहस-जोन ऐश्वर्य ओ मैं निरंतर इन म्याह् मासों में रात दिन देख रहा हूँ उसके प्रभाव से कुछ-कुछ धीतक होते हुए मेरे रक्त बिन्दु अभी भी मृत्य उठते हैं। गर्म राज की प्रति उठमें मर्मी है जाग म सही धर्म राज तो है।^२ इससे स्पष्ट है कि आचार्य अनुराग भी अपने पात्रों का बिबम करते समय इतने तन्मय हो जाते थे कि बहुधा वे यह भी भूल बैठते थे कि उन पात्रों का वे

१ आतापन—वैतठवीं अग्न नक्षत्र पृ १७६ १७७।

२ बर्ष रत्ताम—पुर्ब निवेदन पृ १।

कल्पना में साक्षात्कार कर रहे हैं या प्रत्यक्ष । मही कारण है कि उनके पात्र भी पूर्ण सजीव स्वामाधिक एवं आकर्षक हैं और वे पाठक की अनुभूतियों का एक भंग बनकर रह जाते हैं । आचार्य जी की पात्र (विशेषकर ऐतिहासिक पात्र) निर्माणकला बहुत कुछ डा० बृन्दावनलाल वर्मा एवं वास्टर स्काट की नीति ही है । इन तीनों के ही अधिकांश पात्रों का स्वरूप प्रथम से ही निश्चित रहने के कारण उपन्यास में पक्षार्पण करते ही वे पात्र तुरन्त अपनी स्वरूप रूप रेखा प्रस्तुत कर देते हैं । इस रूप रेखा के आधार पर उनका सम्पूर्ण चरित्र विकसित होता है ।^१ यह तीनों ही पात्र को जीवन प्रदान करने के उपरांत उसे मौलिक दुर्गों के आधार पर विकसित होम के लिए छोड़ देते हैं । वे पात्र अन्त तक प्रायः बढ़ते नहीं हैं अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं जाते ।^२ आचार्य जी के कई पात्र परिवर्तनशील भी हैं जैसे देवस्वामी शोभना आदि । उनके कुछ ऐतिहासिक पात्रों पर ड्यूमा की पात्र निर्माण कला का प्रभाव भी शीघ्र पड़ता है । उनका सोमप्रभ (ममरबन्धू) ड्यूमा के 'प्री मस्केटिमर्स' नामक उपन्यास के आर्तगान का स्वरूप दिला देता है ।



१ उपन्यासकार डा० बृन्दावनलाल वर्मा, पृ २०० ।

२ ए हिस्ट्री माफ इयलिस सिट्टेबर एमिली लिगे एण्ड जुई कैजामिर्जा
पृ १०२५ ।

अध्याय—५

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के कथोपकथन

कथोपकथन

कथोपकथन की परिभाषा—

पार्श्वों के पारस्परिक वार्तालाप को कथोपकथन अथवा संवाद कहते हैं। कभी-कभी पात्र आरम्भ तत्कालीनता में अथवा किसी अन्य मानसिक अवस्था में अपने आपसे ही वार्तालाप करने लगता है, इसे स्वयं कथन कहते हैं। एक अंग्रेज विद्वान ने कथोपकथन की परिभाषा करते हुए लिखा है—

Composition which produces the impact of human talk as nearly as possible the impact of conversation over heard.¹

कथोपकथन का महत्त्व एवं उद्देश्य—

कथोपकथन का उपयोग कथानक में क्यों होता है? एवं इसका क्या महत्त्व है? वास्तव में एक ओर यह कथा को गति प्रदान करता है तो दूसरी ओर पार्श्वों के चरित्र का विश्लेषण करता है। यदि कथा में से कथोपकथन के तत्व को निकाल दिया जाय तो कथा में जो सबसे बड़ा शोष या धायेया बहू होगा कथा पार्श्वों का अव्यक्त हो जाय। इतसे निरिपठ रूप से कथा की कलात्मकता उधकी प्रमथिष्णुता एवं संवेदनशीलता समाप्त प्रायः हो जायेगी।

अतः हम कह सकते हैं कि कथा साहित्य में अन्य तत्वों की अपेक्षाकृत इस तत्व का महत्त्व कहीं अधिक प्रत्यक्ष रहता है। कथानक के विन्यास में कहा—कथा शीर्षक होता है, इसका उद्घाटन 'वर्क-बिचक' और प्रतिपादन से किया जाता है अथवा चरित्रांकन में किसी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में किस प्रकार की वृत्ति का आयोग सिद्ध होता है, इसको हमें कल्पनाजम्य अनुभूति से समझने की

बेप्टा करनी पड़ती है परन्तु संसार अपने प्रकृतत्व जीवित्य और व्यावहारिक रचना से ही अपने सौंदर्य और आकर्षण को समझा देते हैं, इसमें तर्क-वितर्क चिंतन-मनन की उतनी अपेक्षा नहीं होती। यदि देव काष्ठ और संस्कृति विधेय का कोई प्राणी किसी से भी किसी प्रकार की बातचीत करता है तो बातचीत की प्रांबलता और विरहता शब्द और वाक्य के प्रयोग भाषा और पदान्वली से हमें प्रत्यक्ष महसूस होता है कि व्यक्ति किस कोटि वर्ग वैद्य और कारु का है। संसार से अन्य सभी जगहों का सीधा सम्बंध होता है।^१ इससे कथानक में तत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। जब प्रश्न हो सकता है कि कथानक में कथोपकथन का समावेश किन उद्देश्यों के लिए होता है। वास्तव में कथोपकथन का प्रयोग कथानक में निम्न उद्देश्यों से किया जाता है—

- १ कथानक की गति प्रदान करना
- २ पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करना
- ३ कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करना
- ४ कथोपकथन के व्यास से पूर्ण संकेत देना
- ५ कथोपकथन के माध्यम से वातावरण-सृष्टि करना आदि।

आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यासों में उपर्युक्त सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कथोपकथनों का प्रयोग किया है। जगसे पुत्रों में हम यही देखने का प्रयत्न करें कि उपन्यासों में उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कथोपकथनों का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है उनका क्या महत्व और उपयोगिता है तथा आचार्य जी अपने उपन्यासों में उसकी उपयोगिता एवं महत्व की रक्षा कहीं तक कर सके हैं।

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यास में कथानक की गति प्रदान करनेवाले कथोपकथन—

कथोपकथन कथा के प्रचार का प्रधान साधन है। इसके समावेश से जहाँ एक ओर कथा-सूत्र की गति मिलती है, वहीं दूसरी ओर नवीन कथासूत्रों की सृष्टि भी होती है। नवीन कथा सूत्र का जन्म कथा में तभी होता है जब दो विरोधी विचारों में संघर्ष होता है। इस संघर्ष एवं नवीन कथा सूत्र के उत्पन्न का स्पष्टीकरण कथोपकथन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। कथा गतिशील रहे, जीवन यही आवश्यक नहीं है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि कथा संप्रति

स मागने के साथ-साथ सजीवता चित्रमयता एवं कलात्मकता की भी सृष्टि करने में पूर्ण समर्थ हो। यह कार्य भी कपोपकपन द्वारा ही सम्भव ही सकता है। किन्तु यह स्मरण रहना चाहिये कि एक ओर जहाँ इस उत्सव का अिप्र द्रुत एवं सुपठित प्रयोग कला मार्ग को उत्कृष्टोत्सुक करेगा, वहीं दूसरी ओर स्वच्छन्द अनियमित अनावश्यक अनपेक्षित रूप में विस्मृत एवं कथा को अवरुद्ध कर देने वाले अरोचक कपोपकपनों का उपयोग कथा को अोक्षित एवं अकलात्मक बना देगा। अतः यह आवश्यक है कि कपोपकपन का कथामूल से प्रत्यक्ष संबंध हो अन्यथा कथालोक की श्रुतता नष्ट हो जायगी। एवं कथा बिलर धामनी। आचार्य चतुरसेन जी ने अपने कपोपकपनों में इस बात का सर्वैव ध्यान रखा है। उनके कपोपकपन एक ओर जहाँ कथालोक को यदि प्रदान करते हैं वहीं दूसरी ओर अनियमित एवं अनावश्यक भी नहीं होने पाये हैं। आचार्य जी ने उपन्यासों में यह बात स्पष्ट देखी जा सकती है। उन्होंने कई स्थानों पर कपोपकपन के द्वारा ही कथा को दूसरी दिशा में मोड़ दिया है कथा के यह मोड़ स्वाभाविक कपोपकपन के कारण अस्वाभाविक भी नहीं होने पाये हैं। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम 'बीघासी की मगरबजू का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

महाराज प्रसेनजित्त एवं उनके पुत्र राजकुमार विद्भम का वार्तालाप है। महाराज अपने पुत्र के कार्यों पर बुरी तरह से क्रुद्ध हैं। वे राजकुमार को अपने सामन उपस्थित होने की आज्ञा देते हैं। राजकुमार महाराज के सम्मान की उपेक्षा करते हुए उन्हें उनके मुख पर ही बुरी-साटी मुतामेल कमता है। उसकी आशाकता अक्कड़पन, निर्भीकता महाराज की उपेक्षा की प्रवृत्ति तथा महाराज के दम्बपन एवं अक-अककर पीढ़ परमनी देने की प्रवृत्ति के कारण संवाद बढ़ता जाता है और साथ ही कथा भी एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर होती जाती है—

“विद्भम ने बिना ही प्रणाम किए, भाते ही पूछा”—महाराज ने मुझे स्मरण किया या ?

“किया या ?”

“निसल्लिए ।”

“परामर्श के लिए ।

‘इसके लिये महाराज के सचिव और आचार्य और माण्डव्य क्या यत्नेट नही है ।’

“किन्तु मैं तुम्हें कुछ परामर्श दिया चाहता हूँ विद्भम ।”

“किन्तु महाराज के परामर्श की मुझे आवश्यकता ही नहीं है।” राजपुत्र ने बृगा व्यक्त करते हुए कहा।

महाराज प्रसन्नचित्त गम्भीर बने रहे। उन्होंने कहा—“किन्तु रोमी की इच्छा से औषधि नहीं भी जाती राजपुत्र।

“तो मैं रोमी और आप बीच हूँ महाराज ?”

“ऐसा ही है। यौवन अधिकार और अधिकृत ने तुम्हें भ्रष्ट कर दिया है विद्बम।”

“परन्तु महाराज को उचित है, कि वे बृष्टता का व्यवहार न करें।

“तुम कोशलपति से बात कर रहे हो विद्बम।”

“आप कोशल के मावी अधिकारी से बात कर रहे हैं महाराज। सज्जन वर स्वयं उठकर महाराज ने मृदु कण्ठ से कहा—पुत्र विचार करके देखो तुम्हें क्या ऐसा अधिकारी होना चाहिये ? मैं कहता हूँ—तुमने मेरी आज्ञा बिना शाक्यों पर वैश्व कर्णों भजी है।

“मैं कपिलवस्तु को निःशास्य करनेवा यह मेरा प्रण है।”

“किसलिए ? तुम्हें तो।”

“आपके पाप के लिए महाराज।

“मेरा पाप बृष्ट झड़के। तू सावधानी से बोल।”

“मुझे सावधान करने की कोई आवश्यकता नहीं है महाराज मैं आपके पाप के कण्ठ को शाक्यों के गर्म रक्त से घोड़ेंगा।

“मेरा पाप कह तो।”

“कहता हूँ सुनिए, परन्तु आपके पापों का अन्त नहीं है एक ही कहता हूँ कि आपने मुझे बासी से कर्णों उत्पन्न किया ? क्या मुझे औषध नहीं प्राप्त हुआ क्या मैं समाज में पर प्रतिष्ठ के योग्य नहीं।

“किसने ऐसा माल भंग किया ?

“आपने शाक्यों के यहाँ मुझे किसलिए भेजा था।”

“शास्य अपने कर रहे हैं। तू मेरा प्रिय पुत्र है और शाक्यों का शीहिन।”

विद्बम ने अवज्ञा की हंसी हँसकर कहा—“शाक्यों का शीहिन या बासी का पुत्र ? आप जानते हैं यहाँ क्या हुआ ?”

“क्या हुआ ?

“तुम्हेंगे आप ? पमग्नी और नीच शाक्यों ने संजामार में विमग्न होकर

मेघ स्वागत किया जबका उन्हें स्वागत करना पड़ा। पर पीछे संवागार को और भासनों को उन्होंने दूब से धोया।”

प्रसेनजित का मूँह क्रोध से झलक हो गया। उन्होंने चिस्काकर कहा—
सुत्र शास्त्रियों ने यह किया।”

प्रस्तुत कथोपकथन के प्रारम्भ से ऐसा आभास होने लगता है कि जब पिता पुत्र में संघर्ष निकट है। पुत्र असंतोष है, पिता क्रोधित। एक कोशक का सम्पादन है तो दूसरा राजकुमार। दोनों दोनों की उपेक्षा कर रहे हैं। पुत्र पिता के पापों का स्मरण दिखाता है। पिता उसकी झुट्टा पर अंतिम बार चेतावनी देता है। संघर्ष अन्त-सीमा पर पहुँचकर अकस्मात् मुड़ जाता है। शास्त्रियों द्वारा पुत्र के अपमान की बात सुनकर पिता का क्रोध पुत्र से हटकर शास्त्रियों पर पहुँच जाता है। उसके मुख से अनायास ही निकल जाता है ‘सुत्र शास्त्रियों ने यह किया। इसके परभाव ही कथा दूरी दिवा की ओर मुड़ जाती है। जब महापुरुष स्वयं शास्त्रियों के बंध नाश करने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं। वे पुत्र के मुख से लट्टी-सोटी बातें सुनकर भी मूँह नीचा कर लेते हैं। किन्तु पुत्र द्वारा अस्वभाव से नहीं पर अधिकार करने की बात सुनकर वे पुनः क्रोधित हो उठते हैं। संघर्ष बढ़ जाता है वाय विवाद के साथ-साथ कथा भी अग्रसर होती जाती है और अंत में राजकुमार विद्वज्जन अपने पिता पर टकवार खींच देता है। इसी समय अश्वमेध का कथा में आकस्मिक प्रवेश होता है। इस कथोपकथन में कथा ने एक साथ तीन मोड़ लिए हैं। इसी कथोपकथन के द्वारा कथा अन्त-सीमा पर पहुँच रही है।

इसी प्रकार के कितने ही उदाहरण आचार्य अतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। ‘नगरबधू’ ‘सोमनाथ’ ‘योनी’ आदि प्रमुख उपन्यासों में कथा की प्रवाहपूर्ण बनाने रखने के लिए उपन्यासकार ने कथोपकथनों का ही आश्रय लिया है। जहाँ कहीं भी कथा अवरुद्ध होने लगी है अथवा उसका प्रवाह रुक होने लगा है, आचार्य अतुरसेन जी ने सरस कथोपकथनों की सृष्टि कर कथा को पुनः पतिशील एवं रोचक बना दिया है।

कथा को गति प्रदान करने के लिए आचार्य अतुरसेन जी ने ‘कथोपकथन’ कथोपकथनों का भी प्रयोग किया है। ‘पहले जो प्रसंग चल रहे हैं उसी के कुछ शब्दों को दुहराते हुए जब कोई पात्र सहसा सम्मुख आ जाता है तब कथोपकथन होता है। इस प्रकार के कथोपकथन विशेष अमत्कारपुक्त होने के साथ-साथ कथा-प्रवाह में त्वर उत्पन्न करने वाले होते हैं। ऐसे कितने ही प्रयोग आचार्य

चतुरसेन जी के उपस्थासों में हुए हैं। 'सोमनाथ' का एक उदाहरण बेबिण्ड-छद्म रेश में महमूद सोमनाथ महात्म्य में प्रवेश करता है। इसी समय 'निर्मल्य' के लिए साईं पई चौसा उसकी दृष्टि में बढ़ जाती है। वह प्रथम दृष्टि में ही उसके शीर्ष पर मुख हो जाता है। चौसा को जाने जाने अरवारोही से वह चौसा के लिए ही मिड़ जाता है, इसी समय गुजरान भीमसेन का यह कहते हुए प्रवेश होता है 'मूर्खों बेवस्था में लड़ते हो। इस पर मुक ने इस भावशुक को बेककर तस्कार मीची कर सी। परन्तु साधु ने (महमूद ने) कास कास भाई करके निर्मय स्वर से कहा—'दो आरमियों के शपकों में बिना बुझाए बीच में पड़कर मूर्ख कहने बाळा ही मूर्ख है।

आगन्तुक योद्धा ने जलब गम्भीर स्वर से पूछा—तुम कीन हो ?

'यही मैं तुमसे पूछता हूँ' साधु ने उदाहरता से कहा।

'इस शपके का कारण ?

तुम्हारे पंचामठ में पड़ने का कारण ?

'तब बेव कारण। आगन्तुक योद्धा ने तस्कार का शरपूर हाथ साधु पर फेंका। साधु भी असावधान न था। शक भर में ही दोनों योद्धा असाधारण बहाता से मुड़ करने लगे।

कोनों ने एक ध्वनि सुनी 'शान्त पाप' बात पाप। पहिलें बीच फिर स्पष्ट। -

प्रस्तुत उदाहरण में कितने नाटकीय ढंग से कथोपकथन द्वारा कथा को गतिशील बनाया गया है। आचार्य चतुरसेन जी ने कथा को गतिशील एवं प्रभावशाली बनाने के लिए अपने उपस्थासों में इस प्रकार के कथोपकथनों का लुप्तकर प्रयोग किया है।

कथोपकथन द्वारा पात्रों के चरित्र का विश्लेषण—

कथानक को गति प्रदान करने के साथ-साथ कथोपकथन का दूसरा कार्य है पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना उसे स्पष्ट करना। कोई भी कथानक पात्रों के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर ही आधारित होता है। अतः कथोपकथन का सीधा सम्बन्ध पात्रों से ही है। कथोपकथन के अभाव में न पात्रों के व्यक्तित्व की रक्षा उभर सकेगी और न ही उनके चरित्र का ही विश्लेषण सम्भव हो सकेगा। कथाकार किसी भी चरित्र के विषय में जैसे ही सब कुछ कह जाके किन्तु पाठकों तक तक उस चरित्र के प्रति नैकदय का अनुभव नहीं कर सकेगा जब तक पात्र स्वयं मूढ़ नहीं बोलता। पाठक की सहज जिज्ञासा यह जाति करने की सदैव

उत्सुक रहती है कि अमुक पात्र के विषय में उपन्यास के अन्य पात्रों के क्या विचार हैं उसके साथ एवं मिला उसके विषय में क्या विचारते हैं जबकि उस पात्र के अपने विषय में स्वयं के क्या विचार हैं अथवा किसी समस्या पर किंवा घटना पर किस प्रकार का अन्तर्दृष्ट विभिन्न पात्रों के हृदय में हाता है।^१ इन सभी की जागृकायी उपन्यासकार पाठकों को कथोपकथन के माध्यम से ही बे सकता है। आचार्य बतुरसेन जी ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों के चरित्र को उभारने एवं निखारने के लिए कथोपकथनों का आश्रय लिया है। उनके कथोपकथन एवं स्वगत कथन पात्रों के हृदय के प्रत्येक पट को पूर्णरूपेण खोलकर सामने ला सकते हैं जिससे पात्रों के चरित्र का विश्लेषण होने के साथ-साथ कथा भी अप्रसर होती है।

'सोमनाथ' उपन्यास का एक उदाहरण देखिए। देवा सोमना से प्रेम करता है। सोमना भी देवा को चाहती है। किंतु दोनों एक-दूसरे के हो नहीं पाते बर्म की बीबाऊ दोनों के मध्य में है। इस बर्म की बीबाऊ को बहाने और सोमना को हस्तगत करने के लिए ही देवा बर्म स्वीकार कर महमूद का सिपहसालार बन जाता है। सोमनाथ महाशय को मर्द करने में वह सहायता देता है बर्म की बीबाऊ को वह अपने साहसिक प्रयत्नों द्वारा चूर चूर कर डालता है किंतु सोमना तो भी उससे प्रेम करती रहती है। देवा के बर्म विरोधी क्रिया कलापों का क्या सोमना पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा? क्या वह बर्मीर के बास हो जाने पर देवा से प्यार करती रही? आदि प्रश्न स्वभावतः उठते हैं। उपन्यासकार को कथा को अप्रसर तो करना ही है साथ ही पाठकों के अस्तिष्क में उठी हुई संकाओं का समाधान भी। अतः वह सोमना के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन का आश्रय लेता है। देखिए—

देवा यह तुम बर्मीर के बास के समान होठ रहे हो।

बास क्यों? मैं बर्मीर का सबसे बड़ा सिपहसालार हूँ। आज की यह कठिन मुहिम मैंने घर की है। सोमनाथ मैंने घर किया और बर्मीर जिसे सबसे बड़ी बीलात समझता है वह क्या है जानती हो?

क्या है?

बौला! वह बीलात उसकी मोह में डालकर मैं आज जायी दुनिया की बाबघाहत बर्मीर से लूना। सोमना अब तुम अपने को महायनी से कम न समझना।

१ 'चरित्र चित्रण' वाले अध्याय में इस विषय में विस्तार से लिखा जा चुका है।

‘बेबा, तुम ठो बड़े-बड़े सीवे करने लगे ।

‘यह इस उल्लभार की बदीकृत सोमना और तेरी इन भाँखों के जाहू की बदीकृत । जिसमें मुझे मारने और जिम्मा करने की ताकत है ।’

‘किछिन देवा देखती हूँ तुमने सबसे बड़ा सीवा भी कर लिया ।’
कैसा ?

‘तुम अपने को भी बेच चुके ।

‘तो इससे क्या उसकी कीमत किछनी मिली जानवी हो ? सोमना मेरी प्राणों से भी अधिक प्यारी बीज और एक बादसाहूत ।

‘परंतु देवा, एक दिन न सोमना रहेगी न यह भीज में मिली बादसाहूत । केवल तुम्हारे यह काले कारनामे यह बायेंगे ।

‘क्या कहा—भीज में ।

‘नहीं यहारी बिश्वासघात देख और धर्म के बोह के चिकसिले में मिली बादसाहूत ।

‘सोमना यह तुम क्या कह रही हो जानती हो—यह सब तुम्हारे ही किए ।

इसी से ता मैं धर्म से मरि जाती हूँ ।

‘तुम्हारी स्त्री-बुद्धि है न ।

‘स्त्री हूँ तो मरने की बुद्धि कहाँ से लाऊँ ।

‘और जब देर हो रही है बाहर मेरे सिपाही लड़े हैं, मेरी बीज मेरे हवाके करो ।

‘कौन बीज ?

‘यही बीजा देवी ।

‘किछकिए ?

‘उसे मैं अमीर नामधार की बेट कहेंगा ।

‘अमीर कहाँ है ?

‘पास ही है इसी किले में ।

‘मेरी बात मानों देवा तुम इतने बड़े बहादुर हो मेरी खुदी का एक काम करो ।

‘सोमना की खुदी के लिए तो मैं अपना बाहिना हाथ भी काटकर दे सकता हूँ । कहो क्या चाहती हो ।

‘जब देख अमीर का तिर काटकर मुझे ला दो ।

‘फतह मुहम्मद बमक कर दो कब्र पैसे हट गया । उसने कहा—‘हैं यह कैसी बात !

‘क्या नहीं कर सकते ? जिसका पेशा कूट-हत्या-धर्मद्रोह अत्याचार और अन्याय है जो सत्तों मनुष्यों की तबाही का कारण है जो मृत्युसूत की भाँति सत्रह बार भारत को लकड़ार और भाग की भेंट कर चुका वह इस लक्ष तुम्हारे हाथ में है अंगुल में है कामो अभी उसका सिर काट कामो घोमना बेबी को यही तुमसे आरम्भ है ।

‘तुम्हीं नहीं घोमना यह नहीं हो सकता मैं दास, अनाथ अपमानित पशुपुत्र देवा उसकी छपा से आज इस स्तंभ पर पहुँचा हूँ भला मैं उसके साथ बाँझा कर सकता हूँ ।’

‘क्या घोमना के लिए भी नहीं ।

‘अपमान के लिए भी नहीं किसी तरह नहीं ।’

घोमना के हृदय में महामुद के प्रति बुधा है, अपने प्रेमी के प्रति नहीं । वह उसे अब भी सन्धे हृदय से चाहती है । इसी कारण वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति देवा को मुबारके मँनालने और एक नवीन मार्ग पर मोड़ने में लगा देती है । किन्तु वह असफल होती है । देवा के महापरात्मक उत्तर के पश्चात् वह प्रेमिका स रमर्षी हो जाती है । परिस्थितियों और जातिरिक्त घावों के परिवर्तन के साथ-साथ उसकी भाषी एवं आचरणों में भी परिवर्तन आ जाता है । वह देवा को छत्र से एक न्यून अक्षिप में बदल कर लेती है । दोनों ओर के प्रेम के मार्गों का साथ हो जाता है । दोनों एक दूसरे से प्रतिशोध लेना चाहते हैं । एक असाहाय है विषय है अतः प्रेम की पुहारि दे रहा है और दुसरा सबल है अतः उसे बुझाकर रखा है । वैशिए—

‘अब जोर और अर्ध से पायल होकर उसने जोर-जोर से चिस्काकर कहा—‘दमा-दमा तुमने मुझे दमा की घोमना ।’ एक छोटा-सा मोझा कुत्ता । उसमें से बोझा प्रकाश उस कल में आया । घोमना ने मोझे से झाँककर कहा ‘निस्सर्विह देवा मैंने तुमसे दगा की । क्योंकि मैं औरत हूँ । मेरे पास और उपाय नहीं था ।’

‘कैजिन घोमना मैंने तुमसे प्यार किया था ।’

‘प्यार तो मैंने भी तुमसे किया था । देवा ।

‘पर तेरा प्यार मेरे जैसा नहीं था ।

“शायद, प्यार कभी किसी ने छयाँ पर तो सोता नहीं। तेरा क्या प्यार था यह तू जान मैं तो अपने प्यार को जानती हूँ।

‘उसी प्यार का यह नतीजा ? विश्वासघात !’

‘निस्संदेह प्यार तुम्हें भी किया—और मैंने भी। पर प्यार होता है जन्मा। वह यह न देख सका—कि तू भीता वासी का हास बैठा है और मैं ब्राह्मण की बेटी हूँ।

‘इससे क्या सोचना हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते थे।’

‘पर हास और ब्राह्मण के रक्त में तो अन्तर है न वास के रक्त ने प्यार की दासता के शक्ति पर लमाया। बर्म ईमान मनुष्यता सब पर काट मारकर उसने स्वार्थ क्रिया ही को देखा। पर ब्राह्मण के रक्त ने मनुष्यता पर प्यार को थोड़ाकर कर दिया। बाव मेरी जानें क्षुब्ध गईं। मैंने तुम्हारा असखी रूप देख लिया।’

‘क्या देखा ?’

‘कि तुम मनुष्य नहीं कुले हो। तुम्हारे प्यार का मूस एक पूटी रोटी का टुकड़ा है।

‘सोमना ! फतह मुहम्मद कोर से छायत होकर विश्वाया। उसने कहा सोमना बीसा मेरा प्यार जन्मा है बीसा ही मुस्ता भी है।’

‘बहुत कुत्तों का मुँसे में घुर्ता देखा है मैंने।’

इस बाधाकाप के पश्चात् ही सोमना अपने मर्दान प्रेमी का सम्बार में धिरोच्छेद कर देती है।

उत्तरत कुछ लम्बा अवस्य हो गया है किन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाधार्थ चतुरसेर जी ने कथोपकथन पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करने उभाग्ने और निवारने में पूर्ण समर्थ हैं। उपर्युक्त उदाहरण में एक बात और भी इष्ट है। मित्र-मित्र परिस्थितियों एवं आन्तरिक भावों के अनुरूप एक ही पात्र की भाषा एवं उसके क्रिया कलाप में परिवर्तन आता गया है। प्रथम संवाद में सोमना का हृदय पन्न उभरा हुआ है—वह अपने प्रेमी को पुनकार कर, दुसारकट, पिनाकट, लठकर, लजाकर अपना बनाना चाहती है। किन्तु दूसरे संवाद में उसका मस्तिष्क पन्न उभरा हुआ है। इस सबके फलस्वरूप ही बीसा के लकापारमक उत्तर को सुनकर उसका रनचंडी रूप उभर आता है। प्रथम संवाद में उसकी आन्तरिक वेदना व्यक्तित है तो दूसरे में उसका मानसिक जोग एव

उदाहरण । इस प्रकार प्रस्तुत कसोपकथन घोमना के चरित्र के दोनों ही पक्षों को उभारने में पूर्ण सफल रहा है । साथ ही घोमना को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के सवालों एवं क्लियाकलापों का करते हुए भी अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखती है और साथ ही अपनी आन्तरिक और मानसिक दशा के प्रत्येक उठार-चढ़ाव का पूर्ण परिचय देती जाती है । चरित्र प्रकाशक कसोपकथन की यही सबसे बड़ी सफलता है ।

बार्पांमालंकी-सोमनाथ संवाद^१ मन्दिनी कलिंग सेना संवाद^२ राजकुमारी चन्द्रप्रभा-सोमनाथ संवाद^३ (नगरबन्धु) भीमदेव-महमूद एवं मंग सर्वज्ञ संवाद^४ असी बिन उस्मान-महमूद संवाद^५ बीबाबापा मन्दिना संवाद^६ बीबाबापा मङ्गी संवाद^७ बामो महता मस्मोकदेव संवाद^८ कर्मगजदेव-अजयपाल संवाद^९ महमूद अपनेनापति संवाद^{१०} कृष्णा स्वामी-रमा संवाद^{११} महमूद-बामो महता संवाद^{१२} बामो महता-कतह मुहम्मद संवाद^{१३}, कतह मुहम्मद-सोमनाथ संवाद^{१४} महमूद सोमनाथ संवाद^{१५} (सोमनाथ) ठाकुर-महापद्म संवाद^{१६} चम्पा-मुंबरी

- १ बीशाली की नगरबन्धु—आचार्य चतुरसेन, पृ १०४-१०८ तक ।
- २ बीशाली की नगरबन्धु—आचार्य चतुरसेन, पृ २८८-२९४ तक ।
- ३ बीशाली की नगरबन्धु—आचार्य चतुरसेन, पृ ४६८-४७१ तक ।
- ४ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन, पृ ९ से ११ तक ।
- ५ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन, पृ ७२ से ७५ तक ।
- ६ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ १०९ से ११२ तक ।
- ७ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ ११८ से १२० तक ।
- ८ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन, पृ १३३ से १३७ तक ।
- ९ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ १७९ से १८२ तक ।
- १० सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ २०३ से २०८ तक ।
- ११ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ २८४ से २८६ तक ।
- १२ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ ३०४ से ३०९ तक ।
- १३ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ ३२६ से ३२९ तक ।
- १४ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन पृ ४३२ से ४३५ तक ।
- १५ सोमनाथ-आचार्य चतुरसेन, पृ ४४५ से ४४८ तक ।
- १६ मोली-आचार्य चतुरसेन, पृ १०१ से १०२ तक ।

संवाद^१ चम्या बामुदेव महायज संवाद^२ राजी चन्द्रमहक-चम्या संवाद^३
 (गोष्ठी) ईत्यबासा संपरम संवाद^४ मायावती रावण संवाद^५ शम्बर-रावण
 संवाद^६ सूर्यनखा-रावण संवाद^७ (बर्ष रक्षाम) आदि संवाद इसी प्रकार के
 चरित्र प्रकाशक संवाद हैं। वास्तव में इसी प्रकार के कथोपकथनों के माध्यम से
 आचार्य बसुरसेन जी ने पाशों के चरित्र को उजागर है।

कई स्वतंत्रों पर कथाकार कथोपकथन द्वारा अपने उद्देश्य को भी स्पष्ट
 एवं प्रकट करता है। अपने विचार बहु स्वतन्त्ररूप से कथा में दूँस नहीं सकता
 बल्कि उसे पाशों के कथोपकथन का ही संबन्ध ग्रहण करना पड़ता है। किसी भी
 पात्र पर अपने व्यक्तित्व को आरोपित करके उसके माध्यम से वह अपने विचारों
 की अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उपन्यास में कथोपकथन द्वारा
 अपने निरवधारण सिद्धान्तों कल्पनाओं ज्ञान भण्डार आदि के विश्वर्षान करने को
 अधिकार का दुरुपयोग बतलाया है, किन्तु यदि एक सीमा तक कथा और चरित्र
 के साथ अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए इस अधिकार का सुदुपयोग किया
 जाय तो मैं समझता हूँ कि यह अधिकार का दुरुपयोग नहीं है। आचार्य बसुरसेन
 जी ने तो अपने उपन्यासों में अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए कथोपकथन का
 सुलभ प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर तो उन्होंने कथोपकथनों को अपने विचारों
 के प्रचार का साधन ही बना लिया है। उनका यह प्रयत्न "बहते जासू" अमर
 कथिकाया 'अदक अदक' "नवरत्न" "उदयास्त" "बर्षरक्षाम" ११

- १ मोली-आचार्य बसुरसेन पृ १०६ से १११ तक।
- २ मोली-आचार्य बसुरसेन पृ २३९ से २४१ तक।
- ३ मोली-आचार्य बसुरसेन पृ ३१८ से ३२१ एवं ३३९ से ३४२ तक।
- ४ बर्ष रक्षाम-आचार्य बसुरसेन—पृ ६ से ८ तक।
- ५ बर्ष रक्षाम-आचार्य बसुरसेन—पृ १८९ से १९९ तक।
- ६ बर्ष रक्षाम-आचार्य बसुरसेन—पृ २७३ से २८३ तक।
- ७ बर्ष रक्षाम-आचार्य बसुरसेन—पृ ४९ से ५६ तक।
- ८ अदक-अदक पृ १२ से २७ तक ४२ से ५८ तक आदि।
- ९ नवरत्न पृ ३९ ४० ४१ १२८ १६१ १६५, ४८१।
- १० उदयास्त पृ ४९—५७ तक ६१ से ६३ तक ७८ से ८२ तक ८८ से ९६ तक १०० से १०४ तक आदि।
- ११ बर्ष रक्षाम-पृ ३३६ से ३३८ तक आदि।

'बुद्धा के पक्ष'^१ 'सघात'^२ एवं 'पत्थर पुप के दो बुत'^३ 'सोना और लून'^४ आदि उपन्यासों में विशेष रूप से उभरी हुई है इसका कारण उनकी अपनी स्वयं की यह धारणा थी कि 'मैं उपन्यासों को कथानक पर आधारित नहीं रखता विचारों पर आधारित करता हूँ।'^५ कथानक के अन्य उद्देश्यों की दृष्टि से आचार्य बतुरसेन भी के ऐसे कथोपकथन अधिकारिता कम्बे एवं विचार प्रधान होने के कारण बुरा हो गये हैं किन्तु वहाँ पर उन्होंने विद्वता प्रवर्तन के मोह में अधिक न पड़कर स्वाभाविक कथोपकथनों के ब्याज से अपने उद्देश्य को स्पष्ट करना चाहा है वहाँ वे अधिक सफल रहे हैं। इस दृष्टि से 'अपराजिता' 'सोमनाथ' 'गोली' आदि उपन्यासों में कथोपकथन अधिक स्वाभाविक है। 'सोमनाथ' का एक उदाहरण बैलिए —

महमूद सोमनाथ महात्म्य को मष्ट कर चुका है देवमूर्ति के साथ मूर्ति पूजक किउने ही निरीह प्राणियों को वह मृत्यु के घाट उतार चुका है। इसी समय महात्म्य के अधिकारी कुप्पस्वामी की पत्नी रमाबाई से उसका सामना होता है। रमाबाई उसके अमानवता पूर्ण कार्यों पर उसे फटकारती है।

'महमूद बड़ी बेर तक उस औरत की ओर ताकता रहा एक हस्की मुस्कान और कदना की लम्क उसके नेत्रों में आई। उसने बस्य पन्मीर स्वर में कहा औरत तसबार के बिनेता महमूद के सामने तुने जो सच कहा वह बाइघाहीं के लिए इज्जत की बीज है। दुनिया में दो बीजों लोगों को बिन्वगी बरघटी है। एक मूरत की किरमें और दूसरा माँ का दूध। तुने बिन्वगी से प्यार करने की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। ठीक कहा तुने औरत। और तू माँ है माँ के बिना महमूद पैदा ही न हो सकता था। फिरबीसी बल्लबहमी, भरस्तू सेवसाबी ये सब माँ के बच्चे हैं। ऐ माँ माये बड़ और इस बच्चे के सिर पर हाथ रख कर इने बुआ बच्चा बिगने तीस बर्य तक बरती को अपने पैरों से कुचककर उसे लोहू से काक किया है।'

- जो कदम आग बढ़कर महमूद सिर मुका कर एक बालक की भाँति रमा बाई के आँसे आ बड़ा हुमा।'

१ बुद्धा के पक्ष पृ १२८-२०५।

२ सघात पृ ५९ से ९५ तक, २७१-२७७ तक, २८३ से २९० २९२-२९८।

३ पत्थर पुप के दो बुत १४-१९, १०० से १०२ आदि।

४ सोना और लून पूर्वार्द्ध १०२ से १०३ तक

५ आनन्दक जनवरी १९२९ पृ ५९।

रमाबाई का ख भाव एकबारगी ही जाता रहा । उसने हाथ की सक्की फेंक भागे बड़कर महमूब के मस्तक पर हाथ रखकर और बाँसों में बाँसु भर कर कहा— 'जैसे तू जिंदा आदमी को मार सकता है उनका घर बार लूट सकता है वैसे महमूब उनकी भी ठेरी छी जान है उन्हें कितना दुःख होता होगा बोध दो ।' रमाबाई की बाँसों से सर-सर बाँसु बह चले ।

महमूब ने सिर झेंचा किया । उसने कहा 'बहुत बोग मुझसे अपने राज्य और हीनत्व के लिए कड़े । लेकिन इंसान के लिए आज तक मुझसे कोई नहीं सका । मैं तुम्हारा का बन्दा महमूब नहीं कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए । यह औरत जो मेरे सामने खड़ी है, उसने मुझे एक नई बात बतलाई है, जिसे मैं नहीं जानता था । इसने हाथ में तम्बूआ नहीं है तम्बूआ का डर भी इसे नहीं है । यह रोटी और मिड़गिड़ाती नहीं । बाबसाहों के बाबसाह महमूब को फटकारती है इंसान के प्यार ने इसे इस तरह मजबूत बनाया है । "

महमूब रमाबाई से कुछ माँगने को कहता है, रमा उससे भविष्य में बिनास न करने का बरवान माँगती है । महमूब उसकी बात स्वीकार करके उसी क्षण वेब पट्टन से सेना को वापस धीटने का आदेश दे देता है ।

प्रस्तुत उदाहरण में उपन्यासकार ने अपरोक्षरूप से अपने अहिंसा के संदेश एवं मानव पूजा की भावना को रमाबाई ने मुझ से महमूब ने समझा कहला दिया है । किंतु यह कथोपकथन लम्बा होने पर भी कहीं से भी अस्वामाधिक नहीं होने पाया है । इसका कारण है कि इसमें उपन्यासकार ने कथोपकथन के तीनों उद्देश्यों को—कथानक को गति प्रदान करना चरित्र को उभारना एवं उद्देश्य को स्पष्ट करना—एक साथ बमस्तुत किया है । रमा की स्नेह सित्त फटकार ने अहिंसावाद का संदेश है जो महमूब के पट्टन प्रस्थान करने एवं भविष्य में बिनास न करने की प्रतिज्ञा से कथानक को गति मिलती है । रमाबाई की निर्भीकता साहस अकल्पित प्रगल्भता एवं सबसे ऊपर पतिमरिठ आदि उसका चरित्रिक गुण उपर्युक्त कथोपकथन से स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं । मेरे विचार से कथानक के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले ऐसे ही कथोपकथन उपन्यास में प्रयुक्त होने चाहिए ।

कथोपकथन के ब्याज से पूर्व संकेत —

कभी-कभी कथानक कथोपकथन के माध्यम से पूर्व संकेतों की भी योजना करना है जिससे कथानक की कलात्मक महत्ता बढ़ जाती है । आचार्य अत्रुतेन

की कठम्याओं में इस प्रकार क कपायकल्पन भी प्राप्त है। 'बैनाली की नगर
घणू का एक उदाहरण देखिए —

मगवान् बाण्यवन स्वयं क थायम पर अकस्मात् मगव सम्राट् और
यम्यपाती की भेंट हो जाती है। वहीं दोनों में परस्पर 'सौश' हो जाता है। इस
सौश' पर नबिष्यवागी करत दुग मगवान् कहते हैं।

मगवान् न हूँकर कहत 'अब कहो शुभे अम्बपाती में तुम्हाय क्या
प्रिय कर सकता हूँ ?

अम्बपाती मौन रहो। मनेत पाकर माचब अये मए। उनके जान
पर अम्बपाती ने कहा 'मनबन् इस समय क्या किनी गुण्ठर कार्य में
मंठय है ?

'नहीं नहीं मैं तुम्हाटी ही गमना कर रहा पा।

'इम माय्यहीन के भाग्य में अब और क्या है ?

'बहुत कुछ कल्याणी। तुम्हाय सौश सकत है तुम मगव के सम्राट की
माता होगी। किन्तु --

अम्बपाती न बिस्मित होकर कहा—

'मगवान् सर्वेश्वरी है पर किन्तु क्या ?

'किन्तु साम्राज्ञी नहीं।

अम्बपाती क हॉठ काँप पर बह बोली नहीं। मगवान् ने फिर कहा 'और
एक बात है शुभ।

'बह क्या मगवन् ?

'तुम बैनाली वसुध्व की जन हो बैनाली का अदिष्ट न करना।'

यहाँ पर भाषामें अणुरसन की न प्रस्तुत कथोरकल्पन के माध्यम से
नबिष्य में अटित होतवाली त्रिन घटनाओं की ओर संकेत किया है, वस्तुतः
उपस्थाप के अंत में यही घटनाएँ अटित हाठी हुईं बीच पढ़नी हैं।

बातावरण सृष्टि—

कथोरकल्पन का एक उद्देश्य बातावरण सृष्टि एवं देव काल का बोध
करना भी है। किसी भी संस्कृति अथवा समाज को प्रत्यक्ष करने के लिए
कथाकार के समीप कथोरकल्पन एक सुन्दर माध्यम है। दो पात्रों के कथोरकल्पन
द्वारा वह उत्कामीन समाज अथवा संस्कृति को साकार कर सकता है।

भाषार्य चतुरसेन भी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में बाठावरम निर्माण के लिए इसी प्रकार के कपोपकपोनों की सृष्टि की है। इससे एक ओर वहाँ कपोपकपोनों में स्वाभाविकता या मर्द है वहीं दूसरी ओर बलिष्ठ युव भी साकार हो उठा है। यहाँ हम बीड़ काम से सम्बन्धित भाषार्य भी के उपन्यास 'बैसासी की नगर बन्धु' का एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कोसल नरेश महासेन का विवाह कर्किग सेना से होने जा रहा है। इस उपलक्ष्य में उन्हें किन्ती ही बालियाँ में की जाने वाली है। उन बालियों में चम्पा की राजनरती चन्द्रप्रभा भी एक है। यह समाचार प्रसेनबिष्ट के पुत्र बिबूडम को महावीर स्वामी के द्वारा ज्ञात होता है। महावीर स्वामी की आज्ञा से ही वह राजकुमारी की रक्षा करना चाहता है। इसी उद्देश्य से वह अपनी गवीन होने वाली माता कर्किगसेना के समीप अपनी माता के साथ प्रार्थना लेकर जाता है। देखिए—

बिबूडम ने अभिवादन किया। कर्किगसेना ने हँसकर दोनों से कहा 'स्वामत बहिन स्वागत जात इस जनबकास में जनकास कैसे निजा ?

'निमित्त से अय्ये' बिबूडम ने बात न बढ़ाकर कहा।

'तो निमित्त कहो जात ? गौबारी रानी ने आसक्ति होकर कहा।

'एक दुष्कर्म रोकना होमा अय्ये।

'दुष्कर्म ?

'हाँ अय्ये।

'कह जात ?

'राजमहिषी ने विवाहोपलक्ष में महापुत्र को भेंट देने के लिए एक बाली मोख की है।

गौबारी कर्किगसेना ने मुस्कराकर कहा 'तो पुत्र इसमें गवीन क्या है जसाधारण क्या है, दुष्कर्म क्या है।

'अय्ये वह पाठी चम्पा की राजनरिनी—मुभी चन्द्रप्रभा थीक चन्द्रगा है।

'अबु में अबु में। यह तो अठि भमानक जात है पुत्र।

'इसका निराकरण करना होगा अय्ये।

'तुमसे किसने कहा ?

'अमल जयबामू महावीर ने।

'कुमारी कहाँ है भद्र ?

'दक्षिण हर्म्य के अन्तःप्रकोष्ठ में ।

'तब बसो हृष्टा राजकुमारी को आस्वाद्यत वें ।

'किंतु करणीय क्या है बहिन ?

कुमारी से कोपस के राजकुमार को क्षमा मांगनी होगी ।

'परन्तु उसकी रक्षा ?

'क्या महिषी बेबी मस्त्रिका सब जान-सुनकर भी राजनन्दिनी को बासी मात्र से मुक्त न करेंगी ?

'हो सकता है पर पिता जी से आशा नहीं है । इसलिए अभी उन्हें तुरंत आबस्ती से बाहर गोपनीय रीति से भेजना होगा । पीछे और बातों पर विचार होगा ।

'तो भात तू व्यवस्था कर । तब तक हम राजनन्दिनी को आस्वाद्यत रेंगी ।'

प्रस्तुत उदाहरण में पाली एवं प्राकृत के कुछ शब्दों का प्रयोग केवल वातावरण निर्माण के लिए ही किया गया । 'अग्ने जात अग्नु पुत्र इका आदि इसी प्रकार के शब्द हैं । इसके प्रयोग मात्र से तत्कालीन वातावरण पूर्णरूप से चमत् आया है । आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यासों में वातावरण-निर्माण के लिए इसी प्रकार के किन्तमे ही शब्दों की सृष्टि की है ।

आचार्य चतुरसेन जी के कथोपकथनों की प्रमुख विशेषताएँ —

ऊपर हमने दिखाया कि उपन्यास के कथोपकथन की रचना आचार्य चतुरसेन जी ने किन उद्देश्यों को लेकर की है । केवल कथोपकथन का उद्देश्यपूर्ण होना ही आवश्यक नहीं है परन्तु कथोपकथन की सफलता के लिए कुछ अन्य गुणों का होना भी आवश्यक है । उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन की सफलता भी उसकी सार्थकता अमुकमता सरसता रोचकता सम्बद्धता स्वाभाविकता वैदग्ध्यपूर्णता एवं संक्षिप्ता आदि गुणों के कारण ही सम्भव है । इन गुणों के अभाव में एक उद्देश्यपूर्ण कथोपकथन भी विपिक्त अस्वाभाविक एवं नीरस हो जाता है । आचार्य चतुरसेन जी के कथोपकथन उद्देश्यपूर्ण होने के साथ-साथ उपर्युक्त गुणों से भी पूर्ण हैं । यहाँ हम आचार्य जी के कथोपकथनों में प्राप्त उपर्युक्त गुणों का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

सार्थकता एवं अनुबूनता —

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों के अधिकांश कथोपकथन सार्थक एवं

कथानक के अनुकूल है। यदि कथानक में निरर्थक कथोपकथन को स्थान दिया गया तो यह निश्चित है कि अन्य समस्त गुणों से युक्त होने हुए भी वह कथोपकथन कथानक को माराज्रन्त कर देगा। कथोपकथन बड़ी सार्थक होगा जो घटना बखतर एवं बाताबरन के उपयुक्त होगा। आचार्य अतुरसेनजी ने अपने कथोपकथनों में इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा है। उनके कथोपकथन सार्थक होने के साथ साथ विपयानुकूल भी होते हैं। वैसे कि हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं कि उनके कथोपकथनों में कथानक को गति प्रदान करने के साथ-साथ चारित्रिक-विक्षेपण का गुण भी समाविष्ट रहता है।

शृंगारिता—

आचार्य अतुरसेन जी के अधिकतर कथोपकथन जादि से अन्त तक कथानक में ही अगस्त्य रहे हैं। उन्होंने ऐसे ही कथोपकथनों का उपयोग किया है जो कथा में बिजाया एक कौतूहल उत्पन्न करने में समर्थ हो सके हैं। उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि कथोपकथन का सार्वजन्य ऐसा हो जैसे नदी में लहरों की गति और उस पर वायु का सहज संगीत जिसके सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर कथा पढ़ने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहें।^१ यदि किसी कारण से कथोपकथनों की शृंखला टूट जाती है तो निश्चित रूप से कथन भी विभ्रम लक्ष हो जायेगा। अतः यह आवश्यक है कि कथोपकथन कथानक बनना पानों से किसी न किसी प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो। स्वतंत्ररूप से विकसित हुए कथोपकथन कितने भी सुन्दर एवं कसालक क्यों न हों किन्तु कथा पर वह भारवत् ही रहेंगे। आचार्य अतुरसेन जी ने अपने अधिकतर कथोपकथनों में इस बात का ध्यान अवश्य रखा है किन्तु कभी-कभी उन्होंने कथोपकथनों के ध्यान से अपने सिद्धांतों निश्चयों एवं आचार्यत्व का प्रदर्शन भी किया है। इस प्रकार के मोह ने उनके कथानक की कसालक गुणमा को तो महदा आघात पहुँचाया ही है साथ ही ऐसे कथोपकथनों ने कथानक की शृंखला को भी भंग किया है। पीछे "कथोपकथन के उद्देश्य" में हम इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। 'बैशाखी की मगरबू' एवं 'अर्थ रत्नाम' में उनका आचार्यत्व 'उद्यास्त' 'अरक बरक' एवं 'अघास' में उनके सामाजिक एवं राजनीतिक सिद्धांत कथोपकथन के ध्यान से कथानक पर बलात् जादे मये हैं जिससे कथानक की शृंखला स्थान-स्थान पर टूटी हुई स्पष्ट जान होती है। कुछ स्थलों पर भाषण के समान के लम्बे कथोपकथन भी आचार्य अतुरसेन जी

१ हिन्दी कहानियों की विस्तारविधि का विकास डा० लाल, पृ ३३५।

क उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। 'बैशाखी की नगरवधू' के सम्बन्धी-रूपरेख संवाद^१ बिबुद्धम प्रमनवित्त सबाद^२ बिबुद्धम-वीरक सबाद^३ आदि। 'उदयास्त' के मानवन्धामी एवं गुरुण भाति के सबाद^४ 'अप्राप्त' के जोरोबन्धी-विज्ञा एवं गूढ़ पुष्प प्रतिमा एवं त्रिपारी^५ आदि के सबाद इसी प्रकार के अन्य सबाद हैं। 'अपल वदल' में बालर, सठ एवं विमला के संवाद मास्टर-विमला संवाद आदि^६ के माध्यम से उपन्यासकार न अन्त नारी-स्वतंत्रता सम्बन्धी सिद्धांतों का 'आमा' में आमा-जनिक संवाद द्वारा नारी मनोविज्ञान का उसमें उद्घाटन करने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार के कथापकथनों के विद्यमान ही उदाहरण आचार्य अनुरमेन जी के उपन्यासों में भरे पड़े हैं। ऐसे अनेक एवं प्रचाररमक कथापकथनों से जहाँ एक ओर कथा अकड्ड एवं कथानक बिभू कस हुआ है वहीं दूसरी ओर एक कथोनकथन भी अस्वामाविक एवं नीरस हो गए हैं। 'उदयास्त' एवं 'अप्राप्त' के कुछ संवाद तो सबाद न रहकर 'इष्टरम्भू' से प्राप्त होने लगे हैं। 'बहुत आँसू' (अमर अभिजापा) के रामचन्द्र अयनारायण संवाद में आये समाज के मित्रों के प्रचारकी गंध स्पष्ट जान होने लगी है। किन्तु यहाँ इन सब बातों से दूर रहते हुए आचार्य अनुरमेन जी ने कथापकथनों का प्रयोग किया है वह वे उपन्यास की मति में बाधक न होकर सापक ही रहे हैं।

आचार्य अनुरमेन जी के संवादों में नाटकीयता—

आचार्य अनुरमेन जी के कथापकथन प्रायः रोचक प्रबाहुर्ण होने के साथ साथ नाटकीय^७ तत्व से पूर्ण होते हैं। यदि कथापकथन के द्वारा पात्र की व्यक्तिक

१ बैशाखी की नगरवधू आचार्य अनुरमेन पृ ४२-४३।

२ बैशाखी की नगरवधू, आचार्य अनुरमेन पृ १२२-२३।

३ बैशाखी की नगरवधू, पृ १६२-६३।

४ उदयास्त पृ ३३ से ३७ तक, ६१ से ६३ तक ८९ से ९६ तक।

५ अप्राप्त पृ ८३ से ९३, २८३ से २९०, २९२ से २९८।

६ अपल-वदल पृ १३ से २७ ४८ से ३८ तक आदि।

७ उपन्यास के कथापकथनों की नाटकीयता नाटक से भिन्न होगी कारण 'नाटक' में कथापकथन के साथ उसके अभिनेतारमक तत्व उसमें दिये रहते हैं जो अभिनेता की भाव अभिप्राय और उसके ध्यापारों में अपनी अभिव्यक्ति पासे रहते हैं किन्तु उपन्यास एवं कहानी तो पिण्ड रूप से पठन-वाचन की वस्तु

वेद्यों एवं मुद्राओं की भी उपलब्ध अभिव्यक्ति करने में कथाकार समर्थ रहा है तो निश्चित ही वह कथोपकथन नाटकीय कहा जा सकता है। इस नाटकीयता की अभिव्यक्ति के लिए कथाकार ने अपने उपन्यासों में कितनी ही शैलियों एवं विधाओं का व्यवहारा किया है।

धाचार्य अतुरसेन की क संभारों को पढ़ने मात्र से ही अमूर्त बटना मुठिमान होकर हमारे मानस नेत्रों के समक्ष बटित होती हुई स्पष्ट बात होने लगती है। यही उनके नाटकीय संभारों की सबसे बड़ी सफलता है। इस दृष्टि से रमाबाई की अपने पति कृष्णस्वामी से हुई बार्ता (सोमनाथ में) उल्लेखनीय है। महासेनापति की आज्ञा से कृष्णस्वामी अपनी पत्नी रमाबाई से महात्म्य छोड़कर अस्थान जाने की कहते हैं। 'महात्म्य में रैतिक व्यवस्था के कारण स्त्रियों की सम्भार में रहने एवं रक्षा की व्यवस्था की जा चुकी है इस तथ्य को कृष्णस्वामी अपनी पत्नी को बार-बार समझाना चाहते हैं किन्तु वह उनसे इस कथन का बुराप ही धर्म लेती है। वह अपने जीते की पति शरणों को नहीं त्यागना चाहती। अपनी इसी बात को वह अपनी विभिन्न भाव-संगिमाओं का प्रदर्शन करके पति को बतला रही है। बेचिए—वह पुस्तों से मुँह फूलाकर अपनी गोल-गोल आँखें घुमाती हुई बेचन लेकर कृष्ण स्वामी के सामने तनकर बड़ी हो गई और सपिनी की भाँति फुफकार मारकर बोली—'बेचती हूँ तुम मुझ बीठी जागती को कँसे बर से निकालते हो—बार फेरे डाक धमिल की छापी करके लाये हो—मागकर बाप के बर से नहीं निकली हूँ। अब इस बर की बेहमी से बाहर मेरी लास ही निकलेगी—समझे।' किन्तु कृष्ण स्वामी ने मर्म होकर समझाते हुए कहा—'बहु बात नहीं है सोमना की माँ वह गजनी का राजस बा रखा है। उसी के घम से सब लोग बर बर छोड़कर भाग रहे हैं। तुम्हें बर से निवास्ता कौन है। बर बर तो सब तुम्हाय ही है। तुम्हीं न बर की मालकिन हो। 'इस पर त्रिभ करके रमा ने कहा—'तो जिसे बर हो वह धामे। बाए वह गजनी का राजस इसी बेचन से उसका सिर न फोड़ तो मेरा नाम रमा नहीं। वह गैर की तरह मुझकली हुई सारे घर में घूम गई। तब फफक-फफककर रोने लगी। रोते-रोते बड़बड़ाने लगी—'तुमने क्या घर बालाया है, और अब डर के मारे औरत को घर से बाहर भेज रहे हो बड़े बड़े बहादुर

है। इसके कथोपकथन में अतुरसेन बाँधों की मुद्राओं स्थितियों की व्यवस्था और इसके साथ ही साथ कार्य-व्यापारों की विवेचना करते रहना धापुरिक कथा साहित्य की परम विशेषता है।

हो। नाम्ना औरन की रक्षा नहीं कर सकते ये तो उसका हाम चार पक्षों में क्यों पकड़ा या। फिर इत है तो तुम भी क्यों तुम यहाँ कहीं से ठीर-उमके चलाओगे। देखी है तुम्हारी जवांमरी बस अमिक म कहलाओ।”

हृष्णस्वामी ने फिर साहस किया। समझाते हुए बोले ‘सोमना की मं महाराज महासेनापति की आज्ञा है। वह तो माननी ही पड़ेगी।

रमा ने सीअकर कहा ‘क्यों माननी पड़ेगी मैंने महासेनापति से क्या कहनी किया म उनकी बहील हूँ। महासेनापति मेरे सामने तो धाएँ। कौन मे पाम्न बचन मे वह पत्नी की पनि चरणों मे दूर करते हैं चरमी को चर से निकामते हैं मुनू तो। बड़े आये लीसमारकी।”

हृष्ण स्वामी ने सीअकर कहा ‘तो तुम नहीं आओगी।

‘नहीं नहीं जाऊँगी नहीं जाऊँगी नहीं जाऊँगी यहाँ तुम यहाँ मैं। वह रोनी रोती हृष्णस्वामी के पैरों से तियट गई। रोती-रोती बोली—‘इस दुःख मे अघर्म मे मड मसोने इन चरणों से दूर म करो दया करो दया करो।’

उक्त संवाद की सबसे प्रमुख विशेषता है इसकी चित्रोपमता एवं नाटकीयता। ‘रमाबाई का बेचन सेकर मोक-मोक आँखें घुमाना’ उसका एव रूप देखते ही पति का संकपका जाना पति के पुन कहने पर उसका अपराधों मे स्वागत करना उनकी जवांमरी की ललकारना और अन्त में पति चरणों को पकड़कर बिलख-बिलख कर रो उठना आदि चित्र उनके अन्तर के अनेक मनोभावों की एक साथ उभारने में पूर्ण सफल हुए हैं। आचार्य अनुरागेन जी के इस प्रकार के कथोपकथनों में अमिनय की स्वरा तथा धक्ति के साथ ही साथ स्वाभाविकता एवं सजीवता भी प्रत्यक्ष भा विद्यती है।

इसी प्रकार का ‘बैरागी की नमरबधु’ का भी एक उदाहरण देखिए—
सामप्रथम कुइनी के साथ चम्पा के लिए प्रस्थान करता है। विजु मार्ग में शम्बर अमुर की ममरी में रुँस जाता है। कुइनी अपने कीचल से अमुर के पात्र मे मुक्त होना चाहती है। सोम की मानुरी भाषा का कुछ ज्ञान है। वह अमुर की बात कु इनी तक और कु इनी की बात अमुर तक पहुँचा रहा है। देखिये—

“अबसर पाकर उसने सोम मे कहा—क्या वह रहा है यह अमुर ? प्रथम निवेदन कर रहा है कुइनी तुझे अमुर राजमहिपी बनाया चाहता है।”

कुम्बनी ने हँसकर कहा 'कुछ-कुछ समझ रही हूँ सोम । यह असुरराज मेरे सुपुत्र रहा । उन सब असुरों को तुम जाकूठ पिन्ना हो । एक भी सावधान रहने न पावे । भाँडों में एक भी बूँद मय न रहे ।

'उन असुरों से निश्चिन्त रह कुम्बनी वे तेरे हास्य ही से धममरे हो गए हैं ।"

"मरें वे सब ।" कुम्बनी ने हँसकर कहा ।

धम्बर ने कुम्बनी की कमर में हाथ बाँधकर कहा—'मानुषी मेरे और निकट ना ।"

कुम्बनी ने कहा—'अमागे असुर, तू मृत्यु को आन्वित करने जा रहा है ।

धम्बर ने सोम से कहा—'बह क्या कहती है रे मानुष ।

सोम ने कहा 'बह कहती है, आज आनन्दोत्सव में सब मोठानों को महा शक्तिशाली धम्बर के नाम पर छक कर मय पीने की खाँजा होनी चाहिए ।

'पिएँ वे सब । धम्बर ने हँसते-हँसते कहा । और कुम्बनी ने एक मड़ा धम्बर के मुँह से लगा दिया । उसे पीने पर धम्बर के पाँव डबडबाने लगे ।

कुछ असुरों ने आकर कहा—'भोज भोज अब भोज होना । धम्बर ने यथासंभव होकर हिचकियाँ केटे हुए कहा—'मेरी इस मानुषी-हिक-मुदरी के सम्मान में सब कुछ खूब खाओ पियो हिक-अनुमति बैठा हूँ-हिक खूब खाओ पियो । मुझे सहाय्य वे मानुषी हिक-और मागव मानव तू भी स्वच्छन्द-खा पी हिक । बह कुम्बनी पर झुक गया ।'

प्रस्तुत कथोपकथन द्वारा उपस्थासकार ने कुम्बनी की सचकंठा सोम की चातुरी एवं धम्बर की कामुकता का चित्र एक साथ चित्रित कर दिया । मदिरा से मस्त असुर की बाबी जाकूठ एवं क्रिया कलाप समी में पूर्ण अभिनयारम्भकता है ।

इसी प्रकार आचार्य अनुरसेन भी के अधिकांश संवादों में नाटकीयता के गुण प्राप्त होते हैं । जहाँ उन्होंने जो से अधिक व्यक्तियों के पारस्परिक संवाद दिए हैं, वहाँ भी उनके संवाद पूर्ण नाटकीय एवं स्वाभाविक हैं । इस दृष्टि से 'उदयास्त' की ए, बी सी डी पाठों के संवाद उम्मेदनीय हैं ।^१ इसमें वार्ताकाप के द्वारा ही विभिन्न वक्तव्यों को चार्पितक विज्ञेयताएँ उजाड़ी गई हैं । प्रत्येक पात्र की सच्च उच्चारण पद्धति विचारों को प्रस्तुत करने की प्रणाली मुख

१ बीघाली की नगरवधू आचार्य अनुरसेन, पृ १९६-१९७ ।

२ उदयास्त, पृ १८०-१९० ।

रर आनेवाली विभिन्न भाव भंगिमाओं, नेत्रों की संज्ञात्मक क्रिया आदि को ही पकड़कर पाठक बस्ता का एक काव्यनिक चित्र बनाने में सफल हो जाता है। रामायण 'सोमनाथ' संवाद^१ (सोमनाथ) सुरेश-मानंद स्वामी संवाद^२ राज भैया कछवार संवाद^३ (उदयास्त) ठाकुर राज संवाद^४ (अपराजिता) आदि संवाद इसी प्रकार के हैं। इनमें उपन्यासकार ने अपनी ओर से पात्रों की विभिन्न भाव भंगिमाओं और मुद्राओं का संकेत देकर संवादों को और भी नाटकीय बना दिया है।

नाटकीय संवादों के अतिरिक्त आचार्य पतुरसेन जी ने अपने प्रारंभिक उपन्यासों में नाटक की भाँति के संवादों का भी प्रयोग किया है। नाटक की भाँति के संवादों से हमारा तात्पर्य उन संवादों से है जिनमें पात्र की भावभंगिमा एवं मुद्रा मुद्रा को उसके कथन के पूर्व ही ब्रैकेट में रक्त दिया जाता है। जैसे 'सूय माद रसबी भाई, बह स्वांग की बात तो। (हाथ पकड़कर) अब बसो'

'मुझसे तो न रहा जायगा। (बाँसू पोंछकर) बरा-सी कड़की मेरे मुहाने को कोसेनी

'जी हाँ महाराज ने कहा है कि—(काम में झुककर) महाराज तो आचार्य की कृपा पर निर्भर हैं।'

आवि प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रयोग उपन्यासकार की भावभंगिमा की शक्ति की असमता प्रकट करते हैं। अत्र त्याग्य है। आचार्य जी के प्रोढ़ उपन्यासों में ऐसे दोषपूर्ण प्रयोगों का सर्वथा अभाव है। हाँ 'बयं रथाम' में उगहोने एक-दो स्थलों पर ऐसे प्रयोग पुनः किए हैं।

स्वाभाविकता, सरसता एवं रमणीयता—

आचार्य पतुरसेन जी के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे स्वाभाविक सरस एवं रमणीय होते हैं। इससे तात्पर्य है कि उनके कथोपकथन बोझने

१ सोमनाथ, पृ ११४।

२ उदयास्त पृ १२ से १४।

३ उदयास्त पृ ८१-८६।

४ अपराजिता पृ ११२-११३।

५ बहते भाँसू पृ ४४।

६ बहते भाँसू पृ ४५।

७ देवांगना पृ ४७।

भाषे पात्र के उपयुक्त एवं परिम्विति विशेष में सहज तथा संगत प्रतीत होते हैं। कपोपकपन सभी स्वामाबिक हो सकता है जब वह रचना पर बलात् सभोया हुआ न हो। यदि उसमें कृत्रिमता आ गई तो यह निश्चय है कि वह रचना पर भारबद्द हो जायेगा जिससे वह प्रभाव शून्य होने के साथ-साथ तीरस भी ज्ञात होने लयेगा। कपोपकपन स्वामाबिक सभी हो सकते हैं जब वे पात्रानुकूल एवं भावा-नुकूल हों। वे पात्रों के विविध भावों प्रकृतियों मनोवेगों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने के साथ-साथ पात्रों की वैयक्तिकता की रक्षा में भी पूर्ण सफल हों।

इस दृष्टि से आचार्य जतुरसेन जी के संवाद पूर्ण स्वामाबिक हैं और पात्रानुकूल भी। अभ्ययन की सुविधा के लिए हम आचार्य जी के स्वामाबिक संवादों को निम्न दो भागों में रक सकते हैं —

- १ पात्रानुकूल संवाद
- २ भावानुकूल संवाद

सरसता रमणीयता एवं रसारमकता इन दोनों ही प्रकार के कपोपकपनों की प्राप्ति है। स्वामाबिकता के सर्व वैदिक जीवन के वातावरणों को ज्यों का त्यों अंकित कर देना नहीं है। ऐसे वातावरण स्वामाबिक होते हुए भी तीरस एवं प्रभाव शून्य होंगे। अतः स्वामाबिकता के साथ-साथ संवाद का रसारमक एवं रमणीय होना आवश्यक है।

पात्रानुकूल संवाद—

आचार्य जतुरसेन जी के पात्रानुकूल संवादों की सर्वप्रधान विशेषता है कि—वे पात्रों की वैयक्तिकता की रक्षा में पूर्ण सफल हुए हैं अर्थात् उनका प्रत्येक पात्र अपनी चरित्रगत विशेषताओं के कारण अन्य पात्रों से पुनः ज्ञात होता है। पात्र विशेष की भाषा शब्दों एवं वाक्यावली के जयल उसकी वाणी एवं कपोप-कपन अंगिमामें भी उसने स्वयं के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट ज्ञात होती है। किन्तु जबसर पर कौन से पात्र को किस प्रकार की भाषा और वाक्यावली का प्रयोग करना चाहिए, यह आचार्य जतुरसेन जी को पूर्णरूप से ज्ञात था। इसी कारण से विवेची जबबा र्ग-विशेष के (विशिष्ट भाषा भाषी) पात्रों के कपोपकपनों को लड़ी बोली में लिखते समय उपम्यासकार ने उसमें स्वामाबिकता का पुट-बेने के लिए उन पात्रों की वास्तविक भाषा के कुछ शब्दों प्रचलित वाक्यों एवं मुहावरों को भी का रखा है। इससे उनसे संवादों में स्वामाबिकता तो आ ही गई है साथ ही वातावरण में स्थानीय स्पर्श देने में भी कवाकार को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

भाषार्य बतुरसेन जी क पात्रों का संसार विस्तृत है। विभिन्न प्रांतों देशों एवं संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र उनके उपन्यासों में आए हैं। एक सीमा तक उनके सभी पात्र अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में पूर्ण सफल रहे हैं। उनके राजस्थान के पात्रों के मुख से राजस्थानी के शब्द निकले हैं तो ब्रजभाषा भाषी प्रदेश के पात्रों के मुख से ब्रजभाषा के शब्द। उसका मुसलमान पात्र अपने संवादों में अरबी-फारसी के शब्दों से पूर्ण भाषा का प्रयोग करता है तो अंग्रेज पात्र अंग्रेजी शब्दों से मिश्रित टूटी-फूटी हिंदी भाषा का। उनके पौराणिक तथा हिंदू एवं बौद्ध युग के ऐतिहासिक पात्र संस्कृत के उत्तम शब्दों से पूर्ण भाषा का प्रयोग अपने कथोपकथनों में करते हैं। 'बयं रत्नाम' में तो उनके कुछ ब्रजभाषी पात्र संस्कृत में भी परस्पर वार्तालाप करते हुए देखे जा सकते हैं। यहाँ हम उनके संवादों के कुछ उदाहरण देकर यह बताने का प्रयत्न करेंगे कि भाषार्य बतुरसेन जी अपने पात्रानुकूल संवादों में कहीं तक सफल हो सके हैं।

भाषार्य बतुरसेन जी ने अपने पात्रानुकूल कथोपकथनों में पात्रों के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक स्तर का सर्वत्र ध्यान रखा है। तभी उनके यथोचित एवं अत्युचित पात्रों के संवादों में तद्बुद्ध एवं वेदज शब्दों का बाहुल्य रहा है। 'बहते घाँसू' (ब्रज अमिताया) नामक उपन्यास का एक लोक भाषा का संवाद देखिए। कड़वाही जयनारायण भाई समाजी रामचन्द्र के ब्रजक प्रयत्न के फलस्वरूप अपनी द्वितीय पुत्री मारामयी (विधवा) का द्वितीय विवाह करने की प्रस्तुत हो जाते हैं। इस विवाह का आयोजन उन्होंने अत्यंत सरल ढंग से किया था। अतिमित्र बाह्यन-समाज उनके इस सद् प्रयास का विरोध करता है किन्तु भोज एवं बसिणा मिलने पर वह उसे माम्य-यज्ञ देने को प्रस्तुत है। भोज की प्रतीक्षा में ही बाह्यन सयान एकत्र है किन्तु जयनारायण के यहाँ से उनके समीप कोई निमंत्रण नहीं आया। सभी धुपा से व्याकुल हैं। उस समय का उनका वार्तालाप दृष्ट्यम् है। "उनमें कुछ पढ़-पत्वार से। वे बटक-बटककर कुछ अन्न उकाड़ लिया करते थे। संकल्प समूचा याद का और बल से बल से सत्य मारामयी की कथा भी कह लिया करते थे। सबने उन्हीं को घेर। सब बोले 'ब्रज और कौन बोले पंडित जी है ही जो वे करें सो होय। पंडित जी एकदम यम्भीरता की कीचड़ में लपक हो गये—मातों कोई घर का मर गया हो। इस तरह धीरे-धीरे बोले 'पासतर की जो है सा, आज्ञा ऐसी है इस पापी के घर भोजन नहीं करना चाहिए जो है सो।

सब चुपचाप सुनते रहे। पंडित जी फिर बोले 'इसमें हम जो हैं सो बनना स्वार्थ नहीं देखते मर्यादा की बात है।

कुछ बेर पीछे एक महाराज बोले 'इतने जो बात धामे के निकल नय के सममें से हवा निकल जाती थी। आप कहते सगे—पर मुस्कल ना मे है जो जोई उधर से बुझाने आया पंडितजी हम जो हैं सो नहीं आवेंगे।

महाराज ने कहा 'हाँ इस बात पर सब सोच लो। ऐसा न हो सब बले कार्य और हम रह जाय।

सबने कहा हम तो साहब, सबके साथ हैं। सब आवेंगे तो हम भी आवेंगे नहीं तो नहीं।

इतने में एक बोले 'क्यों मुर्क। इसका पराछत कुछ नहीं? पंडित जी बोले पराछत तो है। जो है सो पराछत में है क्या नहीं। पमा स्नात—और ही ब्राह्मण—मोजन और बक्षिणा।

'बांधी की बखला में जो क्या सम्येह है—बिटलब्यास जी क्या ऐसे-नीचे बाधनी है। और गया स्नात में भी कुछ बाधा नहीं। रही ही ब्राह्मणों की सो इतने तो हम हैं ही बाकी क्या नहीं मिळ सकते।

निक क्यों नहीं सकते पर के लोग चाहें ठमी तो हो सकता है। इस पर महाराज बोले तो एक काम न करें उधर सबर भेज दें कि मुग यह सब पराछत करो तो हम भेज सकते है।

मोंगू धर्मा फौरन् उठ खड़े हुए। बोले—'इसमें क्या बेर समती है? हम धमी रहे जाते हैं। देखते भी बाबमें कि मोजन में क्या बेर है?

पंडित जी कहते लगे 'नहीं नहीं ऐसा जो है सो नहीं के हमें जब बुझावें तो जाना चाहिए।

'जैसी पंचों की राय। कहकर बेगठा बैठ गये।

कबाकार का उपर्युक्त कपोपकचम पात्रामुक्त एवं स्वामाधिक है। प्रत्येक पात्र के कपन को स्पष्ट करने के लिए उसकी सब उच्चारण-पद्धति बाबियों के उच्चारण-बद्धा में स्थान-स्थान पर पढ़ने वाले स्वरागाथों को उसने बड़ी बुद्धि के साथ उभाया है। पात्र अर्ध-बिभित एवं बक्षिणित है अतः उनके द्वारा उच्चारित शब्द भी अपना वास्तविक रूप त्याग चुक हैं। घासतर (घास) रबाब (स्वार्थ) पराछत (प्रायश्चित) बखला (बक्षिणा) ऐघा (ऐमा) बाबि शब्द ऐसे

ही हैं। प्रस्तुत कथोपक्रम का सम्बन्ध अर्थात् उलझे हुए बिचार पात्रों के मानसिक बराबर को भी व्यक्त करने में पूर्ण सफल है।

इसी प्रकार हाक माया व सबाद का एक और उदाहरण देखिए। जो अन्त अविशित स्थिति अपनी गई बेगम के विषय में चर्चा कर रही है।

और गई बेगम जो कासिम अमी साह की मुरीब है ?

'कौन कासिम अमी साह।

'कोई साह साहब हैं पहुंचे हुए।

'साह साहब है या कोई जानिए हैं।

'कासिम अमी साह का नहीं जानती मातों बिलायत में उनकी घूम है। बड़े करामाती हैं।

'बस्ता रे अस्ता ये अनेक अश्लीला नकलक में पैदा हुए, कहीं छजन का लोहा कासिम तो नहीं। जो मूर्खा व यहाँ चार माना माहवार और खाने पर लौकर था।

हाँ हाँ बही है। अब तो नैबी टाक्यों और त्रिधात उसके बस में है। बाहे तो फूँक से पहाड़ को उड़ा दे।

'मुह मीठ हू उस मुए चोटटे का। जिस उसकी अस्मियत नामामुम हो उसे कहो। मैं तो उसकी सात पुत्रों को जानती हू।

लेकिन कबलक में उसके बहुत मीठकिए है। सबकी मुराहें बहु पूरी करता है।

'खान-अरपर करता है। कोई अनेक यह नहीं कहता कि यह मुमा उठाई पीर है।'

एक अर्थ भीव सुबती है जो बुरी घाट-घाट की पानी पिए हुए अर्थ का नाम पर होने वाले हफोसलों से बिस प्रीड़ा। 'कासिम अमी साह' का नाम सुनते ही वह अंधालु हो उठती है। उसके मुह से अनायास ही निकल जाता है 'साह साहब है या कोई जानिए'। 'मातों बिलायत' 'छजन सुबती की सरसता भोलेपन एवं अर्थमीरता को प्रकट करता है। 'करामाती' शब्द की प्रतिक्रिया प्रीड़ा पर स्वाभाविक ही है। 'बस्ता रे अस्ता' 'नकलक' 'छजन का लोहा' मुह मीठ हू' उस मुए चोटटे का' 'मुमा उठाई पीर' आदि के प्रयोगों के कारण ही उपर्युक्त कथोपक्रम पूर्वक से स्वाभाविक एवं पात्रानुसृत प्राप्त होता है। एक के

कथनों में यदि रूपमंडूकता सरलता एवं अंध विश्वास के वर्धन होते हैं तो दूसरी के कथनों में मुहफ्तपन एवं डीठता है।

मुसलमानों के संवादों के स्वामाधिक एवं पाषानुकूल बनाने के लिए उसने उनसे द्वारा ठेठ अरबी फारसी शब्दों का व्यवहार कराया है। हिंदू पाशों को भी अब मुसलमान पाशों से नाशानाप करना होता है तो वे भी संस्कृत के लोकप्रिय शब्दों के स्थान पर बहुधा अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग ऐसे अक्षरों पर करते हैं। शाहजादी रोजमनास एवं मजाबतखी आलमगीर का कथोपकथन प्रथम उदाहरण की पुष्टि के लिए हम से सकते हैं। दोनों मुसलमान पाश हैं अतः इनके संवाद को स्वामाधिक बनाने के सिद्धे कथाकार ने अरबी फारसी के शब्दों का बुराकर प्रयोग किया है। देखिए—

— 'फिर भी एक मनसबदार से हिंदुस्तान के बाबघाह की लड़की की धारी गैर मुमकिन है।

'तो फिर मुनाह से फयदा।

'क्या तमाम हिंदुस्तान के बाबघाह की शाहजादी भी मुनाह कर सकती है।

'शाहजादी हिंदुस्तान के बाबघाह के ऊपर एक दीनोदुनिया का बाबघाह है।

'बह बाप जोशों के लिए है क्या यह कभी मुमकिन है कि मुगल शाहजादी एक बदना मनसबदार की ताबज्ज जीबी बनकर रहे।

'लेकिन शाहजादी ।

'बस कामोस हम ऐसी बातें तुमने की धारी नहीं। बस हम अपनी लुची से जिस कबर इनायत तुम पर करूँ उतने ही में आसूदा रहो।

'मगर मेरी भी तो कुछ ब्याहिसात है।

'होयी हम फिजहात इस जन्न पर गौर नहीं कर सकती। तुम्हारी इस्तजा से हमने आज यहाँ बाबघाहरी में मुकाम किया और तुमसे मुजाफात की। हम चाहती हैं कि आइन्हा अपने दरारों को काहूँ में रखो।'

अरबी फारसी के उत्तम शब्दों को रखकर उपन्यासकार ने उपर्युक्त संवाद को पूर्णरूप से स्वामाधिक बना दिया है। इस प्रकार के संवादों की तो आचार्य भी

के साहित्य में भरमार है। 'सोमनाम' में इस प्रकार के संवादों की संख्या ४० के ऊपर, 'आत्मगीता' में ८० के लगभग 'सोना और जून' में सौ से ऊपर, 'बगुला के पक्ष' में बीस के लगभग एवं 'उदयास्त' 'रक्त की प्यास' 'बिना पिराय का चहर' आदि उपन्यासों में साठ के ऊपर है। इन संवादों में कुछ संवाद ऐसे भी हैं जो मुसलमान और हिंदू पात्रों के मध्य हुए हैं। ऐसे संवादों में मुसलमान पात्र ठा' भरबी फारसी शब्दों से मिलित भाषा का प्रयोग अपने कबर्तों में करते ही हैं साथ ही हिंदू पात्र भी अपनी स्वामाबिक भाषा को त्याग कर भरबी फारसी शब्दों से लदी हुई भाषा का प्रयोग उनके बार्तालाप करते समय करते हैं।

इसी प्रकार अंग्रेज पात्रों के संवादों को भी पाश्चात्यक एवं स्वामाबिक बनाने के लिए गार्बार्थ जुरसन भी ने अंग्रेजी भाषा के तद्भव शब्दों का उसमें प्रयोग कराया है। साम ही बहो उनका अंग्रेज पात्र हिंदी के शब्दों का भी उच्चारण करता है, तो वह अपने बंग से शब्दों को तोड़ मोड़कर। कोशुप कामी एवं शारबी अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर एवं बसन्ते-पुर्न का सिद्धहस्त धूर्त एवं जतुर तहसीलदार सोना और जून का पारस्परिक बार्तालाप देखिए। यदि डिप्टी कमिश्नर के बार्तों में सङ्कड़ाहट कुछ मजतबीपन एवं शब्दों से बधिकार की गंध स्पष्ट मिल रही है तो धूर्त और तहसीलदार का एक-एक शब्द सधा हुआ उसकी धूर्तता एवं बालाफी की बातों से पूर्ण ब्यनीयता प्रदर्शित करने वाले संसिप्त किन्तु चुमते हुए बाल्य वृष्टम्य है देखिए—

'बेक टैसीलडार, लामो-लामो।

'हुजूर हाबिर करता हूँ।'

'ऊस एकडम फँस। ओरड स्टोक नेई।

'हुजूर बर्न करता हूँ।

'दुम क्या बीलना माँगटा ? टसीलडार।' अम दुम कू बिसमिल करता माँगटा।

'सरकार, मारि-बाप एकदम फँस बहुत बड़िया।

'लामो लामो टैसीलडार, अम दुम कू डिप्टी कलक्टर बनाएगा।

'हुजूर का बोलबाला। हुजूर मारि-बाप।

'जहडी, टैसीलडार, लामो लामो।

'हुजूर को जरा बलना होगा।'

'कू गडी टैसीलडार, अम नेई बापपा।

'तुमूर तूर नहीं है एकदम फँस न्यू माक सर ।

'का ?'

'उस बाब में सर पुतली—एकदम फँस ह्वारों में एक । प्हाट सर पंग । बहुत बड़िया माक ।

'कामो कामो—टेसीलवार—दुम हरामबावा अभी कामो ।

'सरकार चाँबलसिंह के करने में है ।

'प्हाट चाँबलसिंह ? जम उसकूँ गूट करेगा ।'

प्रस्तुत संसार पात्रानुकूल संसार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । इसमें प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व उसकी बागी से ही स्पष्ट हो जाता है । पत्रों की उच्चारण पद्धति 'फँस माक' के लिए डिप्टी कमिश्नर की व्याकुलता महमस्त होने के कारण उसकी कड़वाहट ही जिह्वा बाकि उसके अन्तर्गत का प्रत्यक्ष चित्र खींचने के साथ-साथ उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावना की अभिव्यक्ति के द्वारा उसके सभी व्यक्तित्व को मूर्तिमान करने में पूर्ण सफल रही है । बाचार्य जी के उपन्यासों से इस प्रकार के संसारों के कितने ही उदाहरण मिले जा सकते हैं । किंतु इन संसारों में एक बात ध्यान देने योग्य है । कतुरसेन जी ने इस प्रकार के वाक्य अंग्रेज पात्रों के मुख से तभी उद्धृतवाये हैं जब वे किसी भारतीय पात्र से बातचीत करते हैं । दो अंग्रेजों के मध्य में हुए कपोपकपोनों में किसी प्रकार की द्विभ्रम भाषा का बाचार्य जी ने प्रयोग नहीं किया है । ऐसे कपोपकपोनों में अधिक से अधिक बातवचन-निर्माण के लिए उन्होंने अंग्रेजी के कुछ पारिभाषिक शब्दों एवं भावामिध्यक्ति की रीति के कुछ स्वर्ण देने के लिए डिपर, डालिङ्ग बाकि शब्दों का प्रयोग उन पात्रों के मुख से करवा दिया है । 'घोना और जून' 'बघास' बादि उपन्यासों के अनेकानेक अंग्रेज पात्रों के पारस्परिक संवाद इसी प्रकार के हैं । यह उचित भी है । अंग्रेज पात्रों के संसारों को अंग्रेजी में इसी पात्रों के संसारों को इसी भाषा में और इसी प्रकार अर्थ विवेची भाषा भापी पात्रों के संसारों को उनकी भाषा में लिखना न सम्भव ही है और न व्यावहारिक ही । ऐसा करने पर उपन्यास उपन्यास में रहकर विभिन्न भाषाओं के उदाहरणों की प्ररक्षणी मात्र रह जावेगा । अतः पात्रानुकूल मात्रा-परिवर्तन सर्वत्र एक निश्चित सीमा के अन्तर ही प्राप्त है । बाचार्य कतुरसेन जी ने अपने अनेकानेक उपन्यासों में इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा है, किंतु अपने कुछ उपन्यासों जैसे 'आत्मगीर' 'जय रत्ताम' में उन्होंने भाषा की

निर्दिष्ट सीमा का अतिजनन भी कर दिया है। 'आत्ममीर' के संवाद तो भरणी फारसी के उत्तम शब्दों में पूर्ण हिंदी भाषा में ही हैं किंतु 'बयं रत्नाम—' के लगभग सात संवाद पूर्वक से संस्कृत भाषा में ही दिए गए हैं। इस प्रकार के संवाद न क्यातक को यदि प्रदान करते हैं न तो चरित्र-चित्रण को ही उभारते हैं। और न ही स्वाभाविक एवं व्यावहारिक ही हैं। वास्तव में उपन्यास में इस प्रकार के संवादों की सृष्टि करना क्याकार के वास्तविक अधिकार का दुरुपयोग करना ही है। उदाहरण के लिए हम दर यद्यप संवाद (बयं रत्नाम) को ले सकते हैं

'खडोबाच—'किमिदं जले विमलेह्यात्मनि परचक्षि ?

'बर्षैवेहं भगव' साम्बलंइत स्तुवसन' परिष्कृतश्च एवमेव ।

'एष आत्मेत्येतदमृतम् ।

एष आत्मेत्येतदमृतम् ।

'एष आत्मेत्येतदमृतम् ।

'आत्मीवेह महश्च आत्मा परिचर्य आत्मानमैवेहमह्याभात्मनं परिचरन्मुमी
शोकाववाप्नोमि ।

'उमीशोकाववाप्नोति स्वामुन्वेति ।

'तस्मादत्तवैहावदानमभ्रवानमयजमानं घटीरे बसनेनालकारेमेति संस्कुर्वा
मह्यमुत्तोकं वेप्याम इति ।

'असत्यमप्रतिष्ठमनीस्वरमिदं जयत् ।

'ईश्वरोमहम् ।

'एतद्गुह्यं मुह्यतमम् ।

'काचापघपरवेति भगव । -- -- -- ।'

आचार्य बनुरसेन जी के 'बयं रत्नाम' उपन्यास में ही केवल इस प्रकार के संवाद प्राप्य हैं ।

पाशानुकूल संवादों को सिद्धते समय यद्यपि आचार्य बनुरसेनजी पूरा सतर्क रहे हैं तो भी कहीं-कहीं असहायता के कारण कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं। पत्रनी के मह्यभूय (सोमनाथ) के मुख से उन्होंने 'आवश्यकता' 'स्वीकार' 'प्रत्येक'

१ बयं रत्नाम, पृ २२७ ।

२ सोमनाथ पृ २८९ ।

३ सोमनाथ पृ ४४३ ।

४ सोमनाथ पृ ४४९ ।

आदि हिंदी शब्दों को कहलाया है तो कट्टर जनसंघी विभीष (बर्मपुत्र) के मुँह से 'कुर्बानी' बरखास्त^१ आदि अरबी फारसी के शब्दों को यद्यपि इतने विशाल साहित्य में ऐसी सूँझ इनी-गिनी ही है किन्तु यदि किञ्चित् मात्र उपन्यासकार और सतर्कता एवं सावधानी से कार्य केता तो इनका सुमार अछम्मक न था। वह सरलता के साथ शब्दों का प्रयोग संतुलित एवं कथन को स्वाभाविक बनाने के लिए अमर 'अरुत' 'मंजूर' 'हर' 'बकिदान' 'प्रार्थना' आदि शब्दों को रक्त सकता था।

इसी प्रकार उनके भात्मबाह्य^२ नामक उपन्यास में किसानों के बाटसाप भी पात्रानुकूल नहीं हो पाए हैं^३।

भावानुकूल संवाद— ।

आचार्य अनुरसेन जी ने अपने संवादों को अधिक से अधिक स्वभाविक एवं सरस बनाए रखने के लिए उर्ध्व पात्रानुकूल रखने के साथ-साथ भावानुकूल भी रखा है। एक ही पात्र विभिन्न परिस्थितियों में पढ़कर यदि एक ही प्रकार का व्याकरण करता रहे एक ही प्रकार के भावों को व्यक्त करता रहे, तो निश्चित ही संवाद पात्रानुकूल होने पर भी अस्वाभाविक हो जायेंगे। प्रत्येक पात्र के संवाद स्वभावतः परिस्थिति एवं आन्तरिक भावों के अनुस्यू परिवर्तित होते रहते हैं। आचार्य अनुरसेन जी ने इस बात का भी अपने संवादों में विशेष ध्यान रखा है। पात्र के भावों के अनुसार ही उसकी भाषा में छतार बढ़ाव कथनों में झट्टा अथवा क्रोमलता सरसता अथवा तीव्रता आने का प्रयास किया गया है। विभिन्न भावों के संवाद विभिन्न प्रकार के हैं। उनके समस्त भावानुकूल संवादों को हम अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न भागों में रक्त सकते हैं—

- १ प्रेमावेश
- २ स्नेहावेश
- ३ क्रोधावेश एवं क्रोधपूर्ण
- ४ दुःखावेश

प्रेमावेश—

आचार्य अनुरसेन जी के अधिकांश उपन्यासों में शृंगार की ही प्रधानता

- १ बर्मपुत्र पृ २०२।
- २ पर्मपुत्र पृ २०२।
- ३ भात्मबाह्य पृ १४०-४१।

है अतः प्रथम प्रसंगों की उनके उपस्थासों में म्यूनता नहीं है। जहाँ पर आचार्य चतुरमन जी ने प्रमी और प्रमिका के प्रमपूर्ण उद्गारों को संवादों के माध्यम से प्रकट किया है वहाँ के संवाद सरस क्रोमक प्रवाहपूर्ण भासिक एव हृदय स्पर्शी होते हैं। 'हृदय की परब' 'हृदय की प्यार' 'आत्मदाह' 'बहुते भाँसू' (अमर अमिताया) आदि प्रारम्भिक उपस्थासों के प्रभाव के सदाह सीधे सरल निष्कपन किन्तु कहीं-कहीं बासनात्रत्य भावनाओं से पूर्ण हैं किन्तु उनके प्रौढ़ उपस्थासों जैसे 'बैयासी की नगरबधू' 'बर्मपुत्र' 'सोमनाम' 'गोली' 'आमा' आदि में प्रथम प्रसंगों के संवाद श्रुतीले बड़े हुए प्रवाहपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं।

'नगरबधू' में कई प्रम प्रसंगों की सृष्टि की गई है। अम्बपाली एवं हर्ष देव के संवादों में प्रेम का प्रस्तुतन एवं प्रमिका की समित इच्छाओं का गर्जन है। अम्बपाली एवं बिम्बसार के प्रम के संवादों में बासना का पुट है किन्तु सोधप्रम एवं अम्बपाली के प्रथम संवादों में बासना का पुट नहीं माने पाया है।

'नगरबधू' का सबसे अधिक भासिक सोमप्रम एवं राजकुमारी चन्द्रप्रमा का प्रथम प्रसंग है। दोनों का प्रेम निष्कपट एवं बासना विहीन है। सोम चन्द्रप्रमा से प्रेम करता है किन्तु उसके प्रेम में स्वार्थ नहीं है। उसे ज्ञात है कि राजकुमारी की जमी के कारण पठित बया हुई है। उसके हृदय में इसी बात की म्गानि है। वह अपने कायों पर प्रायश्चित करना चाहता है। किन्तु कैसे करे? उसे एक मुकबमर प्राप्त होता है। राजकुमार बिद्भम ऐसा सुयोग्य पात्र उसे मिलता है। वह अपने प्रेम का त्याग कर, बलिदान कर राजकुमारी को पुनः पत्नानी बना देता है। विदा के अवसर पर दो प्रमियों का बार्तालाप देखिए —

'राजकुमारी ने बड़ी-बड़ी मारी पतकें उठाकर सोम को देखा और अत्यंत पाव से बह' सोम प्रिय बर्जन तुम बाहूत हो बैठ जाओ बैठ जाओ।

'तो तुमने मुझे दया कर दिया शीत ? यह मैं जानता था। मैं जानता था तुम मुझे अबस्य लमा कर बोपी। परन्तु शीत प्रिये अपने को मैं कमी नहीं लमा कसैया कमी नहीं।

'वह सब तुम्हें करता पदा सोमबह।

'किन्तु प्रिये मैंने जिस दिन प्रथम तुम्हें देखा था अपना हृदय तुम्हें दे दिया था। मैंने प्राणों में भी अधिक तुम्हें प्यार किया। तुम मेरे सुशाप्य को नहीं जानती। मेरा निरथप था कि बिद्भम राजकुमार को बन्नीगृह में मरने दिया

बाय कोशक राजवंस का अन्त हो और अज्ञात कुलधीन सोम कोशकपति बन कर तुम्हें कोशकपट्ट राजमहिषी पत्र पर अभिषिक्त करे, सब कुछ अनुकूल था एक भी बाधा नहीं थी ।'

'मैं जानती हूँ प्रियवर्धन । पर तुमने बही किया वो तुम्हें करना योग्य था । किन्तु अब ?

अब मुझे आना होगा प्रिये ?

'तो मैं भी तुम्हारे साथ हूँ प्रिय ।

'नहीं सीक ऐसा नहीं हो सकता । मुझे आना होगा और तुम्हें रहना होगा । मैं कोशक का अभिषिक्त न बन सका किन्तु तुम कोशक की पट्टराजमहिषी रहोगी यह धुन है ।

मैं सोम प्रियवर्धन तुम्हारी चिर क्विचरी पत्नी होने में यत्न अनुभव करूँगी ।

'ओह नहीं एक अज्ञात-कुल-धीन मयव्य बंधक की पत्नी महामहि मामयी अम्पा-राजनरिनी नहीं हो सकती ।

'किन्तु सोमभद्र मैं तुम्हारी चिरबासी सीक हूँ । मैं तुम्हें आप्यामित करूँगी अपनी सेवा से चाञ्छिभ्य से निष्ठा से । और तुम अपना प्रेम प्रसाद देकर मुझे आपूर्यमाण करना ।

'मेरे प्रत्येक रोम-रूप का सम्पूर्ण प्रेम मेरे शरीर का प्रत्येक रक्त-विन्दु, मेरे जीवन का प्रत्येक स्वास वासमायित तुम्हारा ही है सीक पर यह नहीं हो सकता तुम्हें कोशक की पट्टराजमहिषी बनना होगा ।

'किन्तु मैं तुम्हें प्यार करती हूँ सोम केवल तुम्हें ।

'और मैं भी तुम्हें प्राणाधिक सीक । किन्तु पृथ्वी पर प्यार ही सब कुछ नहीं है । सोचो तो यदि प्यार ही की बात होती तो मैं विष्वक्म का क्यों उच्चार करता ? प्रिये चाह जीसे निष्ठा और कर्त्तव्य मानव-जीवन का चरम उत्कर्ष है । मैंने उची को निवाहा । अब तुम मुझे सहारा दो ।

सोम ने कुमारी के चरण-तल में बैठकर उसके दोनों हाथ अपने नेत्रों से कसा लिए ---'

प्रस्तुत संवाद में क्षिप्रता है । दोनों प्रेमियों का प्रत्येक शब्द उनके हार्दिक भावों को व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति रखता है । सोम की निष्कपटता उसकी

प्रणवीमुख्य व्याकुलता और साथ ही त्याग एवं कर्तव्य की महती भावना उसने उन्मुख्य बाताबाव में स्पष्ट उभरी हुई है। सोम क प्रेम में बिस्तार है और रामकुमारि क प्रेम में सकोच। संबाह साधु और कदम होने के कारण बिबा के बचसर का प्रत्यज बिब खीचने में पूर्ण सफल रहा है।

भूर्त औरंपवेव (भाकमपीर) के पापाय हृदय में भी भाचार्य बनुरखेल भी ने प्रेम के पुष्पों को पस्तबिठ किया है। बह कपट का पुत्रता होकर भी अपनी प्रेयसी क समस-अत्यन्त बीन-हीन है काचार है। एकात्म में अपनी प्रेयसी से प्रेम बर्बा करत समय बह माबुक हो उठता है। उसक संक्षिप्त किनु वैने कपनों में कसक है, उसके प्रत्येक माव में प्रणवीमुख्य व्याकुलता है, बह अपनी 'बिलबर' को अपने हृदय में समेट सना चाहता है। इसरी और हीरा के प्रेम में छिछकापन एव कृत्रिमता है। बह कपटी प्रेमी के साथ कपन का ही व्यवहार करती है। भूर्त को उत्तबिठ करने क लिए बह भूर्तता की बाध बखती है। उसका कुछ कहने के ब्याज स बुम्बन केना प्रेमी क उत्तबिठ होने पर हट जाना उसे इंगित देकर पुन मुकर जाने भादि की उसकी भागिक वेप्ट्याओं में क्या कुछ नहीं है। उदाहरण दृष्ट्य है

'क्या कर रही थी बिलबर।'

'मैं कुछ सोच रही थी।'

'क्या सोच रही थी।'

'एक बात।'

'कौन बात।'

'हुनूर के मुमने की नहीं है।'

'मुनू तो।'

'न कहूँगी।'

'कहो प्यारी।'

'अच्छा कान में।'

मुन्दरी बुवचार औरंपवेव के बाव क पास मुख से गई और बट में बचसर मुँह बूम लिया।

'भाह, बात कहो जानेमन।'

'यही तो बात की हुनूर।'

'इसी बात को सोच रही थी मुम।'

'जी हाँ।'

'निश्चय, तुम मुझे इतना प्यार करती हो ?

'आइए, मैं क्यों प्यार करती ?

'हीरा औरंगजेब का स्वर कांपा-बहू कूटनीति और कपट का पुतळा इस बचक बालिका के सम्मुख प्रेम में विभोर होकर अपने को भूल गया। उसने कसकर उसे छाती से सबा किया।'

राज और ठाकुर (अपराजिता) के प्रेमावेश संसार भी अपनी कुछ विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय हैं। राज और ठाकुर दोनों ही विवाहित पति पत्नी होने पर भी दोनों एक दूसरे से बहुत दूर हैं। दोनों के मध्य में बहू की बीमार है दोनों आत्मसम्मान के इच्छुक हैं। अपने बहू का बलिवान कोई नहीं करना चाहता भले ही बूट-बूट कर क्यों न बीना पड़े। निश्चित भविष्य में भी अनिश्चितता है। अन्त में पति की धनीय वत्ता का समाचार सुनकर पत्नी का सम्पूर्ण बहू सज जाता है। वह अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को विचार कर अपने बड़े पति को मनामे पहुँच जाती है। उस स्पष्ट के दोनों के प्रेमावेश के संसारों में एक हिचकिचाहट मिश्रित आश्चर्य आन्तरिक भावों की कसक और भावों की तीव्रता है। उदाहरण दर्शनीय है—

'ठाकुर ने दोनों हाथों में राज का हाथ बामकर कहा 'तो तुम राज हो।

'हां।

'मेरी राज ?

'तुम्हारी ही। राज की भाँसें डबडबा आईं।

'मेरी राज ? ठाकुर अत्यन्त अंतर्गत हो गए।

'हां हाँ' उसने अत्यन्त सिग्म स्वर में कहा।

'बहू ठकुरानी तो नहीं हैज और बर्ष की मूर्ति कर्तव्य की कठोर प्रतिमा।

'मैं तुम्हारी राज हूँ।

'और मैं ?

'तुम मेरे राजा हो।

'क्या कहा—ओर से कहा काग भी तो बूड़े हो गए।

'मेरे राजा।

'फिर कहो।

'मेरे राजा।

'फिर कहो।

राज ठाकुर के बज्र पर गिर कर सिसकने लगी। मुय-मुय के पाप पाप बर्ष-मर्ष बुझ गए। प्रेम की मन्दाकिनी बल-बल बहने लगी।^१

ठाकुर का मधुरता कर राज का हृय पाप सेना आश्चर्य में उनक कंठ का मधुर हो जाना केशव 'तुम राज हो' का उनके मधुर कंठ से निसृत हो जाना और फिर तेज और रस की मूर्ति ठकुरानी का स्मरण आते ही पुराने मह का स्रव हो जाना किन्तु टूटे हुए हृदय के बाँधों क मध्य उसका न टिक जाना और अंत में प्रेम की मन्दाकिनी में दोनों का युक्त-मिथ जाना आदि कितन ही भाव उपयुक्त संवाद में एक साथ बनस्युत हैं। संक्षिप्त वाक्यों के गान न माओं का सायन भरा गया है। दोनों के मधुर कंठों में शब्द कम ही निसृत हात हैं किन्तु माओं का बबबबबब स्वर का असंभव होना मधुरों का कौपता और उनमें से केवल महा शब्द निकल जाना आदि में कितनी आत्मीयता कितनी तड़पन कितनी पीड़ा कितना समर्पण का भाव है पर स्वयं उपयुक्त भाषों में ध्वनित हो जाता है।

इसी प्रकार प्रेमावेश के संघर्षों की और अधिक सरल एवं रमणीय बनाने के के लिए आचार्य बनुरामन जी ने कभी-कभी उनमें हास्य का पुट दिया है। प्रमिता एवं सुरेश (उदयान्त) के संघर्षों में हमें यह गुन स्वन उभरा हुआ मिलता है। दोनों विवाहित पति-पत्नी हैं। उनके प्रेम में किसी प्रकार का व्यवधान भी नहीं है। दोनों एक दूसरे को हृदय में प्रेम करते हैं। किन्तु इसमें भी एक रस है। सुरेश एकान्त में पत्नी के समीप पहुँच जाते हैं। पत्नी का प्रश्न है—

'ओर की तरह यों चुपचाप आ लड़े होने की तुम्हें क्या जरूरत थी।

'आर में तुम यह मागा करती हो कि वह झोठ पीट कर जावे।

'लड़े को हो तुम। मैं जाती हूँ—बह मुंह फेर कर जाने लगी। उसका लम्बा रोकर मुझ ने कहा 'आर जिस काम से माया या बह ली तुमनी पामो।

'कुछ जरूरत नहीं है ओर को चाहे चुप के आय। मैं ओर मचाकर उस विस्तार नहीं करना चाहती।

'किदिन उसका इरादा तुम्हें विस्तार कर ले जाने का है।'

'अरी ?

'दिल्ली।

‘किसकिए ।’^१

पति का नीर की भाँति पत्नी के कण में जा जाना इस पर हृदय से पत्नी का प्रसन्न होना किन्तु ज्वर से बचना जाना भावि । ‘बड़े बो हो तुम’ कहकर उसका मुँह फेर कर खड़े हो जाना, सीहों में मुस्काना भावि भाव उसके प्रेम को उभाखे है ‘तो नीर बो जाई चुरा ले जाय । भावि भाव्य उसकी प्रणयी सुलभ बचसता को स्पष्ट करते हैं । भावि से अन्त तक संवाद में प्रेमावेश के साथ-साथ हास्य का फुट है । संवाद में प्रत्युत्पन्नमति एवं संगति का गुण सरहणीय है ।

इसी प्रकार के प्रेमावेश के कितने ही संवाद माध्याम अतुरसेन की के उपन्यासों में जरे पड़े हैं । ऐसे संवाद जहाँ संक्षिप्त है वहाँ पात्र बोलते कम हैं किन्तु अपने इंगितों द्वारा भाव व्यक्त अधिक करते हैं । बिबीदास और मंजुबीवा (बेबागना) के प्रथम संवादों में सरलता निष्कपटता एवं भाविकता है ।^२ सरला और सत्य (हृदय की परछ) के संवादों में निस्पृहता सरलता एवं निष्कपटता है ।^३ सत्य के हृदय में सरला के प्रति अपार भ्रम है, वह उससे प्रेम करता है किन्तु हृदय के अन्दर ही अदरों पर वह अपने भावों को नहीं मानता । वह सरला को पूजा की सामग्री समझता है, फिर भावों को व्यक्त करे भी तो जैसे । वह अदरों से सरला को अपनी प्रेमिका नहीं बुरा ही कह पाता है । किन्तु विद्याधर द्वारा प्रवर्धित होने के पश्चात् सरला टूट जाती है । वह अन्त में सत्य के प्रेम की महत्ता जाठ कर पाती है । सत्य और सरला का अन्तिम वातावरण निस्सदिह अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय स्पर्शी है ।^४ उसी प्रकार दिलीप एवं माया (धर्मपुत्र) के प्रथम संवादों में भी तीव्रता है । उसमें प्रेम का प्रारंभ दो बुर बड़कठे हुए हृदयों में है, जो एक बार मिलकर सर्वथा के लिए तिसय हो चुके हैं । दोनों का अविध्य अनिश्चित है किन्तु अंत में दोनों मिलकर एकाकार हो जाते हैं । शीर्ष प्रतीक्षा के पश्चात् दो प्रेमियों का सामना होना और दोनों का अन्तों द्वारा ही परस्पर मरे मदन में एक दूसरे के भावों को समझ लेना भावि कम मार्मिक नहीं है ।^५ किन्तु और चम्पा (पोली) का प्रेम तो एकदम पाक साफ एवं

१ जयपालत पृ ६४ ६३ ।

२ बेबागना (मंदिर की मर्तकी पृ ७४-७३ ।

३ हृदय की परछ पृ १०-१५ ।

४ हृदय की परछ पृ १४४ ४३ ।

५ धर्मपुत्र पृ १९ ११ ।

वासना से भरपूर है। दोनों पति पत्नी होते हुए भी पति-पत्नी नहीं हैं। उनके प्रेमावेश के संघर्षों में सांकेतिकता ही अधिक है किन्तु वहाँ उनमें परस्पर बाधाभाव हुआ है वहाँ से वासना से सर्वथा मछूटे हैं।^१ मामा और भतिज मामा जोरोबस्की एव लिजा (अप्राप्त) के प्रेमावेश के संघर्षों में सांकेतिकता की प्रधानता है। राबन मन्दीरवी संघर्षों^२ (वर्ष रक्षाम) में प्रणवी मुक्त। कातरता एवं व्याकुलता है।

स्नेहावेश के संघर्षों में हम आचार्य चतुरसेन की के उपन्यासों में प्राप्त बाल्यस्य रस से पूर्ण संघर्षों को के सकते हैं। ऐसे संघर्षों में दोनों पक्षों में स्नेह का अतिरेक है। सोमप्रम एवं आर्यामार्तगी (नगरवधू) के स्नेहसिद्ध संघर्षों में एक बार माँ की ममता उभरी हुई है तो दूसरी ओर पुत्र का असमंजस एवं प्यार। देखिए—

सोमप्रम हृत्प्रम होकर बिभूज हो गये। एक क्षिप्तगीय आनन्द ने इनके नेत्रों को भी प्लावित कर दिया। उन्होंने प्रकृतिस्व होकर कहा—

‘आर्या मार्तगी अकिञ्चन सोम बापका अमिबादन करता है।

‘नहीं नहीं आर्या मार्तगी नहीं माँ कहो बत्स।

‘सोमप्रम मे बटकठे हुए कहा किन्तु आर्ये’

‘माँ कहो बत्स माँ कहो।

आर्ये हृत्प्रमय सोम अज्ञात कुलपीक अज्ञात कुलपीक है। बत्सापी उसे इतना गौरव क्यों दे रही है।’

‘माँ कहो प्रिय, माँ कहो, जीवन के इस छोर से उस छोर तक मैं यह पण्ड सुनने को तरस रही हूँ। मार्तगी के स्वर, भावमयी और कवच वाली से विषय हो अनायास ही बरबस सोम के मुँह से निकल पया— --माँ— --

आप्यावित हो गई हूँ मर कर जी गई मैं बत्स सोम अमी और कुछ देर हृत्प्र से सने रही।— --^३

प्रस्तुत बाधाभाव में कर्माचार माँ मार्तगी के प्रत्येक भाव को उभारने में पूर्ण सफल रहा है। पुत्र को सामने देखकर स्नेहावेश के कारण आर्या मार्तगी बनने बह्मचारिणी के रूप पर और प्रतिष्ठ को भूलकर अनायास ही वह उठती है। ‘माँ कहाँ बत्स। ओर बत्स’ के संबोधन से अविभूत होकर अज्ञात

१ शोली पृ २२३ २१०।

२ वर्ष रक्षाम, पृ ९९ १००।

३ वीणाती की नगरवधू आचार्य चतुरसेन पृ १०३।

कृष्णकीक सोम के मुक्त से भी 'मा' शब्द मनायास ही निकल जाता है। मा पुत्र के उपर्युक्त कथनों में केवल स्नेह का पुट ही नहीं है बल्कि आन्तरिक भावों की बुझन भी है। मार्तवी के अतिक्रमण में कितनी ठकपन कितनी विवशता कितना हर्ष एवं कितना आह्लास एक साथ भरा हुआ है।

स्नेहावेश के संघर्षों में हम सखियों के स्नेहसिक्त संघर्षों को भी रख सकते हैं। वहाँ पर दो समान सखियाँ परस्पर छेड़छाड़ करती हुई एक दूसरे पर छीटाछड़ी करती हुई सामने जाती है वहाँ उनके कथनों में अस्वहृता चुकनुसाहट एवं धरसता रहती है। कही वे सखी के किसी प्रेम सम्बन्ध पर मीठा कटास करती हैं तो कहीं उसकी रू माधुरी पर व्यंग्य। कहीं किसी की विवाह बर्षा पर छेड़ छाड़ प्रारंभ हो जाती है तो कहीं अपनी बास-मुसम स्मृतियों पर ही डिसेमी बजने लगती है। राधा-रक्तिमणी-संवाद^१ (अपराजिता) प्रेम की छेड़छाड़ से प्रारंभ होता है और अन्त में विवाह सम्बन्ध तक पहुँच जाता है। छेड़ ही छेड़ में राधा रक्तिमणी का विवाह माधव से निश्चित कर देती है। भगवती-अम्मा-संवाद^२ (बहुते मांसू) में यौवन की अस्वहृता एवं अंधकता है। एक बास विवशता है तो दूसरी बनी कंबारी। दोनों की गटखट्टा एवं बाकपट्टा के कारण संवाद बड़ा सजीव बन पड़ता है। धारवा मारुती संवाद^३ (बगुला के पंख) में एक सखी दूसरी की रूप माधुरी पर चुहल करती हुई सामने जाती है तो लक्ष्मी और बानू^४ (धर्मपुत्र) के चार्त्तिकाओं में उनकी मठ स्मृतियाँ ही उभेड़ी गई हैं।

इस प्रकार के स्नेहावेश के संघर्षों के द्वारा उपन्यासकार अस्वहृ अंधक एवं गटखट्ट मुक्तियों के निष्कपट सरस एवं अदृष्ट स्नेह को व्यक्त करने में सफल रहा है।

श्रीधारा एव ओमपूर्व संवाद—

श्रीधारा में किए गये शोपकथन आचार्य अतुरसेन जी के उपन्यासों में अपेक्षाकृत कम हैं। किन्तु वहाँ भी उन्होंने ऐसे संघर्षों की सृष्टि की है वहाँ उनके संघर्षों में क्षिप्रता तीव्रता के साथ-साथ ओम एवं शरोजना भी आ गई है।

१ अपराजिता, पृ ११०-११।

२ बहुते मांसू पृ २५-२६।

३ बगुला के पंख १७२-७३।

४ धर्मपुत्र पृ १६१-६२।

त्रिषु संवाद तदनु रूप भाषों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुआ है। श्रीभाषेस क संवाद भाषार्य-वी के साहित्य में दो प्रकार के प्रमुक्त हुए हैं। प्रथम-एक पक्ष श्रीभाषेस में और दूसरा शान्त स्वर में वातात्म्य करता है। दूसरे प्रकार में दोनों पक्ष ही श्रीभाषेस में वातात्म्य करते हैं। भाषार्य वी के उपन्यासों में प्रथम प्रकार के संवालों का आधिक्य है। सरला विद्याधर संवाद (हृदय की परख)^१ प्रवीण भगवती-संवाद (हृदय की व्यास)^२ ममवती-मुलदा-संवाद (हृदय की व्यास)^३ जयनारायण का अपनी पत्नी से वातात्म्य^४ हरनारायण भगवती संवाद^५ (बहुते मांसू) भीमदेव-इच्छमी-कुमारी-संवाद^६ (रक्त की व्यास) भूर्त्सह-महाराजाधिराज-संवाद^७ महाराजा-शम्भा-संवाद^८ गौली-ठाकुर एवं राज के संवाद^९ अपराजिता-खम्बर रावण-संवाद^{१०} विभुश्रिहम विष्णुका-संवाद^{११} (बयं रजाम) घोषाबापा मसज्ज संवाद^{१२} महाराज वामुच्छराय विमलदेव दाह संवाद^{१३} भीमदेव वामुक्ष संवाद^{१४} (सोमनाथ) आदि कितने ही संवाद इसी प्रकार के हैं। इन संवादों की प्रमुख विशेषताएँ यही हैं कि एक पक्ष श्रीभाषेस में आकर उन्मत्त सा हो जाता है तो दूसरा शान्त रहकर प्रथम पक्ष के समझ मस्तक नत कर देता है जबका यदि कुछ उत्तर भी देता है तो उससे आधीनता ही प्रकट होती है। इसमें कुछ संवाद ऐसे भी हैं जिनमें प्रथम पक्ष के असह्य क्रोध को देखकर दूसरे पक्ष की बाणी में भी कठोरता बाने लगी है।

- १ हृदय की परख, पृ १२७-२९।
- २ हृदय की व्यास पृ ११९।
- ३ हृदय की व्यास पृ १३६ ३७।
- ४ बहुते मांसू, पृ ६०।
- ५ बहुते मांसू पृ ११६ १७।
- ६ रक्त की की व्यास पृ ११४ १५।
- ७ गौली, पृ १०२ ३।
- ८ गौली पृ १३२।
- ९ अपराजिता, पृ ९५ ९६।
- १० बयं रजाम, पृ १५६-५७।
- ११ बयं रजाम, पृ ३०३ ३०४।
- १२ सोमनाथ, पृ १११
- १३ सोमनाथ, पृ १६४ ६५।
- १४ सोमनाथ, पृ ३२०-२१।

भाचार्य अतुरसेन जी के क्रोधावेश के संवाद बही अधिक सजीव हैं जिनमें समयपक्ष के कवनों में उग्रता एवं तीव्रता है।

वहाँ भाचार्य जी ने क्रोधावेश के संवादों में भोज का घुट दिया है वे और भी सजीव हो उठे हैं। उदाहरण के लिए हम महामुद्र रमाबाई (सोमनाथ) के संवाद को ले सकते हैं। इसमें रमाबाई के कवनों को और अधिक तीव्र एवं प्रवाह युक्त बनाने के लिए भाचार्य जी ने भोज का घुट दिया है। इस संवाद की सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि इसमें सबक पक्ष मौन है और निर्बल पक्ष असंयमित एवं अस्तुचित होकर सब कुछ कह जाने को प्रस्तुत है देखिए—

सिपाहियों ने रमाबाई को छोड़ दिया। झूठे ही उसने हृष्य स्वामी के बचन सोल दिये। और फिर वह अपने हाथ की ककड़ी मजबूती से पकड़कर अमीर की ओर फिरी। उसने अपनी गोल-गोल आँखें धुमाते हुए कहा—‘तू ही वह अमीर है ?

‘हां बीरठ मैं ही अमीर महामुद्र हूँ ?

‘तूने सर्वज्ञ को माघ देबकिंग भंब किया ?

‘हां मैं बिजयी मूर्तिभंजक महामुद्र हूँ ? कैफिन बीरठ तू क्या चाहती है ?

‘मैं तुमसे यह पूछती हूँ ? कि क्या तुमसे किसी ने यह नहीं कहा कि तू मृत्यु का घूट जीवन का सन्धु और मनुष्यों में कर्तक रूप है।

‘अब बीरठ मैं तेरी सब बात सुनीया कहती था।

‘तूने बिजय प्राप्त की पर किसी की मलाई नहीं की।

‘मैं कुदा का बन्दा कुदा के हुनम से क्लृप्त तोड़ता हूँ।

‘तू भववान के पुत्रों को मारता है, जिन्होंने तेरा कुछ नहीं बिपाया। उन्हें झूठा और उनक घर-बार जकाता है। तू कंकड़ पत्थरों का जाकबी है और आदमी का दुस्मन तेरा कुदा यदि तेरी इन काबी करतूतों से कुस है तो वह कुदा नहीं पीतान है।’

महामुद्र की बर्षों में बस पड़ गए। ।^१

इसी प्रकार अम्बपाली हर्षदेव नमरबन्धु के संवाद में भोज की ही अधिक प्रधानता है। इसमें समयपक्ष उत्तेजित एवं कुम्ब है।

‘अम्बपाली मैं पूछा’ रात भर सोए नहीं हर्षदेव ?

‘तुम भी तो कदाचित् जगती ही रहीं देखी अम्बपाली।

‘मेरी बात छोड़ो परंतु तुम क्या रात भर भटकते रहे हो ?’

कहीं धैर नहीं मिला यह हृदय अल रहा है। यह ज्वाला सही नहीं ती अब।

‘एक तुम्हारा ही हृदय अल रहा है हृदयैव। परन्तु यदि यह सत्य है तो ही ज्वाला से बीघाली के अलपद को फूंक दो। यह भस्म हो जाय। तुम बेचारे रि अकल अलकर मष्ट हो जाओगे तो उससे क्या लाभ होगा।

‘परन्तु अम्बपाली तुम क्या एकबारगी ही ऐसी निपटुर हो जाओगी ? या इस आवास में तुम मुझे जाने की अनुमति नहीं दोषी। मैं तुम्हारे बिना हूँगा कैसे ? जीऊँगा कैसे ?

‘आओगे तुम इस आवास में ? यदि तुममें इतना साहस है तो आओ और देखो कि तुम्हारी वाग्दत्ता पत्नी से बीघाली के तरुण सेट्टिपुत्र और सामन्त तुम किस प्रकार प्रेम प्रवर्धन करते हैं। और वह किस नौपात्र से हृदय के एक एक अणु का अन्व-विक्रम करती है। देखोगे तुम ? देख सकोगे ? तुम्हें मनाही किस बात की है। यह तो सार्वजनिक आवास है। यहाँ सभी आओगे तुम भी जाना। परन्तु इस प्रकार बीन-हीन पापक की भाँति नहीं। दीन-हीन पुत्र का इस आवास में प्रवेश निषिद्ध है तुम्हें यह न मूक जाना चाहिए कि यह बीघाली की नगरबधू देवी अम्बपाली का आवास है। जैसे और सब भाँते हैं उसी भाँति आओ तुम अलपत्र कर हीरे-मोठी स्वर्ण बखेरते हुए। होठों पर हास्य और पलकों पर विस्वास का नृत्य करते हुए। सबको देवी अम्बपाली से प्रेमाभिनय करते देखो। तुम भी बीघा ही प्रेमाभिनय करो हँसो बोलो मुस्क दो और फिर छूँके हाथ, धूम हृदय अपने कर लके जाओ। फिर आओ और फिर आओ। अब तक पद-अर्पण देव रहे अब तक हाथ में स्वर्ण-एल भरपूर हों भाँते रहो, भाँते रहो लुगते जाओ मुटते जाओ, यह नगरबधू का कर है यह नगरबधू का जीवन है, यह मठ मूछो।

अम्बपाली कहती ही लकी गई। उसका चेहरा हिम के समान स्वेत हो रहा था। हृदयैव पागल की भाँति मुँह प्यङ्कुर देखते रह गए। उनसे कुछ भी कहते न बन पड़ा। कुछ हाथ स्तम्भ रहकर अम्बपाली ने कहा ‘क्यों कर अकाले ऐसा ?

‘नहीं नहीं मैं नहीं कर लूँगा।

तब जाओ तुम। इधर मुस्कुर भी पैर न देना। इस नगरबधू के आवास में कभी जाने का साहस न करना। तुम्हारी वाग्दत्ता स्त्री अम्बपाली मर गई। यह देवी अम्बपाली का सार्वजनिक आवास है। और वह बीघाली की नगरबधू

है। यदि तुममें कुछ मनुष्यत्व है तो तुम जिस ज्वाला से मर रहे हो उसी से जनपद को बचा दो। भस्म कर दो।

हर्षदेव पामस की भाँति भीत्कार कर उठा। उसने कहा 'ऐसा ही होगा। देवी जम्बपात्री मैं इसे भस्म करूँगा। बीताली के इस जनपद की राख तुम ऐलोमी सप्तभूमि प्रासाद की इन बौद्धपूर्ण अट्टमिकाओं में अष्टकुल के बग्गी सन की पिता बचकेगी। और बहु गन्तम्य का भिक्कुल कानून उसमें इस आवास के बौध के साथ ही भस्म होगा।

'उब जाओ तुम सभी चले जाओ। मैं तुम्हारी बकाई हुई उस ज्वाला को उत्सुक नेत्रों से देखने की प्रतीक्षा करूँगी।'

हर्षदेव फिर ठहरे नहीं। उसी भाँति उन्मत्त की भाँति वे आवास से चले गए।^१

प्रस्तुत संवाद में क्रोध के साथ क्रोध का ही पुट बिना गया है। प्रेमिका के चुटीले व्यंग्य हर्षदेव के सम्पूर्ण शरीर में आप रूना देते हैं। आहत प्रेमी चोट खाकर सम्पूर्ण बीघाली को भस्म कर देने की प्रतिज्ञा कर लेता है।

पति पत्नी के संवाद यदि प्रेमावेश के हैं तो क्रोधावेश के भी आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त हो जाते हैं। इन संवादों की विशेषता है कि इनका प्रारम्भ एक पक्ष से ही होता है और दूसरा पक्ष स्नेहमिथित उत्तर ही देता जाता है, किन्तु शीघ्र ही व्यंग्य भाषों से आहत होकर उन्मत्त के कर्णों में तीक्ष्णता आवेग एवं उत्तेजना आ जाती है। अन्त में पत्नी अपने अन्तिम ब्रह्मास्त्र मन्त्रों का प्रयोग करती है और पति को विषम होकर मैदान त्यागना पड़ता है। हृत्पारायण-हृदयेईं सबाह^१ (बहते औंसु) रामजस मन्वती संबाह^२ (आत्मदाह) जावि ठीक इसी प्रकार के हैं। इनमें उग्रता के अन्तर में स्नेह तीक्ष्णता के साथ साथ अपनत्व कटुता के साथ-साथ आत्मीयता एक साथ छपरी हुई बीज पड़ती है। रामजस भगवती संबाह में अधिक तीक्ष्णता है इसमें कटु कर्णों के परचात् आत्मीयता के स्वान पर हाजा-वाई तक की नीबत आ गई है।

जहाँ पर दो स्त्रियाँ क्रोधावेश में परस्पर बातचीत करती हैं वहाँ उनके कर्णों में स्वाभाविकता का पुट देने के लिए आचार्य चतुरसेन जी ने उग्रता के

१ बीघाली की नगरवधू पृ ४२-४३

२ बहते औंसु पृ ४४ ४७

३ आत्मदाह पृ ६१ ६२

गम साध कुछ बरेखू मादियों को भी स्थान दिया है।^१ किन्तु ऐसे संवाद उनक
पत्रपत्रों में कम ही हैं।

आचार्य बनुरसेन जी के साहित्य में कथनवेदा या बुद्धावेस के संवादों की
ही स्थानता नहीं है। ऐसे संवाद अत्यन्त प्रभावशाली एक पाठक को तुरन्त विचलित
करने की शक्ति से परिपूर्ण हैं। उन्होंने कथन हृद्य स्पर्शी एक बुद्धपूर्ण स्थलों
को स्पष्ट करने के लिए ऐसे संवादों का आश्रय लिया है। ऐसे संवादों को और
अधिक सजीव करने के लिए उन्होंने उनक परिपार्श्व में कथन विज्ञाप नाम्य या
वेद को कोनना वैश्वर्ष आदि आधिक श्रियाओं को नाटकीय ढंग से संशोभा है।
असस एने संवाद और भी सजीव एवं भावपूर्ण हो गए हैं। माया की मृत्यु के
पश्चात् सुधीन्द्र की माता का अपने पुत्र (आत्मदाह) से वार्तालाप^२ इसी प्रकार
का है। इसमें उपमासकार ने कथन रस के विभिन्न संवारी भावों चिन्ता शक्ति
विषय स्मृति निवेद आदि का आश्रय लेकर संवाद को और भी सजीवता प्रदान
की है। मधुसूदन की मृत्यु पर हुए गूढा सुधीन्द्र संवाद^३ राम साहब सुधीन्द्र
संवाद (आत्मदाह) आदि किन्तने ही इसी प्रकार के संवाद आचार्य बनुरसेन जी
के साहित्य में प्राप्त होते हैं।

भाषानुसूक्त संवादों को और अधिक स्वाभाविक एवं सजीव बनाने के
लिए आचार्य जी ने स्वमत कथनों की भी योजना की है।^४

संवाद पात्रानुसूक्त एक भाषानुसूक्त होते हुए भी तब तक सरस रसात्मक
एवं रमणीय न हुआ जब तक उसमें रोचकता न हो। संवादों में रोचकता काने
के लिए तीन तत्वों अनुसूक्तमति हासिरजवाबी सौजन्य *etiquette* और संगति
का उसमें होना अनिवार्य माना गया है।^५ आचार्य जी के संवादों में विनापशाएँ
सर्वत्र देखी जा सकती हैं।

आचार्य बनुरसेन जी के अधिकोक्त पात्र प्रस्तुपति हैं। आचार्य जी ने
अपने संवादों में कथनों द्वारा वाक्यों द्वारा यह अमत्कार उत्पन्न किया है। जहाँ
उन्होंने कथनों या वाक्यों द्वारा यह अमत्कार उत्पन्न किया है वहाँ उन्होंने उत्तर

१ बहुते मासू पृ १४-१५, ११७-११८, १२८ १२९

२ आत्मदाह पृ १६

३ आत्मदाह पृ ३००-३०२।

४ तोमनाम पृ ४५०-४५१।

५ ताकेत एक अध्येयन डा० नयेन्द्र, पृ १३६।

प्रस्तुत करने वाले किसी एक पात्र को अपनी प्रतिभा प्रदान कर दी है। प्रस्तुत वेले समय यह पात्र अपने विपत्ती को निवृत्त करने के लिए उसी के द्वारा प्रयुक्त शब्द या वाक्य को कुछ ऐसा गभीर मोड़ दे देता है कि मोटा को विषय होकर सूफ रह जाता पड़ता है। सुबीर और राजकुमारी^१ (भारतवाह) भस्माकबेब और रामोमिहता^२ रामो महता और महमूद^३ सोमना और बेबा^४ (सोमनाथ), मुलाबजान और नबाब अबदस्त खां (सोना और जून) आदि के नाटिकाओं में प्रस्तुतप्रमति का मुण सर्वत्र देखा जा सकता है। अन्तिम नाटिकाप को हम उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत करते हैं एक घुटे बुटाए समाना देवे नाम नबाब है तो बूसरी नाट-नाट का पानी पिए मूहफ्ट एवं हाथिर नबाब बेस्वा। मुलाब जान नबाब को अपने हाप का क्या पान पेख करती है। देखिए—

‘नबाब ने कहा’ हाँ कहाँ से काठ को पान लाऊँ ?

‘तुमुर खाए तो आप ही के कामक मने बनाया है।

नबाब अबदस्त खां ने मुस्करा कर कहा ‘बस्वाह बनाने में तो तुम एक ही हो।’

मुलाबजान ने तकाक से नबाब दिया ‘लेकिन तुमुर बनाती ही हैं बिगाड़ती किसी की नहीं।

बूड़े नबाब ने घुर के बादल बनाते हुए एक ठंभी सांस मरी और कहा—
‘सूफ है घुरा का।’^५

ऐसा ही एक प्रसंग और देखिए नबाब मुलाबजान की नीची से मनोरंजन कर रहे हैं।

‘क्या नाम है तुम्हारा बीबी जान ?’

‘तुमुर, मुझे अनिया कहते हैं।

‘बाहू क्या मुकीद नाम है। बीबान छाहब की तरफ मुखातिब होकर ‘बीबान छाहब अनिये की क्या ठासीर है।

१ भारतवाह, प १२५।

२ सोमनाथ प १२३-२६।

३ सोमनाथ-पृष्ठ ३०९।

४ सोमनाथ-पृष्ठ ४३३।

५. सोना और जून-उत्तरार्द्ध प्रथम आप-पृष्ठ ३८-३९।

दीवान साहब पूरे बाब । अट से हाम बांभे बोले 'सरकार रिठ को ठंडक पहुँचाता है ।'^१

जबि हुए बाब दीवान की हाजिर जवाबी देखकर पाठक प्रसन्न हो उठता है ।

प्रत्युत्पत्ति के साथ-साथ सबाब का संगत होना भी अनिवार्य है । यदि प्रत्युत्तर को सुनकर बिपत्ती पात्र निरुत्तर होने पर भी असन्तुष्ट रहता है तो वह सबाब सफल नहीं कहा जा सकता । 'आस्थासून के लिए मुक्ति और संगति की आवश्यकता होती है । बिनके बिना दूसरा व्यक्ति निरुत्तर होने पर भी संतुष्ट नहीं होता ।'^२ आचार्य जी के उपर्युक्त सबाबों में यह विशेषता भी प्राप्त होती है । पीछे हम पात्रानुकूल एवं भावानुकूल सबाबों का विक्षेपण करते समय संमति के गुण को देख चुके हैं ।

उपर्युक्त दोनों गुणों के साथ-साथ आचार्य जी ने अपने सबाबों में छिप्टा चार एवं सीजन्य का भी ध्यान रखा है । सातारजन निर्माण के लिए उन्होंने जिन सबाबों की रचना की है, उनमें इन गुणों की विशेष प्रचुरता है ।

संक्षिप्तता एवं पैनापन—

संक्षिप्त वैसे एवं प्रबाहुपूर्ण कथोपकथनों से रचना का सीढ़ी निकल जाता है । वास्तव में एक ओर जहाँ लघु प्रसारी वैदग्ध्यपूर्ण तीब्र तीव्र एवं संक्षिप्त कथोपकथनों से कथा की कलात्मक महत्ता बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर दीर्घ विरलेपवात्मक एवं विवेचनात्मक कथोपकथनों से कथा लम्बड़ हो जाती है जिससे वह अस्वाभाविक एवं अदृशिकर प्रतीत होने लगते हैं । आचार्य बतुरसेन जी के उपन्यासों में संक्षिप्त और दीर्घ विरलेपवात्मक दोनों ही प्रकार के सबाब प्राप्त होते हैं उनके दीर्घ सबाब तो कहीं-कहीं भीरस भी हो उठे हैं किन्तु उनके संक्षिप्त सबाब पैनापन लिए हुए रसात्मक हैं । नाटकीय भावानुकूल एवं पात्रानुकूल सभी प्रकार के कथोपकथन जहाँ पर संक्षिप्त हैं वहाँ वे अधिक सजीव एवं हृदय-स्पर्शी हैं । उन छोटे छोटे सबाबों में कहीं-कहीं उन्होंने मायर में सायर भी भर दिया है । ऐसे सबाबों में वे पात्र बोलते कम हैं किन्तु ध्वनित अधिक करते हैं । इन सबाबों में आचार्य जी ने प्रत्युत्पन्नमति एवं संमति का विशेष ध्यान रखा है । उदाहरण के लिए हम माया और दिवीय (पर्ययुत्र) के बाठानाप को ले सकते हैं । माई के मुख से 'जाट साहब पन्ध सुनकर बहन हसी में माई क समीप उभकी प्रेमिका

१ सोना और धून-उत्तराठ प्रथम भाग-पृष्ठ ३८ ३९ ।

२ साफेठ एक अध्यायन-डा० नयेर-पृष्ठ १३८ ।

को बाय लेकर भज देती है। उस समय एकान्त में हो रहा उनका समय वार्ता काय मुनिए—

उसने कहा—'कहना बाय बना रही थी उसे जगा क्यों दिया।

'मैंने कहा भगाया।

'मुझे क्यों बुलाया।

'फिरने कहा।

'कहना मे।

कया।

'कहा तुम्हें बुलाते हैं।

विभीष के होठों पर मुस्कान फैल गई। उसने कहा—'समझा साट साहेब आपही का नाम है।

'साट साहेब।

'वह कह गई थी साट साहेब को भेजती हूँ।'

प्रस्तुत संवाद में वाक्य छोटे-छोटे एवं संक्षिप्त हैं किंतु पीने एवं अधिक अर्थपूर्ण करने वाले हैं। 'साट साहेब' शब्द के प्रयोग ने ही संवाद को अधिक रसालक बना दिया है। संवाद चुस्त गठा हुआ पद्य सजे हुए एवं सुटीले सेइकाइ एवं भाग मनीबस से पूर्ण है। उत्तर प्रत्युत्तरों में हाजिर जवाबी है जिससे सम्पूर्ण संवाद में स्फूर्ति एवं त्वर आ गई है। ऐसे संवादों की भी आचार्य जी के उपन्यासों में न्यूनता नहीं है। बलौबिन उस्ताद अकहूनबोसी महमूद संवाद^१ महमूद संवाद^२ खोजना महमूद संवाद^३ (छोमनाब) बैरयकाका राबण संवाद^४ (बयं रसाम) आदि संवाद इसी प्रकार के हैं।

निष्कर्ष—

इस सम्पूर्ण विवरण के पश्चात् अन्त में आचार्य जी की कबीरकथन सिद्धन कला सम्बन्धी निम्न निष्कर्ष हमारे सामने आते हैं।

आचार्य जी के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे सरस स्वाभाविक एवं रोचक होते हैं। अचिराद्यत उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसे ही

१ बर्मपुत्र पृष्ठ १९३।

२ सोमनाथ पृ ७४-७५।

३ सोमनाथ पृ २९० से २९१ तक।

४ छोमनाथ पृ ४३२ से ४३३ तक।

५ बयं रसाम पृ-२ से ३ तक।

संवादों को स्वान विना ही जो कथानक के अनुकूल एवं सार्थक हों। ऐसे सवाह प्रायः कथानक के अविभाज्य अंग बनकर आए हैं जिससे कथा में भाषि से अंत तक प्रवाह रहा है। किन्तु वे कथोपकथन जिनके ब्याज से उपन्यासकार ने अपने सिद्धांतों निष्कर्षों एवं आचार्यत्व का प्रदर्शन करना चाहा है, कथा पर भारवत् हो गए हैं। ऐसे कथोपकथनों के प्रयोग से कथा बिगड़ चुकी है। जैसा कि हम पीछे दिखाना चुके हैं कि ऐसे कथोपकथन न कथामक को गति ही प्रदान करते हैं, न चरित्र को ही उभाड़ते हैं। इनसे केवल लेखक का उद्देश्य बरबस स्पष्ट होता है। किन्तु इस प्रकार के अनिर्व्यभिक्त कथोपकथनों का प्रयोग उपन्यास में सर्वथा वर्जित समझा जाता है।

आचार्य जी के संवादों की दूसरी प्रमुख विशेषता है पात्रों के अनुभवों की सूक्ष्म पकड़। उनके संवादों के पठन मात्र से ही असूतल बटना पाठक कल्पना बंधुओं के समस्त प्रत्यक्ष भट्टि हुई स्पष्ट ज्ञात होने लगती है। संवादों को और अधिक स्वाभाविक एवं ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यासकार ने अपनी ओर से पात्रों की विभिन्न भावभावनाओं और मुद्राओं का भी संकेत किया है। ऐसे स्थलों पर पात्र बोलते कम हैं किन्तु अपने हाव भावों के द्वारा अत्यंत अधिक करते हैं।

आचार्य अनुरोधन जी ने अपने संवादों को अधिक से अधिक स्वाभाविक सरस एवं रमणीक बनाने के लिए पात्रानुकूल एवं भावानुकूल संवादों की रचना की है। आचार्य जी अपने संवादों में पात्रों की वैयक्तिकता की रक्षा में भी पूर्ण सफल रहे हैं। उनका प्रत्येक पात्र अपनी अतिरिक्त विशेषताओं के कारण अन्य पात्रों से पृथक् ज्ञात होता है। उन्होंने संवादों की रचना करते समय इस बात का सर्वैव ध्यान रखा है कि किस अवसर पर, कौन सा पात्र किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करेगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने पात्र के व्यक्तित्व को अधिक से अधिक उभाड़ने के लिए वाक्यों के उतार-चढ़ाव पर, उसके विभिन्न अंगों पर पड़नेवाले स्वरपाठों पर, उसकी स्वयं की उच्चारण पद्धति पर बल की पूर्ण छाप लगा दी है। इतना ही नहीं उनके पात्र की वाणी का उतार चढ़ाव परिस्थिति एवं आंतरिक भावों के अनुरूप ही परिवर्तित होता रहा है। इस प्रकार के परिवर्तनों में परिवर्तनशीलता के रहते हुए भी आचार्य जी ने अपने संवादों में इस बात का सर्वैव ध्यान रखा है कि कहीं पात्र का अथवा स्वयं का व्यक्तित्व नष्ट न हो जावे। उन्होंने संवादों में इस प्रकार के प्रयोग वस्तुतः किसी पात्र विशेष के व्यक्तित्व को अधिक से अधिक प्रखर बनाने के लिए ही किए हैं।

आचार्य जी के यदि प्रथम संघर्षों में सरसता, मार्मिकता एवं सजीवता है तो स्नेहावेश के संघर्षों में भी इन गुणों की न्यूनता नहीं है। स्नेहावेश के संघर्षों में वहाँ एक ओर वास्तव्य रस हिंस्रों के रहा है तो दूसरी ओर अस्वस्थ युवतियों की ठिठोकी में खेड़छाड़, खुल्लुकाहट एवं मान-मनौबस सब एक साथ सा बिराजे हैं। श्लोकावेश के संघर्ष बड़े ही सजीव एवं स्वाभाविक हैं। श्लोकावेश में निःशुभ वाक्यों में वहाँ एक ओर तीव्रता, क्षिप्रता एवं वेग है वहीं दूसरी ओर वे उत्तेजना एवं अत्यंत से पूर्ण हैं। श्लोक के साथ-साथ श्लोक का पुट ऐसे संघर्षों की प्रधान विशेषता है। आचार्य जी ने कथा को अधिक मर्मस्पर्शी बनाने के लिए कश्चावेश अथवा बुलावेश के संघर्षों की भी सृष्टि की है। ऐसे संघर्ष प्रभावशाली होने के साथ-साथ हृदय को तुरन्त स्पर्श करने वाले हैं। ऐसे संघर्ष अधिकशतः सार्व है।

आचार्य जी के संघर्षों में प्रत्युत्पन्नमति सौजन्य एवं संपत्ति तीनों ही मुक्तों का योग प्राप्त होता है। जिससे संघर्ष देने प्रवाहपूर्ण एवं तुरन्त खोटे करने वाले होते हैं। उत्तर प्रत्युत्तरों में एक गति है प्रवाह है। बाध से अन्त तक उनका एक-एक शब्द गूँथता हुआ एवं सुस्त है। उनके संक्षिप्त संघर्ष सभे हुए, स्वयं से पूर्ण एवं रसात्मक हैं। ऐसे संघर्षों में पात्र कम बोझते हुए भी हास-मासों द्वारा इंगित अधिक कर पाते हैं।

अध्याय ६

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में देशकाष्ठ अथवा
वातावरण सृष्टि

देश-काल (वातावरण सृष्टि)

'उपन्यास के 'देश और काल' से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित वातावरण, रीति-रिवाज, धर्म-तत्त्व और परिस्थिति आदि से है।^१ कथानक में स्वसमीयता काल के लिए कथाकार इस तत्व का उपयोग करता है। कथानक पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति देश-काल के बन्धन में रहते हैं। ----
 इस प्रकार बिना झूठी के गवीना घोसा नहीं बैठा उसी प्रकार बिना देशकाल पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता है और कथानक के सञ्चालन के लिए भी उसकी आवश्यकता होती है।^२ वास्तव में वातावरण ही पात्रों का अपना संसार होता है, उसके बिना उनका उनके क्रिया कथाओं का कोई अपना निज का अस्तित्व नहीं रह जाता। अतः 'कितनी ही वास्तविक पृष्ठभूमि चरित्रों को प्रकट किया जायेगा उतनी ही गहरी विश्वसनीयता का भाव लाया जा सकता है। इस पृष्ठभूमि के बिना हमारी कल्पना को ठहरने की कोई भूमि नहीं मिलती और न हमारी भावना ही रमती और विश्वास करती है।^३ स्पष्ट है कि उपन्यास में इस तत्व का अपना विशिष्ट स्थान है।

वातावरण सृष्टि को हम सुविधा की दृष्टि से निम्न रूपों में रख सकते हैं—

- १ पौराणिक ।
- २ ऐतिहासिक ।
- ३ सामाजिक ।
- ४ प्राकृतिक (उपर्युक्त तीनों प्रकार के उपन्यासों में प्राप्त) ।

१. पौराणिक उपन्यासों में वातावरण सृष्टि:—

इसमें कथाकार इतिहास की अपेक्षाकृत पुराण एवं अन्य प्राचीन साधनों

- १ साहित्यालोचन, डा० इयानमुन्वर शाह, पृ २१० ।
- २ काव्य के रूप, डा० गुलाबराय, पृ १८२ ।
- ३ काव्य शास्त्र डा० मवीरस्य मिश्र, पृ ७७ ।

का माध्यम बन्विक होता है। इसमें सेवक के लिए कल्पना की विशेष अपेक्षा रहती है जिससे वह पौराणिक काम की समस्त विशेषताओं को अपने वर्णन में उतार सके। नगर, नदी पर्वत आदि के नाम व्यक्तियों के नाम, वस्त्र वेशभूषा रहन-सहन विस्वास रीतिरिवाज आदि के द्वारा पौराणिक वातावरण की सृष्टि की जाती है।

२ ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण सृष्टि —

ऐतिहासिक उपन्यास में वातावरण का सबसे अधिक महत्व रहता है। उनमें सेवक को उस युग विशेष की पृष्ठभूमि का चित्रण करना पड़ता है जिसके चरित्रों का बर्ह वर्णन करना चाहता है। वत उसके वर्णनों में उस युग के विशिष्ट रीति-रिवाज बाल-बाल वातावरण के प्रामाणिक चित्रण द्वारा यह भासांस देना पड़ता है कि यह वही युग है। उस युग के विपरीत कोई बात उसमें न आनी चाहिए। इसके साथ ही उपन्यास में संगठित एवं संयोजित घटनाओं में उस युग के इतिहास में बटित घटनाओं के भेद में होनी चाहिए, उनके विच्छेद नहीं। इसके लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार को उस युग के इतिहास का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। सेवक जिन घटनाओं पात्रों एवं परिस्थितियों की कल्पना करे, वे भी वैसी हों वैसी वास्तविक घटनाओं हुई हों।^१ डा० इयामसुन्दर दास का ही कथन है ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाले का काम ही यह है कि पुरातत्व और इतिहास के ज्ञानकारों ने जिन सूखी-सूखी बातों का संग्रह किया हो उनको बह सरस और सजीव रूप देकर अपने पाठकों के सामने उपस्थित करे और उसे हमर-उपर बिलारी हुई जो सामग्री मिला-जिला साधनों से मिले, उसकी सहायता से वह अपने कौशल के द्वारा एक सशोभपूर्ण चित्र प्रस्तुत करे। ऐतिहासिक उपन्यासों के पाठक तो उसी सेवक का सबसे अधिक आदर करते हैं जो किसी विशिष्ट बर्णित काव्य का विस्तृत उल्लास जीता-जागता और साथ ही मनोरंजक वर्णन कर सके। इससे उसके पांडित्य और पुरातत्व-ज्ञान का भी आदर होता है पर उतना अधिक नहीं मिलता उसकी वर्णन शक्ति का।^२

वास्तव में सत्य यह है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं और नामों की अपेक्षा वातावरण का महत्व कहीं अधिक है, क्योंकि इतिहास की वाक्या नामों और घटनाओं में न रहकर वातावरण में ही निहित रहती है। वत हम कह सकते हैं जिन उपन्यासों में कल्पना वातावरण वर्णन शक्ति एवं ऐतिहासिक सत्य

१ काव्य सास्त्र-डा० मगीरज मिश्र-पृष्ठ ८५।

२ साहित्यालोचन-डा० इयामसुन्दरदास-पृ २१२।

का सानुपातिक समन्वय होता है, वही उपन्यास वास्तव में सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।

सामाजिक उपन्यासों में बातावरण-सृष्टि—

सामाजिक उपन्यासों में भी इस तत्व का महत्व रहता है। इस तरह के समाज में रचना की कठोरता महत्ता बीच हो जाती है। डा० मणीरथ मिश्र ने इसी कारण से सामाजिक उपन्यासों में बातावरण सृष्टि की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है 'सामाजिक उपन्यासों में तो सेखक प्रायः अपने मुँह की देखी मुँही और अनुभूत पृष्ठभूमि होता है और पाठक के समसामयिक होने के कारण उसको जानने और विश्वास करने का अवसर रहता है। सामाजिक मुँहों के लिए तो सामाजिक उपन्यासकार सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री प्रदान करता है। अतः देखा जा विश्वास यह है कि यदि उपन्यासकार, अपने समाज का अन्वेषण करता—यहाँ तक कि ऐतिहासिक यथार्थता को ध्यान में रखकर वास्तविक जीवन का चित्रण करता है तो वह न केवल साहित्य की सृष्टि करता है बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास के लिए भी सामग्री तैयार करता है या पृष्ठभूमि बनाता है।'

वास्तव में सामाजिक उपन्यासों में बातावरण चित्रण एक साथ ही कार्य सिद्ध करता है। अपने उपन्यास को निरन्तरनीय बनाता है और दूसरे भाग का उपन्यास एक के लिए एक सजीव इतिहास का कार्य भी कर सकता है।

अतः मैं हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पौराणिक ऐतिहासिक और सामाजिक तीनों ही प्रकार के उपन्यासों में वैयक्तिक एवं बातावरण के चित्रण की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

देशकाल और स्थानीय रंग—

स्थानीय रंग से हमारा तात्पर्य 'लोकल कलर' से है। इस प्रकार इसमें उपन्यासकार किसी विशेष स्थान के देशकाल बातावरण एवं व्यावहारिक जीवन का एक सच्चा आका उपस्थित करता है। उदाहरण के लिए हम लखनऊ नगर को ले सकते हैं। यदि हम इस नगर का चित्रण करते समय यमुना काटी विश्वताब का मन्दिर, ताऊ बिला आदि का वर्णन करेंगे तो निश्चित ही वह लखनऊ नगर का वास्तविक चित्रण न होगा और यदि इनके स्थान पर नोमती इमामबाड़ा छत्रमंजिक आदि का वर्णन करेंगे तो पाठक स्वयं ही

लक्षणों की सड़कों पर अपने को प्रमग करते हुए देखने लगेगा । इस प्रकार स्थानीय रंग के उपयोग से एक ओर कथानक की विश्वसनीयता बढ़ती है तो दूसरी ओर उसकी अनुकृता से कथानक के बोधिल होने की भी सम्भावना रहती है । अतः इसका प्रयोग आनुपातिक दृष्टि से ही करना भयस्कर होता है । वास्तव में स्थानीय रंग का महत्व दो कारणों से बढ़ जाता है । एक तो यह कि इसके होने से उपन्यास में प्रभावामकता आ जाती है तथा दूसरे यह कि उसकी कृत्रिमता मल्ट हो जाती है और स्वाभाविकता बढ़ जाती है । ये ही कुछ कारण हैं जिनके लिए उपन्यासों में स्थानीय रंग देना आवश्यक समझा जाता है । स्थानीय रंग ऐतिहासिक राजनैतिक तथा सामाजिक उपन्यासों में समान रूप से महत्व रखता है ।^१

देशकाल और विविध वर्णों की सीमाएँ—

जैसा कि हमने स्थानीय रंग के विषय में कहा है कि उसके वर्णन में सबसे अनुपात का ध्यान रखना चाहिए, अन्यथा रचना बोधिल हो जाती है । उसी प्रकार देश-काल के वर्णन के सम्बन्ध में भी अनुपात और संतुलन का ध्यान रखना अनिवार्य है । उपन्यासकार को ऐसे वर्णन देते समय भी यह न भूल जाना चाहिए कि वह एक कथाकार है । उसका प्रभाव कर्तव्य रचना को रोचक एवं संप्राप्त बनाता है अतः उसे देशकाल के विवरण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे स्वयं साध्य न बन जाय । जहाँ देश-काल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है वहाँ उससे भी उल्टे लयता है लोग जल्दी-जल्दी पल्ले पड़कर कथा सुन को रूझने लग जाते हैं । देश-काल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए ।^२ इसके लिए उपन्यासकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे वर्णनों को जो कथा प्रवाह के विस्तार अथवा अतिरिक्त विकास में साधक न होकर बाधक हों उनको सर्वत्र अपनी रचना से दूर ही रखना चाहिए । इसका तात्पर्य यह नहीं कि वर्णनों की योजना की ही न जाय प्रत्युत उचित स्थान पर उचित रीति से वर्णनों की भी अपेक्षा होती है । किसी निबन्ध विरोध का सफाई अंकन न हो सकने के कारण कभी-कभी मार्गों की पूर्ण ध्येयता नहीं हो पाती और कोई अभाव-सा

१ हिन्दी उपन्यास में कथा चित्रण का विकास डा प्रताप नारायण इंदन पृ ९९ ।

२ काव्य के कम डा० गुलाब राय पृ १८३ । द्वितीय संस्करण

कटकता रहता है। सूक्ष्म निरीक्षण के छोटे-छोटे समत्कार द्वारा ही, इतना पीघता और पूर्णता के साथ वास्तविक जीवन का भ्रम उत्पन्न करवाया जा सकता है। वातावरण के सजक तथा मनोरम चित्रण का कहानी के लिए बहुत मूल्य होता है।^१

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संतुलित मर्यादित सीमित एवं उपयोगी देशकाल के चित्रण से एक बार जहाँ उपन्यास की निरवरोधता बढती है वहीं दूसरी ओर उपन्यास का कथारूप सौन्दर्य भी बढ जाता है।

देशकाल (वातावरण सृष्टि) को हम निम्न दो भागों में रखकर प्रस्तुत अध्याय में उसका विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

१ वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन

२ समाज वर्णन

वस्तु वर्णन-एवं प्रकृति-वर्णन—वस्तु वर्णन के अन्तर्गत हम भौतिक वर्णन पड़-फिस बाटिका, बाजार, नदी पर्वत शीर्ष प्रासाद महालय मगर, धाम धाम पास के भू-भाग आदि के वर्णनों को लेंगे। प्रकृति वर्णन पर हम वस्तु वर्णन से पृथक विचार भी करेंगे।

समाज वर्णन—समाज वर्णन में हम उत्काशीन समाज की सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों को लेंगे।

आचार्य श्री के पौराणिक उदाहरणों में देश काम का चित्रण—

पौराणिक उपन्यासों में हम केवल आचार्य अनुराधेन जी के अर्थ रत्नाम नामक उपन्यास को ही रख सकते हैं। उसमें अगिष्ठ देश काल के चित्रण को हम यहाँ संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करते हैं।

वस्तु वर्णन—

भौगोलिक—अर्थ रत्नाम के भौगोलिक चित्रण बड़े सजीव हैं। कहीं-कहीं तो विलुप्त भौगोलिक वर्णन होने के कारण कथा अवरुद्ध भी हो गई है। उत्काशीन भौगोलिक स्थिति के संदर्भ में उपन्यासकार ने स्वयं लिखा है 'उन दिनों भारत की भौगोलिक सीमाएं भी श्री मात्र के जैसी न थीं। साम्राज्य से लेकर अरब हीन तक—बोधी पर्वतीय स्वयं द्वीप लंका मुद्रावा आदि द्वीप-समूह स्वयं-अस्तित्व पर और इन द्वीपों में नर, नाग देव देव्य बानर अमुर, मानुष आदि प्राणियों नृवंश के जन एक साथ ही रहते थे। कुसुद्वीप भी तब तब

१ हिंदी उपन्यास की शिक्षादायक योजनाएँ पृ ३५४। नवीन संस्करण

भारतवर्ष से भूमि-संक्रियत था। उस समय तक विन्ध्य के उस पार भारतवर्ष के उत्तरापथ में आर्यावर्त था जिसमें सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल नाम से दो आर्य राज्यसमूह थे। सूर्यमण्डल में मानव कुल और चन्द्रमण्डल नाम में एम कुल राज्य करता था।^१ इसके अतिरिक्त भी उसने प्रस्तुत उपन्यास में स्वान-स्वान पर भौगोलिक विभाजन पापान पुत्र^२ वातु युग^३ प्रस्य^४ मदी^५ पर्वत^६ आदि के विवरण भरे पड़े हैं। जगन्मय बङ्गीस पृष्ठों^७ के इन विवरणों के कारण उपन्यास का मुख्य कथानक अबहट्ट हो गया है। किन्तु इस विवरण के द्वारा उपन्यासकार ने तत्कालीन वैश्वकाय का सफ़्त चित्रण किया है।

राहुल जी ने अपनी पुस्तक 'बोस्ना से यंग' के प्रारंभिक पृष्ठों में इसी युग का चित्रण किया है। किन्तु उसमें लेखक ने भौगोलिक वर्णन पर कहीं भी प्रकाश नहीं डाला है; डा० रांगेय राजव ने अबस्य अपने उपन्यास 'मुर्षी का टीका' में इस ओर किञ्चित् मात्र संकेत किया है।

निर्माय स्थिति—आचार्य चतुरसेन सेन जी ने बासावरण सृष्टि के लिए किले आवि के जो वर्णन दिए हैं वे भी विस्तृत सजीव हैं। उदाहरण के लिए 'बयं रत्ताम' में प्राप्त लंका नगर का वर्णन देखिए।

'ग्रहण मे लंका में प्रवेश किया। अब वह विद्यालय नगरद्वार पर पहुँचा तो उसने देखा—द्वार पर बृह बौह कपाट खड़े हैं। कपाटों में मोटी-मोटी पंखकारें लगी हैं। बंगलाओं पर विराट उपल यत्र बड़े हुए हैं। ऊपर की बुजियों पर अग्नि मुमुम्भिकारें रखी हैं। नगर के परकोटे के भीतरी भाग में स्वर्णलक्षित विषय कारीगरी चित्रित है। बीच बीच में मदि-मूया बड़े हैं। परकोटे के बाहर विद्यालय छाई बरु से परिपूर्ण है। छाई पर द्वार तक विद्यालय फलक मार्ग है—दिनमें कुम्भेष गुपुङ्ग संक्रम यत्र खने हैं। संक्रम स्वर्ण के लम्पों और स्वर्ण-वैदियों पर

- १ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ १३ ताब ही देखिए हिन्दू सम्प्रदाय डा० राधाकुमुद मुकुर्जी—अनुवादक डा० वातुदेव धरण अणवाळ पृ १३६ १३७।
- २ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ २२।
- ३ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन, पृ ३२।
- ४ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ ३० से ३२।
- ५ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ ३३ से ३४।
- ६ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ १११।
- ७ बयं रत्ताम आचार्य चतुरसेन पृ १३ ४९।

साधारण हैं। प्राचीनों पर दुर्बल सुनत चौकसी कर रहे हैं।^१ प्रस्तुत उद्धरण द्वारा लंका नगर एवं उसके परकोठे की एक छापी मिल जाती है। बपन उत्कलासीन युग के ही अनुसूच है। इसके अतिरिक्त 'बर्ष रत्नाम' में उत्कलासीन नगर यह किके^२ आदि की निर्माण-स्थिति के कियने ही बपन प्राप्त होते हैं। उत्कलासीन युगों के भी अतिने बर्षन आए हैं, वे भी बयाप जात होत हैं। कूट युग तक मूह इन्द्र युग आदि कर्षन भी इसमें सविस्तार प्राप्त है। येना क साप वा मावस्यक सामग्री रखी थी उसका भी इसमें संकेत मिलता है।

बर्ष रत्नाम में समाप्त चित्रन—

बर्ष रत्नाम में उपन्यासकार ने उत्कलासीन दश की सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सफ़्तक वर्णन किया है। इसका क्या अर्थ भारत भूमि मध्य एशिया भर, अफ्रीका और पूर्वी ईपसमुद्र तक फैला हुआ है। इन सभी का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत ग्रंथ में उपन्यासकार ने किया है। यद्यपि इनके विवरण के आधिक्य से क्या अन्व बाधित ही हुआ है। यहाँ हम उत्कलासीन युग की विभिन्न परिस्थितियों पर विमल-निमल विचार करें—

सामाजिक स्थिति—उस युग में आर्यों और देवों को छोड़कर इतर जातियों की सामाजिक-स्थिति सुमण्डित न थी। मुच और सुन्दरी का इनमें बावस्यक से अधिक प्रचलन था।^३ मुक्त सहास^४ विवसन विवरण^५, हरण^६ और पदजनन^७ आदि उनमें प्रचलित था। नर मांस की कुष्ठे बाजार विक्री

१ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ ३४ वास्नीकि रामायण उद्धरणों के ३, ४ में भी इसी प्रकार का लंका के सुसुह युग और आई का बर्षन प्राप्त है।

२ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ २८१।

३ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ ८१।

४ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ ९।

५ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन पृ ८।

६ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ २६१।

७ बर्ष रत्नाम: आचार्य बनुरसेन, पृ २७३।

होती थी।^१ विवाह बन्धन केवल आर्यों में था।^२ एवम ने विवाह बन्धन की मर्यादा अमार्यों में भी स्थापित की थी।^३ यद्यपि वैश्य और असुर वेदी तथा आर्यों के भाई बन्धु ही वे परन्तु रहस्य-गृह्य और विचार व्यवहार में दोनों में बहुत अन्तर पड़ गया था। उक्त युग की सामाजिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी। उत्तिष्ठामी शास्त्रक होता था। आर्यों और वेदों में केवल राज्ञ की परम्परा चल रही थी। देव देवों के कुछ से बनता संन्यस्त थी। देव देव, यामव असुर, आर्य आर्य नाम यम्बवे किन्नर, मल रस आदि अनेक नृबन्ध उक्त युग में विस्तार पा रहे थे जो परस्पर आपाद आपाद के किन्तु परस्पर विग्रह करते थे। बारह बारह देवासुर संशाम ही चुके थे। आचार्यों की भिन्नता ही नृबन्ध की इस विग्रह मायमा का मूल कारण थी।^४ यद्यपि उक्त समय पृथ्वी का विस्तृत नू भान रिक्त पड़ा था फिर भी भूमि के लिए युद्ध होते थे। जो भूमि स्वच्छन्द थी वहाँ खोप बसना नहीं चाहते थे बल्कि दूसरों की अपेक्षित भूमि छीनना चाहते थे।^५ केवल आर्य और वैश्या ही अपने को पुण्य समझते थे 'आर्य खोप अपने को मनु की संज्ञान अपना मानव कहते थे और यहाँ के मूल निवासियों को आत्मसात् करने के बरसे उन्हें बनु की संज्ञान अपना मानव कह कर दूर दूर रखते थे। यहाँ तक कि जिन मूल निवासियों ने उमड़ी आर्य संस्कृति के कई तत्व स्वीकार करके उनके मीनी भी स्थापित कर ली थी उन्हें भी वे पूरा मानव न समझकर बावर (मनुष्य कोटि में संशिम्य जीव) समझते थे।^६ आर्यों में विवाह मर्यादा दृढ़बद्ध हो चुकी थी और स्त्रियों के लिए पुरुष 'पति' वा 'स्वामी' हो गए थे उनके शरीर और जीवन की सम्पूर्ण शता पर उनका अक्षर्य एवं सर्वतन्त्र अधिकार हो गया था। यहाँ तक इस मर्यादा का रूप बना कि यदि बीर्य किसी अन्य पुरुष का भी अनुदान किया हो तो भी उसका का पिता उस स्त्री का वह 'पति' ही माना जयमा, जिससे उसका

१ अर्य रत्नामः आचार्य अतुरसेन, पृ २१४।

२ अर्य रत्नामः आचार्य अतुरसेन, पृ ४२४।

३ अर्य रत्नामः आचार्य अतुरसेन, पृ- २१।

४ अर्य रत्नामः आचार्य अतुरसेन पृ ३०९।

५ अर्य रत्नामः आचार्य अतुरसेन, पृ ३४९-३०।

६ तुलसी दास—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र पृ १६१, अर्य रत्नाम में भी इसी प्रकार के विचार प्राप्त होते हैं ३३०-३३१।

विवाह हो चुका हो ।^१ बहुत से ऋषियों ने तो वीर्यदान अपना एक पेशा ही बना लिया था ।^२ इस प्रथा से आर्य जाति को यह लाभ तो अक्षय हुआ कि वह एक सन्तति जाति हो गई थी परन्तु इसमें एक नई और महत्वपूर्ण बात यह उत्पन्न हो गई थी कि उनके राज्य सम्पत्ति आदि सब वैयक्तिक हाथ गए और देवता ही स्वतन्त्र मानवों और एत्यों के महाराज्यों का विस्तार हो गया था ।^३ परन्तु इसमें स्त्रियों के अधिकारों का खारजा ही गया था । पत्नी का अपना कुछ पौत्र कुछ भी न रहा । निरृ मूकक बग परम्परा में पिता का कुछ गोम देवत पुत्र को ही मिलता था पुत्री को नहीं ।^४ आर्यों की जाति में स्त्री की पत्नी न थी । वह मात्र पुत्र्य की पूरक थी ।^५ पिता की सारी राज्य-सम्पत्ति का निश्चिन रूप से पुत्रों को ही उत्तराधिकार मिलता था-पुत्रियों को नहीं ।^६ स्वपत्नों की प्रथा बड़े-बड़े आर्य कुलों में प्रचलित थी परन्तु उसमें भी कन्या को अपनी वसन्त का पुरुष चुनन का अधिकार न था । पिता ही उस चुनाब की कोई बात रख देता था । और उस शर्त को पूरा करने पर वह कन्या उसी को दे दी जाती थी । ऐम स्वयंवरों में कन्या को 'वीर्यभुक्ता' कहा जाता था । इसका अर्थ आ-परारम्भ के मूल्य पर कन्या की खरीद ।^७ कुछ कुछ कन्या के दूध के बन भी लेते थे ।^८ राजा लोग अपनी कन्याएँ पुरोहितों को पत्र दक्षिणा की मूर्ति भी दे देते थे । जैसे वारण ने ऋषि श्रुम को अपनी कन्या धाता दे दी थी ।^९ बहुपत्नी की प्रथा थी । पति को अनेक स्त्रियों से विवाह करने के अधिकार प्राप्त थे किन्तु पत्नी को नहीं । विवाह के अतिरिक्त आर्य लोग दासियों भी रखत थे । आर्य राजाओं के अन्त-पुर में चार प्रकार

१ अर्थ रत्ताम-आचार्य बभ्रुवर्षेण, पृ ४२३ ताव ही देखिए हिन्दू सभ्यता
डा० राधाकुमुल मुकुर्जी, अनुबाबक डा० बाबुरेवधरय अणवाल, पृ १६२ ।

२ अर्थ रत्तामः पृ ४२३ ।

३ अर्थ रत्तामः पृ. ४२४ ।

४ अर्थ रत्तामः पृ ४२४ ।

५ अर्थ रत्तामः पृ ४२५ ।

६ अर्थ रत्तामः पृ ४२६ ।

७ अर्थ रत्तामः पृ ४२३ ।

८ अर्थ रत्तामः पृ ४२३ ।

९ अर्थ रत्तामः पृ ४२३ ।

१० अर्थ रत्तामः आचार्य बभ्रुवर्षेण, पृ ४२६ ।

की परित्याग्य रूढ़ी थीं ।^१ बाय भाय और उत्तराधिकार के संबंध में भी आर्यों में प्रथम यही विधि प्रचलित थी कि राज्य सब पुत्रों में बाँट दिया जाता था ।^२ किन्तु जाने अधिकारधर अथवा ही क्षत्रपति होता था शेष उसके अनुजीवी होते थे ।^३

राज्य के राज्य स्थापन के पश्चात् संका में शोक विकास की भाषा बड़ी थी । बहूँ यौवन के अंशे बनी तबन किछोरी के बन और प्राचीं को हरने बाडी हो वस्तुओं का प्राबल्य भा-एक वेस्माक्य ब्रुवण शूताम्य । इतिहास का के श्रेष्ठ, चतुर नागरिक राजस वेद-विद्या अथ-विद्या अस्त्र-विद्या और रत्न विद्या और मोहिनी-विद्यार्थ भी सीखते थे ।^४

इसके अतिरिक्त भी आचार्य चतुरसेन भी के इस उपन्यास से सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण करनेवाले किन्तु ही उद्धरण उद्धृत किए जा सकते हैं ।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ—

‘अयं रक्षाम’ में तत्कालीन सांस्कृतिक हलचल तो विस्तृत ही स्पष्ट है । राम राजवंश काहीन आदिम परिस्थितियों के विषय पर उपन्यासकार ने इसमें पर्याप्त ध्यान दिया है । वह काक आर्यों और जनार्यों के संबंध का काल था ।^५ आर्य और वेद परस्पर संगठित थे और उनका संगठन अत्युत्तम था । राजवंश ने आर्यों के इस संगठन को बड़ मुम से उखाड़ फेंकने की योजना बनाई थी । इसीलिए उसने सांस्कृतिक विप्लव का सूत्रपात किया था । राजवंश के रक्त में शूद्र और बहिष्कृत दोनों ही आर्यों का रक्त था । उसका पिता आर्य विभवा था । और माता वैश्य राजपुत्री थीं । वेद का उस समय को स्वरूप था उसे उसने अपने पिता से आत्मकारण ही में अध्ययन कर लिया था । तब तक वेद ही

१ अयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन, पृ ४२६ ।

२ अयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन, पृ ४२६ ।

३ अयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन पृ ४२७ ।

४ अयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन, पृ ३१४ ।

५ अयं रक्षाम: आचार्य चतुरसेन पृ ११ साथ ही देखिए—

१ वैदिक साहित्य और संस्कृति बलदेव उपाध्याय पृ ४६५ ।

हिन्दू सभ्यता डा० राजाकुमार मुकुर्जी, अनुवादक डा० बागुदेव शरण्य अथवा डा० ११९ १६१ ।

आर्यों का एक मात्र साहित्य और धर्मग्रन्थ था जो केवल मौखिक वा सेकबद्ध न था। रावण के मन में हीन तत्व काम कर रहे थे। उसका पिता पृथ्वी आर्य और विश्वान ऋषि था। उसकी माता पृथ्वी वैश्य वंश की थी। उसके बन्धु बाबल बहिष्कृत आर्य बनीं थे।^१ उन्हें क्रिया कर्म से श्रुत कर दिया गया था। बहिष्कार का सबसे कट रूप माणकों पुरोहितों द्वारा संस्कार-क्रिया से उन्हें वंचित रक्षता मया मनों से बहिष्कृत समझना था। यज्ञ और वेद का उस समय पर्याप्त मान था उससे वंचित कर देना एक ऐसी अपमानजनक बात थी जिसने इन जातियों में आर्यों के विरुद्ध ईश्यों तथा अनुर्यों से भी अतिक्रम, जो आर्यों के दामाद बाणधर व डैप और विरोध की ज्वाला मुक्तगी की थी।^२ रावण ने सबसे प्रथम वेद का सम्पादन किया था। ऋषियों पर उसने टिप्पणियाँ तैयार कीं। मूल मंत्रों की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच-बीच में बृद्धिमत्त किया। इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ सब निकर कर वेद का एक ऐसा संस्करण हो गया जो जम्बूद्वीप के सब आर्यों तथा मारों त्यों के लिए मान्य ही गया कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव से। आगे चलकर मही रावण भाष्य टिप्पणी सहित 'हृण्ययजुर्वेद' के नाम से विख्यात हुआ। हृण्ययजुर्वेद में पशुबध मघपान स्त्री समर्पण सिद्धन पूजन मोचन गरुडध शाष्टन बध हुमाठी बध आदि का विधान सम्मिलित हो गया जो वास्तव में बहिष्कृत आर्यों एवं अनुर्यों की परिपाटी थी।^३ रावण ने आर्यों का समूह नान्त करने के लिए 'रत्न संस्कृति' की स्थापना की थी। उसका नाश वा 'धर्म रक्षाम' हम रक्षा करेंगे। उसने सहस्रों समर्थ रावणों को विभिन्न छत्र केय चारण करके निम्न-निम्न प्रदेशों में भेज दिया था, जो सब जातियों में रावण द्वारा स्थापित राजस धर्म का प्रचार करते तथा लोगों को रावण बनाते थे।^४ यह राजस छिस्त-पूजक थे। उनके अपिकीय कार्य आर्यों

१ धर्म रक्षाम आचार्य शत्रुसेन, पृ. १६१।

२ धर्म रक्षाम आचार्य शत्रुसेन, पृ. १६१।

३ भारतीय संस्कृति का इतिहास आचार्य शत्रुसेन पृ. २४३ इसके साथ ही वैदिकी तैत्तिरीयापस्तंब हिरण्यवेदी कांड ६ प्र० १ ध० ०।

४ धर्म रक्षाम आचार्य शत्रुसेन, पृ. १६२।

बिरोधी थे। उनमें हिंसामय मन्त्र^१, सुरापन^२ मांस भक्षण^३ सभी सहवास^४, नरबलि^५ गोबध धारि प्रणयों प्रचलित थीं। रावण ने बछ पूर्वक वैदिक यज्ञ गुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किए—उसने सहस्रों राजसों को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं कार्य ऋषि रावण बिरोधी विधि से यज्ञ कर रहे हों वहाँ बछपूर्वक बलि-मांस और मद्य की आहुति दो। इतना ही नहीं उसने राजसों द्वारा यज्ञकर्ता ऋषियों ही को मार कर बलि देना प्रारम्भ कर दिया।^६ नर मन्त्र भी उसका एक व्यापार हो गया।^७ इस समय असुरों मार्गों एवं भाषों में विभिन्न धार्मिक पद्धतियाँ प्रचलित थीं।^८ भाषों ने बधिष्ठ के नेतृत्व में वैदिक विधि-परम्परा दूसरी ही स्थापित की थी। उबर नारद की काम-परम्परा देवों में और दैत्यों में भी प्रचलित थी।^९ ऋषु पूषक ही आर्षवेणी परम्परा प्रचलित कर रहे थे। इस पर भी भाषों को बड़ा गर्व था। वे तनिक विधि अंग होमे पर ही आर्षवनों को बहिष्कृत कर देते थे।^{१०} रावण ने इस

१ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन, पृ १६३।

२ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ १६३।

३ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ १६३।

४ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन, पृ १६३।

५ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ १६३।

६ विद्वामित्र तन्मन्त्रतः इसी कारण से यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को दक्षरथ की से माँग ले गए थे। 'निसिन्धर निकर सकल मुनि द्वाए' से भी यही मांस होता है। आदि कवि ने नी लिखा है—

मन्वन्ते राजसेनीर्नर मांसोपजीविभिः।

ते मन्वमाजा मनुषी ब्रह्मकारभ्यवाहितः ॥

७ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ ३४९ साथ ही देखिए—

१ भारतीय संस्कृति का इतिहास, आचार्य चतुरसेन पृ २३०।

२ हिन्दू सभ्यता डा० राधा कुमुद मुकुर्जी, अनुबाधक डा० आसुदेव शरण अग्रवाल, पृ० १६०।

३ अर्थात् रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग २, पृ ४६ ४७।

४ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ ३४९।

५ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ ३३०।

६ अर्थ रत्नामः आचार्य चतुरसेन पृ ३३०।

यस्य व्यस्त स्थिति से भरपूर साम उठाने की चेष्टा की।^१ उसने रज्य संस्कृति की स्थापना करके समूचे नृबन्ध को समान वैदिक संस्कृति में वीजित करणा प्रारंभ कर दिया था। वैदिक धर्म में उसने समूचे नृबन्ध का समन्वय किया।^२

उत्तर राम भी एक महान् सांस्कृतिक पुरुष थे। उन्होंने रावण की मर्त्याकांक्षा को पहचान लिया था। उन्होंने आर्य संस्कृति को संकृषिण परे से बाहर निकाला। उनका महत्सांस्कृतिक कार्य रावण बध और राजस बंध की समाप्ति थी।^३

इनके अतिरिक्त उस काल में अन्य कितने ही धार्मिक अनुष्ठान प्रचलित थे।^४ विभिन्न ऋषि-रिवाजों^५ नृत्य बाद्य^६ अन्वयेष्टि^७ आदि के भी वर्णन इसमें प्राप्त हैं।

१ ब्राह्मण लोगों ने तो आर्य संस्कृति के प्रसार और ज्ञान-विज्ञान के विचार और प्रचार के लिये तपोवनों में विश्वविद्यालय खोलकर शासन के कार्य से उदासीनता सी धारण कर ली थी। उद्यत ऋषियों को इसीलिये उनकी उपेक्षा का निर्बाध अवसर मिल गया। कलत्र के कनी किसी ऋषि को पापें चुप लेने तो कनी किसी का सिर ही काट डालते थे। भारत की ऐसी अस्त-व्यस्त स्थिति से भरपूर साम उठाने की चेष्टा यदि किसी ने की तो उपनिषद्शास्त्री महाधिपति रावण ने की। वह सौतिक विज्ञान का महावंदित था। उसने देखा कि यहाँ आर्य लोग अपने को मनु की सन्तान अथवा मानव कहते हैं और यहाँ के मूल निवासियों को आत्मघात करने के बरते उन्हें मनु की संतान अथवा मानव कह कर बुर बुर रहते हैं। मादि। तुलसी दत्तन डा० बलदेव प्रसाद मिश्र पृ १६१।

२ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन पृ ३३० साथ ही वेद्विष्ट, हिन्दू सम्प्रदाय, डा० राधागुप्त मुकुर्जी, मनुवारड डा० बानुदेव शरण अग्रवाल पृ १९०-१६१।

३ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन, पृ ४२३ ४३० तक एवं भारतीय संस्कृति का इतिहास पृ २३७।

४ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन, पृ ४१५ ४१६, ४८९ ४९०।

५ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन पृ ४९२।

६ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन पृ ४९६।

७ बर्ग रत्नामः आचार्य बनुरसेन पृ ३३१।

राजनीतिक परिस्थिति—'बर्ग रसाम' में तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जैसा कि प्रथम ही कहा जा चुका है कि जायों का खीर देवों का संगठन उस काल में अत्युत्तम था। उन्होंने लोकपालों दिग्पालों की स्थापना की थी जो जायों के प्रांत नाम की रक्षा करते थे। देवों की प्रबल जातियों में तब मदन बसु, आदित्य प्रभावदाकिनी थीं। मोटी के पुत्रों में इन्द्र इन्द्र यम बदन की बल परम्परियों के पुत्र थे। यम बदन इन्द्र और कुबेर चार लोकपाल थे।^१ जनार्णों की भारत खीर भारत की सीमाओं पर उन दिनों अनेक जातियाँ थीं। इनमें महिष कपि नाग मूष भृश चात्य जादिक राजस वैश्य बानव कीकट महाभूत बास्तीक मूँबवन जाति प्रमुख थीं। इन सबका संयुक्त नाम जनार्ण ही था।^२ इन सबके अपने छोटे छोटे राज्य थे। राजस ने प्रथम इन छोटे-छोटे जनार्ण राजाओं को ही अपने अधिकार में किया। मय वानव की पुत्री मंडोवरी से विवाह करके उसने एक प्रबल जाति को सम्बंधी बना लिया था। स्वान स्वान पर राजा छीम अपने उपनिवेश स्थापित कर रखते थे। राजस ने भी देवों के चारों लोकपालों को पराजित करके स्वान-स्वान पर अपने उपनिवेश स्थापित कर दिए थे। राजस ने पक्षियों तथा दक्षिण के बहिरंग भारतीयों की एक संयुक्त सेना बनाई थी उसी से उसने प्रथम अपने भाई कुबेर को बलिष्ठ किया उसके बाद यम और बदन के उत्तराधिकारियों को। इन्द्र को बन्दी बनाकर बह लंका ले जाया था। मार्ग में उसने कितने ही छोटे-छोटे राजाओं को पराजित किया। केवल दो बीरों से उसे मुँह की खानी पड़ी थी—एक हृह्य बही कार्तवीर्य अर्जुन से माहिष्मती में दूधरे किष्किन्धा के कपिराज बामी से। इन दोनों से पराजित होकर उसने मैत्री संबंध स्थापित कर लिया था।^३ उस काल में यदि पराजित राजा अभीगता स्वीकार कर से तो उसे मर्त्य न करके मित्र बना लिया जाता था। राजस ने इसी नीति के अनुसार अनेक राजाओं को अपना मित्र बना लिया था। इस काल में सर्वत्र राजतंत्र ही था। सम्पूर्ण सत्ता राजा के हाथ में ही रहती थी। जायों से यहाँ ब्राह्मणों का सम्मान था। और जनार्ण उन्हें अपना धनु समझते थे। छोटे छोटे

१ भारतीय संस्कृति का इतिहास—आचार्य अतुरसेन-यु २४२ एवं बर्ग रसामः
आचार्य अतुरसेन-यु १६२।

२ बर्ग रसामः आचार्य अतुरसेन-यु १३२।

३ बर्ग रसामः आचार्य अतुरसेन-यु २१२-२१ एवं ३४६-४७ ये वर्णन वास्मीकि रामायण से मिलते हैं वैश्विदे वास्मीकि रामायण उत्तरकांड सर्ग १७-१९।

राज्यों को एक सूत्र में बांधने के लिए राजसूय यज्ञ करने की प्रथा थी। इससे पश्चात् अस्वमेध यज्ञ किया जाता था। दोनों ही यज्ञों में विभिन्नय यात्रा की जाती थी। कुछ लोग स्वेच्छा से अधीन होते थे कुछ मजबूर। फिर वे सब राजा लोग जाकर यज्ञ में सेवा कार्य करते थे। तब यज्ञ कर्ता को सम्राट की या महाराज की उपाधि मिल जाती थी। अशिक्षित आर्य राजा बिसासी हो गए थे। उनकी अशिक्षित सैनिक शक्ति देवासुर संग्रामों में क्षीण हो चुकी थी। आर्य राजाओं का संगठन भी टूट चुका था। जिस समय राजसूय यज्ञों को संगठित कर रहा था उस समय आर्य नरेश छोटी-छोटी बातों के लिए आपस में झड़-झट रहे थे। राष्ट्रीयता की भावना बिल्कुल विलुप्तप्राय थी।^१ किन्तु अनामों की इस बढ़ती शक्ति से कुछ ब्राह्मण सजग हो चले थे। परशुराम और बिष्णुमित्र का कार्य इस दिशा में सराहनीय था।^२ अगस्त्य ऋषि का भी राजसूय पर आतंक था। उस काल में ऋषिगण भी समस्त रहते और युद्ध में भी रक्षा पूर्वक लड़ते थे। आत्म-रक्षा के बिना समर्थ हुए जनस्थान तथा स्वकारण्य में वे रह भी नहीं सकते थे। उनके उपनिवेश भी एक प्रकार के छोटे से जनपद ही थे जहाँ प्रमुख ऋषि का शासन राजा ही की भाँति माना जाता था—और उन्हें कुम्भपति समझा

१ 'भार्याया पुत्रपोत्तम राजा रामचन्द्र का जिस समय आदिर्भाव हुआ था उस समय कश्चित् लोग उत्पत्ती हो चके थे। -- राष्ट्रीयता तो उस समय विलुप्त प्राय थी। यही क्षेत्र लौकिके कि पूर्वोत्तर प्रदेश के नरेश (विदेहराज) के यहाँ जब स्वर्गद्वार हुआ तो पश्चिमोत्तर प्रदेश के नरेश (अश्वत्थ) के यहाँ भिन्नमन्य तक न गया। (तुलसी दर्शन भा० बलदेवप्रसाद नियम ११०-११)

२ '—इसपर ब्राह्मण लोग भी इस परिस्थिति से कुछ सजग हो चके थे और उनमें भी परशुराम के समान आत्मिकारी योद्धा का आदिर्भाव हो गया था। ---- (किन्तु) भारत का राष्ट्रीय संगठन उनके द्वारा न हो पाया। बिष्णुमित्र कहते स्वतः राजा रह चुके थे। उन्हें अशिक्षित और ब्राह्मणत्व दोनों का पूर्ण अनुभव था। ---- यह उन्हीं का प्रयत्न था कि रामचन्द्र भी तपोवनों की रक्षा और दुष्ट बालकों से बचाने के लिये प्रवृत्त हुए। यह उन्हीं का प्रयत्न था कि अनिर्मित होने हुए भी रामचन्द्र भी सीता स्वयन्दर से अश्वत्थ पर मिथिला गये और अपना पराजय रत्नाकर उत्तरीय भारत के आर्यवर्त के दो दूरस्थ संगठित राजकुलों को स्नेह सूत्र में बाँधकर आर्य संगठन का प्रथम सूत्रपात दिया।' (तुलसी दर्शन पृष्ठ ११२)।

जाता था।^१ प्रस्तुत उपन्यास में इसके अतिरिक्त तत्कालीन राज्य व्यवस्था राजनीति कूट नीति पर राज्य सम्बन्ध सैन्य व्यवस्था आदि पर भी यत्र-तत्र प्रकाश प्राप्त होता है।

आर्थिक परिस्थितियाँ—

'अर्थ रत्नाम' में विन राजवंशों का वर्णन किया गया है। उनकी आर्थिक स्थिति उन्नत थी। राजन की आर्थिक स्थिति अत्यंत सुबुद्ध थी। समृद्धि की वृद्धि से उसने अपनी संका को मानो छोने की ही बना डाला था।^२ साम्राज्य बन की आर्थिक स्थिति का इसमें विशेष चित्रण नहीं प्राप्त होता। इस काल में छोटी-बोखेबाब ठग व्यापारी बणिक को पाषिक कहते थे। इसका अर्थ 'पण छोटी' होता था। ऐसे छोटी पणिकों को भी कार्य लोभ बहिष्कृत करने दक्षिण में निष्कासित करते थे। बक्षिण में आकर भी ये छोटे पणिकर्म करने लगे थे।^३

समय के चोत्तन के सिध् उपन्यासकार ने कई स्थानों पर प्रकृति का भी काम्य किया है। जिसका हम आगे वर्णन करेंगे। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास के वर्णनों द्वारा पाठक के सामने तत्कालीन युग और समय प्रत्यक्ष हो उठता है। पात्र उनकी बेश सूबा एवं रहन-सहन में उस युग के सर्वथा अनुकूल ही हैं।

आचार्य चतुरसेन जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण सृष्टि —

आचार्य चतुरसेन जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के वर्णनों को पाँच भागों में विभिन युगों के अनुसार रक्त चुके हैं। 'अर्थ रत्नाम' को निकाल देने के पश्चात् हम उसके समस्त ऐतिहासिक उपन्यासों को चार भागों में रक्त सकते हैं—

- १ बौद्ध काल
- २ मध्य काल
- ३ मुसल काल
- ४ अंग्रेजी राज्यकाल और आधुनिक काल।

प्रस्तुत अध्याय में इन सभी कालों के उपन्यासों में प्राप्त वातावरण सृष्टि पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

१ अर्थ रत्नाम आचार्य चतुरसेन-सृष्ट ४३१।

२ अर्थ रत्नाम आचार्य चतुरसेन-सृष्ट १०६-८।

३ अर्थ रत्नाम आचार्य चतुरसेन-सृष्ट १६०-साथ ही बक्षिण-भारतीय संस्कृति का इतिहास-सृष्ट २४१।

बीड़ कामीन नगरियों में दया चित्रण—

इस काक स सम्बन्धित आचार्य बतुरसेन जी का केवल एक उपन्यास 'बीड़ामी की नगर बधू' है। इसका सम्बन्ध भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण काल ६०० ई० पू० से १० ई० पूर्व से है। इसमें मान्यार से लेकर मगध और अंतक के राजनीतिक सामिक सांस्कृतिक, एवं सामाजिक उद्घापोह का कलात्मक अंकन प्राप्त होता है।

वस्तु वर्णन—

नगर बधू में इस प्रकार के चित्रने ही चित्रण प्राप्त है। 'बीड़ामी'^१ 'राजगृह'^२ 'अम्पा'^३ 'आवस्ती'^४ आदि नगरों के उनके आसपास के मू मारों के बड़े सजीव वर्णन उपमासकार ने इसमें प्रस्तुत किए हैं। संपागार^५ दुर्ग^६ बादार आदि के भी बड़े दयार्थ वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में प्राप्त हैं। 'नगरबधू'^७ में प्राप्त संपागार का चित्रण देखिए—

'संपागार का समा भरण मस्य देध क उग्गळ द्धेत संगमरमर का बता पा। और उसका फर्म चिकने और प्रतिबिम्बित कासे पत्थर का बता पा। उसकी छत्र एक सौ आठ खम्भों पर आचारित थी। ये खम्भे भी कासे पत्थर के बन थे। समा भवन के चारों ओर भीतर की तरफ नौ सौ निधानत्रे हाथी बाग की चौकियाँ रखी थीं, जिन पर अपनी-अपनी नियुक्ति के अनुसार आठों कुल के सम्पन्न आ-आकर साकार बपचाप बैठ रहे थे। भवन के बीचों बीच गुल्म चिह्नित हरे रंग के परपर की एक बेदी थी। जिन पर बी बहुमूल्य म्बर्ध घणित चानी की चौकियाँ रखी थीं।— ५।

संपागार का प्रथम उपर्युक्त वर्णन बड़ा ही चित्रमय है। केवल पढ़कर ही

१. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन, पृ १ से ४।
२. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन, पृ ६८-६९।
३. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन पृ २३०।
४. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन पृ २८५।
५. बीड़ामी की नगरबधू आचार्य बतुरसेन, पृ १९ १३, २८ २९।
६. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन, पृ- १२ १३, २८ २९।
७. बीड़ामी की नगरबधू, आचार्य बतुरसेन, पृ ३।
८. बीड़ामी की नगरबधू आचार्य बतुरसेन पृ १२ १३।

घटकर ब्रह्म में उसकी पुत्री बम्बपाली जो बर्षवार ने बीरस ने दी—वा
 उपभोग किया था।^१ स्त्री विस्तुस असहाय थी। बम्बपाली इच्छा न रखते हुए
 भी विवाह नगरबधू बनाई गई।^२ कुम्हनी कोड़े मार-मार कर विपक्ष्या बना
 गई।^३ पांभार कुमारी कलिंगसेना की इच्छा था भी कोई मृत्यु नहीं समझ
 गया। उदयम से प्रेम करते हुए भी उन्हें विवाह होकर बृद्ध प्रसेनजित से विवा
 करने को बाध्य होता पड़ा था।^४ इसी प्रकार बन्धुप्रमा सोमभद्र से प्रेम करता।
 भी किंतु उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना पड़ा निबुद्धम से।^५ इस
 युग में विनाशिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी।^६ काम पान में
 किसी प्रकार का परहेज न था। सभी मुख्य अवसरों पर मांस और मरिचा का
 कुसकर सेवन होता था। पारिवारिक जीवन में भी मांस और मरिचा का
 प्रयोग होता था। 'मधु मोक्षक' और 'बोयत' का भी उपयोग होता था। वाञ्छेन
 का प्रचलन था। नूने कुरकुरे मांस कर्षों का प्रयोग प्रचलित था।^७

इस काम में बर्ष संकर संतानें बड़ रही थी। वाञ्छेन और कर्षियों ने
 इतरबंध की आनियों को अपने उपभोग के लिए तो अपना किया था किंतु
 उनसे उत्पन्न संतानों को उठोने नहीं अपनाया था।^८ उन संतानों को वे
 अपने कुल और गोत्र से मलग ही रखते थे जिससे बर्षसंकरों की एक नवीन
 जाति बनती जा रही थी। जो जायों से अधिक पारिवारिकी एवं प्रतिमा
 गामिनी थी। मगध का राज्यकुल स्वयं संकर था। प्रसेनजित के दासी पुत्र
 विबुद्धम ने ही जो संकर था—उसे सिंहासनच्युत कर दिया था। सम्भवतः यही
 यन्मीर रहस्यपूर्ण संकेत—जैसा कि माचार्य बहुरत्नेन जी ने 'प्रबन्धन' में कहा
 है—प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करता चाहते थे।^९

- १ बीजाली की नगरबधू पृ ७३१ ७३४ ७३५ ।
- २ बीजाली की नगरबधू पृ १२ से ३७ तक ।
- ३ बीजाली की नगरबधू पृ ७७ से ८१ तक ।
- ४ बीजाली की नगरबधू पृ २८५ से २९४ तक ।
- ५ बीजाली की नगरबधू पृ ४६९ से ४७१ तक ।
- ६ बीजाली की नगरबधू पृ १३२ से १३४ तक ।
- ७ बीजाली की नगरबधू , पृ १४२ १४३ ।
- ८ बीजाली की नगरबधू पृ १४२ १४९ ।

९ यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह
 एक यन्मीर रहस्यपूर्ण संकेत है। जो उस कामे परों के प्रति है जिसकी ओर

साधारण जनता की आर्थिक स्थिति बर्तनी न थी। भूखी-भंगी-जनता कल्याणकर सहन करती हुई जीवन-यापन कर रही थी। राजाओं और विशेषकर धन कुबेरों के यहाँ धन सिमित कर एकत्र हो गया था।^१ बलभद्र (सोमप्रभ) द्वारा अम्बपाली के प्रासाद का सूदन वाली कटमा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस काल की साधारण जनता का अन्न प्राप्त न था। और सामन्तों के यहाँ वह आनन्दकटा से अधिक भरा हुआ था।^२

राजनीतिक परिस्थिति —

प्रस्तुत उपन्यास में तन्काहीन राजनीतिक परिस्थितियाँ विशेष उभरी हुई हैं। उस युग में नाग्न में बहुत छोट-छोटे राज्य थे। कुछ गणतन्त्रात्मक थे और कुछ राज सत्तात्मक। गणराज्यों में बर्जियों मस्कों एवं धार्यों के राज्य प्रमुख थे। बर्जनी कोसक बरत्य मयध जम्मा आदि राज्य सत्तात्मक थे। प्रचोद प्रमत्तित उदबन विम्बसार एव धविबाहून जमघ इन राज्यों के सम्राट थे। विष्णुधियों की राजधानी बैराली थी। इस संघ में विदेह, विष्णुधिवि सायिक बग्गी उग्र भोज ऐकाकृ और कौरव थे आठ कुछ सम्मिश्रित थे। यह पन राज्य मन्दिमाली एव सम्पन्न थे। कोई कोई गण अल्पन्त दुर्बल थे। राजनीतिक हकबलके राजधानी तक ही सीमित थीं। सभी गणों की सरकारें अपनी नैवेधिक नीति में विभय सतर्क थीं। बरराज की मयध याथा जाती पटमा में यह बात स्पष्ट हा जाती है।^३ सरकारों के पुत्रपुत्र विमान पर विधेय बल दिया जाता था। बामुसी कार्यों के लिए विध कम्पार्यों का उपयोग होता था। मयध राज की बुझनी एक ऐसी ही पुत्रपुत्र थी। मयध के महामान्य बर्षकार भी बैराली में पुत्रपुत्र प्राप्त करने के ही उद्देश्य से आए थे।^४ प्रमत्त

में भावों के बर्न, आदित्य राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और विधित्त जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्राधियों से छिपी हुई है जिसे सम्भवतः किसी इतिहासकार ने आज उपाकर नहीं देखा है (बैराली की नगरबधू प्रबन्धन) ।

१ बैराली की नगरबधू, पृ २८६।

२ बैराली की नगरबधू, पृ २९९ तथा ३२२ २३।

३ बैराली की नगरबधू, आचार्य बभुरतेन पृ ६१२ ६२०।

४ बैराली की नगरबधू, आचार्य बभुरतेन पृ ३०९ ३१६ तक।

उसका एक सफल मुत्तजर था। बीशाही का मुत्तजर विभाग भी सबस बा। जयराम मयब में मुत्तजर बन कर ही मया बा।^१

स्त्रियों के लिए ही उस काल में सभ्राट परस्पर भगड़ बैठते थे। बीशाही का महापुत्र एक स्त्री के लिए ही हुआ था। विभासिता एवं ऐत में आकंठ तक बूझे हुए सामन्त और राजा सुरा और मुन्दरी के अतिरिक्त कुछ सोचते भी न थे। सुन्दर स्त्रियों का मुख के अक्षर पर उपयोग होता था। कुम्हनी के कारण ही जम्पा का पतन हुआ था।^२ परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये राजा लोग अपनी पुत्री का विवाह निकटस्थ मरेस से कर वते थे किमसे मीची भाव बना रहता था।

प्रस्तुत उपस्थास में तरकाहीन राज्यों की व्यवस्था यणराज्यों की व्यवस्था एवं बुद्ध धार्मिक की व्यवस्था पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। तत्कालीन यणराज्यों की व्यवस्था आज से भिन्न थी। यणपति का स्वाम आज के स्पीकर के समान था। मत्तवान विभिन्न रंग की सभाकाओं के माध्यम से होता था। यण राज्यों की कार्य प्रवृत्ति पर भी उपस्थासकार ने विस्तार से प्रकाश डाला है। व्यवस्था परिपद् में प्रत्येक कुल का समान प्रतिनिधित्व था। प्रतिनिधियों की संख्या कुलों की संख्या के आधार पर निर्दिष्ट की जाती थी। इस व्यवस्था में बही व्यक्ति भाग से सफटा था जो बही का जम से नागरिक होता था। बाहर के व्यक्तियों को राज्य सेवाओं से बन्धित रखा जाता था।^३

सांस्कृतिक—

धार्माधिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ प्रस्तुत उपस्थास में तत्कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का चित्र भी बड़े ही सजीव है। उस काल के धार्मिक आन्दोलनों सांस्कृतिक मति विधियों के चित्रण के कारण ही प्रस्तुत उपस्थास ऐतिहासिक ज्ञात होता है। उस काल में आर्य धर्म विभासिता के पंक में हुआ हुआ था। शाहजनों ने राजाओं को एवं साधारण जनता को अपने आधीन रखने के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक विधान कर रखे थे। यह तप और व्रत की प्रथागत थी। यज्ञ का माध्यम बनाकर शाहजान अपनी

१ बीशाही की नगरवधू, आचार्य जगुरसेन पृ ६१५।

२ बीशाही की नगरवधू आचार्य जगुरसेन पृ ६१३-६२०।

३ बीशाही की नगरवधू आचार्य जगुरसेन, पृ २३९ से २४० तक।

४ बीशाही की नगरवधू आचार्य जगुरसेन पृ ६३-४१ तक।

वासनाओं को दायित्व करते थे। मांस एवं मदिरा का प्रचलन था। मशों के अक्सर पत्तियाँ हारा बास और दासियाँ विरक्ति की जाती थीं।^१ अतिवि सेना का बड़ा माहुरम्प था। आर्य धर्म अस्त व्यस्त हो रहा था। ब्राह्मण धर्म का ह्रास और बौद्ध एवं जैन धर्म का अन्वुदय हो रहा था। ब्राह्मण धर्म की निरंकुशता एवं स्वच्छन्दता के कारण उत्तर धर्म उनसे हथ रहने लगे थे। अतिक्रमण शोक बौद्ध एवं जैन धर्म की ओर आकर्षित होने लगे थे। सम्राट और धन कुबेर तो बौद्ध धर्म में दीक्षित हो ही रहे थे साथ ही साधारण जन भी उससे कम प्रभावित न थे।^२ काशी ऐसे आर्य संस्कृति के केन्द्र में भी बौद्ध धर्म तेजी से बढ़ रहा था। सारनाथ से ही भगवान् बुद्ध ने अपनी शिष्य परम्परा का प्रारम्भ किया था। उत्तर धर्म को सामने रखकर ब्राह्मण लोग फिठने ही अत्याचार कर रहे थे। आर्य अधिकार मर पर मद्यप आत्मसी, धमसी और अकर्मण्य हो गए थे। अथ वे या तो धीमे यज्ञाहम्बरों की हान्यास्पद विहम्बना में लगे थे या कोरे कल्पित ब्रह्मवाद में।^३ वैशाखी गणराज्य में प्रतिवर्ष उत्साह और उत्साह के साथ मनुष्य के उत्सव मनाने की परिपाटी थी।^४ उस समय बाबेट का भी प्रचलन था। 'नगरबन्धु' भी सामन्तपुत्रों के साथ बाबेट पर जाती थी।^५

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात् हम उस काष्ठ की सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत हो जाते हैं। उपन्यासकार का उद्देश्य भी यही था। उसने स्वयं लिखा है कि यह ठान ली कि इस उपन्यास में मैं एक तरह जहाँ मसीह से पूर्व दोषही छटी शताब्दी की सम्पूर्ण धर्मनीति और समाज नीति का रेखा चित्र ब्रीचू बही अपने अध्ययन और विचारों को भी प्रकट करता जाऊँ। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जैन बौद्ध, हिन्दू-साहित्य तथा संस्कृत-साहित्य के साथ वैदिक-साहित्य एवं विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करना पड़ा। अनेक अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं के लेख और

१ वैशाखी की नगरबन्धु, आचार्य बनुरसेन, पृ २८१-८७।

२ वैशाखी की नगरबन्धु, आचार्य बनुरसेन, पृ ११-१८ तक, ६८ से ७२ तक, १२८ से १३२ तक।

३ वैशाखी की नगरबन्धु, आचार्य बनुरसेन, पृ १७१, ४०१ से ४०९ तक।

४ वैशाखी की नगरबन्धु, आचार्य बनुरसेन पृ ४७१-४८०।

५ वैशाखी की नगरबन्धु, आचार्य बनुरसेन, पृ ४८०-४८६।

कर्मों पर महात्म्य का रंग मंडप खड़ा था। इस मंडप में दस हजार से भी अधिक दर्शन एक साथ सोमनाथ के पुण्य दर्शन कर सकते थे। 'मंडप के सामने मन्मीर गर्भगृह में सोमनाथ का बौद्धिक ज्योतिर्लिंग था। 'सोमनाथ का यह ज्योतिर्लिंग बाठ हाथ ऊँचा था। 'महात्म्य के गणनकुम्भी शिखर पर समुद्र की धार जो भयंकर रंग की ध्वजा फहराती थी वह दूर बेटों के यात्रियों का मन बराबर अपनी ओर खींच लेती थी। महात्म्य के शिखर के स्वर्ण कलश सूर्य की धूप में अनमिनत सूर्यो की मूर्ति चमकते थे। ' इसके अतिरिक्त बोधा गढ़^१ गंधावा दुर्ग^२ खम्मात^३ प्रभास पट्टन^४ गजनी^५ आदि के बर्षा भी विस्तार से प्राप्त होते हैं। सोमनाथ महात्म्य के बास-नाथ के भूमान का भी बर्षा उपन्यासकार ने बड़ा सजीव किया है।^६ इतना ही नहीं आचार्य अनुरसेन जी ने बृक्ष और पादपों तक का जीता जागता बर्षा प्रस्तुत किया है जिसे हम 'प्रकृति-बर्षा' में अल्प से लेंगे। गजगदी ने किस किस स्थान पर अपने बेटे बाले^७ कैसे-कैसे भोजे बनाए^८ कैसे मुठ प्रारम्भ किया^९ संकटे स्वर की बाबड़ी से किस प्रकार महामुठ ने काम उठामा एवं उछकी बनावट कैसे की^{१०} आदि का भी सजीव बर्षा उपन्यासकार ने यहाँ दिया है। 'रक्त की प्यास'^{११} 'हरप निर्मात्र वैवांगना'^{१२} 'सास पानी' आदि उपन्यासों में भी इसी प्रकार के भौतिक चित्रण प्राप्त होते हैं किन्तु इन उपन्यासों में वे सूक्ष्म हैं विस्तृत नहीं। 'वैवांगना' में प्राप्त 'संवापना' का बर्षा बड़ा सजीव और विस्तृत है।^{१३}

- १ सोमनाथ आचार्य अनुरसेन पृ २ से ४ तक।
- २ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ १०७।
- ३ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ ३८९-९१।
- ४ सोमनाथ आचार्य अनुरसेन पृ ४०० से ४०२।
- ५ सोमनाथ आचार्य अनुरसेन पृ २७४-२७५।
- ६ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ ९१।
- ७ सोमनाथ आचार्य अनुरसेन पृ ३ से ४ तक।
- ८ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ ३१९ से ३२२ तक।
- ९ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ ३२१ एवं ३६१-३६३ तक।
- १० सोमनाथ आचार्य अनुरसेन पृ ३६१।
- ११ सोमनाथ, आचार्य अनुरसेन पृ ३४२-३४३।
- १२ रक्त की प्यास पृ. ३८।
- १३ वैवांगना पृ २६-२७।
- १४ वैवांगना पृ १९।

पुस्तकों भी पढ़नी पड़ी। स्पष्ट है प्रस्तुत उपन्यास का निर्माण आताबरण एवं तत्कालीन समाज व्यवस्था के निरूपण के लिए ही हुआ है। उपर्युक्त विवेचन के पदबाध हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यासकार ने प्रस्तुत कथानक के माध्यम से तत्कालीन युग एवं समाज का अंजन तो किया ही है साथ ही उसने आत्मन्य धर्म के हास और बौद्ध एवं जैन धर्म के उत्पन्न होने और विकसित होना की परिस्थितियों का भी अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। किन्तु ही माध्यमों को उपन्यासकार ने केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत उपन्यास में समायोजित है।

आचार्य चतुरसेन जी के मध्य काल में सम्बन्धित उपन्यासों में देश काल का चित्रण —

इसमें हम ई० सन् १००० से १२०० ई तक के समय को रस सकते हैं। इस काल में सम्बन्धित आचार्य चतुरसेन जी के साथ उपन्यास हैं। सोमनाथ (दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी) रक्त की व्यास हृण-निमन्त्रण एवं पूर्वाहुति (सबास का ग्याह) (ग्यारहवीं शताब्दी) बेबागना दिना चिराया का गहर-बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी लाल पानी (पन्द्रहवीं शताब्दी)।

सस्तु वर्णन

कमजबूत इन सभी उपन्यासों में शैथिल्य चित्रण किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है। किसी में गढ़ किले मंदिर, महात्म्य आदि के विस्तृत वर्णन हैं तो किसी में नगर, नगर के आसपास के भूभाग, बाटिका बाजार, नदी पर्वत आदि के सांकेतिक वर्णन। 'सोमनाथ' नामक उपन्यास में सबसे अधिक चित्रण प्राप्त है। इसमें नगरों दुर्गों एवं महात्म्यों के वर्णन तो इतने सजीव हैं कि यदि कोई कुछ काल चित्रकार सोझा-सा भी प्रयास करे तो इनके आनुमानिक चित्र सरलता से बना सकता है। सोमनाथ महात्म्य का तो विस्तृत वर्णन पढ़कर पाठक प्रत्यक्ष ही वहाँ विचरण करने लगता है। महात्म्य में कौन-सा स्थान वहाँ पर या उसकी बनावट किस प्रकार की थी व्याप्तिविग का आकार प्रकार कसा या आदि का बड़ा व्योरेवार वर्णन इसमें प्राप्त होता है। ब्रह्मिण्य—महात्म्य के मध्य काली भागी भागी श्रम्यों पर हीरा मानिक नीलम आदि रत्नों की ऐसी पञ्चीपारी की गई थी कि उसकी घोमा देखने से मंत्र पचते नहीं थे। जगह-जगह साने चाँदी के पात्र स्तम्भों पर चढ़े थे। ऐसे देसी

इन उपन्यासों में युद्ध आदि के वर्णन भी उस युग के अनुरूप ही हैं। इन युद्धों का भी उत्कासीन युग के वातावरण के अनुसार उपन्यासकार ने सूक्ष्माति सूक्ष्म वर्णन किया है जिससे यह वर्णन भी वातावरण सृष्टि में सावक ही रूप में बाधक नहीं।

समाज वर्णन

आचार्य अनुरसेन जी के इन सभी उपन्यासों में उत्कासीन भारत की सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सफ़्त चित्रण प्राप्त होता है।

सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ—प्रस्तुत उपन्यासों में उत्कासीन सामाजिक परिस्थितियाँ पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित हुई हैं। उत्कासीन भारत की सामाजिक स्थिति के विषय में अल्मजहनी जो महामुब गजलबी के समय में भारत में आया था—ने लिखा है हिंदू लोग अनिमात्री हैं, वे विदेशियों को स्नेषण करते हैं और उनसे किसी प्रकार का सम्बंध नहीं रखते। यद्यपि वे एकेद्वारवादी हैं परन्तु युतिपूना सारे देश में प्रचलित है। बर्न-स्पतरबा के सम्बंध में यह लिखता है कि देश में भिन्न-भिन्न जातियाँ तो हैं परन्तु सब लोग एक ही छाहर या गाँव में रहते हैं। और परस्पर मिझते-झुलते भी हैं। बाल-विवाह की प्रथा है। विवाह बहुत ही माठा पिता ही करते हैं। दहेज की प्रथा है। एक बार विवाह हो जाने पर पति पत्नी को छोड़ नहीं सकता। विधवा विवाह नहीं है। विधवाएँ या तो अग्नि में जलकर मर जाती हैं या आत्मम पीबय्य ध्यतीत करती हैं। प्रायः राजबंस की स्त्रियाँ ही सही होती हैं।^१ आदि। अब हमें बोलना यह है कि क्या इन उपन्यासों में इसी प्रकार की सामाजिक स्थिति प्राप्त होती है? क्या वास्तव में आचार्य अनुरसेन जी ने अपने इन उपन्यासों में उस युग विशेष को प्रतिबिम्बित किया है? 'सोमनाथ' में तो अल्मजहनी द्वारा कथित सभी सामाजिक प्रवृत्तियाँ पूर्णरूपेण उमर कर आई हैं। इसमें उत्कासीन वातावरण में यत्र तत्र आधुनिक विचारवाच का भी उपन्यासकार ने समावेश किया है। किन्तु यह पूर्णरूपेण उत्कासीन वातावरण में लिपटी हुई है।

उस काल में बर्न की भाँति समाज में भी विप्लव प्रथा हुआ था। बीज वैन हीन घातक परस्पर मयातक संघर्षों कुरीतियों और संबन्धितियों में पड़े थे। बाह्यो ने बीजों और जीवनो को नष्टप्राय कर दिया था। हीनों और

१ भारतवर्ष का इतिहास—डा० ईश्वरीप्रसाद पृ १७७।

वैष्णवों की प्रबलता हो रही थी। और वे परस्पर उत्सह रहे थे।^१ धर्म उस काल में केवल ठकोरपा मात्र रह गया था। यद्यपि 'गय सर्वज्ञ' ऐसे कुछ धार्मिक महापुरुष भी थे।

छमासूत्र का भूत तत्कालीन समाज को घस चुका था।^२ देव स्वामी इसी छमासूत्र का शिकार होकर यवन बन गया था। विधवाओं की बुरा बितनीय थी। बास विवाह प्रचलित था। विधवा हो जाने के परचाण पुनः विवाह की प्रथा नहीं थी। यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णस्वामी ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति भी अपनी एवमात्र पुत्री सोमना के विधवा होनामे पर पुनः विवाह न कर सका।

साम्प्रतिक दृष्टिकोण से यह युग एक सम्पन्न युग था। परन्तु इस सम्पदा के भोक्ष्य देश के सब लोग न थे। केवल राजा बाह्यप और सेठ लोग ही उसे उपभोग करते थे। सेप सोपों की बुरा ब्रिथि दयनीय थी। सम्पत्ति के सबसे बड़े धाय के भोक्ष्य राजा लोगों के राजमहलों में बिलास पूर्ण बाहार बिहार के बद्मूत्र साबन उपस्थित रहते थे। उदाहरणस्वरूप हम मुर्शिदाबाद कुमार पाठ 'रक्त की प्यास' के भीमदेव और पृष्णीराज 'भुवनादिति' के पृष्णीराज आदि के राज महलों को ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त भी बनेकों बिलासी सामन्त भीरराजा लोग योग बिलास में तल्लीन थे। बास बासियों की फौज के बिना इनका काम नहीं चलता था। घरों में स्त्रियों की पल्लमें मरी रहती थीं। इनकी नैतिकता और बायित्व का कोई मापदण्ड न था। मूढ में भी इनका मापे ब्यम होता था। राजा लोगों के बाकसी और मद्य होने से साधारण जनता की बुरा कुराब थी। उसमें एकता न थी। बनेक पन्थ बनेक मत बनेक विचार, बनेक अग्रविश्वासों ने उनके मन में बर कर रक्ता था। जिन्हें हम सांस्कृतिक स्थिति में निबन्धनायें। हिन्दुओं के इस अरक्षित जीवन से लाभ उठाकर मुसलमान साबु फकीर सैकड़ों की संख्या

१ सोमनाथ पृ ७९ साथ ही देखिए हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड सम्पादक डा० बीरेन्द्र वर्मा एवं ज्योत्सना वर्मा पृ १९४०।

२ "-----पुत्रों और धर्मपत्नी का जीवन सेवा-धर्म के पालन में व्यतीत होता था ऊपर उठने के लिए उनको न तो कोई साधन प्राप्त थे। और न किसी और से प्रोत्साहन मिल सकता था।-----हिन्दी साहित्य द्वितीय भाग सम्पादक डा० बीरेन्द्र वर्मा एवं डा० ज्योत्सना वर्मा पृ ४२।

में सम्पूर्ण भारतीयों में फैलकर बस गये थे। वे देश के तीन दखिनों को बढ़ाकर मुसलमान बना रहे थे।^१

राजनीतिक परिस्थितियाँ—

भारत की राजनीतिक स्थिति अस्थिर बयनीय थी। सम्पूर्ण देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन सबको एक सूत्र में बाँधनेवाली कोई प्रबल शक्ति नहीं। राजपूतों के छोटे छोटे राज्य पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक फैले हुए थे। जामे बिन इतने परस्पर संग्राम होते रहते थे।^२ सबसे महत्वपूर्ण बात इस काल की राजनीतिक परिस्थिति में यह थी राजा सैब हिनू और मन्त्री जैन होले थे। इससे राज्य की अर्थ व्यवस्था जैनों के हाथों में होती थी। नागरिक सेठ साहूकार भी जैन होने से राज्य में राजा की अपेक्षा जैन मन्त्री का अधिक प्रभाव रहता था। 'रक्त की प्यास' में सैब राजा और जैन मन्त्री के संघर्ष का ही वर्णन है। परंतु यह बात गुजरात में ही की राजस्थान में नहीं। यथा गुजरात के राजा राजस्थान के भी अंशतः स्वामी तथा सम्बन्धी रिश्तेदार थे फिर भी राजस्थान-माघवा सिन्ध और गुजरात के राजाओं में सहयोग के स्थान पर युद्ध और कसह ही का बोसबासा रहता था। जिससे राजनीतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न थी। प्राचीन राजवंश चर्चर हो चुके थे। सामाजिक अन्धता राजकारियों में भी थी। नित्य तप युद्ध हुआ करते थे। वे युद्ध प्रायः बिना किसी उद्देश्य के निरर्थक विजय या परस्पर की हित्यों या कन्याहरण के लिए किए जाते थे। 'रक्त की प्यास' में भीमदेव और पृथ्वीराज का युद्ध केवल एक कन्या के लिए ही हुआ था। 'पूर्वाहिति' में पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता का हरण भी इसी बात का प्रमाण है।^३

'सोमनाथ पर जिस समय आक्रमण हुआ उस समय गुजरात की नदी पर चामुण्डराय ऐसा माघसी एवं अफीमची राजा था।'^४ किन्तु उस काल में

१ सोमनाथ आचार्य अतुररोन पृ. ४०।

२ रक्त की प्यास पृ १२५।

३ 'राजी का अत्युत्कर्ष अत्युत्कर्ष करना एक सामान्य सी बात थी और इस विषय को लेकर अत्युत्कर्ष युद्धों तक की नीबत पहुंच जाती थी। पृथ्वीराज और अजयदेव के संघर्ष का कारण संयोगिता ही थी।'
(हिन्दी साहित्य) द्वितीय भाग ४० धीरेन्द्र वर्मा एवं अजयदेव वर्मा-
सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पृ ४३।

४ सोमनाथ, आचार्य अतुररोन, पृ १३३ १३४।

पोशाकाया धर्मगर्जेदेव ऐसे प्रतापी राजा भी थे किंतु वास्तव में यह केवल ^{एवं} की विगारी मात्र थे। परस्पर संभ्रित न होने के कारण यह केवल मात्र युद्ध युद्ध में कट मरना ही जानते थे।

‘सोमनाथ’ घुट जाने के पश्चात् भी भारत की राजनीतिक स्थिति में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ था। इसके बाद ही पृथ्वीराज और भीमदेव के युद्ध हुए^१ और पृथ्वीराज बिना भागा-बीछा वेधे कन्नौज पर केवल एक स्त्री के लिए चढ़ गया। उसने संयोगिता का हरण तो कर लिया किंतु उसका बच जीव ही चुका था। इसी समय गोरी ने उस पर पुनः आक्रमण किया। इस समय पृथ्वीराज चौदह बरव की लबोझ कुसुम कसिका संयोगिता के मनुष्यपान में ही मरझोस था। परिणामात् वह पराजित होकर बंसी हुआ। दिल्ली का हिंदू राज समाप्त हो गया।^२

इसके पश्चात् भी भारत दैव सोठा ही रहा। सुल्तान बलाउद्दीन के समय भी हिंदू राजा संभ्रित न हो सके। देवगिरि के राजा की जब यह बिबा लाल बिबाया रहा था तो अम्य हिंदू राजा चुपचाप छिपे बैठे थे।^३

पंद्रहवीं शताब्दी में भी भारत की यही राजनीतिक दशा थी। कच्छ प्रदेश के छोटे-छोटे राजा जो परस्पर संभ्रंय थे लड़मिड़ रहे थे।^४ मुसलमान मुस्लामों की उनपर दृष्टि थी। उनको प्रसन्न करने के लिए हिंदू राजा अपनी पुत्रियों का बिबाह उनके साथ कर लेते थे।

सांस्कृतिक चित्रण—

आचार्य चतुरसेन जी के इन उपन्यासों में बिबेदकर सोमनाथ में सांस्कृतिक बिबाय तो बड़े ही सजीव हैं। वास्तव में महमूद का ‘सोमनाथ ममिदान’ राजनीतिक व वादिक महत्व का अधिक या इसी कारण से उसने गुजरात पर बड़ाई तो बबरव की और सोमनाथ को भंग भी किया फिर भी उसने अपनी सत्ता भारत में स्थापित करने की बेय्ता नहीं की। वास्तव में महमूद एक यमाव घुटेरा था। जिस समय उसने ‘सोमनाथ’ देवालय को

१ ‘रक्त की प्यास’ में इसी युद्ध का वर्णन उपन्यासकार ने किया है।

२ ‘पुत्रदृष्टि’ में इसी घटनाओं को बिस्तार से उपन्यासकार ने लिया है।

३ ‘बिबा बिबाय का पहर’ में इसी काल का वर्णन है।

४ ‘सात पानी’ नामक उपन्यास से इस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

के बावजूद अमान्यमानता कट्टरता बाहिर प्रर कर चुके थे।
 सोमनाथ वा १? अमता अंश-विस्वासी की शिकार भी
 तास बाहिर पर अमता का अनाथ विस्वास था। निपुर
 सुम्ब ५ -
 में धर्म के नाम पर कितने अमान्यतापूर्ण कृत्य होते थे।^१
 सोमनाथी घूर्त-साधुओं का वाङ्मय था। सोमनाथ का पर्यटन भी वही पाकड़ी
 बेचरोही साधुओं का कारण सम्भव हो सका था।^२ उस काल में निपुर सुम्बरी
 एवं घुर्गा की श्रुतियों पर, कुछे नाम नरबकि ही शस्त्री भी और कापाकिन पर
 सुम्बरी की भाषा पढ़ने प्रभा करते थे।^३ ज्ञानार्थों के सुसाध्य अंधकार थे।
 पक्ष एवं बेच पाठ का अधिकार केवल उन तक ही सीमित था।

१. अमता की शक्ति उत्सवों एवं धार्मिक कृत्यों में अधिक थी। 'गङ्गा' के
 पर्व बाहिर के बर्चन तो बड़े ही सजीव हैं।^४ बौद्ध धर्म के धार्मिक उत्सवों के
 भी कुछ बर्चन 'वेदांगुता' में प्राप्त हैं। बास्तव में इस काल में हिन्दू धर्म में
 विप्लव मचा हुआ था। बौद्ध, जैन ग्रैव, जाक्य परस्पर श्रुतियों श्रुतियों और
 अम्य विस्वासी में फट्टे के अन्तर्गत धर्म की दृष्टि अनाथ हो रही थी।^५

इस विप्लव में, पश्चात्-काल, इस विप्लव-पर पहुँचते हैं कि आचार्य
 चतुरसेन भी, वे अपने, सम्प्रकाशित उपन्यासों में भी, तत्कालीन राजनीतिक
 एवं-सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं का बड़ा ही सजीव, एवं अनाथ अग्रगण्य प्रस्तुत किया
 है। बास्तव में सत्य तो यह है कि इन उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन भी ने
 तत्कालीन इतिहास को बुझाया ही नहीं है वरन् अनाथ भी है। इसी कारण
 वे इनके विप्लव सम्प्रकाश होने के साथ साथ तत्परक भी है।

१. "राजपूत काल का धार्मिक संघर्ष विप्लव विचारों से है। इसकी
 अन्तर्गत में, एक अर्थ में, यह है कि भारत में अनाथीत मत है।
 इस समय के समस्त आचार्य में जैसे विप्लवता की विप्लवता बौद्ध नहीं थी।
 द्वितीय साहित्य द्वितीय खंड संपादक डा० बीरेन्द्र वर्मा एवं अनेकर वर्मा
 पृ ३०-३१।

२. सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ २४ से ३३ तक।
 ३. सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ ३४२ से ३४६।
 ४. सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ २५, २९३ से २९४।
 ५. सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ ४१३ ४१४।
 ६. सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ ७९ साथ ही देखिए द्वितीय साहित्य द्वितीय
 खंड डा० बीरेन्द्र वर्मा एवं डा० अनेकर वर्मा पृ ३९ ४१।

मुगलकालीन—सम्प्रदासीन राजपूती, घोष बैयम, विभासिदा एवं अन्वयपन के विषय के साथ-साथ आचार्य चतुरसेन जी के मुगल बैयम एवं विभासिदा का भी बड़ा ही समायं विज्ञान प्रस्तुत किया है। आचार्य चतुरसेन जी के मुगलकालीन बैयम दो उपन्यास हैं। १ आत्ममगीर २ सहायि की बट्टाएँ। इनमें १६ वीं एवं १७ वीं शताब्दी के भारत की राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक हलचलों का अत्यन्त सजीव वर्णन है।

बस्तु वर्धन—मुगलकालीन वास्तुकला संसार प्रसिद्ध है। उनके बनवाये हुए महलों मकबरों किलों मठजिहों तथा अन्य इमारतों से उनकी असाधारण प्रतिभा तथा सुशक्ति का पता लगता है। मुगल वास्तुकला में हिन्दू और मुसलमानी कलाओं का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। आचार्य चतुरसेन जी के 'आत्ममगीर' नामक उपन्यास में मुगलकालीन वास्तुकला की स्पष्ट शकल दी जा पड़ेगी है। वहीं भी बस्तु वर्धन का अवसर आया है आचार्य चतुरसेन जी के विस्तार से किया है। 'आत्ममगीर' नामक उपन्यास के 'आम बाघ का दरबार' 'ठंठे ताऊस' 'दिल्ली की आठ किलों' आसमाह आदि के वर्णनों को एवं 'विभिन्न मुद्रों के रेखा चित्रों को हम बस्तु वर्धन में रख सकते हैं। 'सहायि की बट्टाओं' में बस्तु वर्धनों की स्पष्टता है किन्तु ही भी कुछ वर्धन आ ही गए हैं। इनमें हम मुद्रों के वर्धनों को भी सकते हैं।

'आत्ममगीर' में से बस्तु वर्धन का एक उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

किन्ने के भीतर एक से बढ़कर एक घोमनीय काम महक के। उनकी पंक्तियों का बबक प्रतिबिम्ब अन्तमा की निम्न व्याख्या में अमुता के स्वप्न कल में असाधारण घोषा विस्तार करता था। इन महलों में जो मुख्य बस्तु भी वह हीबाने आम की इमारत थी। जिस पर देखने वाले की सबसे पहले दृष्टि पड़ेगी थी। इसके बाद ही दीबाने घास था जिसमें बारवाह जोस बास बरबारियों से महत्त्वपूर्ण बिंदवों पर गुण्य मन्त्रणा करता था। इसके बाद एक से एक बढ़कर गुम्बजों वाले महलों का ताता बजा जाता था। ये सब बैयम महल कहाते थे।

...बैयम महल की अभाषट ऊपर से संयमत्तर की थी। पर भीतर उसकी छन

१ आत्ममगीर, आचार्य चतुरसेन, पृ ३४।

२ आत्ममगीर, आचार्य चतुरसेन, पृ ४७।

३ आत्ममगीर, आचार्य चतुरसेन, पृ ३२ ३३।

४ आत्ममगीर, आचार्य चतुरसेन, पृ ३७-३९।

पर सोने का निहायत मूल्यवान् कारीगरी का कार्य किया गया। लत्तों और रीशारों पर सन्धे 'बाबुहार' की पञ्चीकारी इतनी मज्ज और कलापूर्ण थी कि हम उसे उस समय की स्वापर्येकता का एक आदर्श नमूना कह सकते हैं।

इसी प्रकार क्रिस्तीनी ही अन्य वस्तुओं के वर्णन भी प्रस्तुत उपस्थाप में प्राप्त होते हैं जिनमें हम बिजधाका, लकड़े काजस, कास और बास बरबार, चासपाह, बादि के वर्णनों को ले सकते हैं।

समाज वर्णन

सामाजिक परिस्थिति—इस काल की सामाजिक स्थिति विशेष उत्तम न थी। एक ओर मुगल बाबुहार का बरबार ऐस्वर्ग, ज्ञान शीकल, अर्थ, भोग, विलास, का आगार था।^१ ठो दूसरी ओर जन साधारण दुखी था।^२ हिन्दू मुसलमानों का आपसी श्रेयनाश बुरा न हुआ था। शाहजहाँ कट्टर सुभी मुसलमान था। स्वयं कट्टर मुसलमान होने के कारण वह दूसरे धर्मों का आबर नहीं करता था।^३ धर्म का समाज पर पूर्ण प्रभाव था। राज्य की नीति भी धर्म से प्रभावान्वित होती थी। बाबुहार और उसके बरबारी विलासी हो गए थे। उनके हरमों में सहस्रों स्त्रियों के शेरबंद भरे रहते थे। केवल बाबुहार के हरम में ही दो हजार से ऊपर स्त्रियाँ थीं। उसमें बेगमात के अतिरिक्त पासवानियाँ, कंचनियाँ, मुगलानियाँ और उस्तानियाँ रहती थीं। हरम का प्रबन्ध अत्यन्त सुव्यवस्थित था। वहीं राज्य के सिध-सिध शासन-विचारों का अनुशासन होता था वैसे ही हरम का भी होता था। मुगल महिषाओं का समय आनन्द में घराब संगीत और फूलों की महक में व्यतीत होता था। हरम के निवासी रात-दिन शेर के करीबों, बिन-बिन कपड़ों की कमाई से निपटूटा पूर्णक

१ आत्मगीर-पृष्ठ ३२, ३३।

२ आत्मगीर-पृष्ठ ३३।

३ आत्मगीर-पृष्ठ ४-७।

४ आत्मगीर-पृष्ठ ३।

५ आत्मगीर-पृष्ठ ३७-३८।

६ आत्मगीर-आचार्य चतुरसेन पृष्ठ ३४, ३९ तक कुछ इसी प्रकार के वर्णन निम्न इतिहास ग्रंथों में भी प्राप्त भारत का मुगल इतिहास-कृपाकसिंह नारंग-पृष्ठ ३२८ भारत का इतिहास डा० ईश्वरी प्रसाद पृष्ठ ४३४।

७ आत्मगीर-पृ ३९, ३९।

८ आत्मगीर-पृ ३९, ३९।

उदाहे मन को पानी की तरह बहाते रहते थे।^१ सम्पूर्ण साम्राज्य में स्वेच्छा-
 चाहियार की सुधी बोक रही थी। मदिरापान का आधिक्य था। हरम की स्त्रियाँ
 तक मदिरापान की अभ्यस्त हो गई थीं।^२ शाहजहाँ एक कामुक बादशाह था।
 इसके राज्य में किसी सुन्दर स्त्री का सनीसब सदैव संकट में रहता था। बेगम
 महल का चाही कर्षा सामाना एक करोड़ रुपए था। इससे बड़े-बड़े कर्ष तो
 प्रति प्रति के इन और गुराब इन्ध में होते थे। जिनकी सदैव ही महल में नदी
 बहती थी। पानों की मर भी बड़ी कर्षीमी थी। इनमें सोदियों का बूता काम
 में लाया जाता था। एक-एक बेगम हजारों रुपए राज पान का ही कर्ष करती
 थी।^३ बेगमान और शाहजादियों की पोशाक इन में सजबोर रहती थी। वे प्रति
 दिन कई-कई पोशाकें बदलती थीं।^४

यद्यपि शाहजहाँ के हरम में हजारों बेगमात बाबियाँ और कंबनियाँ थी
 फिर भी उसे उन पर संतोष न था। प्रत्येक वर्ष शिराज के तीर पर साम्राज्य
 भर के सुबेदारों को एक नियत ताबाद में रंगमहल क लिए सुन्दर सुकुमारियों
 बजनी पड़ती थीं। इतने पर भी बादशाह के अनूचित सम्बन्ध अनेक रईस और
 उमरा की पत्नियों से थे जो मुप्त नहीं थे। प्रकट में ये रईस और उमरा बादशाह
 क खिलाफ कुछ नहीं कर पाते थे। पर भीतर ही भीतर वे उससे जालते थे।^५

१ आत्मवीर-पृ ३४ ३५।

भारतवर्ष का इतिहास पृ ४३४ ३५ पर प्राप्त कर्षन से आचार्य चतुरसेन जी
 के कथन की पुष्टि हो जाती है।

२ आत्मवीर पृ ३८ ३९ आचार्य चतुरसेन जी की पुष्टि के लिए निम्न उद्धरण
 पर्याप्त होगा ".....Excessive addiction to wine and
 women was a very common vice among the aris-
 tocrats We are told by Abul Fazal that the
 Emperor had a seraglis of 5000 women supervised
 by a separate staff of Female Officers....." An
 Advanced History of India by R. C Majumdar
 (Part II)

H. C. Ray Chaudhari etc, page 566.

३ आत्मवीर आचार्य चतुरसेन पृ ३९ ४०।

४ आत्मवीर आचार्य चतुरसेन पृ ४१ साथ ही देखिए An Advanced
 History of India part II page 566

५ आत्मवीर आचार्य चतुरसेन पृ ४२।

इतना ही नहीं अपनी बड़ी बड़ी कामछिप्ता की पूर्ति के लिए दाबदाह ने अपने रंगमहल में मीना बाजार की बुनियाद डाली थी। यह मेका बाठ दिन तक रहता था। इसमें स्त्रियों को छोड़कर और किसी का प्रवेश निषिद्ध था। मीना और ऊँच सुमी जाति की स्त्रियाँ अपना अपना मास बेचने के बहाने जातीं और मास की बाड़ में अपने आपको ऊँचे से ऊँचे मूस पर बाबसाह तथा घाहबादों के हाथ बेचती थीं। इन्हीं सब कारनों से जन साधारण की बसा मित्यप्रति दयनीय होती जा रही थी। शाहजहाँ द्वारा रोहमबाघ बहादुरा जादि के चरित्र को सामने रखकर उपन्यासकार ने एतकालीन नाटावरण को प्रत्यक्ष करने का प्रफल प्रयत्न किया है।

औरंगजेब के काल में भोग विहास की भाषा कम हो गई थी किन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण समाज की बसा और भी दयनीय हो गई थी। उसके हिन्दू विरोधी कार्यों से हिन्दू समाज में अज्ञानि व्याप्त हो गई थी। अपने राज्य के पहले ही वर्ष में उसने नए मन्दिरों के निर्माण का निषेध कर दिया था। इतना ही नहीं उसने अनेक मन्दिरों को भ्रष्ट किया, नष्ट किया और उनके स्थानों पर मस्जिदें बनवाईं। उसने मधुरा शहर का नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया। और साम्राज्य के सब सुबों परसनों शहरों और महत्वपूर्ण स्थानों में जनता के सवाचार की बेसनास करने के लिये मोझातबखिब नियुक्त किये जिनका वास्तविक काम था हिन्दुओं के तीर्थों को विध्वंस करना। उन्होंने हिन्दुओं पर अजिया जमाया। स्त्रियों १४ वर्ष के बच्चों और गुजामों को ही इससे छूट निकली थी। इससे बचने के लिये बहुत से हिन्दू-मुसलमान हो गये। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं से विधि कर लिया जाता था। और मुसलमानों से नहीं।^१ उसने हिन्दुओं के मेकों को भी रोक दिया और त्योहारों पर भी रोक टोक लगाई।

१ सहायि की बहाने पृ नं १४०-१४१।

इस विषय में प्रोफेसर एस० आर० शर्मा का कथन उल्लेखनीय है 'हिन्दुओं को कष्ट देना औरंगजेब के राज्य की सबसे महत्वपूर्ण नीतिपता थी। यदि वह हिन्दुओं पर इतने अत्याचार न करता तो उसके कट्टर सुधारवादी होने के बावजूद भी उसके शासन का काम कुलक्षण और अपमानित होने के स्थान पर अत्यन्त शासक होता'

Mughal Empire in India Part II page 149

साथ ही देखिए भारत का मुगल इतिहास ३४३ ३४६

भारतवर्ष का इतिहास पृ ३८२

तथा भी मे इसी कारण से श्रीरंगबेब का विरोध किया था तन्मूर्ति उसे एक पत्र भी लिखा कर के विरोध में लिखा था ।^१

एक और भोग विनास की माया बढ़ रही थी । धर्म पर कुठाराघात हो रहा था । भाए विन निरव नये मुज होते रहते थे दूसरी ओर किसानों की दसा बेगहरी ना रही थी । बड़े बड़े भूस्वाम्य पर्वतों और रेतीले मैदानों के रूप में पड़े थे । बाबाही कम थी । बेटी के ठरीक रही थ । फिर भी बेटी के योग्य भूमि ना बड़ा नाम हाकिमों के अत्याचारों तथा किसानों की दुईसा के कारण उजड़ा रहा था । काबोंकरोड़ों किसान असहाय थे जब वे निर्वसी और निरकृष हाकिमों की बहरत को पूरा नहीं कर सकते थे तब उन्हें एक प्रकार से लूट लिया जाता था । उनकी दाह फर्माह सुनने बाबा कोई न था । अंबेरमदी यहाँ तक बढ़ी थी कि इनकी मिजी बहरत की बीजें भी छीन ली जाती थी तथा इनके बाक-बच्चों को बीड़ी मुताम बना लिया जाता था । वे बेचारे घर घर छोड़ सहूर में भाग जाते बहाँ सिपाही, मिस्ती साईस डेट बासे आकर और बिबमतगार बनकर नेट पाकते थे ।^२

आर्थिक स्थिति —

पाहबहाँ के काल में राज्य की आर्थिक स्थिति उलम थी । बापघाह ने अपने राज्यकाल के आखीर साक बिना कड़ाई-मिड़ाई किए बिठाए थे । इससे वे अस्वाम बीकृत उसके सजाने में इकट्ठी हो गई थी । उसके सजाने में बड़े-बड़े कीमती बबाहयत कंकड़ पत्थर की तरह डेर के डेर पड़े रहते थे ।^३ इस साम्राज्य

१ सहायि की अद्बानें पृ १४२ ४३

२ आत्ममयीर पृ ३१ ३२ साथ ही बैबिये बन्धियर का लेख है कि किसी महापारी के कारण नहीं बरतु राज्य की अडोरता के कारण ही किसानों की संख्या में कमी हो गई थी । देहातों में धरमपूरों को तथा बेटी की अवमति के कारण अविज्ञता फैल रही थी । गरीब किसान जब निर्वनता के कारण, जब लपान नहीं वे सकते थे तब उनके लड़के छीन लिए जाती थे और मुताम बनाकर बेच दिये जाते थे । लूच के समय बहनों के सिपाही, बिना किसी भय के, किसानों की फसल को रौबते बनते थे । भारतवर्ष का इतिहास ३० ईश्वरीप्रसाद पृ ३८० ।

तथा भारत का मुयक इतिहास पृ ३६६ ६७ ।

३ आत्ममयीर आचार्य अतुरसेन पृ ४७ ।

की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सोना चाँदी संसार भर में बूमनाम कर जब भारतवर्ष में पहुँचता था तो यहीं खप जाता था।^१ साहजहाँ के काक तक मुगल बादशाहों का यह नियम रहा था कि जब कोई जमीर उमरा मर जाता था तो उसकी सब सम्पत्ति छाही खजाने में दाखिल कर ली जाती थी। इस सब से अटूट धन वीरक्त छाही खजाने में जाती रहती थी।^२ साहजहाँ ने अपने राज्य काल में बड़े-बड़े खर्चिले काम भी किए थे। अपने राजस्व के प्रारम्भिक बीस वर्षों में साहजहाँ ने पान तथा पुरस्कार में साढ़े नौ करोड़ की खर्चें कीं। आगरा दिल्ली लाहौर, काबुल काश्मीर और कम्हार तथा अजमेर की छाही इमारतों और किलों की तैयारी में अथवा हीन करोड़ खर्चा किया था।^३

किन्तु इतना होने पर भी भारत की सार्वजनिक साम्प्रतिक अवस्था अच्छी न थी। देश का विस्तार बहुत था और उस पर एक छत्र शासन के साधन उपलब्ध न थे। किसानों एवं जन साधारण की आर्थिक स्थिति हमनीय थी।^४

'सह्यात्रि की कट्टरों' के काल में भी जन साधारण की आर्थिक स्थिति विशेष उत्तम न थी। औरंगजेब के खजाने का एक बहुत बड़ा भाग कुठों में व्यय हो रहा था। उसकी वारिष्क कट्टरता के फलस्वरूप हिन्दुओं की दशा और नी हमनीय हो गई थी। उसने हिन्दुओं पर जजिया सपा दिया। जिसके प्रत्यक्ष फल थे हुए सरकार की आय बढ़ गई और नए मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होने लगी। बहुत से स्वतंत्रों में ६ मास के अन्तर ही अन्तर सरकारी खजाने की आय चौगुनी हो गई थी। किन्तु जजिया का बोझ पड़ने से हिन्दू व्यापारी सहरों को छोड़कर मानने लगे क्योंकि सहरों में ही बसूकी का बोझ था। इससे व्यापार थोड़े ही दिनों में जीपट हो गया। छावनियों में विशेष विक्रम होने लगी। हिन्दू

१ आत्मगीर आचार्य अनुरसेन पृ ४६।

साथ ही देखिए An Advanced History of India Part II
By R. C. Majumdar—H. C. Ray Chaudhari &
Datta Page 567 & 570

२ आत्मगीर आचार्य अनुरसेन पृ ४८।

३ आत्मगीर आचार्य अनुरसेन पृ ४९।

४ आत्मगीर पृ ५१ ५२।

साथ ही देखिये An Advanced History of India Part II
By R. C. Majumdar—H. C. Ray Chaudhari and
Datta Page 576-77

व्यापारियों के भाग जाने से फौजों को अन्न मिळता भी कठिन हो गया था।^१ निरन्तर सैन्य कार्यवाहियों के कारण भारत के अधिकांश प्रदेशों में व्यापार क्रियात्मक रूप से सर्वथा नष्ट झट्ट हो गया था। दक्षिण प्रदेश की बसा और भी बरबाद थी। कोई व्यापारी इस प्रदेश में जाने का साहस नहीं कर सकता था। कूट ससोट का बोलबाला था। प्राचीन उद्योग कृषि आदि तो समाप्तप्राय ही थे। व्यापार और कृषि की इस अव्यवस्था ने देश को धार्मिक दृष्टि से कर्नाल बना दिया था।^२

राजनीतिक परिस्थितियाँ—

साहजहाँ के समय में मुगलों के तेज और वैभव का सूर्य मध्याह्न को पहुँच चुका था। किन्तु बाबरसाह इतना शैभवशाली होने पर भी देश में वैर था। सिर्फ कठोड़ों हिन्दू ही नहीं क्षिया मुसलमान भी जो उसके दरबार में जूँ-जूँने पक्षों पर वे उससे नातिक्रिये रखते थे। इसके अतिरिक्त उसके राज्य सरहद पर और भीतर भी अनेक राजा महाराजा सरदार ऐसे थे जो सदा उसके विरोधी बने रहते थे। कुछ नाम मात्र का कर बहुत दबाने से बेटे कुछ बिल्कुल ही नहीं देते थे। कुछ ऐसे भी थे जो उस्ता कर लेते थे। बाबरसाह को सर्वत्र युद्ध के लिए तत्पर रहना पड़ता था उसे शांतिशास में भी बहुत भारी सेना रखनी पड़ती थी। बाबरसाह की इस भारी नरकम सेना पर यद्यपि धाही खजाने से अपार धन व्यय होता था पर उसकी व्यवस्था बहुत ही सराब थी। बाबरसाह के बस सेना बिल्कुल थी ही नहीं और समुद्र तनों की ओर से यह सोने और हीरों से भर हुआ साम्राज्य सर्वथा अरक्षित था।^३ तत्कालीन स्थिति को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुगल राजनीति शोषपूर्ण और शोचनी थी। सेना अव्यवस्थित और अक्षम थी। जकसेना थी ही नहीं। सम्पूर्ण साम्राज्य में निरन्तर कहीं न कहीं विद्रोह होते ही रहते थे। नदिमा और बाबरसाह सब विद्रोहियों के लिए सुखे थे।^४

१ सहायि की बहामें पृ १४४।

साय ही बैलिये An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar—H. C. Ray Chaudhari & Datta Page 576 & 577

२ सहायि की बहामें पृ १४३ ४४।

साय ही बैलिये भारत का मुगल इतिहास पृ ३६६ ३७।

३ आलमगीर आचार्य बनुरसेन पृ २२ २३।

४ आलमगीर आचार्य बनुरसेन पृ २३।

वास्तव में मुगल शासन सैनिक शासन था। प्रबंध बीबानी फौजदारी एवं सैन्य व्यवस्था सब जगह थी। राजधानी से सुदूर प्रांतों के सम्बंध बिभिन थे। समाचार बेर से आते जाते थे। मार्ग की असुविधाएँ थी। एक केन्द्र में बैठकर शासन नहीं किया जा सकता था। इस कारण सुदूर प्रांतों में स्थित उच्चा-काशी शाहजाहे स्वतंत्र बादशाह ही बन बैठे थे। कूटकार, अत्याचार से उन्होंने अधिक से अधिक भग संग्रह कर लिया था और अपनी प्रबल स्वतंत्र सेना बना ली थी। वे अपने प्रांतों की आमदनी को स्वेच्छा से खर्च करते थे। कोई भी इस विषय में उनसे पूछने बाधा न था। इससे उनकी शक्तियाँ बहुत बढ़ गई थीं।^१ शाहजहाँ के काल होते ही उत्तराधिकार विषयक को कुछ हुए प वह इसी अतिपूर्ण राजनीति के परिणाम थे।^२

मुगलकाल में साम्राज्य की सारी व्यवस्था और राजनीति में मुगल हरम का हाथ रहता। शाही हरम एक ऐसा मोरबन्दना था कि वहाँ बेसुमार उस्ती सौबी बार्ते अंधेरे में होडी रहती थीं। शाहजहाँ के राज्यकाल में उसकी बड़ी बेटी जहाँबारा की तूती बोलती थी। स्वयं बादशाह और बारा उसकी मुठठी में थे।^३ शाहजहाँ के बार्ते पुत्रों के जासूस बरवार और हरम में घुसे बैठे थे।^४

१ आत्मपीर आचार्य अतुरसेन पृ ३३।

साथ ही देखिए An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar—H. C Ray Chaudhari and Datta. Page 564

२ आत्मपीर पृ २२७ के पश्चात् के पृष्ठों में इसी बृहस्पति का वर्णन है।

साथ ही देखिए औरंगजेब नामा प्रथम भाग खंड ३ पृ ३३ बारा शिकोह का लड़ना और मायना पृ ३६ ३८ शाहजुमा से लड़ाई पृ ३९ ४०। (बारा शिकोह का पीछा)

An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar—H. C Ray Chaudhari and Datta. Page 481 to 487

इससे तुलना करने पर आचार्य अतुरसेन की के वर्णनों की सत्यता प्रमाचित हो जाती है।

३ आत्मपीर पृ ३४।

४ आत्मपीर पृ ३४।

साहजहाँ की दूसरी पुत्री रोसममारा हरम में औरंगजेब की वासुद थी।^१ साम्राज्य के भीतर बाहर सर्वत्र अव्यभिच पद्ममत्र चल रहे थे। तो भी कामुक साहजहाँ अपने शोषविलास में तल्लीन था। वह पदमत्रों का जानकर भी चुप्पी साध जाता था। कारण वे पदमत्र उसी की संतानों द्वारा बलासे जा रहे थे। मन्त में यह पद्ममत्र ही मुगल साम्राज्य के पतन और विनाश का कारण सिद्ध हुए।^२

'सह्याद्रि की बट्टानों' के काल सन् (१६२९ से १६८०) में भारत की राजनीतिक स्थिति और भी दयनीय हो चुकी थी। औरंगजेब अपने 'भाताओं' के रक्त से रंगे सिंहासन पर बैठ चुका था किन्तु उसकी कट्टर राजनीति ने सम्पूर्ण देश में एक तहलका मचा दिया था। उसके हिन्दू विरोधी कार्यों ने उसके कितने ही शत्रु उत्पन्न कर दिये थे। मराठे राजपूत सिख जाट आदि सभी हिन्दुओं की वीर जातियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। परिणामस्वरूप मुगल राज्य दुर्बल हो गया था।^३

'सह्याद्रि की बट्टानों' में औरंगजेब की दक्षिण नियमक नीति स्पष्ट जगरी हुई चीख पड़ती है। उपन्यासकार ने स्वयं इस विषय में लिखा है 'महाराष्ट्र का उत्थान ऐसी उधता से प्रबल अग्निशिखर के समान हुआ कि उसने मुगल साम्राज्य को भस्म ही कर दिया। वास्तव में सह्याद्रि की यह शक्ति शताब्दियों से महारष्ट्र में बसी हुई थी। मुगल साम्राज्य पर सिखों के राजपूतों के बुन्देलों के जाटों के और दूसरी सत्ताओं के जो बलके कने थे ता मुगल साम्राज्य को बेबल दिखाकर ही रहे गए, किन्तु सह्याद्रि की ज्वालना ने मुगल तत्त्व को भस्म ही कर दिया।^४ दक्षिण में बीजापुर और मोलकुम्बा नाम की दो छोटी रियासतें थी। विवाही ने दक्षिण के इन राज्यों से मित्रता का संयोजन करके मुगल साम्राज्य

१ मालमगीर पृ १०७-११०।

२ महाराष्ट्र उन्नतक बुदेसा डा० मगवानदास गुप्त पृ २३ से २९।

३ An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar, H. C. Ray Chaudhari and Datta Page 491 to 508

४ सह्याद्रि की बट्टानों पृ ४२-४९।

प्रमाण के लिए देखिए An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar—H. C. Ray Chaudhari and Datta Page 504 to 507 & 510 to 511

की दक्षिणी सीमाओं पर आघात करना आरम्भ किया और उच्चर मुगल साम्राज्य पराठों से बरकर बीजापुर और गोलकुण्डा के सामने मैत्री का हाथ फैलाने को बाध्य हुआ। मुगलों के भय से गोलकुण्डा का सुल्तान भी दिवाजी से बा निगा, परन्तु बीजापुर ने संविह के बातावरण में दिवाजी की मित्रता स्वीकार की। किन्तु यह मित्रता सीध ही समाप्त हो गई थी क्योंकि दिवाजी ने उसके किञ्चों और प्रवेष्टों को हक़्त कर लिया था।^१ बीजापुर की बसा भित्तप्रति निराशापूर्ण होती जा रही थी। आदिलशाह द्वितीय सत्त्व पीठे-पीठे मर गया और नाबालिग सुल्तान सिकन्दर के गद्दी पर बैठने पर बजारत की महत्तव हथियाने को परस्पर झगड़े होने लगे और शासन एक भारी उममगा गया। इस अवसर का दिवाजी ने पूर्ण लाभ उठया। उन्होंने आदिलशाही संभवियों से समझौता कर लिया अपनी पूर्ण शक्ति से वे मुगल साम्राज्य के विरोध में जा डटे।^२

सांस्कृतिक स्थिति—

शाहजहाँ और औरंगजेब दोनों ने ही अपने राज्यकाल में हिन्दू धर्म को कुचकने की पूर्ण चेष्टा की थी। किन्तु वो भी हिन्दुओं में एक न एक धार्मिक महापुरुष सदैव ही रहा था।

मुसलमान फकीरों की शाहजहाँ के काल में सब अवह बड़ी आभयगत होती थी। इन फकीरों में थोड़े से सक्ने फकीर होते थे अधिकतर मुस्टंबे धूर्त ही होते थे। औरंगजेब ने अपने शासन काल में इन धूर्त फकीरों की सम्पूर्ण प्रमा पूंजी बाकाकी से हस्तगत कर ली।^३

औरंगजेब के काल में हिन्दुओं के त्योहार भी फीके पड़ गए थे। उसने होसी के त्योहार पर बाजारों में यह शीत याने बंद करवा दिये थे। इस अवसर

१ सहायि की चट्टानें पृ ४४ ४३।

प्रमाण के लिये देखिए An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar - H. C. Ray Chaudhari and Datta Page 512 to 517

२ सहायि की चट्टानें पृ ४४।

प्रमाण के लिये देखिए An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar - H. C. Ray Chaudhari and Datta. Page 514 to 516

३ मालमवीर भाषार्य अनुरोतन पृ १८६ ८७।

पर हुस्नूबाजी करने वालों को बंद दिया जाता था। राज्य के हिंदू ज्योतिषियों को पञ्चमुठ कर दिया गया था, किन्तु मुसलमान ज्योतिषियों को अपने पन्ने पर बाजीन रख दिया गया था। सती प्रथा बंद कर दी गई थी। इतना ही नहीं मुहर्रम के जसूस तथा ताजिये गिकासना भी बंद करवा दिया गया था।^१

सह्याद्रि की चट्टानों में महाराष्ट्र की सामिक स्थिति पर बख्शा प्रकाश डाला गया है। महाराष्ट्रीय जाति भावों और द्रविड़ों के मिश्रण से उत्पन्न हुई थी इसलिए उसके खून में भावों की सामाजिकता और द्रविड़ों की उर्ध्वता भर कर गई थी। महाराष्ट्रियों के सामिक विचारों पर भी सादसी का बहर था। उत्तर भारत के हिंदू जात पंग के बन्धन में फँसे ये धर्म पर बाह्यी की ठकेदारों की देश की रक्षा करना केवल धर्मियों का काम समझा जाता था परन्तु महाराष्ट्र में ऐसा न था। वहाँ एक राष्ट्रधर्म राष्ट्रीय एकता के बीच पनप रहा था जिस भाये धर्म और नीति के सुधारक जनों ने पल्पवित किया। उस युग के महाराष्ट्रीय मुखारकों में ज्ञानेश्वर चोददेव, निरुति मुक्ताबाई, तुकाराम, रामदेव एकनाथ रामदास देव मुहम्मद शमाजी मानुदास केसव स्वामी जगदान पन्त आदि प्रमुख थे। इनमें से कुछ बाह्यय से कुछ स्थियी थीं कुछ मुसलमान से हिंदू बने हुए थे एवं शेष नीच जाति के लोग थे। इन्होंने इस्लाम की महिमा गा करके भक्ति मार्ग का उपदेश दिया। उस समय लोगों ने यह नहीं देखा कि कौन गा रहा है। जात पंग की उठनी महिमा न रही जितनी इस्लाम और श्रेष्ठ धर्म की। उन्होंने महाराष्ट्र की लोक भाषा में द्रव तिष्ठे कबिताएँ कीं गीत मुमाण और उसका यह परिणाम हुआ कि महाराष्ट्र में उदार सार्वजनिक धर्म की बुनियाद पड़ी और महाराष्ट्र में एक सत्ता का बहय हुआ। महाराष्ट्र की एकता को पंजरपुर के देवमन्दिर और उससे सम्बन्धित मात्राओं से भी बढ़ा साम पहुँचा था। यह पवित्र स्थान उस समय महाराष्ट्र का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान माना जाता था।^२

१ आत्मगीर, आचार्य बनुरसेन पृ ३३२ ३४०।

साथ ही देखिए भारत का युग इतिहास पृ ३४२-४३।

An Advanced History of India Part II By R. C. Majumdar—H. C. Ray Chaudhari and Datta. Page 495 to 497

२ सह्याद्रि की चट्टानें आचार्य बनुरसेन पृ ४६ ४८।

एक माया, एक आत्मिक प्रकृति और एक से सामाजिक संस्कारों ने मिलकर महाराष्ट्र में उस राज्य आदि का उदय हुआ कि बिछने मुगल तख्त की कब्र खोले ही ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य चतुरसेन जी ने अपने इन दो ही मुगल कालीन उपन्यासों में तत्कालीन युग को पूर्ण रूप से प्रतिमान कर दिया है । वैसे कि प्रथम ही सिद्ध चुके हैं कि आचार्य चतुरसेन जी ने अपने आत्मगीर नामक उपन्यास में तत्कालीन युग का इतने विस्तार से वर्णन किया है कि यह उपन्यास उपन्यास की अपेक्षाकृत इतिहास प्रथ ही अधिक ज्ञात होता है ।

द्विविध शासन कालीन—आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यास 'सोना और जून' में मुगल राज्य का क के पश्चात् के भारत का बड़ा ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है ।

सामाजिक परिस्थितियाँ—

इस काल में सम्पूर्ण भारत में सामाजिक प्रथा की अवस्था अत्यन्त दयनीय हो गई थी । किसानों का समग्र सर्वनाश हो गया था । और पुराने ज्ञानवान गायक हो चुके थे ।^१ सम्पूर्ण भारत अराजकता से भर पा । बेस के एक छोर से दूसरे छोर तक पिन्धारी छाए हुए थे । बेस के निर्जन और बनी सभी उनके नाम से कल्पिते थे । बहु न किसी राजा की जान मानते थे न अरब । मुगल के मुगल हथियारबंद विरोध बनाकर जूमते रहते थे । गाँवों को बजाते धनिवों को बरों से उठा के बाते और मनमाना धन मिलने पर उन्हें छोड़ते थे । धन न मिलने पर उन्हें जान से मार डालते थे ।^२ वास्तव में मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत में उसके शासन का अन्त हो गया था । और मुगल साम्राज्य असीन पर पड़ा हुआ था कि कोई आए और उसे उठा से । इस समय न भारत में कोई साहसी जन साम्राज्य की स्थापना कर रहा था न किसी में राजनीतिक धम था ।^३ अंग्रेज धनी सभी भारतीय समाज को अपने शिकार में कसते जा रहे थे । उन्होंने बड़े-बड़े और महँगे कानून प्रचलित किए, मराठों की कार्यवाही पैचीशा कर ही और समय बढ़ाकर असह्य कर दिए गए । कम्पनी सरकार को जो टैक्स न दे सकते थे उनके लिए अदालतों

१ सोना और जून , प्रथम भाग, पूर्वार्द्ध पृ २०६ ।

२ सोना और जून प्रथम भाग, पूर्वार्द्ध पृ १७६ ।

३ सोना और जून , प्रथम भाग, पूर्वार्द्ध पृ १०९ ।

के दरवाजे बन्द थे। उनके लिए न कानून था न इस्पाफ। इस काबू की पुष्टि अत्याचार का एक नमूना थी। यात्रियों की पंचायतों का मास कर बढ़ा गया था और बहुतों के स्कूल तोड़ डाले गए थे। उनके स्थान पर गए विद्यालयों की भी स्थापना नहीं की गई थी। तत्कालीन कम्पनी सरकार दो करोड़ बीस लाख की आबादी में से सिर्फ डेढ़ ही विद्यालयों को ही धिन्ना देती थी जब कि भारत की ईश्वरों की बसुली में से कम्पनी के डायरेक्टर इन दिनों में १०,००० पौंड से भी अधिक धन केवल दावतों में व्यय कर बैठे थे। सब बड़ी-बड़ी मीकरियाँ सब अंग्रेजों के लिए सुरक्षित रख ली गई थीं। और शासन में विश्वास और जिम्मेदारी के काम पर किसी भारतीय को नहीं रखा जाता था। वास्तविकता यह भी कि भारतीय जो उस समय सुस्थ जीवन के सब बन्धों में कुदाल से अयोग्य बसहाय और नाकायक करार कर सदा के लिए अपने ही देश में नीच बना दिए गए थे। और उन्हें बलात् घण्टी और बुराबापी बनाया जा रहा था।^१ भारत के राजा और नवाब भोग-विभास में लसीन थे। अरब के नवाब महीबद्दीन हैदर के समय तक आठे-आठे अरब की धरा भी अल्पतः दायनीय हो गई थी। नवाब अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली माने रह गया था।^२

उमर बन जीवन में भी अंग्रेज सनै-सनी पैठे जा रहे थे। कहीं के भारतीयों से साक्षात् करके तो कहीं सहामता करके कहीं बोला देकर उन्हें अपनी मुट्ठी में भेजे जा रहे थे।^३

इस समय भारत में हिंदू-मुस्लिम एकता बहुत थी, और लोग तत्कालीन मुसल बादशाह के प्रति बफ़ादार थे। १०वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक साम्प्रदायिक मक्के भारत से समाप्तप्राय हो चुके थे।^४ किन्तु अंग्रेज फूट डालकर शासन

१ लोना और जून, प्रथम भाग पूर्वार्ध पृ २०७।

कुछ इसी प्रकार का बर्णन 'भारत में अंग्रेजी राज' सुन्दरकांत तीलरी त्रिभु पृ ११३३ से ११४९ में भी प्राप्त होता है।

२ लोना और जून प्रथम भाग पूर्वार्ध, पृ २१८-२२२।

३ लोना और जून दूसरा भाग पूर्वार्ध के प्रथम अंड में इन्हीं सब बातों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

४ लोना और जून दूसरा भाग पूर्वार्ध पृ २२६-२२८।

करने का तरीका उस समय भी काम में ला रहे थे। वे हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की बफ़ादारी पर कम अरोसा करते थे।^१

इस काल में छोटे स रेकर बड़े तक सभी रिस्वत क्रेते थे। बहुत से जिसे के कम्पटर या ठहसीमदार पुराने इबारदारों की जमींदारी कस्बत नामों से स्वयं ही करीब लेते थे और सारी मासगुजारी स्वयं हक़्क जाते थे। इससे बहुत सी मासगुजारी बाकी पड़ जाती थी जिसे छछड़ी से बहुत करने की कड़ी बाजारों ऊपर से जारी होनी रहती थी।^२

इस काल में भारत में स्त्रियों की बच्चा भी उत्तम न थी। यूरोप से कम ही स्त्रियाँ भारत जाती थीं जिससे बिदेसी ब्यभिचार में अर्पकर रूप से बंधे थे।^३ बड़े बड़े मगरों में अपहरण बलात्कार के अपराध चरम सीमा की पहुँच रहे थे।^४ छात्रबर्षिह की गुपी मास्ती के इराज की बटना के परिवारन में सेवक ने इन्हीं परिस्तिांतयों का चित्रण किया है।

अपहरण और बलात्कार के छात्र-छाप भ्रूज हत्यायों भी कम हो रही थीं बालिकाओं का बच होता था सती पर निर्मम अर्धर्म होता था छुआछूट का बोक बाका या बिचबा विवाह नहीं हो सकता था। बूढ़ और स्त्रियों को माननीय अधिकार प्राप्त न थे। लोभ छिपकर नीच स्त्रियों से ब्यभिचार करते थे। स्त्रियों का ब्यापार होता था। बास करीबे जाते थे। मर बलि भी होती थी। ब्रह्म अनेकों प्रकार के पापचार बढ़ रहे थे।^५ इन सभी बातों का चित्रण

१ भारत में अंग्रेजी राज पं० मुन्बरकात जिस्व तीसरी पृ ११०३ से ११०३ तक को पढ़ने से नी इती बात की बुधि होती है। यहाँ १० जनवरी सन् १९४३ को नाई एलेनब द्वारा दफ़्क भाक डेलिगटन को जिसे एण पत्र की कुछ पंक्तियाँ हमारी बात को स्पष्ट करने में सहायक होंगी। देखिए I have no reason to suppose that it has offended the Mussal mans but I can not close my eyes to the belief that that race is fundamentally hostile to us & there fore our true policy is to concilliate the Hindoos,.... Lord Ellenborough to the Duke of Wellington January 18 1843

२ सोना और ब्रून इतरा भाग पृ ४१९।

३ सोना और ब्रून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ४१९ २०।

४ सोना और ब्रून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ. ४२०।

५. सोना और ब्रून, प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ११४।

उपन्यासकार ने कितनी ही कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत उपन्यास में किया है। उदाहरण के लिए सती प्रथा की खुरबा का चित्रण उसने शुभरा एवं राजाराम मोहनराय की कथा के द्वारा किया है।^१

देश की आर्थिक स्थिति भी उराम न थी। प्रजा पित रही थी किन्तु कुछ छोप जनता को लूट कर अपना घर भर रहे थे। बड़े-बड़े बनी प्रजा पर मतमाना अत्याचार करके अपना बटोरते और भँवरों की छत्रछाया में कटकते में जा बसते थे। छोटे नगर टूटने और बड़े नगर बसने लगे। बिदेसी बस्तियों के प्रचार के कारण देश की निर्जनता बढ़ती जा रही थी। देश के कारीगरों की जीविका-निर्वाह के साधन खरम होते जा रहे थे। देश का जन प्राचीन देशी साम्यों एवं कर्मचारियों के हाथ से निकल कर भँवरों के हाथ में एकत्र होता जा रहा था।

सांस्कृतिक—

जमी एक भारत में दो ही जातियाँ प्रधान थी—हिन्दू और मुसलमान। किन्तु अंग्रेजों के आने के पश्चात् यहाँ इसाई मत का भी प्रचार होने लगा था। हिन्दू और मुसलमानों में अब साम्प्रदायिकता के भाव न रह गये थे। वे परस्पर दूय और पानी की भाँति मिलते जा रहे थे किन्तु वे दोनों ही ईसाइयों से घृणा करते थे। यद्यपि हिन्दू वर्मावलम्बियों की संख्या देश में सबसे अधिक थी किन्तु उस काल तक हिन्दुत्व चारों ओर ने कड़िमार और कुटीतियों से जकड़ गया था ईसाइयों के प्रचार के कारण साम्प्रदायिकता की भावनाएँ नित्य-प्रति बढ़ती जा रही थीं। अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा को अपने प्रचार का माध्यम बनाया था। उन्होंने अंग्रेजी विरलविद्यालय खोले, इसमें निपुण होकर अंग्रेज और जर्मन व्यापक और महोपाध्याय भारत में आने लगे। भारतीय विद्यार्थी अपनी बगई विद्या को वास्तविक समझते। जो कोई भारतीय कोण की बात करता उसे तर्क बिन्दु, निजा बिन्दु इतिहास बिन्दु बुद्धि बिन्दु प्रमाण शुभ्य कहानी अपना मिथ्या कथा कहकर उनका उपहास किया जाने लगा।^२ इतना ही नहीं अंग्रेज मेधावी अस्तित्वों को जन और राष्ट्र के बल पर लौटाने लगे थे। वे कितने ही श्रेष्ठ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियों से लेकर बिदेस भेज रहे थे। वे छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र जब बिदेस से भारत लौटते तो पूर्वकपेन बिदेसी रंग

१ मोना और लून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध शुभरा की कथा पृ ४३८ से २१८ तक

२ मोना और लून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ २१२।

में रये होते थे। ये नवयुवक अपने धर्म प्रयोगों का निरंतर और विदेशी प्रयोगों की श्रेष्ठता का प्रचार करते थे। 'ठीकों' और मन्दिरों के पीछे कोई आध्यात्मिक भावना ही, यह वे नहीं समझ पा रहे थे। न वे हिन्दू के अनुष्ठानों की सुक्ति से समझ सकते थे। एक तरफ बुद्धिवाद का प्रकट प्रवाह-बुद्धि उबारना और अति भी भावनाओं का उदय तीसरे मतबद्ध ईसाइयों तथा अंग्रेज और जर्मन अध्यापकों द्वारा निरंतर हिन्दू धर्म, संस्कृति और विद्या की निहा इन सबने मिलकर चारों ओर से हिन्दू धर्म और समाज पर तीव्र आक्रमण कर दिया था। जिसका जबाब देने काबा कोई न था। हिन्दू धर्म के नेता इस समय के ब्राह्मण और पुजारी के जो स्वार्थ धर्म रूढ़िवाद और अन्धविश्वास के केन्द्र थे।

इतना ही नहीं विभिन्न धार्मिक रीति रिवाजों पर भी कुठाराघात होने लगा था। अब अंगरेजी विद्यालयों से निकला हुआ स्नातक बड़ी ही निर्ममता के साथ उसी प्रकार हिन्दुत्व की निन्दा करने लगा—जैसे ईसाई मिशनरी करते थे। ये युवक मूर्तिपूजा के विरोध में धर्म अति कर रहे थे। अपने पूर्वजों के धार्मिक और नैतिक मामलों पर उनकी कोई ध्या न रह गई थी। बर-बर यह विवाद छिड़ा रहता था कि ईश्वर साकार है या मिथ्याकार। नास्तिकता की भी भावनाएँ फैली जा रही थीं। पाठ्यक्रम में हिन्दू धर्म को तो कोई विज्ञा होती ही न थी—मिशनरियों के विद्यार्थियों में ईसाई धर्म की विज्ञा ही जाती थी। इसका परिणाम भारतीय नव विभित उदय पर यह हुआ कि वे धर्म शून्य हो गए। अब वे किसी भी समाज के सदस्य न थे। अब घर से विदेशी और अपने ही ग्राम में बहिष्कृत थे। ये लोग सब सामाजिक सुविधा के लिए धर्म परिवर्तन करने में भी न हिचकते थे। ऐसे धर्म परिवर्तन करनेवालों में माइकेल मधुसूदन दत्त प्रमुख थे। ऐसे नवयुवकों ने क्रिश्चियन बनकर एक नवीन जाति स्थापित करनी प्रारम्भ कर दी थी।

उपर धातुनिक विभित नवयुवकों की यह रसा थी और इधर तीव्र धर्मिचार के अड्डे बने हुए थे। महर्तों के घर पापाचार के गड़बे पुजारी पन्धे काल्प स्वार्थी और कुपचायी थे। इस प्रकार चारों ओर से भारत की सांस्कृतिक प्रगति एकत्रम ठप ही हो गई थी।

राजनीतिक परिस्थिति

भारत की—

मुगल साम्राज्य के ह्रास के पश्चात् भारत की राजनीतिक स्थिति

१ सोना और जून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ २१३-२४।

मरणात् विमृ बस हो गई थी। छोटे छोटे राज्य अपनी अपनी इच्छा और अपना अपना पग मर्याप रहे थे। इन राज्यों को एक भू-सत्ता में बौध्दनाली कोई भी शक्ति उस समय न रह गई थी। मुख्य ब्राह्मण-कथक नाम मात्र का बादशाह रह गया था। ब्राह्मण में इस समय मुख्य साम्राज्य बसीन पर पड़ा हुआ था। उनकी रक्षा करने वाला भी कोई बड़ा व्यक्तिव सामने न था।^१ पुर्तगाली बच फ्रांसीसी एवं अंग्रेज सभी इस अर्धसैन्य साम्राज्य का अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे। य सभी व्यापारी बनकर भारत में आए थे और राजा बनने की इच्छा कर रहे थे। कुछ समय तक अंग्रेजों की पुर्तगाली बच एवं फ्रांसीसियों से प्रतिस्पर्धा भी बनी किन्तु तीव्र ही अंग्रेजों की शक्ति के सामने इन सभी के पैर टूट गये थे। धीरे-धीरे अंग्रेज भारत को अपने अधिकार में लेते गए।

सन् १७१७ के प्लासी युद्ध एवं सन् १७६४ के बक्सर युद्ध के परभाव बचों शक्ति बढ़ गई थी। उनका बंगाल एवं अरब पर पूर्ण अधिकार हो गया था। मराठा सब दूट हुए थे। उनका केन्द्र पूना अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था। पेशवा बिठूर में सीढ़ी बने। सिंधिया और होस्कर के दम-आत्म हो चुके थे। पूना का छत्र बंग होठ ही पिछारी अपने आप ही टिटर-बिठर हो गये थे। इन प्रकार भारत की प्रायः सब राजनीतिक शक्तियाँ या तो अंग्रेजों की प्रभुता को स्वीकार कर चुकी थी या उनकी मित्र हो चुकी थी। रामेश्वरम् से लेकर दिल्ली तक के सभी मुख्य केन्द्रों में अंग्रेजों समा की छावनियाँ छाई हुई थी।^२

अंग्रेजों ने भारतीय राजाओं और नवाबों को पराजित करने के परभाव की कूटनीति में काम किया। उन्होंने एक पार इन राजा एवं नवाबों को अन्दर अन्दर समाप्त कर दिया और बुरही और इनका ऊपर ही बनाए रखा और इस प्रकार पुन के प्रभाव से भारत को आगे बढ़ने से रोक दिया।^३

सन् १८४८ ई० लाई इच्छाओं में भारत में आये। उनकी कुम्भ-नीति में भारतीय राज्यों में अल्पसंख्यक वर्गों को आत्म हो गया था। अन्धुर्न परिस्थितियाँ बचों के विपक्ष में होती आ रही थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकमात्र उद्देश्य बन बढारना मात्र रह गया था जिसने चारों ओर प्रतिष्ठा का साम्राज्य

१ सोना, और, अरब, प्रथम भाग पृष्ठ १०९।

२ सोना और अरब, प्रथम भाग पृष्ठ १०७।

३ सोना, और अरब, द्वितीय भाग पृष्ठ १०९-१०१।

छया हुआ था। इतना ही नहीं सेना भी असम्पुष्ट थी। सामन्त सरदारों के बंशज स्वभावतः अंग्रेजों की गरीब शक्ति के विरुद्ध थे। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में विद्रोह की भावना बिनो बिन प्रबल होती आ रही थी।^१ इस विद्रोह का स्वल्प हीन ही भारतीय स्वाधीनता का जन मया था—पर यह स्वाधीनता सामन्ती बरों ही की थी जिसके मुखिया एकतन्त्री राजा और बाबसाह के जन साधारण की आजादी की इसमें कोई चर्चा ही न थी। किन्तु यह जनस्य था कि जनता अंग्रेजी राज्य से दुखी थी—इससे यह बड़े-बड़े जमींदारों के प्रभाव में आकर उनका साथ दे रही थी। इस विद्रोह में राजनीति में किञ्चित् मात्र सामिक जोश भी मिटा दिया गया था। जिससे यह विद्रोह और भी अधिक सशस्त्राधी हो गया था।^२

सन् १८५७ की शक्ति क्यों हुई, इस पर भी आचार्य बनुरसेन की ने विस्तार से प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यिखों के कुछ उदाहरणों की भी विपादा छाँची बिस्की कानपुर मेरठ कन्नड आदि स्वानों पर हुई शक्तियों पर भी विभिन्न कथाओं के माध्यम से प्रकाश डाला है। 'सोना और जून' के द्वितीय भाग के दोनों खंडों में इसी शक्ति को ही कथा के व्याज से आचार्य बनुरसेन की ने स्पष्ट किया है।

भारत के बाहर की—

'सोना और जून' में भारत के बाहर की भी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का सख्त चिन्म हुआ है। इसमें सनहरी से उभीसरी घटाधी तक के संसार के विभिन्न देशों की जन राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं का वर्नन प्राप्त होता है जो केवल सोना और जून के लिए हुई थीं। इन घटनाओं के माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन विश्व की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है।^३ इ'वसैड'

१ सोना और जून, दूसरा भाग पूर्वाडि' पृ ११०।

प्रमाण के लिए देखिए भारत में अंग्रेजी राज पं० सुन्दरलाल तीसरी विस्म पृ १३२३ से १३५१ तक।

२ सोना और जून, दूसरा भाग पूर्वाडि' पृ ११०-११।

३ सोना और जून के दोनों भागों में इन पर विस्तृत प्रकाश प्राप्त होता है।

४ सोना और जून, प्रथम भाग पूर्वाडि' पृ १०५, १०६, १११, ११५।

प्रथम भाग उत्तराडि' पृ १०९ ११, १३४ १५०, २२८ ४००।

द्वितीय भाग पूर्वाडि' पृ २७१-७७, २९१, ३०१ ३ तक।

चीन^१ फ्रांस^२ आस्ट्रिया^३ जर्मनी^४ जापान^५ रूस^६ पोर्तुगल^७ स्पेन^८ आदि देशों की विभिन्न परिस्थितियों का विवरण इसमें बड़ा उपार्ण है।

सामाजिक उपन्यासों में—

दाम्पत्य में बाधाकरण का महत्त्व केवल ऐतिहासिक उपन्यासों में ही व्यक्त होता है। वैसे आचार्य बनुरसेन जी के सामाजिक उपन्यासों में भी बीसवीं शताब्दी की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सत्य संकेत प्राप्त होता है। यहाँ हम सन्धि में इस पर प्रकाश डालते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ—

बीसवीं शताब्दी के पूर्व ही से मुगल साम्राज्य पतन एवं अंग्रेजी राज्य बृद्ध हो चुका था। यही यही यहाँ के जन जीवन पर पारंपार्य सम्प्रदाय का प्रभाव प्रबल होता था रहा था। महायन्त्री विक्टोरिया की घोषणा में देश के नवपुत्रकों में विचार-स्वातंत्र्य की भावना जागृत हो गई थी। देश में ईश्वरों ने स्थापन-स्थान पर प्रचार के बड़े स्थापित कर लिये थे। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारत में ब्रह्म-समाज धर्मशा-समाज एवं आर्य-समाज की स्थापना हो चुकी थी। इसके साथ ही श्री रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद तथा स्वामी रामदीर्घ अपने उपदेशों द्वारा पंच भ्रातृ जनता को पंच प्रवर्गित कर रहे थे। स्वामी दयानन्द अथ्य विदवास और पाषण्ड स्थापने का उपदेश दे रहे थे। उनके अनुयायी भी वर्ण-भेदव्यथा का विनाश करने एवं विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे। आचार्य बनुरसेन की

- १ सोना और लून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ४०१ एवं द्वितीय भाग पूर्वार्द्ध पृ २८६-२८८।
- २ सोना और लून, प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ११२ एवं द्वितीय भाग पूर्वार्द्ध पृ २४६ २८०-२८३।
- ३ सोना और लून प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ११२।
- ४ सोना और लून, प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ११२।
- ५ सोना और लून द्वितीय भाग पूर्वार्द्ध पृ २८९।
- ६ सोना और लून, प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ ११३ तथा द्वितीय भाग पूर्वार्द्ध पृ-२९०।
- ७ सोना और लून, प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ ११३।
- ८ सोना और लून, प्रथम भाग पूर्वार्द्ध पृ ११३, ११८।

के उपन्यासों में कार्य-समाप्ति कार्य कर्तव्यों की गति विधियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही साथ उसके उपन्यासों में बर्ष व्यवस्था^१ वासी प्रथा पोखी प्रथा^२ धार्मिक अंध विश्वास^३ सांप्रदायिक संघर्ष^४ बहूत्र प्रथा^५ वृद्ध विवाह^६ बाल विवाह^७ हिन्दू समाज में विधवाओं की कठम स्थिति^८ वैद्यकों की स्थिति^९ आदि पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—

सन् १८३७ ई० की संघर्ष क्रान्ति के पश्चात् से ही भारतीय जनता में स्वतन्त्रता की भावना का विकास होने लगा था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में यह भावना और विकसित ही हुई थी। प्रथम महायुद्ध के पूर्व और पश्चात् की राजनीतिक परिस्थितियों का सफल अंकन आचार्य चतुरसेन जी के 'आत्मबोध' नामक उपन्यास में प्राप्त होता है।^१ प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् परबराती हुई, ब्रिटिश सरकार मुक्त की छाँट के रही थी। किंतु देश में सार्वजनिक असंतोष फैल रहा था। माये दिन क्रान्तिकारी आन्दोलनों का भंडाफोड़ होता था। विशेषकर पंजाब में असंतोष की भावना बहुत प्रबल थी।^२ इसी समय 'बकियाल बासा बाग' हत्याकांड भी हो गया था।^३ जिससे

- १ आत्मबोध पृ १३७-१३८।
- २ 'पोली' नामक उपन्यास ही इस प्रथा पर लिखा गया है।
- ३ जयमय सभी उपन्यासों में इसकी चर्चा प्राप्त होती है। कुछ उदाहरण बहूत्रे भाँसू २२३, २२५, २२७, बर्म पुत्र पृ ६८, ७१।
- ४ आत्मबोध पृ १३७।
- ५ 'अपराजिता' नामक उपन्यास में विशेष प्रकाश। तथा अरुण बरल पृ ३४ ३६
- ६ बीली पृ १४२।
- ७ बहूत्रे भाँसू पृ ६०।
- ८ बहूत्रे भाँसू (अमर मयिताया) नामक उपन्यास ही आचार्य चतुरसेन जी ने विधवा समस्या पर लिखा है। इसके अतिरिक्त बेकिय आत्मबोध १२३ १२७ अरुण बरल पृ ३१ ३३, पोली पृ १३४ बगुला के पंख पृ २४०-२४१।
- ९ आत्मबोध १३१ ३३, १३३ ३६।
- १० आत्मबोध, पृ २७१-८२ २८६-८८, ३०९ ११।
- ११ आत्मबोध, पृ २८१-८२।
- १२ आत्मबोध, पृ २८७-८८।

देश की राजनीतिक घटा और भी खराब हो गई थी।^१ इसके पश्चात् ही गांधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रारम्भ हो गया था।

द्वितीय महायुद्ध के आते-जाते अक्षतोप की यह भावना सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो चुकी थी। गांधी जी का अहिंसात्मक आन्दोलन ठीकी पर था। जब यूरोप युद्ध की ज्वाला में जल भूत कर साक हो रहा था। ब्रिटिश बल कम और बन्दू में खर्चपायी महाकाष्ठ बन मर रक्त में स्नान कर रहा था। महायुद्धों और महाराष्ट्रों के गर्भनि राजमुकुट मूलच्छि हो रहे थे। ब्रिटिश साम्राज्य महासंकट से मुबर रहा था। और इबर भारत का आशावरण अक्षान्त था। प्रत्येक वस्तु मईमी होपी बा रही थी। आदिनेन्सों और थोर बुस्में की भरमार हो रही थी। कांग्रेस का नेतृत्व बड़े और छूटे बिल कर रहे थे वे कह रहे थे कि छहरो और प्रतीक्षा करो।^२ पर देश के सबसुबक प्रतीक्षा करने को तैयार न थे। इस समय की व्यक्तियों का प्रभाव देश पर था। एक बवाहर और दूसरे सुमाप। बवाहर वेल् में थे और सुमाप देश से बाहर। परंतु दोनों ही के कार्य कलाप हवा में तैरते हुए आते और जाते करोड़ों तककों को एक मुक सिध से आते थे।^३ सुमाप की जर्मनी, सिमापुर एवं बर्मा आदि से निरंतर होने काशी स्पीचों ने देश को हिंसा डाला था। देश में नेता सक्रिय थे और उबर जर्मन गांधी सेनाएँ एक के पश्चात् दूसरे देश को आक्रान्त करती बवाप बति से बइती जा रही थी। फ्रांस और ब्रिटेन की घटा हमनीम थी। पूर्व में आपाम ने भी युद्ध का संक फूक दिया था। सुमाप के नेतृत्व में 'जयहिंद' सेना भी अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध आ डटी थी।^४ देश में भी विद्रोह की भावनाएँ व्याप्त हो चुकी थी। ७ अगस्त सन् १९४२ से आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उसी दिन गांधी जी सहित सब चाटी के नेता वेल् में डाल दिये गए। क्रिस्तु ठी भी यह आन्दोलन न कल्प। सगबय ४ करोड़ व्यक्तियों ने लुभे रूप से इस विद्रोह में भाग लिया। यह कुला विद्रोह गोक्तियों की बीछारों के साथ में बड़ा हुआ। एक हजार से ऊपर जगहों पर मोती बसी। बिद्यापियों ने लाखों की संख्या से इस आन्दोलन में योग दिया। देशी राय्यों तक इस विद्रोह

१ आरामबाह, ३०९ ११।

२ धर्मपुत्र, पृ ११३ १९।

३ धर्मपुत्र, पृ १३४ ३३।

४ धर्मपुत्र, पृ ११३ १७।

की आम फैसी।^१ किन्तु अन्ततः महामुद्र की समाप्ति के पश्चात् यह आन्दोलन भी दबा दिया गया। इस आन्दोलन की शुरुक 'बर्मपुत्र' में डा० अमृतदास के परिवार को सामने प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने की है।

सन् १९४७ आठे-आठे बंदिजों ने भारत छोड़ना स्वीकार कर लिया। वे १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत छोड़कर चले तो एए किन्तु उसके दो सत्र करते गए। पाकिस्तान पृथक कर दिया गया। उसने स्वच्छन्द आचरण प्रारम्भ कर दिया। जिन्ना ने जिस डाइरेक्ट ऐजण्ड का संकेत किया था वह सुरक्षित अमल में लाया गया और देखते ही देखते पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में मार-काट कूट भाग-बलात्कार-हत्या का बाजार बर्म हो गया। यह आम की बर्बरक लपटें कड़कता गौआबासी बिहार, इलाहाबाद बम्बई और दिल्ली आदि में होती हुई सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई। 'बर्मपुत्र' में इस बर्बरक बलात्कार की एक शुरुक देखने को प्राप्त होती है।^२

'उपन्यास' 'बमुला के पंख' एवं 'सपास' आदि उपन्यासों में आचार्य जी ने स्वतंत्रता के पश्चात् के भारत का चित्रण किया है। इनमें स्वतंत्रता के पश्चात् की परिस्थिति होती हुई भावनाओं स्वार्थी नेताओं की अनौपचारिकताओं एवं अन्य अनेक समस्याओं का उचित चित्रण बर्नन प्राप्त होता है।

प्राकृतिक शक्तों के बर्नन—

प्रकृति एक विशाल चिरंतन काम्य है। मनुष्यों के परस्पर सम्पर्क के फलस्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें सामाजिक आशाकरण की संज्ञा दी जा सकती है। इसका बर्नन हम पिछले पृष्ठों में पौराणिक ऐतिहासिक सामाजिक तीनों ही प्रकार के उपन्यासों का पृथक-पृथक कर चुके हैं। यहाँ हम आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त प्रकृति-चित्रण पर संक्षिप्त में प्रकाश डालेंगे।

मनुष्येतर जगत् है प्रकृति-शक्ति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वामाजिक। अतः प्रकृति के अन्तर्गत बही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें सजाने संभारने में मानव का हाथ नहीं लगा है बल्कि वे स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। ईश्वर या 'उप महान्' की कारीगरी को हम प्रकृति और मनुष्य की

१ बर्मपुत्र आचार्य अनुरसेन पृ ११६ ११८।

२ बर्मपुत्र, आचार्य अनुरसेन पृ १६९ १८७।

कारीगरी को कला कहते हैं। प्रकृति में पशु पक्षी सरिता तिसैर, विटि, मुहा पृष्ठी वृक्ष मृता गुल्म आदि की गणना की जा सकती है। इन सबका अनुभव हम अक्लोजन रसा स्वादन यवध सुवास-शृण और स्पर्श द्वारा कर सकते हैं। मनुष्य की कारीगरी का वर्णन हम पिछले पृष्ठों में 'वस्तु वर्णन' के अंतर्गत कर चुके हैं यहाँ हम केवल 'उस महान्' की कारीगरी पर प्रकाश डालेंगे।

आचार्य अतुरसेन जी ने अपने उपन्यासों में ('वयं रक्षाम') को छोड़कर प्रकृति वर्णन कम ही किया है। अधिकांशतः अपने उपन्यासों में प्रकृति का प्रयोग उन्होंने पृष्ठ भूमि के रूप में ही किया है। यत्र-तत्र उन्होंने प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन रूप में भी किया है। इस प्रकार उनके समस्त उपन्यासों में प्रकृति के संक्षिप्त और विस्तृत उल्लेख लगभग १०० स्थलों पर प्राण्य हैं। 'वयं रक्षाम' में तो प्रकृति अपने उन्मुक्त रूप में खिल पड़ती है। ऐसा लगता है कि उपन्यासकार ने अपना समस्त कौशल इन चित्रों का गढ़ने में लगा दिया है। इसी से ये प्रकृति-चित्र संक्षिप्त होते हुए भी विराट् का दर्शन कराने वाले हैं। सजीवता स्वाभाविकता नवीनता एवं ताजगी के कारण प्रत्येक चित्र अपने में पूर्ण है। 'मुम्बाईय' के प्रभात का एक चित्र देखिए सुंदर प्रभात था। प्रभात के इन क्षणों में समुद्र तट की प्रकृति-शोभा देखते ही बनती थी। सर्वत्र एक माधुर्यपूर्ण आलोक छाया था। सुदूर क्षितिज पर फैले हुए फेनिल सागर को दम्भीर तरंगों पर प्रभातकामीन सूर्य की रक्तम किरणों मिरक रही थीं। लाल-पीली आभा से उद्भासित आकाश अमल्य की ओर एक भूमिल रेखा बनाता हुआ समुद्र से जा मिला था। इसके नीचे सफेद पक्षी जहाँ-तहाँ जल भीड़ा रत थे। पटना हुआ कुछ बेप से बह रही थी और उसके तोंकों से तटवर्ती वृक्ष झूमते हुए एक भीत्कार-सी कर रहे थे। प्रबल वात के धपेड़ों से आन्वोक्ति महासागर की रौंठ सहूर दम्भीर गर्जन-ध्वनि करती हुई अनवरत तट से तटवर्ती कानी और लाल-लाल चट्टानों से टकरा रही थीं। साथ उपरूक श्वेत भागों से बरा था।^१

केवल वर्णन पढ़ने मात्र से ही उस सुन्दर प्रभात का चित्र पाठक के चेतों के समक्ष साकार हो उठता है। अस्तुतः प्रकृति-वर्णन उद्दीपन और पीठिका दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुआ है। रावण अपनी अभिसारिका रीत्यवास की

१ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण डा० किरणकुमारी मुन्गा पृ १० से १६।

२ वयं रक्षाम आचार्य अतुरसेन, पृ ४७।

की जाग फँसी।^१ किंतु अन्ततः महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् यह आन्दोलन भी दबा दिया गया। इस आन्दोलन की सशक्त 'धर्मपुत्र' में डा० अमृतचम के परिवार को सामने प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने की है।

सन् १९४७ आठे-आठे अंग्रेजों ने भारत छोड़ना स्वीकार कर लिया। वे १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत छोड़कर चले तो गए किंतु उसके दो सप्ताह करते गए। पाकिस्तान पृथक कर दिया गया। उसने स्वच्छन्द आचरण प्रारम्भ कर दिया। जिम्मा ने जिस आइरेक्ट ऐजन्स का संकित किया था वह गुरमत्त अमल में कामा गया और देखते ही देखते पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में मार-काट कट-माव-बलात्कार-हत्या का बाजार गर्म हो गया। यह जाग की मयंकर कपटें कलकत्ता लौकासामी बिहार, इलाहाबाद बम्बई और दिल्ली आदि में होती हुई सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई। 'धर्मपुत्र' में इस मयंकर प्वास की एक शक्ति देखने को प्राप्त होती है।^२

'उपन्यास' 'बगुला के पंख' एवं 'अपास' आदि उपन्यासों में आचार्य जी ने स्वतंत्रता के पश्चात् के भारत का चित्रण किया है। इनमें स्वतंत्रता के पश्चात् की परिवर्तित होती हुई माणवताओं स्वार्थी नेताओं की अयोग्यताओं एवं अन्य अनेक समस्याओं का उल्लेख बर्णन प्राप्त होता है।

प्राकृतिक रूपों के बर्णन—

प्रकृति एक विशद चिरंतन काव्य है। मनुष्यों के परस्पर सम्पर्क के फल-स्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें सामाजिक बाधाकरण की संज्ञा दी जा सकती है। इसका बर्णन हम पिछले पृष्ठों में पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक तीनों ही प्रकार के उपन्यासों का पृथक-पृथक कर चुके हैं। यहाँ हम आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त प्रकृति-चित्रण पर संक्षिप्त में प्रकाश डालेंगे।

मनुष्येतर जगत् है प्रकृति-प्रकृति या प्राकृतिक का बर्णन है स्वाभाविक। परंतु प्रकृति के अन्तर्गत बड़ी वस्तुएँ आती हैं जिन्हें सजाने संभारने में मानव का हाथ नहीं लगा है वरन् वे स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। ईश्वर या 'उप महान्' की कारीगरी को हम प्रकृति और मनुष्य की

१ धर्मपुत्र आचार्य अनुरसेन पृ ११६ ११८।

२ धर्मपुत्र, आचार्य अनुरसेन पृ १६९ १८७।

हत्या अपने नेत्रों के समझ ही बेल चुका था उसके मस्तिष्क में प्रतिष्कार लेने का संकल्प उसी प्रकार गूँज रहा था जिस प्रकार प्रबल बात के बपेड़ों से आविर्भूत महासागर की ज्वार की रौंठ ऊहूँ गम्भीर गर्जन तर्जन कर रही थी। यद्यपि प्रभाव सुस्वर है राबन के संतप्त बिचारों से अक्षिप्त है। अपनी आमा में सौन्दर्य में वह बेसुख है भूला हुआ है किन्तु सागर ! वह अक्षिप्त कहाँ रह पाया ? क्यों राबन के बिचारों के समान उसमें भी जो तूफान छिपा है ! वह उसे निबिकार कैसे रहने देता ? इस प्रकार प्रस्तुत प्रकृति चित्रण पीठिका और उद्दीपन दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुआ है।

उनके 'सोमनाथ' उपन्यास में प्राप्त संख्या का भी एक चित्र देखिए 'सूर्य अस्त हो चुका था। संख्या का संस्कार चारों ओर फैल गया था। केवल पश्चिम दिशा में एकाध बादल क्षम-क्षम में क्षीण होती अपनी छास आमा झमका रहा था जिसका स्वर्ण प्रतिबिम्ब सोमनाथ महाकव्य के स्वर्ण सिंहरों पर अपनी क्षीणकाय झलक बिखा रहा था।' प्रस्तुत चित्र केवल पीठिका रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। चित्र संक्षिप्त होने के साथ-साथ उद्दीपन एवं उपयुक्त भी है इसी कारण से वह कथा में पूर्णरूप से लप गया है।

अब सूर्यास्त के पश्चात् की प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य का एक चित्र देखना अनुपयुक्त न होगा" सूरज बुझ चुका था। सिरुमिजाते तारे यों ही छूटपूट आसमान पर तबड़ जाते थे। बादल के ऊपके कोई सपेय कोई आभी कोई नीक्यू बरा बरा से मगर एक बूसरे से निकले हुए फैल रहे थे। जिनमें म्यारस के बाद की बल्लेबिम्बों आम पीपल बरगव के पत्ते जब हवा खोर से बमठी—कड़कड़ा उठते थे। हवा में बरा-बरा कुतकी थी। * म्यारस के बाद का बादलों के साथ बल्लेबिम्बों करना बादलों का आपस में अक्षि मिचौनी करना हवा में बमस होते हुए भी प्रकृति का उन्मुक्त भाव से मुनकुताना और मुस्काना क्या कम उद्दीपन है।

दिन रात के विभिन्न मोड़ों के वर्णनों के साथ-साथ आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न ऋतुओं का भी उद्दीपन स्वाभाविक सैकितिक किन्तु कहीं-कहीं विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वर्णन भी उद्दीपन एवं पीठिका दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुए हैं। 'बर्ष रक्षाम' में प्राप्त हेमन्त का एक चित्र देखिए जो 'बास्मीकि रामायण' में प्राप्त हेमन्त के

१ सोमनाथ आचार्य चतुरसेन पृ ५।

चित्र का स्मरण विधा देता है। सीता हरण के पूर्व राम सीता से कहते हैं 'सीत यह कैसा मुहावना समय है। सीत के कारण शरीर में स्फूर्ति का अनुभव हो रहा है अब शरीर अधिक बल का प्रयोग नहीं सह सकता सहसा भूमि सख्य भ्रामसा हो रही है। शरीर को अग्नि और भूप मुहाने लयी है। पूजिमा की एवि भी अब भूमिक होती है बाहु भी अति धीतक हो गई है। प्रस्तुत वर्धन में विस्तार और वास्मीकि का अनुकरण अधिक होने के कारण सजीवता एवं स्वामाबिकता नहीं रह गई है। किन्तु जहाँ पर आचार्य चतुरसेन भी ने स्वतंत्र संक्षिप्त प्रकृति-चित्र लीचे हैं वे विरिचत ही सजीव एवं प्रभावोत्पादक हैं। 'सोमनाथ' उपन्यास में प्राप्त बसंत की मनोरम श्रुतु का मुहावना वर्धन देखिए 'बसंत की मनोरम श्रुतु पुञ्जराय पर छा गई। रम्य पुञ्जर भूमि विविध कता पुष्पों से भर गई। पुष्पों की भीनी महक से वातावरण सुरभित हो गया। आम के बूझ और से लड मये। जन पर कोयल बूकने लयी। पुञ्जराय की भूमि एक मनोहर बाटिका की शोभा धारण कर जयी। सवन बनस्पती में विरिचंग से निकलती हुई स्वच्छ जल की पहाड़ी मडिबी और निसर देखी-सीधी भूमि पर सर्पाकार बहते अति शोभामयान प्रतीत होने लये। विविध रंगों के पतियों के बहबहाने से ध्वनित-सी पुञ्जर भूमि स्वर्ग की सुयमा बिबाने लयी। यत विपत्ति को भूम सोय विविध रंग के बस्त्राभूषण धारणकर फाग का आनंद लेने लगे।' पुष्पों की भीनी महक सुरभित वातावरण विरिचंग की मोद में किलोर्ने करती हुई सरिता उन्मुक्त तरकता, स्वरमय एकतता साथ ही सुख दुःख से अक्षिप्त अपने में मस्त पतियों का एकैठ करण लबने मिलकर वास्तव में सम्पूर्ण चित्र को सजीव स्वामाबिक एवं पतिपय बना दिया है। पुञ्जराय की भांति मनोरम बसन्त पाठक के मानस में जी छन जाता है। प्रस्तुत वर्धन कैवल पीठिका रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। अब एक उद्दीपन रूप में प्रयुक्त बसन्त के वर्धन को देखिए। 'आर्यदाह' का सुजीव अपनी पत्नी मुवा की मृत्यु से संतप्त है। उस समय उसके आकुल-भ्याकुल मन को बसन्त कैसा लपटा है इसका चित्र भी देखने योग्य है बसन्त आ गया था। होली को बस पीच दिन रह गये थे। सुधी का प्रकृति-विरिचंग का पुराना यीक था। प्रातःकाल का समय था मुहावनी हवा चल रही थी। वे अपने छोटे से कमरे में काशीन पर मसनद के सहारे पड़े थे। लाने के बूरा को देख रहे थे। बूरा के

१ वर्धन रसान आचार्य चतुरसेन पृ ४२३।

२ सोमनाथ, आचार्य चतुरसेन पृ ३०४।

यस पत्ते झड़ रहे थे। हवा का शोषण थाता वा और डेर के डेर पत्ते झड़कर उड़ जाते थे। पृथ पर गई कोपसें खिली वीं वे साक कमक रही वीं उन्होंने कुलपूर्ण मुक्कराष्ट मुक्कर साकर कहा 'यही बसंत है। सुखे पत्तों को झड़ना और नये पत्तकों को निकसित करना उसका काम है। चायव यही प्राकृत बीजन का रूप है। बाहू रे बसंत।'^१ अन्तिम शब्द 'बाहूरे बसंत' में कितनी कसक है, कितनी हृदय की ठड़पन एवं दुमडुम है। पत्नी बिछोह ने कारक सुबीर को प्रकृति का रम्य रूप भी उग्र पीड़क और उपहास करता बीज पड़ता है। पत्तों का झड़ना नवीन कोपसों का निकसना-बसंत का कार्य कहकर उपप्यासकार ने संसार-बक के क्लिया-कलाप की ओर भी अपरोक्ष में संकेत कर दिया है।

अब बंगाल की बर्षा ऋतु के शुरुवार का भी एक चित्र है। 'आपाड़ का पहला मेह बरस चुका। हवा में गीली मिट्टी की छोपी महक आम की आमराइयों में होकर तबियत खुब कर रही थी। बंगाल के मौसम का यह बातावरण बड़ा ही सुभावना होता है। ठंडी हवा चक रही थी और धाम के सघन पत्तों में गिरत हुए सूरज की सुमहरी रूप छनकर समूचे बातावरण को रंपीन बना रही थी।'^२

मिट्टी की छोपी महक आम की आमराइयों की भीनी सुनंध छन छनकर जाती हुई ठिरछी सुमहरी रूप में वों ही साकता नरी पड़ी है। उसपर बर्षा ऋतु बहू भी बंबाल की सक्ने निमकर बातावरण को सखमुख रंपीन एवं उम्मादक बना दिया है। चित्र संक्षिप्त होते हुए भी सजीव स्वाभाविक परिभाष एवं पूर्ण है। इसी प्रकार के विभिन्न ऋतुओं के कितने ही सजीव चित्र आचार्य चतुरसेन जी के उपप्यासों में भरे पड़े हैं।

वे हुए उपप्यासकार द्वारा प्रस्तुत प्रात अपराह्न सध्या रात्रि एवं विभिन्न ऋतुओं के शब्द चित्र। इसके अतिरिक्त उसने सरिता किर्झर, बिरि, मुहा बुध लता सरोवर आदि के भी कितने ही सजीव वर्णन अपने उपप्यासों में प्रस्तुत किए हैं। यही उपप्यासकार के मध्य स्थित सरोवर की सोना का एक चित्र प्रस्तुत है।

१ वासुदेव आचार्य चतुरसेन पृ १८३।

२ सोना और जून आचार्य चतुरसेन प्रथम भाग पूर्वाह्न पृ २१०।

‘उपत्यका का बहु प्राण विजय और सपन था। बड़ी निर्मल जल का सरोवर का सरोवर में पादरस कमल खिल प। ताल तमाल हिंसा की सपन छाया में मध्याह्न की धूल छन-छनकर-धीनस होकर सोना-सा बरस रही थी। मंद पवन चल रहा था। सरोवर में जलपाक सारस हंस आदि माना बिरुम थे। सबनी एक बिनास शास्मली बृक्ष के नीचे मूले पत्तों पर बैठ गई।’

बर्षन पड़ने मात्र में उपत्यका मध्य स्थित सरोवर का चित्र पाठक के मानस में साकार हो उठता है। सरोवर में कमलों का खिलना होना पत्र पर मध्याह्न के सूर्य की सुनहली किरणों का इतना इठलाकर नृत्य करना बिरुमों का कलकल गवने मिलकर निर्जन विजन में स्थित सरोवर क सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। प्रस्तुत प्रकृति-चित्र उद्दीपन और पीठिका दोनों ही रूप में प्रयुक्त हुआ है।

महं हुआ ‘उस महान’ की काशीपटी का बर्षन। सब प्रकृति के सम्पुक्त बर्षन में लिपटा हुआ मनुष्य की काशीपटी का भी एक चित्र देखिए।

‘पानी बूब बरसा है। सब बर्षन चल गई है। बासपास की बीमें फूलकर साठ हो गई हैं। मकानों की दीवारें, बड़ी-बड़ी मध्य अट्टालिकाएँ, कोठार की बानी नागिन सी बस आजी सड़कें मोहरें सब फूलकर निखर गई हैं। हवा में एक झुनपी आ गई है। मौसम प्यासवार हो गया है। रात बहुत बीत गई है। कानों का सड़कों पर आवागमन बन्द हो गया है। पर हवाएँ चित्रमो की बसियों के प्रतिबिम्ब स सड़कें जमजमा रही हैं। ऐसा रूप रहा है जैसे आज गई दिल्ली की मुहापराट है।’ मनुष्य निर्मित सम्पूर्ण नगर प्रकृति के संभल में महा बोहर बिम्बन करता था दीप्त पड़ता है। ‘मुहापराट’ शब्द में बासावरन को और भी सजीव और उन्मादक बना दिया है। बासुब में इसमें तो यही भाव होता है कि कया और प्रकृति के पानिदहूप क परचासु दोनों की मुहापराट का आज दिन हो। दिल्ली की मुहापराट कला की मुहापराट है। उल्ला के हाथ उन्मासकार ने बर्षन को और भी सर्वस्पर्शी एवं नतिमय बना दिया है।

प्रकृति क सौम्य सारस एवं अन्य चित्र एक मोर यदि आचार्य अनुरागन जी के उन्मासों में प्राप्त होते हैं तो दूसरी ओर विकराक आठकवाटी एवं सर्वकर रूप भी। प्रथम प्रकार के चित्र यदि हृदय में उल्लाह उन्मास करने हैं तो

१ सर्व रसात्म आचार्य अनुरागन पृ ६।

२ उन्मास आचार्य अनुरागन पृ १११।

दूसरे प्रकार के वर्णन हृदय में भय और धार्तक का संचार करते हैं। पिछले पृष्ठों में हमने प्रकृति के रम्य रूप का वर्णन किया है। अब प्रकृति के भयंकर पक्ष का भी एक चित्र देखिए।

धीरे-धीरे सूर्य अस्त होना लगा और सागर में भी तूफान के चिह्न स्पष्ट होने लगे। तरंगियों पर सभी पाऊ बड़ा दिए गए। बन्धी स्थियाँ और घन की मंजूपाएँ बीच में रख ली गईं। सभी तरंगियों को एक में बाँध दिया गया। देखते ही देखते वायु का वेग बढ़ गया। बिजली चमकने लगी। प्रचण्ड वायु हल्की वस्तुओं को उठाती और भारी वस्तुओं को गिराती प्रलय-गर्जना करने लगी। सागर में चट्टानों की मति बड़ी-बड़ी सहरे उठकर उन भूख तरंगियों को आकाश में उछालने और गिराने लगीं। बन्धी भवन्धी सभी जग चीत्कार करने लगे। सबके कोछाहल से वह समुद्र का वर्जन-उर्वन और भी मयाबह हो उठा। चर्म रत्नजुओं के सुदुर्घ बन्धन टूट-टूटकर तरंगियाँ दूर-दूर बहने और उलट-पुलट होने लगीं।^१ शिन्धु का परजना तरंगियों का उगममाना रत्नजुओं के सुदुर्घ बन्धन का टूट जाना एक ओर हृदय में वही भय का संचार करते हैं वहीं बूझी ओर वे रेखाएँ पाठक की कल्पना के समस्त भयंकर तूफान का एक चित्र पत्कार कर देती हैं।

वैसे तो आचार्य चतुरसेन जी के अधिकांश उपन्यासों में प्रकृति-वर्णन संक्षिप्त ही है किन्तु 'वर्ष रत्नाम' में वे प्रकृति के मोह में अधिक पड़ गए हैं जिससे कई स्थलों पर प्रकृति का वर्णन इतना विस्तृत हो गया है कि कथा को भी हम साव कर रक जाना पड़ता है। बन्धकारण्य की सुपमा वर्णन^२ किष्किन्वापुरी^३ स्वर्ष संका^४ बाकी द्वीप^५ सुपा नपरी^६ आदि के मौखिक वर्णन विस्तृत होने के साथ-साथ नीरस भी हैं। कथा से अस्वच्छ ऐसे वर्णनों का उपन्यास में प्रयोग अहित होना चाहिए। वैसे कि हम प्रथम ही कह चुके हैं कि इस प्रकार के वर्णन केवल आचार्य चतुरसेन जी के 'वर्ष रत्नाम' उपन्यास में

१ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ ७३-७४।

२ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ. १६८ से १६९ तक।

३ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ २०८-२०९ तक।

४ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ २५-२६ एवं १०१-१०२।

५ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ १३-१५।

६ वर्ष रत्नाम: आचार्य चतुरसेन पृ ३३ से ३६।

ही प्राप्त है। अन्य उपन्यासों में अधिकारित प्रकृति वर्णन सक्षिप्त और सांकेतिक ही हैं।

इतनी सतर्कता से कार्य लेने पर भी आचार्य चतुरसेन जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल सम्बन्धी कुछ मूर्खें प्राप्त होती हैं। इन मूर्खों को हम निम्न चार प्रकारों में रस सकते हैं—

- १ भाषा सम्बन्धी मूर्खें।
- २ वस्तु सम्बन्धी मूर्खें।
- ३ काल-क्रम सम्बन्धी मूर्खें।
- ४ विचार सम्बन्धी मूर्खें।

यहाँ हम चारों प्रकार की मूर्खों पर संक्षिप्त में विचार प्रस्तुत करेंगे—

१. भाषा सम्बन्धी मूर्खें —

जैसा कि हम आचार्य चतुरसेन जी की भाषा शैली का वर्णन करते समय दिखाया चुने हैं कि आचार्य जी भाषा के सम्बन्ध में अत्यन्त सतर्क रहे हैं। उन्होंने सजीव वातावरण का निर्माण बहुत कुछ उपयुक्त भाषा के माध्यम से ही किया है। फिर भी कहीं-कहीं भाषा सम्बन्धी कुछ दोष रूढ़ ही गए हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने अपने 'सोमनाथ' उपन्यास में 'परेड' शब्द का प्रयोग किया है। इसके स्थान पर फारसी का 'कवायद' शब्द अधिक उपयुक्त हो सकता था। इसी प्रकार 'नगरवधू' में विकृत कानून' में कानून का प्रयोग सचका अनुपयुक्त था होया है। उस काल में 'कानून' शब्द प्रचलित न रहा होगा। यदि इससे स्थान पर विकृत नियम' अथवा विकृत अनियम' का प्रयोग उपन्यासकार ने किया होता तो अधिक उपयुक्त होता। इसके सम्बन्ध में भाषा शैली वाले अध्याय में विशेष विचार किया जा चुका है।

२. वस्तु सम्बन्धी मूर्खें.—

आचार्य चतुरसेन जी वस्तु वर्णन के समय बड़े सतर्क रहे हैं। यद्यपि उनके उपन्यास विभिन्न कालों से सम्बन्धित हैं तो भी उनके विभिन्न उपन्यासों में उसी काल के अनुकूल वस्तु वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु जहाँ पर उन्होंने 'ऐतिहासिक रस के प्रतिपादन की चेष्टा की है, वहाँ वस्तु संबंधी मूर्खें अनायास ही हो गई हैं। उदाहरण के लिए 'बीजाली की नगरवधू' में प्राप्त उन वैज्ञानिक वर्णनों को ले सकते हैं जिन पर कपातक विरसेपन करते समय हम चर्चा कर चुके हैं। जैसा कि हम पीछे दिखाया चुने हैं कि कुछ आलोचकों को 'बीजाली के

महायुद्ध के वर्जन में आधुनिक रसायनिक एवं कृमि-युद्ध (Chemical germ warfare) और रथ-युद्ध-महाघिसांटक जैसे रथों अस्त्रों विविध प्रकार के टैंकों का आभास' वीक्ष्य पड़ा है।^१ कुछ आलोचकों को वैज्ञानिक साम्बन्ध काव्य की अनुसंधानशाखा किसी आधुनिक काव्य की प्रयोगशाखा-सी वीक्ष्य पड़ी है। उनका कथन है 'वैज्ञानिक साम्बन्ध काव्य की अनुसंधानशाखा किसी आधुनिक काव्य की प्रयोगशाखा है यहाँ 'बहुत से मृतक पशु-पक्षियों के शरीर लटक रहे थे। अनेक जड़ी-बूटियाँ पैदियों में भरी हुई थीं। बहुत से पिढक मांड और काँच की धीधियों में रसायन द्रव्य गरे थे' (अ० १३ प्रथम एवं द्वितीय) महायुद्ध में जो रसायनिक द्रव्य प्रयुक्त हुए वे भी यहाँ के वीर उससे भी भयकर थे। वैज्ञानिक ने घोर को बटाया 'इनमें बहुतों में ऐसे हसाहल विप हैं जिन्हें कूप ताकाव और ललाहियों में डाल देने से उसके लक के पीने ही से * पक्ष में महामारी फैल जाती है। बहुत से ऐसे रसायन हैं कि घब्रु-सैय विविध रोग में प्रसिद्ध हो जाती है बाधु विपरीत हो जाती है अथु विपरीत हो जाती है। इनमें कुछ ऐसे द्रव्य हैं कि यदि हवा के रुस पर उड़ा दिया जाय तो घब्रु सैय के सम्पूर्ण अरुण बन जंघे हो जाएँ। सैनिक मूक बधिर और लड़ हो जाएँ (अ १४) जाने वाली बीसवीं शताब्दी के युद्ध में प्रयोग होने वाले विज्ञान रस यहाँ भरे थे * इस प्रकार के वर्जन आधुनिकता का आभास उत्पन्न करते हैं जिससे ऐतिहासिकता को महत्त आघात कमता है। इसी कारण ऐसे वर्जनों को हमने वस्तु संबंधी भूकों में रखा है।

काम कम सम्बन्धी दोष—

आचार्य अनुराधेन जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में कालक्रम संबंधी दोषों का आशय है। इसका कारण उनकी 'इतिहास रस' वाली कारण ही है। किंतु इतना निश्चित है कि उनकी इस कारण ने ऐतिहासिक उपन्यासों के सौन्दर्य को बढ़ाया नहीं बरन् बटाया ही है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'बर्ष प्ताम एवं श्रीमाली की नगरबधु' में ही इस प्रकार के दोषों की भरमार ही है। उन्होंने इन दोनों ही ऐतिहासिक उपन्यासों में काल परिधि की चिंता किए बिना ही कई नामों के पार्श्वों को एक स्थान पर ही एकत्र कर दिया है। 'श्रीमाली की नगरबधु' नामक उपन्यास में के 'पार्श्वों की परिपद' नामक

१ आलोचना उपन्यास पितृपीक इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार भरदुवर १९२४ पृ १३१।

२ ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार डा० मोपीनाथ तिवारी पृ १०२।

अध्याय में उन्होंने धारवाज' कात्यायन शौक बोधामन पीठम आपस्तम्ब
 धाम्बम्य धीमिति, कणाद औसूक वासिष्ठ संख्यायन हारीश पाणिनि
 विसम्पासन पेठ, माण्डव्य उपरिचर अथर्व बगिरस आदि सभी ऋषि मुनि
 दार्शनिक स्मृतिकारों को एक ही घाम का बँडाता है। इस प्रकार के प्रयोगों
 के फलस्वरूप ही कथामक एवं जाया संतो की दृष्टि से उन्कूट कोटि की रचना
 होने पर भी उनका यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास की दृष्टि से अधिक
 आदर नहीं प्राप्त कर सका है। डा० लयेन्ड न इस ऐतिहासिक उपन्यास को
 उद्दिष्ट की ही दृष्टि से देता है। इन्ही बोधों के फलस्वरूप बं इसे किंचित मात्र
 भी हृदय में न उठार पाए। डा० प्रभाकर माषने ने इन्हीं बोधों से बीसकर
 स्पष्ट बोधना कर ही ऐतिहासिक उपन्यास क्या नहीं होना चाहिए, इसका परम
 उदाहरण यह ७८७ पृष्ठों का मुठकालीन इतिहास रस का मौलिक उपन्यास
 है।^१ डा० बनवीस गुप्त ऐतिहासिक उपन्यासकार की ऐसी सीमाहीन स्वतन्त्रता
 को अलम्प समझते हैं।^२

इसी प्रकार अपने 'अथ रक्षाम' उपन्यास में भी उन्होंने कई मुयों—यथा
 सतवुप एवं वैता मुय—की प्रमुख घटनाओं को एक में ही संकुल कर दिया है।
 यनुमरत^३ प्रथम^४ बरुव-बहु^५ देवासुर-संधाम^६ राजा बलि एवं बायन^७,
 बाधराज संधाम^८ एवं राम चवन लंजाम आदि को एक ही कास में समेट
 किया गया है। यद्यपि उन्होंने इसको प्रमाणित करने के लिए एक लम्बा माध्य
 भी दिया है किन्तु उधसे यह रस काम संवमी बोध दूर नहीं हुए हैं। कुछ ऐसे ही
 बोधों के कारण आचार्य जगुरसेन जी के ये भेद उपन्यास भी यत्र-तत्र
 उपहासास्वर हो गए हैं।

- १ बँडाली की नगरबन्धु, आचार्य जगुरसेन, पृ ३३२ से ३४० तक।
- २ आलोचना 'ऐतिहासिक उपन्यास' डा० माषने।
- ३ आलोचना उपन्यास विद्योतीक इतिहास भीर ऐतिहासिक उपन्यासकार पृ १८२
- ४ अथरंजाम. आचार्य जगुरसेन, पृ २९ से ३० तक।
- ५ अथरंजाम आचार्य जगुरसेन, पृ ३० से ३३ तक।
- ६ अथरंजाम: आचार्य जगुरसेन, पृ ३३ से ३७ तक।
- ७ अथरंजाम आचार्य जगुरसेन पृ ४३ से ४० तक।
- ८ अथरंजाम: आचार्य जगुरसेन पृ ४३ से ४३ तक।
- ९ अथरंजाम आचार्य जगुरसेन पृ १३८ से १४४ तक।

विचार संबंधी मूर्खें—

आचार्य चतुरसेन भी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में आधुनिक विचारों का खुलकर प्रयोग किया है। किन्तु इन विचारों का प्रयोग करते समय उन्होंने इस बात का सदैव ध्यान रखा है कि वे ठट्कानीय बातों के पूर्ण रूप से उपयुक्त हों। इसी कारण से उनके अधिकांश उपन्यासों में प्राचीनता के साथ नवीनता उसी प्रकार से बुरी मिठी प्राप्त होती है जैसे दूध में पानी। 'सोमनाथ' उपन्यास में छाति की समस्या मानवतावादी धर्मों 'बैद्यकी की नगरबधू' में नारी समस्या गणतन्त्रात्मक एवं राजसत्तात्मक राज्यों की समस्या आदि पर उपन्यासकार ने अपरोक्षरूप से आधुनिक विचारों की प्राचीन कथामक में बड़ी मुश्किल के साथ छाप दिया है। किन्तु इतना होते हुए भी आचार्य चतुरसेन भी के ऐतिहासिक उपन्यासों में विचार सम्बंधी मूर्खों की स्पृणता नहीं है। कई स्थानों पर वर्तमान जीवन की विचार प्रक्रिया आचार्य की को इस प्रकार अभिमूढ किए हुए बीच पड़ती है कि वह जाने अनजाने रूप से उनके प्राचीन पानों एवं कल्पनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हो गई है। इस प्रकार के प्रयोग अतिहासिक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों को निर्बल बनाने वाले भी होते हैं। आचार्य चतुरसेन भी के उपन्यासों में ऐसी मूर्खें उन स्थानों पर मर्यादात्मक रूप से उभरी हुई हैं जहाँ उन्होंने अपने दृष्टिकोण का प्रचार करना चाहा है। अपने उपन्यास 'नगरबधू' एवं 'बर्म रक्षाम' में कई स्थानों पर उन्होंने बर्मात् साम्यवादी विचारों को आँखों पियो और मीज करो वाले सिद्धांतों को पीपने की चेष्टा की है। किन्तु वे आधुनिक विचार कथानक से पूरक ही अटके हुए स्पष्ट बात होते हैं। बर्म रक्षाम में आँखो पियो और मीज करो वाले सिद्धांत स प्रेरित होकर ही उन्होंने मुक्त सहवास विवसन विचारण दूरम और पभावत तथा नरमांस की बिनी मारि का खुलकर चित्रण किया है। सम्भवत इसी सिद्धांत से प्रभावित होकर ही उन्होंने 'नगरबधू' के अधियों एक को मांस भधी एवं मदिरा पीयी बना दिया है। इसी प्रकार साम्यवाद एवं बौद्धमत से प्रभावित होने के कारण उन्होंने 'नगरबधू' में ब्राह्मण एवं बार्ध राजाओं को खुलकर अपमान्य कहे हैं। वे ऐसा कहते समय यह विस्मृत कर बैठे हैं कि जिस काष्ठ का वे चित्रण कर रहे हैं उस काल में ब्राह्मण एवं बार्ध राजाओं का समाज में अपना निज का स्थान था। उनमें कुछ चारित्रिक पुर्वकताएँ अवश्य रह गई थीं किन्तु उतनी नहीं जितनी उन्होंने बौद्धमत से प्रभावित होने के कारण उपन्यास में चित्रित कर दी हैं। इस प्रकार के विचार सम्बंधी बीषों के कारण ही उनके 'नगरबधू' उपन्यास का सर्वोपर्य कई स्थानों पर भूमिक पड़ गया है।

देश कास निर्माण एवं वातावरण-मृष्टि संबंधी माध्याम्य चतुरमेन जी की मौसिक, विशेषताएँ एवं अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों से भिन्नता—

इस विवरण के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि माध्याम्य जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकास अथवा वातावरण-मृष्टि अत्यंत सजीव है। उन्होंने पाठकों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करने के लिए कि वह मूठकास की एक सच्ची ऐतिहासिक घटना को पढ़ रहा है उसके पात्रों को उनके क्रिया-कलापों को प्रत्यक्ष देख रखा है विभिन्न साधनों का उपयोग किया है। प्रथम उसने उपन्यास से सम्बद्ध इतिहास को विस्तार क साथ दिया है। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपने तीन बृहद् उपन्यासों के अंत में कम्बी-कम्बी नूनिफार्ड भी जोड़ी हैं। द्वितीय—उसने उपन्यास के प्रारंभ में कुछ ऐसे वर्णन दिए हैं जिनका अस्तित्व आज भी है जैसे पुराने लंडन, नगरकोट किले आदि के वर्णन। इन्हीं को सामने प्रथम रखकर वह उसकी प्राचीन कथामा को उसके परिपारण से सदै सदै एक एक करके निकालता जाता है। जैसे 'वैजाती की नगररथ' के 'प्रवेश' में उसने वर्तमान वैजाती के प्लंसाबरोवों का वर्णन किया है। तृतीय—इसने अपनी बात की पूर्ति के लिए उपन्यास के मध्य में भी कई स्थानों पर प्रसिद्ध इतिहासकारों के मत और उनके नाम दिए हैं। जैसे 'बयं रक्षाम' के अध्याय चार में सिव प्रवेश को सम्बन्ध का वर्णन करते हुए उन्होंने डा० फेंक फोर्ट डा० टी० टेरा डा० मार्शल डा० सेगम आदि विद्वानों को साक्षी बनाया है। अत्यंत कई स्थानों पर भी ऐसे ही वर्णन हैं। किन्तु इससे औपन्यासिकता को गहुरा जायात गया है।

इसके अतिरिक्त उसने प्रत्यक्ष उपन्यास के बीच-बीच में ऐतिहासिक विवरण भी दिए हैं। कई स्थानों पर तो इन ऐतिहासिक विवरणों के आधिक्य के कारण कथा-रत्न बाधित भी हुआ है। जैसे वहाँ ऐतिहासिक अथवा प्रकृति चित्र आदि अक्षिप्त हैं कथा का सौंदर्य बह गया है उसमें गति आ गई है। किन्तु वहाँ वर्णनों में विस्तार है बिड़ठा प्रशंसित करने की प्रकृति है कथा के ऊपर इतिहास हावी है वहाँ कथा अचञ्चल हो गई है कथाकार विवरणों में पड़ कर कथा को भूल गया है ऐसे स्थानों पर वह कथाकार के पद को त्यागकर इतिहासकार हो गया है।

जैसा कि पिछले विवरण में स्पष्ट है उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में राम कास से लेकर आधुनिक काल तक को लिखा है। इस प्रकार उसके वर्णन

का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। चारों युगों का सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास उसके उपन्यासों में प्राप्त हो जाता है। वास्तव में आचार्य चतुरसेन जी न त्रिसु युग के भी कथानक को चठाया है उस युग को काल के व्यवधान को चीर कर देखने का प्रयत्न किया है। उस युग के जीवन के सर्वांग को देखने का प्रयत्न कहीं-कहीं सफल भी नहीं हुआ है। इसका कारण क्षेत्र का विस्तार है एक साथ कई युगों में इबकी लगाने की प्रवृत्ति है। वास्तव में वे हम साबकर एक युग में बैठे नहीं हैं और वही बैठे हैं वहाँ हम जीवन के चित्रण में सफल हुए हैं—'सोमनाथ' इसका उदाहरण है। किन्तु जबकि व्यापक क्षेत्र लेने के कारण वे प्रत्येक युग में हम साबकर बैठ नहीं पावे हैं। कुछ उपन्यासों में तो उनकी इतिहास की इबकिया स्पष्ट जात हो जाती है। एतिहास जल्प है कथा असम। उनका आनुपातिक समन्वय नहीं हो सका है। इसका कारण है एक ही इबकी में उपन्यासकार सर्वांग की हाँकी देने के मोह में हैं। बीच-बीच में विस्तृत ऐतिहासिक विवरण उसके द्वारा भगाई गई इतिहास की इबकिया हैं और छोटी-छोटी कथानकों द्वारा उस इतिहास की पुष्टि का जो प्रयत्न है, वे हैं इबकी के फसलकर्म जल में उठे बुबुड़े को कुछ ही क्षणों के लिए उठकर बिछीत हो जाते हैं। अतः इन छोटी-कथानकों का प्रभाव भी उसी प्रकार क्षणिक पड़ता है। किन्तु ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ है 'सोना और जून्' में यह प्रवृत्ति विशेष है। 'सोमनाथ' इसके एकदम विपरीत है उसमें इतिहास और कथा का समन्वय है। वैसे कि हम पीछे लिख चुके हैं कि ऐसे उपन्यासों के लिखते समय उन्होंने केवल सिद्धांत्यों के लिए जिले पिये पिटाये इतिहास-संधियों पर निर्भर न रहकर अनेक प्राचीन ग्रंथों एवं पुरातत्व-संबंधी खनिसेखों के अध्ययन मगन द्वारा प्राचीन भारत की आत्मा में प्रवेशकर, उसमें पूर्णरूप से बैठकर, उसके सर्वांग को देखकर उसका विश्लेषण कर, उसके संस्कारों को अपनी आत्मा में रमाकर तब उन्होंने उस युग का पुनर्निर्माण किया है। तभी ऐसे उपन्यासों में उस युग का वातावरण एकदम सजीव हो उठता है। वैसे कि हम पिछले पृष्ठों में दिसला चुके हैं कि उनके ध्येय उपन्यासों तथा तदवस्था, सोमनाथ आदि में उस का सर्वांग सर्जन प्राचीन नाम-उपाधियाँ प्रथा रीति-रिवाज उत्तम सामाजिक एवं राजनीतिक हलचलों का यथा तथ्य चित्रण प्राप्त होता है। त्रिसुके कारण उनके इन उपन्यासों में उस युग का वातावरण अत्यंत जीवित एवं स्वाभाविक बन पड़ा है।

उपन्यास पढ़ते समय भी पाठक को उसकी ऐतिहासिकता पर पूर्ण विश्वास बना रहे इसके लिए उसने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जो तत्कालीन

बाठाबरण-निर्माण में सहायक हो सके। जय रजाम में संस्कृत के कवोपकवम 'नगरबधू' में प्राचीन बाठ मय के पारिभाषिक शब्दों से सम्पन्न संस्कृत लिपि भाषा 'बाठमगीर' में लिखित फारसी एवं अरबी के शब्दों का बाहुस्य तत्कालीन बाठाबरण को प्रत्यक्ष करने के लिए ही किया गया है। पिछले भाषा वाले अध्याय में हम इस पर विस्तार से लिख चुके हैं।

जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में लिखता चुके हैं कि उनके वस्तु वर्धन भी तत्कालीन मुय-विशेष के समुक्त ही हैं।

जैसा कि हम 'सांस्कृतिक विषय' में स्पष्ट कर चुके हैं कि उन्होंने तत्कालीन बाठाबरण एवं देश नाम को सजीव करने के लिए उन नामों के रीति रिवाजो एवं प्रचलित त्योहारों का बड़ा सजीव वर्धन किया है। बास्व में आचार्य अनुरसेन जी ने बाठाबरण का विषय करते समय बाहरी ही नहीं बल्कि उसके आंतरिक संस्कारों पर भी ध्यान रखा है उन्हें समाज की दृष्टात्मक पति का वैज्ञानिक ज्ञान या वे मानवीय चेतना के विभिन्न स्तरों की आंतरिक एकता से पूर्ण परिचित थे इसी कारण वे मुय विशेष का पुनर्निर्माण करने में सफल रहे हैं।

आचार्य अनुरसेन जी ने बाठाबरण निर्माण के लिए केवल विभिन्न सामाजिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विषय ही नहीं किया है बल्कि उसको स्पष्ट करने वाले चरित्रों एवं उनकी तदनुसंग मनोवृत्तियों का भी सफल वर्धन किया है।

बास्व में केवल उपयुक्त विशेषताओं के सम्पन्न होने मात्र से ही किसी युग के इतिहास को बुटाया भले ही जा सके किन्तु जयाया नहीं जा सकता। इतिहास को जयाने के लिए उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। प्राण प्रतिष्ठा होती है जीवन्त पात्रों के द्वारा। जैसा कि हम 'चरित्र विषय' वाले अध्याय में लिखता चुके हैं कि आचार्य अनुरसेन जी ने अपने अनेक उपन्यासों में बाठाबरण को सजीव करने के लिए कुछ ऐसे पात्रों का निर्माण अवश्य किया

जिनका इतिहास में भले ही अस्तित्व न रहा हो भले ही वे उस विशेष नाम और रूप में उस समय न रहे हों। किन्तु यह निश्चय है कि वे उस युग विधि की प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। डा० नरेंद्र के इन प्रकार के पात्रों के विषय में ठीक ही कहा है 'इन पात्रों को भी ऐतिहासिक ही मानना चाहिए क्योंकि इनका अस्तित्व चाहे तत्प-सरक न हो परंतु तत्व-सरक अवश्य है—अर्थात् इनका

यह विशेष नाम या रूप न रहा हो, परंतु ये उस युग विशिष्ट की प्रकृतियों के प्रतीक हैं इसमें शंका नहीं—इससे इतिहास जुटाने में कोई काम न होता हो परंतु युग का इतिहास बनाने के ये अमोघ साधन हैं। वे तथ्य-संकलन में सहायक न होकर बाधाकरण सीवार करते हैं और ऐतिहासिक कथाओं में कल्पनाओं और नामों की अपेक्षा बाधाकरण का महत्व कहीं अधिक है, क्योंकि इतिहास की आत्मा नामों और कल्पनाओं में न रहकर बाधाकरण में ही निहित रहती है। 'बैसासी की नगरबधु' के सोमप्रथ कुण्डली 'सोमनाथ' की सोमना एवं फठहमुहम्मद आदि इसी प्रकार के पात्र हैं।

बैसा कि हम विश्वास करते हैं कि आचार्य जगन्नेशन जी के उपन्यासों में प्रकृति चित्रण भी अत्यंत समीप एवं सरस हुआ है। उसका प्रयोग पीठिका एवं उद्दीपन दोनों रूपों में ही हुआ है। किन्तु प्रकृति-चित्र भी जहाँ संक्षिप्त है, वहाँ वे सरस समीप एवं सविनया उत्पन्न करनेवाले हैं। ऐसे चित्रों को पढ़कर ही पाठक जन चित्रों से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसकी कल्पना के समस्त ऐसे चित्र साकार हो उठते हैं किन्तु वहाँ प्रकृति चित्र विस्तृत है, वर्णन उबा बेने वाले हैं। वे कथा से हटे हुए बीच पड़ते हैं।

कई स्थालों पर प्राचीन जन-श्रुतियों एवं विश्वासों का आधाय सैने के नामक वर्णन अथर्वार्थ भी हो गए हैं, जिससे कथानक का ककार्थक सीर्य अतिकूल नहीं रह सका है। 'बैसासी की नगरबधु' में क्राया पुरष का कोप होना विष कथा कुण्डली का अरिज सम्बर अमुर का अरिज आदि एवं 'बय रक्षाम' में नारीच का स्वयं युग बनना सर्प के पैट में यल किमर, ईश, नर का समा जाना मेघनाद द्वारा माया के बस पर दिव्य धनुष का निर्माण आदि प्रसंग जन-विश्वासों प्राचीन परम्पराओं को व्यक्त करने के लिए ही उपन्यासकार ने किए हैं।

इसके अतिरिक्त उसने कितने ही आसिक संघर्षरक्षकों, कर्तियों एवं मूर्खता जस्य परम्पराओं का भी तत्कालीन बाधाकरण को स्पष्ट करने के लिए चित्रण किया है। चित्रण के साथ ही साथ आचार्य जगन्नेशन जी ने व्यंग्य द्वारा कराची चोट भी की है। 'सोमनाथ' में इसके अनेक उदाहरण मरे पड़े हैं।

अगर हमने आचार्य जगन्नेशन जी की देसकाल निर्माण सम्बन्धी मौलिक विशेषताओं पर विचार किया है। अब प्रश्न हो सकता है कि आचार्य जगन्नेशन

जी देव काल निर्माण अथवा वातावरण सृष्टि में अन्य प्रमुख उपन्यासकारों से कहीं तक भिन्नता एवं समता रखते हैं ?

प्रथम हम हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों से इस विषय में आचार्य अनुरसेन जी की तुलना करते हैं। हिंदी के सर्व प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार वे भी कियोरीनास बाजपेयी। बाजपेयी जी के उपन्यासों में भी आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों की भाँति विवरणों का आबिम्ब है किन्तु आचार्य अनुरसेन जी के ऐतिहासिक विवरण इतिहास सम्पन्न अधिक हैं जब कि बाजपेयी जी ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। 'इतिहास रस' का शानों ही के उपन्यासों में प्रयोग मिलता है जिससे इतिहास तथा जो पहरा आभास किया है। बाजपेयी जी के कवच अमी उपन्यासों में यह विशेषता प्राप्त है जब कि आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों तथा—नगरबन्धु आदि को छोड़कर शेष में इतिहास के सम्पूर्ण पर विशेष ध्यान रखा गया है। एका वातावरण निर्माण का प्रयत्न। उक्तमें बाजपेयी जी से आचार्य जी से बहुत अन्तर है।

'प्रसाद' जी ने 'इरावती' में जो वातावरण-सृष्टि की है बहुत कुछ बेसी ही समीच वातावरण सृष्टि आचार्य अनुरसेन जी के बौद्धकाजीन उपन्यासों में प्राप्त है। डा० नृसिंहनाथ वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासों में देव-काल निर्माण में हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में सबसे अधिक प्रवीण माने जाते हैं। ऐतिहासिक सत्य का जहाँ तक प्रयत्न है आचार्य अनुरसेन जी से वर्मा जी निश्चित रूप से जाते हैं किन्तु जहाँ तक वातावरण निर्माण का प्रयत्न है आचार्य अनुरसेन जी को वर्मा जी नहीं पा पाते हैं। आचार्य अनुरसेन जी की प्रौढ़ माया वर्मा जी के पास नहीं है। इसी कारण से देवकाल का निरूपण तो वर्मा जी के उपन्यासों में आचार्य अनुरसेन जी के समान ही हुआ है किन्तु वातावरण-सृष्टि में वे आचार्य जी को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं।

'राहुल' मधुपाल तथा मधुवतीचरण वर्मा आदि के ऐतिहासिक उपन्यासों में उसी प्रकार से 'इतिहास रस' की प्रमुखता है। बीसी आचार्य अनुरसेन जी की 'नगरबन्धु' में। वातावरण सृष्टि में राहुल आचार्य जो की बला को नहीं पहुँच पाते हैं। मधुपाल और मधुवती राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासों (विष्णु, अविष्ठा एवं शिवसेना) में वातावरण-सृष्टि आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों की ही भाँति है। वातावरण-सृष्टि की दृष्टि से डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'वाचनद्वय की आत्मकथा' आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों से श्रेष्ठ है। वहीं

उपन्यासकारों में रविवरानन्द, जमूतलाल नायर आदि के उपन्यासों में भी देशकाल का निर्माण सुन्दर हुआ है। देश-काल के सटीक वर्णनों में यत्र-तत्र ये आचार्य चतुरसेन जी की कला को भी पीछे छोड़ गए हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकारों यथा बंकिम बाबू, राजाराम बाबू (बंगाल) के० बी० बस्यर (कन्नड़) न० सी कड़के बरेरकर (मराठी) मुंशी और भूमकेतु (गुजराती) आदि से एवं विल्क के महान् ऐतिहासिक उपन्यासकारों यथा—टात्सटाय ह्यूमा ह्यूमो, वास्टर स्काट आदि से जब आचार्य चतुरसेन जी की बातावरण निर्माण के विषय में तुलना करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य चतुरसेन जी कुछ विशेषताओं में इन उपन्यासकारों से आगे और कुछ में बहुत पीछे थे। आचार्य चतुरसेन जी राजाराम बाबू एवं टात्सटाय की भाँति सांकेतिक देशकाल चित्रण नहीं कर सके हैं। उन्हीं वास्टर स्काट की भाँति विवरणारमक देशकाल चित्रण ही विशेष किया है। ह्यूमा ह्यूमो मुंशी आदि में बातावरण निर्माण सांकेतिक एवं विवरणारमक दोनों ही प्रकार से हुआ है, आचार्य चतुरसेन जी के श्रेष्ठ उपन्यासों में यथा 'सोमनाथ', 'सहायि की जटानें' आदि में यही प्रवृत्ति स्पष्ट पड़ती है।

अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में देशकाल जबवा बातावरण सृष्टि संबंधी कुछ दोषों के रहते हुए भी वे एक सीमा तक अपनी इस कला में सफल रहे हैं।

अध्याय ७

आचार्य चतुरसेन की कहानियाँ

भाषार्य चतुरसेन की कहानियाँ

उपन्यास और कहानी—

उपन्यास और कहानी में विषय की दृष्टि से कोई विशेष अंतर नहीं है। यह दोनों एक ही कोटि के हैं। ये सामान्य रूप से कथा-साहित्य की दो मित्र शक्तियाँ हैं। इन दोनों साहित्यियों के मूल तत्वों में भी कोई विशेष अंतर नहीं है। पात्र कथामय कथोपकथन, देशकाल तथा शैली—ये पाँच तत्व इन दोनों में समान रूप से विद्यमान रहते हैं, यद्यपि छठे तत्व—उद्देश्य की उपन्यास में प्रधानता होती है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी प्रथम पाँच तत्वों की कहानी में अनिवार्यता बतायी है और छठे की अनिवार्यता तथा प्रधानता उपन्यास में सिद्ध की है।^१ उपन्यास और कहानी के पारस्परिक सम्बंध को स्पष्ट करते हुए डा० गुलाबराय ने लिखा है 'कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की बसबा है और नये रूप में उसकी बनना। कृत या कथा-साहित्य की संज्ञा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानताएँ हैं।^२ किन्तु कहानी की एक लक्ष्यता ही उसका जीवन-रस है और वही उसे उपन्यास से पृथक् करता है।^३ इसी प्रकार भाषार्य मदनमोहन मालवीय ने उपन्यास और कहानी की समानता पर विचार करते हुए लिखा है 'उपन्यास और कहानी रचनात्मक कला कृष्टियाँ नहीं हैं, उनमें जीवन का स्वरूप दिखाना जाता है। उनमें घटनाओं, पात्रों और परिस्थितियों के वास्तविक चित्र उपस्थित किए जाते हैं। विशेषकर उपन्यास तो जीवन की ऐसी सचक दिखाने का उद्देश्य रखता है, जिसमें मूल घटना और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति में कोई अंतर

१ साहित्य का छापी, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ २९।

२ काव्य के रूप, डा० गुलाबराय पृ २१२।

३ काव्य के रूप, डा० गुलाबराय, पृ २१७।

ही न दिखाई दे। जीवन के या वास्तविक संसार के किसी अंश या खंड को काटकर जैसे उपन्यासों में रक्त दिया गया है—बसते फिरते पात्रों और सजीव घटनाओं का अंकन जिसमें मूख और प्रतिद्वंद्वि का अंतर ही मर रह गया हो। कहानी में यह बात यद्यपि इतनी स्पष्ट नहीं होती—उसके छोटे आकार और उसकी तीव्र घटना प्रगति के कारण यद्यपि वह किसी वास्तविक जीवन खंड का प्रतिरूप नहीं जान पड़ती—फिर भी कहानी के लेखक का यह प्रयास तो रखा ही है कि वह कहानी में भी यथार्थ जीवन चित्र का आभास अधिक से अधिक लावे। अंग्रेजी का शब्द 'फिक्शन' जो उपन्यास और कथा-साहित्य के लिए काम में लाया जाता है कदाचित् इसी अर्थ को व्यक्त करता है कि उपन्यास तथा कहानी में कल्पना द्वारा रची गई कथा को वास्तविक जीवन-घटना से पूरक करना आसाम नहीं है। कथा में वास्तविकता का भ्रम हो जाने की पूरी संभावना है।^१ डा० जयभाष प्रसाद शर्मा ने कहानी और उपन्यास का अंतर एक उदाहरण के द्वारा बड़ी सरलता से स्पष्ट किया है। उनका कथन है 'यदि बन्द दरवाजे के भीतर से एक छोटे से छिद्र के सहारे बाहर के किसी उपवन में ठाका जाय तो जुलाबों का एक राजा अपनी हूँ-हूँ आस पर मस्ती से झूमता दिखाई पड़ेगा। वह अपनी उत्सुकता और क्रोमल रमणीयता में आपूर्ण खिसा मिलेगा। इसके उपरांत यदि दरवाजा पूरा खोल दिया जाय तो विशाल उपवन का मनोहर दृश्य सामने खुल पड़ेगा। अबस्म ही उस उपवन के व्यापक प्रसार में वह गुलाब भी एक तरफ दिखाई पड़ेगा। इस उदाहरण में छिद्र के माध्यम से दिखाई पड़ने वाला गुलाब कहानी के रूप में कहा जायगा और उपवन की विश्व सामूहिकता उपन्यास की प्रतिनिधि मानी जायगी। दोनों ही अपने दो रूपों में सर्वथा पूर्ण हैं।^२ अंत में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'कहानी यदि अपने एकोमुखा समष्टि प्रभाव के माध्यम से हमारे चित्र को पूर्णतया संकट और आन्दोलित करके हमें अनुमान, कल्पना और विज्ञान के अन्तुक्त द्वार पर ला अड़ा करती है तो उपन्यास जीवन के विविध क्षेत्रों की झांकी देकर सारे रहस्यों और वस्तु स्थितियों से परिचित कराकर हमारे भीतर एक पूर्णताविधायक संतुष्टि उत्पन्न कर देता है।' " सारांश यह है कि उपन्यासकार अपने पाठक से किसी प्रकार की अकांक्षा-वाचना नहीं करता। जो कुछ वास्तव्य है, उसे स्वयं इस प्रकार उपस्थित कर देता है कि

१ नया साहित्य नये प्रसन्न आचार्य नंदबुकारे आश्रयेयी पृ १९० ।

२ कहानी का रचना विधान, डा० जयभाष प्रसाद शर्मा, पृ १७ ।

पाठक को अपनी ओर से कल्पना और अनुमान करने को कुछ बचता ही नहीं इसके ठीक विरुद्ध कहानीकार अपनी ओर धृ तो देने को देता कम है पर पाठक से प्राप्त करना चाहता है बहुत अधिक ।^१ इसी प्रकार प० बिस्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है 'कहानी और उपन्यास में तत्त्वों की दृष्टि से कोई भेद नहीं है । भेद है भटनाओं की दृष्टि और समष्टि की योजना की दृष्टि से । कहानी की विस्तार सीमा छोटी ही होती है चाहे उसका कितना ही फैलाव क्यों न किया जाय । उपन्यास की विस्तार सीमा बड़ी होती है चाहे उसका कितना ही संकोच क्यों न किया जाय । कहानी जीवन का एक चित्र रखती है—निरपेक्ष स्वच्छन्द । उपन्यास जीवन के एकाधिक चित्रों का योग संबलित करता है सापेक्ष संबद्ध'^२ । कुछ विद्वान तो उपन्यास और कहानी में शैलीगत वैभिन्य तक स्वीकार नहीं करते ।^३ किंतु वास्तव में इन दोनों में भेद अवश्य है । श्री प्रकाशचंद्र गुप्त ने तो स्पष्ट कहा है 'उपन्यास और गल्प मिला जमा है । यह भावस्थक नहीं कि सकल उपन्यासकार अच्छे गल्प लेखक भी हों । उपन्यास में जीवन का दिव्यर्शन होता है मत्प में केवल शौकी मात्र होती है । मानव चरित्र के किसी एक पहलू पर प्रकाश डालने को किसी घटना या वातावरण की सृष्टि के लिए कहानी लिखी जाती है ।'^४ इसी कारण श्री डबल्यू० एच० हुडसन ने लिखा है कि 'कहानी और उपन्यास में केवल सभुता-बीरता की आकार और मात्रा की ही विभिन्नता नहीं है अपितु प्रकार का भी अन्तर है । डा० मपीरब मिश्र ने इन दोनों का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है—'तत्त्व की दृष्टि से यद्यपि उपन्यास और कहानी में मौलिक भेद नहीं है पर एक की कला पूर्ण विवरण में है और दूसरे की संक्षिप्त में । कहानीकार कथोपकथन वर्णन पात्र आदि में से किसी एक प्रकारान के साधन से संतुष्ट हो सकता है, परंतु उपन्यासकार केवल एक से ही काम नहीं चला सकते । उपन्यास का क्षेत्र प्रायः वस्तु-वर्णन के ही अंतर्गत है जबकि कहानीकार अपनी आंतरिक भावनाओं को यौतिकाम्य की भांति निराल दृष्टिगत रंग से ही व्यक्त कर सकता है जबकि कहानी में स्वानुभूति चित्रण का उपन्यास से अधिक अवसर है ।'^५ आचार्य जी ने कहानी और उपन्यास की कला पर विचारें करते हुए

१ कहानी का रचना विधान डा० जयप्रभा प्रसाद समई, पृ २० २१ ।

२ हिन्दी का सामयिक साहित्य, पं० बिस्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ १४६ ।

३ उपन्यास सिद्धान्त श्री इयामु सन्यासी पृ ३ ।

४ नया हिन्दी साहित्य—एक दृष्टि, श्री प्रकाशचंद्र गुप्त, पृ १०५ ।

५ काव्यशास्त्र डा० मपीरब मिश्र, पृ ९९ ।

लिखा है 'उपन्यास बहुधाही उत्कर है जिनमें यथेष्ट कथा आचार्य, अनगिनत भाव पुष्प गुच्छा और विविध पात्र चरित्र स्त्री फलों का समावेश रहता है यह भाव कल्पना और सत्य के सहारे उठाना हुआ एक अविनमक कल्पवृक्ष है । परंतु कहानियाँ मात्र एक कला के समान हैं । जो एक ही शाखा में बढ़ती चली जाती है—ऊपर की ओर एक पतली डीरी के सहारे । और वह डीरी होती बाल्य का चरम छोर—वहाँ मोहक पुष्प एवं गुच्छे नजर आते हैं । कहानी कला की भाँति अतिशय कोमल एक पात्र उम्मुज—मुग्धबालिका की भाँति परलय्य परलयना है । जब उसमें बहुत सावधानी से भाव—कल्पना और अभिव्यंजना का आरोप करना पड़ता है ।'^१

अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, उसमें सम्पूर्ण जीवन का विस्तार और व्यापक चित्र उपस्थित किया जा सकता है किन्तु कहानी की परिधि सीमित है जब उसमें जीवन की एक शकल मात्र प्रस्तुत की जा सकती है । उपन्यास में मानव-समाज की कितनी बहन व्याख्या सम्भव है, उतनी कहानी में नहीं । उपन्यासकार पूरी परिस्थिति और यथिशील जीवन की विवृति करता है जबकि कहानीकार एक जाब या प्रभाव विषय का चित्रण करता है । उपन्यासकार यदि विस्तृत है तो कहानीकार संक्षेपक । कहानी में प्रासंगिक कथाओं का अन्तर्ग नहीं होता जबकि उपन्यास में आधिकारिक कथा को सहायता देने के लिए प्रासंगिक कथाओं की भी योजना की जाती है । इस प्रकार अपनी संक्षिप्तता प्रभावोत्पादकता अनुभूति की तीव्रता एक ध्येयता आदि के कारण कहानी उपन्यास से सर्वथा स्वतंत्र सत्ता रखती है ।

पिछले पृष्ठों में हम आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों पर प्रकाश डाल चुके हैं अब यहाँ हम उनकी कहानियों पर संक्षिप्त विचार करेंगे ।

आचार्य जी की प्रथम कहानी 'सच्चा गहना' सन् १९१० में 'पुस्तकमी' में प्रकाशित हुई थी ।^२ उस समय से मृत्यु समय तक आचार्य जी ने लगभग चार सौ कहानियों की रचना की जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं । जैसा कि हम आचार्य चतुरसेन की रचनाएँ एवं उनके कथा-साहित्य का वर्गीकरण नामक अध्याय में लिखता चुके हैं कि आचार्य जी के अब तक २५ कहानी संग्रह

१ आतायन, आचार्य चतुरसेन पु ३१ ।

२ आतायन, आचार्य चतुरसेन, पु ३ ।

प्रकाशित हुए हैं। उनमें प्राप्त कहानियों को हमने वर्ण-वस्तु के आधार पर चार वर्गों में रखा है—१ प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक २ सामाजिक एवं राजनीतिक ३ मनोवैज्ञानिक ४ विविध।

आगे हम इसी वर्गीकरण के आधार पर आचार्य जी की समस्त कहानियों के कथावर्णकों का सम्मयन प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक कहानियाँ—

आचार्य जी ने अपने उपन्यासों की शक्ति ही विपिन काष्ठों से संबंधित कथाव्य १५० ऐतिहासिक कहानियों की रचना की है। इन कहानियों को हम निम्न पाँच वर्गों में रख सकते हैं—

१ पौराणिक कहानियाँ—अग्निमस्यु उपमस्यु पितृभक्त भवन प्रज्ञाव यज्ञ की घुब घुब भक्त मोहन पाँच पाँच उत्तक बंधुहास आदि।

२ जैन बुद्ध कालीन कहानियाँ—जैसे अम्बपातिका प्रबुद्ध मिशुपञ्ज कुमार सिद्धार्थ कुणास आदि।

३ मध्य-युग से संबंधित कहानियाँ—बसंत पूर्वाहुति भाट का बचन छात की आग नीर बादस हठी हम्पीर, रागु चौहान बेछा का ब्याह बस्तू जी चम्पावत आदि।

४ मुगल कालीन कहानियाँ—सिंहमङ्ग विजय काकाबख्श दे बुवा की यह पर, मुरजहाँ का कौतुक फता सिधोरिया जैसमेर की राजकुमारी बिदवासबाट लीया हुआ एहर, बाबर्षिन मेडते का सरदार, नीर बाळक हकीकतराम बाळक पुर्गदास बीबी रिहार्द पैर भीळ कुम्भा की टकवार, हस्ती बाटी में रखवाँका पठीर, बर्बर की राठ आदि।

५ अंगरेजी राज्यकालीन कहानियाँ—टीपू सुस्तान हैबरमली स्तूक के सहपाठी अंधेज नीर बाळक आदि।

अब हम उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर आचार्य चतुरसेन जी की ऐतिहासिक कहानियों का क्रम-सम्मयन करेंगे।

पौराणिक कहानियाँ

आचार्य चतुरसेन जी की पौराणिक कहानियाँ केवल 'भादसं बाळक' कहानी संग्रह में प्राप्त होनी हैं। अपने प्रारंभिक काल में बाळकों के मनोरंजन और ज्ञान वर्धन के उद्देश्य से उन्होंने पौराणिक कहानियों की रचना की थी। 'आम-साहित्य के अन्तर्गत इन कहानियों का विशिष्ट स्थान है।

कथानक की दृष्टि से यह पौराणिक कहानियाँ अत्यंत साधारण कोटि की हैं। इनका निर्माण पौराणिक घटनाओं और चरित्रों के आधार पर किया गया है। यह पौराणिक कहानियाँ भी दो प्रकार की हैं। १ पौराणिक आदर्श मानव वाक्यों से संबंधित जैसे अमिमम्बु, उपमम्बु, पितृभक्त श्रवण प्रह्लाद ध्रुव एक पाँच पाँच आदि और दूसरी कोटि में हम 'गडङ्ग जी' जैसी कहानियों को रख सकते हैं। किन्तु इन दोनों ही प्रकार की कहानियों की प्रधान विशेषता यही है कि इन सभी में मानव लोक और देव लोक दोनों से सम्बंधित घटनाएँ घटित होती हैं। बिलकूल पौराणिक ढंग से ही कहानीकार ने कहानी की घटनाओं को चित्रित किया है किन्तु प्रकार गडङ्ग को उत्पन्न होने में एक सहस्र वर्ष लगे किन्तु प्रकार के उत्पन्न होते ही आकाश में उड़ गए और किन्तु प्रकार बरसकर जाने पर वे मन्वान् विष्णु के बाहुन बने आदि घटनाओं को क्यों की क्यों कहानीकार ने पुराण की कहानियों से ले लिया है। वास्तव में इन कहानियों में केवल कहानी कहने का ढंग कहानीकार का अपना है और शेष सामग्री उसकी पुराणों से उधार ली हुई ही है। कहानीकार ने इन कहानियों को नकारमक बनाने का भी प्रयत्न नहीं किया है इसी कारण न उसने इनमें कार्य-कारण के संबंध का ध्यान रखा है और न ही उन्हें बुद्धि संगत बनाने का। इन कहानियों द्वारा वह कुछ-कुछ गुण भी जाग्रत करने में असफल रहा है। इस प्रकारकी कहानियों की घटनाएँ वास्तव में देव प्रेरित और देव चाकित ही हैं। अतः इनमें कहानी की नकारमकता सोचना ही व्यर्थ है।

जैन-बौद्ध कालीन कहानियों के कथानक

बुद्ध के मानव-प्रेम से प्रभावित होकर आचार्य चतुस्सेन जी ने कई कहानियाँ बौद्ध संस्कारों पर लिखी हैं। इस प्रकार की कहानियों में अम्बपालिका प्रबुद्ध भिक्षुपत्र वासववत्ता मृत्यु चूवन आचार्य उपगुण्ट कुमार सिद्धार्थ कुगाल आदि को ले सकते हैं।

कथानक

इस काल से सम्बंधित कहानियों में हम दो प्रकार के कथानक पाते हैं। प्रथम वे जो विलुप्त हैं एवं सम्पूर्ण जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आधारित हैं। और दूसरे वे जो किसी एक घटना को लेकर ही कथित हुए हैं। प्रथम वर्ग में हम अम्बपालिका प्रबुद्ध भिक्षुपत्र आदि कहानियों को रख सकते हैं और द्वितीय में सिद्धार्थ कुगाल आदि को। प्रथम प्रकार के कथानकों में कथा के

कई-कई मोड़ एक साथ प्राप्त होते हैं। प्रत्येक कथानक अपने में एक उपन्यास की सामग्री रखता है। उदाहरण के लिए हम आचार्य चतुरसेन जी की 'अम्बपालिका' नामक कहानी को ले सकते हैं। इसी कहानी के कथानक पर जाने चलकर आचार्य जी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'बेछासी की नपरबधू' की रचना की थी।

'अम्बपालिका' के कथानक का प्रारम्भ ऐतिहासिक ढंग से कथाकार ने किया है। वह इसमें एकदम कहानी कहना प्रारम्भ नहीं करता बल्कि प्रथम वह कहानी किस स्थान की किस काल की एवं किन इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों से संबंधित है इसका परिचय देने के पश्चात् मुख्य कथा को प्रारम्भ करता है। 'प्रबुद्ध' में बिना किसी भूमिका के ही वह कहानी प्रारम्भ कर देता है। प्रस्तुत कहानी का कथानक भगवान् बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं को लेकर बघसर हुआ है। इस कथानक में भी दो-तीन उपन्यासों की सामग्री प्राप्त की जा सकती है। इस कहानी के कथानक का विस्तार कितने ही मोड़ों को स्पर्श करता हुआ बघसर हुआ है। प्रथम मोड़—सुबोधन का सुबराज सिद्धार्थ की विरक्ति देख कर चितित होना। दूसरा मोड़—सुबराज के विवाह के लिए सभी देवों की राजकुमारियों को निर्मात्रित करना। तीसरा मोड़—सुबराज का राजनिधि यद्योपरा को देख कर आकर्षित होना। चौथा मोड़—यद्योपरा के प्रेमपाथ में बैठकर कुमार का कुछ काल के लिए अपने को विस्मृत कर बैठना। पाँचवाँ मोड़—सुबराज की अंतर्हित प्रबुद्ध सत्ता का कुछ समय के लिए जापत होना। छठा मोड़—सुबराज का गोपा के प्रेमपाथ में कैसकर अंतर्हित प्रबुद्ध सत्ता का पुनः मूर्च्छित हो जाना। सातवाँ मोड़—एक म्काम पुष्य को देखकर कुमार की अंतर्हित प्रबुद्ध सत्ता का पुनः सचेत हो जाना। आठवाँ मोड़—गोपा की व्याकुलता। नवाँ मोड़—कुछ समय के लिए राजकुमार एवं गोपा दोनों में ही मानसिक संतर्झ का प्रारम्भ। दसवाँ मोड़—सुबराज के पुत्र का जन्म। बाराहवाँ मोड़—एक भ्रमण से राजकुमार का मिलना और उसने पश्चात् उनके हृदय में वैराग्य का जापत होना। बारहवाँ मोड़—सभी बंधनों का अतिक्रमण कर राजकुमार का गृह त्याग कर बाहर निकल जाना। तेरहवाँ मोड़—राजकुमार द्वारा आंतरिक तैज से दीप्त होकर सिद्धि को प्राप्त करना। चौदहवाँ मोड़—राजपूत से सभ्यात् विचकार का भगवान् बुद्ध की धारण में आना। पंद्रहवाँ मोड़—भगवान् बुद्ध का ७ वर्ष पश्चात् कपिलवस्तु में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् प्रत्यावर्तित होना एवं अपने विद्या पुत्रोदन का आतिथ्य

स्वीकार करना और अंतिम मोड़ है अपनी मानिमी पत्नी यशोधर से मिलने के लिए स्वयं भगवान् बुद्ध का उसके समीप जाना और उसके द्वारा अपने पुत्र राहुल को बुद्ध की शरण में कर देना।

इस प्रकार इतने मोड़ों का समावेश करके उपन्यासकार ने इतने व्यापक और विस्तृत कथानक का निर्माण किया है। आचार्य चतुरसेन जी की कहानी 'भिक्षुपत्र' का कथानक भी इसी प्रकार विस्तृत है। उसमें प्रियदर्शी सम्राट् मशोक के पुत्र और पुत्री महेंद्र एवं संयमिता के बीच बतने के पश्चात् के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित किया गया है। इस प्रकार की कहानियों के कथानकों के निर्माण में आचार्य चतुरसेन जी ने उपन्यासों की भाँति ही भूमिका कहानी की समस्या का आरम्भ बड़े भारी कौतूहल चरम सीमा और उपसंहार—यादि विकास कर्मों का आशय किया है।

इस काळ से सम्बन्धित दूसरे प्रकार की कहानियाँ कुमार सिद्धार्थ कुलाक आदि में कथानक अपेक्षाकृत छोटे हैं। इसमें घटनाएँ भी स्पष्ट हैं। इनमें कथाकार ने चरित्र को प्रकट करने वाली कुछ प्रमुख घटनाओं को ही किया है। यह कहानियाँ बहुत कुछ पौराणिक कहानियों की भाँति ही हैं।

मध्य युग से सम्बन्धित कहानियों के कथानक

इस काळ से सम्बन्धित आचार्य चतुरसेन जी की कहानियों को भी हमें दो वर्गों में रखना पड़ेगा। प्रथम वर्ग में हम बसंत पूर्वाहुति भाट का कथन काळ की भाग कान्हू चौहान देसा का ब्याह आदि कहानियों को ले सकते हैं और दूसरे में बीर बादस हठी इम्मीर आदि कहानियों को रख सकते हैं। इस काळ की प्रथम वर्ग की कहानियों में भी कई-कई मोड़ों का समावेश मिलता है। इसमें भी नाटक की पाँचों अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। बसंत और पूर्वाहुति दोनों ही कहानियों के कथानकों का सम्बंध महाराज पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं से है। 'बसंत' कहानी का कथानक पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता हरण से संबंधित है। एक ब्राह्मण के मुल से संयोगिता के रूप का वर्णन सुनकर ही पृथ्वीराज अपने सामंतों सहित राजकुमारी संयोगिता को उसके स्वयंवर से हरण करने का प्रयत्न आ पहुँचते हैं। संयोगिता क हरण करने के पश्चात् उनके मार्ग में प्रयावर्तन के समय कितने ही अवरोध या उपरिघट होते हैं। जयचंद की विगाह बाहिनी से पृथ्वीराज का मार्ग अवरोध हो जाता है। वे अपने सामंतों को साथ के बढ़ते जाते हैं किन्तु जयचंद स्वयं सामने आकर उनका मार्ग

रोक सेना है यहाँ पर बड़े कलात्मक ढंग से कहानीकार कथानक को मोड़ता है। जयचंद अपनी पुत्री संयोगिता के कथन-मीलों को देख कर इविष्ट हो जाते हैं। इस मोड़ को किञ्चित् ध्यान से देखिए। उन्होंने (जयचंद ने) तलवार फेंक पृथ्वीराज की पाँच परिष्क्या करके कहा है कभीक के यज्ञ को बिनाइन बाध धीरे धीरे प्राप्त प्रिय पुत्री को हटाने वाले पृथ्वीराज दिल्ली का राज्य अपनी इज्जत और साध तुझे देकर मैं कभीक जाता हूँ।

राजा नीचा सिर किए, दूर तक पड़ी जगहों में होकर छोट रहे थे। मूरज छिय रहा था। पृथ्वीराज और उसके तैठालीस बंध हुए पूरा न बरबर छाती और उसी जगह में पड़ाव डाका।

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी को वह ही कलात्मक ढंग से मोड़कर उसे प्रभावशाली एवं स्वाभाविक बना दिया है। निश्चिन्त रूप से जयचंद की राजा होने के साथ-साथ एक पिता भी था। अपनी माइकी पुत्री के मेलों में कथन भाव देखकर उसका ममत्व व्यक्त हो जाता है। पिता होकर अपनी पुत्री के मुहाय को वह स्वयं मर्द करे यह कैसे सम्भव था? जयचंद के चरित्र में इसी कारण कहानीकार ने मानव सुलभ भावभावों का किञ्चित् भाव स्पर्श देकर प्रस्तुत कथा को कलात्मक एवं स्वाभाविक बना दिया है।

पुनर्जाति कहानी के कथानक का लेख अत्यन्त विस्तृत एवं विज्ञात है। इस छोटी सी कहानी के अंतर्गत चम्पूय 'पृथ्वीराज राधा' ऐस बृहत् महाकाव्य के कथानक को समेटने की चेष्टा की गई है। इसमें मुहम्मद गौरी के विभिन्न भाग्यमयों पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता व हरप और अंतिम बार गोरी द्वारा पृथ्वीराज के पराजित होने की घटनाओं को तथा सूत्र में अलस्युत किया गया है। इसका अंत भी राधो की भाँति ही हुआ है। जिस प्रकार चंद-कवि से प्रेरणा प्राप्त कर पृथ्वीराज गोरी को अपने शब्द भेरी बाग का सस्य बनाकर अंत में स्वयं चंद-कवि के साथ आत्महत्या करता है। इसी विचार कथानक पर प्रस्तुत कहानी आधारित है। स्पष्ट ही प्रस्तुत कथानक में एक बृहत् उपन्यास की मान्यता मरी गई है। बाग बनकर कहानीकार ने इसी कथानक पर अपने 'पुनर्जाति' (अथात् का व्याह) नामक उपन्यास की रचना की थी। जिसका नाम 'काहूँ बीहान' नामक कहानियों के कथानक भी पृथ्वीराज के जीवन से पित है।

‘भाट का बचन’ कहानी गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा कुमारपाल से सम्बंधित है। इस कहानी में उस काल की सामन्तशाही का एक पहलू प्रदर्शित किया गया है। वास्तव में यह एक भाट के उत्सर्ग की कहानी है। इस कहानी का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है। अपनी १३ वर्ष की आयु में गुजरात नरेश ने अपने करार मेरवाट के सिसोदिया राजा की कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। विवश होकर सिसोदिया राजा को अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना पड़ा। सिसोदिया का इष्टदेव थी एकछिम बा। और कुमारपाल जैनधर्मी था। अतः उसके राज्य महल में जाने से पूर्व जैन धर्म की शरणाग्रहण करना अनिवार्य था। किंतु राजकुमारी ने निश्चय कर लिया था कि मैं प्राण रक्षते ऐसा नहीं करूंगी। राजकुमारी को व्याहृ ने राजा का हाथ लेकर अयदेव भाट गए थे। उन्होंने राजकुमारी के हृद को देखकर बचन दे दिया आपको न जैन दीक्षा लेनी होगी और न ही जैन उपासना में जाना पड़ेगा यदि ऐसा करने को विवश किया गया तो प्रथम भाट का सिर कटगा—किर कुछ और होगा। ‘भाट के इस आश्वासन पर राजकुमारी ने पाठन जाना स्वीकार किया। किंतु राजा ने भाट के बचन की उपेक्षा करके रानी को जैन उपासना में जाने की आज्ञा दी। भाट ने सात समसाया किंतु राजा न माने। अंत में बुर्जर-सैन्य और भाटों में टन गई। दोनों दल परस्पर टकराने लगे ही थे कि इसी समय सीसोदिया रानी ने दोनों दलों के मध्य आत्महत्या कर ली। इसके पश्चात् रानी की जिता के साथ अयदेव और उसने परिवार के दो सौ भाई-बंध सिसोदिया रानी के साथ जाकर जाक हो गए।

‘सात की मांग’ का कथानक भी इसी काल से सम्बंधित है। इसमें भी कहानीकार ने सामन्तशाही काल के राजपूतों की मनोवृत्ति को प्रकट किया है। इसमें कथा बुर्जर-नरेश कुमारपाल और प्रसिद्ध गुपति अर्जोराज के पारस्परिक संबंध की है। इस संबंध का मूल कारण एक ऐसा रिवाज था जो उन दिनों गुजरात और राजपूताने के राजपूतों में प्रचलित था। गुजरात के राजपूत नंगा सिर रखने में कोई हानि नहीं समझते थे परंतु राजपूताने के राजपूत नंगा सिर रहना अतसम्पन्न समझते थे। बुर्जरेश्वर की बहन देवकदेवी साङ्गमरी नाथ अर्जोराज को प्यारी थी। एक दिन चौसर खेतों समय पक्षि ने पत्नी की गोद पीटते हुए बच्चा दिया ‘यह मात भंगे सिर बाका। इस पर देवकदेवी ने समझा कि उनके भाई बुर्जरेश्वर पर व्यंग्य किया गया है। इसी बात पर दोनों में बह विचार हो गया। यह विचार इस सीमा तक बढ़ा कि इसी बात को लेकर बुर्जरेश्वर और

अर्जुन का संमुख मुझ हुआ । अर्जुन पराजित हुआ और बंधी बना लिया गया । अंत में उसे मुर्खेश्वर ने बहन और गुह के बहने से मुक्त कर दिया । अंत में अर्जुन ने महीम सम्बंध स्थापित करने के लिए मुर्खेश्वर कुमारपाल से अपनी पौढ़सी पुत्री मिलन कुमारी का विवाह कर दिया ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कथाओं में मुख्य कथा के साथ-साथ सहायक कथा की भी कहानीका ने सृष्टि की है । इन कहानियों की भी भाव भूमि कम्बी-बौड़ी है इनमें व्याख्या का अंश अधिक और संवेदना का अंश मूल है ।

इस काल से सम्बंधित दूसरे प्रकार की कहानियों के कथानक सरल संक्षिप्त एवं उपदेशात्मक है । इनमें कथाकार का प्रमुख उद्देश्य कहानी के माध्यम से एक अतिरिक्त विषय के कुछ आदर्श गुणों को सामने रखने का रहा है ।

मुगलकालीन कहानियों के कथानक

आचार्य चतुरसेन जी की अधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ इसी काल से सम्बंधित हैं । इस काल से संबंधित कहानियाँ दो प्रकार की हैं—१ जिनमें मुगल ऐश्वर्य एवं भोज विकास का चित्रण हुआ है और २ जिनमें राजपूती शौर्य का वर्णन किया गया है । अपनी इस प्रकार की कहानियों की रचना के संबंध में आचार्य जी ने एक स्तान पर स्वयं कहा है 'इस भावना से कि जन्मत में क्षत्रिय हैं मेरा ममत्व क्षत्रिय पर उमड़ जाया । बचपन ही में एक छोटी सी पुस्तक मेबाढ़ का इतिहास वहीं से मेरे हाथ आ गयी थी । 'उन दिनों रात को मैं बहुधा पिता जी को जमे पढ़कर सुनाया करता था । उसमें बतित कीर अतिरिक्त कुछ ऐसे मेरे मन पर अंकित हो गए और मेरे मन का क्षत्रिय का ममत्व उनमें मिलकर कुछ ऐसा रस उसमें उत्पन्न कर गया कि इस समय भाव व्यक्तित्व में समर्प होकर मैं राजपूत शौर्य और उत्सर्ग के रेखाचित्र कहानियों में चित्रित करने लगा । मेरी राजपूत वातावरण की कहानियाँ खूब उभरीं । राजपूती का बयान करने-करते स्वाभाविक ही ऐति पर मेरी कलम मुगल बैभव पर रपट गई और इस प्रकार मुगल जीवन पर लिपी हुई उल्हासीन मेरी कहानियाँ भी एक प्रीढ़ हा गई । ...राजाओं के बैभव में अपनी भावों से इट्टी दिनों देव रहा था । बड़ी-बड़ी मानदार शक्तों मेरी राजमहलों में हो चुकी थी । अधाओं में पके हुए मुगल नाम इति के लिए ये सब बातें कम प्रभावशाली न

थीं। इसी से बीमद बिलास-ऐश्वर्य का ऐसा मह्य रंग मेरे मानस पर पड़ गया कि उसे मैंने अपनी कहानियों में दोनों हाथों से ढकीया। एक रोपिणी राजकुमारी को देखने जब मैं अन्त-पुर में पहुँचा तो मैंने देखा, मकड़ी के बासे के समान परिवार में एक प्रकार से वह लगी उस कच्छ में बीस रही थी और उसके अंग पर लाखों स्पर्शों के अबाहियत थे। इतने बड़े-बड़े मोटी मैंने कभी न देखे थे— अंगूर के बराबर। 'तुलना मैं कैसे करूँ' कहानी में मैंने उसी राजकुमारी को उसके सारे ही शू गार बिलास छहित अपने पाठकों के सम्मुख ला लड़ा किया है।'

भाचार्य भी की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियाँ विद्येयत इसी काल की हैं। 'तुलना मैं कैसे करूँ' 'आलादल बाबचिन' बहुत पत्रक बस ताज प्यार, कर्णपा दुर्ग कुम्भा की तलवार, हस्ती बाटी में बाण बधु सोया हुआ शहर आदि भाचार्य भी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानियाँ इसी काल से संबंधित हैं। 'मुगल बादशाहों की अनोखी बातें' नामक कहानी संग्रह की समस्त कहानियाँ इसी काल से सम्बंधित हैं। इस संग्रह में १९ कहानियाँ हैं। इनमें से मुख्य हैं— शरबी की बात शरब की सुराही में गुरवही ना कौतुक हाया-नाई, सब मास बादशाह सखामत का बहादुरी की तरानू गर्बिये की मरम्मत एक सवाल के बार अबाब बीस साल रुपये की जूनिया आदि। इसी प्रकार की कुछ कहानियाँ भाचार्य के 'बीर पाबा' नामक कहानी संग्रह में भी हैं जैसे दिल्ली दरबार में शिवा जी राजे रघुपति सिंह आदि। इसके अतिरिक्त 'बिहगड़ बिजय' 'तुलना मैं कैसे करूँ सजनी' 'राजपूत बच्चे' 'बीर बाबक' बुलबुल हजार बास्तान आलादल आदि कहानी संग्रहों में इस काल से सम्बंधित भाचार्य भी की लगभग ७० कहानियाँ प्राप्त होती हैं।

इस काल से सम्बंधित कहानियों में तीन प्रकार के कथानक प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकार के वे कथानक हैं जो लम्बे और ग्राहकीय दुर्गों से पूर्ण हैं। जैसे संका कर्णपा दुर्ग कुम्भा की तलवार, हस्ती बाटी में अकुलकजल बस पाज बानी आदि कहानियों के कथानक। दूसरे प्रकार के वे कथानक हैं जो संक्षिप्त सांकेतिक चमत्कार प्रधान एवं ककारक हैं जैसे 'तुलना मैं कैसे करूँ', 'आलादल' 'सोया हुआ शहर' बाबचिन आदि कहानियों के कथानक। तीसरे प्रकार के वे कथानक हैं जो संक्षिप्त तो हैं किन्तु साक ही वे न ककारक ही हैं और न ही उनमें सांकेतिकता ही है। ऐसे कथानकों में हम 'मुगल बादशाहों की

अनोखी बातों 'उज्ज्वल बन्धे 'बीरमाया' आदि कहानी संग्रहों के कथानकों को ले सकते हैं। अब हम आगे इन तीनों प्रकार के कथानकों का संक्षेप में असम-असम अध्ययन करेंगे।

प्रथम प्रकार के कथानकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनका विस्तार और मातृकीयता। बौद्ध कालीन एक मध्ययुग से सम्बंधित कहानियों के प्रथम प्रकार में जैसा विस्तार प्राप्त होता है बहुत कुछ वैसा ही विस्तार इन कहानियों में प्राप्त होता है। इनमें कथाकार ने एक ही कथानक में एक सम्पूर्ण युग को साकार करने का प्रयत्न किया है। इन कहानियों में तत्कालीन वातावरण को स्पष्ट करने के लिए वर्णनात्मकता का आश्रय अधिक लिया गया है। इसके साथ-साथ इस प्रकार की कहानियों में कथाकार ने विविध भाव चित्रों को उभारने की ओर भी ध्यान दिया है। इसी कारण से यह कहानियाँ छम्पी होने पर भी रोचक बन पड़ी हैं। उदाहरण के लिए हम 'शंका' कहानी को ले सकते हैं। इसमें कथा के साथ-साथ इस युग का प्रत्यक्ष चित्रण भी है। आत्ममगीर की मृत्यु के पश्चात् भारत की राजनीतिक अवस्था किस प्रकार की हो गई थी इसको इसमें वर्णनात्मक ढंग से उभारा गया है। आत्ममगीर ने इन कहानियों के हाथ आचार्य जी ने इस युग के आदर्श और त्याग के साथ-साथ राजपूरी मान पर मर पिटेने का बड़े संकल्प रखने वाले चरित्रों को प्रस्तुत किया है।

इस काल से सम्बंधित दूसरे प्रकार की कहानियाँ अधिक कलात्मक एवं सजीव हैं। इनमें कथानकों के चित्रपट संक्षिप्त एवं संकेतात्मक हैं। इस प्रकार की अधिकतर कहानियों के कथानकों के निर्माण में प्रसिद्ध स्वाभाविक घटनाओं के घटने का प्रमुख हाथ रहना है। साथ ही साथ इनमें सांकेतिकता एवं वातावरण निर्माण की संतुष्टता भी प्राप्त होती है। कथा को अग्रसर करने के लिए संयोगों का भी आश्रय लिया गया है। उदाहरण के लिए हम आचार्य जी की प्रसिद्ध कहानी 'बुलबा में कासे बहू मोरी सजनी को लेते हैं। इसमें कथानक का प्रारंभ आदशाह की एक विवाहिता बेगम सलीमा को लेकर होता है। आदशाह संसृजत के संसर्गों से दूर रहकर अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ प्रेम और आनन्द की कसौटि करने उस लेकर बरमौर के दोस्तघराने में चले जाते थे। यहाँ आदशाह ने अपनी बेगम की सिबमत्र एक कमठिन, मुस्लिम बानी पर सौर ही थी इस बोटी ओर सलीमा को लेकर ही कथानक अग्रसर होता है। सलीमा जीवन के लगे में अस्त्र बाँधी क हाथों से मन्दि पीयी जाती है अंत में वह उसी में बेमुग हो जाती है। बाँधी बन्तुन उसका एक अज्ञात प्रेमी

या या अपनी प्रेमिका के साम्राज्य का साम ठठाने के लिए बाँधी के बेश में रहने लगा था। सलीमा उससे सर्वथा अनभिज्ञ थी। अपनी प्रेयसी को बेमुश्किल बेखबर वह अपने को उस एकान्त में रोकन से असमर्थ हो गया। उसने इस बेमुश्किल अवस्था में अपनी प्रेमिका के कपोलों पर एक चुम्बन अंकित कर दिया। कमानक का विकास इसी बटना से होता है। इसके पश्चात् कमा को अग्रसर करने के लिए कपाकार ने संयोग का आश्रय लिया है। जिस समय बाँधी ने सलीमा के कपोलों पर चुम्बन अंकित किया इसी समय संयोग से वहाँ बाबसाह का उपस्थित होते हैं। वे बाँधी की इस बुद्धता को देख लेते हैं। इस संयोग से कमानक में नाटकीय विकास होता है। बाबसाह को ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में वह बाँधी पुरुष है। उसने लिए वे आज्ञा देते हैं वह जाने में ड्रासकर भुजों मार डालने की। सलीमा की मूर्छा दूर होने के पूर्व ही यह सम्पूर्ण बटना घटित हो जाती है। उसे ज्ञात भी नहीं हो पाता कि बाबसाह उससे क्यों अग्रसर हो गए। वह बाबसाह के समीप पन भिजती है किन्तु वे अग्रसरता में बिना पन पड़े ही सलीमा को मर जाने को कह देते हैं। सलीमा के गारी हृदय पर ठेस पहुँचती है। वह बाँधी यात्री बटना से अब भी अपरिचित है अतः अन्तिम पन बाबसाह को बिलकर वह हीरा जाट लेती है। उसकी मृत्यु के पश्चात् बाबसाह को वास्तविक बटना का पता उस बाँधी कपी पुरुष से ही होता है। बाबसाह को हार्दिक दुःख होता है। इस कहानी का अन्त बड़ा ही द्रव्यमय है। देखिए— 'सलीमा की मृत्यु को बस दिन बीत गये। बाबसाह सलीमा के कमरे में ही दिन रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के सुरमुट में सलीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस छिड़की के पास सलीमा बैठी उस दिन रात को बाबसाह की प्रतीक्षा कर रही थी उसी छिड़की में उसी चौकी पर बैठे हुए बाबसाह उसी तरह सलीमा की कब्र दिन रात देखा करते हैं। किसी को पास आने का हुनम नहीं। अब बाँधी रात हो जाती है तो उस गम्भीर रात्रि के सभाटों में एक मर्म भेदिनी पीठ ध्वनि उड़ जाती होती है। बाबसाह साफ-साफ सुनते हैं कोई कब्र कोमल स्वर में गा रहा है—

‘दुखना मैं काश नहीं मोरी सजनी ।

इसी प्रकार संयोगों एवं क्रमबद्ध घटनाओं को आश्रय बनाकर विकसित होने वाली कई अन्य प्रमुख कहानियाँ और भी हैं। यहाँ हम केवल इस प्रकार की तीन कहानियाँ बाबबिल साताहन एवं सोया हुआ घर का ही विवरण और प्रस्तुत करेंगे।

'बाबर्चिन' नामक कहानी के कथानक का प्रारम्भ ही संयोग से होता है। इस कहानी में अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के पतन काल का और मुगल बेगमात के आसुओं का जो कमी बेबल हीरे, मोती इन और ऐदवर्ग ही को जानती थी ऐसा सचिन देखा चिप है, जो हृदय में पाव कर जाना है। प्रस्तुत कथा का प्रारम्भ सम्राट की पत्नी शाहजादी मुलबानू की कथा से होता है। एक दिन मुलबानू अपनी पालकी में बैठी लाल किले की ओर आ रही थी। संयोग से पालकी का एक बूड़ा कहार ठोकर जाकर गिर पड़ा। अनिष्ट होने के कारण उठने की चेष्टा करने पर भी वह उठ न सका। पालकी का एकना या कि अफसर ने चाबुकों की मार से कहार के प्राण ले लिए। कहार के स्थान पर उसने कुछ अपराध कहकर एक मकसूबक को लपाना चाहा किन्तु अपराध उस मकसूबक को सहन न हुए उसने उस अफसर का विरोध किया। परिणामस्वरूप उसे भी चाबुक की मार खाकर वहीं गिर जाना पड़ा। कथा का विकास दूसरे संयोग से होता है। शाहजादी मुलबानू ने संयोग से सभी घटना स्वयं अपनी आँखों से देखी थी। उन्होंने बादशाह से स्वयं उस अफसर की निर्दोषता कह मुनाई। परिणामस्वरूप बादशाह ने उस निर्दम अफसर (जमीर) को पदच्युत करके उसके स्थान पर उसी उरण को रखने की आज्ञा दे दी। उस उरण का नाम इलाहीबख्श था। उसके साहस और धैर्य पर मुगल होकर शाहजादी मुलबानू उससे प्रेम करने लगी थी। इस प्रेम का साम उस उरण ने उठाना और वह बादशाह की नाक का बाल बन बैठा। फिर कथानक का विकास इस संयोग के बाद वर्ष के परबाद की एक घटना से होता है। सन् १८५७ का पदर हो गया था। बादशाह कुछ विश्वासपात्रियों के विश्वासपात के कारण पराजित हो गए थे। संयोग से इन विश्वासपात्रियों का प्रधान इलाहीबख्श ही था जो शाहजादी को कृपा के कारण एक उच्च पद पर पहुँच चुका था। इसी विश्वासपात्री ने अपने आभयशाता बादशाह को निरीह रगा में हुमायूँ के महबरे में गिरफ्तार भी करवाया था।

इसके परबाद कथानक का अरम विकास एक संयोग के द्वारा ही संजोया गया है। संयोग से शाहजादी मुलबानू जीवित बच गई थी। उपर्युक्त घटना के तीन वर्ष परबाद पुनः एक घटना घटित होती है। संयोग न रही शाहजादी मुलबानू जिसने एक बार इलाहीबख्श की प्राण रक्षा की थी—उसी विश्वासपात्री के यहाँ एक बाबर्चिन क रूप में जा पहुँचनी है। एक दिन घटनाबय जब इलाहीबख्श को शाहजादी—बाबर्चिन के मुग से ही उसकी सम्पूर्ण

या जो अपनी प्रेमिका के सामिप्य का काम उठाने के लिए बाँधी के बेध में रहने लगा था। उसीमा उससे सर्वथा अलगिष्ट थी। अपनी प्रेमिका को बेमुश्किल देखकर वह अपने को उस एकाग्र में रोकने से असमर्थ हो गया। उसने इस बेमुश्किल अवस्था में अपनी प्रेमिका के कपोलों पर एक बुम्बल अंकित कर दिया। कपोलक का विकास इसी बटना से होता है। इसने पदचातू कमा को अग्रसर करने के लिए कपोलक में संयोग का आशय सिद्धा है। जिस समय बाँधी ने उसीमा के कपोलों पर बुम्बल अंकित किया इसी समय संयोग से वहाँ बादशाह का उपस्थित होते हैं। वे बाँधी की इस बुम्बल को देख लेते हैं। इस संयोग से कपोलक में नाटकीय विकास होता है। बादशाह को ज्ञात हो जाता है कि वास्तव में वह बाँधी पुरुष है। उससे किए वे आज्ञा देते हैं तद्द्वारे में डालकर मुँहों मार डालने की। उसीमा की मुँहों दूर होने के पूर्व ही यह सम्पूर्ण घटना बटित हो जाती है। उसे ज्ञात भी नहीं हो पता कि बादशाह उससे क्यों अप्रसन्न हो गए। वह बादशाह के समीप पत्र भेजती है किंतु वे अप्रसन्नता में बिना पत्र पढ़े ही उसीमा को मर जाने को कह देते हैं। उसीमा के गारी हृदय पर ठेस पहुँचती है। वह बाँधी वाली बटना से अब भी अपरिचित है अथ अन्तिम पत्र बादशाह को लिखकर वह हीरा जाट लेती है। उसकी मृत्यु के पदचातू बादशाह को वास्तविक बटना का पता उस बाँधी अपनी पुरुष से ही होता है। बादशाह को हार्दिक दुःख होता है। इस कहानी का अन्त बड़ा ही ककारमक है। देखिए— 'उसीमा की मृत्यु को दस दिन बीत गये। बादशाह उसीमा के कमरे में ही बिन पत्र पढ़ते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के शुरुमुट में उसीमा की सफेद कब्र बनी है। जिस छिड़की के पास उसीमा बैठी उस बिन रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी उसी छिड़की में उसी बीबी पर बैठे हुए बादशाह उसी रात उसीमा की कब्र बिन रात देखा करते हैं। किसी को पास जाने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है तो उस मन्वीर रात्रि के सपना में एक मर्म भेदिनी पीठ ध्वनि जड़ बड़ी होती है। बादशाह घाघ-साक मुमते हैं कोई कस्म कोमल स्वर में या रहा है—

'बुधबा मैं कासे कहुँ मोरी सजनी ।

इसी प्रकार संयोगों एवं क्रमबद्ध बटनाओं को आशय बनाकर विकसित होने वाली कई अन्य प्रमुख कहानियाँ और भी हैं। यहाँ हम केवल इस प्रकार की तीन कहानियाँ आशय साकार्य एवं सोमा हुआ पाहूर का ही विवरण प्रस्तुत करेंगे।

'बाबर' नामक कहानी के कथानक का प्रारम्भ ही संयोग से होता है। इस कहानी में अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के पतन का काल का और मुगल बेगमात के आंगुलों का जो अभी केवल हीरे मोती इन और ऐश्वर्य ही को जानती थी ऐसा मन्दिन रत्ना चित्र है जो हृदय में याद कर जाता है। प्रस्तुत कथा का प्रारम्भ सम्राट की पौत्री शाहबादी मुल्बानू की कथा से होता है। एक दिन मुल्बानू अपनी पालकी में बैठी सात फिके की ओर आ रही थी। संयोग से पालकी का एक बूड़ा बहार टोकर लाकर गिर पड़ा। अमित होने के कारण उठने की चेष्टा करने पर भी वह उठ न सका। पालकी का इकना या कि अफसर न चाबुकों की मार से बहार के प्राण ले लिए। बहार के स्वाम पर उसने कुछ अपराध कहकर एक नबयुवक को लगाना चाहा किन्तु अपराध उस नबयुवक को सहन न हुए, उसने उस अफसर का विरोध किया। परिणामस्वरूप उसे भी चाबुक की मार लाकर वहीं गिर जाना पड़ा। कथा का विकास दूसरे संयोग से होता है। शाहबादी मुल्बानू ने संयोग से सभी पटना स्वयं बननी भाँचों से बैठी थी। उन्होंने बादशाह से स्वयं उस अफसर की निर्दयता कह सुनाई। परिणामस्वरूप बादशाह ने उस निर्दय अफसर (जमीर) को पदच्युत करके उसके स्वाम पर उसी तरह की रक्त की आज्ञा दे दी। उस तदन का नाम इलाहीबख्श था। उसका साहस और सौंदर्य पर मुगल होकर शाहबादी मुल्बानू उससे प्रेम करने लगी थी। इस प्रेम का काम उस तदन ने उठाया और वह बादशाह की नाक का बास बन बैठा। फिर कथानक का विकास इस संयोग के बारह वर्ष के पश्चात् की एक घटना से होता है। सन् १८५७ का पर्व हो गया था। बादशाह कुछ विद्रोहवाजियों के विद्रोहवाज के कारण पराजित हो गए थे। संयोग से इन विद्रोहवाजियों का प्रबाल इलाहीबख्श ही था जो शाहबादी की कथा के कारण एक उच्च पर पर पहुँच चुका था। इसी विद्रोहवाजी ने अपने आभयगाथा बादशाह को निरीह रमा में हुमायूँ के मकबरे में विरस्तार भी करवाया था।

इसके पश्चात् कथानक का अरम विकास एक संयोग के द्वारा ही संजोया गया है। संयोग से शाहबादी मुल्बानू जीवित बच गई थी। उपयुक्त घटना के तीन वर्ष पश्चात् पुनः एक घटना बटित होती है। संयोग से वही शाहबादी मुल्बानू जिसने एक बार इलाहीबख्श को प्राण रजा की थी—उसी विद्रोहवाजी ने वही एक बाबरिन के रूप में आ पहुँचती है। एक दिन घटनाबच जब इलाहीबख्श को शाहबादी—बाबरिन के मुक से ही उसकी सम्पूर्ण

नी की भीष माँगने लगी। कथा में एक नाटकीय परिवर्तन होता है। हजादे ने साहाय्य की बात पृथक् करने का वचन दिया किन्तु जब सामान्य प्रसन्नता में साहज्यादे के शरणों पर से मुक्त उठाकर उसके मुक्त की ओर देखा। वह 'मा सुदा' कहकर साहज्यादे की ओर से ही बेहोश होकर मुड़क गई। पा के अंत में कथाकार इस रहस्य का उद्घाटन करता है कि वास्तव में साहज्यादे ही वह गवैया था जिससे कासाबब प्रेम करने लगी थी। प्रस्तुत जानक भी संयोगों के माध्यम से बड़े कलात्मक रूप से चरम सीमा तक पहुँचाया गया है। अन्त भी बड़ा ही नाटकीय एवं ब्यथारमक है। सम्पूर्ण कथानक विनाश में कथाकार ने कार्य कारण का ध्यान रखा है तभी कथा स्वाभाविक एवं आकर्षक बन पायी है। आचार्य जी की इस कहानी को पढ़कर प्रेमचन्द जी की 'विमल की रानी' और 'भाँसा' कहानी स्मरण हो जाती है। उन दोनों का भी इसी प्रकार आकस्मिक अन्त हुआ है।

'सोया हुआ सहर' का कथानक भी बहुत कुछ इसी प्रकार का है। उसमें साहज्यादे लुरम अपनी प्रेमिका ताजमहल के मामले में कपी में जाता है। उसमें भी कथा का विकास संयोगों के माध्यम बनाकर होता है। अंत उसका भी बड़ा ही नाटकीय एवं आकर्षक है।

इस प्रकार की कहानियों की सर्वप्रधान विशेषता है इनका तर्कित रूप से अंत होना। वास्तव में इस प्रकार की कहानियों की समाप्ति पर पढ़ाई इतने शेर से पिरता है कि सारी चमक करनेवाली शीपावतियाँ एक साथ ही बुझ जाती हैं। और अंधकार का साहाय्य छा जाता है जहाँ बातावरण बनसुक्त मय अतुष्पाय के मानियों के कोलाहल से पूर्ण था। वहाँ समस्त भूमि की तीक्ष्णता छ जाती है। "इन कहानियों में घटनाओं का संयोग उनकी आकस्मिकता की मगरूरी ही सर्वापरि सर ठाने लड़ी रहती है।"

इसकाक से संबंधित तीसरे प्रकार की कहानियों के कथानकों में से यह प्रीकृता ही है और न ही ऐसी कथारमकता ही। ऐसे कथानकों का निर्माण केवल किसी घटना विशेष के प्रदर्शन के लिए ही हुआ है। जैसे 'भुमक बाबराहों की मनोबली बातें' नामक कहानी संग्रह में जितनी भी कहानियाँ हैं उनका उद्देश्य केवल मात्र भुमक बाबराहों की चरक का दिखाने मात्र का है। 'बीर माया' 'आदर्श बच्चे' 'राजपुत्र बच्चे' आदि कहानी संग्रहों में जो इस काल से संबंधित

कथानक हैं उनका उद्देश्य भी केवल मात्र एक या दो बटनाओं के माध्यम से उन भावार्थ अथवा बीर बालकों के चरित्र के उद्घाटन का रहा है।

अंग्रेजी राज्य-कालीन ऐतिहासिक कहानियों के कथानक

इस काल से सम्बंधित अधिकांश कहानियों के कथानक या तो मुगल शासन के अन्तिम समय से सम्बंधित हैं अथवा किसी क्रांति या राजा से सम्बंधित। मुगल शासन के अन्तिम समय से सम्बंधित अधिकांश कथानकों जैसे बाबरचिन पानवासी आदि को हम पीछे से चुके हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय क्रांति से सम्बंधित कहानियों को हम राजनीतिक कहानियों में आगे लेंगे। यहाँ केवल हम अंग्रेजी राज्य कालीन राजाओं की कहानियों के कथानकों जैसे राजा साहब की कुतिया राजा साहब की पठसून मुहम्मद आदि को लेंगे। इस प्रकार कहानियों में कहानीकार ने उन राजा रईमों के विनाससमय बाधनापूर्वक एवं बरक्षित जीवन के रेखा-चित्र लीने हैं, जिन्हें अंग्रेज शासकों ने एकदम निष्क्रिय एवं विनासी बना दिया था। 'मुहम्मद' नामक कहानी में मुहम्मद नाम की एक बेव्या एवं एक विनासी कामुक राजा के जीवन की कथा कही गई है। किस प्रकार बेव्या ने डाक्टर से मिलकर राजा के विरुद्ध पद्धत करके उन्हें बिर दे दिया और किस प्रकार उसके हाथ उड़ाने गए उस लाल रुपये राजा की मृत्यु के परभाव उसे मूर्ख बनाकर बनेसे डाक्टर ने हक लिये—इसका अर्थवत्त सजीव चित्रण इस कथानक के माध्यम से आचार्य जी ने किया है। इसी प्रकार 'राजा साहब की कुतिया' और 'राजा साहब की पठसून' में राजा रईमों की समक बड़क हिमाकृत एवं फजूसकर्षी की हास्यास्पद बटनाएँ बखित हैं।

ऐतिहासिक कहानियों के कथानकों की निर्माणा विधि

जैसा कि हम पीछे लिखना चुके हैं कि आचार्य चतुरसेन जी की विभिन्न कालों से सम्बंधित लयमग बेड़ ही ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। इन कहानियों के निर्माण में आचार्य जी ने कुछ विशिष्ट विधियों का प्रयोग किया है। यहाँ हम उन्हें संक्षिप्त रूप में देखने का प्रयास करेंगे।

१. किसी इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन के लम्बे भाग को लेकर कथानक का निर्माण करना जैसे प्रबुद्ध चतुर्पत्र आदि।

२. किसी इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन की कुछ प्रमुख बटनाओं को लेकर उन पर कथानक का ढांचा लड़ा करना जैसे कृपाक बाला दुर्गाराज सिंहपट्ट बिजय पूर्वाहृति बखत आदि।

को लेकर उन पर कथानक का ढांचा लड़ा करना जैसे कृपाक बाला दुर्गाराज सिंहपट्ट बिजय पूर्वाहृति बखत आदि।

१ कुछ कविन एवं कुछ ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र को प्रकट करने वाली कुछ प्रमुख घटनाओं को ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण करके दिखाना। जैसे 'बाबबिन' 'बुलबा में कासे कर्हू' आदि।

४ लम्बी कहानियों के कथानकों के साथ सहायक कथानकों की भी व्यवस्था हुई है। यह सहायक कथानक नाटक में प्रकृति की भाँति मूल कथा के साथ जोड़ी दूर तक जानकर रुक गया है। जैन 'हल्दी भाटी में' नामक कहानी में समुन्द्र परवार की कथा दूसरे प्रकार के सहायक कथानक है जिसका प्रयोग पत्राका की भाँति मूल कथा में आदि से अन्त तक हुआ है। जैसे 'भाट का वचन' नामक कहानी में अग्नेय भाट की कथा।

५ उनकी अधिकांश ऐतिहासिक कहानियों का प्रारंभ वातावरण निर्माण करते हुए होता है। ऐसी कहानियों के कथानकों में जेग उस समय आता है जब कोई सहायक कथा मूल उसमें आ मिलता है।

६ उनकी ऐतिहासिक कहानियों में घटना को प्रस्तुत करने की निम्न दो विशेषतायें उल्लेखनीय हैं। प्रथम-घटना की व्यवस्था के प्रथम उसके ही अनुरूप चरित्र या चित्रण की एक पीठिका प्रस्तुत होती है जैसे बाबबिन काकापल बुलबा में कासे कर्हू आदि कहानियों में दूसरे-घटनाओं के ही माध्यम से वे अपनी कहानियों में नाटकीयता और स्वतंत्रता की सृष्टि करते हैं जैसे प्रबुद्ध बुलबा में कासे कर्हू खोया हुआ गहर आदि कहानियों में। तीसरी एक प्रमुख विशेषता और है। उनकी अधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ प्रसाद जी की भाँति भावार्थक हैं। उन्होंने इन कहानियों को तात्त्विक अर्थवत् से बहुत कम लिखा है। उनके मन में जो भी वही भावनायें उठीं उसके अनुरूप या तो उन्होंने इतिहास से कोई कथासूत्र लूट निकाला या अपने कल्पना बोक से उसकी सृष्टि कर ली और उसमें अपनी सहज अनुभूतियों और भावनाओं को पिरो दिया यही कारण है कि उनकी प्रायः समस्त कहानियाँ भावार्थक हो गई हैं। और भावार्थक कहानियों की अपनी स्वतंत्र विस्पष्टि होती है वे सर्वथा एक-एक रूप में स्वतंत्र और मौलिक होती हैं। अतएव प्रसाद जी की कहानियों के समान ही आचार्य जी अपनी कहानियों में घटना के प्रस्तुत करने में चरित्र चित्रण के निर्माण में सिद्धांत प्रतिपादन और वातावरण की व्यवस्था में बिस्फुरक मौलिक सिद्ध हुए हैं।

१ हिन्दी कहानियों की विस्पष्टि का विकास, डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा पृ २२९।

सामाजिक कहानियों के कथानक

कोई कहानी सामाजिक है ऐसा कहने से इतना तो निश्चित हो जाता है कि सम्पूर्ण इतिवृत्त का सम्बन्ध उस वस्तु स्थिति से है जो मुक्त व्यापक समाज में फैली है। वह समाज भारतवर्ष का हो सकता है अमेरिका का अथवा किसी भी देश का हो सकता है। समाज के भीतर व्यक्तिगत जीवन भी आता है और कौटुम्बिक अथवा सामाजिक भी। व्यक्ति और समाज के साथ उसकी सम्पूर्ण इयत्ता का संयोग होने के कारण अतिनी भी उपदेश अर्थात् संस्कृति से संबद्ध बालें होंगी वे भी इसके अंतर्गत आचार्यणी। इस प्रकार सामाजिक कह देने से बड़ी ही व्यापकता का बोध होया और विद्विष्टा-विधायक कोई बात स्पष्ट होयी नहीं। फिर भी व्यापक वर्गीकरण के विचार से इतना संकेत तो मिल ही जाता है कि इस वर्ग की कहानी में समाज के किसी अथवा अथवा रूप का उल्लेख मिल सकता है।^१

आचार्य जी ने सौ के लगभग सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों का समस्य के अनुसार वर्गीकरण करना निश्चित रूप से कठिन है कारण आचार्य जी ने कृतियाँ बर की समस्याओं पर लेखनी जसाई है। यहाँ हम केवल इनकी कुछ प्रमुख समस्याओं पर आधारित कहानियों के कथानकों का विवेचन करेंगे।

आचार्य जी ने अपनी इस प्रकार की कहानियों में वैवाहिक समस्याएँ यथा बहेज की समस्या बहेज के प्रसंग पर सम्बन्धियों में मन मुटाव बड़की पर्यट करमा विवाह के अवसर पर पारस्परिक संघर्ष स्त्री-पुरुष के मध्य प्रेम को विवाह का आधार बनता है आदि तथा विधवा समस्या वैसा समस्या प्रेम का झूठा मोह दिखलाकर पुरुष द्वारा नारी को प्रवर्धित करने की समस्या स्त्री धिटा, माटी स्वातन्त्र्य बूढ़ एवं बाल विवाह अर्थात् सुधारवाद के नाम पर होने वाले पापाचार, रिश्ता आदि का अत्यन्त यथार्थ-विश्रम प्रस्तुत किया है।

माटी की विधवाताओं, बड़की दुर्बलताओं एवं पुरुषों द्वारा प्रवर्धित किए जाने का विषय आचार्य चतुरसेन जी ने अपनी 'टार्ज कास्ट' 'बक्समोर' 'सविता' 'विचाराभम' 'पतिता' 'कहानी कात हो गई' 'जापानी बासी' 'टुट्टानी' 'फिर' 'डिडीका' 'कमानात' 'पत्थर में बंदुर' 'प्रथम बंध' 'बेसा' 'हिरपेन' 'सोने की बली' 'भूजिक मास्टर' 'दूध की धार' आदि कहानियों में किया है।

१ कथानी का रचना विधान, डा० जयप्रकाश प्रसाद शर्मा, पृ १११।

'टाई साइट' में एक पुस्तक की चारित्रिक दुर्बलता का विमर्श किया गया है। एक विधवा की विनय नाम का एक पुस्तक किस प्रकार प्रबंधित करता है। उसी का विनय प्रस्तुत कहानी में प्राप्त होता है। विनय उसकी ओर आकर्षित होता है और वह विनय की ओर। विनय उसे विवाह का प्रलोभन देता है। तीसरी साप्तीक उसकी इस प्रलोभन में आकर अपना सतीत्व को बँटती है। किंतु तीसरी के गर्भवती हो जाने पर विनय उसे त्याग कर एक दूसरा विवाह कर लेता है। अपना सतीत्व का मूल्य उसके प्रेमी से मिथ्या क्या है? केवल एक सौ २० का मोटा। वह भी उसके सम्मान के लिए नहीं बरत् उसकी जिज्ञासुता पर टाला छपाने के लिए। कारण विनय के विवाह के समय ही अनस्मात् वह का उपस्थित होती है। उसके जबान कोरने पर विनय के विवाह रुक जाने की सम्भावना है जब वह सौ २० का एक मोटा उसकी हमेली पर रखता देता है। तारी इस आघात को सहन नहीं कर पाती और वह मोटा फेंक कर खुपचाप लौट जाती है। इसके अतिरिक्त उस पर पशु के साथ वह अबला असहाय एवं निराश्रित तारी कर भी क्या सकती थी? इसी प्रकार 'कहानी खत्म हो गई' कहानी में भी एक असहाय विधवा के पतन की बर्दशाह क्या प्राप्त होती है। किस प्रकार एक जमींदार ने अपने बड़े सर्वसाहकार की विधवा बेटी को पतन के धार्य पर लीला और उसके गर्भवती हो जाने पर किस प्रकार उसने उससे लीला के ली इसी का विमर्श कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में किया है। इसमें कहानी में उस विधवा का आदर्श भी दृष्टव्य है। वह जमींदार द्वारा प्रबंधित होने पर भी उसका नाम लोभना नहीं चाहती। उसका कहना है—
 "मैं और किसी अधिकार की बात नहीं कहती किसी बदनामी के भय से आप बरें नहीं। मरें जायेंगी पर आपका नाम न बूगी। परन्तु, मैं औरत हूँ असहाय हूँ। मेरा कोई हमदर्द नहीं, आप ही अब मुझे राह बताइये।" यों के किसी इज्जतदार गरीब ठाकुर से मेरा ब्याह करवा लीजिए। किंतु वह नर पशु यह भी न कर सका। इस पर भी वह अबला उस व्यक्ति का नाम जवान पर न लाई। अपने तबजात पिछु की उसने उत्पन्न होते ही हत्या कर ली किन्तु इस अभियोग में वह पुलिस द्वारा रंगे हाथों पकड़ ली गई। पुलिस की प्रताड़ना खाने पर भी उसने बर्षा फिसका है, इस रहस्य को न बताया। अन्त में उस नर पशु ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया किन्तु उस अबला को आश्रय न दे सका। विरस होकर उस विधवा को आत्म हत्या कर लेनी पड़ी।

'जापानी दासी' कहानी इससे कुछ भिन्न है। इसमें आचार्य जी ने एक

श्रीता बासी का विषय किया है। बिजली नाम की एक बासी को एक मर पशु सी बन में बन्ध करवा है। वह बासी के साथ बकासकार करना चाहता है किन्तु बिजली बासी होते हुये भी मारी बर्न से परिचित है। वह उस मर पशु से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्महत्या करके प्राण बे बेठी है किन्तु अपने बर्न का त्याग नहीं करती। इस बचानक द्वारा आचार्य जी ने यह प्रदर्शित किया है कि भारतीय कमलाओं के समान ही अन्य देश की मारियाँ भी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक को उर्ध्व करना जानती हैं।

इसके एकदम विपरीत धनकी 'सविता' कहानी है। इसमें 'आचार्य जी ने सविता और कविता नाम की दो आधुनिक शिक्षिता नवयुवतियों का विषय किया है। किंच प्रकृष्ट वे दोनों नवयुवतियाँ पाकस्थियों के चक्कर में पड़कर अपना सर्वस्व बे बैठती हैं, और धन के कोमुप पिता किंच प्रकार सब कुछ खानते हुए भी ममजान बने रहते हैं इसी तथ्य का उद्घाटन प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने किया है। इस कहानी में कहानीकार ने अपरोक्ष रूप में यह भी संकेत किया है कि आज की आधुनिक शिक्षा नवयुवतियों को किंच विद्या की ओर लीचे लिए था रही है तथा माता-पिताओं के लिए शिक्षित पुत्रियों का विवाह एक कैसी विषय पहुँची हो गई है। 'बन्समोर' कहानी में भी आचार्य जी ने आधुनिक सभ्यता पर एक कठरा व्यंग्य किया है। इसमें भी कहानीकार ने यही शिक्षाने का प्रयत्न किया है कि आज एक सामारण स्थिति के पिता के लिए अपनी पुत्रियों के लिए बर खोजना कितना कठिन कार्य हो गया है। आज के शिक्षित नवयुवक पत्नी नहीं अप्सरा चाहते हैं। वे अपनी भावी पत्नी की खोज उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई खजाने की खोज करता है। इतना ही नहीं वे किसी सुधील कन्या को जब देखने जाते हैं तो उसका निरीक्षण भी इस प्रकार करते हैं जैसे किसी पशु का बन्ध करने के पूर्व किया जाता है। इसलिए एक ही-एक महोदय एक संभ्रांत परिवार की एक शिक्षित कन्या को विवाह के लिए देख जाते हैं किन्तु एक बार देखने पर वे निश्चय नहीं कर पाते कि लड़की सुन्दर है अथवा नहीं। वे एक बार (बन्समोर) उस लड़की को और देखना चाहते हैं। लड़की के पिता से इसका कारण बतलाते हुए उनका कहना है 'हार्नो की उँगलियाँ ठीक-ठीक नहीं देख सका।' -- 'हमारी ही बिचबरी में एक घाटी होकर आई है उस लड़की की उँगलियाँ और मालूम इस तरह करता है यह कि बचान नहीं कर सकता इसी बजह से बर उँगलियाँ

और एक बार देख लें, तब अपनी राय कायम करें।^१ कितना गहरा कटाव किया है कहानीकार ने आधुनिक विधित युवकों के ऊपर।

आचार्य जी की मूल्य कहानी का कथानक बहुत कुछ उनके उपन्यास 'अपराधिता' के कथानक के समान है। इसमें कहानीकार ने बहूँ की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। 'ठडुपानी' कहानी में भी नारी की विवशताओं एवं उजबलित कृताओं का चित्रण है।

अपनी 'सोने की पत्नी' कहानी में उन्होंने मनुष्य की धन-लिप्सा पर सीधा कटाव किया है। इसका निर्माण वड़े ही बकारामक ढंग से कहानीकार ने किया है। एक निर्धन नवयुवक किस प्रकार अपनी पत्नी को सोने से मड़ देने की अभिलाषा रखता है किन्तु वह सामग्री उसके उदर पोषण की भी नहीं एकत्र कर पाता। वह बबल मात्र एक निष्क्रिय स्वप्नदृष्टा मनुष्य है। कर्मठ कार्यरत पुरुष नहीं। एक दिन स्वप्न में वह देखता है कि उसकी पत्नी सोने की हो गई है। उसे धन की आकांक्षकता है वह पत्नी के समीप अपनी कठिनाई लेकर जाता है। पत्नी अपनी एक अंगुली काटकर उसे दे बेठी है। उसका कार्य पूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार उस युवक की आकांक्षकताएँ बड़ती जाती हैं और सोने की पत्नी के धंग कटते जाते हैं। अंत में स्वप्न टूटने पर उसे अपनी धन लिप्सा का ज्ञान होता है।

अपनी 'विषबाधम' कहानी में आचार्य जी ने समाज के ठेकेदारों पर कपारी चोट की है। 'इस कहानी में बहुत सीधे व्यंग्य और असंतोष की भावना स लेखक ने 'विषबाधमों' के भीतरी कुत्सित जीवनों का भंडाफोड़ किया है— भित्तकी स्थापना कार्यसमाज ने उसकी आकांक्षकता समझकर की थी। और अंत में ये सच्चे अर्थों में कुहलबाले बन गए। लेखक को कुछ दिनों तक विस्तृत निकट से ऐसी संस्थाओं को देखने का अवसर मिला है। इसीलिए उसके ये रेखाचित्र कास्पनिक नहीं सच्चे हैं।^२ इस कहानी में कहानीकार का सुधारक रूप अधिक प्रबल है। उसने गमन सरय को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जिससे प्रस्तुत कहानी प्राकृतवादी कहानियों के समीप जा पहुँची है। अंत आदर्शवादी अवश्य है। उसने समाज की धार्मिकों में ब्रह्म स्तौकनेवाले ब्रह्मज्ञानों का सतीरव गट्ट करनेवाले चारों ही भूतों को दंड दिया दिया है।

१ नवाब मनकू कहानी संग्रह, पृ २१६।

२ पौर आकांक्षिक, कहानी संग्रह, संपादिका कमल डिगोरी, पृ ८०।

किन्तु इस कहानी के द्वारा वह कृत्सा का ही प्रचार कर सका है, सुचारवादी दृष्टिकोण का नहीं।

इसी प्रकार की उनकी 'पठिता', 'बेस्व्या' आदि कहानियाँ भी हैं। अपनी 'पठिता' कहानी में आचार्य जी ने कुछ बेस्व्याओं के कारागारिक जीवन की कथाएँ कही हैं। वे बेस्व्याएँ अपनी कथाएँ स्वयं कहती हैं। जानन्ती हीरा आदि बेस्व्याएँ अपने जीवन की बिबधताओं एवं कटुताओं को इस कहानी में एक-एक कर सामने रखती गई हैं। पठिता होते हुए भी यह बेस्व्याएँ अपनी बिबधताओं के कारण पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में पूर्ण सफल रही हैं। वास्तव में इन कहानियों की सफलता इसी में है कि पाठक का हृदय बरबस इन पठिता महिलाओं की दुःखानुभवा से इतित होकर उनके प्रति बहुरी संवेदना और सहानुभूति से भर जाता है। किन्तु यद्यपि प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की कहानियों का सहेस्य समाज का सुधार करना आवश्यक था परन्तु उसमें मानवता की सज्जाप्रद और बुभास्परद बातें कलात्मक शौच्य के साथ चिथित की गई हैं। उनके सुन्दर और सत्य होने में कोई संवेह नहीं चरिच चिथन और शैली की दृष्टि से वे बड़ी सक्ति-साली और सुन्दर रचनावें हैं परन्तु साथ ही वे अमंयककारक और कूचचिपूर्ण हैं। उनके कथानक साधारणतः बेस्व्याओं जानगियों बिधवाभयों सड़क पर भीज भौमनेवालों और मुन्नों के समाज के लिए बए हैं। उनका चरिच चिथन यथार्थ और सजीव है कला उनकी निर्दोष है परन्तु जनता की सचि और मंगल साधना के लिए यह अच्छ होता कि वे समाज-सुधारक अपनी अपूर्व प्रतिभा का उपयोग किसी भिन्न रीति से करते।^१

आचार्य जी की कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिसमें उन्होंने नारी की कौमल साधनाओं-स्वाग तपस्या और उत्सर्ग आदि को चिथित किया है। उदाहरण के लिए उनकी कहानी 'सुखदान' 'नही' 'बाहर भीतर' 'भरती और साधमान' 'सुयलागुलीय' 'दूध की धार' आदि कहानियों को से सकते हैं। अपनी 'सुखदान' नामक कहानी में उन्होंने पति-पत्नी के 'पारस्परिक आध्यात्मिक सम्बन्ध-ओ शरीर में नितान्त निज है-ओ बड़े ही भावपूर्ण एवं कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। विधानाच की अपनी प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् अपनी साली सुयमा से विवाह करना पड़ता है। सुयमा और उनकी जायु में बड़ा अन्तर था किन्तु तो भी सुयमा ने विधानाच से सहर्ष विवाह करना स्वीकार

क्रिया । अपने मुँह के लिए नहीं, विद्यालय के मुँह के लिए । उसे ज्ञात था कि उससे बीजा बीबी के अभाव में चाय ही अपनी प्रतिमा एवं पोषण का उपयोग कर सके । अपने बीजा के जीवन के निर्माण के लिए वह अपनी इच्छाओं अभिलाषाओं का उत्सर्ग करके उनसे विवाह करना स्वीकार कर लेती है । विद्यालय स्वयं उसके त्याग को देखकर मर्माहत हो उठते हैं । वे सुपमा से प्रश्न करते हैं 'तुम जैसे पुरुष को जो आयु में तुमसे बहुत बड़ा और विभूत है, तुमने हठपूर्वक अपना पति बनाया जब कि तुम्हें अधिक उपयुक्त जीवन साथी मिल सकता था । और इस पर भी हँसती हो माती हो खेसती हो पिता और माता को झूठी हुई हो । अपने अयोग्य पति को उबास भी नहीं देस सकती हो । सुपमा, यह क्या तपस्या नहीं है ।

इस पर सुपमा का उत्तर दृष्टव्य है । उसका कहना है 'स्त्री पति के सर्वस्व को पाकर भी असन्तुष्ट ही रहती है । पति उसे अपेक्षाकृत अयोग्य ही प्रतीत होता है । तिस पर पति उसके सभी व्यवहार सहन करता है, केवल थोड़े सुखदान की आशा से जिसकी उसे इसलिये बड़ी आवश्यकता होती है कि वह बाहरी जगत् की सभी सामाजिक और आर्थिक जिम्मेदारियों के बोझ से निरन्तर बचकर बुर रहता है । पर किठनी स्त्रियाँ पुरुष को वह सब दे सकती हैं ? वे स्त्रियाँ मर्याद हैं जिन्हें ऐसे पुरुष पति मिले हैं जो अपना आत्म समर्पण पत्नी को करने के आशी हैं । पत्नी उन पर अबाध प्रारण चलाती है और उनकी सम्पूर्ण सम्पदा स्वच्छन्द भोगती है । तथा उसके धन से निर्बाध जीवन-यापन करती है ' -- 'तुझे ऐसा ही एक पति प्राप्त है ।' स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी पति-पत्नी के अविभक्त अस्तित्व एवं परस्पर के सामाजिक जीवन पर केंद्रित है ।

'बाहर और भीतर' कहानी में भी मारी की कर्तव्य-निष्ठा पर प्रकाश डाला गया है । इस कहानी में अत्यन्त कलात्मक ढंग से उसने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न पर प्रकाश डाला है । प्रश्न है—स्त्री की बाह्य सुन्दरता देखनी चाहिए या आन्तरिक ? विवाह के लिए स्त्री की सुन्दरता ही आज भी प्रधान मानी जाती है और उसके अगव गुण दोषों को पीछे डाल दिया जाता है किन्तु इसमें उर्ध्वनि यह विषयवाचा है कि स्त्री की बाह्य सुन्दरता ही उसकी आन्तरिक सुन्दरता का अधिक महत्व है । यदि मारी में आन्तरिक सौन्दर्य है तो

पति को ही नहीं संसार को बंध में कर सकती है जब कि बाह्य सौंदर्य केवल भौतिक प्रभाव ही डालने में समर्थ हो सकता है।

अपनी 'बरती और आसमान' कहानी में आचार्य बतुरसेन भी ने एक कसाकार के गृहस्थ जीवन को चित्रित किया है। कसाकार को एक असफल गृहस्थ है किन्तु सफल कसाकार। वह कसा की सफलता में व्यस्त रहकर पत्नी को अमान के संसार में बसीटता चला जाता है। वह सब आदर्श के आसमान पर विचारण करता रहा और कभी अपनी जीवन सगिनी की ओर देखा भी नहीं—जो बरती पर रह रही है और अमान में जिसका जीवन बिस गया है। और अब एकाएक वह उसे देखता है पति की दृष्टि से नहीं कसाकार की दृष्टि से। उसे ज्ञात होता है कि इस अमान में रहकर उसने बिना अनेक बनाए किन्तु भीषित बिना केवल अपनी पत्नी का ही बना सका है अपनी अमान के कारण रोपी और दुःखी पत्नी को देखकर वह विचार करता है 'निस्संदेह यह बिना मेरा ही बनाया हुआ है। मेरी यह पत्नी वह नहीं है जो अब से बीस साल पहले ब्याह कर आई थी। यह तो मेरे हाथ बनाई हुई मूर्ति है। इसे बनाने में मुझे कसाकार के बीस वर्ष लग गए, निस्संदेह बीस वर्ष। इन बीस वर्षों में उसके पुसाबी चमकदार गालों को पीछा पिचका हुआ बनाया गया उन पर झुर्रियों की रेखाएँ अंकित की गईं। इन नेत्रों का मादक पैज कटाकों का विद्युत्प्रवाह जो-जोकर इनमें अमिट सुनापन पैदा किया गया। प्रेम का आमंत्रण सा देने वाले इन सरस होठों को सुखाकर उन्हें फीका किया गया। उभरत युगल जीवनो को बहा दिया गया। अब वे उसके अतीत जीवन के एक प्रमाणिक इतिहास बन गए थे। उसकी वह मृदुल-मुनिवकण बालकावधियों को अंजली साक्षियों का रूप दे दिया गया था।' इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में कसाकार के अमानों एवं उसकी बेचना को बड़े ही कलात्मक ढंग से कहानीकार ने प्रस्तुत किया है।

'दूध की घार' कहानी में उन्हीने नारी के मातृक एवं कोमल हृदय को साकार किया है। इसमें अन्त में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नारी की सार्वकृता उसके मातृत्व में है।

अपनी 'मास्टर साहब' कहानी में उन्हीने नारी के एक दूसरे ही रूप को चित्रित किया है। इस कहानी का कथानक आचार्य जी के 'अदक बदल' नामक उपन्यास के कथानक के समान ही है। उसमें माया पतित होने से पूर्व ही

अपने पति के समीप पहुँच जाती है जब कि इसमें माया अपना सतीत्व मुटाकर एवं पाप की पठरी अपन उदर में लिए हुए पति के पास बापस कोठी है।

मारी जीवन से सम्बन्धित आचार्य चतुरसेन जी की 'नही' और 'युग सांगुसीय' कहानी भी है। यह कहानियाँ प्रयोग की दृष्टि से सर्वथा मनीन हैं। इनमें न कथानक है न चरित्र चित्रण न घटनाएँ, केवल भाव हैं। भावों का आवेग नहीं है, बिचारों के आचार पर एक स्थापना की गई है। यह कहानियाँ महान् साहित्यकारों के एक दो वाक्यों पर आधारित हैं। उनकी 'नही' कहानी शरत् बाबू के दो वाक्यों पर आधारित है और 'युगसांगुसीय' रवीन्द्र बाबू की दो पंक्तियों पर। 'नही' का कथानक केवल नाम मात्र का है। दक्षिणा को उसने पति त्याग देते हैं वे दूसरा विवाह कर लेते हैं। दक्षिणा पिता के यहाँ रहकर एकान्त तपस्या रत रहती है। पंद्रह वर्ष पश्चात् उसके पति के मंत्र कुल्ले हैं वे दक्षिणा को खेने आते हैं। दक्षिणा का यौवन इस बुका था किन्तु तो भी नमासीही उस पति का ध्यान आकर्षित करने के लिए शृंगार करना चाहती है। इस पर दक्षिणा बीबी से पूछती है स्त्री की देह ऐसी तुच्छ चीज है कि उसने कम सौम्य को छोड़कर उसका और कोई उपयोग ही नहीं? इसी प्रश्न के समाधान में प्रस्तुत कहानी का कथानक अद्यतर हुआ है।

'युगसांगुसीय' में दो आधुनिकतम उच्चशिक्षिता भारतीय नारियों के विभिन्न दृष्टिकोणों को कथानक का आधार बनाया गया है। यह दोनों सखियाँ हैं अज्ञा और रेखा। दोनों बचपन में साथ ही खेली थी साथ ही पढ़ी थी। साथ ही दोनों ने प्रथम खेली में एम ए परीक्षा पास की थी। "अज्ञा का विवाह हो गया परंतु रेखा ने विवाह नहीं किया। उसने विदेश जाकर प्रतिष्ठा के साथ डाक्टरेट प्राप्त किया था। विद्वत्प्रमत्न करने के पश्चात् मारी विषयक दृष्टिकोण अज्ञा से भिन्न हो गया था। प्रस्तुत कहानी में दोनों सखियों के मारी विषयक विभिन्न दृष्टिकोणों को ही बिया गया है।

इसके अतिरिक्त उनकी अन्य अनेक सामाजिक कहानियाँ प्राप्त हैं। अपनी 'अम्माजान' कहानी में कहानीकार ने एक पिता के हृदय को मूर्त किया है और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। पिता के हृदय की भासक्ति, इन्द्र और दुर्बलताओं के व्यक्तीकरण में कहानीकार पूर्ण सफल रहा है।

'मनुष्य का मोल' में कहानीकार ने एक पीठपयुक्त पुरुष का रेखाचित्र खींचा है। प्रस्तुत कहानी आचार्य चतुरसेन के उपन्यास 'दो दिनारें' के दूसरे

काँड 'बाबासाई' के समान ही है। उसमें 'बाबासाई' का विवाह ठेकेदार की पुत्री से सीधे-सीधे कर कर विवाह किया गया है किंतु इसमें वह अंत तक कुंवारे ही रहते हैं। देखिए—उन्होंने अपनी घाबी नहीं की। पुछने पर वे जोर से हँसकर कहते हैं 'फुर्सत ही नहीं मिथी घादी करने की। अबकी बार फिर जवान हो पाऊँ, तो किसी झड़की को देखूँ।' सम्भवतः 'बाबासाई' की रचना बाबासाई जी ने मरेन्द्रसिंह को पुनः जवान बनाकर विवाह कराने के लिए ही की हो।

अपनी 'बैन्टिकमैन' कहानी में बाबू के मुग की तन्मय ली और बुआ चोरी का बड़ा फोड़ किया है। इस कहानी के तन्मय संग्रह करने में विद्वान लेखक ने उन सब विशिष्ट व्यक्तियों से मुआफात की भी बिनाके कास्पनिक नाम कहानी में लिखे गए हैं। कहानी लेखक कुछ बाल महानगरी बम्बई में वहाँ के बड़े-बड़े सटोरियों बँकों और मिर्चों के मास्किंग के सम्पर्क में रहा और उनके कूट आर्थिक होने जाने उसने स्वयं देखे समझे। 'बैन्टिकमैन' के नाम से जिस पुरुष पुरुष का उल्लेख किया गया है वह बम्बई, दिल्ली और काहोर का एक महान् बर्षघास्त्री था। अपने काल में उसने इन तीनों महानगरों को अपने वर्ष विप्लव से हिजा डामा था। बाबासाई जी ने उसी के भीमुख से उसकी सफक योजनाएँ सुनी थीं तथा बम्बई का मार्केट भी मस्म होता अपनी बाँकों से देखा था।^१ इसी कारण से प्रस्तुत कहानी के वर्णन अत्यंत यथार्थ एवं सजीव है।

अपनी 'पुस्तक' कहानी में उन्होंने एक ऐसे पुरुष का चित्रण किया है जिसकी बुद्धता और पौरुष पर नगर की एक सर्व श्रेष्ठ बेव्या मुग्ध हो जाती है।

'सिकंदर' 'बास्टर साहब की बड़ी' उनकी कौतुक कहानियाँ हैं। कला की दृष्टि से यह बहुत पीछे है। 'धर्म जी' पं० 'छोटेबाबू' जारि कहानियों में इन व्यक्तियों के ऐसा चित्र बड़े ही सजीव है।

राजनीतिक कहानियाँ

'यो ही राजनीतिक कही जाने वाली कहानी भी मुख्यतः समाज का ही अंग है और उसकी विवेचना सामाजिक कहानी के साथ ही होनी चाहिए। राजनीति का अपना अक्षम ही क्षेत्र होता है। राजनीतिक कहानी के अन्तर्गत ऐसी भी स्थितियाँ आ जाती हैं जिसमें विषय और बात किसी एक ही रूप

१ पौरनावात्मिक कहानी संग्रह, पृ ३३।

२ पौरनावात्मिक, कहानी संग्रह, पृ ४८।

जाति धर्म अथवा समाज का सम्बन्ध न हो। वा अथवा नाम अथवा देशों और समाज का रूप भी उसका मीठर भा जाय। इसका प्रतिपाद समाज के अर्थमें न उठना नहीं चाहता किन्तु कि राजनीतिक आन्दोलन और जीवन के किसी धर्मन में सम्बन्ध होगा है। इन की अथवा किन्हीं की राजनीतिक गतिविधि का ही सामूहिक प्रभाव होने ध्यति होगा। समाज के अन्तर्गत उसका नामक उठना नहीं आया किन्तु राजनीतिक मक्ष पर विचारण करता दिखाई परमा विचार करता हुआ विचार करता हुआ और भावण करता हुआ। ऐसी कृतान्तियों में प्रायः आशाकरण एक प्रकार में राजनीतिक हो जाता है। मक्ष ही प्रकटन रूप में कही धर्म और समाज भी आँकड़ा मित पर सामूहिक प्राधान्य राजनीतिक प्रभाव का ही बना रहता।^१

आचार्य जी की राजनीतिक कृतान्तियों अथवा मीठर है। जैसा कि इन 'जीवन कृत' नामके अध्याय में लिखता पुक्त है कि आचार्य जी का राजनीति में कभी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था किन्तु परोक्ष रूप में व्यवस्थित रहा। उन्होंने एक स्वभाव पर लिखा है परन्तु इस प्रकार मानसिक प्रतिक्रियाएँ विचार अति कर रही थीं तभी भारतीय जाति के भी मैं निराश पहुंचा। इसका कारण मनुष्यसिंह था। उसे मैं एक किसी और ही नाम से जानता था। मेरी स्थिति ऐसी से आकषिप्त हुआ कि मैं पाय आया था। मुझे अपने विरोध का कारण बनाने का उद्योग आग्रह था। उन लोगों में मैं अस्मिन्निष्ठ तो न हुआ पर अन्तर्गत तो था ही।—इन सब कारणों में मेरे कथा साहित्य में अति धूर्त होत लगी। बहुत ही कृतान्तियों मैंने इसी प्रकार की लिखी।^२ उनकी 'पहली मसामी' इसी प्रकार की एक संस्मरणपरक कृतानी है। इसमें उन्होंने अतिदुर्गम मनुष्यसिंह के साथ अपने अविद्याय सम्पर्क को एवं एतन्मयी में हुए कम बाँध को बड़े ही रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। कृतानी अति स अंत तक सजीव एवं हृदय स्पर्शी है। उनकी जीवन्मृत कृतानी अतिकारिणी भारत, मुम्बईर सोह पुस्तक सम्बन्धी संघर्ष कथा अति कृतान्तियों भी इसी प्रकार की हैं।

आचार्य अनुराधन जी के समय में राजनीतिक आशाकरण ऐसा था कि विमर्श एक बार गांधी जी के प्रभाव के कारण मत्वायह परना देना अह्वर करके का प्रचार, किन्तु सुसहजमान ऐश्व मद्यान प्रसिद्ध अति पा बाध बाधा या तो हुसरी और अतिकारी दक पून संघर्ष का साथ विविध पाषण को उचटने

१ कृतानी की रचना विद्यान डा० अर्मा पृ २६२।

२ आशायक पृ २४।

के प्रयत्न में था। आचार्य भी ने अपनी कहानियों में इन दोनों का ही चित्रण किया है। उनकी सौहृदु रूप बार्ड वादि कहानियाँ प्रथम प्रकार की हैं तथा खूनी अश्लिकारिणी मुद्दबिर, पीबन्धुत दूसरे प्रकार की। इन दोनों से मिल इनकी प्रतीकात्मक सामाजिक कहानियाँ हैं इनमें हम सम्बन्धीय सफेद कौवा आदि को रक्त सकते हैं।

इनमें प्रथम वर्ग की कहानियों के कथानक धीमे-साध एवं सरल हैं। 'सौहृदु रूप' कहानी में कहानीकार ने कबक बापु के व्यस्त एवं कर्मठ जीवन की एक झाँकी दिखाने का प्रयत्न किया है। बापु एक साध कई कार्य करते हैं। उनका आधम कार्य मनोरंजन का कार्य सुधार का कार्य एवं राजनीतिक मंत्रणा का कार्य एक ही साध चळता है। इसी को प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। कथानक में आदि से अन्त तक रोचकता एवं सजीवता बनी रही है। कथागीवार प्रस्तुत कहानी में बापु के कर्मठ जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहा है।

अपनी 'बार्ड' कहानी में आचार्य चतुरसेन भी ने दिक्कटी देस नलों की ककई खोजकर रक्त की है। उन लिनो गाँव गाँव बड़ाह चड़े के पानी सक्क रहा था नमक बन रहा था। नमक नहीं बन रहा था नमक कामून ठोड़ा जा रहा था यों भी नमक बनता था यह जान और वाकक के मोक का था।^१ उस समय फसली मेताओं की भूम थी। ये मेता देस क भोसे भासे नवमुदकों को उत्तेजित करके कारंगारों में बड़ाहक भरवाते जा रहे थे किन्तु वेस जाने के नाम से स्वयं बहुत भयभीत थे। इस भय का ही चित्रण कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में किया है। इस कहानी में नमक आन्दोलन का चित्र तो उठना सजीव नहीं है बितनी कि उसमें हास्य की सामग्री प्राप्त हो जाती है।

जब हम आचार्य चतुरसेन जी की दूसरे वर्ग की राजनीतिक कहानियों को लेते हैं। उनकी 'बीबग्मृत' कहानी में एक अत्यन्त अतर्नाक भेद छिया हुआ है। 'इस भेद का सम्बन्ध भारत के एक बहुत भारी मसफल विप्लव से है। कहानी में कुछ उलझनों की कुछ ऐसी बातें भी जो लिखी नहीं जा सकती थीं और छोड़ी भी नहीं जा सकती थी इन उलझनों के कारण ही प्रतिदिन पचास पृष्ठ लिखने की सामर्थ्य रखत बाड़े लेखक को यह कहानी पूर्ण करने में नौ मास लगे थे। फिर भी कहानी चाल में चलते ही बाँद की दो हजार की जमानत पण्य हो गई थी। कहानी को पढ़कर तत्कालीन आहोर हाईकोर्ट के

प्रसिद्ध कौसिल (बाद में जस्टिस और फिर कस्टोडियन जनरल) की अछरराम ने आश्चर्यचकित होकर ५ पृष्ठों के पत्र में सेल्फ को मिला या कि क्या वास्तव में कल्पना सत्य की ऐसी हूबहू तस्वीर धींच सकती है? कहानी नायक के भी अछरराम बाबू सहचर रहे हैं। उस व्यक्ति के चरित्र के वे प्रत्यक्ष दृष्टा हैं।^१ प्रस्तुत कहानी का नायक एक गुडकुस के आचार्य का पुत्र है। देव उसका प्राण मीर देव सेबा उसका प्रथम था किन्तु उसके हृदय के किसी कोने में विनाशिता और वासना भी छिपी पड़ी थी। देव स्वतंत्र कराने का अवसर आया। एक राजा साहब के छाप ब्रिटिश राज्य को उलटने का पदार्थ प्रारंभ हुआ। किन्तु वे क्रम अपने प्रयास में असफल रहे। राजा साहब तो बच निकले किन्तु कहानी का नायक युवक पकड़ा गया। जेल में सीमा ही नारी के माया जाल में पड़कर वह बेच द्रोही बन गया था। इस कहानी के निर्माण की विधि भी कुछ विचित्र है। इसमें पात्रों के नाम गायब हैं कबानक नहीं है केवल उसका व्यक्ति अंत है। प्रस्तुत कहानी में मानवीय ऐपणामों और मनोविकारों का मूर्त करने में कहानीकार ने पर्याप्त परिश्रम किया है और एक सीमा तक सफल भी रहा है।

इस कहानी के एकदम विपरीत आचार्य चतुरसेन जी की 'मुसबिर' कहानी का कथानक है। इसमें कहानीकार ने ऐसे देवमल्ल का चित्रण किया है जिसने अपने अतिकारी मित्र को बचाने के लिए अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दिया था। इस नवयुवक का नाम हरसरण बाबू था। यह परंतप नरभेष्ट किसी प्रेक्ष में एक कम्पोजीटर या अत्यन्त गरीब सीधा और अपढ़। बेसने में पुश्ता-पतका-अमर-असम्य-सा। नातपीठ में भीष जीवन में आपराह। बिल्की की बम फैक्टरी के उद्घाटन का उत्सव तो भारतीय विप्लव के इतिहास में एक महत्वपूर्ण बात है परंतु इस हुतात्मा को शायद किसी ने जाना भी नहीं। जिसने त्याग अपने भय और प्रलोभनों ही को नहीं बड़ी से बड़ी ईश्या को भी अय कर लिया था।^२ कहानीकार ने प्रस्तुत कहानी में इसी व्यक्ति के चरित्र को अधिक से अधिक छमारा है। इससे कुछ भिन्न आचार्य चतुरसेन जी की 'पीर भाषाजिम' कहानी है। इसमें उन्होंने एक ऐसे नवयुवक का चित्रण किया है जिसने अपना सर्वस्व राजनीतिक आन्दोलनों पर व्योसावर कर दिया किन्तु मिला उन्हें कुछ नहीं। उनके साहित्यिक कार्यों का उत्सर्ग का,

१ सम्बन्धी कहानी संग्रह, सम्पादिका कमलकिशोरी पृ २६।

२ सम्बन्धी, कहानी संग्रह सम्पादिका कमलकिशोरी पृ ८५।

सम्पूर्ण श्रेय सीढर सोग ही हृदय से गये । 'पीर माबासिय' एक ऐसा ही तर्क है जिसे अपनी 'क्रांतिकारिणी' कहानी में आचार्य ने अतुरसेन जी ने यह प्रमाणित करना चाहा है कि स्त्रियों पर भी क्रांतिकारी दस का प्रभाव रहा था । ये स्त्रियाँ देश की स्वतंत्रता के लिए रक्त खंडी की भाँति संलग्न थीं । इस कहानी का कथानक केवल इतना है—एक क्रांतिकारिणी दस के द्वारा पुलिस से बचने के लिए भागना चाहती है । अकस्मात् पुलिस दस को बंद लेती है । उस युवती से भी प्रेम होता है । वह पास ही बँटे बकील साहब की पहल बन जाती है । उसकी मुझमुझ देखकर बकील साहब भी बानेदार से उसका परिचय अपनी बहिम कथप में देते हैं । बानेदार सीट जाते हैं किन्तु दूसरे दिन ही बकील साहब का घर पुलिस बंद लेती है । तब तक वह क्रांतिकारिणी वहाँ से भाग चुकी थी । अंत में बकील साहब के उत्तरों को सुनकर और क्रांतिकारिणी को न पाकर पुलिस निराश होकर सीट जाती है । इस छंटे में कथानक द्वारा कहानीकार ने तत्कालीन क्रांतिकारी दस की सतर्कता की ओर भी धकेल किया है ।

जाने बचकर आचार्य जी का क्रांतिकारिणी से मन हट गया था । उनके आतंकवाद को देखकर आचार्य जी को विश्वास हो गया था कि इससे देश का काम कभी नहीं हो सकता । देश केवल गांधी के अहिंसा मार्ग पर ही चलकर स्वतंत्र हो सकता है । अपनी 'जूनी' कहानी में उन्होंने यही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है । जिस समय इस कहानी की रचना हुई थी उस समय गांधी जी के अहिंसात्मक का जन्म ही हुआ था और इस कहानी के लेखक ने गांधी काद पर अपनी अप्रतिम रचना 'मत्याग्रह और असहयोग' रची ही थी जो उन दिनों गीता की भाँति पढ़ी जा रही थी । क्रांतिकारिणी के बाएँ दिन आतंकपूर्ण साहसिक कार्य सुन पढ़ते थे किसी फलम के वनी का और सरस्वती के पुत्र का यह साहस न था कि उनके आतंकवाद की ओर अंगुली भी उठाए—सभी आचार्य जी ने कुछ अहिंसा की राजनीति का एक प्रभावशाली रस्ता चित्र इस कहानी में चित्रित किया था ।' इस कहानी में कहानीकार ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जिसे अपने दस के नायक की आज्ञा पर अपने एक मित्रों मित्र की निर्मम हत्या करनी पड़ी थी । हत्या करने के पूर्व दस के बँटोर अनुष्ठान के कारण वह नायक ने इस आज्ञा का अमरण भी नहीं पूछ सकता था । विषय बाहर उन अज्ञेय मित्र की हत्या करनी पड़ी । हत्या के पश्चात् अपने नायक ने अपने मित्र का आराधना प्राप्त किया । नायक ने उसका

भारतप ब्रह्मसत्ते हुए कहा 'बहु हमारे हत्या संबंधी पद्धतों का विरोधी था। हमें उस पर सरकारी मुद्दिर होने का संदेह था' इस पर उम श्यक्ति का उत्तर दर्शनीय है 'मुझे मेरे यत्न फल द्यो। मुझे मेरी प्रतिभाओं से मुक्त कर दो मैं ज़मी के समुदाय का हूँ। तुम लोगों से मगी छाठी पर तलवार से धाक खाने की मर्दानगी न हो। तो तुम अपने की देवभक्त कहने से इकार कर दो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं क्षुणा करना हूँ। मैं हत्याओं का साथी सलाही और मित्र नहीं रह सकता तुम तेरखी कुर्मी को ब्रह्मा दो।' स्पष्ट है कि इस कहानी तक आते आते आचार्य जी का विदबास हो गया था कि मनुष्य को अपनी प्रमा बहिष्ता को सीन देनी चाहिए।

अपनी प्रतीकात्मक राजनीतिक कहानियों में आचार्य जी ने प्रतीकों एवं संकेतों का आश्रय लिया है। उनकी 'सफेद कौबा' एक उत्कृष्ट श्रृंगारध्वनि की कहानी है। इसमें एक ऐतिहासिक सत्य की श्रृंगारना बड़ ही सुंदर श्रृंगार के रूप में कहानीकार ने की है। भारत में अंग्रेजों के आगमन एवं पचायन अंग्रेजी संस्कृति के भारतीय जीवन में प्रवेश एवं गांधी जी की 'निवृत्त इच्छिया' के आदु की कथमात को श्रृंगारध्वनि की माध श्रृंगार में प्रस्तुत कहानी में सांग ध्वनित किया गया है। इसमें मुपस धासकों को महाराज भूषक के रूप में अंग्रेजों को सफेद शीए के रूप में महारत्ना गांधी को लंपोटी बाबा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रतीकों की योजना अत्यंत सुन्दर है। विनोद और चमत्कार ने सांग साध प्रस्तुत कहानी में आशोत्कर्ष का भी सुन्दर समन्वय है।

इसी प्रकार की उनकी दूसरी प्रतीकात्मक कहानी है 'सम्बन्धी'। इसमें कहानीकार ने भारत विभाजन की विभीषिका से लेकर गांधी जी की हत्या तक का चित्र बड़े ही कलात्मक रंग से प्रस्तुत किया है। वास्तव में इस कहानी में कलाकार की आहत आत्मा असह्य वेदना से भीत्कार कर रही है। उस भीत्कार से वेद दैत्य तक विविकित हो गये हैं। कलाकार जो नित्य ही मृत श्मा प्राणियों के मुक्त और जीवन के आनंद के स्वप्न देखता रहता है जब महा महातरदेव का दुष्ट बना तो फिर उसकी वेदना की सीमा क्या होगी? शायद ही विश्व के किसी कलाकार ने भारत की विभाजन विभीषिका पर ऐसा हाहाकार किया होगा। कहानी के टेकनिक का जहाँ तक संबंध है सेवक

१ सम्बन्धी, कहानी संग्रह, सम्पादिका कमल किशोरी, पृ ४७।

२ सम्बन्धी, कहानी संग्रह सम्पादिका कमल किशोरी, पृ ४७।

को जातिगत विरोध से बचूँगा रहने में अव्युत्सुक सफलता प्राप्त हुई है। कहानी में विद्युत् मानव प्रेम और घृणितता है। रसी भर भी प्रोपेगेन्डा नहीं है व्यंग्य और वक्षेप के समन्वय के तो कहने की क्या है। 'चंद्रकला' कहानी का प्राण है जो शिव का धिरोसुपन और विभाजन के पुरोहित का राष्ट्रबिह्व है।^१ इस कहानी को आचार्य जतुरसेन जी ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी माना है।^२ इस कहानी में आचार्य जी ने किंबिड मात्र पौराणिक पुट भी दिया है। भारत विभाजन को उन्होंने कैलासी के कोप का सूचक बतलाया है। उत्तुंग हिमकूट पर बूर्जटि कोष से फूँकार कर उठे। उनका हिम धबक विष्य देह परपरा गया। अभी अभी उनकी समाधि भंग हुई थी और उसी समय उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके बटामूट से कोई चंद्रकला को बुरा के गया। यह चंद्रकला सम्बन्धीय की टोपी पर जा बैठी थी। उसने अपने ध्वज का बिह्व भी चंद्रकला ही रखा था। फिर कैलासी को कोष क्यों न जाए। अंततः उन्होंने अपना तृतीय नेत्र खोल दिया। भारत विभाजन की विभीषिका में मस्म होने लगा कहानीकार के अनुसार अंत में भगवान् संकर का कोष गांधी का बकिरात लेकर सांत हुआ। गांधी को प्राप्त कर देगबिह्व मुस्कय उठे जाप ही जाप उनका तृतीय नेत्र निमीकित हो गया उच्च हिमकूट पर बासंती वायु बहने लगी विविध वर्ष पुष्प बिल्ल गये मकरंद काभी भ्रमर सूँघने लगे कोमल कूकने लगी मसय भारत का मुक्त स्वर्ण पा कैलासी आनन्द बिभोर हो गए। बादलों को छिन्न भिन्न करती हुई उमा रत्न शृंगार किए आ उपस्थित हुई।

कैलासी ने भीरे से विद्युत् मीचे रख दिया। डमक अपने स्वान पर अबस्थित हुआ। मुख शिव-रूप होकर बूर्जटि ने कहा है कालमुद्रय तू अभी हो। आ मेरे क्षीरस्थान पर आसीन रह और वहीं से अनंत विश्व पर जब तक सुभोक में कास का वायु बंद है तू ही चंद्र कला के स्वान पर शीतल म्निग्ध-मुद्ग-शिव ज्योत्स्ना की मर्त्य प्राणियों पर बर्षा करेगा रह।

इन कहानियों को कहानीकार ने पुराण-कथा के रूप में प्रस्तुत किया है जिससे इनकी कलात्मकता एवं ध्वजगा घटित बढ़ गई है। 'इन कहानियों का मूल अरातक कल्पना और भावुकता है अतएव यह कहानियाँ अपने चित्त में

१ सम्बन्धीय कहानी संग्रह साप्ताहिका कमल किशोरी पृ १।

२ साहित्य सम्प्रदा अमवरी-करपरी १९२३ पृ ३२१।

भावुकतापूर्वक रैखानिक और गद्यगीत के समीप जा गई हैं। इनके कथानक में न तो इतिवृत्तात्मकता है न संवेदना की कमबख्ता बस्कि उनमें भावनाओं का उमड़ना हुआ उबार है। समस्त क्या एक प्रसंग में ही नहीं बस एक भाव के ऊपर एक पैर स रखी हो जाती है और उसकी कला एक ही भाव के अनेक चित्रों के माध्यम से स्पष्ट होती है अतः ऐसी कहानियों में सांकेतिकता और व्यक्तता ही सीमा के दो उपकरण माने जा सकते हैं।^१

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

अरिबार्डन से कुछ पूरक हटकर और पात्र की किसी वृत्ति विशेष का पकड़कर उसकी विविध मयिमाया के सारे उतार-चढ़ाव को दिखाना ही मनोवैज्ञानिक कहानी का मुख्य अंश मानना चाहिए। कहानी के अन्य किसी तरह की ओर न तो ध्यान जाता है और न उसका कोई प्रभाव ही उमड़ पाता है। उनमें केवल मानसिक तर्क-वितर्क और ठूँहापोह इस अंग से किया जाता है कि अरिबार्डन के इतिवृत्तात्मक अंश की ओर चित्त कम आकर्षित होता है और साथ मनोरंजन केन्द्रित हो जाता है मन-स्थिति की विवेचना में। इन कहानियों में एकनिष्ठ होकर अब किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक का उच्चाटन कुछ दूर चला जाता है तो एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक बातावरण छन पड़ता है। इसीलिए बातावरण प्रधान कहानियाँ मनोवैज्ञानिक कहानियों के साथ सफलता से चल सकती हैं और बड़े सुन्दर प्रभाव उत्पन्न करती मिलेंगी।^२

द्विदु जिन प्रकार जनी हम ऐतिहासिक सामाजिक राजनीतिक कहानियों का वर्णन कर आए हैं उस प्रकार हम आचार्य अनुरासेन जी की मनोवैज्ञानिक कहानियों का वर्णन नहीं कर सकते। कारण इनकी अधिकतर कहानियों में मनोविज्ञान पानी में सक्कर सरीसा बुला मिला प्राप्त होता है। मनोवैज्ञानिक घुट के कारण ही इनकी कई कहानियों का ककारमक सीधमें निचरा हुआ दीप पड़ता है। किन्हीं-किन्हीं कहानियों में किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन होता है या सम्मता के विचार का काल्पनिक चित्रण किया जाता है। कहानी की रोचकता उसका कौतूहल के अतिरिक्त मानव समाज के प्रति सहानुभूति में है। हम मनुष्य हैं और मनुष्य के विचारों आशाओं और अभिलाषाओं उसकी

१ हिन्दी कहानियों की गित्यविधि का विचार, डा० स्वामीनारायणसहाय
पृ ७६।

२ कहानी का रचना विचार, डा० अनन्नाय प्रसाद शर्मा, पृ १६२-१६३।

सफ़सता और विफ़सताओं के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि रखते हैं। यही सहानुभूति जो हमारे साहित्य का मूक है कहानी का भी माधार है। मनोवैज्ञानिक सत्य इस सहानुभूति के लिए सामग्री उपलब्ध करे उसका पोषण करता है।^१ इस प्रकार मनोवैज्ञानिक सत्य से पोषित आचार्य जी की कितनी ही कहानियाँ प्राप्त होती हैं। उनकी कहानी 'नवाब तनकू' एक भाव कथा है जिसमें चरित्र और आचार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। कहानी में कुछ ही मुख्य पात्र हैं। राजा साहब एक सराबी कबाबी बेस्वामामी सम्पन्न रईस जिन्होंने इसी काम में अपनी सारी सम्पत्ति खूंक दी और अब शक्तिहीन और रोग का भोग भोग रहे हैं। बूखती है एक विपक्षित यौवन बेस्वामी और तीसरे है एक रईस के औरत से उत्पन्न बेस्वामी पुत्र जो अपने को नवाब समझता है। इस कहानी में तीनों दोस्तों की मुलाकात का रेखा चित्र है। मुलाकात में जीवन के आगे पीछे के समूचे जीवन की स्पष्ट झाँकी अंकित करने में लेखक ने अपनी अपरिचीन कला निर्माण कला का परिचय दिया है। इससे भी अधिक अपनी उस विश्लेषण सामर्थ्य को मूर्त किया है जब कि वह चरित्र को आचार से पूषक मानता है। तीनों ही पात्र हीन चरित्र हैं। परन्तु उनके हृदय की विषामता विचारों की महत्ता भावों की पवित्रता ऐसी व्यक्त हुई है कि बड़े से बड़ा सराबाही भी उसकी समता नहीं कर सकता। पूर्ण कहानी पढ़कर तीनों में से किसी भी पात्र के प्रति मन में विरगण और घृणा नहीं होती भारतीयता और सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं। आचारहीन व्यक्ति भी उच्च चरित्रवाले होते हैं। तथा आचार और चरित्र में मौखिक अन्तर क्या है यह मन्धीर मनोवैज्ञानिक और आचारशास्त्र सम्बन्धी गौतम दृष्टिकोण कहानीकार ने इस कहानी में व्यक्त किया है।

अपनी राजनीतिक कहानियों में भी उन्होंने मनोविज्ञान का पुनः दिया है। 'जीवन्मृत' जूनी नास्तिकारिणी चार्लट मुश्किलरिणी कहानियाँ उच्चरूप मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं। इन कहानियों में एक और कर्मठ नास्तिकारिणी के अन्तस का उद्घाटन किया गया है जो बूखती और ऐसे नेताओं के मनोभावों को उपास्य गया है जो बुबुकि विदुष्य और धन के लोभुप हैं। इसी प्रकार 'घृती' में घृती का 'जीवन्मृत' में जीवन्त, उसही पत्नी एवं पिता का, 'चार्लट' में सन्नाहक महोत्सव 'नास्तिकारिणी' में बकील साहब एवं

निमेज भयवती चरण वा, 'मुद्रबिर म हत्सरन का मनोविस्लेषम अत्यन्त सुन्दर
रङ्ग से हुमा है ।

भाचार्य जी ने अपनी कुछ कहानियों में सेडिस्म एवं मैसोडिस्म का भी
प्रयोग किया है । सेडिस्म को परपीडक कहते हैं इसमें किसी व्यक्ति को दूसरे
को पीड़ा देकर आनन्द की उपलब्धि होती है और मैसोडिस्म को स्वपीडक
कहते हैं इसमें दूसरों से पीड़ित होने में आनन्द प्राप्त होता है । अपने को कष्ट
देकर भी इसमें आनन्द प्राप्त किया जाता है । भूल इइताम सत्यायह सिटडाउन
स्ट्राक करनेवालों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है । यह लोग स्वयं पीड़ा उठाकर
पीडक को रास्ते पर लाना चाहते हैं । 'भाचार्य जी की 'मूस्य' एवं 'ठकुरानी
कहानियों में स्वपीडक वाली भावना ही प्राप्त होती है ।

भाचार्य जी की सामाजिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानक निर्माण की विविध प्रणालियाँ

अपनी ऐतिहासिक कहानियों के कथानकों के समान ही भाचार्य जी ने
अपनी सामाजिक राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियों के कथानकों
के निर्माण में कुछ विविध विधियों का प्रयोग किया है उनमें से कुछ
निम्न हैं—

१ कहानी के कथानक का प्रारम्भ सरल और शांत विधि से होता
है । कहानी के मध्य में अकस्मात् एक घटना घटित होती है । जिससे कथानक
को सूनी होकर अग्रसर होने लगता है । ये दोनों ही सूत्र परस्पर संघर्ष करते
हुए विकसित होते हैं किन्तु अन्त में ये विरोधी सूत्र संयुक्त होकर अपनी पूर्व
स्थिति में पुनः आ जाते हैं जैसे मास्टर साहब मूस्य आदि ।

२ कथानक का प्रारम्भ किसी समस्या को लेकर होता है । कथा के
कुछ अग्रसर होते ही उसमें संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है । कथानक दो सूत्रात्मक
हो जाती है । कथानक के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उसका एक सूत्र घटिकहीन
होकर दूसरे से आ मिळता है । जैसे ठकुरानी पुरुषत्व आदि ।

३ कथा सूत्र का जन्म किसी छोटी-सी घटना को लेकर होता है और
इसका विकास तथा चरम परिणति भी अन्ततःोपत्ता उसी घटना पर आघाटित
रहते हैं जैसे टिकड़म डाक्टर साहब की बही बर्मा रोड आदि कहानियों के
कथानक ।

४ कहानी का प्रारम्भ किसी ऐसे मूत्र से होता है जो आदि से अन्त तक एक सा बना रहता है। 'इसमें न किसी सहायक शक्ति की आवश्यकता है न किसी विरोधी शक्ति की प्रतिक्रिया बरन् यह मूत्र स्वतः स्वाभाविक पति से आगे बढ़ता है और विविध मनोभावों अत्याम्य कार्य व्यापारों के बीच से आगे बढ़ता है लेकिन सबमें एक शक्तता और श्रुतता रखी है और अन्त में यह कथानक उसी स्वाभाविक दृष्टि में एक हो जाता है सपता है जैसे इस कथानक निर्माण में चरम सीमा की कोई व्यवस्था नहीं है न कोई व्यवस्था है न उसकी कोई अपेक्षा ही है।' जैसे महाभारत मुक्तदान पीरनावाक्यि बाहर भीतर आदि कहानियों के कथानक।

५ आत्मव्यापारक कहानियों का निर्माण दो प्रकार से हुआ है। प्रथम कथानक का प्रारम्भ किसी व्यक्ति के आत्म व्यापारक कथा वर्चन से होता है और यही एक व्यक्ति सम्पूर्ण कथा पर छाया रहता है। इनमें कथा प्रायः एक ही पात्र के मुख से कहलाई गई है। जैसे पीरनावाक्यि कहानी चरम हो गई, श्रुती अस्तित्वकारिणी आदि कहानियों के कथानक। दूसरे प्रकार की कहानियों का आरम्भ भी किसी व्यक्ति के आत्म व्यापारक कथा वर्चन से ही हुआ है किन्तु इस प्रकार की कहानियों में आदि से अन्त तक एक ही पात्र अपनी कथा नहीं कहता बरन् इनमें कई पात्र एक-एक कर अपनी-अपनी कथा कहते गए हैं। यह सभी परस्पर भिन्न प्रतीत होती हुई कहाँ एक मूत्र द्वारा आबद्ध होती है जिससे कथानक पूर्ण सुसंयोजित श्रुतताबद्ध एवं स्वाभाविक रहता है। जैसे जीवमृत पतिता आदि कहानियों के कथानक। इन दोनों ही प्रकार की कहानियों के कथानक अत्यन्त स्वाभाविक पति से बिना कथानक में किसी प्रकार की कलात्मक संश्लेषिता उत्पन्न किये चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं।

६ आचार्य जी ने अपनी कुछ कहानियों का आरम्भ किन्हीं महान् साहित्यकारों के एक दो वाक्यों को लेकर किया है। जैसे 'गद्दी' मुगलामुखीय आदि कहानियों का आरम्भ।

७ आचार्य जी ने अपनी कुछ कहानियों का निर्माण व्यंजनाओं के द्वारा किया है। इनमें घटनाओं की स्पृष्टता है। संयोज और आकस्मिकता के आधार पर भी इन कहानियों का निर्माण नहीं हुआ है। वास्तव में इन कहानियों के कथानक व्यापारक न होकर व्यापारक एवं प्रतीकार्थक हैं। ऐसे कथानकों

के उदाहरण में इन उपर दौला' सम्बन्धी' आदि कहानियों के कथानकों को स्पष्ट करते हैं। अतः इस प्रकार की कहानियों के निर्माण में आचार्य जी ने एक नवीन कथानक तंत्र की महादत्ता ली है। इनमें बानासनकथा नाटकीयता एवं स्रष्टवता तीनों का ही समन्वय प्राप्त होता है।

आचार्य जी की कहानियों में चित्र चित्रण

आचार्य असुरमेज की उपन्यासों की भाँति उनकी कहानियों में पात्रों का चरित्र चित्रण विस्तार से प्राप्त नहीं होता। कहानी में रचना विचार की सर्वांगीण परिमिति सिद्धाई पड़ती है। इस तथ्य का प्रभाव चरित्र और उसके विकास क्रम पर भी पड़ता है।^१ इस स्पष्ट मनोबोध के कारण ही कुछ विद्वानों का मत है कि आचार्य में कहानियों का काम चरित्र चित्रण है भी नहीं^२ डा० श्रीहृत्पलाल ने भी इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कहानी में उपन्यास की भाँति किसी चरित्र का अनेक नामों और प्रसंगों के बीच यथास्थिति विस्तृत चित्रण संभव ही नहीं है, इसीलिये कहानी का केन्द्रबिन्दु चरित्र चित्रण नहीं हो सकता।^३ किन्तु वास्तव में सत्य यह है कि कहानी का केन्द्र बिन्दु चरित्र चित्रण मने ही न हो परन्तु उसका कहानी में महत्त्वपूर्ण स्थान तो है ही। आचार्य जी ने अपनी कहानियों में इस बात का ध्यान रखा है। उनकी कहानियों के पात्रों की भी उनका उपन्यासों की भाँति कई बर्णों में रखा जा सकता है। यहाँ हम उनकी कहानियों के पात्रों के बर्णिकरण में न जाकर केवल कहानियों में प्राप्त चरित्र चित्रण कला की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करेंगे।

आचार्य जी की कहानियों की चरित्र चित्रण सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ—

आचार्य जी के उपन्यासों की भाँति उनकी कहानियों में भी कुछ विशेषताएँ प्राप्त होती हैं।

आचार्य जी की कहानियों के चरित्रों की सर्व प्रमुख विशेषता है कि वे पात्राक्षरों के अक्षरों ही चित्रित हुए हैं। उनकी कहानियों के पात्रों का व्यक्तिगत उनके उपन्यासों के पात्रों के व्यक्तिगत की भाँति पूर्ण एवं निकटतम हुआ मने ही न हो किन्तु विद्यता भी बहु चित्रित हुआ है पूर्ण स्वाभाविक एवं सजीव है।

१ कहानी का रचना विधान डा० शर्मा पृ ९३।

२ कहानी में चरित्र चित्रण दिव्य डा० देवराज उपन्यास कहानी साहित्य बर्ष ३ अंक १ मार्च ४०।

३ सांस्कृतिक हिन्दी साहित्य का विकास डा० श्री हृत्पलाल पृ ३२८।

उदाहरण के लिए हम उनकी 'अस्तिकारिणी' 'मुसबिर' 'जूनी' 'पठिता' 'विषबाधम' 'पत्थर में अंकुर' 'प्रतिशोध' 'कम्यादान' 'अभाव' 'सत्त्व' 'हेर फेर' बहिन ! 'तुम कहाँ' 'मैं तुम्हारी भाँसों को नहीं तुम्हें चाहता हूँ' 'नबाब मनकू' 'अम्बपालिका' भिखुराज' आदि कहानियों के चरित्रों को ले सकते हैं।

आचार्य जी ने अपने उपन्यासों की भाँति अपनी कहानियों के पात्रों के व्यक्तित्व के विकास में भी मनोविज्ञान का पूर्ण आश्रय लिया है। अपनी कुछ कहानियों में समाज सापेक्ष व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ उभारा है। उन्होंने अपने उपन्यासों की भाँति अपनी कहानियों में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर परिचय दिया है। किन्तु यहाँ भी वे मनोवैज्ञानिक कहानीकारों की भाँति पात्रों का मनोविक्षेपण करने नहीं बैठे हैं बरन् अपने उपन्यासों की भाँति यहाँ भी उन्होंने मनुष्य के भीतर के भावों को बड़ी कुशलता से उद्रेहा है। उदाहरण के लिए हम उनकी 'बाहर भीतर' 'बरती और आसमान' 'जूनी' 'वीरमृत' 'मुसबिर' 'मुसदान' आदि कहानियों में आचार्य जी पात्रों के बाह्य चित्रण में बितने सफल रहे हैं उतने मानसिक चित्रण में नहीं। इन कहानियों में चरित्रों के भीतर पीठकर उनके मनोरम्य के उद्घापोह का विचारों के संघर्ष का चित्रण करने की ओर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया है। इन कहानियों के चरित्र भी उनके प्रारम्भिक उपन्यासों की भाँति प्रायः व्यक्तिगत विशेषताओं की अपेक्षा वर्गगत विशेषताओं के अधिक समीप हैं। उदाहरण के लिए हम उनकी 'विषबाधम' 'पठिता' 'पानबाधी' 'पोड़ी का मोस ठोक' आदि कहानियों को ले सकते हैं।

आचार्य अनुरसेन जी ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों के चरित्रों का निर्माण अधिकोद्यत कल्पना अनुभूति और आदर्श के तादात्म्य से किया है जिससे उनके ये चरित्र एक ओर आदर्श की भावभूमि को स्पर्श करते हुए हीन पड़ते हैं तो दूसरी ओर यचार्य के घरातक पर प्रतिष्ठित हैं। यही कारण है कि आदि से अंत तक उनके यह चरित्र रोमांटिक हो उठे हैं। अपनी 'बुलबा में कासे कूँ' 'लालाक' 'आबचिन' आदि कहानियों में आचार्य जी ने ऐसे ही चरित्रों की सृष्टि की है।

आचार्य जी ने अपनी कहानियों के पात्रों का चरित्र चित्रण में अपने उपन्यासों की भाँति ही चरित्र चित्रण की रीतों ही रीतियों प्रत्यक्ष एवं परोक्ष का आश्रय लिया है। जिन कहानियों में उन्होंने चरित्रों के भावजगत को उभा

रना चाहा है वहाँ उन्होंने पात्रों के अंतर्द्वन्द्व को निरसताकर, उनके चरित्र को स्पष्ट किया है।

आचार्य जी की अधिकोद्य ऐतिहासिक कहानियों के पात्र आचरण प्रधान हैं जबकि उनकी सामाजिक कहानियों के अधिकोद्य पात्र चरित्र प्रधान हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियों को पढ़ने से हमारे समय पात्रों के आचरण का इतिहास और उसकी व्यवस्था ही आती है। पात्रों के चरित्र का विस्लेषण इन कहानियों में कम ही प्राप्त होता है। 'अम्बपालिका' कहानी के अध्ययन के पश्चात् हमारे सम्मुख अम्बपाली में आचरण का स्वीरा ही कुछ समय के लिए आ पाता है यहाँ उसमें चरित्र का आंतरिक पक्ष उभरा हुआ नहीं है। जबकि उनके उपन्यास 'बैताल की नगर बन्' में उसके चरित्र के बाह्य और आंतरिक दोनों ही पक्ष पूर्णरूप से उभरे हुए मिलते हैं। उन्होंने अपनी इन कहानियों को पात्रों के आचरण के माध्यम से ही आगे बढ़ाया है। जिससे इन पात्रों के चरित्र बाह्य अर्थ में अधिक स्पष्ट और अधिक मनोरंजक हैं। अपनी श्रेष्ठ सामाजिक कहानियों में मनोरंजक के चित्रण के माध्यम से ही उन्होंने कथा को अग्रसर किया है। उदाहरण के लिए उनकी 'भरती और आसमान' 'सुखदान' 'बाहर भीतर' 'नहीं' आदि कहानियों को ले सकते हैं।

आचार्य जी की कहानियों के पात्रों के मूल प्रेरणा स्रोत—

आचार्य जी के उपन्यासों की भाँति उनकी कहानियों के पात्र भी उनके अपने अनुभव की ही बँत हैं। अपनी कहानियों के कुछ पात्रों के मूल प्रेरणा स्रोतों का उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है 'कभी-कभी अत्यन्त साधारण सी बात पर उत्कृष्ट कहानी तैयार हो जाती है। तथाब मनकू मेरी उत्कृष्ट कहानी है परंतु उनकी मूल छाना मुझे एक मोटर ड्राइवर से मिली जब उसका मेरा कुछ बँतों का साथ हुआ था। ठिकड़म ठाकुर साहब की बड़ी प्राइवेट सेक्रेटरी और मरम्मत अकस्मात् एक बरा सा सूत्र मिलते ही एक ही छिटिय में मिली गई है। एक दो कहानियाँ कुछ चित्रों को देखकर ही एकाएक प्रेरणा पाकर लिखी गई है। 'पानवाली' और 'बै बूवा की राह पर' ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'हुल्ला में कासे कूँ' नामक कहानी के पात्रों के निर्माण की प्रेरणा भी उन्हें इसी प्रकार की एक घटना से प्राप्त हुई थी जिसका कि उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं।

आचार्य जी की कहानियों के कथोपकथन

हम पीछे आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों के कथोपकथनों की रचना करते समय कथोपकथन की परिभाषा उसके उद्देश्य एवं महत्त्व आदि पर प्रकाश डाल चुके हैं। अब यहाँ हम संक्षिप्त रूप से आचार्य जी की कहानियों के संवादों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कहानी के संवाद पुनः बर्न में किञ्चित् मान उपन्यास के संवादों से भिन्न होते हैं। 'कथा साहित्य के अग्रगण्य उपन्यास में इसका स्वच्छंद अभिव्यक्ति और अपरिचित विहार भिन्नता है परंतु कहानी में इसका समुद्र प्रसारी वैदग्ध्यपूर्ण, आकर्षक और जमत्कारी प्रयोग ही दृष्ट होता है।'

आचार्य जी ने अपनी कहानियों में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि उनके कथोपकथन सित्त और पतिष्ठीक हों। कई कहानियों का आरंभ ही उन्होंने संवादों से किया है। इस प्रकार के आरंभ से पाठकों का ध्यान कथा की ओर उसी प्रकार केंद्रित हो जाता है जैसे रंगमंच पर होने वाले किसी अभिनय की ओर। इस प्रकार के संवाद हम आचार्य जी की 'बाबू' 'नहीं' आदि कहानियों में देख सकते हैं।

आचार्य चतुरसेन जी ने प्रयोग के लिए कुछ ऐसी कहानियों की रचना की है जिनमें संवादों का सर्वथा अभाव है। उदाहरण के लिए हम उनकी कहानी 'घरती और आसमान' को ले सकते हैं। किंतु यह केवल एक प्रयोग मात्र है। जैसे उनकी अधिकांश कहानियों में संवादों की बहुलता ही प्राप्त होती है।

आचार्य जी के उपन्यासों की भाँति ही उनकी कहानियों में भी 'बचानक' को पति प्रदान करने वाले पात्रों के चरित्र को उभारने वाले कथाकार के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले वातावरण सृष्टि करने वाले संक्षिप्त चार्पक स्वाभाविक एवं गू ललायत कथोपकथन प्राप्त होते हैं। उनके उपन्यासों के कथोपकथनों का विश्लेषण करते समय हम इन सब प्रकारों पर विस्तार से विचार कर चुके हैं। जिस प्रकार से विभिन्न प्रकार के कथोपकथनों का प्रयोग आचार्य जी ने अपने उपन्यासों में किया है उसी प्रकार से अपनी कहानियों में भी। यहाँ हम संक्षेप में उनकी कहानियों में प्राप्त कथाकार को गति प्रदान करने वाले पात्रों के चरित्र को उभारने वाले कथाकार के उद्देश्य

को स्पष्ट करने बात एवं आशाकरण स्पष्ट करने वाले संवागों पर विचार प्रस्तुत करने हैं।

कथानक को गति प्रदान करने वाले—

जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं कि कथानक को गति प्रदान करने के लिए कथा में कथानकयनों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि कथानकयन का कथा सूत्र से प्रत्यय संबंध हो अन्यथा कथानक की शृंखला टूट हो जायेगी एवं कथा बिखर जायेगी। आचार्य जी ने अपने उपन्यासों की भाँति ही अपनी कहानियों के कथानकयनों में भी इस बात का सदैव ध्यान रखा है कि वे अनिर्बंधित एवं अनावश्यक न हों। यहाँ हम अपनी बात का स्पष्ट करने के लिए आचार्य जी की कहानी 'मास्टर साहूब' के एक कथानकयन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

सरल हृदय एवं सरल स्वभाव मास्टर साहूब की पत्नी भामा कुमर में पड़कर पति और पुत्र को त्यागकर बच देती है। अपने पति को त्यागने के लिए उसे महिला संघ की महिलाएँ उत्तेजित करती हैं किंतु जब वह पति को त्यागकर संघ के आश्रय में आ जाती है तो उसे साधारण कर्मचारी भी हीन दृष्टि से देखने लगते हैं। एक साधारण कर्मचारी से भामा का आत्मिकान्त मुनि—

'भूना तुमने वह खूब आया या दन्तर में।

'जीन।

'दरे वही बागड़बिन्का मास्टर, तुम्हारा पति।

'केरिन तू अभीय से बाने कर।

'देखुन तुमम ? क्या तुम मेरी बरखर हो ?

'तो मुने समता क्या है ?

'तुम बीस पाठी हो मैं भी बीस पाठा हूँ। तुमसे कम नहीं।

'ता इपी मे तू मेरी बराबरी करेया ?

'बन्ध इतना काम कर दिया सारा सामान बाजार से होकर आना और अब तू-तू करके बाने करली हो ? ऐसी ही पाहूजानी भी तो बीस हस्तियों पर नौकरी करने और हम कोठरी में दिन काटने क्यों आई थीं ?

'देख हरिया ज्यादा जहनमीजी करेया तो अच्छा नहीं होगा।

'क्या मारोगी ? मारोगी ?

'मैं कहती हूँ तू मानी हैसियत में रख।'

‘और तुम भी अपनी हैसियत में रहो। बहुत सहा कस में मेम साहब से साफ कह दूँगा कि जिस तिस की बुलामी करना मेरा काम नहीं है। ऐसी तीन सौ साठ मौकरी मिला सकती है। कुछ तुम्हारी तरह घर छोड़ कर भगोड़ा नहीं हूँ। इज्जत रक्ता हूँ।’

प्रस्तुत कथोपकथन से स्पष्ट हो जाता है कि कथा पुन एक करबट लेने वाली है। मामा को वास्तविक जीवन का ज्ञान हो गया है इस बच्चे के पश्चात् ही वह अपने पति के समीप जाने का निश्चय करती है।

यह तो मैंने केवल एक छोटा सा उदाहरण प्रस्तुत किया। इस प्रकार के कितने ही उदाहरण आचार्य जी की कहानियों में प्राप्त होते हैं। ‘प्रबुद्ध’ कहानी का सिद्धार्थ-श्रमण संवाद^१ ‘दुलहा में कासे कू’ नामक कहानी के साकी-बारघाह संवाद^२ सखीमा-बारघाह संवाद^३ आदि कितने ही इस प्रकार के उत्कृष्ट संवाद आचार्य जी की कहानियों में प्राप्त होते हैं।

चरित्र प्रकाशक संवाद—

आचार्य जी ने अपनी कहानियों में भी अपने उपन्यासों की भाँति संवादों द्वारा पात्रों के चरित्र का विश्लेषण किया है। बीसा कि हम उपन्यासों के कथोपकथनों का विश्लेषण करते समय प्रथम ही यह चुके हैं कि कथोपकथन का सीमा सम्बन्ध पात्रों से ही है। कथोपकथन के जमाब में न पात्रों के व्यक्तित्व की रखाएँ उभर सकेंगी और न ही उनके चरित्र का ही विश्लेषण सम्भव हो सकेगा। अतः कथाकार अपने पात्रों के मनोभावों एवं भावों की सूचना कथोपकथनों द्वारा ही देता है। आचार्य जी ने अपनी कहानियों में बृत्तकर इस प्रकार के संवादों का उपयोग किया है। आचार्य जी ने इस प्रकार के संवादों का प्रयोग करते समय इस बात का सर्व्व ध्यान रक्ता है कि पात्र की बातचीत करने की पद्धति द्वारा भी उसके व्यक्तित्व का प्रस्फुटन हो सके। भाव्यों में उनके उतार चढ़ाव में उनके विभिन्न संघों पर पड़नेवाले स्वराज्यों में जयवा व्यक्तित्व विधायक भावितियों के अनुरूप पदावली के प्रयोग में धोक्ने वाले का एक अपनापन रहता है। उसकी बातचीत के ढंग में अपना एक स्वतंत्र निरूपण

१ नबाब लकू संपह, आचार्य चतुरसेन मास्टर साहेब पृ ९०।

२ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन पृ ४०-४१।

३ मेरी प्रिय कहानियाँ, आचार्य चतुरसेन, पृ ७१ और ७६।

४ मेरी प्रिय कहानियाँ, आचार्य चतुरसेन पृ ७२।

ऐसा स्पष्ट-दिलसाई पड़े कि उस व्यक्ति की अपनी इकाई को स्पष्ट कर दे। एक ही पात्र भिन्न भिन्न स्थितियों में पड़ने के कारण बचक विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिकाओं पर स्थापित रहने के कारण तदनु रूप रंग डग से ही अपने विचार और भाव प्रकट करता है। परिस्थिति और आन्तरिक भावों के अनुरूप उसकी भाषा का उच्चार बदल बिल्कुल बल्ल सकता है। लेकिन इन सम्पूर्ण परिवर्तनों में परिवर्तनशीलता रहते हुए भी उसकी संवादात्मक पद्धति एक विशेष प्रकार की बनी ही रहकर उसके व्यक्तित्व को उभाड़े रहे ऐसे रूप का निर्बाह करना चाहिए।^१ आचार्य जी ने अपनी कहानियों के जरिये प्रकाशक संवादों में इस बात का सर्व्व ध्यान रखा है। उदाहरण के लिए हम उनकी कहानी 'टार्च लाइट' के विषय और बाळिका ने संवादों को ले सकते हैं।^२ बाळिका को भिन्न परिस्थितियों में दो प्रकार से बोसी है किन्तु दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न पद्धति के संवाद करते हुए भी वह अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखती है। प्रथम संवाद में आन्तरिक प्रेम हृदय का आह्लास और काम कुमुला व्यंजित होती है तो दूसरे में उसकी आन्तरिक बेदना एवं विनति प्रकट होती है। इसी प्रकार के जरिये प्रकाशक संवाद उनकी कितनी ही कहानियों में प्राप्त होते हैं। 'नवाब ननकू' 'मुजबान' 'बाहर भीतर' 'बीबामृत' 'मुहम्मद' आदि कहानियों में क्रमशः नवाब ननकू सुपमा और विद्यानाथ^३ उषा और उसके पति^४ राजा साहब और बीबामृत^५ मुहम्मद डाक्टर और राजासाहब^६ आदि के संवाद बहुत कुछ इसी प्रकार के हैं।

इसी प्रकार आचार्य जी ने अपनी कहानियों में संवादों के माध्यम से वातावरण की सृष्टि भी की है। उन्होंने अपने उपन्यासों की भाँति कहानियों में भी मजबूत अतीत के कथानकों में तत्कालीन समाज और व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली पदावली के व्यवहार से काव्य की बुरी को उभाटा है। उनकी ऐतिहासिक कहानियों में विशेष रूप से यह गुण देखा जा सकता है। 'अम्बपाळिका' 'प्रबुद्ध'

१ कहानी का रचना विद्यालय, डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ १२६।

२ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन पृ १७४-१७७ तथा १७७-१७८।

३ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन, पृ १६८-१७१।

४ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन पृ १८६-१८८।

५ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन पृ २३२-२३३।

६ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन पृ २३३-२३५ तथा २३६-२७-२६१-२६३।

'मिश्रराज' 'साठ का बचन', 'साठ की छाग' 'कुम्भा की उल्लार' 'बावचिन' 'कासाकल' 'दुखवा में कासे कहु मोरी सजनी' आदि कहानियों में संवाद-पद्धति से ही कथा-काल का परिचय हो जाता है ।

इसके अतिरिक्त आचार्य जी की कहानियों में अगमग सभी प्रकार के कथोपकथन प्राप्त हो जाते हैं जिनकी रजवाकों से सम्बन्धित कहानियों के संवाद एक विशेष वर्ग से सम्बन्धित साठ होठ हैं । 'ब्रह्मवत' राजा साहब की कुटिया' 'राजा साहब की पठभून' आदि कहानियों के संवादों को हम बर्ष मठ कह सकते हैं । इनमें राजा रईसों की सनक किन्तुसखर्ची और हिमाकत का अन्ध विद्वंसन किया गया है । राजाओं की जातीय विशेषताएँ उनके प्रत्येक उम्हों से स्पष्ट होती हैं । सुदृढ बौद्धिक संवादों का आचार्य जी ने अपनी कहानियों में प्रयोग मूल ही किया है किन्तु फिर भी उनकी 'नहीं' 'गुणगुणीय' आदि कहानियों के कुछ संवाद बौद्धिक हैं, किन्तु बौद्धिक होते हुए भी इनमें नीरसता नहीं आने पाई है ।

आचार्य जी ने अपनी कई कहानियों में काव्यात्मक एवं भावार्थक संवादों का भी प्रयोग किया है । जैसे भावार्थक संवादों के सन्नाट तो 'प्रसाद' भी थे किन्तु आचार्य जी ने भी अपनी कुछ कहानियों में इस प्रकार के संवादों का प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए हम उनकी 'प्यार' 'कम्बोदी' 'कासाकल' आदि कहानियों के संवादों को ले सकते हैं । इन कहानियों के संवादों में व्यासकारिक प्रस्तुत विधान उचित वैचित्र्य एवं विचित्रता की सारी संवाद्यत ऐसे कौशलपूर्ण ढंग से सामने प्रस्तुत की गई है कि प्रसंग का सम्पूर्ण चित्र साकार सा हो उठा है । किन्तु वैसे प्रथम ही कहा जा चुका है कि इस प्रकार के संवाद आचार्य जी की कहानियों में मूल ही हैं । वास्तव में उन्होंने बातावरण को सजीव करने के उद्देश्य से ही काव्यात्मक अथवा अलंकार संवादों का प्रयोग किया है अर्थात् नहीं । अन्त में हम संक्षिप्त रूप से आचार्य जी की कहानियों के संवादों की विशेषताओं पर विचार करते हुए देखने का प्रयत्न करें कि उनके कथोपकथनों में अन्य कहानीकारों से क्या भिन्नता और क्या साम्य है तथा उनकी कथोपकथन सम्बन्धी अपनी मौलिक विशेषता क्या है ?

आचार्य जी की कहानियों के संवाद रोचक संक्षिप्त एवं मठे हुए हैं । वे अधिकतर कथा के अंग बनकर ही आते हैं । कथा पर भारवत् बन कर नहीं । वैसे हम पीछे दिखला चुके हैं उन्होंने अपनी कई कहानियों का प्रारम्भ ही संवादों द्वारा किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों की भाँति अपनी कहानियों के

संवादों में भी इस बात का ध्यान रखा है कि वे बल्लू क बिचार एवं बुद्धि के अनुसार लम्बे अथवा संक्षिप्त हों। किंतु उनकी कुछ प्रारम्भिक कहानियों के संवाद विचित्र एवं अस्वाभाविक भी हैं जैसे 'भारतें बासक' 'बीर बासक' 'राजपूत बन्ने' मुपस बाण्वाहों की अनाखी बात आदि कहानी संघर्षों की कहानियों के संवाद।

भाचार्य जी के संवादों की सर्वप्रमुख विशेषता है उनका परिस्परितियों एवं वातावरण के अनुरूप होना। उनकी कहानियाँ विविध कालों एवं विविध विषयों से संबंधित हैं। जिस काल के कथानक को उन्होंने किया है उसके संवाद भी उस काल के वातावरण को सजीव करने वाले हैं। उदाहरण के लिए हम उनकी बौद्धकासीन और मुगलकासीन कहानियों को ले सकते हैं। 'थेल्ड बरबर' प्रतिहार, तोरण परम भट्टारक परिच्छर अनात्यर्ग भीपाद पय तपस्वर्मा उत्तरीय उष्णीव अनात्यर्क, माण्ड मायुष्मान् (बौद्धकासीन कहानियों में) जहापनाह कुमूर, अर्ज कनीज फहया इस्तकबास जहे किस्मत जमसिन बासदब ताफीर (मुगलकासीन कहानियों में) आदि धर्म कथोपकथनों में आकर कथाकार ने वातावरण का निर्माण किया है। किंतु कहानियों में संवादों द्वारा वातावरण निर्माण में उतने सफल नहीं हैं जितने उपन्यासों में। किंतु यह बात निःसंकोच स्वीकार करनी पड़ेगी कि भाचार्य जी के संवादों में जितनी विविधता प्राप्त है उतनी हिंदी साहित्य के किसी भी कहानीकार के संवादों में नहीं प्राप्त होती। प्रेमचंद भी सामाजिक राजनीतिक कहानियों के संवादों में अधिक सफल हैं, 'प्रसाद' की ऐतिहासिक एवं आवात्मक कहानियों के संवाद अपने में अद्वितीय हैं बनेत्र की कहानियों के संवाद संकेतारमकता लिए हुए हैं किंतु भाचार्य जी के संवाद इन सभी विशेषताओं से पूर्ण हैं। एक बात और भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि भाचार्य जी की ऐतिहासिक कहानियों के संवादों में वैसी वातावरण निर्माण की शक्ति नहीं है वैसी 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानियों के संवादों में न उनकी सामाजिक कहानियों के संवाद वैसा पैमानेन लिए हुए हैं वैसा कि प्रेमचंद की कहानियों के संवाद। हाँ भाचार्य जी की प्रतीकवादी कहानियों के संवाद अपने ढंग के लिए हैं। उदाहरण के लिए हम 'अन्वरीव' और 'छोटे दौबा' नामक कहानियों के संवादों को ले सकते हैं इनमें जो चुभन है, स्वयं और प्रवाह है वह आज की प्रयोपवादी कहानियों में कहीं ?

भाचार्य जी ने एक-दो स्थानों पर अपनी कहानियों के संवादों द्वारा वर्धन के महत् विषयों का भी प्रतिपादन किया है। किंतु ऐसे अवसरों पर

उन्होंने यह ध्यान रखा है कि संवाद कुच्छ न होने पाये। उदाहरण के लिए हम उनकी 'प्रबुद्ध' कहानी के समस्त चित्रार्थ संवाद^१ एवं चित्रार्थ सभाद् संवाद^२ को ले सकते हैं।

आचार्य जी के संवादों की एक और विशेषता उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी कहानियों के संवादों के साथ-साथ प्रसंगानुसृत पात्रों की मुद्राओं और भाव अभिव्यक्तियों का भी यथासंभव चित्रण किया है। कभी-कभी कहानीकार ने पात्रों की मुद्राओं और भाव अभिव्यक्तियों के साथ-साथ कार्य व्यापारों एवं घटनाओं का उल्लेख भी पात्रों के संवादों के साथ-साथ किया है। ऐसे संवाद आचार्य जी की प्रौढ़ और कलात्मक कहानियों में प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए हम 'सुखदान' कहानी के विद्यानाथ और सुपमा संवाद^३ राजासाहब ननकू और राजेश्वरी संवाद नबाब ननकू आदि को ले सकते हैं।

आचार्य जी की प्रौढ़ कहानियों के कथोपकथनों की एक विशेषता और है। इनके एक कथोपकथन से दूसरा कथोपकथन अनायास ही निकल आता है। ऐसे कथोपकथनों में प्रथम कथोपकथन का अन्तिम वाक्य दूसरे कथोपकथन की पृष्ठभूमि का कार्य करता है।

आचार्य जी की कुछ प्रारम्भिक कहानियों के संवादों में नाटकीयता अधिक आ गई है। उन्होंने नाटक की शैली कहानियों में भी 'सज्जित सी होकर (परा मुस्कराकर)^४ 'तुम्हारे दा प्रहार,^५ 'कान में'^६ आदि निर्देशनों का प्रयोग किया है। जिससे इन कहानियों की कलात्मक महत्ता न्यून पड़ गई है। कारण कहानी पठन-पाठन की वस्तु है अभिनय की नहीं। उनकी 'बागवतू नामक कहानी इन्हीं निर्देशनों के कारण ही कहानी से अधिक एकांकी के समीप पहुँची हुई प्रतीत होती है।

वास्तव में शायद यह है कि आचार्य जी की कहानियों में कथोपकथन की ये समस्त रूढ़ और शैलियाँ प्राप्त होती हैं। कहीं उन्होंने छोटे-छोटे और

१ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन 'प्रबुद्ध', पृ ४०।

२ मेरी प्रिय कहानियाँ आचार्य चतुरसेन 'प्रबुद्ध', पृ ४४।

३ नबाब ननकू कहानी संग्रह आचार्य चतुरसेन पृ २४-२५।

४ मेरी प्रिय कहानियाँ अम्बिकादेवी पृ २२।

५ मेरी प्रिय कहानियाँ बागवतू, पृ १३३।

६ मेरी प्रिय कहानियाँ बागवतू, पृ १३७।

द्वैत सबादों का प्रयोग किया है तो वहीं मारीमरकम विचार एवं कार्य व्यापारों के स्वरूपों से पूर्ण सबादों का आशय किया है तो वहीं विनोद श्यम से पूर्ण करत एवं स्वाभाविक सबाद प्रयुक्त हुए हैं।

अन्त में हम यह सचते हैं कि अपनी कहानियों में संवाद सौन्दर्य का निर्वाह करने में आचार्य जी एक सीमा तक सफल रहे हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में अधिकतर उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है जो त्रिमोक्षक पत्रिका और माबोर्बोचन करनेवाले हैं।

कहानियों में वातावरण-सृष्टि

आचार्य अनुपमन जी ने अपने उपन्यासों की भांति अपनी कहानियों में भी देवकाल तथा वातावरण के विवरण पर विशेष ध्यान दिया है यद्यपि उपन्यासों की भांति कहानियों में विचार नहीं घान होगा फिर भी उनमें सजीवता की स्पृशता नहीं है। कहानियों में ध्यान का संकोच होता है अतः अल्प संक्षेप में ही बटना तथा पात्रों में सम्बन्धित स्थान तथा वातावरण की ओर इंगित कर देने में ही कहानीकार की कुशलता समझी जाती है। आचार्य जी ने अपनी कहानियों में देवकाल तथा वातावरण का विवरण करते समय इस ध्येय का सदैव ध्यान रखा है।

कहानियों में देवकाल और वातावरण निर्माण का प्रथम सोधान है परिस्थितिपोत्रता इसका प्रधान उद्देश्य होता है सम्पूर्ण कथामक के भीतर आई हुई क्रियाओं और परिणामों का एक संवत कमम्यात। यथार्थता को कल्पना की सीढ़ियों से ऐसा सजाना चाहिए कि किसी घटना कथना करने के पूर्व की समस्त परिस्थितियाँ कड़ी के रूप में संपठित याकूम पड़ें। पाठक को यह विहित होना चाहिए कि अमुक कार्य के पहले उसके अनुकूल कारण किस रूप में उपस्थित थे। परिस्थितियों की सीढ़ी बढ़कर ही कोई परिणाम सिद्ध पर अमकृत हो सकता है। इस बात का आचार्य जी ने अपनी कहानियों में विशेष ध्यान रखा है। उदाहरण के रूप में हम अपनी प्रसिद्ध कहानी 'धुसबा में कावे कड़ू मोटी सजनी' का सं सकेते हैं। जिस प्रकार बारखाह के हृदय में अपनी धान श्रिय पत्नी सजीमा के प्रति विराय उत्पन्न होता है और जिस प्रकार उसके विषयान करलेने के पश्चात् उसकी निर्दोषिता का प्रमाण मिस जाने पर उनके हृदय में उसके प्रति अनुपय और अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होता है इसका

अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण कथाकार ने प्रस्तुत किया है। कथाकार ने सखीमा की मृत्यु और बादशाह के चित्रण की बटना को सजीव स्वाभाविक एवं यथावै बनाने के लिए उदमुरूप कारण एवं परिस्थितियाँ प्रस्तुत की हैं। इसी प्रकार की परिस्थिति योजना उनकी प्रसिद्ध कहानी 'सूनी' में देखी जा सकती है। सूनी ने किस प्रकार अपने प्रवास के कहने से अपने मित्र की हत्या की और उसकी हत्या के पश्चात् किस प्रकार वह अपने से ही बूझा करने लगा इसका बड़ा ही सजीव एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण कथाकार ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कहानीकार ने 'साक्षात्स' 'बाबुलिन' 'पतिता' 'मास्टर साहब' 'टार्च लाइट' 'जीवमृत' 'मुहम्मद' आदि कहानियों में पतिविधियों एवं कार्यकलापों का चित्रण अपने पूर्व की परिस्थितियों के आधार पर ही किया है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि आचार्य जी की समस्त कहानियों में परिस्थिति योजना प्राप्त होती है। उनकी कितनी ही कहानियों में जिनमें इतिवृत्त की नितांत स्पृणता है परिस्थिति योजना को स्थान नहीं मिल पाया है। उदाहरण के लिए हम उनकी 'नहीं' 'बरछी और आसमान' 'युष्कांतुजीय' 'सम्बन्धीय' आदि कहानियों को के सकते हैं।

कहानियों में वातावरण निर्माण का दृष्टा महत्वपूर्ण तत्व है पीठिका। वास्तव में कहानी का प्रतिपाद्य आशय होता है और उसे प्रभावित्युत्ता प्रदान करने वाली आचारिक वस्तु होती है पीठिका या आधार' इस पीठिका को हम दो भागों में रखकर देख सकते हैं प्रथम प्रकृति सज्जा तथा दृष्टा देय काक चित्रण। आचार्य जी के उपन्यासों के वातावरण पर विचार करते समय हम इन दोनों तत्वों पर विस्तार से लिख चुके हैं यहाँ केवल हम उनकी कहानियों में प्राप्त इन दोनों तत्वों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

आचार्य जी की कहानियों में पीठिका रूप में प्रयुक्त प्राकृतिक विषय विद्या के कई सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। उनकी 'प्यार' 'दुखवा में कासे कट्टे मोरी सखी' 'मिशुराज' 'हल्दी घाटी' 'म' आदि कहानियों में प्रकृति-चित्रण पीठिका रूप में अत्यन्त ही प्रभावकारी हुआ है। 'प्यार' में मेहरबानिया के दुःखमय जीवन की संकट वर्षों के घनघोर अन्वकार के चित्रण के पश्चात् ही जाती है। 'दुखवा में कासे कट्टे' - में सखीमा और बादशाह के सुलभमय जीवन का परिचय प्योस्ना की सबसे छटा दिखलाने के पश्चात् दिया जाता है। इस प्रकार की पीठिकाओं से कहानियों का वातावरण अत्यन्त सुन्दर एवं स्वाभाविक हो उठा

है। आचार्य जी की इस प्रकार की कुछ ही कहानियाँ हैं। किन्तु जो भी कहानियाँ हैं उनमें 'प्रसाद' की कहानियों की तरहता एवं प्रीकृता है किन्तु विस्तार एवं गहन उनका नहीं है। आचार्य जी ने प्रकृति चित्रण की यह पद्धति कहानी के आरम्भ में ही नहीं कहीं-कहीं मध्य में भी प्रयुक्त की है। उदाहरण के लिए हम 'हस्वीपाटी' 'कासादख' 'आबजिन प्यार' आदि कहानियों को ले सकते हैं। 'प्यार' कहानी के मध्य का एक अंश बसिए ईद का दिन या संघ्या का समय। रंग महसूस में बदल बनाया जा रहा था। मेहकद्विशा अपने कक्ष में कासीम पर बीठी अस्फुट सूर्य की गजर बाग में पड़ती झाड़ी-तिरछी सुनहरी किरणों को निहार रही थी।^१ बस आचार्य जी की कहानियों में स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण कम-ही प्राप्त होता है। अधिकांशतः उनकी कहानियों में प्रकृति-चित्रण मानव व्यापार के साथ आया है। उपर्युक्त उदाहरण द्वारा इस तथ्य को समझा जा सकता है।

पीठिका निर्माण का दूसरा तत्व है देश-काल-चित्रण। देश काल चित्रण से हमारा तात्पर्य स्वामीय चित्र-चित्रण से है। कहानी की बटनाएँ, क्रियाएँ इत्यादि किसी स्थान-विशेष पर सिद्ध होती हैं। अतः यदि उस स्थान के विस्तृत विवरणों के साथ उनका संयोग पूर्णतया बैठ जाय तो उसी में एक सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है। विषय के विस्तार के साथ यदि देश-काल का प्रकृत-परिचय हो जाय तो विषय-बोध में यथार्थता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के देशकाल विशेष की संयोजना से विषय के प्रति बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो जाता है और उसमें एक प्रकृतत्व विभायक समीकता सहज उठती है। इस प्रकार के स्वामीय विवरणों और साज-सज्जाओं की सजावट में या तो भाषा योग्य होती है अथवा स्वामीय यथार्थ जीवन की झलक।^२ आचार्य जी के उपन्यासों के देशकाल एवं वातावरण पर विवेचन करते समय हम इस पर विस्तार से प्रकाश डाल चुके हैं। कहानियों में देश-काल का चित्रण उपन्यासों की भाँति विस्तार से नहीं है बल्कि संकेतिक है। आचार्य जी ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों का निर्माण समीक वातावरण की पीठिका पर ही किया है। 'अम्बपाकिना' 'भिक्षुराज' 'प्रबुद्ध' 'कासादख' 'आबजिन' 'दुलखा में कासे कर्तू मोटी सबनी' आदि अतीत के वातावरण में मुबलित कहानियों में देश और काल की प्रौढ व्यंजना देखी जा सकती है। नहीं-कहीं चरित्रों के माध्यम से ही आचार्य जी ने अपनी कहानियों

१ पतिता, कहानी संग्रह प्यार, पृ ५६।

२ कहानी का रचना विधान, डा० जयभाय प्रसाद शर्मा, पृ १७७।

में स्थानीय विषय विधान को अविकल्पाधिक समाप्त कर रखने का प्रयत्न किया है। ऐसी कहानियों में प्रादेशिकता पूर्ण रूप से उभर आई है। उदाहरण के लिए हम उनकी रचनाओं एवं चरित्रपूर्ण से सम्बन्धित कहानियों को ले सकते हैं। जिस प्रकार से अपने 'मोती' उपन्यास में उन्होंने कुछ राजस्वाम में प्रचलित घट्यों का प्रयोग करके उसे स्थानीय रंग से रंग दिया है उसी प्रकार से उनकी इन कहानियों में भी एक दो घट्यों के कारण ही प्रादेशिकता की मजक आ गई है। 'ब्रह्मदाता' 'कड़वे की टाल' 'घँसि' आदि घट्यों का प्रयोग कहानीकार ने इसी कारण से किया है। कहीं-कहीं आचार्य जी ने देवकाल का विषय केवल परिचयात्मक ढंग से ही किया है। कुछ स्वकों पर वे देवकाल का संकेत करने के लिए केवल किसी इतिहास प्रसिद्ध पुरुष अथवा वस्तु का उदाहरण देकर ही कामे बढ़ गए हैं। किसी किसी कहानी में तो आचार्य जी ने परिस्थिति एवं अवस्था का विषय एक साध व्यंजनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ उनकी प्रसिद्ध कहानी 'इस्वी घाटी में' का एक उदाहरण ही विषय को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगा। 'तीस हजार मोटा उपत्यिका के समतल मैदान में झूलक बढ़े थे। बोड़े दिनहिना रहे थे और मोड़कों की तरवारें झनझना रही थीं। उस समय धूप कुछ तेज हो गई थी आरक फट गए थे। सुनहरी धूप में मोड़कों के विरुद्ध बकार और उनके आगे की मोड़ों विजयी की तरह चमक रही थीं। वे सब लौह पुरुष थे—सन्ने मुठ के ब्यबसामी जो मृत्यु के साथ सेकते थे और जिन्होंने जीवन को विजय कर लिया था। वे बेस और भाठि के पिता थे। वे बीरों के बंधव और स्वयं बीर थे। वे अपनी छोई की छरती की दीवारें बनाए निरुपल लड़े हुए थे। आरक और बंधीगन कड़वे की टाल पर विरल गा रहे थे। बँसि बज रहे थे। बोड़े और छिपाही सब कोई उठावके हो रहे थे।'

इसमें परिस्थिति और अवस्था का एक साध वर्णन करके तत्कालीन देवकाल एवं वातावरण को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार की कहानियों में परिचार्य और वातावरण का इतना आकर्षक और वेग रहता है कि पाठक इनसे कभी भी दूर नहीं जा पाता। पाठक का इत प्रकार की कहानियों से सीधा साधारणपरीकरण होता जाता है। आचार्य जी की ऐतिहासिक एवं भाषात्मक कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उनके उनके वातावरण निर्माण में ही है। जैसा कि हम पीछे निसता चुके हैं कि आचार्य जी ने तीन दैत्यों से

साक्षात्करण का निर्माण किया है। प्रथम कहानी की मुख्य संरचना आरम्भ होने के पूर्व कहानी के आरम्भिक भागों द्वारा दृश्य-दृश्यों के आदर्शक कथोपकथनों द्वारा तीसरे-दूसरे विधान के वर्णन एवं भाव-विधान के माध्यम के द्वारा—उन्होंने अपनी कहानियों में साक्षात्करण की सृष्टि की है। इस प्रकार अपनी इन कहानियों में साक्षात्करण प्रस्तुत करने में कहानीकार ने अपनी आ-अर्थव्यक्त प्रतिभा का उदाहरण दिया है। फलतः इन कहानियों में ऐतिहासिकता के साथ-साथ कथामय सौन्दर्य अत्यन्त ही प्रचुर हुआ है। अन्तुः साक्षात्करण प्रधान कहानियों में कथिन्वयुक्त भावना उसकी कथामय अन्विष्ट आदर्शक कथोपकथनों की अन्वयव्यक्तता और उसमें अन्विष्टों के संघर्ष इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं।^१

आचार्य जी मूलतः उपन्यासकार या कहानीकार—

वेदों हम आचार्य अनुमतेन जी के उपन्यासों और कहानियों के चार प्रमुख तन्त्रों कथानक अन्विष्ट-विधान कथोपकथन एवं साक्षात्करण पर विचार कर चुके हैं। अब हम यहाँ यह अन्विष्ट का प्रयत्न करेंगे कि आचार्य जी मूलतः उपन्यासकार हैं या कहानीकार। इस ज्ञान करने के लिए हम निम्न कथोपकथन पर आचार्य जी के उपन्यासों और कहानियों के चारों तन्त्रों को क्रम क्रम पर करने का प्रयत्न करेंगे।

यदि लेखक की प्रवृत्ति कथानक को बढ़ा करने की ओर हो अथवा कहानी के भीतर कहानी करने की आकांक्षा दिखाई पड़े अथवा वेदात्मक की कथा को कथानक भूमि पर उपस्थित करने की ओर उसकी अभिरुचि हो तो समझना चाहिए कि उसकी मौलिक भूमि उपन्यास की ओर है।^२ यदि इस कथोपकथन पर आचार्य जी के उपन्यासों और कहानियों के कथानकों को परखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वे मूलतः उपन्यासकार हैं कारण अपनी कहानियों में भी उनकी अपने उपन्यासों की मूर्ति कथानक के भीतर कथानक रखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए हम उनकी 'अम्बपालिका', 'पूर्वाहृति' 'भूमि' 'अमृत' आदि कहानियों को ले सकते हैं। अन्विष्ट कथानकों पर आनन्दकर उन्होंने अपने कुछ विद्यालयीय उपन्यासों का निर्माण किया। इस प्रकार एक कथानक की प्रसार भूमि पर दूसरे कथानक की अन्वयव्यक्तता यह

१ हिन्दी कहानियों की कथिन्वयुक्तता का विचार डॉ० सखीनारायणशास्त्री

सूचित करती है कि कथामक की व्यापकता की ओर लेखक का विशेष आग्रह है। यह स्थिति उनको मुख्यतः उपन्यासकार घोषित करती है। कथामक के अतिरिक्त आचार्य जी की कहानियों के चरित्र-चित्रण कथोपकथन एवं बाठावरण आदि तर्कों के विषय में भी समझग यही बात कही जा सकती है। कहानी के इन तर्कों पर भी उनका उपन्यासकार रूप छाया हुआ है। जिससे उनका कहानीकार रूप अधिक निखर नहीं पाया है। उनकी प्रतीकारमक कहानियाँ अवश्य इस तथ्य का अपवाद कही जा सकती हैं।

अध्याय ८

आचार्य चतुरसेन का भाषा एव लेखन शैली

उपन्यासों में आचार्य चतुर्सेन जी की भाषा एवं लेखन शैली

किसी कवि या रसिक की शब्द-योजना वाक्यांशों का प्रयोग वाक्यों की बनावट और उनकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। एक विद्वान के मत से शैली विचारों का परिधान है। पर यह ठीक नहीं क्योंकि परिधान का सरीर से अलग और निज का अस्तित्व होता है उसकी उस व्यक्ति से भिन्न स्थिति होती है। जैसे मनुष्य से उसके विचार अलग नहीं हो सकते वैसे ही उन विचारों को व्यक्त करने का ढंग भी उससे अलग नहीं हो सकता। अतएव शैली को विचारों का परिधान न कह कर उनका बाह्य और प्रत्यक्ष रूप कहना बहुत कुछ संगत होगा। अथवा उस भाषा का व्यक्तित्व प्रयोग कहना भी ठीक होगा।^१

बूझी और भाषा ऐसे सार्वक सम्बन्ध-समूहों का नाम है जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती हैं। अतएव भाषा का मूल आधार शब्द हैं जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिए।^२ यदि इसको एक भाव में कहना चाहें तो कहा जा सकता है कि भाषा भाषानिब्यक्ति का माध्यम है और उस माध्यम के प्रयोग की रीति या विधि शैली है। शैली के द्वारा ही कोई भी लेखक अपनी रचना पर अपने व्यक्तित्व की छाप डालता है। रचना में अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए लेखक शैली को ही सहायता देता है। वह जिस वस्तु का भी विषय करेगा अपने ढंग से अपने अनुभव विचार, कल्पना अनुसूति आतावरण संस्कार एवं शिक्षा के अनुसार। इन सबके कारण उसकी भाषा ठर्क-सीधी और व्यंजना प्रभावी में जो तबीयत अपनात्व एवं मौलिकता रहती है वही उसकी

१ साहित्यालोचन—डा इयान सुन्दरदास-पृ० ३०२।

२ साहित्यालोचन—डा इयान सुन्दरदास-पृ० ३०४।

धीमी कहलाती है। निजीपन एवं गवीनता के साथ-साथ बीसी में सरसता, रोचकता सजीवता स्वाभाविकता प्रवाहपूर्णता भोज एवं प्रभाव भावि गुण अप्सिष्ट हैं। वाक्य गठे हुए सरस रोचक एवं शृङ्खलाबद्ध हों उनमें गति हो स्वाभाविक प्रवाह हो यह तभी सम्भव हो सकेगा जब सम्य संतुलित पुस्त भाषानुकूल एवं भावस्यक हों। अनावश्यक शब्दों के प्रयोग से बीसी का प्रवाह मजबूत और गति सिद्ध हो जाती है। अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग से उपस्थास कार को सदैव बचना चाहिए।

बीसी को अधिक से अधिक स्वाभाविक एवं सरस बनाने के लिए उसमें पात्रानुकूल एवं वातावरण के अनुकूल शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। उपस्थास की बीसी संकेतात्मक न होकर विवृतात्मक होती है क्योंकि उसे पूर्ण वातावरण और उसमें रस और भावों की सृष्टि करनी होती है। अतः पात्र की शिक्षा संस्कृति और भावसिद्धि असाध्य के अनुकूल ही उसकी भाषा होनी चाहिए। इसके लिए पांडित्यपूर्ण व्यंग्ययुक्त भाषा से शरर ठेठ प्रारंभिक और प्रास्य भाषा तक का प्रयोग सपावश्यक रूप में किया जाता है।^१ हिंदी भाषा ने कई रूप प्रचलित हैं। साहित्यिक हिन्दी बोलचाल की सरस मुहाबरेदार हिन्दी प्रचुर अरबी फारसी शब्दों से युक्त उर्दू भाषि। उपस्थासकार पात्रानुकूल भाषा-निर्माण के लिए समग्र हिंदी के सभी प्रचलित एवं अप्रचलित भाषा रूपों का व्यवहार अपने उपस्थासों में करता है।

भाषार्थ चतुरसेन जी की भाषा—

भाषार्थ चतुरसेन जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। यद्यपि भाषा के विषय में उनका दृष्टिकोण अत्यन्त सरार था। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है भाषा के विषय में मैं बहुत सारप्रवाह हूँ। विचारों के प्रवाह में तेजी से जब निकलने लगता हूँ तो भाषा भागती बीड़ती मड़सड़ाती किरली-गड़ती पीछे-पीछे भागती चली जाती है। पीछे मुड़कर मैं देखता नहीं।^२ स्पष्ट है भाषार्थ जी का प्रमुख ध्येय क्या कहने का रहता है वह अपने पाठक के रूप में सरस कहानी द्वारा ही पकड़ना चाहते हैं, और उस कहानी को वे सीधे सारे सरक रंग से कहते चले जाते हैं। भाषा का शृंगार स्वयं ही होता चले तो ठीक अन्यथा उसे लंबारने के लिए वे चरते नहीं हैं। तो भी उनकी भाषा अत्यंत समस्त है।

काव्यशास्त्र—डा. भगीरथ मिश्र पृ ८८-८९।

चतुरसेन वैसासिक-सम्पादिका कमल किशोरी-प्रथम अंक निवाच २०१२-१३।

भाषार्थ अनुरूपन के उपन्यासों की भाषा राधी होती है। किंतु उन्होंने भाषाओं की पूर्ण व्यक्तित्व के लिये दशा अथवा अनेक विभिन्न भाषाओं एवं शक्तियों के लक्षणों का व्यवहार किया है। इस कारण उनके उपन्यासों में कितने ही प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है। भाषार्थ जी पाञ्चानुसूय भाषा सुझाने के लक्ष्य में वे अनेक उपन्यासों में भाषावैविध्य माना अनिवार्य था ही। उनके विभिन्न प्रकार के उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है। भाषा रसत हम उनके उपन्यासों की भाषा का तीन वर्गों में रक्त सकते हैं—

- १ ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा।
- २ सामाजिक उपन्यासों की भाषा।
- ३ वैज्ञानिक भौतिकशास्त्रिक उपन्यासों की भाषा।

ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा कुछ कठिन है कारण उपन्यासकार ने उस भाषा एवं देशकाल के अनुकूल वाक्यन का प्रयत्न किया है। भाषा ठाय ही उसमें वक्तव्यहीन वातावरण को समीच किया है। दूसरे प्रकार के उपन्यासों की भाषा सीधी-साधी और सरल है। तीसरे प्रकार के उपन्यासों की भाषा भी सरल है। किंतु विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने सुलभ वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग किया है। अपने 'अज्ञात' नामक उपन्यास में वैज्ञानिक वातावरण उपस्थित करने के लिए एवं तथ्यों को अधिक से अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अंग्रेजी के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। इसमें यह एक भाषा कुछ कुछ अस्वस्थ हो गई है किंतु इन शब्दों के प्रयोग से उपन्यासकार वैज्ञानिक वातावरण उभारने में सफल रहा है। सरलता तीनों प्रकार की ही भाषाओं का प्रधान गुण रहा है। पाठ एवं देशकाल के अनुरूप सरल भाषा होने के कारण भाषा के उपयुक्त व्यक्तीकरण में उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है। (यद्यपि उनके कुछ प्रारम्भिक उपन्यासों की भाषा यथ-स्थ गिबित है, जिससे उनमें भाषा के उपयुक्त व्यक्तीकरण में गिबितता का समावेश स्पष्ट प्रतीत होता है।) अनेक पृष्ठों में हम उसके तीनों ही प्रकार के उपन्यासों में प्राप्त शब्द संसार मुहावरों लोकोक्तियों सूक्तियों आदि पर विस्तार से विचार करेंगे।

भाषार्थ अनुरूपन जी की लेखन शैली—

भाषार्थ अनुरूपन जी की लेखन-शैली पर सर्वत्र उनकी 'शैली-लेखनी' की छाप है। उनकी शैली सरल रोचक प्रवाहपूर्ण सुलभ एवं स्वाभाविक है। और भाषार्थ एवं प्रवाह गुण तो उसमें सर्वत्र ही व्याप्त हैं। क्लृप्तता नहीं है।

एवं अस्पष्टता से उन्होंने कईव बचने का प्रयत्न किया है। इसी से उनके भागों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का ढंग पर रचना वाक्यों का गठन यद्यपि शक्तियों का उचित प्रयोग आदि सद्यत एवं प्राञ्जल रहा है। हाँ उन स्वलों पर जहाँ उन्होंने अपना आचार्यत्व प्रदर्शित करना चाहा है वही कुछ विस्पष्ट एवं दुर्बोध हो गई है। उसमें बकतृत्व का आवेश आ गया है। ऐसी वीची का प्रयोग उपन्यास में वाञ्छनीय नहीं है। बस्तुतः उपन्यास में वीची के अन्तर्गत बस्तु-वचन कथा कहने की विधि उसका संयुक्त पात्र संयोजना कपोपवचन एवं वातावरण निर्माण करने की विधि आदि सभी आ जात हैं। अथ अर्थ्याओं में हम उपन्यास के विभिन्न तारों पर विचार करते समय उनके प्रस्तुत करने की वीची पर प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ केवल हम उनकी सेखन वीची पर संक्षेप में विचार करेंगे।

जिस प्रकार आचार्य अनुराधेन जी के तीन प्रकार के उपन्यासों में तीन प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है उसी प्रकार उनके तीनों प्रकार के उपन्यासों की केवल-वीची में भी भिन्नता है। ऐतिहासिक उपन्यासों की वीची में सामाजिक उपन्यासों की वीची से बड़ी अधिक प्रवाह है। यद्यपि सरलता एवं सरलता दोनों ही प्रकार के उपन्यासों की वीचियों में समान है। वैज्ञानिक उपन्यासों में पारिभाषिक शब्दों के आधिक्य के कारण वीची विस्पष्ट हो गई है। किन्तु सरलता उतम भी कम नहीं है। अब हम उनके तीनों ही प्रकार के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न वीची रूपों पर संक्षेप में विचार करेंगे।

साधारणतः उपन्यास लिखने की पाँच वीचियाँ प्रचलित हैं—१. वर्णनात्मक २. आत्मकथात्मक ३. पत्रात्मक ४. डायरी एवं ५. मिश्रित वीची।

आचार्य अनुराधेन जी के समस्त उपन्यास वर्णनात्मक आत्मकथात्मक एवं मिश्रित वीची में ही लिखे गए हैं। आत्मकथात्मक वीची में केवल 'योत्री' एवं 'परवर के दो कुत' नामक उपन्यास ही हैं शेष वर्णनात्मक एवं मिश्रित वीची में लिखे गए हैं। इन तीन प्रकार की वीचियों में निम्न उपन्यासों में कितने ही प्रकार की वीचियाँ प्रयुक्त हुई हैं। सुविधा की दृष्टि से हमने उनके तीनों ही प्रकार के उपन्यासों में प्रयुक्त वीचियों को तीन भागों में विभक्त किया है।

१. वीची का बाह्य रूप—“गमने हम उगकी पर योजना प्रयोग कीमत कर्तव्यों एवं अथ शक्तियों आदि के प्रयोगों को ले सकते हैं। इसमें हम अर्थकृत शब्द सुशुद्ध उक्ति प्रधान आदि वीची रूपों को रख सकते हैं।

२ शैली का आंतरिक रूप—इसमें हम विभिन्न भाषों की अभिव्यंजना विधाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य आंतरिक युग] को ले सकते हैं। इसमें आकारमक शैली विशेषणआत्मक शैली व्यंग्यात्मक शैली उपदेशात्मक शैली पात्रानुरूप शैली रसानुरूप यवसंवाचनरूप शैली आदि विविध रूपों को लिया जा सकता है।

३ शैली का मिश्रित रूप—इसमें दोनों ही प्रकार की शैलियों का सामंजस्य प्राप्त होता है। इसमें हम नाटकीय शैली को ले सकते हैं। साथ ही शैली के इस रूप में ही हम वर्णनो एवं रेखा-चित्रों को भी ले रहे हैं। कारण ऐसे स्थलों पर जहाँ एक ओर भाष्यों की योजना उचित शब्दों के प्रयोग एवं असंकारों के आशय से उपन्यासकार विन को साकार करता है वहीं कल्पना सतर्कता एवं विभिन्न सूक्ष्म भावों से उसे आतप्रोत कर उसे सजीव एवं प्राणवान बनाता है।

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यास सिद्धान्त की शैलियों में क्रमिक विकास —
आचार्य चतुरसेन जी के प्रारम्भिक उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली की ही प्रधानता है। इसमें वह एक सर्वज्ञ की भाँति बसता है। और पाठकों को सम्बोधित कर प्रत्येक पात्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति कर उसके उसका परिचय कराता हुआ बसता जाता है। वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वस्तुओं एवं भाषा का चित्रण करने के साथ-साथ कथा भी कहता चलाता है। कथा की युक्तियों को सुनाने के लिए उपन्यासकार ने इस शैली के साथ-साथ संवाचनमक या नाटकीय शैली का भी समावेश किया है। उसने अपने उपन्यासों में अपनी बात को स्पष्ट करने और कथा को पति प्रदान करने के लिए पात्रों आरम्भ विस्तेषणों आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्वों संवादों आदि सभी का आशय लिया है जिससे उसके उपन्यासों की शैली मिश्रित शैली के अधिक निकट पहुँच गई है। पाठक से आत्यधिक दीर्घ स्पष्ट करने के लिए उसने अपने दो उपन्यासों 'शोनी' एवं 'पत्थर युग के दो कुत' को आत्म कथानक शैली में लिखा है। इसमें उसकी शैली की प्रभावपूर्णता एवं भावमयता तो बड़ी ही है साथ ही उसके क्षेत्र का विस्तार भी हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय में हम आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त शैली के बाह्य आंतरिक एवं मिश्रित तीनों ही रूपों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। साथ ही हम देखने का प्रयत्न करेंगे कि उपन्यासकार किस बात को विचारता है कथना जिस बात को वह कहता चाहता है क्या अपनी उस बात को क्यों की क्यों शैली के माध्यम से प्रभावशाली रूप से प्रकट कर सका है।

शैली का बाह्य रूप—उपन्यासकार अपनी शैली को असंकारों मुहावरों श्लोकियों एवं उक्तियों से साज सँवार कर प्रस्तुत करता है। यद्यपि वह इन समस्त अलंकारों का प्रयोग अपने भावों की सबसे अधिक अभिव्यक्ति के लिए ही करता है, किन्तु इनका बड़ी महत्व है जिस प्रकार एक सुन्दर रमणी के लिये बस्त्रों एवं आभूषणों का। जिस प्रकार बिना बस्त्रों एवं आभूषणों के रमणी की सुन्दरता नहीं निखर पाती। उसी प्रकार शैली के बाह्यरूप के बिना भावों की आंतरिक कोमलता भी नहीं निखर पाती। इस दृष्टि से शैली के बाह्य रूप का बड़ा महत्व है। शैली के बाह्य रूप में हम निम्न शैली रूपों को रख सकते हैं—

१ काव्यपरमक अथवा सरस शैली —

भावपरमक एवं रसपरमक स्वरों पर उपन्यासकार भावुक हो उठता है। वह यह मूल मानता है कि वह गद्य लिख रहा है। उसका गद्य-काव्यकार का रूप निखर जाता है और उसकी शैली सज्जता और व्यंजना का लक्षण के आगे बढ़ने लगती है। इस प्रकार की शैली में उक्तियों एवं मुहावरों की प्रधानता है। भाव अनुभाव एवं मार्मिकता को एक साज उपन्यासकार ने ऐसे स्वच्छों पर अनसूठ किया है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए केवल कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। 'सोमनाथ' उपन्यास का एक उदाहरण देखिए मस्माक्येव शमो महता से कहते हैं—

'यह क्या बात है शमो पाटन की राजनीति तारों की छांह में चपटी है।

'राजनीति और मान नीति दोनों ही तारों की छांह में चलें तो ठीक ही है। सूर्य के प्रकाश में तो उनकी घुड़ता भंग होती है। तभी तो देव रात-रात भर अभ्यसित करते हैं।'^१

'तारों की छांह में का अर्थ कसना से ही स्पष्ट होता है।

—और टमने साज ही सिंह के मुक्काओं के समूहारे हुए कुत्तल केम बासु से कहत कर भैसे उस मृत्यु का अनुकरण करने छने फिर मृत्यु मृगाल भुवाएँ बिपबर नाय की भीति हिमोरेँ मारने कपी यह सब देखकर बर्षक मुपहुय लो बैठे।'^२

१ सोमनाथ पृ १३५।

२ सोमनाथ पृ २९।

कबल ऐतिहासिक उपन्यासों में ही नहीं बरन् उनके सामाजिक उपन्यासों में भी इसी प्रकार की सरस शैली प्राप्त होती है। उनके 'अपराधिता' नामक उपन्यास का एक उदाहरण देखिए—

'राज दांतों से हीरा-मोती बखेरनी बनी आई। ठाकुर पत्थर की मूर्ति की भाँति आराम कुर्सी पर पड़े ग्ते। वहाँ उनकी कोठी की उस राह पर कियेने हीरा-मोती बिलखे—घो खम्बे ठाकुर न देख सके।

'मृदुल मृनाल भुजाएँ बिपथर नाम की भाँति हिमोरेँ मारने लगी' एवं 'हीरा मोती बखेरना' आदि का अर्थ अमिथा से स्पष्ट न होकर अज्ञान से ही स्पष्ट होता है। इस प्रकार की शैली में हम उनकी मुहावरों एवं लोकोक्तियों से बड़ी हुई शैली को भी रक्त सकते हैं। उनकी भाषा का विस्मयन करने समय हम बाये विस्मयान्ते कि उन्होंने अपनी शैली को काव्यारमक एवं साधनिक बनाने के लिए किस प्रकार कुकुर मुहावरों का प्रयोग किया है। इन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सामान्यतः अभीष्ट अर्थ अज्ञान के द्वारा ही निकाला जा सकता है।

अलंकृत शैली —भाषा को निखारने के लिए उपन्यासकार ने स्वयं स्वयं पर अलंकारों का भी आश्रय लिया है। इससे भाषा तो निखरी ही है, चाप ही काताकरण भी समीच हो उठा है। ऐसे स्थलों पर उनकी शैली सरस सुन्दर एवं प्रबाहुपूर्ण है। अलंकारों से अलंकृत एवं कल्पना से पूर्ण होने के कारण उनकी इस प्रकार की शैली कविता के अधिक निकट पहुँच गई है।

'सोमनाभ' महालय की आरती का विवरण देखिए —

हजारों शंखों का स्वर, महाशय का रज और बुधुमी की मेघगर्जना सब मिलकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे देवाधिदेव अभी तारुन-नृत्य कर रहे हैं और पृथ्वी पर भुजास आ गया हो।^१

गंगा का स्तवन भी दृष्टव्य है।

शक भर में गंगा की कला मूर्तिमान हो उठी। माधुर्य की गनी उसके कंठ से बह चली। उद्यमें भक्तिनाभ और निकास धरने लया। ...^२

के नृत्य का भी एक चित्र देखिए —

अच्छे क उन रत्न-बीजों के प्रकाश में बह उतकल खेत कमल-सी किछोरी जब यपना सबसत अनाबुत सोरन मेकर लोपों की दृष्टि में चली तो

१ " पृ २० ।

२ सोमनाथ पृ २१ । "

जन-समूह में उगमाव की खाँधी जा गई। जन समूह सुख-मीन अवाक रह गया।^१

उपस्थासकार ने क्रमशः बारती स्तपन एवं नृत्य के वर्णनों को असंकृत शैली में मूर्तिमान् किया है। इसी प्रकार उसने सुन्दरियों के अंम सौन्दर्य के स्पष्ट करने के लिए भी अलंकारों का आश्रय लिया है। गन्धर्वों की नगरी की दिव्यांगनार्थों का श्रु पार देखिए 'इन सुन्दरियों के कानों के हीरे के कुण्डलों की अमंभ आभा से वह कमरा ऐसा भयमगा रहा था मानों तारासम के प्रकाश से आकाश देखीप्यमान हो रहा हो।'^२

रावण की पत्नी बिनागवा का रूप भी वर्णनीय है —

कमल की पंखुड़ी के समान उसके काल अधर मंद-मंद हिस रहे थे। वह कोई सुन-स्वप्न बेल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे आत्मा की आदनी बहूँ सिमटी पड़ी हो।^३

राम की अर्धांगिनी सीता के रूप को भी उसने उपमा अलंकार के द्वारा स्पष्ट किया है। देखिए —

'अहा, इस श्रीश्रवणी क अंग को तो इसके बस्त्रों ने भी नहीं देखा होगा जैसे आत्मा को शरीर नहीं बेल पाता।'^४

इन सभी उदाहरणों में भावों बिना एवं अंम सौन्दर्य को उपस्थासकार ने अलंकारों द्वारा बड़ी सुबद्धता से स्पष्ट किया है। आभार्य चतुरस्रन श्री ने पाव के रूप तथा अविमार्थों की छाप पाठका के हृदय पर अधिक से अधिक उभारने के लिए उपमाओं का अुम कर प्रयोग किया है। सोमना (सोमनाभ) का रूप देखिए — उसका रंग अम्पे क ताजे फूल के समान अथवा आम के फूले हुए और के समान अथवा केले के लबीन पत्ते के समान था।^५ बीजा (सोमनाप) फूलों के समान कामक थी^६ वह मुक नस्रन की भाँति देखीप्यमान और आदनी की भाँति व्यापन, पीतल और बस्मनि की भाँति बहुमुख्य और दुग्नाप्य धारणीक

१ सोमनाभ पृ २१।

२ अयं रक्षाम पृ २०३।

३ अयं रक्षाम पृ २०४।

४ अयं रक्षाम पृ ३६६।

५ सोमनाप पृ ६४।

६ सोमनाप पृ २७६।

मुचमा की भाँति घनमोन युक्त थी।^१ जम्पा (गोपी) का रूप यदि जटक चाँदनी में मिली जमेनी के समान है तो कृष्णी का रूप गार, पानी में धरे बादलों में विजयी की ससक के समान।^२

माचार्य बभ्रुवर्म जी ने हृदय के भावों को बेहरे पर कुल मुक्त के समय पढ़न वाले किन्हीं को भी उपमाया एव उत्पलाया के द्वारा बड़ी कुशलता से उभाया है। उपमाया की भाव सुनकर 'दसका (सरसा का) मुह पानी में बर्षोमुक्त बादल के समान भारी हो गया।^३ राज (अपराजिता) ने आश्चर्य एवं लज्जा से बड़े-बड़े पलक उठाकर द्रव्य की ओर देखा।^४ उन पलको पर जैसे हिमाश्रय का बोझ सदा था।^५ ठाकुर (अपराजिता) पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रहे।^६ आदि।

माचार्य बभ्रुवर्म जी ने सेना की मयकरता एवं विद्यास्था प्रकट करने के लिए भी किन्हीं ही उपमाएँ की हैं। देखिए --- (महमूद की सेना) 'महासर्प की तरह रेंगती हुई भारत भूमि पर अघसर हुई'^७ देखते ही देखते अमीर की सेना ने इस तरह गड़ी धेर की जैसे साँप कुम्हली मारकर बैठ जाता है।^८ (महमूद की सेना) इस प्रकार परम्पनी में घँस रही थी जैसे साँप बाँधी में बँसता है।^९ और महम्मदी भी 'बैसी' जहाँ मृत्यु-रैत लीची से बाँध मिचीनी बसती थी।^{१०}

इसी प्रकार उन्होंने बीरता धीरे उसाह भाँति को प्रकट करने के लिए भी अर्धकारों का प्रयोग किया है। देखिए --- भीमदेव के तोरण में प्रवेश करते समय ऐसा आठ हुआ 'जैसे प्रमास का घर्मलेन बीररस में डूब गया। जैसे

- १ सोमनाथ पृ २६।
- २ योली, पृ ८८।
- ३ उदयास्त, पृ १७६।
- ४ अपराजिता पृष्ठ ७।
- ५ अपराजिता, पृष्ठ १३७।
- ६ अपराजिता, पृ १६२।
- ७ सोमनाथ, पृ १७।
- ८ सोमनाथ पृ १२७।
- ९ सोमनाथ पृ ११५।
- १० सोमनाथ, पृ १०६।

छायात् मयनाम् सोमनाथ भिन्न रूप तत्र रोग रूप में व्यक्तित्व हो गए ।^१ बीरता को स्पष्ट करने के लिए भी उसने व्यसंकारों का आशय किया है । जैसे कामाक्ष्यानी के योद्धा महामुख की महासैन्य को बीरते बडे गए—'जैसे सरजूके को बाबू बीरता है ।'^२ 'सेना के समुद्र को वे अट्टासी बीर इस प्रकार पार कर रहे वे जैसे मयमज्ज पानी को बीरता जा रहा हो ।'^३

इस प्रकार के व्यसंकारों के प्रयोग से उनकी सैद्धी व्यक्तित्व होने के साथ साथ प्रबाहपूर्ण एवं प्रभावदायी भी हो गई है ।

व्यसंकारों से बोधित एवं गुम्फित शैली —

वापार्य चतुरसेन भी ने अपने 'वर्ष' रक्षाम उपन्यास में भाषा का शक्ति कर गृ गार किया है । इसमें कई स्थलों पर वे व्यसंकारों के प्रबाह में वर्णन संतुलन को बडे है । ऐसे स्थल व्यसंकारों से बोधित हो गए हैं उनमें न कथा की शक्ति रही है न प्रवाह ही । यहाँ एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे । चित्रांगदा (वर्ष रक्षाम) का रूप वर्णन देखिए— उन सुन्दरियों के बीच दिदी हुई चित्रांगदा मक्षकों के बीच चन्द्रकला के समान सुखोभित होने लगी । वह उत्कृष्ट सतत कमल के समान प्रसन्नवदना चक्र चक्र मकरन्द-सौम्य भ्रमर लोचना हंसगामिनी कमल-गन्धा चित्रांगदा चन्द्रचक्रा कम्पा काम-संजीवनी ही प्रतीत हो रही थी । उसके लहरों के समान मनोहर भिन्नभिन्न मन्दोवर को देख रावण इस प्रकार चक्राममान हो गया जैसे समुद्र चन्द्रकला को देख चक्राममान हो जाता है ।^४

इसी प्रकार महाससा (वर्ष रक्षाम) के रूप का भी व्यसंकारों से बोधित वर्णन देखिए —

उसकी मृग-सावक बैसे तरसा-विछोला बाधुपी फूलों से मुषी हुई मुरीर्मा बेबी प्राणियों को नामोचित फल देने वाली है । उसके चक्र-सिक्त घोषित कमाट बुर्जम रक्तोत्पल कोकमद-मुक्तदी बवर्ध है । आश्रम मधुमत्त उसके बचरोष्ठ का समुत्पान पुष्प रोप जन ही कर सकते हैं ।^५ महाससा

१ सोमनाथ पृ २६३ ।

२ सोमनाथ पृष्ठ ३९५ ।

३ सोमनाथ पृष्ठ ३९५ ।

४ वर्ष रक्षाम पृ २०० ।

५ वर्ष रक्षाम पृ ३१४ ३१८ ।

का यह रूप बर्बत चार पृष्ठों तक चला है। बुन-बुन कर उपम्यासवार ने इस बर्बन को असकारों से सजाया है। किन्तु बायबल में सत्य यह है कि इस प्रकार के असकारों से बोधिए एवं सुस्पष्ट टीसी के प्रयोग ने उनके 'बर्ब' रक्षाम उपम्यास का सौंदर्य नष्ट कर दिया है।

टीसी के बाह्य सौंदर्य को निलकारने के लिए आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपम्यासों में उक्तिया का भी बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है। भागे उनकी भाषा पर विचार करते समय हम उनकी उक्तियों सुक्तियों भादि पर विस्तार से विचार करेंगे।

अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आचार्य चतुरसेन जी ने अपनी टीसी के बाह्य सौंदर्य को अधिक निलकारा है। बौद्धा कि हम पीछे विसला चुके हैं कि वहाँ उम्हान टीसी के बाह्य सौंदर्य को अधिक निलकारने के लिए उस पर बलात् असकारों को मारने का प्रयास किया है वही उनकी टीसी का बायबलिक सौंदर्य उसके बाह्य सौंदर्य के नीचे बबकर समाप्त हो गया है। ऐसे स्थलों की टीसी न प्रवाहपूर्ण ही रही है, न स्वाभाविक ही। किन्तु विम स्थलों पर कथा-प्रवाह को स्पष्ट करने के लिए चरित्र तथा स्याक्तिरूप को उभारने के लिए एवं भावों को निलकारने के लिए उसमें असकारों का प्रयोग किया है उन स्थलों की टीसी बसकृत होने के साथ-साथ स्वभाविक, सरल रोचक एवं प्रवाहपूर्ण रही है।

टीसी का आंतरिक रूप—

इसमें कैलक का हृदय पक्ष प्रधान रहता है। ऐसे स्थलों की भाषा प्रवाहमयी एवं सीधी-सारी होती है। इसमें हम पात्रों के मानसिक दृष्टों उनके हृदय पक्ष भावों को साकार करने वाले स्थलों को रख सकते हैं। मायात्मक टीसी विरमेषवात्मक टीसी उपदेशात्मक भाषण पात्रानुरूप भादि विविध टीसी रूप इसमें रहे जा सकते हैं। इस टीसी का बबसर से बनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सुखात्मक और दुखात्मक दोनों ही बबसरों से हमारा अंतर प्रभावित होता है। अतः इसमें टीसी भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। इसी कारण आचार्य चतुरसेन जी की टीसी विभिन्न बबसरों पर विभिन्न प्रकार की है।

मायात्मक टीसी के विभिन्न उदाहरण —

१. मानसिक अन्तर्दृष्टों के शब्द चित्र—आचार्य चतुरसेन जी के पात्रों की सजीवता का रहस्य उनके आन्तरिक और बाह्य दोनों गुणों के समान

प्रकाशन में है। उन्होंने क्रियाशील मानव के लो सजीव चित्र दिए ही हैं साथ ही उनके विचारशील मानव के चित्र भी पूर्ण एवं सजीव हैं। अपनी भाषामय शैली के माध्यम से ही आचार्य चतुरसेन भी विचाररत मानव का प्रत्यक्ष चित्र खींचने में पूर्ण सफल रहे हैं। इसी कारण उनके उपन्यासों में मानसिक मूल दृष्टियों के घण्ट बड़े ही सजीव एवं मर्मस्पर्शी हैं। ऐस स्थलों पर उनकी शैली बोलस सजीव चित्रात्मक एवं स्पष्ट है। मन्थिष्य के प्रत्यक्ष दृश्य प्रत्येक भाव को आकर्षक ढंग स उपन्यासकार प्रस्तुत करन में पूर्ण सफल रहा है।

आचार्य चतुरसेन भी क उपन्यासों में इस प्रकार के बनेक उदाहरण मरे पड़े हैं। आधा निराधा के मानसिक दृष्ट का एक उदाहरण देखिए—

आमा अपने पति अनिल को त्यागकर रमेश के साथ बसी जाती है। पति-मूह त्यागने के पश्चात् उसे अपनी भुटि का ज्ञान होता है। उस अवस्था का चित्रण उपन्यासकार ने बड़ा ही सजीव किया है—

उसने सोचा—निस्संदेह मैं गृह त्यागिनी हुई, कुछ त्यागिनी हुई, मैंने पति को पुत्री को त्याग दिया पर मैं पतित होने से बच गई। मेरा घर छू गया है पर गृहिणीत्व मेरी आत्मा में कायम है। मेरा पति बिसुद्ध गया है, पर मेरा पत्नीत्व मुझमें सुरक्षित है। मेरी पुत्री मुझसे छिन गई है किंतु मेरा मातृत्व बिसा ही अपुण्य है मझे ही अनिल मुझे स्वीकार न करें, भले ही पुत्री मुझे म विसे मेरे लिए उस घर का द्वार बंद हो जाए। परंतु मैं गृहिणी हूँ पत्नी हूँ और माता हूँ। स्त्री-जाति की तीनों बहुमूल्य मरोहर मैंने कोई नहीं है। अब यदि मरना भी पड़े तो क्या बिता।^१

आमा की आन्तरिक आनि उसका अपने कुटुंब पर पश्चाताप एवं उसकी हार्दिक सीस और मत्त र्म उठकर पुन उरवान के पय पर बड़ चलने की प्रेरणा यह सभी इस एक चित्र में साकार है। पाठक उसके इन हार्दिक उद्गारों को पढ़कर, उसे कुछ त्यागिनी एवं पति त्यागिनी जानते हुए भी उसके प्रति सहृदय हो उठता है। आमा इन अन्तर्द्व के पश्चात् अपनी कोई हुई सहायुक्ति को पाठकों से पुन प्राप्त कर लेती है।

‘आमा’ ही का एक और उदाहरण देखिए। पत्नी के बने जाने के पश्चात् पति की मानसिक दशा को हममें उपन्यासकार ने सशब्द कर दिया है।

“ मैंने उष बला जाने दिया । रोका नहीं । उसके उम शर्मों की चोट छाया थी । पर अब देपना है उसने अपनी मुक्त तभी समझ सी थी । एक बार यदि मैं उसमें बहूषा—बामा भाओ करने पर म भाओ तो बहू क्या न जानी ? और रमेय । उसका मूँह उम समय कैसा टीकरे के समान निष्पन्न हा गया था । बहू भी समझ रहा था कि मैं कैसी भयानक गलती कर रहा हूँ ? ”

परन्तु अब । क्या मैं उमके पास जाऊँ । १

इसी प्रकार बगुला के पंख का एक टूटाहूष देखिए । जुगनु जन्म से बंधी था, किन्तु डेरी जाति का बनने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु उसके जन्म-बाध-संस्कार, उसको अपने म समेटे हुए प । बाह्य बाधाकरण म बहू मने ही प्रयत्न हो किन्तु उसके हृदय म हीन भाव धरे हुए थे । परन्तु उम की पटकार के परभाव उसने हृदय की प्रतिबिम्बा बैसने योग्य है—

“पर भाव बहू सर्वत्र अपने को हीन व्यक्ति समझ रहा था । उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बहू बहू बैठा है जो कुछ कर रहा है और वहीं रह रहा है जो कुछ देख मून रहा है । उन सबके लिए बहू निष्पन्न व्योम्य है । जैसे उसे अपने आपका मुसम्मा रीक रहा था । उसे यह पाद करने अपने में एक सिहरन-सी उठ रही थी कि मैं जमी-धमी मारी कृत्रिया इकट्ठी होकर चिल्लाकर कहूँ डेरी ‘अरे ओ धंवी के बच्चे डेरी मूँह जुरंग ? कि तू मने मादमी का रोग बनाकर महीं बैठा लोभों की भाँकों में धूक छोड़ रहा है । यह अपने में ही सफुचाया-सा सञ्जित-सा बुध्दाप जैसे-जैसे अपना काम करता था रहा था । ”

उपयुक्त दोनों ही उदाहरणों में उपम्यासकार ने बड़ी ही सरल शैली में पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वारों के चित्र साकार कर दिए हैं । पात्रों की आन्तरिक व्यथा उनका मानसिक परभाव उनका चरित्र का उभारने में पूर्ण सफल रहा है । आचार्य जी ने अपने ऐतिहासिक उपम्यासों म भी इसी शैली का बड़ी सफलता के साथ निर्वाह किया है । यहाँ एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा ।

‘सौमनाथ में महाराज अबधपात का बम संकट देखने योग्य है—महमूद अपनी सम्पूर्ण बाहिनी के साथ भारत को आश्रय करन के लिए बहूषा जाता था रहा है । उसने महाराज अबधपात से जादे जाने क लिए राह नहीं है, न बेने पर मुठ की चुनौती की है । उस समय की महाराज की रगा देखिए—

१ बामा, पृ ८३-८८ ।

२ बगुला के पंख पृ ४४ ।

महाराज अजयपाल को कोई झोर छोर नहीं मिला। वह सोचने लगे अवश्य ही अमीर को यह बेना पाप है परंतु पाप का मापी क्या मैं ही हूँ ? यह अमागा भारत देश क्यों खण्ड खण्ड है। क्यों नहीं एक सुन में संगठित है। सब कोय छोटे-छोटे राजा बने बैठे हैं। वे सब अपनी ही बकड़ में मस्त हैं। इतना बड़ा बिघाल भारत देश कैसे बिदेही कुटेरों के हाथ लूटा जाता है। यह तो हम देखते ही हैं परंतु सब हाथ पर हाथ बरे बैठे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता फिर मैं ही क्या करूँ ? मेरी धनित ही कितनी हैसियत ही क्या ? पाप ही है तो सबका है। मैं यदि मुक्तान का बिगोध करता हूँ तो मेरा तो सर्वनाश होना ही, यह समृद्ध मुक्तान सहर भी लूट और आग की घेंट होना। यह क्या पाप नहीं होना ? मैं जिस देश का राजा हूँ क्या उसे बचाना मेरा धर्म नहीं है ? क्या वह पाप इस पाप से भी बड़ा होगा ?

महाराज अजयपाल के एक-एक मानसिक भाव को उभारने में उपन्यासकार ने मानसिक अन्तर्दृष्टियों के राष्ट्रचित्र दिए हैं वहीं उसकी टीकी मर्मस्पर्शी आकर्षक सजीव एवं बिचारत्मक हो गई है। उसकी इस टीकी में एक-एक भाव को एक-एक मानसिक इन्द्र को साकार करने की पूर्ण क्षमता है, तभी उनके यह चन्द्र चित्र इतने सजीव एवं सकल हो सके हैं। उपर्युक्त चन्द्र चित्र पढ़ने के पश्चात् हमारे समग्र एक बिचारधीन एवं सचिन्त प्राणी का बड़ा होता है। वह कुछ सोच बिचार कर जीवन संग्राम में अग्रसर होनेवाला पिन्तनधीन मानव आठ होता है कठयुतमी की भाँति बामा सीचते ही कार्यक्षेत्र में कूदकर अनेक प्रकार के पारीरिक कौशल का प्रदर्शन करनेवाला निर्भीक मानव नहीं। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व वह अपनी मानसिक तैयारी कर लेता है तभी आगे पग उठाता है। उपर्युक्त चारों ही उदाहरणों में हम यह बिधेयता देखते हैं। आमा अगिष्ठ एवं जुगनू तीनों ही अपने अतीत पर बिचार कर अन्ततः पग उठाने की प्रयत्नशील हैं। महाराज अजयपाल भी अपनी कायरता को दूसरों का पाप कहकर छिपाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उपर्युक्त चारों ही अन्तर्दृष्ट परिस्थिति अवसर एवं स्थान के पूर्ण उपयुक्त हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों में हमने बिभिन्न अवसरों पर, बिभिन्न परिस्थि त्रियों में पड़े हुए मनुष्यों के अन्तर की इसल्लों का कुमलता के साथ उभरा हुआ देखा है। बालक में आचार्य अनुरागत जी को मानव के अन्तरण की गूढम बुतियों का पूर्ण ज्ञान था। उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि ऐसे अवसर पर

कैसे प्राणी के मन में कौसी बात उपजती है। सभी उन्हें मानव की आध्यात्मिक बृतियों के सूक्ष्म निरूपण में पूर्ण सफलता मिली है। किंतु उन स्थलों पर जहाँ उनकी सीधी सरलता और सरलता का अंशक स्पष्टकर कृत्रिम हो गई है, वहाँ उनकी विद्वता का नीच कितनी ही सूक्ष्म बृतियाँ दब गई हैं।

सुख दुःख म पड़ हुए मानव की विभिन्न आंतरिक बृतियों का सूक्ष्म चित्रण भी आचार्य जतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त होता है। जहाँ पर उपन्यासकार ने किसी सुमनस पर किसी सुसात प्रसंग का चित्रण किया है वहाँ उसकी सीधी कोमल आकर्षक एवं हृदय में उत्साह एवं सात्विक भाव उत्पन्न करने वाली है। विभिन्न उपन्यासों में विविध प्रसंग वर्णन प्रिय साहित्यिक विवाह मंग आदि अवसरों के वर्णनों का उदाहरण के लिए हम ले सकते हैं।

कुम्भसरो के प्रसंगों की सीधी का रूप इससे भिन्न है। वह हृदय की बुद्धात्मक बृतियों के प्रकाशन में अद्वितीय है। इसमें हृदय की कारुणिक भाव गानों के उद्देक की पूर्ण शक्ति है। आचार्य जी के उपन्यासों में ऐसे स्थल अधिक हैं। 'नगरबन्धु के सम्बन्धी हर्ष मित्रन जम्मा की राजकुमारी एवं सोम की विद्या प्रसेनविद्य के कुम्भसरो का वृक्ष एवं उपन्यास का अंत ऐसे ही मार्मिक स्थल हैं। 'सोमनाथ' में तो ऐसे स्थलों की भरमार है ही। इस प्रकार की सीधी की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह हृदय में बुद्धानुभूति का उद्देक करके एक उत्साहहीन वातावरण का दुर्मनस्क मानसिक वृक्ष उपस्थित करने में पूर्ण सफल रही है।

सुमनसरो एवं कुम्भसरो से पूर्व के वातावरण एवं परिस्थितियों के निर्माण के लिए उसने प्रकाप आवेग प्रार्थना आदि शैक्तियों का प्रयोग किया है।

प्रलाप शैली —

ऐसे आत्मात्मक स्थलों पर जहाँ पर परचाताप के साथ-साथ उपन्यासकार ने प्रार्थना एवं उपासना का भी बड़ी सतर्कता से प्रयोग किया है वहाँ हम उसकी प्रकापशैली के उदाहरण दे सकते हैं। ऐसे स्थलों पर आचार्य जतुरसेन जी की सीधी हृदय में कष्ट उत्पन्न करने वाली आवेग एवं जोर से पूर्ण होती है। 'बगुला के पंख का एक उदाहरण देखिए — सोमनाथ विद्वित सम्य एवं सुन्दर सभी कुछ है किंतु वह काम से रोपी है। उसे पचा-सी सुन्दरी पत्नी प्राप्त है, किंतु वह स्वयं दण होने के कारण पत्नी की आकांक्षाओं को संतुष्ट नहीं कर पाता। उसे इस बात का हृदय में परचाताप है कि इस अवस्था में उसने विवाह

क्यों किया ? एक स्त्री का जीवन क्यों व्यर्थ नष्ट किया ? इसी पक्काताप के भावेष्ट में वह अपनी परती से कहता है—मैं निस्सन्देह अपने को क्षमा नहीं कर सकता । मैं सदा का रागी हूँ जान बूझकर मैंने तुम्हें अपने कण शरीर के साथ बाँध कर स्वार्थी का सा आचरण किया है । मैं जानता हूँ तुम प्रेम के उस प्रसाद को प्राप्त नहीं कर सकी जिसको प्राप्त करने का तुम्हारा हक था । पर क्या कहूँ जिस क्षण तुम पर मेरी नजर पड़ी मैं संयत न रह सका । संयत और ग्याय सब भूक कर मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया । तुम्हें मूखों मार डालने की नियत से । पर मैं कहूँ भी क्या ? तुम्हें बेकते ही मेरी सारी धतना व्यग्र हो उठी । सारी हृदयियाँ उत्तेजित हो उठीं । पर अभी मैंने यह भी जान लिया कि हाम यह मैंने क्या किया तुम्हारे हृदय की कमी खिलाने की मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है । परंतु भोपसिप्ता का मूख्य भी इतना है वह प्राणों का सम्पूर्ण स्पन्दन है धतना की सबसे ऊँची तान है यह मैं जानता न था । उसे तो मैं तुम्हारी आँसुओं में पड़ता स्या जानता गया । बबराता गया परेधान होता गया । कज्जा और बेन्ना से छत्पटाता स्या । १

शोभासम के इस प्रसाप में एक ओर उसके हृदय की छत्पटाहट बब-रहट ब्याकुलता एवं बेदना को उपन्यासकार शब्दबद्ध करने में पूर्ण सफल रहा है तो दूसरी ओर मर्मस्पर्शी कोमल एवं आकर्षक शैली के द्वारा उसने शिब को पूर्ण सजीव बना दिया है ।

इसी प्रकार ऐसे स्वार्थों पर जहाँ उपन्यासकार ने किसी पात्र विशेष के दयनीय एव विनय युक्त आँवटिक भावों को व्यक्त किया है वहाँ उसकी दीप्ती प्रार्थनापूर्ण हो गई है । ऐसे स्वार्थों पर उसने कामल मर्मस्पर्शी हृदय की आक-पित एवं द्रवित करने वाले एवं शान्त तथा प्रभावपूर्ण वातावरण उपस्थित करने का शक्नों का प्रयास किया है । 'वैशाखी की नगरबद्ध' का एक उदाहरण देखिए—शोमप्रम ने महाराज बिम्बमार को इन्द्र युद्ध में परास्त कर दिया है । वह सम्राट का बच करने जा ही रहा था कि विदगिज्ञानी हुई अम्यपाली उसके सामने आ जाती है । उसी समय का वृथ्व देखिए—

'नाम न अपना करण सम्राट के बज पर न नहीं हूया । न उनके कंठ से बद्ध । उन्होंने मंह मोड़कर अम्बवासी को देया । अम्बवासी बीड़कर शोमप्रम के करमा में पाट गई । उगनी अधुधारा मे साम के पैर भीग दए । वह बह रही थी—उनका प्राण मन को मोम में उन्हें प्यार करती हूँ । परंतु मैं बनी भी

राजगृह नहीं जाऊँगी। मैं बर्मी दमना दमन नहीं बर्सेगी। स्मरण भी नहीं बर्सेगी। मैं हजुभाया अपने हृदय को विदीर्ष कर डालूँगी। उनका प्राण छोड़ दो प्रिय दर्शन सोम उन्हें छोड़ दो। व निरीह दून्य और प्रेम के देवता हैं। वे महान् सम्राट हैं। उन्हें प्राण-दान दो। मेरे प्राण ले लो—प्रियदर्शन सोम ये प्राण तो तुम्हारे ही बचाए हुए हैं ये तुम्हारे हैं इन्हे ले लो ले लो।^१

अम्बपासी के प्रत्यक्ष सख में उसकी दमनीयता कबाकारिता, हृदय की सिहरन मस्तिष्क की कषोट और आंतरिक वेदना एवं व्यथा टपकी पड़ रही है। उसकी गिड़गिड़ाहट में प्रभावित करने की शक्ति है और यही शक्ति इस सीली की सबसे बड़ी विशेषता है।

३ आवेश शैली —

ऐसे स्थलों पर जहाँ पर उपन्यासकार किसी पात्र विशेष के आंतरिक रोप को व्यक्त करना चाहता है, वहाँ उसका आवेश शैली का आशय किया है। ऐसे अवसरों पर उसने हृदय से सचन भावों को एक साथ ही नहीं उड़के दिया है बरन् उसने पात्र के विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिये बकनूत्न के साथ-साथ आवेश का भी योग दिया है जिससे उसकी शैली मर्मस्पर्शी होने के साथ साथ आवेश पूर्ण हो गई है। 'सोमनाथ' का एक उदाहरण देखिए। अपनी प्रेमिका शोभना के मुख से धर्म का नाम सुनकर देवस्वामी (अथवा फतहमुहम्मद) अपने आंतरिक रोप को रोक नहीं पाता। वह हिन्दू धर्म की कटु आलोचना करता हुआ आवेश पूर्ण सन्तों में अपनी प्रेमिका से कहता है धर्म प्यारी शोभना वह धर्म जिसने तुम बीसी कुसुम कोमल अमल भवस रमणी-रत्न को वैषम्य के दुर्भाग्य से बाँध रखा है और मेरे उच्छ्रित हृदय को छातों से बसित किया है— देखा नहीं था जब तुम्हारे पिता मेरे मग्न पाठ करने पर तलवार लेकर मारने कीड़े थे—तब किसी ने मुझ पर दया की? सभी ने कहा मारो घाले धूँध को बेव पड़ता है नीच। अर्धमी। जब इस धर्म की तुम अभी तक बुराई देती हो।^२

देवा के आन्तरिक रोप को उड़े ही प्रभावशाली ढंग से उपन्यासकार ने रखने का प्रयत्न किया है। देवा शोभना से प्रेम करता है किन्तु हिन्दू धर्म के सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन उसके मार्ग को अवरुद्ध लिये पड़े हैं। वह शोभना को प्राप्त करने के लिए ही यथन धर्म स्वीकार कर लेता है किन्तु आज उसकी

१ वैश्यामी की तवरणपु पु ७३३।

२ सोमनाथ, पु २८१।

प्रेमिका सोमना ही उसे धर्म का भय विकसनाती है। ऐसे अवसर पर उसके मुख से निःसृत यह आदेश पूर्ण उद्गार कितने स्वामाधिक है।

४ मापण गव संबोधन शैली—

आदेश एवं प्रार्थना शैली के गुणों के समन्वय से मापण संबोधन शैली का निर्माण होता है। इस प्रकार की शैली में आज एवं प्रासाद दोनों ही गुण रहते हैं।

‘उबयास्त’ का एक उदाहरण देखिए। जानक स्वामी अर्धशिक्षित ग्रामीणों को संबोधित करते हुए कहते हैं।

‘स्वामी की कुछ देर को गुप हो गए फिर उन्होंने धीरे गम्भीर स्वर में कहा—‘आप मुझ चाहते हैं पर कुछ का ध्यान करते हैं। धाति चाहते हैं पर अधाति का साधन उत्पन्न करते हैं। बिस्वास चाहते हैं पर बिस्वासाभाव करते हैं। प्यार चाहते हैं पर कपट करते हैं। जीवन चाहते हैं पर मृत्यु की ओर ढीढ़ते चले जा रहे हैं।’”

इसमें आदेश की मात्रा ही अधिक है। अतः इसमें भाषक शैली से संबोधन शैली के गुण अधिक हैं। ‘सोमनाथ’ उपन्यास का एक मापण शैली का उदाहरण देखिए। इसमें आदेश के परिपादबर्भ में प्रार्थना शैली के गुण हैं। महमूद सोमनाथ महात्म्य पर चढ़ाई करने के पूर्व गजनी में अपने सैनिकों को धर्म के नाम पर उत्तेजित करते हुए कहता है।

‘अब सलामी और मकराने की रसूमात पूरी हो चुकीं तो उसने जलद गम्भीर स्वर में एक हाथ ऊँचा करके कहा’ — मैं अमीर महमूद तुम्हारा नाम पर— जिसके समान दूसरा कोई नहीं है—मैं अमीर महमूद तुम्हारा बंधा आज ईद मुबारक के साथ तुमसे जो मेरी रकाब के जानिसार छापी है और जिसके घोड़ों की टापों ने आधी बुनियाँ रोदी है वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिए। हम चले रहे हैं अपनी सबसे बड़ी मुहिम को फल करने जिसकी इतजारी फिरलोमी और अलबकनी उस बाफिर जमीन पर कर रहे हैं जिसकी हर पी रीनवारों के लिए है। बोस्तो में जानता हूँ तुम्हारी लकवारों की पार तेज है, तुम्हारे घोड़े तरोगाजा हैं और तुम्हारे घोड़ों की पीने जिन्हें तुम पिछली बार चाँदी-सोने से मर लाये थे गानी हो रही हैं और तुम मेरे बोस्तों उन्हें फिर से मरने के लिए बैचन हो।..... १ -

१ उबयास्त-पृ० २२०।

२ सोमनाथ-पृ० २३।

प्रभु उदाहरण में उल्लेखना निम्नाने के लिए भाष्यपूर्ण शब्दों का और उद्बोधन के लिए समस्त एवं मोक्षपूर्ण शैली का प्रयोग किया गया है।

व्यम्यात्मक शैली—

भाषार्थ जनुरजन जी के व्यंग्य बुद्धिने तीखे एवं सीधे प्रहार करते भाँके हुये हैं। जहाँ पर जन्हुँने किमी कुटीनि अबबिहरास जयबा हितुजों के पारस्परिक ब्रमनस्य का चित्रण किया है वहाँ उनकी टीकी व्यंग्यात्मक हा गई है। कुटी तियों एवं घर्म ने नाम पर होनेवाले मायाचारों का वर्णन करते समय भाषाय जी की टीकी प्राय व्यंग्यात्मक एवं तीखी है। 'अहते मायू' 'गोती' 'जगुना के पंख' आदि उपमाओं में इसके अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'सोमनाम' का एक उदाहरण देखिए। महानूर ने धर्मयज्ञदेव के समीप महाराज ब्रजयपाल को मार्ग ज्ञानी करने के लिए अपना दून बताकर भेजा है। महाराज ब्रजयपाल को बातें सुनकर धर्मयज्ञदेव अपने कोब को रोडकर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—

'महाराज आप सिम्ह मद के दिग्गम है। सो आपने अपना कर्तव्य पावन न कर प्राय बखान का श्रेय ज्ञान किया। यह आपने धर्मियों की मनीन मर्पांश स्थापित की। आपने इत बुद्धि से मुक्तान बचा किया और अब एहा सहा पुष्य साम करने सुत्तान की दासता करके उनका दूतत्व करते हुए, उस देव-म्हान तप करने पट्टन के जा रहे हैं। आप ही ने मोहकोट के मुत्तान को मार्ग देने को राखी किया था यह आपकी कीर्ति में मुन चुका हूँ। महाराज, आपकी इत कीर्ति का स्वर्ग में बखान करने आपके दादा बाधाबाधा स्वर्ग पहुँच चुक है। जिन्होंने आपको बखान में दुटनों पर बिल्लाया था। महाराज ब्रजय पाल आपने चौहार्नों को अक्षय मार्ग दिखाया—आप जैसे पुरबीर तलवार के बनी तो धनु के पाइन्वे बनें और आपके ब्रह्म पूज्य पुरुष रगस्पती में मृत्यु के भोग बन ? आप उपरासक के उपकार के ही विचार से आप ये अंतत यह राम्य मी तो आप ही का है।'"

धर्मयज्ञदेव के इन वाक्यों में कितना व्यंग्य है, कितनी तीक्ष्णता है किन्तु उनका प्रहार स्पष्ट ही रहा है। 'सिम्ह मद के दिग्गम' और 'दासता और दूतत्व' 'पुरबीर' होकर भी धनु के 'पाइन्वे' बनना आदि परस्पर विरोधी शब्दों को रखकर ही उपमासकार ने व्यंग्यात्मक शैली का निर्माण किया है। 'अंतत यह राम्य मी तो आप ही का है। मैं कष्टत व्यंग्य है। किन्तु यह अर्थ व्यंग्यना से व्यंगित हो सकता है।

त्रिन स्पर्मों पर आचार्य चतुरसेन जी ने सामाजिक अथवा धार्मिक दृष्टि त्रियों पर व्यंग्य किया है, उन स्पर्मों पर उनकी शैली प्रत्यक्ष चोट करने वाली है किन्तु वहाँ पर उन्होंने किसी राजनीतिक दृष्टि पर चोट नहीं है बल्कि किसी राजनीतिक के मुक्त स व्यंग्य करवाया है वहाँ चुटकी लेने वाला अप्रत्यक्ष व्यंग्य है। वे एसे मजसरो पर रक-रक कर चोट करते हैं जिसमे वे चोट लाने वाले की तिलमिलाहट भी दिखा सकें। शौंग और मंत्र विरहासो पर वे प्रत्यक्ष और करारी चोट करते हैं उनकी तिलमिलाहट वे न दिखायाना चाहते हैं और न स्वयं देखना ही। इसी कारण से उनकी व्यंग्यात्मक शैली परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार की है।

शैली के सांठरिक रूप के विभिन्न उदाहरण देने के पश्चात् हम इस निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार भाव परिवर्तन के साथ-साथ भाव प्रकाशन के रण-रंग में परिवर्तन आ जाता है उसी प्रकार से आचार्य चतुरसेन जी की शैली का सांठरिक रूप भी भावों के अनुरूप ही परिवर्तित होता रहा है। जिस प्रकार हमारे हृदय में विभिन्न भावों का जब उद्बेक होता है तो मुख में उसी भावों को व्यक्त करने वाली सम्भावनी स्वयं निमृत् होने लगती है उसी प्रकार आचार्य चतुरसेन जी के पात्र के हृदय में जब कोई भाव आता है तो वह उसे प्रकट करने के लिए सानुकूल सम्भावनी एक तर्पण रूप व्यंग्यक शैली स्वयं साथ लिए आता है। यही कारण है कि उनके प्रत्येक भाव का रेखाचित्र बड़ा ही मजबूत है।

शैली का मिश्रित रूप—

इसमें हम बाह्य-दृश्यों एवं विविध वस्तुओं के वर्णन एवं रेखाचित्र को एक सकते हैं। बाह्य-दृश्यों एवं विविध वस्तुओं के वर्णनों के अन्तर्गत हम उन सभी दृश्यों एवं वस्तुओं का परिचय कर सकते हैं जो हमारी चक्षुरिन्द्रिय के विषय हों किन्तु यहाँ हम सुविधा की दृष्टि से आचार्य जी के उपस्थासों में प्राण बाह्य दृश्यों एवं विविध वस्तुओं के वर्णनों को दो वर्गों में रखकर देना सकते हैं—

१. रूप चित्रण—

इसमें हम मनुष्य वर्ग के चेष्टा भाङ्गि रूप किया आदि के विभिन्न वर्णनों को ले सकते हैं। इसमें उपस्थासकार द्वारा वर्णित विभिन्न पात्रों के रेखाचित्र उनके शौर्य वर्णन आदि को रखा जा सकता है।

२ हृदय-चित्रण—

रूप चित्रण क अनिश्चित इस वर्ष में इसी प्रकार के बाह्य दुस्नों चित्रणों को रखा जा सकता है। यमें रात्र ममा महात्म्य मंदिर, नदी बाणिका मुञ्च बुनाब भाषि क वर्णनों एवं व्यथावागों प्रणय नृत्य भाषि के रेखा चित्रों को दिया जा सकता है।

व्यर्णचित्रण की गौरी—

आचार्य बनुरनेन जी क रूप चित्रण बड़ ही सजीव एवं आकर्षक है। ऐम स्मरणों की माया गौरी गयी हुई बन्ध एवं बुभगी हुई है। एक-एक वाक्य एक-एक वाक्य नाप ठीक कर तराव कर देसा रखा हुआ होता है कि चित्र स्वयं साकार हो उठता है।

पात्र-चित्र एवं मौदय चित्रण—

पात्रों के रेखा-चित्रों को साकार करम में आचार्य जी पूर्ण सफल हुए हैं। एमे चित्रों में पात्र का व्यक्तित्व उमका प्रत्यक अंग प्रत्येक रूप स्पष्ट एवं पूर्ण उभरा हुआ होता है। बड़े मियाँ (माना और लून प्रथम माय पूर्वार्द्ध) का एक चित्र देखिए—

‘असल मुगल लून। माँगी के समाज रंम। उन्न अस्ती के पार उम्मे पट्टे बुला क पर बीम सफ़द। बड़ी-बड़ी भाँलें दिनमें काक डारे भारी भारी पपोटी के बीच में झाँक कर प्यार और धान को निमजप रेती हुई। कर लम्बा किसी कदर दुबल पतले कमर कमबोर नहीं। कमर अघ भुकी हुई। बाड़ी खसलसी—बहुत सावधानी से तराही हुई। जो उनके स्थावदार चेहरे पर बहुत भली लगती थी। भाँलों पर जमी जसमा नहीं लगा। मुर्मा लपाने स। फिर पर मसमसी ऊनी कामगार टोरी। पैर में खलीगड़ी पायजामा और बसली के बसली कताबजू के काम क जूते। बदन पर जामजानी का अंगरला उस पर कामकाब की नीमास्तीन। हाथ स अमकर की भीमती तस्वीह प्रतिमम सरकती हुई। पाल की लक्ष्मी से आराम्ता मोठ निरंतर हिलते हुए। दाँतों की बलीसी असमी कायम दिन पर पाल की कास मक डीक बनार के दाँतों की घोमा की मात करती हुई। यही के मियाँ नुररोद मुहम्मद का रस बड़ापाव।’

बड़ मियाँ का सम्पूर्ण चित्र ज्यों का त्यों उपमाकार ने खींच दिया है। ‘असल मुगल लून’ म उनही बहादुरी एवं उच्च बुद्धोद्भव होने की पुष्टि होती

है उनके व्यक्तित्व वर्णन को पढ़कर बृद्धावस्था में भी पूर्ण स्वस्थ होने की बात ज्ञात होती है। और सरकठी हुई वस्तीह और निरंतर हिंसते हुए होठों से उनकी धर्म प्राणता प्रकट होती है। इस छोटे से रेखा-चित्र में ही उसने सभी कुछ भर दिया है। इसी प्रकार का आचार्य जगुरसेन जी के एक नारी पात्र का चित्र भी देखिए—

पद्मा बेबी की आयु छब्बीस बरस की थी। रंग उसका पीरा या जिसमें खून टपका पड़ता था। उसके कावच्य में स्वास्थ्य की कोमलता का अद्भुत मिश्रण था। उसकी आँखें कासी और बड़ी-बड़ी थीं। कोमे उज्ज्वल-रंग के थे। उन आँखों में तेज और आकांक्षा दोनों ही कूट कूट कर भरी थी। अनुपम और अप्रह्व जैसे उनमें से साकता था। पद्मा बेबी के बाक गहरे काले तथा अपाह चम्बी थे। वे मुछायम और भूँवर वाले भी थे। मौँह पतली और नमान के समान सुबुक थीं। कान छोटे गर्जन सुपहीदार और उरोज उन्नत थे। शरीर उसका छरहरा था।^१

इस रेखा चित्र में आचार्य जगुरसेन जी ने पद्मा के व्यक्तित्व को तो साकार किया ही है। साम ही 'आकांक्षा' 'अनुपम' और 'अप्रह्व' से पूर्ण नेत्रों का चित्रण करके आपने उसके आंतरिक मुहों को भी इस रेखा चित्र में उभार दिया है। ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों के समान उनके पौराणिक उपन्यासों के पात्रों के भी रेखा चित्र बड़े समीप हैं। 'अर्ध रत्नाम' की महोदरी का रूप वर्णन देखिए—

'तपाए हुए सोने के समान उसका रंग था। क्षीण कटि और स्तूक नितम्ब थे। बड़े सोझह सुकननों से युक्त थी। उसके केश काले सवन भूँवर वाले थे। वे पाह-चुम्बन कर रहे थे। भौँह जुड़ी हुई, बँबाएँ रोमरहित गोल हाँव सटे हुए थे। नेत्रों के समीप का भाग नेत्र हाव पैर, टखने और बँबाएँ सब समान और उमरे हुए थे। नल अँगुलियों की गोलाई के समान मोस थे। हस्तक उठार बड़ाव वाला थिकला कोमक और सुन्दर था। उँगुलियाँ समान थीं। शरीर की कठि मनि के समान उज्ज्वल थी। स्तन पुष्ट और मिले हुए थे। नाभि गहरी थी तथा उसके पार्श्व मास डँबे थे।'^२

१ जगुला के पंख-पृ ३१।

२ अर्ध रत्नाम-पृ ८८।

दिल्ली—'चरित्र चित्रण' वाले अध्याय में अन्य चित्रण की शैली चरित्र तथा व्यक्तित्व को स्पष्ट करने की शैली आदि पर विशेष प्रकाश डाला जा चुका है।

इस रंग चित्र में रूप की पूर्णता बरक्य है किन्तु संवाग्नी का आंतरिक व्यक्तित्व नहीं उभर पाया है। वीम यह चित्र बड़ा ही सजीब एवं सुन्दर है।

यह सत्य है कि आचार्य अनुरक्त जी के पात्र चित्र सजीब एवं पूर्ण होते हैं। उनमें सुन्दरी बालकानन एवं स्वामादिकता भी कम नहीं हानी किन्तु कहीं-कहीं पर उनके पात्रों के रेखा-चित्र इतने बिम्बित हो गए हैं कि उनकी सजीबता जाती रही है। स्पष्ट विवरणों के साथ उनका व्यक्तित्व दब गया है। 'बय रत्नाम' में ता ऐम रेखा-चित्रों का बाहुल्य ही है।

आचार्य अनुरक्त जी ने एक मास कई पात्रों के रंग चित्र भी चित्रित किए हैं। ऐसे चित्र संश्लिष्ट किन्तु सुन्दर उभरे हुए किन्तु आकृतिक हाने हैं। उनके पात्र चित्रों की सबप्रमुख बिगड़णता है उनकी पुनरा एवं सजीबता। चित्र के प्रत्येक अंग का उपन्यासकार ने सुपढ़ता के साथ उभारा है। चित्र का प्रत्येक अंग यात्रा प्रत्येक रेखा पूर्ण एवं प्रत्येक अंग विकसित एवं पुष्ट है। उन्होंने कहीं पर हल्के हाथ में रंग भरते हुए रेखा चित्र का स्पर्श किया है तो कहीं उनमें पूर्ण रंग भरते हुए। इसी कारण से उनके पात्रों का बाह्य रूप चित्र तो पूरा एवं सरा पूरा है आंतरिक भावों के भी आलेखन और उद्बोधन में वे पूर्ण सफल हुए हैं।

जाने 'बय रत्नाम' नामक उपन्यास में उन्होंने पात्रियों के मूल-मूल वर्णन भी किए हैं।^१ ऐतिहासिक आचार्यों की परिपाटी पर गद्य में लिखे गये वे मूल निम्न वर्णन मीरस एवं सम्बाभादिक हो गए हैं। इस प्रकार के प्रयोगों के कारण ही आचार्य अनुरक्त जी का 'बय रत्नाम' उपन्यास उपन्यास न रहकर एक जमत्कार ग्रंथ सा बन गया है।

हृदय चित्रण की शैली—

आचार्य अनुरक्त जी के उपन्यासों में हृदय-चित्रण भी बलवत् सजीब एवं प्रायःवात् है। जिस हृदय का भी उन्होंने बयन करना चाहा है बड़ी सफ-सता के साथ किया है। जिस युग के चित्र को उपन्यासकार ने जीवता चाहा है उसी युग के वातावरण के अनुकूल वह जीवत में पूर्ण सफल रहा है। ऐसे स्थलों पर उनकी शैली चिरलेखपात्रक विवरणपरक एवं कुछ कुछ वाष्पारमक हो गई है। शुद्ध एवं समीचीन स्थानों की समीचीनता का वर्णन करते समय उपन्यासकार ने तदनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए होमप-र्यों से पूर्ण

शैली का प्रयोग किया है। प्रासाद महात्म्य मंदिर आश्रम आदि स्तूपों के वर्धन उसी प्रकार की शैली में हुए हैं। उदाहरण के लिए 'सोमनाथ' उपन्यास में बणित सोमनाथ महात्म्य का एक रेखा चित्र देखिए—

'महात्म्य का अंतर्कोट कोई भीस हाथ ऊँचा और छे हाथ चौड़ा था। सैनिक यासानी से उस पर चढ़े हो सकते थे। अंतर्कोट के सिंह द्वार के ठीक सामने मज्जति का मध्य मंदिर था। उसी पर मक्कार खाना था। जिसमें पहरे-पहरे पर चौकड़ियाँ बजती थीं। इस द्वार के दोनों पार्श्वों में दो विशाल दीप स्तम्भ थे जिन पर संपतराष्ट्री का अत्यंत सोमनीय काम हो रहा था। प्रत्येक स्तम्भ पर प्रतिदिन सहस्र ही जलते थे जिनका प्रकाश दूर से समुद्र के पक्षगामी जहाजों को सोमनाथ महात्म्य के प्योर्जिनिंग की दिशा का मान कराता था। इन विशाल और ऊँचे दीप स्तम्भों के अक्षर पर दो विशालकाय गण स्थापित थे जो श्वेत मर्मर के थे। दक्षिण दीप स्तम्भ के सम्मुख चन्द्र कुण्ड था जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि उसमें स्नान करके से सर्वरोग मुक्ति होती है तथा मनोकामना सिद्ध होती है।'

इसमें सोमनाथ महात्म्य का रेखाचित्र इतना उभरा हुआ है कि हम क्रिश्चि प्रयत्न मात्र से अपनी कल्पना द्वारा मानस क्षेत्रों से उसको प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इसी प्रकार 'वर्ष रत्नाम' के अर्धोक्त बाटिका^१ जनक बाटिका^२ आदि के बैशाखी की नगरवधू^३ के अम्बपाली के प्रासाद^४ भील पद्म प्रासाद^५ पुष्पकरिणी^६ आदि के राजसूय मंड^७ आदि एवं सोमनाथ के अन्य अनेक चित्रों को रस सकते हैं।

राजशरदार आदि के रेखा चित्र—

आचार्य चतुर्मेध जी के प्राचीन दरबारों नगरों आदि के वर्धन भी बड़े समीच हैं। उन्होंने तरकालीन राज दरबारों की समरचक्र की अपनी वर्ण नारमक शैली द्वारा समीचता प्रदान की है। जहाँ महात्म्य आश्रम एवं मंदिर

१ सोमनाथ-पृ १७ ।

२ वर्ष रत्नाम पृ ५०१-५०७

३ वर्ष रत्नाम: पृ ३६३ ।

४ बैशाखी की नगर वधू-पृ ६२ ।

५ बैशाखी की नगरवधू पृ २८ ।

६ बैशाखी की नगरवधू-पृ ३६ ।

७ बैशाखी की नगरवधू-पृ ३७१-३७७ ।

भादि के बिबरनों में सुविधा एवं रसमीयता है वहाँ प्राचीन राज दरबारों भादि के रेखा चित्रों में तदनु-मदनु सत्र राज एवं बनाव सिमार की प्रधानता है। ऐसे स्वर्णों पर प्रयुक्त सौली अपने चटक एवं सुस्त प्रभाव के कारण बड़े सजीव चित्रों का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए हम 'आसमगीर' नामक उपम्यास के शाहजहाँ के दरवार का एक चित्र लेते हैं—

'आस आस का दरवार आज सास तीर पर सजाया गया था। उसका प्रत्येक लम्बा जरी के काम के बहुसूत्र्य परदों से मड़ा गया था। छत में रेखमी बंदोबे लये थे जिसमें रेखम और जरी के फुंजने टक हुये थे। फर्न पर बहुत बढ़िया तर्न रेखमी कामीन बिसे थे। बाहर एक बड़ा भारी सीमा पड़ा था जो सहत म आधी डूर तक फैला हुआ था। उसके चारों ओर खड़ी की पतियों से मड़ा हुआ फटहरा लगा था। इस सीमे म लकड़ी के तीन बड़े लम्बे बड़े थे जो दूर से जहाज की मस्तूर की भाँति दीख पड़ते थे। इस सीमे के बाहर की आर साक रंग का बपड़ा सया था और भीतर मछमीपट्टम की छीट थी। आस आस की सारी दीवारें कमलाब और जरी क काम के पुयानों से ढक गई थी और जमीन बहुसूत्र्य सुन्दर कामीन से ढर गई थी।'

उपयुक्त रेखा चित्र म सुमर दरबार का एक सजीव रेखाचित्र है। यदि बारीकी से देखा जाय तो यह अपनी कुछ विशेषताओं के कारण 'बय रसाम 'नगरबधू' एवं 'सोमनाब' भादि उपम्यासों में बर्णित हिन्दू राजदरबारों से विभुक्त चित्र बीस पड़ता है।

मुठ एवं अत्याचारों के रेखा-चित्र—

आचार्य जयुरसल जी के मुठ एवं अत्याचारों के रेखा चित्र बड़े ही सजीव हैं। मुठ के बर्णन करते समय उन्होंने सदैब बेष काल का ध्यान रखा है। 'बय रसाम' एवं 'नगर बधू' में प्राचीन भारत की मुठ परिपाटियों के सफल चित्र बर्णित हैं, तो 'सोमनाब' एवं 'आसमगीर' में मध्यकालीन भारत के मुठों में। 'सोना और बधू' में हम १९वीं शताब्दी के मुठ कौशल की प्रत्यक्ष देस सकते हैं। यहाँ हम तीनों ही प्रकार की मुठ परिपाटियों के एक-एक उदाहरण देखे हैं—

प्राचीन भारत की मुठ परिपाटी का एक चित्र —

'बय रसाम' से शम्बर-संग्राम का एक रेखा चित्र देखिए — 'दोनों ही

शैली का प्रयोग किया है। प्रासाद महात्म्य मंदिर आभम आदि स्थानों के बर्णन उसी प्रकार की शैली में हुए हैं। उदाहरण के लिए 'सोमनाथ' उपन्यास में बर्णित सोमनाथ महात्म्य का एक रेखा चित्र देखिए—

'महात्म्य का अंतर्कोट कोई बीस हाथ ऊँचा और छह हाथ चौड़ा था। सैनिक मासानी से उस पर चढ़े हो सकते थे। अंतर्कोट के सिंह द्वार के ठीक सामने यजपति का मध्य मंदिर था। उसी पर गणकार खाना था। जिसमें पहर पहर पर चौबड़ियाँ बजती थीं। इस द्वार के दोनों पाश्वर्यों में दो विशाल शीप स्तम्भ थे जिन पर संगतराष्ट्री का अत्यंत सोमनीय काम हो रहा था। प्रत्येक स्तम्भ पर प्रतिदिन सहस्र शीत बरस्ये थे जिनका प्रकाश दूर से समुद्र के पक्षगामी जहाजों को सोमनाथ महात्म्य के ज्योतिर्मणि की विद्या का मान कराता था। इन विशाल और ऊँचे शीप स्तम्भों के चिखर पर दो विशालकाय पत्त स्वपिंड थे जो इबेठ मर्मर के थे। इतिहास शीप स्तम्भ के सम्मुख चन्द्र कुण्ड था जिसके विषय में प्रसिद्ध था कि उसमें स्नान करने से सर्वरोग मुक्ति होती है, तथा मनोकामना सिद्ध होती है।'

इसमें सोमनाथ महात्म्य का रेखाचित्र इतना उभरा हुआ है कि हम किंचित प्रयत्न मात्र से अपनी कल्पना द्वारा मानस क्षेत्रों से उसको प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इसी प्रकार 'वयं रक्षामः' के अशोक बाटिका^१ बनक बाटिका^२ आदि के 'बैशाही की नगरबधू' के मम्बपाही के प्रासाद^३ मीरक पद्म प्रासाद^४ पुष्पकरिणी^५ आदि के राजसूय यज्ञ^६ आदि एवं सोमनाथ के अन्य अनेक चिखरनों को रच सकते हैं।

राजदरवार आदि के रेखा चित्र—

आचार्य चतुरसेन जी के प्राचीन दरबारों नगरों आदि के बर्णन भी बड़े सजीव हैं। उन्होंने उत्कासीन राज दरबारों की सबभन्न को अपनी बर्णनारमक शैली द्वारा सजीवता प्रदान की है। वही महात्म्य आभम एवं मंदिर

- १ सोमनाथ-पृ १७।
- २ वयं रक्षामः पृ ५०५-५७,
- ३ वयं रक्षामः पृ ३६६।
- ४ बैशाही की नगर बधू-पृ ६९।
- ५ बैशाही की नगरबधू पृ ९८।
- ६ बैशाही की नगरबधू-पृ ३६।
- ७ बैशाही की नगरबधू-पृ ३७५-७७।

आदि के विवरणों में सुविधा एवं समीपता है वहाँ प्राचीन राज दरबारों आदि के रीति-रिवाजों में लड़क-भड़क सब प्रथम एवं बनाब सिंगार की प्रधानता है। ऐसे स्वभा पर प्रयुक्त रीति अपन करने एवं सुस्त प्रभाव के कारण बड़े सजीव चित्रों का निर्माण करनी है। उदाहरण के लिए हम 'आलमगीर' नामक उपन्यास के छाह्रहृद् के दरबार का एक चित्र लत है—

“आम साध का दरबार आज ज़ास तोर पर सजाया गया था। उसका प्रत्येक खम्भा ज़री के काम का बहुमूल्य परदों से मड़ा गया था। छत में रेवमी बंधोवे लगे थे जिसमें रेवम और ज़री के परदे टंके हुये थे। फर्श पर बहुत बड़िया नम रेवमी कालीन बिछे थे। बाहर एक बड़ा भारी सीमा पड़ा था जो सहन में आधी दूर तक फैला हुआ था। उसका चारों ओर चाँदी की पतियों से मड़ा हुआ बटहटा लगा था। इस सीमा में सफ़ेदी से तीन बड़े खम्भे लड़े थे जो दूर से जहाज़ की मस्तूम की प्रति हीन पड़ते थे। इस सीमा के बाहर की आर लाल रंग का कपड़ा लगा था और भीतर मछलीपट्टम की छीन्नी थी। आम साध की घाटी दोबारे कमलाव और ज़री के काम के दुआलों से ढक गई थी और जमीन बहुमूल्य मुन्दर कालीन में भर गई थी।”

उपर्युक्त रेखा चित्र में मुख्य दरबार का एक सजीव रेखाचित्र है। यदि चाँदीकी से रेखा जाय तो यह अपनी कुछ बिधयताओं के कारण 'बयं रसाम' 'नगरबधू' एवं 'सोमनाथ' आदि उपन्यासों में कल्पित हिन्दू राजदरबारों से बिल्कुल भिन्न हीन पड़ता है।

युद्ध एवं दरवाज़ारों के रेखा-चित्र—

आचार्य जतुरसेन जी के युद्ध एवं दरवाज़ारों के रेखा चित्र बड़े ही सजीव हैं। युद्ध के वर्णन करते समय उन्होंने सर्वत्र देश कास का ध्यान रखा है। 'बयं रसाम' एवं 'नगर बधू' से प्राचीन भारत की युद्ध परिपाटियों के सचक चित्र अंकित हैं तो 'सोमनाथ' एवं 'आलमगीर' में मध्यकालीन भारत के युद्धों में। 'सोना और मून' में हम १९वीं शताब्दी के युद्ध कौशल को प्रयोजन देख सकते हैं। यहाँ हम तीनों ही प्रकार की युद्ध परिपाटियों के एक-एक उदाहरण देखें हैं—

प्राचीन भारत की युद्ध परिपाटी का एक चित्र —

‘बयं रसाम’ से चम्बर-संग्राम का एक रेखा चित्र देखिए — दोनों ही

पक्ष के घट धामने-धामने हो मुड़ करने को बिकल हो उठे। आर्यों के प्रधान सेनापति ने महाशुचि ब्यूह का निर्माण किया। उस ब्यूह के दक्षिण पार्श्व पर साठ अतिरथ यूपप और बायें पार्श्व में साठ पंचरथ यूपप अपने मुखों सहित आसीम हुए। मध्य में गज-सैन्य और केंद्र में पांचामपति द्विवेदाद्य और उसकी बेबसेना। अग्रभाग में अष्टरथ अपने इस सहस्र अतिरथों के साथ। सम्बर ने अपनी सेना का वर्ष-वर्ष ब्यूह रखा। उसके मध्य में गज-सैन्य के साथ वह स्वयं रहा। बागे-पीछे और पार्श्व में छत्तीस छत्रधारी राजा।

ब्यूहबद्ध होने के बाद ही दोनों सेनाओं में रणबाद्य बज उठे। देखते ही देखते दोनों ओर से राक्षस चलने लगे। बय-बयकार का महाशब्द होने लगा। बाणा से आकाश छिप गया। राक्षसों के परस्पर टकराने से बाग निकलने लगी। हाथी भाड़े और सुभट मर-मर कर गिरने लगे। उनके अगिर की नदी बह लगी। जिसमें मृग वीरों के शरीर ग्राह से ढरने लगे। कोई सुभट-सुभट से इंद्र करने लगा। किसी ने वर्ष-वर्ष बाण से किसी का सिर काट लिया। किसी के मर्म स्थल में बाण चुस जाने से वह चीत्कार कर शूलित-सा भूमि पर गिर गया।

प्राचीन भारत में किस प्रकार ब्यूहबद्ध होकर सैन्य परस्पर मुड़ करती थी इसका अत्यंत सजीव एवं स्वानाचिक चित्रण उपयुक्त उद्धरण में आचार्य जगन्नाथ जी ने किया है।

मध्य कालीन भारत की मुड़ परिपाटी का एक चित्र —

सोमनाथ' उपन्यास के पुष्कर के बिकट मुड़ का एक विवरण देखिए —
 'दूसरे दिन सूर्योदय से प्रथम ही राजपूतों को सावधान होने का अवसर न दे बमीर ने अपने दुर्घर्ष बुद्धिबारी को से अकस्मात् बाधा बोक दिया। इस कार्य से प्रथम तो राजपूत-सैन्य में बबराहट और अस्प्यबस्था फैली। पर तुरंत ही राजपूत तलवारें से-केकर दूट पड़े। देखते ही देखते न अपने छोटे-छोटे बल बना कर बमीर की सेना में पैठ पड़े। हाथों-हाथ मारकाट होने लगी। दण्ड-मुण्ड कटकर पृथ्वी पर पड़ने लगे। मेरों की सेना जो बर्छी के मुड़ में अप्रतिम थी अपनी मोकीछी बछियां से केकर यवनों का संहार करने लगी। उनकी बछियां राजपूतों की अंतड़ियां बाहर लीच आए बिना शरीर से बाहर निकलती न थीं। अमवार तलवारों के कटारे बायें-बाकर राजु हाहाकार कर उठे।^१

१ अर्थ रत्नाम पृ १९१।

२ सोमनाथ पृ १८७।

१८ बौ शताब्दी की मुद्र परिपाटी का एक चित्र —

सना और लून' में १९वीं शताब्दी की मुद्र परिपाटी के बनक रेखा चित्र हैं। उदाहरण के लिए उपन्यासकार द्वारा विभिन्न 'विद्वन्वी सधाम का एक रेखाचित्र देखिए — 'पहली मार्ग' की मुद्रमंडल उ-पिन्ने की पैदास बटासिपन स हुई—आ अंधेरी सना के बाम पापन में सागरी पैदल देरी रेजीमेंट को मफलती हुई बनादन बन्ती जा रही थी। पीछे ही अंधेरे सना के विवाहियों न अपनी पन्धियां दुड़ कर लीं और स्थिति को समझासा। अब के दृश्यापूबक मराठा सना का प्रतिराम करते सग। बदासित उन्हें पासा देने का—उनकी पुत्रता देख चासाक उ-निर्तो ने अपनी बगान्धिन का तीव्रता स पीछे हटने का भावेग दिया। उन्हें पीछे हटने देन-अंधेरी मेगा न उन पर दाबा बोक लिया। त्रिसुमे के अपन पीछे वाली गोरी रेजीमेंट स बहुत खंनर पर आये बड़ आए।"

यदि साधारण दृष्टि से भी देखें तो भी उपयुक्त तीनों रेखा चित्रों का खंनर स्पष्ट हो जाता है। प्रथम में प्राचीन परिपाटी के महाशुचि स्मूह का वर्णन है। दोनों ही दल स्मूहबद्ध हो जाने के पश्चात् ही मुद्र प्रारम्भ करते हैं। यूपप अर्धबंध बान भाति दण्ड भी प्राचीन शाशासन निर्माण में सहायक हाठ है। द्वितीय वर्णन में मध्यकालीन मुद्र परिपाटी का समीच रेखा चित्र है। इसमें स्मूह बांधने की इतनी बिजा नहीं दीस पड़ती। प्रत्येक दल अपनी रक्षा में सतर्क और दूसरे का परासठ करने के लिए कटिबद्ध है। इसम बहिषों एवं सलबारों का मुद्र बरामीय है। अंतिम उदाहरण में १९वीं शताब्दी की मुद्र परिपाटी है। इसमें यूपप स्मूह भाति दण्डों के स्थान पर बटासिपन आ गई है। इन तीनों ही उदाहरणों से स्पष्ट है कि आचार्य अनुरसेन जी ने प्राचीन मध्यकालीन एवं आधुनिक तीनों ही प्रकार की मुद्र परिपाटियों का बड़े परिश्रम स अध्ययन किया है। वे इनको वर्णन करते समय भी बड़े सतर्क रहे हैं। जिससे उनके मुद्र वर्णन बड़े ही समीच एवं रोचक बन पड़े हैं।

अध्याचरों का रेखाचित्र —

मुद्र वर्णनों के साप-आप आचार्य अनुरसेन जी ने सत्कालीन राजाओं के अत्याचारों के रेखा चित्र भी प्रस्तुत किए हैं। यह रेखा-चित्र जहाँ एक ओर पाठक के हृदय में मुद्र के प्रति किनृपणा उत्पन्न करते हैं वहीं दूसरी ओर पीड़ित

व्यक्ति के प्रति हार्दिक सहानुभूति भी। आचार्य चतुरसेन जी के बिना चिराग का सहर' नामक उपन्यास का एक उदाहरण देखिए —

'इसी समय अस्तास लेज घूरे लेकर आए। और उसका काम शुरू हुआ। आहिस्ता से पहिले पेट के नीचे से कमर तक उसकी साज तरापी गई और इसके बाह्र उसे भीमटों से पकड़कर खींचा जाने लगा। असह्य संभया से राजा बराहने लगा। पर खींच ही उसकी कटाहना भी बीभी पड़ गई। और वह फिर बेहोश हो गया। अल्गाव अपना काम ठेकी से करते जके और उसके सीने तक की सास समूची उभेड़ भी गई। देखते ही देखते राजा एक जीवित मांस का जोषड़ा रह गया। राजा मद्यपि इस समय बेहोश था पर वह जीवित था। और साथ के रहा था। जूकि जिहा जाक खींचने का साही हुकम था। इसलिए अस्कारों ने साज खींचने में अस्ती की। उन्हें भय था कि कही वह जाक खींचने से पहिले मर न जाय।'

प्रस्तुत रेखा चित्र कितना सजीव है। अस्कार की घतकंठा एवं निर्ममता राजा की मिरहीहटा एवं तड़पन असह्य संभया के कारण उसकी सर्वनाक कटाह मूर्छा का प्रेयसी रूप में कुछ समय के लिए जाता और फिर रुठकर खकी जाता मृत्यु का मुंह फेर लेना अपने ही राजा की जिहा जाक खिंचते हुए बैबना और बाह्र न मर पाना आदि सभी मार्गों को कुसखटा से उपन्यासकार ने प्रस्तुत चित्र में उभारा है। यह रेखा चित्र इतना मर्म-स्पर्शी एवं सजीव है कि पाठक पढ़ते ही रोमांचित आतंकित एवं कोषित हो उठता है। आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में इसी प्रकार के अनेक रेखा चित्र भरे पड़े हैं।

नृत्य आदि के सजीव वर्णन—

एक ओर आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में जहाँ मुद्र की बुमड़न है अस्याचारियों के नृसंसृताओं के रेखा चित्र हैं वहीं दूसरी ओर सुन्दरियों के नृत्य की सुन्दर भासक वाद्ययंत्रों की सुमधुर ध्वनि बुंभुओं की उमछनाहट के विवरणों से भी उनके उपन्यास भरे पूरे हैं। 'सोमनाथ' उपन्यास का निम्न उदाहरण देखने योग्य है—

'मृदंग पर बाप पड़ी और कोमलपद की हस्ती ठोकर से सुनहरी बुंभु (ज उठे छत। मृदंग ने बीड़ मारकर फिर भाप मारी और बुंभु बने छत्र द्रम। फिर तो नूपुर घोमित जाक कमल से वे चरण स्वेत-अस्तर के उस समा

मदन के विस्तार को छु-छुकर ऊपर मचाने लगे। मुंढर्यों की संकार जैसे लोगों के हृदयों में ग्यार माटा उत्पन्न करने लगी।^१

नृत्य का सम्पूर्ण चित्र पूर्ण सजीव है। इसमें उपन्यासकार ने अत्यंत सूक्ष्म पर्यवेक्षण से कार्य किया है। धुंढर्यों की ध्वनि मृदंग के स्वर एवं कोमलपद्यों की बिबरन तक को उसने प्रस्तुत चित्र में उभार दिया है।

इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन जी ने उपन्यासों में गाँव मगर, रूप काठिका बाजार, नदी पर्वत वृक्ष जलाशय गढ़ किले आदि के भी विस्तृत एवं सजीव वर्णन प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं राजवरदार, राज व्यवस्था आदि के बिबरण विभिन्न वर्गों के जीवन की झाँकी भरे सजीव चित्रण भी उनके उपन्यासों में वर्धनीय हैं। इन सभी का वर्णन हम 'सेसकाल एवं बातावरण सृष्टि' नामक अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ पर हमने जो कुछ उदाहरण दिये हैं उनसे हमारा उद्देश्य आचार्य जी की सेसन शैली पर प्रकाश डालना मात्र रहा है। आचार्य जी की कहानियों की सेसन शैली भी बहुत कुछ उनके उपन्यासों के समान ही है।

अभी तक हमने आचार्य चतुरसेन जी की सेसन शैली का विवेचन किया जब उनके शब्द भंडार, मुहावरों एवं लोकोत्थियों के प्रयोगों पर भी एक नृष्टि डालना अनुपपुक्त न होगा। जैसा कि हम पीछे दिखाया चुके हैं कि आचार्य जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनके उपन्यासों में तीव्र प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है। आगे हम उनके तीनों ही प्रकार के उपन्यासों में प्रयुक्त शब्द भंडार पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

संस्कृत, पासी प्राकृत आदि के शब्द —

आचार्य चतुरसेन जी ने विषयानुकूल बातावरण उपस्थित करने के लिए संस्कृत पासी एवं प्राकृत के कितने ही उत्तम और उद्भव शब्दों का प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। 'बैसासी की नगरबधू' एवं 'देवामता' (मंदिर की गर्तकी) आदि में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग प्रभाव-वृद्धि एवं बातावरण सृष्टि के लिए ही किया गया है किंतु 'बयं रजाम' में आसहृषण ही संस्कृत बहुधा भाषा का प्रयोग हुआ है। इसमें कहीं-कहीं तो संस्कृत मिश्रित भाषा प्राप्त होती है तो कहीं समूचा परिच्छेद ही संस्कृत में है।^२ बहुधा अनार्य महत्पुरुषों का कथोप

१ सोमनाथ पृ २९

२ 'बयं रजाम' आचार्य चतुरसेन पृ १६५, १६५।

कवच संस्कृत में कराया गया है।^१ प्रब का समर्पण-वच भी संस्कृत में है। और 'इति' श्वाक्या भी संस्कृत में।^२ प्रब की समाप्ति मन्बोदरी विज्ञाप पर हुई है यह विज्ञाप भी संस्कृत में ही है।^३ ऐसा आचार्य चतुरसेन की ने इस उपन्यास में क्यों किया ? इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है संस्कृत का मैं पंडित नहीं हूँ। बीसन के आरम्भ में कुछ संस्कृत पढ़ी ब्रह्मस्य की अब सब मुझमात्र गया। यह वालीस बर्षों में संस्कृत के प्रामाणाया ही दूट गया। यदा-कदा कभी कुछ पढ़ लेता था परन्तु अब इस उपन्यास के लिखने के समय वालीस की में उबाल जा गया। सो यह भी एक चमत्कार कहना चाहिए।^४ भले ही आचार्य चतुरसेन की को यह चमत्कार प्रिय लया हो किन्तु इस प्रकार सड़ी बोली की भाषा का प्रयोग करके उसमें स्थान-स्थान पर संस्कृत के पैरब लगाना उचित नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार भाषा के साथ छिछकाड़ करना सर्वथा अनुचित है। तुलसी ने 'यामघ' में किसी दूसरे ही भाषा से संस्कृत भाषा का प्रयोग किया था जगका उद्देश्य किसी प्रकार के 'चमत्कार प्रदर्शन' का नहीं रहा था। 'वर्ष रत्नाम' 'जगत्क' आदि उपन्यासकार ने विषयानुसृत वातावरण उपस्थित करने के लिए संस्कृत के उत्तम शब्दों का प्रयोग किया है, वहाँ रचना भी कृत्रिमता की संघ या पांडित्य प्रदर्शन नहीं जाय होता प्रस्तुत शब्दों के प्रवाह की देखकर तो ऐसा आभास होता है कि वे शब्द प्रकृति: अपने उचित स्थान पर स्वयं जाकर बस गये हों अपरिचित हो गए हों।

विषयानुसृत वातावरण उपस्थित करने वाले शब्द—

यहाँ हम आचार्य चतुरसेन की द्वारा प्रयुक्त कुछ जग संस्कृत वाली शब्दों आदि प्राचीन भाषाओं के शब्दों को प्रस्तुत कर रहे हैं जो विषयानुसृत वातावरण उपस्थित करने के लिए उपन्यासों में प्रयुक्त हुए हैं।

तत्कालीन वातावरण-परिचायक शब्द—

इसमें हम पारिवारिक सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र से सम्बन्ध शब्दों के नामों, सामंत वर्ग के शत्रु नामों श्यामाकव एवं अन्य प्राचीनता शीतक

१ वर्ष रत्नाम पृ २२७ से २२८ तक। ३६१ ३६२, ३६४ ३६५, ३६६ ७४१-७४३।

२ वर्ष रत्नाम समांश एवं इति।

३ वर्ष रत्नाम: पृ ७५१ से ७५७ तक।

४ चतुरसेन त्रैमासिक, विद्याय सं० २०१२ प्रथम अंक पृ १०७।

मानों आदि को ले सकते हैं। जैसे संवागार प्राण (मगरबबू पृष्ठ १२) अश्वि प्रकौष्ठ परमगृह, बंडपर (न० ब० १२) मगरसेठिठ शोणिक, सारमतपुत्र (न० ब० १२) अंतरायन हट्ट (न० ब० १३) तोरण (पृ० १७) सतिपाठ महाबलाधिकृत छन्ददाकाका येठिचत्वर (पृ० १३) आमार्य (न० ब० १३) दूर्य (न० ब० १३) प्रतिगण (न० ब० १५) वायुप्मान् (न० ब० १५) सविविगाहिक अट्टवी रलक (न० ब० १२४) इर्या तिष्क (न० ब० १२७) मङ्गुलक मीरय माध्वीक दाकका (न० ब० १२९) संहार्य बसठरी, अर्धपाच समित्पायि (न० ब० १४२ १४३) अष्टकुल सर्वजनभोग्या (न० ब० ३०) मयपति गजनायक (न० ब० ३१) बीषिका सेठिठपुत्र अर्हत अंतरायण पथ्य धर्मबलु, कापाय बस्त्र प्रबुधित (न० ब० ६०) विद्या प्रमुख स्नातक अजातीय उपानय (न० ब० १२१) स्वस्तिकों घडाकारै, तोषा उपानत काविक कौशेय परिवान (न० ब० १२२) तैसार्म्य कंचुक लोभ प्रावार, दण्डस्वक (न० ब० ४४३) चीनाशुक लोभरेणु साकुक अंशुकांत गण्डस्थल स्फटिक चपक (न० ब० ४६८) गवाछों कय शुकार गृह (न० ब० ४७४) कुतक कुकू उपानान (४७७ ७८) बस्यु, आप्यायित (७५३) आदि कितने ही शब्द प्राप्त हैं।

आचार्य चतुरसेन जी ने इसी प्रकार के लयमन दो हजार से भी कुछ अधिक शब्दों को अपने विशिष्ट समकालीन पारिभाषिक अर्थ में हैं तथा जिनका प्रचलन बिरकाल से बन्द हो गया था का प्रयोग अपने उपन्यासों में विषयानुकूल वातावरण निर्माण के लिए किया है।

विभिन्न मनोभावों को प्रकट करनेवासे कुछ शब्द—

उपन्यासकार वही सफल हो सकता है जिसको विभिन्न स्वभावों एवं वृत्तियों का प्रचलित ज्ञान हो एवं अंतर्जगत् की विभिन्न सूक्ष्म वृत्तियों का वह मर्मज्ञ हो। किन्तु केवल सामान्यतर वृत्तियों के ज्ञान मात्र से ही वह सफल नहीं हो सकता जब तक उन सूक्ष्म वृत्तियों को ज्यों की ज्यों चित्रित कर देने के लिए उसका धन्य संसार भी विस्तृत न हो। आचार्य चतुरसेन जी का धन्य संसार विस्तृत था इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण से वे अपने उपन्यासों के अधिकतर स्थलों पर प्राप्त विभिन्न मनोभावों को उपयुक्त शब्दों द्वारा ज्यों के त्यों व्यक्त करन में पूर्ण सफल हुए हैं। अहाँ पर उन्हें जिस प्रकार के मनोभावों को व्यक्त करना हुआ है उन्हीं विस्तृत उसी भाव को उतार देने वाले शब्दों को प्रयुक्त किया है। उदाहरण के लिए वहाँ उन्हीं आश्चर्य प्रकट करवा

है, वहाँ उनके शब्द अपने में कुछ कुतूहल कुछ विस्मय कुछ रहस्य छिपे होते हैं और इन्हीं शब्दों के व्याख्य से वे रहस्यपूर्ण वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं। कहीं कहीं 'अमरकृत होकर राजों उनके जैंगली वनाई जाता है। (सोमनाथ पृष्ठ १०२) तो कहीं कहीं मूँह से आने शब्द बोल और आने दबा कर अचकचामा सा भावपर्य्य प्रकट करते समता है। वहाँ उन्हें प्रस्ताहन पूर्ण स्वलों को संवारना हुआ है वहाँ उन्होंने छोटे-छोटे किन्तु तीक्ष्ण एवं चुमते हुए शब्दों को स्वाम दिया है। क्रोध एवं आनंद व्यक्त करने के लिए उन्होंने बोजपूर्ण एवं भारी शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार से उन्होंने अपने सम्पूर्ण कथा-साहित्य में विभिन्न मनोभावों को प्रकट करने के लिए उदनुक्षण शब्दों का प्रयोग किया है। यह पृष्ठों में उनकी शैली का विशलेषण करते समय हम इस बात पर विस्तार से विचार कर चुके हैं।

अरबी, फारसी के शब्द—

भाचार्य चतुरसेन जी ने अपने कथा-साहित्य में अरबी फारसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग बलुकर किया है। वे पाषाणकाल भाषा बुझाने के पक्ष में वे अतः उनके अधिकार मूखकमान पात्र अरबी फारसी प्रधान भाषा में शार्तालाप करते हैं। इतना ही नहीं उनके अधिकार हिंदू पात्रों को भी जब मुसलमान पात्रों से शार्तालाप करना होता है, तो उनके भी शार्तालापों में अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य शीघ्र पड़ता है। भाचार्य चतुरसेन जी के उन ऐतिहासिक उपन्यासों—में जिनका सम्बन्ध यवनों से है—अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य देखा जा सकता है। 'सोमनाथ' और 'आलमगीर' नामक उपन्यासों की भाषा हमारे इस कथन की प्रमाण है। नीचे के कुछ उदाहरणों से हमारी बात स्पष्ट हो जायेगी। पुष्पांकित शब्दों पर व्याख्य दीजिए—

'तुम नो बहुत मुतफिकः मालूम होते हो' (आलमगीर पृष्ठ १७)।

'क्यामतवर्षः होने वाली है'।

'तुम इस कर्मावधारः पर हमेसा धाकी बने रहते हैं'।

'तुम लोग मेरी कमजोरियों को बरमुबरा करते बतों' (आलमगीर पृष्ठ १८)।

'धुवा मुम्हें मुर्कः करे। (आलमगीर पृष्ठ १९)।

... और ताकवानः में तुम्हारी इतनाती कःनी।' (आलमगीर पृष्ठ १०५)।

‘आपको अगर इस्म-जन्मकुम्हल्ले बीस पड़ता है’ .. (सोमनाथ पृष्ठ २२९) ।

‘यह तो इत्तफाकल्ले पर मौसूफल्ले है (सोमनाथ पृष्ठ २९०) ।

‘मेरी मुस्तान से एक इस्तजाकल्ले है (सोमनाथ पृष्ठ २९०) ।

‘तुम्हारे कवमोंकल्ले में सवनेकल्ले करता हूँ (सोमनाथ पृष्ठ ४४५) ।

‘अब बुजुर्मकल्ले तुम पर आफरीकल्ले तू कौन है ? अपना नाम बता कर महमूद को ममनूमकल्ले कर’ (सोमनाथ पृष्ठ ३९३) ।

और आपने बाहिद मरहूमकल्ले । खुदा उन्हें जघतकल्ले दे । (धर्मपुत्र पृष्ठ ४) ।

‘मैं यह बन्द करके आया हूँ कि आपकी जयोंकल्ले पर जहर आकरकल्ले आन हमाकल्ले कर नूँ ? (धर्मपुत्र पृष्ठ ३४) ।

‘मुदत से इस्तिमानकल्ले पा आज वेकल्ले किया । (धर्मपुत्र पृष्ठ ४४) ।

‘मेरे लिए तो यह पाकतबद ककल्ले है । (धर्मपुत्र पृष्ठ १५९) ।

‘अपने रोजगार घन्नों में मककल्ले रहते हैं, (बगुला पृष्ठ ६९) ।

‘बी ही हुजुरेआलाकल्ले हमारे आकाकल्ले .. (बगुला पृष्ठ ६८) ।

‘आपका इस्मिरीामीकल्ले (बगुला पृष्ठ ६८) ।

‘.. उसका बाबिन्दकल्ले हारिब जाता है । (बगुला पृष्ठ ७५) ।

‘निहायतपाकीआकल्ले । (बगुला पृष्ठ ७५) ।

‘वे कमजर्फकल्ले होते होंगे । (बगुला पृष्ठ ८१) ।

‘आप तो किल्लादानाबीमाकल्ले हैं । (बगुला पृष्ठ ९१) ।

बाबयों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी उर्दू उपन्यास के कुछ बाबय उद्धृत कर दिये गए हों । आचार्य चतुरसेन भी के समस्त उपन्यासों में इस प्रकार के अरबी फारसी के शब्दों की संख्या लक्षभग आई हजार के होंगी । कुछ नमूने और देखिए—

आरजू (आलम • १८) हिम्मतबर (आलम • ६८) आफिल तोहमत सहमों बयानतवारी फरिफ्ला बेहहकल्ले पेचामी बारिब महफूज (आलम • ६८ ९९) अमसदरामब बाधिले पोशीदा मुकम्मिल हिजो इस्तदामी (आलम • ७०-

७१) जी मिश्र (सोमनाथ २१५) मौसूफ नीबी मयद बयावठ इस्तबा
 इहिम (सोम० पृष्ठ २९०) कद्दावर (सोम० ३०९) मममून इस्तबा
 गलीजाह (सोम० ३०८) रकाब (सोम ३३४) फराबदिनी कुबेतमरनिपी
 इस्तमरारबारी किरमतपार (बर्मपुत्र पृष्ठ ३३) तकवीर (गोमी ७३)
 मुसाहृफ तकिया कसाम (गोमी पृष्ठ १०३) मफ्याक गबळ मुल्क धीरी
 बजान (बगुसा पृ० १४) सयल (बगुसा ४९) तकिसमा (पृष्ठ ५०) ।
 कुछ मस्त शब्दों का भी प्रयोग हैकिए—

इस्तरखान मेंछ घरीक हो गए ।
 इस्तरखान पर घरीक हो गए ।

होना चाहिए

‘अकेले महर की रकम पर क्या मौसूफ है
 होना चाहिए मौसूफ के स्वाभ पर मौसूफ ।

(बर्म० ३९)

‘बावतों ही का सीयाछे बंभा रहता है
 होना चाहिए बावतों का सिलसिला ही बंभा रहता है ।

(बर्मपुत्र ३९)

‘हुजूर इस्म मौसीकी के माहिर कामिल है ।
 होना चाहिए हुजूर इस्म मौसीकी के उस्तादे कामिल है ।

(बर्म० ४४)

‘तो किसी बिन ब्यारठ कर भाई इजाजत है’
 ना चाहिए तो किसी बिन हावरी ई इजाजत है’ कारण ब्यारठ का प्रयोग
 सूतक के किए होता है ।

(बर्म० ४५)

‘बन्मी बीर में एक सहमेंछे को भी पुशा न हुए बे ।
 होना चाहिए बन्मी बीर में एक कयहें को भी पुशा न हुए बे ।

(बर्म० ४६)

‘यो कि बहुत घरीक बीर कामिल है
 होना चाहिए कामिल के स्वाभ रर कामिल ।

(बर्मपुत्र ७)

अंग्रेजी शब्द —

आचार्य बतुरखेम जी के उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों का भी बाहुस्व प्राप्त
 होता है । इन शब्दों का प्रयोग दोनों रूपों में हुआ है उपन्यासकार ने स्वयं कुछ

कहने के किए इनका प्रयोग किया है और चिहित और अचिहित पाशों द्वारा
 भी वे व्यवहृत हुए हैं । कुछ पारिभाषिक अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग
 उपन्यासकार ने अर्थ की सम्पूर्णता के किए किया है । उदाहरण के किए कुछ
 एप्र ही पर्याप्त होये । जैसे बिबिट (बगुसा के पंख ३३) फोटोग्राफी ठीक
 लबम (बगुसा के पंख पृ० ३८) वेमेंट टिप (बगुसा के पंख पृ ३०)
 स्टोरेट आर्ब (बगुसा के पंख ३८) कन्ट्रैक्ट मीटिप (बगुसा के

पंख १०७) पाकिस्तान विदेशी (बगुला के पंख १७०) वापररवाक बंडरफुल फार हेबेस मेक (बगुला के पंख १७०) केबेटसिप एन्कीट्री रेजीमेंट फर्माइ, डिस्वीक (सोना और कून प्रथम भाग १७४) टाइप एबीएम क्लीन शेड (बर्मपुत्र पृ० ६०) हाबी (बर्मपुत्र ३१) वीसोमिन बरबीना सिटरन एर्सेसो (पृ० ८०) एंग्रेजमेट मायोडाक्स (बर्मपुत्र पृ० ८५) आदि कितने ही बंधेजी छब्बों का उन्होंने अपने उपन्यासों में व्यवहार किया है। यदि 'लगास' में प्राप्त बंधेजी के पारिभाषिक छब्बों को भी ले लिया जाय तो आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त बंधेजी के छब्बों की संख्या दो हजार से धायद ही कुछ कम रह जाय। किंतु आचार्य चतुरसेन जी ने बंधेजी छब्बों का प्रयोग करते समय इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा है कि विदेशी छब्बों क बहुवचन हिंदी व्याकरण के अनुसार ही बनाये जायें। देखिए रेस्टोरेंटों आर्बरो (बगुला के पंख पृष्ठ ६८) अफसरों मिनिस्टरो फर्मा (मोती २१४) कौंसिलों कम्मुनिस्टों आदि।

विदेशी भाषाओं के छब्बों के बाहुल्य से आचार्य चतुरसेन जी की भाषा कई स्थलों पर कुचिभ हो गई है। जहाँ तक अरबी फारसी जवबा बंधेजी छब्बों का प्रयोग भाषा को स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल बनाने के लिए किया गया है वहाँ तक तो एक सीमा तक उसका समर्पण किया जा सकता है किंतु जहाँ आचार्य चतुरसेन जी ने स्थिति बटना अथवा कबा प्रगति की विवेचना करने के लिए अरबी फारसी जवबा बंधेजी के अप्रचलित एवं अनावश्यक छब्बों को बसाए भाषा पर आरोपित किया है। वहाँ उनकी भाषा कुचिभ एवं अस्वाभाविक हो गई है।

प्रान्तीय शब्द—

आचार्य चतुरसेन जी ने अपनी भाषा को पात्रानुकूल एवं स्वाभाविक बनाने के लिए विभिन्न बोम्बियों एवं अन्ध प्रांतों की भाषाओं का प्रयोग किया है। आपने ऐसे छब्बों का प्रयोग भाषा को अधिक निखारने एवं बातावरण उत्पन्न करने के लिए ही किया है।

राजस्थानी के शब्द—

अपने 'मोती' उपन्यास में राजस्थानी बातावरण उत्पन्न करने के लिए उपन्यासकार ने कितने ही राजस्थानी छब्बों का यथा स्थान प्रयोग किया है। उदाहरण देखिए—

'येठ रसोड़ा अन्न बा। राजा मेरे ही साथ कासा आरोगता॥ वा।'
(मोती पृ० १०)।

“विभिन्न मोग्य परार्थ अटाके के लोग परखते रहते। (गोली पृ० ११)।

“उन्हें वे पड़पायठ बना लेते थे। (गोली पृ० १६)।
 “बरबापाकरछे वह या जो बर ही में उत्पन्न हुआ हो” (गोली पृ० १९)।

“प्रतिदिन एक दिन का पेटियाअटाके से मिळता था। पेटिया का अमिप्राम अटा बाक बाक भी ईवन तरकारी आदि है। (गोली पृ० २३ २४)।

“बाहिनें माड़ गाहीं बाकड़ो बरबापां पियों उमराय। (पृ० २५)।
 “हम उसके सिबाके में था पहुँचे” (पृ० २९)।

“वह छपरखट पर सोती में मुवड़ी पर” (पृ० ३१)।
 “म्हारा बोला बेगी बासो जी। (पृ ८८)।

इसी प्रकार बणी (पृ ३२) बीसा (पृ० ३३) बबकक सजूजा कुम्भीत बलेप (पृ ३३) अम्मा (पृ ३७) डोक (पृ० ३७) पचाक (३४) पीड़ी (७४) माड़ बेगी म्हारा दाका लेज बेम रोडेर किज (पृ० ८८) ठाकरड़े (पृ १०२) मोठ (१९३) बाटी बुरमा (पृ० १२०) पकाटी (पृ० २६१) आदि किजने ही राबस्वान में प्रयुक्त होमेबासे शब्द ‘पोली’ उपन्यास में प्राप्त होते हैं। इनसे जहाँ एक ओर धारों की अमिब्यक्ति में सहायता प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर बाठाबरन निर्माण में भी।

इसी प्रकार बेंपछा के भी कुछ शब्दों का प्रयोग आचार्य बगुरसेन जी के कथा साहित्य में प्राप्त होता है। यथा हुईल पाये (लोना और बून) प्रथम मान उत्तरार्ध १६२ कहीं-कहीं उन्होंने बाठाबरन सजीव करने के लिए प्रांतीय धापामों के पूरे-पूरे बासय से लिए हैं। बंगाली का एक उदाहरण देखिए—‘जे भायते बाते से और कहते बाते से—‘बहुइत्या हुईल ? काभिकाटा अपबिज हुईल। बैस पाये परिपूर्ण हुईल। फिरिनेर बर्माबर्म ज्ञान नाईं।।। (लोना और वून प्रथम भाग उत्तरार्ध पृष्ठ १६२)।

आचार्य बगुरसेन जी के प्रारंभिक उपन्यासों में एक दो जनभापा के शब्द भी प्राप्त हो जाते हैं देखिए—
 छोरे (आत्मदाह पृष्ठ २१) मुपार्ई अत्मदाह (पृष्ठ २१) सैत बहते बांमू (पृष्ठ ८१) आदि।

इसने अविरक्त विभिन्न प्रकार के मनोभावों को प्रकट करने वाले शब्दों ध्वनतपीत एवं अनेकानेक प्रचलित आधुनिक शब्दों के प्रयोग भी आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं।

आचार्य चतुरसेन जी का शब्द भंडार विस्तृत है। उनके शब्द भंडार पर एक दृष्टिपाठ करने में पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने अपने उपन्यासों में कई भाषाओं का प्रयोग किया है। यदि 'जयं रत्नाम' में संस्कृत एवं संस्कृतगमित्र भाषा का प्रयोग हुआ है तो 'आत्ममगीर' में उर्दू फारसी और अरबी भाषा के शब्दों का बाहुल्य है। 'सोना और दून सपास' आदि उपन्यासों में अंग्रेजी के शब्दों का भी आचार्य चतुरसेन जी ने बटकर प्रयोग किया है। वास्तव में उनका लक्ष्य अपनी बात को समझाने अपने भावों को स्पष्ट करने की ओर ही बिद्येप रखा है। इसके लिए निःसंकोच उन्होंने सभी प्रकार शब्दों का प्रयोग किया है।

मुहावरों, उक्तियों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग—

केवल विभिन्न भाषा विभाषा एवं बोधियों के शब्द भंडार को ही देख कर हम किसी व्यक्ति को तब तक सफल भाषा नायक नहीं कह सकते जब तक वह उनका प्रयोग करना भी कुशलता एवं चातुरी से न जानता हो। आचार्य चतुरसेन जी में यह गुण वा तभी 'सोमनाथ' 'गोपी' आदि उपन्यासों में उनकी वाक्य रचना गठी हुई और अभिप्रेत अर्थ को यथावत् चोतित करने वाली है। आचार्य जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग उतना नहीं हुआ है जितना उनके सामाजिक उपन्यासों में। आचार्य जी का विश्वास था कि ऐतिहासिक उपन्यासों में आधुनिक लोकोक्तियों को बजाए दूसरे से उनकी कठोरमक महत्ता ग्यून हो जाती है। बत इसी प्रकार से उन्होंने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग बड़ी सतर्कता के साथ किया है। कुछ उदाहरण हैं—

महमूद (सोमनाथ) ने विश्वासपात करके अपने प्रतिद्वंद्वी महाराज बर्ममजरेव को समाप्त कर दिया। लखनार के भरपूर बार से 'महाराज वाकास के दूटे मखन की भीति पृथ्वी पर मिर पड़े।' महाराज की मृत्यु के पश्चात् 'भोग हवार-हवार मुख से मजनी के रीत्य को भासियाँ देने और कोसने लगे।' किंतु जब उसका सामना पड़ा तो बही विश्वासपाती 'अमीर बन राजाग कोय

१ सोमनाथ-पृ १९९।

२ सोमनाथ-पृ २००।

छिना कर, बेंत से पिटे हुए कुरी की गाँठि बरें सेके। गिकक कर तावइठोइ
जागा ।^१

उपर्युक्त उदाहरणों में आचार्य अनुरसेन जी ने भावों एवं क्रिया को स्पष्ट
स्पष्ट करने के लिए मुहावरों का किठना सटीक प्रयोग किया है। इसी प्रकार
क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायता प्रदान करने के लिये कुछ अन्य मुहावरे
भी देखिए—

ऐसा करो जिससे सांप मरे न काठी टूटे ।^२

‘तो बहाँ पनाह कमल जैसे-जैसे भीयता है भारी होता है ।’^३

‘यहाँ यह बूहेदानी में बूहे की गाँठि फंसा ।’^४

इसी प्रकार आश्चर्य का भाव व्यक्त करने के लिए किठनी सुन्दरता से
निम्न मुहावरे का प्रयोग किया गया है—

‘इस क्रिमे की विद्यास आकृति तथा सुन्दर और चित्ताकर्षक सौन्दर्य देख
कर सर्वक मुगल बँभव पर जंगमी बातों बचाते थे ।’^५

अपनी बात को लक्षणा एवं व्यंग्यता द्वारा स्पष्ट करने के लिए उन्होंने
किठने ही मुहावरों की रचना की है। कुछ और देखिए—

‘घाहनादे और घाहनादिना नाक तक चित्तास और ऐश्वर्यके में बूहे
रहने पर भी चुकी न थे ।’^६

‘बावघाह ने बहुत कहा कि तुम मास्वीन के साँप को पन्के बांधतेके
हो ।’^७

‘हुमूर, वे सुबह के चिरानके हैं ।’^८

जिनसे यह बूझ कर कुपाके हो जाता है ।^९

यह हुए आचार्य अनुरसेन जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राप्त मुहावरे

१ सोमनाथ-मु २१६।

२ सोमनाथ-मु २४८।

३ सोमनाथ-मु. २२४।

४ सोमनाथ-मु ४७२।

५ आत्मपीर-मु ३।

६ आत्मपीर-मु. ३२।

७ आत्मपीर-मु १२३।

८ आत्मपीर-मु १२५।

९ आत्मपीर-मु १७२।

अब हम उनके सामाजिक उपन्यासों में प्राप्त मुहावरों पर एक दृष्टि डालते हैं।

भाषाय बतुरसेन जी के सामाजिक उपन्यासों में बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों का सौंदर्य और भी निस्तरा हुआ है। इनमें उनकी अच्छी हुई सरल सरल प्रोज़क एवं स्वाभाविक भाषा एक ऐतनक जीवन में प्रयुक्त होने वाले मुहावरे एवं श्लोकियों का मखि क्रांजन संयोग प्राप्त होता है। उनके सामाजिक उपन्यासों में बिखरे हुए इस प्रकार के कुछ मुहावरे ही हमारी बात का स्पष्ट करन के लिए पर्याप्त होंगे बेलिए—अम्पा (गोली) अपनी अछहाय रमा का बर्षन कर रही है—

‘परंतु मेरी दशा पर कटे पत्नी के समान थी।’^१

‘बह केसर—जो मुस अभी की सक्की थी मेरी जीवन-नीया कीछे लिषिया थी इस बार बह भी मुस से बिलुड़ी।’^२

इन दोनों ही मुहावरों द्वारा उपन्यासकार ने अम्पा की निरीहता एवं असमर्थता को स्पष्ट कर दिया है। यनि ‘पर कटे पत्नी’ से उसकी बिबराठा एवं निरीहता प्रकट होती है तो दूसरी ओर ‘अभी की सक्की’ से केसर के प्रति उसका बिश्वास एवं आस्था। उसके मुहावरे भाषों की उत्कर्ष व्यंजना में भी सहायक रहे हैं बेलिए—

‘पर, मैं भीठी मक्की कैसेछे निमलूंगा।’^३

अरे बह पक्का हिदू समाई, मुससमानों को रेल में होकरछे देखता है।’^४

ये सब फलतः बातें हैं अरुना इमें यह अहर का बूटछे पीना ही होया।’^५

अब बातों प पुपनीं बातों की अीक पीटनेछे से नहीं बलेया।’^६

उन्होंने अपनी बात को अधिक मर्मस्पर्शी एवं सजीव बनाने के लिए जन जीवन में प्रचलित मुहावरों का सुसकर प्रयोग किया है। बेलिए—

१ गोली-पु १६।

२ गोली-पु २१७।

३ धर्मपुत्र-पु ५९।

४ धर्मपुत्र-पु ६१।

५ धर्मपुत्र-पु ६१।

६ धर्मपुत्र पु ६८।

‘मेरा हाथ तो ला गई जब मेरी छाती मूंग बसेवीकै ।’

‘इस तरह मरे बैर-से बीवे क्या निकालती है ।’

‘मर्तों ने हमारे लिए कैम बंधन और रोक लगा रखे हैं और आप, आपके नाप न पीछे परहाड़ ।’

‘तुम्हारे घर में सब दूब बोये हैं ।’

‘अब मौस फूटी पीर गई ।’

इसके अतिरिक्त कितने ही मुहाबरे और लोकोक्तियों का प्रयोग आचार्य जतुरसेन जी की रचनाओं में प्राप्त होता है । इन कुछ उदाहरणों से ही उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, प्रबोध नैपुण्य एवं भाषा पर अधिकार स्पष्ट हो जाता है । आचार्य जतुरसेन जी के समस्त उपन्यासों में समनव हो ही मुहाबरे एवं लोकोक्तियाँ प्राप्त होती हैं ।

शक्तियाँ एवं सुक्तियाँ —

आचार्य जतुरसेन जी प्रेमचंद की भाँति अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर सुक्तियाँ भी देते चलते हैं । उनकी यह सुक्तियाँ मर्मभेदिनी एवं अनुभूतिमूलक होती हैं । इनमें जीवन के सच्चे अनुभवों का सार रहता है और इसीलिए यह हृदयस्पर्शी होती हैं । देखिए—

‘बिना इन्म के धर्म और सिद्धि का कारबार चलता भी नहीं ।’

‘अधिक के सम्मुख विवेक नहीं चलता । जहाँ अधिक है वहाँ विवेक सावधान रहता है ।’

‘जहाँ स्त्री सरीर पुरुष सरीर की दासता करते हैं वहाँ इच्छा होते ही नीत दासियाँ बामना और कामना की निर्बीज पुत्रि करती हैं वहाँ प्यार की प्रतिपक्ष नहीं है वहाँ केवल बामना ही बामना है वहाँ प्यार की पीड़ा के मिठास की अनुभूति ईंसे हो सकती है ।’

१ बहुते भाँसु (अमर अनिस्तावा) पृ ११ ।

२ बहुते भाँसु (अमर अनिस्तावा) पृ १८ ।

३ बहुते भाँसु (अमर अनिस्तावा) पृ २७ ।

४ बहुते भाँसु (अमर अनिस्तावा) पृ ४४ ।

५ बहुते भाँसु (अमर अनिस्तावा) पृ ४४ ।

६. लोचनाय, पृ १९ ।

७. लोचनाय, पृ १४८ ।

८. लोचनाय, पृ ४४४ ।

भुङ्कने के समय मुकना और अकड़ने के समय अकड़ना राजनीति है।^१

यह उच्छ्वास पात्र के मनोमात्रों एवं घटमात्रों पर ही हुई उपन्यासकार की टिप्पणियाँ ज्ञात होती हैं। उन्होंने जीवन के तथ्यों का उद्घाटन भी इन सूक्तियों द्वारा किया है। देखिए—

मिन्होंने कष्ट कभी बेसा नहीं जो कभी बखिठा से मिले नहीं
बिनके सुदय में बसा के स्वान पर साकसा प्रेम के स्वान पर बासना और
सहानुभूति के स्वान पर स्वार्थ भरा हुमा है वे मरीचों पर क्यों बसा
करें ?^२

'मनुष्य अपनी कुटेब और बंध-विश्वास द्वारा हानि उठाता है पर सब
बोध विधाना और भाष्य को देता है। यह कैसे बंधेर की बात है।'^३

'मदवान् सुख सब ही को देते हैं पर सुखी सब किसी को नहीं कर
सकते।'^४

आचार्य चतुरसेन जी की उच्छ्वासों में मनोवैज्ञानिक अपाठरण्यास के उदाहरण बड़ी सरलता के साथ देखे जा सकते हैं। उन्हें क्या कहते समय पात्र के अंतर का उद्घाटन करने का जब भी अवसर प्राप्त हुआ है वे चुके नहीं हैं। उन्होंने पात्र के बाह्य एवं आंतरिक क्रिया को किसी न किसी साधारण मनोवैज्ञानिक सत्य के मेक न साकर बिलकाले की चेष्टा की है। आचार्य चतुरसेन जी के समस्त उपन्यासों में इस प्रकार की उच्छ्वासों की संख्या लगभग १३८ के है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य चतुरसेन जी का भाषा ज्ञान व्यापक एवं सम्यग् मंडार अपरिमेय था। कहीं-कहीं असावधानी के कारण उनके उपन्यासों में भाषा की कुछ भूलें अवश्य रह गई हैं। यहाँ उन पर भी एक दृष्टि डाल लेना अनुपयुक्त न होगा।

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में प्राप्त भाषा विषयक न्यूनताएँ —

आचार्य चतुरसेन जी भाषा के विषय में लापरवाह रहे हैं इसी कारण असावधानी के कारण उनके उपन्यासों की भाषा यत्र-तत्र दोषपूर्ण हो गई है।

१ सोमनाथ पृ ४९०।

२ बहते माँसू (अमर अमिताया), पृ २१।

३ बहते माँसू (अमर अमिताया) पृ २०।

४ बहते माँसू (अमर अमिताया), पृ ७१।

उसमें सिंग दोष बचन दोष जीवित्य दोष, पुनरुक्त दोष दुष्कर्मत्व दोष एवं वाक्य दोष कई स्थानों पर आ गए हैं। यहाँ हम संक्षेप में उनके उपन्यासों में प्राप्त उपर्युक्त दोषों पर विचार करेंगे—

सिंग दोष—

आचार्य अतुरसेन जी के वाक्यों में सिंग-विपर्यय बहुधा प्राप्त होता है। कुछ उदाहरण देखिए—

‘मैं अपनी एक पुस्तकाक्य बना रही हूँ।’ (पुस्तकाक्य के साथ ‘अपनी’ शब्द का प्रयोग होना चाहिए)।

‘कोमल पद की हस्की ठोकर से गुनहरी बुबक बच उठे छल।’ (गुनहरे होगा चाहिए)।

‘पर फिर भी बमका परबय ही हुआ।’ (‘उगकी’ परबय ही हुई, होगा चाहिये वा।

‘‘साथ चन्दन पद्मसाथ ऐसी ही नुस्खाके मुझे विख्याता वा रहा वा। (नुस्खा के साथ ‘ऐसा ही’ शब्द प्रयोग होना चाहिए वा)।

‘मेरे बीसेके प्रत्यक्ष-दृष्टा और मुक्त-मोगी और कौन आपकी वृत्त मिसेगा। (‘अम्मा कह रही है अतः यहाँ पर ‘मेरी बीसी’ होना चाहिए)।

बचन दोष—

इसी प्रकार आचार्य अतुरसेन जी के उपन्यासों में बचन दोष भी दो स्थानों पर प्राप्त हैं, देखिए—

‘साथ उपकूल स्नेहभावोंके से भय वा।’ (स्नेह भाव होना चाहिए)।

जीवित्य एवं अप्रयुक्त दोष—

आचार्य अतुरसेन जी के उपन्यासों में इस प्रकार के दोषों का आधिक्य है। उन्होंने कई स्थानों पर शब्द-जीवित्य पर ध्यान नहीं दिया है। किस शब्द का प्रयोग किस अवसर पर किस भाव को व्यक्त करने के लिए करना चाहिए, किस शब्द के साथ कौन सा शब्द प्रचलित है भादि बातों पर ध्यान रखने मात्र से ही उपन्यासकार इन दोषों से मुक्त हो सकता वा। किन्तु आचार्य

१ बभ्रुता के पंख पृ १३७।

२ सोमनाथ, पृ २२।

३ सोमनाथ, पृ २३९।

४ अयं रत्नामः आचार्य अतुरसेन, पृ ८७।

चतुरसेन जी ने कुछ स्वर्णों पर इस ओर ध्यान नहीं दिया है, फलतः भाषा का कसारमरु सौंदर्य नष्ट हो गया है देखिए—

'शोब से बरपराजा राबन पथी की भांति हुंकारः करके लड़ा हो गया ।' (सर्वं पुस्तकारता है हुंकारता नहीं) ।

इस ओर सुगंधों की बेसी बिलायती घीसियाँ मेरे अंग पर बिबेरता खूताः ।^१ (इस बिबेरन नहीं उठेना या छिड़का जाता है) ।

हिसकियाँ बाँधकर रो उठे ।^२ हिसकियाँ के स्थान पर हिसकियाँ होना चाहिए । (और हिसकियाँ भी बाँधी नहीं जाती बरन् स्वयं बंध जाती हैं) ।

निसकीः छाड़ी है यह इतनी महान् है ।^३ छाड़ीः महान् नहीं हावी हैं सुन्दर अबन्ध हो सकती है ।

— 'सब पुच्छिमे तो वे बाटेड' के कालमों में बीरु को ईँइ खे वे ।^४

'बाटेड' के स्थान पर 'सास्ट' (lost) होना चाहिए । गौरी के लिए 'बाटेड' कालम देखना तो ठीक है किन्तु खोये हुए भाई के लिए बाटेड कालम को देखना कुछ उचित नहीं दीख पड़ता ।

— 'सबास छोग उन पर बँबर डाल्लेः वे ।'^५

(बँबर डुकाया जाता है डाला नहीं) ।

'घोनों बीर गदा सेकर परस्पर मुपः गए ।'^६

(मुप गए के स्थान पर भिड़ गए अधिक उपयुक्त होता) ।

'राबन ने ओबीन्मत होकर इस प्रकार शान्त को मचा पीसा अँटा गूँधा जाता है ।'^७ (मचा शब्द के स्थान पर दखा शब्द अधिक उपयुक्त होता) ।

१ सर्वं रत्नामः, पृ ७१ ।

२ गोली पृ १० ।

३ गोली, पृ ६४ ।

४ अपराभिता पृ ३९ ।

५ आत्मदाह पृ २३७ ।

६ गोली पृ १२५ ।

७ सर्वं रत्नामः, पृ ७२ ।

८ सर्वं रत्नामः, पृ ८४ ।

इसी प्रकार उन्होंने अपने 'आत्मगीर्' नामक उपन्यास में एक श्याम पर 'कट्टर मित्र' शब्द का प्रयोग किया है।^१ 'कट्टर' शब्द का प्रयोग शत्रु के साथ प्रचलित है, मित्र के साथ नहीं।

पुनस्तुत दोष —

आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में यत्र-तत्र पुनस्तुत दोष के भी दर्शन हो जाते हैं देखिए—

जब वह छोटकर आई, पहर दिन चढ़ गया था। सूरज की झुप छनकर कोठरी में जा रही थी।^२ झुप सूरज की ही होती है। चन्द्रमा की नहीं। अतः सूरज शब्द का प्रयोग यहाँ व्यर्थ हुआ है।

'इसी समय बानबेड़ की मुछाँ दूटी। उसने अपनी मागती हुई दानबेड़ की सेवा को निवारण किया।'^३ यहाँ 'अपनी' एवं दानबेड़ का एक साथ प्रयोग असंगत है। दोनों एक ही वर्ग के शब्द हैं। अतः इसमें पुनस्तुत दोष है।

इसी प्रकार उनके उपन्यासों में वाक्यों की भी पुनरुक्ति प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए हम उनके 'आत्मगीर्' उपन्यास का एक उदाहरण ले सकते हैं। इसमें जो बात तिन वाक्यों में पृष्ठ १० पर कही गई है, वही ही पृष्ठ १९ पर भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार जो बात उन्होंने पृष्ठ २९ पर कही है पृष्ठ ८२ पर भी उसकी पुनरावृत्ति हुई है।

दुष्कर्मत्व-दोषः—

जहाँ जोक या धारण-विकल्प कम हो वहाँ यह दोष माना जाता है। एक जो उदाहरणों के बात स्पष्ट हो जायेगी।

'कभी-कभी तो एक रात की बाटी के लिए उन्हें अपना सर्वस्व यह। तक कि अपना एकाग्र महना भी वे बाकना पड़ता था।'^४ क्या महने का मुख्य सर्वस्व से भी अधिक था? जब सर्वस्व कहा था चुका है तब उसके आगे कुछ कहना व्यर्थ है।

बिबरान प्रसन्न होकर जोष रोकिए।^५ वास्तव में प्रथम जोष करने

१ आत्मगीर्, पृ १८०।

२ मोती, पृ ५२।

३ बर्ष रसाम, पृ ७१।

४ गोपी पृ ११९।

५ बर्ष रसाम, पृ १११।

पर ही प्रसन्न हुआ जा सकता है मत-हाना चाहिए' कोम रोक कर प्रसन्न हुआ ।

वाक्य-दोष —

आचार्य अनुरसेन जी के उपन्यासों में वाक्य दोषों की भी न्यूनता नहीं है । नहीं पर उनके वाक्यों में शिथिलता आ गई है ता नहीं अस्पष्टता । कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होने—

'सुमन्वित रथ आ उपस्थित हुआ। वह मभि-नाचन के सहयोग से विविध विभक्तता द्वारा विश्वकर्मा ने बनाया था ।' इस वाक्य में 'वह' के स्थान पर 'उसे' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था ।

'किन्तु पराजय किया। किसने ?' इसमें 'किया' के स्थान पर 'की' का प्रयोग उचित था ।

'सोरठ का राव प्रसन्नता का हास्य हुआ ।' (हास्य हुआ का प्रयोग अशुद्ध है)

'इसके बजाय में औरंगजेब न थोड़े से बमवार बम अलाए और चुप हो रहा ।'^१

'कैसा मयाजक और दाखल नाचना पड़ा। इस अन्वये बादशाह को ।'^२

'नाच' शब्द के अन्वय में यह वाक्य अस्पष्ट एवं शिथिल है । (वास्तव में होना चाहिए था 'आखल नाच नाचना पड़ा ।)

इस बटना को एक बर्ष व्यतीत हो गये हैं ।^३ (कई बर्ष 'होना चाहिए अबदा होना चाहिए' एक बर्ष व्यतीत हो गया ।

इन समस्त दोषों को देखने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि भाषा संभारने में आचार्य अनुरसेन जी ने किंचित् यात्र भी सावधानी से कार्य किया होता तो उनके लिए इन दोषों का निराकरण असम्भव न था । वास्तव में उपरोक्त दोषों का कारण उनका अज्ञान नहीं बल्कि असावधानी ही है ।

१ बर्ष रत्नामः पृ ६७ ।

२ बर्ष रत्नामः पृ ७२ ।

३ सोमनाथ पृ २४६ ।

४. आत्ममपोट, पृ २१९ ।

५ सोना और जून, प्रथम नाम पुर्वादि पृ ११६ ।

६ आत्मबाहु पृ ३७ ।

अध्याय ६

आचार्य घतुरसेन के विचार एवं जीवन दर्शन

विचार एवं जीवन दर्शन

मनुष्य के ऐहिक एवं लक्ष्मणमय जीवन का सादरतत्कार उसके विचार और कार्य हैं। कार्यों पर पूर्ववर्ती अध्यायों में सघातवान विचार किया जा चुका है। विचार कार्य के भी चिरम्बायी परिणाम अथवा प्रेरणा तत्व हैं। अतएव आचार्य चतुरसेन जी के साहिरय के अध्यायन क प्रसंग में उनके विचार एवं जीवन दर्शन का अध्यायन महत्वपूर्ण है।

एक स्थान पर मूसी प्रेमचन्द ने कहा है मैं उपन्यास को मानव चरित्र का विषयगत समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल तत्व है। इस विषय में आचार्य चतुरसेन जी का दृष्टिकोण प्रेमचन्द से भी अधिक विस्तृत है। उनका तो कथन है मैं अपने उपन्यासों को कथानक पर आधारित नहीं रखता विचारों पर आधारित करता हूँ। विचार भी मैं परिस्थितियों से उत्पन्न मानता हूँ। इसलिये अपने उपन्यास में मैं जब किसी नव विचार की स्थापना करना और उसे पाठकों के समक्ष पेश करना चाहता हूँ तो उसके प्रथम परिस्थितियों का रेखा चित्रण करना आवश्यक समझता हूँ। इसके बिना मुझे पात्रों ही में से कुछ को चुन लेना पड़ता है। इस दृष्टि में यह स्वाभाविक है कि कथानक उपन्यास का मूलाधार न होकर अन्तर्मुख मान ही बनकर रह जाये। आप इस बूसी से निरी अपनी नई परिपाटी कह सकते हैं। परन्तु इसके बिना मुझे बोल नहीं दे सकते। मैं प्रेमचन्द और बैबकीनन्सन खत्री के काम का उपन्यासकार नहीं हूँ कि समस्या कथानक और मनोविकास पर आधारित रह जाये। मैं तो शत प्रतिशत विचारों पर आधारित हूँ।'

स्पष्ट है आचार्य चतुरसेन जी के उपन्यासों में विचारों का अधिक प्राधान्य है।

अपने उपन्यासों के संबंध में आचार्य चतुरसेन जी का उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य नहीं है। यह कहा जा सकता है कि समाज की कुछ परिस्थितियों को देखकर उनके मन में विभिन्न विचार उत्पन्न हुए, और उन विचारों के अनुस्यू उन्होंने अपने कथानक को चुनने और सगठित करने का प्रयत्न किया। परन्तु केवल इस बात से हम उनके उपन्यासों को समझतया विचारों पर आधारित नहीं कह सकते। विचारों पर आधारित उपन्यासों में प्रमुक्त बौद्धिक इंद्र को छेकर चलने वाली रचनायें जाती हैं। और इस प्रकार की कृतियों का अन्त उदाहरण हमारे समक्ष तुलसी का मानस रोक्तपियर का हेमसेट भयवतीचरण वर्ण की 'विश्लेषण' काहि है। इस कोटि की रचनाओं में आचार्य चतुरसेन जी की कुछ ही कृतियाँ जा सकती हैं। जैसे नगरबधु उदयास्त अघास भादि।

किंतु आचार्य चतुरसेन जी के अन्य अनेक उपन्यास जैसे सोमनाथ रक्त की प्यास विचारों पर आधारित नहीं कहे जा सकते।

उपन्यास अथवा कहानी में उपन्यासकार अपने विचारों को दो ही प्रकार से मुक्त व्यक्त करता है। प्रथम स्थान-स्थान पर उपन्यासकार स्वयं उपस्थित होकर अपने विचार, जीवन की व्यवसायों की आलोचना-प्रत्यालोचना प्रस्तुत करता चलता है। इसको स्पष्ट विचारव्यक्ति की पद्धति कहा जा सकता है। किंतु यह पद्धति अधिक प्रौढ़ उपन्यासों में स्थान नहीं प्राप्त कर पाई है कारण इसके कथानक में वस्तुमायिकता कृत्रिमता एवं बोधिकता जा जाती है। साथ ही इसके कथाकार अपने उच्च स्थान को त्याग कर एक उपवेशक एवं प्रचारक के रूप में ही सामने जा पता है, फलतः रचना की कलात्मकता अक्षुण्ण नहीं रह पाती है। आचार्य चतुरसेन जी के प्राचीनक उपन्यासों में यत्र-तत्र यही प्रवृत्ति उभरी हुई है। इसी कारण से उनका कलात्मक सौंदर्य अधिक निरर नहीं पाया है।

दूसरी रीति को हम अप्रत्यक्ष विचारव्यक्ति की पद्धति कह सकते हैं। इसमें कथाकार स्वयं प्रत्यक्ष न आकर नाटककार की भाँति अपने विचारों को पात्रों के क्रियाकलाप तथा घटनाओं के माध्यम द्वारा प्रस्तुत करता है। इसके उसके विचारों का स्पष्टीकरण तो ही जाता है, साथ ही कथा विकास एवं परिणति-विषय भी निरर होता रहता है।

आचार्य चतुरसेन जी ने अपने अन्त्या-सहित्य में दोनों ही रीतियों का प्रयोग किया है। इन दोनों का सानुपातिक समन्वय उनके प्रौढ़ उपन्यासों में अधिक सुन्दरता से हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय में हम आचार्य जी के विचारों एवं जीवन दर्शन को स्पष्ट करने के लिये केवल उनके 'कथा साहित्य' का ही माध्यम न लेकर उनके सम्पूर्ण प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य का माध्यम लेंगे। साथ ही उनके विचारों को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम उनके अपने द्वारा प्राप्त विचारों का (जो हमें आचार्य जगन्नाथ जी से पढ़ने पर प्राप्त हुये) भी उपयोग करेंगे।

इस प्रकार अध्ययन के अन्तर्गत तीन स्रोतों से प्राप्त विचारों का अध्ययन किया जा रहा है—

- १ उनके उपन्यास और कहानियों में प्राप्त विचार।
- २ अन्य प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य में प्राप्त विचार।
- ३ उनसे प्रत्यक्ष भेंट द्वारा प्राप्त विचार।

आचार्य जगन्नाथ जी के सम्पूर्ण विचारों को हम चार विभिन्न वर्गों में रखकर देखने का प्रयत्न करेंगे—

- प्रथम—साहित्यिक विचार।
 द्वितीय—राजनीतिक विचार
 तृतीय—सामाजिक विचार
 चतुर्थ—आध्यात्मिक विचार

उनके सामाजिक एवं आध्यात्मिक विचारों पर मनन करने से उनका अपना स्वयं का जीवन-दर्शन भी स्पष्ट हो जाता है। राजनीतिक विचारों में भी वहाँ उन्होंने विभिन्न वर्गों पर विशेषकर गांधीबाबू पर अपने विचार प्रकट किए हैं, वहाँ भी उनका जीवन-दर्शन प्रत्यक्ष उभर कर आया है।

साहित्यिक-विचार

साहित्य की व्याख्या—

आचार्य जगन्नाथ जी का कथन है 'साहित्य जीवन का इति-वृत्त नहीं है। जीवन और सौन्दर्य की व्याख्या का नाम साहित्य है। बाहरी संसार में जो कुछ बनता बिपड़ता है, उस पर से मानव-हृदय विचार और भावना की रचना करता है, वही साहित्य है।' इसी कारण से आचार्य जी साहित्यकार को 'साहित्य का निर्माता नहीं उद्गाता' मानते हैं। उनका कथन है साहित्यकार केवल बाँसुरी में फूँक भरता है। शब्द-स्वनि उसकी नहीं केवल फूँक भरने का कौशल है। इसीलिए साहित्यकार का ज्ञानम्ब उतका अपना नहीं सबका है।

१ एवं एतान् पूर्वं निवेदन पृ २।

यही जैसे अपने मानस में मगन होकर पाठा है, कवि बीसे नहीं पाठा। कवि का गान तो माठा का रूप है। संतान के लिए। माँ का रूप पीकर जैसे अबोध बालक जीवन और विकास पाठा है। उसी प्रकार कवि की भाव ध्वनि सुनकर जगत जीवन की राह पाठा है उसका स्वर जगत के लिए है। जगत के कार्यों करोड़ों अरबों जनों के लिए। कवि जो कुछ सीखता है, जो कुछ अनुभव करता वह मरता नहीं। वह एक मन से दूसरे मन में एक जगत् से दूसरे जगत् में मनुष्य की बुद्धि और भावना का सहाय्य पाकर बीबित रहता है। यही साहित्य का सच्चा रूप है।^१ उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन भी साहित्य को सामाजिक हित का साधन मानते हैं और इस प्रकार साहित्य का उद्देश्य गोस्वामी तुम्हीबास की नीति ही मानते हैं। उनका कथन है 'साहित्य का आदर्श ऐसा होना चाहिए जिसकी पुनीत गर्भा में स्नात करके कोटि-कोटि मानव-हृदय चिरकाल तक पाप ताप से रहित होकर निर्मल और सबल होते रहें।'^२

इसी कारण से आचार्य जी ने साहित्य के सत्य को अत्यन्त उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। उनका कथन है 'साहित्य के द्वारा मनुष्य का हृदय मनुष्य के हृदय से अमरत्व की याचना करता है। साहित्य का सत्य ज्ञान पर अवलम्बित नहीं है भाव पर अवलम्बित है। एक ज्ञान दूसरे ज्ञान को घेरेस फेंकता है। नये आविष्कार पुराने आविष्कारों को रद्द करते पते जाते हैं। पर हृदय के भाव पुराने नहीं होते। भाव ही साहित्य को अमरत्व देता है। उसी से साहित्य का चिर सत्य प्रकट होता है।'^३

किन्तु आचार्य चतुरसेन जी साहित्य के इस सत्य को असल सत्य से भिन्न मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है 'असल सत्य और साहित्य के सत्य में भेद है। वैसा ही वैसा ही किस देना साहित्य नहीं है। हृदय के भावों की जो बाधाएँ हैं एक अपनी ओर जाती हैं दूसरी दूसरों की ओर जाती हैं। वह दूसरी बाधा बहुत दूर तक जा सकती है। किन्तु के उस छोर तक। इसीलिए, जिस भाव को हमें दूर तक पहुँचाना है जो बीज दूर से दिखायी है उसे बढ़ा करके विकसित पड़ता है। परंतु उसे ऐसी काठिपरी से बढ़ा करना होता है जिससे उसका सत्य रूप बिगड़ न जाय जैसे छोटे फोटो का इन्फार्ज किया जाता

१ ब्रह्मवदन आचार्य चतुरसेन पृ १४६।

२ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास आचार्य चतुरसेन पृ ४२।

३ सर्व रत्नाम' पूर्व निवेदन पृ ३।

है। जो साहित्यकार मन के भाव के इस छोटे-से सत्य को बिना विकृत किए इतना बड़ा इत्सार्ग करके प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है कि सारा संसार उसे देख सके और इतना पक्का रग भरता है कि पताशियाँ-सहस्राश्रियाँ बीठ जाने पर भी वह फीका न पड़े वही सच्चा और महान साहित्यकार है।^१ इस प्रकार उनके दृष्टिकोण से साहित्यकार का उत्तरदायित्व उसने दृष्टिपथ में न केवल सम सामयिक समाज होता है बल्कि युग-युग का समाज होना चाहिए। हम कह सकते हैं कि आचार्य चतुरसेन जी के कुछ उपन्यासों में जैसे 'वर्ष रत्नाम' और 'सोना और जून' के अन्तर्गत यह दृष्टिकोण प्रतिफलित हुआ है।

आचार्य चतुरसेन जी साहित्य में 'सत्य-शिव-सुन्दरम्' की स्थापना के समर्थक थे। इसी कारण से उन्होंने लिखा है 'केवल सत्य ही प्रतिष्ठा से साहित्यकार का काम पूरा नहीं हो जाता। उस सत्य को उसे मुम्बर बनाना पड़ता है। साहित्य का सत्य यदि मुम्बर न होगा तो बिम्ब उसे कैसे उसे प्यार करेगा ? उस पर मोहित कैसे होगा ? इसलिए, सत्य में सौंदर्य की स्थापना के लिये आवश्यकता है समय की। सत्य में जब सौंदर्य की स्थापना होती है तब साहित्य कला का रूप धारण कर जाता है।'^२

इस प्रकार 'सत्य में सौंदर्य का भेक होने से उसका मंगल रूप बनता है। यह मंगल रूप ही हमारे जीवन का ऐश्वर्य है। इसी से हम लक्ष्मी को केवल ऐश्वर्य की ही नहीं मंगल की भी देवी मानते हैं। जीवन जब ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो जाता है, तब वह स्वयं आनन्द-रूप हो जाता है। और साहित्यकार अर्थात् के प्रत्येक कर्म को 'आनन्दरूपममूर्त' के रूप में चिन्तित करता है। इसी को वह कहता है 'सत्य शिव-सुन्दरम्'।^३

आदर्श और यथार्थ

आचार्य चतुरसेन जी को यथार्थवादी कथाकार कहा जाता है। कुछ आलोचकों ने तो उन्हें प्रकृतिवादी कथाकार भी कहा है।^४ स्वयं आचार्य चतुरसेन जी ने यथार्थ और आदर्श पर विचार करते हुए लिखा है 'यथार्थ कथा स्थापना को मैं उपन्यास की सबसे बड़ी कला समझता हूँ। यथार्थ का अर्थ है

१ वर्ष रत्नाम: पूर्व निवेदन पृ ३।

२ वर्ष रत्नाम: पृ ३।

३ वर्ष रत्नाम: पृ ३ अ ४।

४ हिन्दी उपन्यास में यथार्थवाद त्रिभुवनसिंह।

सत्य परंतु सत्य को प्रभाववासी बनाने के लिये उसमें कृत्रिम अभिव्यंजनाओं का मिश्रण करना पड़ता है। इससे सत्य के व्यक्त परिमाण में अन्तर पड़ जाता है। परंतु व्यक्त परिमाण का अन्तर सत्य की भावमूर्ति को विकृत नहीं करता। केवल परिमाण से बृहत्त्व जाता है। साहित्य का सच्चा यथार्थ तो वही है, जिससे बृहत्त्व में सत्य का रूप अधिकृत रहे।^१ आचार्य चतुरसेन जी ने इस बात को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण भी दिए हैं। उनका कथन है 'जैसे छोटे-कोठो का इन्साजमिन्ट करने पर चित्र की आकृति बड़ी हो जाने पर भी उसका अधिकृत रूप रहना आवश्यक है। गायक तार स्वर में भी गायगा मध्य स्वर में भी। पर स्वर में अचल रहेया स्वर का अधस्तव ही उसकी कला का सत्य है। गायक एक ही राग को जो उसके मानस पटल पर उभर रहा है, मिन-मिन वाद्ययंत्रों पर एक दूसरे के अन्तर से स्मित करेगा। पर राग वही होया। उसका बाह्य रूप भिन्न होने पर भी अन्तर एक है वह एक सत्य की प्रतिष्ठा भूमि पर स्थिर है वही यथार्थ है।'^२

इस प्रकार आचार्य चतुरसेन जी का मत है कि सत्य का मूल स्वरूप एक ही है। उसी पर आक्षिप्त रूप संक्षिप्त या विस्तृत रूप विभिन्न कथाकार विभित करते हैं। उनके विवरण-विस्तार में यथार्थता का कम या अधिक रूप स्पष्ट होता है। किंतु आचार्य चतुरसेन जी श्री सुमित्रानंदन पंत की भाँति निम्न दृष्टिकोण में विश्वास रखते थे। मेरी दृष्टि में सब बातों की कसीटी ओकरमंगल में निहित है। यदि हमारे यथार्थवादी निरीक्षण-पर्यवेक्षण मानव संयत्न के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं तो वे अभिर्भवनीय हैं जस्यथा उन्हें पारस्परिक विद्बोध पूर्वाग्रह तथा कटुता का ही विज्ञापन समझना चाहिए।^३

इसी कारण से आचार्य चतुरसेन जी ने मन्त्र यथार्थ को भी प्रभय नहीं दिया। उनका कथन है 'परंतु मन्त्र होता सत्य नहीं है। मर्यादा और संयम ही सत्य को मन्त्रता से पृथक् करते हैं। अभिप्राय यह कि संयम से साधना सम्पन्न होनी है और साधना से निवृत्ति एक प्रबंध प्रवृत्ति बन जाती है। यह साहित्यकार का काम है—कि वह प्रवृत्ति को काबू में रखे। प्रवृत्ति साधक के ध्येयता

१ मेरी उपग्याप्त विषयक आचार्य समालोचक पृ ४३।

२ मेरी उपग्याप्त विषयक आचार्य समालोचक पृ ४३।

३ समालोचक यथार्थवाद विधेयांक फरवरी, १९५९ मंगलवारन श्री सुमित्रानंदन पंत पृ० १।

गार का एक बीपक है जिसमें आसोक का सौंदर्य है। यदि प्रकृति को यत्न-पूषण संयम से सीमित न रखा जायगा तो वह आसोक के सौंदर्य को जसाकर खाक कर देगा।^१ निदबय है कि यह संयम न केवल जीवन की मर्यादा की रक्षा करते हुये विकास को प्रेरित करता है वरन् कला को भी अधिकार मांभीर एवं सुष्ठुरूप प्रकट करता है।

आचार्य जतुरसेन जी ने यथार्थ का विषय करते समय समय की निर्वात आवश्यकता को स्वीकार करते हुए एक स्थान पर लिखा है 'चिरनम सत्य के साथ-साहित्य के इस बाह्य और अन्तर्गत भेद को जो वस्तु एकरूप प्रदान करती है वह है संयम। संयम से साधना सम्पन्न होती है। साधना से निवृत्ति एक प्रबल प्रकृति बन जाती है। जिससे कलाकार अपनी कला को अपने में ही नहीं समेट सकता। अपनी कला का बिंदव में आपूर्ण-मात्र करने के लिए उसे नाव ध्वनि का आश्रय लेना पड़ता है। नावध्वनि म यदि कला द्विग जाय तो कला भ्रष्ट हो जायगी। संयम ही से साधना कला का रूप धारण कर लेती है। अर्थात् उसमें सौंदर्य का उदय होता है। वही सौंदर्य सत्य का अविच्छिन्न रूप है। वृक्षों के लिये यह यथार्थ का सारवत सत्य रूप है।'^२

यद्यपि आचार्य जतुरसेन ने यहाँ पर साहित्य के सत्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये यथार्थ की ही चर्चा की है। फिर भी उनका यह मर्यादित यथार्थ और सत्य का एक सारवत तथा मूलभूत रूप उनके आदर्श का ही संकेत करता है। हाँ यह आदर्श यथार्थ में परिवर्तित है इसमें संदेह नहीं।

आचार्य जतुरसेन जी ने इसीलिए सत्य के अनेक रूप मानते हुये लिखा है 'सत्य के अनेक रूप हैं सुन्दर भी और असुन्दर भी। परन्तु सत्य का सुंदर रूप संयम और साधना के परिणाम का अतिरेक है तथा साधना का सम्पूर्ण बीज है। बीज में उसे इसलिये कहता हूँ कि वह साधक की आवश्यकताओं के अतिरिक्त है उसकी कृति से परे है। इसलिये आनंद की पृष्ठभूमि उसी पर आधारित है। आनंद साधना का धर्म प्रिय है। अथवा सौंदर्य से साधक का प्रयोजन का सम्बन्ध नहीं है आनंद का संबंध है। यदि प्रकृति से संयम का सम्पर्क घट जाय तो साधक का अनेक भ्रष्ट हो जायगा और उसका बीज जो संयम और साधना का अतिरेक है—साधना का रूप धारण कर लेगा। और हीमता से परिपूर्णता की ओर बढ़ता हुआ साधक आदेश में आकर स्वेच्छ

१ समालोचक मेरी उपस्थास कला विषयक आचार्यो पृ० ४३।

२ समालोचक मेरी उपस्थास विषयक आचार्यो पृ० ४३।

बारी और अतंयत हो उठेगा। तब वह जीवन की नहीं कामबिकारों की सृष्टि करेगा।^१

सत्य चित्रण संबंधी उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि साहित्य में जीवन के सत्य का चित्रण करते समय आचार्य अतुरसेन जी संयम को महत्वपूर्ण समझते हैं। प्रश्न यह है कि संयम का आघार क्या है? उसकी कड़ीटी क्या है? जैसा कि पहले उनके विचारों से प्रकट है वह है सामाजिक संघर्ष और युग-युग व्यापी कसाकार की दृष्टि। इन दोनों पुक्तियों से मर्यादित होकर साहित्य में जीवन के वयार्थ चित्रण की बाध जाने बढ़ने की गति तथा समाज एवं पाठक को सरस करने की विशेषता प्राप्त करती हुई अपने आत्मबकपी वापर से निकल सकेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आत्मबकपी सागर भी मर्यादा का प्रतीक है। अतः और अति विस्तृत होते हुये भी वह अपनी सीमाओं में बंधा है। साहित्य का मर्यादा भी ऐसा ही होता है।

साहित्य में कल्पना—

आचार्य अतुरसेन जी साहित्य में कल्पना का प्रयोग अनिवार्य समझते हैं। उनका कथन है 'साहित्य में सत्य के बराबर ही कल्पना का मुख्य है। मर्यादा और कल्पना के मेल से साहित्य में सत्य की स्थापना होती है। मर्यादा जिस प्रकार एक सम्पूर्ण सत्य है—कल्पना भी वैसा ही सम्पूर्ण सत्य है। इसी कारण मर्यादा से कल्पना का पैरु होना पर भी सत्य दूषित नहीं होता। बाह्य अपत क एक बड़े सत्य मर्यादा का अपना महत्व है और कल्पना का अपना।^२ मर्यादा के साथ कल्पना का संयोग सधमें रमणीयता रंजकता एक पूर्णता संयोजित करता है।

आचार्य अतुरसेन जी कथा साहित्य को केवल लौकिकजन की वस्तु ही नहीं मानते हैं। उनका कथन है 'जो लोग साहित्य को कोरी भावुकता का उद्दीपक मानते हैं वे उनसे सहमत नहीं हैं।^३ वे साहित्य के विचारों को संमलमल रूप देने के पक्षपाती हैं। इसी कारण से उन्होंने साहित्य द्वारा विभिन्न बार्थों के प्रचार की निरा की है। वे मर्यादाबाह के प्राकृत स्वरूप को उचित मानते हैं किन्तु उसमें मार्त या प्रत्यक्ष के विद्यार्थों के बलात् आगेपित कर देने को अनुचित समझते

१ अनालोचक मेरी उपन्यास कला विषयक धारणाएँ पृ० ४४।

२ अनालोचक मेरी उपन्यास कला विषयक धारणाएँ पृ० ४४।

३ अनालोचक मेरी उपन्यास कला विषयक धारणाएँ पृ० ४५।

है। यह प्राकृत स्वरूप सहज साक्षात् एव लोकानुमोदित रूप में होना चाहिये।

अदलीलता का प्रश्न

साहित्य में अदलीलता का प्रश्न प्रायः उठाया जाता है। एक प्रकार का विषय एक युग में समीक है तो दूसरे युग में अदलीलता की कोटि म आ जाता है। अतः यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। आचार्य अनुरसन जी ने इस पर स्पष्ट प्रकाश डाला है। इस संबंध में आचार्य अनुरसन जी का मत धीरों से कुछ भिन्न है। इस विषय पर उनका हुए वातावरण को मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। 'बगुला के पंख' के कुछ स्पष्ट प्रस्तुत प्रबंध लकड़ का कुछ अदलील लग प। अतः उसने निम्नकाच कह डाला था। आपक उपन्यासों के कुछ स्पष्ट अदलीलता के समीप पहुँच जाते हैं। क्या यह ठीक है ?

आचार्य अनुरसन जी कुछ समय तक गम्भीर रहे। तत्पश्चात् उन्होंने इस प्रश्न के उत्तर में मुझसे स्वयं एक प्रश्न कर डाला था 'तुम्हें मेरे दिन उपन्यासों में अदलीलता लगी ? इतना कह कर आचार्य अनुरसन जी मेरी भार द्रिबिध गम्भीरता के साथ देखने लगे। कुछ इक कर उन्होंने पुनः कहा 'बहुत स तरण विद्यार्थी मुझसे मिलने और साहित्य चर्चा करने आते हैं। उनसे मैं सर्व प्रथम एक प्रश्न पूछता हूँ—कि मेरी लेखन शैली के संबंध में तुम क्या जानते हो ? तो वे बरा धँपते से कहते हैं आपक साहित्य में अदलीलता का पुट रहता है। विद्यार्थी का छायात्म्य नहीं मिलता। इस पर मैं पूछता हूँ—मेरा कौन सा उपन्यास पढ़ा तुमने। तो वे कहते हैं—उपन्यास तो नहीं पढ़ा—पर हमारे अध्यापक ने यह पढ़ाया। किंतु तुम तो रिसर्च करने जा रहे हो दूसरे की बातों पर बलोग तो कैसे कार्य चलेगा ?

किंतु मैंने तो स्वयं अध्ययन करने के पश्चात् यह प्रश्न किया हूँ मैंने तुरत उत्तर दिया।

मुझे भी ऐसी आशा थी किंतु यह तो बतलाओ तुम्हें अदलील कौन से बंध लगे ? गम्भीरता से आचार्य अनुरसन जी ने पूछा।

इसी 'बगुला के पंख' के कुछ अंध प्रति उपार्थवार के निकट पहुँच गये हैं। इसके अतिरिक्त 'बयं रसाम' के बहु अंध जहाँ आपने उम्मुक्त-बिहार का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त..... मेरी बात पूर्ण भी न हो पाई थी कि आचार्य अनुरसन जी ने हँसते हुये बीच ही में मुझे रोकते हुये कहा 'समझा। इन अंधों

को तुम जल्दीक समझते हो। तुम आज भी आदर्श के सुन्दर परिधान में आवेष्टित तप्य एवं चित्र चाहते हो। किन्तु अब तुम काष्ठी जागे निकल चुका है।

‘किन्तु यदार्थ के नाम पर तन्मता का चित्रण करना क्या आप उचित समझते हैं ? मैंने निःसंकोच प्रश्न किया।

‘कमी नहीं’ आचार्य जगद्गुरुजी ने उत्तर देते हुए कहा था यदार्थ का स्थापना को मैं उपन्यास को सबसे बड़ी बच्चा समझता हूँ। यदार्थ का अर्थ है सत्य। परन्तु तन्म होना सत्य नहीं है। मर्यादा और संयम ही सत्य को तन्मता में पृथक करती हैं। बहिर्भाव यह कि संयम से साधना सम्पन्न होती है। और साधना से दिव्यता एक प्रखंड प्रकृति बन जाती है। वह साहित्यकार का काम है कि वह प्रकृति को बाह्य में रखे। ‘आचार्य जी ने पुनः कुछ रुक कर कहा था’ अब रहा लक्ष्मीकटा का प्रश्न ? एक बात स्पष्ट है, मैंने अपने जीवन में संयम को आराधित किया है। संयम मेरे सर्वप्रथम जीवन का प्रयास है। संयम को मैं कला का प्राण मानता हूँ। संयम में से ही कला का प्रकृत सौंदर्य प्रकट होता है। फिर कला में वासना को कैसे प्रथम दे सकता हूँ। परन्तु शू गार को जीवन में आत्मसात करने के मैं पक्ष में हूँ। शू गार को मैं जीवन का सबसे बड़ा बरदान मानता हूँ। यह भी मैं समझता हूँ कि शू गार का सम्पूर्ण आत्म्य संयम में ही है।

इसके पश्चात् उन्हीं लक्ष्मीकटा और शू गार पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था ‘कामधाम की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण शू गार सम्मोह से प्रथम ही प्रथम है। संयोग के बाह्य जो अबसाह आता है—वहाँ शू गार का नामोनिधान ही नहीं रहता। और दूसरी बात यह कि जब शू गार को वासना आर्द्र करती है तभी सम्मोह क्षय आता है। इसी से मनीषीगण वासना रहित शू गार ही का आत्म्य ग्रहण करते हैं। साहित्य में जहाँ शू गार आप देखेंगे—वह मझे ही उद्यम हो—परन्तु वासना से अक्षुब्ध होता है। मेरे ‘बबं रक्षाम’ के प्रथम और दूसरे परिच्छेदों में यही बात प्राप्त होती है। जो कोई भी शू गार को वासना समझते हैं वे शू गार रस के बनाड़ीजन हैं।

आचार्य जगद्गुरुजी ने कुछ रुककर पुनः कहा ‘लक्ष्मीकटा शू गार रस के अन्तर्गत नहीं है। वह भीतर रस के अन्तर्गत आती है। मुझे याद नहीं कि मैंने कहीं एक अक्षर भी लक्ष्मीकटा किया हो। मैं तो अपने को अत्यन्त संयम सेवक समझता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे जीवन में त्रितयी शू गार की बहुलता है। भीतर और अदृश्यता का उतना ही अभाव है। शू गार और अदृश्यता के

नेर को न समझकर ही बहुत लोग पारब्राह्मण और प्राचीन भारतनाम साहित्य मनीषियों पर अदानीक भाषण का दोषारोपण करत हैं ये बात मही जानत कि कहीं जीवन का मध्य कला की बुनियाद टुकार कर रहा है। ऐस कामा क काम कल्प, मन कल्प और हृदय दुबल है। दुष्टिदान नीरम और जीवन बागएँ सूनी हुई हैं।”

अन्त में आचार्य बनुरामेन जी ने कहा एक बात और—रीर्य और योग एक ही बिन्दु पर संघात करते हैं। पीर्य शूमार सामना और बीरक लोगो ही का घोटक है। अन्त सम्पूर्ण पीर्य पन्थि सम्पन्न पुण्य ही शूमार का बानमा रहित मानक भीय कर सकता है।

इससे स्पष्ट है कि अदानीमता मावों और अगों के सुन्दर रूप के उद्घाटन में मही है कर्तु उम विमन में है त्रिममें हमारी मुरखि पर धापात हो त्रिममें हमारी बासमा आपत हो।

साहित्यकार कीत ?

इस विषय पर भी आचार्य जी का मन अन्य विद्वानों से भिन्न है। उन्होंने लिखा है ‘साहित्यिक को मैं किसी भी दशाकाल समाज राष्ट्र और धर्म का बाधनी नहीं मानता। मैं इस बात क मानने से भी इन्कार करता हूँ कि उनका इन सबके प्रति कोई कर्तव्य है। जो साहित्यिक मने भी बहु कवि हो या उपन्यासकार, देशमन्थि राष्ट्रीयता धर्म धारि की रेषायें बांधता है। मैं उसे निरुद्ध साहित्यिक समझता हूँ। मेरी दृष्टि में सच्चा साहित्यिक बहु है जो मानवीयता के प्रति उत्तरदायी है। जो ऐसी कला का निर्माण करता है जो मानवीयता के बराबर को अंधा उठावे। मैं यह सिद्धांत नहीं मानता कि कला कला के लिए है और हा को विवसित करने के लिए साहित्यिक को जीवन में मन्त्र ह आना चाहिए।’ इसी कारण से उनका कथन है कि ‘मैं कला को प्रचार साधन भी नहीं समझता और इसी से प्रोनेबगिस्ट कमी भी उच्च साहित्यिक नहीं हो सकता। फिर मने ही बहु टास्कराय हो या पापी। हिन्दी के आधुनिक काल क सर्वोत्तम उपन्यासकार प्रेमचन्द और कवि मीपिकीभारत में मही होय रह गया है। अन्य माग्नीय साहित्यकारों

१ साहित्य सर्वेस अक्टूबर-नवम्बर १९४० उपन्यास अंक पृ १७४ ७१।
आचार्य जी का पत्र संपादक के नाम।

की भी यही ब्रह्मा है मैं भी उनमें हूँ। ये सब अपने देव अपनी जाति अपने समाज अपने राष्ट्र के नीत माते रहे हैं।^१

किन्तु ऐसे लोगों को आचार्य अतुरसेन जी पूर्ण साहित्यिक नहीं मानते। उनका कथन है 'साहित्यिक वह है—जो महामानव है वह अपनी रचनाओं में अति मानवों की रक्षायें निर्माण करता है। जिसके द्वारा विश्व का मानव समाज जीवन के रूहियों से परिचित होता है। अति मानव की सृष्टि जब तक साहित्यकार नहीं करता जब तक उसकी रचनाएँ मानव मस्तिष्क पर अपनी मुहर नहीं मचा सकती—और अति मानव का निर्माण वह उस समय तक नहीं कर सकता जिस समय तक वह स्वयं महामानव न हो। महामानव होने पर तो वह देव का काल जाति राज्य-समाज आदि के धुर बन्धनों में बंधा नहीं रह सकता—वह तो मानव कस्याच मानव-स्वभाव मानव हितपणा मानव रूह्य का विश्व जीवेगा विश्व के मनुष्यों को जीने और मरने का डंग बढावेगा। उसके जीवन पथ पर प्रकाश बिखेरेंगे उन्हें उंगली पकड़कर जीवन के इस छोर से उस छोर तक संकुचक पहुँचाएगा। वह भूतक पर मानव को निर्भय करेगा। उसे आनन्द देगा। वह सब मनुष्यों का पितामह सब मनुष्यों का प्रतिनिधि सब मनुष्यों का ज्ञान केन्द्र है। वह वास्तव में महामानव है। वह अमर है अतएव वह महीन है वह विश्व में अंत प्रोत है।^२

इसी प्रकार सच्चे साहित्यकार की परिभाषा करते हुए आचार्य अतुरसेन जी ने एक स्वात पर और लिखा है 'सच्चा साहित्यकार मिथ्या बहकार नहीं करता। उसकी मनोवृत्तियों का अन्तर्बोध मानवसोक-संसार उसके प्राणिक में कैने हुए बन पर्वत नदी बंगल नगर, नागरिक द्रविज बनी, जीवन मृत्यु, हास्य और स्वन को देखता है। उसी की प्रतिध्वनि उसका साहित्य है। यह प्रतिध्वनि जितनी शल्य होगी उतनी ही वास्तव एवं चिरायु होगी। सच्चा साहित्यकार वह है जो विचारों को मूर्त करे, संस्कृति को मूर्त करे, आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे जो साहित्यकार ऐसा करता है वह अपने बाक के बाक के मनुष्यों का नेता है। मनुष्य तत्व का प्रतिनिधि है। वह मनुष्यों के आदर्श का विचार करके 'अतिमानवों का निर्माण करता है और अपनी नाव ध्वनि के संकेत पर कोटि

१ साहित्य संदेश अक्टूबर-नवम्बर १९४० उपन्यास संक (५ १७४-७५)
 आचार्य जी का पत्र सम्पादक के नाम)
 २ साहित्य संदेश भाग ४ संक २-३ अक्टूबर नवम्बर १९४०।

कोटि नर समूहों को उसी सखर बिन्दु पर केंद्रित करता है। वही सच्चा साहित्यकार है।^१

उपर्युक्त दृष्टिकोण निश्चयन आदर्शवादी है यह निर्विवाद है। इसी प्रसंग में साहित्यकार का कर्तव्य विषय पर उनका विचार दृष्टव्य है।

साहित्यकार का कर्तव्य

जैसा हम प्रथम ही कह चुके हैं कि आचार्य चतुरसेन जी ने अपने उपन्यासों को केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं लिखा है बल्कि उनका उद्देश्य समाज के पथ-प्रदर्शन का भी रहा है। ऐसे आचार्य जी तो इस मन के अनुयायी हैं कि साहित्यकार किसी कठम्य विषय से बंधा नहीं होता। वे उसका कर्तव्य किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लिए न मानकर सम्पूर्ण मानव समाज के लिए मानते हैं। इसी कारण से वे कला कला के लिए है कला स्वांत मुलाय है आदि को कभी भी न मान सके। उन्होंने तो 'सरयं शिव सुन्दरम्' को साहित्य का प्राण माना है। इसी कारण से उन्होंने साहित्यकार के कर्तव्य का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है 'कलाविद् का अन्तस्तक वास्तव में कोई फोटोग्राफी का कर्मचारी नहीं है। वह तो स्फुरणशील जीवनमय जाग्रत आत्मिक की विषय प्रमा से जनमयाता हुआ कल्पना का महा प्रांगम है। उसमें भूत भविष्य और वर्तमान का जनपद जीता मरता और संघर्ष करता है। कलाविद् यह सब देखता है वह केवल विद्वत् के संघर्ष को देखता ही नहीं है उस संघर्ष की वार को प्रतिमयी भी बनाता है। यह जनपद का गुह्य पथ प्रदर्शक और नेता है। वह कोटि-कोटि निरीह मनुजों को जीवन के इस छोर से उस छोर तक निरपव से जानेवाला है। इसलिए उसका यह कर्तव्य है कि वह सावधानी से यह सोचे कि कैसे वह मानव जनपद का तमोगुण और रजोगुण—बहुल प्रकृति से उदार करके उसकी आत्मा में सतोगुण का विषय तेज और निर्मल प्रकाश भर दे। यह कार्य वह जितनी सफलता कुशलता और शक्ति से सम्पन्न कर सकता है वह उतना ही अमर कलाकार हो जाता है। वही मानव जनपद का पिता नेता नियन्ता है। वह अमर है।'^२

आचार्य जी के इस कथन में भी उनका आदर्शवादी रूप ही मुखरित हुआ है। उनके विचार का कलाकार निश्चयन आदर्शवाद को लेकर बसने वाला ही व्यक्ति हो सकता है।

१ शीत के पत्र में लिखी की कराह पृ १२९।

२ हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास आचार्य चतुरसेन पृ० ४८४९।

भाषार्थ चतुरसेन जी इसके अतिरिक्त साहित्यकार के कुछ अन्य कर्तव्य भी मानते हैं। उनका कथन है विश्व युद्ध से मनुष्य ने चार बातें सीखी—१ विश्व के सब मनुष्य एक हैं वे परस्पर भाई भाई हैं अभय हैं और विश्व के सम्प्रदायों के अतिपति हैं। २ मानव विश्व की सबसे बड़ी इकाई है उसकी पूजा आत्मनिष्ठा निर्भय विश्व विचारण तथा भोग सामर्थ्य कविवचनमेय वस्तु हैं। ३ जगत सत्य है मृत सम्प्रदाय मानव उत्कर्ष का साधन है। ४ 'कला' और विज्ञान मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क है दोनों को विचार-कौशल से एकीभूत करके उसे मानव-व्युत्थान और मानव विभूति-वर्धन में समाना चाहिए, जिससे मनुष्य 'श्रेयहीन' हो।' इन चारों ही तथ्यों को मूर्तबप देना भाषार्थ जी साहित्यकार का कर्तव्य मानते हैं। निरुपम ही साहित्यकार के सम्बन्ध में यह बहुत ठीकी और उदात्त भाषणा है।

राजनीतिक विचार

भाषार्थ चतुरसेन जी ने अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर विभिन्न राजनीतिक समस्याओं एवं उससे बौद्धिक विभिन्न चार्चों पर भी विचार प्रकट किए हैं यद्यपि उनके यह विचार अधिक राजनीतिक रूप नहीं धारण कर पाये हैं कारण उन्हें एक सीमा तक राजनीति चर्चा के प्रति अरुचि थी। एक स्थान पर उन्होंने स्वयं लिखा है मुझे राजनीति का अतीव ही है। राजनीति का मेरे ऊपर बड़ी असर होता है जो अतीव का होता है। चार मित्र यदि मेरे पास बैठकर राजनीति चर्चा करें तो मुझे झट नींद आ जायगी। यो मुझे नींद कम ही खाती है।^१ किन्तु तो भी उन्होंने किन्तु ही प्रमुख राजनीतिक समस्याओं पर विचार किया है और वह भी नितांत मौलिक ढंग से। उनके अंतिम उपन्यास तो इन्हीं राजनीतिक समस्याओं और उनके समाधानों से पूर्ण हैं।

भाषार्थ चतुरसेन जी के राजनीतिक विचार बड़े ही उत्तेजक हैं। 'शोना और लुप्त' नामक उपन्यास पर प्रकाश करने पर भाषार्थ चतुरसेन जी ने मुझसे कहा था 'इस उपन्यास में तो मैं केवल अंग्रेजों के भारत में आने रहने और जाने का एक आधेणपूर्ण मेरा-जोधा मात्र पेश कर रहा हूँ पर मेरा मुख्य काम तो इसका ही है। मैं आपको देखभक्ति राष्ट्रप्रेम और स्वाधीनता की भावना से उद्दिष्ट करना चाहता हूँ जिसमें आप वाज एही से बोली तक दूरे हुए हैं। मेरे

१ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, भाषार्थ चतुरसेन, पृ० २९३०।

२ आतापन, पृ० ११९।

तीन तारे हैं—१ देशभक्ति का नाश हो २ राष्ट्रवाद का नाश हो ३ स्वाधीनता की भावना का नाश हो ।

इसके अतिरिक्त सन् १८५७ के गदर के विषय में भी उनका दृष्टिकोण घुमरों से भिन्न है । उनका कथन है 'मैंने इस उपस्थान में तीन नकार स्थापित किये हैं । देखें इस बारे में दूसरों की प्रतिक्रिया क्या होती है । वे तीन नकार यह हैं—

और फिर प्रश्नांतर के रूप में इन नकारों की उन्होंने ब्याख्या पूरू की—
क्या अंग्रेजों ने सही माने में भारत को जीता ?

'नहीं ।

'क्या सत्ताधन का विद्रोह देश भक्तों ने किया ?

'नहीं ।

'भारत की वर्तमान आजादी में सन् सत्ताधन की कोई प्रतिक्रिया थी ?

'नहीं ।

तनिक शककर बात बारी रखती 'पहले नकार के बारे में मेरी इसीक यह है कि इंग्लैंड के किसी सम्राट ने भारत के किसी राजे नबाब के विरुद्ध कभी किसी प्रकार की युद्ध घोषणा नहीं की न उसने कभी एक सैनिक और न एक पैसा ही भारत के किसी युद्ध में भेजा । जब यह सब कुछ नहीं हुआ तो अंगरेजों ने भारत जीतने का सबाल ही पैदा नहीं होता ।

इसके बाद दूसरे नकार की ब्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि सन् सत्ताधन के विद्रोह में जो लोग लड़े उनमें एक भी देशभक्त नहीं था । उस समय भारत एक भौगोलिक नाम था । जब भारत उस समय एक राष्ट्र और एक देश ही नहीं था तो राष्ट्रीयता और देशभक्ति का सबाल ही पैदा नहीं होता । इसके विपरीत इंग्लैंड एक देश और एक राष्ट्र बन चुका था । अंग्रेज चाहे कितने ही जोभी स्वार्थी और बूर्त से भगर उनमें देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि थी । यही उनकी सफलता का विशेष कारण था । अगर हम भी उनकी तरह देशभक्त और राष्ट्रवादी होते तो उन्हें सिखों युद्धों और दूसरे भारतवासियों से कदाचित्त सहायता न मिलती । और वे इस विद्रोह के बाद कभी कम न पाते ।

'जब सत्ताधन के विद्रोह की कोई राष्ट्रीय परम्परा नहीं तो जाहिर है कि वर्तमान आजादी में भी उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं ।'

१ आचार्य अनुरासेन लेखक और मानव भी हंसराज 'रुहवर' धर्मपुर बिसम्बर १, १९३७ पृ० १४ ।

देश, राष्ट्र और राष्ट्रीयता

स्पष्ट है आचार्य बनुरसेन जी का देश राष्ट्र राष्ट्रीयता स्वाधीनता आदि पर भी विश्वास नहीं है। उनका कथन है 'देशभक्ति और राष्ट्रवाद एक ही चीज है जो अंग्रेजों की हमें देन है। देश इस का सबसे प्रचुरर जूनी देवता है। प्राचीन युग में असम्य आतियों ने कभी अपने किसी देवता को इतनी परवधि न दी होगी जितनी इस जूनी देवता को आज का सम्य संसार दे रहा है। जब तक देशभक्ति और राष्ट्रवाद जिवा है मनुष्य-मनुष्य से नहीं मिळ सकता।' उन्होंने 'राष्ट्रीयता' को मनुष्य के ज्ञान के गारे से कड़ी की गई इमारत कहा है। आचार्य बनुरसेन जी के विचार से देशभक्ति और राष्ट्रीयता आज के युग की सर्वाधिक भवामक वस्तुएँ हैं। उनका कथन है 'सुख समाप्त हो गया साम्राज्य विध्वंस हो गये परंतु राष्ट्रीयता का कंकाल अभी तक खड़ा है। यह संसार के पूजे गये रोगी असहाय जयभीत मनुष्यों को तीसरे भीषण युद्ध के लिये उकता रहा है। कोरिया में हिरोशिमा के हत्यारे अमेरिकन अपने आठर के जोर से मनुष्यों का कोहू बहा रहे हैं। लोग मृत्यु नहीं चाहते युद्ध नहीं चाहते परंतु ये राष्ट्रपंथी पूंजी बादी उन्हें बाराम से बैठने नहीं देते। आवश्यकता है कि सारे संसार के मनुष्य एक स्वर से विस्फूर्ण राष्ट्रियता का नाच हो पूंजीवाद का नाच हो।

मैं कहता हूँ मेरा कोई राष्ट्र नहीं मेरा कोई देश नहीं है संसार के सब मनुष्य मेरे भाई हैं मेरा कोई मनुष्य सन् नहीं है मैं कभी किसी से नहीं कहूंगा। कड़ाई और सगड़े की बख इस राष्ट्रीयता का नाच हो जूमरों के पसीनों की कमाई पर मौज-मजा करने वाले जूनी हत्यारे पूंजीवाद का नाच हो। मनुष्य को बचव मनुष्य को खमय मनुष्य को खमय। इन सब एक हैं।^१

यह एक साहित्यकार की विक्रमिकाटी आत्मा का स्वर था जो आचार्य बनुरसेन जी के लब्धों में प्रकट है।

स्वाधीनता

आचार्य बनुरसेन जी ने 'स्वाधीनता' को भी मुलामों की आबाज माना है। उनका कथन है 'मुलामी के बंधन स्वाधीनता की पुकार करी से नहीं कटेंगे अपने से साहस तेज और अहिंसा तथा औरों के नाच सह्योव करने से कटेंगे।'^२

१ आतापन आचार्य बनुरसेन पृ १००।

२ मौत के पंजे में जिवनी की कराह, आचार्य बनुरसेन पृ ३१।

३ मौत के पंजे में जिवनी की कराह, आचार्य बनुरसेन पृ ३३।

अतः स्वाधीनता के मूत्र को मस्तिष्क में निवास ढालिये। जहाँ स्वाधीन होना की चाह नहीं वहाँ दासता की भी हम्नी नहीं। सम सहयोग जीवन की सबसे बड़ी सफलता है।^१

स्पष्ट है वे स्वाधीनता की भावना में ही भय प्राप्त हैं। उनका विरवास भावना पर अधिक आधारित है।

इन अनकों त्रान्तिकारी विचारधाराओं के पश्चात् उनकी विचारधारा साम्यवाद एवं गांधीवाद में आ टकराती है। वे प्रारम्भ में साम्यवादी विचारों को दुड़ता में पकड़े हुए हैं तो अन्त में वे गांधीवाद की ओर बरबस मुड़ गए हैं। प्रारम्भ में साम्यवादीयों की भाँति ही घोषणा करते हुए उग्हने कहा है साम्यवादिया ने राष्ट्रीयता की दीवारों में मुरास करके अपने पैर बाहर निकाले हैं अर्थात् वे कहते हैं बुनिया के दक्षिणों मजदूरा एक हो जाओ। इसका व्यापक प्रभाव संसार के सभी राष्ट्रों पर है। सारे संसार में कबल १ प्रतिघात बड़े भावमी अपने देश की सरकारों के साथ है। और मध्ये प्रतिघात साम्यवादी हँडे के नीचे अपनी-अपनी सरकारों के प्रति बिद्रोह की आय मुल्गावे भी रहे हैं। पर मैं तो साहित्यकार के माते राष्ट्रवाद की दीवार का उग्हाने पर आमादा हूँ विमल केवल पैर ही नहीं दक्षिण ही नहीं सारे संसार के स्त्री पुरुष एक आचार्य एक भ्रातृ भावना एक सहयोग में जुट जायें। इसी में आत्र आपन यह कहता हूँ कि मेरा अपना कोई देश नहीं बर्म नहीं समात्र नहीं और इन सबके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य भी नहीं। मैं तो सारे ही संसार के नर नारियों को अपना सगा भाई मानता हूँ।^२ इससे स्पष्ट है आचार्य चतुरसेन जी की विचारधारा साम्यवाद गांधीवाद में होते हुए मानवतावाद की ओर उन्मुख है।

साम्यवाद, गांधीवाद और मानवतावाद

आचार्य चतुरसेन जी ने अपने साहित्य में साम्यवाद और गांधीवाद का समन्वय प्रस्तुत किया है और अन्त में वह मानवतावाद की ओर उन्मुख हो गये हैं। उनकी विचारधारा को समझने के लिये प्रथम हमें मार्क्स और गांधी के सिद्धांतों को भी समझना आवश्यक है। अतः यहाँ हम संक्षिप्त में इन दोनों के सिद्धांतों को देखकर उस कसौटी पर आचार्य चतुरसेन जी के विचारों को कसन का प्रयत्न करेंगे।

१ मौन के पत्र में जिन्दगी की कथाह आचार्य चतुरसेन पृ ३५।

२ आतापन आचार्य चतुरसेन पृ १८०-१८१।

मार्क्स के अनुसार अर्थ ही जीवन का विधायक है। युग का राजनीतिक और सामाजिक षटनाक्रम तात्कालिक, आर्थिक प्रक्रिया से प्रभावित रहता है और सामाजिक और राजनीतिक विकास आर्थिक बलों के संघर्ष के आकार पर होते हैं।^१ इस संघर्ष की भविष्य यति का उल्लेख करते हुए मार्क्स यति की विभिन्न स्थितियों में विभिन्न बलों की स्थितियों में क्या परिवर्तन होगा इसकी ओर स्पष्ट संकेत करता है। लेकिन मार्क्स भाष्यवादी नहीं है। उसका कहना है कि मनुष्य आर्थिक परिस्थितियों की अवस्थानाश्रिता के प्रभावों से बच नहीं सकता लेकिन यह प्रभाव परोक्ष नहीं होता। मनुष्य की इन प्रभावों के प्रति प्रतिक्रिया होती है और वे युग की सामान्य आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होने पर भी काफी हद तक अपने आचरण को बदल सकते हैं। अथवा सारी समाज व्यवस्था उत्पादन के सम्बन्धों से निर्धारित है तो इन सम्बन्धों में परिवर्तन करके समाज के दोषों को दूर किया जा सकता है। अथवा वर्तमान व्यवस्था में पूँजी पर कप्तान ब्याज और मजदूरी के रूप में व्यस्तित्व अधिकार है लेकिन उसका अधिकार का उत्पादन और वितरण की व्यवस्था काम की कमी का हिस्से जिसमें व्यस्तित्व कप्तान ब्याज और मजदूरी सम्भावना न हो। यदि पूँजीवादी व्यवस्था की अनिर्धार्य गति तीव्र होकर अथवा व्यवस्था को कमजोर और खरब बना वे तो प्राप्य साधनों के द्वारा क्रमशः पूँजीपतियों को उत्पादन के साधनों से अलग करके सामाजिक शक्ति को स्वाभाविक रूप और विद्या पर से आया जा सकता है।^२

इस प्रकार मार्क्स ने जीवन में आर्थिक नियन्त्रित्व की स्थिति को स्वीकार करके भी नियन्त्रित्विता को कहीं प्रथम नहीं दिया है। मार्क्स का कहना है कि समाजवादी कार्यक्रम का अर्थ है कि वह धर्मियों को यह बताए कि अपनी आंतरिक महत्ता को वास्तविक रूप किस तरह दिया जाना चाहिये और स्वाभाविक आर्थिक संघर्ष को किस प्रकार सुयोजित राजनीतिक संघर्ष का रूप देकर सत्ता हासिल करना चाहिये।^३ यह राजनीतिक संघर्ष क्रान्तिमूलक भी हो सकता है और विकास मूलक भी और संघर्ष का यह स्वरूप विभिन्न देशों की विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर है। मार्क्स ने कहा है 'राजनीतिक सत्ता हासिल करने के साधन देना और काल के अनुसार बदल सकते हैं।'^४ अथवा

-
- | | | | | | | |
|---|---------------------------|---|---|-------|---|-------|
| 1 | Recent Political thought | P | W | Coker | P | 51 |
| 2 | Recent, Political thought | P | W | Coker | P | 52 53 |
| 3 | Recent Political thought | P | W | Coker | P | 54 |
| 4 | Recent Political thought | P | W | Coker | P | 59 |

राजनैतिक घत्ता की प्राप्ति है साधन कोई भी हो मार्क्स के अनुसार समाजवाद की स्थापना के लिये बग संघर्ष अनिवार्य शर्त है ।

मार्क्स अपने इस दर्शन में भौतिकपदार्थ को सबसे अधिक महत्व देता है ।^१ धर्म आत्मा आत्मन् रस ईश्वर आदि का उसके दर्शन में कोई स्थान नहीं है ।^२ डूमरी और गाँधीवाद यह मानकर खलता है कि मानवी संबंधों की सार्वकता भाषिक राजनैतिक और विभिन्न साधनों से नहीं नैतिकता और धर्म से संभव है और धर्म नहीं सत्य मानव जीवन का आधार है । जीवन के हर क्षेत्र में गाँधीवाद विज्ञान और नैतिकता पर भाषिक रहने का विरोधी है । गाँधी जी का चरका भारतीय जीवन में आये हुए औद्योगीकरण के विकृत पर और गाँधी की अनेकता और आत्मनिर्मरता का प्रतीक है । उनका पंचायत राज औद्योगिक सम्यता के धर्म संघर्ष के विकृत पुरातन कृषि सम्यता की सहकारिता के महत्व का प्रतीक है । उनका हरिजन आंदोलन सामाजिक न्याय और समता का प्रतीक है ।^३

गाँधी जी के सिद्धांतों को निम्नलिखित शर्तों के रूप में देखा जा सकता है—

१ ईश्वर, सत्य अहिंसा में विश्वास ।

२ 'सादा जीवन उच्च विचार' में विश्वास और ज्ञान संघर्षों के बहिष्कार और चरके के प्रचलन के द्वारा आत्मनिर्मर गाँधी की स्थापना ।

३ धर्म संघर्ष के सिद्धांत और भाषिक नियतिवाद में अविश्वास ।

1 The material sensuously perceptible world to which we belong is the only reality our consciousness & thinking however suprasensuous they may seem are the product of a material bodily organ the brain Matter is not a product of mind but mind itself is merely the highest product of matter

Karl Marx

(Quoted by J Stalin in his essay on his & dialectical materialism page 20)

2, Karl Marx-selected works Vol I page 269

3 Hindustan standard 3 10-54

इस प्रसंग में ज्योत्सना बल्लोच मिश्रित 'एशिया के बिरोह' में लेखक को दिये गये गाँधी जी के उत्तर का उद्धरण पर्याप्त होगा। मैं आपको यह समझाना चाहता हूँ कि पश्चिमबासियों से भी पश्चिमवाद व्यापक सतर्नाक है। मेरा विश्वास है कि पश्चिमवाद एक धोखा है जो अपने भक्तों को नाश की ओर लिये जा रहा है। संस्कृति प्रदान करती है शासन नीति है। हमें ऐसा शासन चाहिये जो हमारी संस्कृति तथा जीवन व्यवस्था को सर्वोपरि माने जो हमारे पुष्टतन हस्त कीसक को बढ़ावा दे जो हमारे अन्तःकरण को कल कारखानों की दुर्गन्ध और कुपुं से सूप न पाये। यह मिथ्या है कि जीवन तभी सुखी समझा जाए, जब माना वस्तुओं का संघर्ष हो तरह-तरह के आराम की चीजें हों मैं चाहता हूँ कि सर्वत्र कारखाने मिटा दें रेलें उखाड़ डालें बंदेजी सिखा बन्द कर दें।^१

इन आधारभूत तत्त्वों की सम्प्राप्ति के लिये अहिंसा और उत्पादक की प्राप्ति गाँधीवाद की अपनी विशेषता है। गाँधीवाद लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किन्हीं भी अल्प साधनों का नहीं बल्कि सत्य और अहिंसा का ही प्रयोग मानता है। इन्हीं के द्वारा गाँधीवादी सर्वोच्च सबके कल्याण का विश्वास रखते हैं। श्रीरेण्ड मजूमदार ने समझाया है 'बर्ग विप्लव' के लिये अहिंसा की प्रविष्टा क्या हो? वो ही तरीके हो सकते हैं—एक बर्ग संघर्ष का हिंसारमक तरीका दूसरा बर्ग परिवर्तन की अहिंसारमक अहिंसा उन्मुक्त की प्रक्रिया अहिंसा की प्रक्रिया है इसलिये गाँधी जी बर्ग-परिवर्तन की अहिंसक अहिंसा की आह्वान करते हैं। वे बिना उत्पादन लिये गुबारा करनेवाले बर्ग को सामाजिक उत्पादन में शामिल होकर उत्पादक बर्ग में विभिन होने के लिये कहते हैं।

(मजूमदार ३ १०-११ पृष्ठ ५)

गाँधी जी अहिंसा को हिंसा के रास्ते से नहीं हृदय परिवर्तन के रास्ते से माने की बात कहते हैं। तभी तो वे चाहते हैं कि जमींदार और पूँजीपति अपने को किसानों मजदूरों का ट्रस्टी समझें।^२

मानसवाद और गाँधीवाद के इस संक्षिप्त परिचय के बाद अब हम आचार्य अत्रे के विचारों पर विमर्श करेंगे।

१ सारणी ३-१०-१५, पृ ९।

२ प्रेमचन्द, एक अल्पकाल, राजेश्वर पृष्ठ १०२ १०३।

गांधीवाद की ओर

आचार्य अनुरसेन जी प्रारम्भिक सिद्धान्तों में मार्क्स के अनुयायी हैं। उन्होंने 'बैंगाली की नगरबधू' में उन शोषक राजाओं और शाहूणों को स्पष्ट चुनौती दी है जो गरीबों की असहायतावादी स पूरा नाम उठा रहे थे।^१ गोष्ठी की भूमिका में भी उन्होंने स्पष्ट शब्दों में चुनौती दी है। मैं बिना एक यह चाहता जरूर हूँ कि अविश्वस्य इन भूत राजा महायजमानों की पेंचने जस्ट कर भी बायें और यह रकम इन सत्तारूढ़ों को छूट हवार परिवारवालों (गोष्ठीयों) में बाँट दी जाय। सरकार हमारी बहिष्कृत है। समन्वयवादी है। पपमेस मिठाई की उसकी बूझा है। साक रंग से वह मझकती है। तिरमा जंबा फड़यधी है और तिरमी बाक पकती है। उसके राज्य में भला राजाओं को क्या भय। मैं तो जरूर यह चाहता हूँ कि जेसा में मेहनतकर हूँ वैसे ही वे राजा भोग भी करें। मुझे यदि एक बार प्रधान मंत्री बना दिया जाय तो मैं पहली कसम से इन राजाओं को भाषण बाँध पर एक-एक टोकरी और एक-एक कुदाल देकर भेज दूँ। जिससे उनका अपण भी बूर होगा और मरने के प्रथम कुछ दिन वे ईमानदारी से अपनी कमाई के टुकड़े धार्ये।^२ स्पष्ट है कि आचार्य अनुरसेन जी के इन विचारों में उनका क्रांतिकारी रूप उभरा हुआ है। वे मार्क्स की ही भाँति पूँजीपतियों एवं जमींदारों के बोर विरोधी हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में पग-पग उनका विरोध किया है। उन्होंने अपने 'उदयास्त' नामक उपन्यास में एक पात्र के मुँह से कहाया है 'ये बड़ी जाठ वाले और रईस जमींदार हम पर जो गुलामी का बधन काये हुए हैं जो धुन्म करते रहे हैं इससे समाज में ही पुन भय पया है। अखल में यह किती एक बादमी का कसूर नहीं है इसी से मैं सिर्फ राजा साहब को इसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया। यह तो परंपरा से बसी जाती बुराई है।'^३ और इस बुराई को वे जड़ मूस से मष्ट करने के पल में हैं। इस विषयता को बूर करना मार्क्स भी चाहता है और गांधी भी। अतः मूस में दोनों ही की विचारधारा एक है। इसी कारण आचार्य अनुरसेन जी की रचनाओं में दोनों ही प्रकार की विचारधाराएँ मूस से प्राप्त होती हैं। दोनों ही सिद्धान्तों के अन्वय एक ही है किन्तु उनको प्राप्त करने का साधन भिन्न है।

१ बैंगाली की नगरबधू, आचार्य अनुरसेन पृ १६४-१६५।

२ गोष्ठी, आचार्य अनुरसेन छात्रों को दूरे हुये सिद्धान्त कीलकार कर उठे पृ ४।

३ उदयास्त आचार्य अनुरसेन पृ ४३।

एक हिंसा को सामन बनाकर चलता है तो दूसरा अहिंसा को। यहीं पर आचार्य जतुरसेन जी की विचारधारा स्पष्ट हो जाती है। वे सामनों के संबंध में गांधी जी को आश्चर्य मानते हैं। इसीलिए उन्होंने एक स्तान पर कहा कि 'कार्लमार्क्स ने सामाजिक विकास का उत्कृष्ट मार्ग यूरोप के सम्मुख रखा। उसने बताया कि कैंधे संसार के पीड़ितों को पीड़कों से बचाकर उनका संगठन किया जा सकता है। पर इस कार्य में अयास उसे नहीं आया उसने तो यही कहा कि सारे संसार के पीड़ितों को एकत्र होकर पीड़कों का संहार कर जानना चाहिए। उस ने ऐसा ही किया परंतु यदि सब पीड़ित एकीभूत हो जायें तो पीड़कों को मारने की आवश्यकता ही न रह जायेगी।

कार्लमार्क्स की यह नीति कांटे से काटा निकालने जैसे रही। उसने समाजवाद के कांटे से राष्ट्रीयता के कांटे को निकालना चाहा। उसने कहा सरासरी अति करके पूंजीपतियों को मारो पर टास्टराय ने कहा—'नहीं पूंजीपतियों के लिए सरस प्रहस्य न करो। कुछ में आत्मिक रूप से यह प्रयोग सफल हुआ।

महावीर और बुद्ध ने सरस अहिंसा को 'अहुजन' हिंसाय की भाषना से प्रचारित किया था पर बहु साम्प्रदायिक बलबल में फँस गया। उस अहिंसा का राज नैतिक क्षेत्र में उपयोग करने का श्रेय गांधी जी को है।^१

आचार्य जतुरसेन जी साम्यवाद की अपेक्षाकृत गांधीवाद के अधिक समीन दृष्टि पड़ते हैं उन्होंने अपने नाटक 'पगम्बनि' में ही सरसायह राजनीति धर्म पूंजी हिंसा अहिंसा आदि को पात्र रूप में प्रस्तुत किया है। इन सब के परस्पर वार्तालाप द्वारा वे अन्त में इसी निष्कर्ष में पहुँचे हैं कि समाज केस और बिचन का कस्याम अहिंसा और सरस का अनुसरण करके ही सम्भव है।^२

गांधीवाद से मानवतावाद की ओर—

आचार्य जतुरसेन जी का गांधीवाद आगे चलकर मानवतावाद की ओर उन्मुख हो गया है। गांधी जी का दैवता मनुष्य है गांधी जी ने इसकी पूजा की है। पूजा का स्वरूप वा सेवा सरस अहिंसा। उन्होंने इसीलिए एक स्तान पर लिखा है 'मार्क्स ने यूरोप में प्रथम बार, मनुष्य दैवता के स्थान किये पर सम्पूर्ण दैवता के नहीं बलबल उनक चरनों के

१ पगम्बनि आचार्य जतुरसेन जी द्वारा, पृ २७-२८।

२ पगम्बनि आचार्य जतुरसेन पृ ७२ ९७।

परंतु गांधी ने उस देवता के सम्पूर्ण दर्शन किये और उसे अपना हृद्देव बनाया ।

भारतीय जनो को उसका उस देवता की पूजा करने का प्रेरित किया—पर सम्प्रदाय धर्म और राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के नाम में फँसे हुए मनुष्यों ने गांधी के प्रसाद को बला-भर देवता की पूजा नहीं की । फलतः भारत भँचेजों के बंधुओं से छूटा पर उनके आये हुए देवता के आत्म में अनी तक फँसा है फँसकर कठिनाइयों में गिरता जा रहा है ।^१ आचार्य चतुरसेन जी ने कुतूहली बने हुए कहा है 'जिन्होंने अपने मावी अंतरों का त्याग हो जिन्होंने अपने मावी पीढ़ियों पर तरस हो—उन्होंने अब भी समय है वे इस अप्रतिष्ठित देवता को भूल से उठाकर उसकी पूजा करे और सारी मनुष्य जाति का भावी संकट टाँके ।'^२

सत्य और अहिंसा—

उनका कथन है कि सत्य ने ही मनुष्य को देवता बनाया । सत्य की पूरी राह चलकर 'मनुष्य देवता सत्य के उस छोर पर बैठा है । जहाँ गांधी उसे छोड़ गये हैं । जिसे उसकी पूजा करनी है वह सत्य की पूरी राह चल कर उसके निकट जाए । जो वहाँ जावेगा वह उस देवता का वास संकट बरहीन न बनना । स्वयं देवता बन जावेगा । सब मनुष्य देवता बन जायेंगे । जिसके विचार सुदृढ अकण्ठ नीचम नम रहित ईर्ष्या द्वेष मत्सर रहित सब मनुष्यों के मस्तिष्क ज्ञान से और हृदय प्यार से भरे हुए । सही और सच्चा गणतंत्र यहाँ संघटित हो सकता है । वहाँ वहाँ गांधी का वह अप्रतिष्ठित देवता सत्य की राह के उस छोर पर अकेला बैठा है ।'^३

आचार्य चतुरसेन जी ने अहिंसा को सत्य की राह बिखलानेवाली पथ प्रदर्शिका माना है । स्पष्ट है कि उन्होंने गांधी के प्रमुख सिद्धांतों का पूर्णरूप से स्वीकार किया है । 'अपराधिता' में उन्होंने गांधीवादी सिद्धांतों के द्वारा ही गृह की जाटिक समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत किया है । अंत में आचार्य चतुरसेन जी इसी निष्कर्ष में पहुँचे हैं कि 'अब संसार के समस्त संघर्षों का अंत होना चाहिए । और मनुष्य की अपनी प्रजा अहिंसा को सौंप देनी चाहिए । मार्क्स ने विरोध के भुजाबले में विरोध बढ़ा किया किंतु उसने

१ भीत के बंधे में जिदगी की कराह पृ १२१ २२ ।

२ भीत के बंधे में जिदगी की कराह पृ १२२ ।

३ भीत के बंधे में जिदगी की कराह आचार्य चतुरसेन जी १९५५ ।

यह नहीं सोचा कि कांटा निकालने के प्रयत्न में यदि कांटा निकलने के प्रयत्न ही कांटे की मोक यदि उसी में टूटकर भीतर रह जाय तो किन्तना कष्ट होगा। समाजवाद ने कांटे से राष्ट्रीयता का कांटा निकालने का प्रयत्न किया गया। किंतु परिणाम सुबकर कहाँ हुआ ? भारत में जबरदस्ती लोगों को लड़ने बेचना थाहा पर लोगों ने लड़ने से इन्कार कर दिया और छाही समाप्त हो गई। इसी प्रकार पूँजीवाद से सहयोग त्याग दीजिये पूँजीवाद बह जायेगा। और उसकी मही सीनी राह है। मेरी बात मानिये अपरिग्रह को अपनाइये अहिंसा का हाथ पकड़िए और सीमे साथ ही राह पर गांधी के बेबता की विराहरी में मिल जाइये।^१

आचार्य अतुरसेन जी के इन विचारों से पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि वे साम्यवादी सिद्धान्तों से अधिक गांधीवादी सिद्धान्तों के पसपानी हैं।

समाज में समानता

आचार्य अतुरसेन जी ने समाज में समानता काने की बिधि की गांधीवादी रूप से ही स्वीकार की है। उन्होंने अपने उपन्यास 'उदयान्त में इस विषय पर एक अत्यन्त सुन्दर प्रसंग प्रस्तुत किया है। उसमें स्वामी जी एवं सुरेश का बाताबाप उन्मेषनीय है। सुरेश स्वामी जी से पूछते हैं 'परन्तु देश और राष्ट्र की बात तो बुझा है अस्विकृत स्वाधीनता तो सभी को मिलनी चाहिए इस पर स्वामी जी उत्तर बते हैं 'तुम्हारी तरह सब लोग सोचते हैं सुरेश ! इसी से आज पनि पत्नी से माई माई से पत्नी पति से पुत्र पिता से और मित्र मित्र से स्वाधीन रहने में ही शीघ्रता का काम समझते हैं। और इनसे समाज में समता बिश्वास और शान्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। वह देखो राजा का महक सामने लावा है इसकी ईंटों को एक पर एक रखकर जो दीवार बनाई गई है उसके बिस्फाट ईंटें फरियाद कर रही है। व तुम्हारे म्याय का विरोध कर रही है। उन्हें तुमने एक के ऊपर एक मिलाकर बाँदा क्यों ? उनकी दीवार खुनी क्यों यह ईंटें स्वाधीन होना चाहती हैं। इन ईंटों को स्वतंत्र कर दो महक को बहा दो। ईंटों को बचेंर दो और दुनिया को स्वाधीनता का सच्चा स्वरूप दिखा दो।

'तो आप क्या बह कहना चाहते हैं कि समाज का संगठन एक कुसरे की पराधीनता से होगा ? क्या आप पुचनी सामस्तदाही के पीपक हैं ? आप चाहते हैं कि कुछ लोग ऊपर रहें और बाकी सब उनके बोस में पिस सकें।

'नहीं दे भाई नहीं । मैं यह नहीं चाहता । मैं सबका सम सहयोग चाहता हूँ । मैं नहीं समझता कि सब लोग कभी बराबर हो सकेगे । पीर पीर रहते फिर फिर रहेगा । पीर अपना काम करेंगे और फिर अपना मैं बेवख यह चाहता हूँ कि पीरा का फिर से सम सहयोग रहे । पीरो को फिर का बोझा डोना बसख न हो और फिर पीर में एक कौटा चुमे तो उसे सावधान कर दे इसी का नाम है सम सहयोग ।

'मापका अभिप्राय यह तो नहीं कि सब मनुष्य समान नहीं हैं ।

'मेरा यही अभिप्राय है मनुष्य बुद्धि जीवी है और सामाजिक प्राणी है । बुद्धिजीवी होने के कारण वह निरन्तर बिकसती है । मनुष्य का विकास व्यक्ति में है समष्टि में नहीं । शरीर बलता और परिस्थिति यह मनुष्य का व्यक्तित्व को बहिष्कृत्य देती है । इसी से साधारण मनुष्य से बुद्धि इसा कर दयानन्द वाणी निकलता है जो युग युग तक करोड़ों मनुष्यों के शासक होते हैं । इसी से सब मनुष्य समाज नहीं हो सकते । परंतु इस असमानता में भी एक सृष्टि है व्यवस्था है तारतम्य है उसी से समाज सुन्दर, सम्म और चिष्ट बनता है ।

'परंतु इस असमानता के सामञ्जस्य और तारतम्य के क्या आधार है ।

'युग तो संगीत का पवित्र हो । उस दिन तुम हारमोनियम बजा रहे थे तुम मञ्जीभाँति समझते हो कि हारमोनियम के सब स्वर भिन्न-भिन्न हैं परंतु उनकी मिस्रता में भी एक तारतम्य है । मनुष्यम है । उसी से उसमें राग का सर्जन होता है यदि सब स्वर एक से होते आरोह अकरोह तार, मन्द्र, मद्र प्रम न होता क्रोमल और गूड स्वर न होते तो क्या साज मूर्त होता ।

'नहीं होता ।

'बस यही बात है । समाज में धनी भी हैं निर्धन भी, विद्वान भी हैं मूर्ख भी दुर्बल भी हैं निर्बल भी प्रयत्नशील भी हैं और अनुपल भी । आज हैं, सदा से रहे हैं सदा से रहेंगे । व्यक्ति का यह बहिष्कृत्य क्यों क्यों सम्यता और विज्ञान की शक्ति का विकास होगा बढ़ता जायेगा । सब समाज का हित इसमें है कि सबका सम सहयोग हो । प्रत्येक एक दूसरे के सहायक और पूरक हों । साथ समाज एक शरीर की भाँति जीवनयापन करे । वेद में लिखा है कि समाजरूपी विराट पुरुष के फिर हाथ पीर पड़ यह सम भिन्न वर्गीय जन हैं । मुख मोक्ष जाता है तो समान भाव से सारे शरीर की पुष्टि होती है । यही सामाजिक जीवन का सुख की कच्ची है ।

'किन्तु जब तक समाज में ऊँच-नीच छोट-बड़े की भावना बनी है उसमें सहयोग कैसे हो सकता है ।

‘आत्म समर्पण के द्वारा । समाज का प्रत्येक व्यक्ति जिमा शर्त दूसरे के प्रति आत्मसमर्पण कर देता वह हम सहयोग भासानी से हो सकता है । बेको तुम नगर यौन बस्ती बहाते हो परस्पर मिस जुलकर व्यापार करते हो फर्म बनाकर, कम्पनी बनाकर, परस्पर के सहयोग के बड़-बड़े खेद बनते हैं । सीमित उद्योग संस्थाओं में धनी भी है निर्धन भी । किसी के कार्यों अपने अपने हैं, किसी के केवल कुछ ही अपने हैं पर हैं सब मानीदार जो अपने हिस्से के सीमित कार्यों से न्यायत संतुष्ट हैं ।’

मैंने अपने मठ की पुष्टि के लिए कुछ लम्बा उद्धरण बरकम दिया है किन्तु इससे हमारे इस मठ की पुष्टि हो जाती है कि आचार्य चतुरसेन जी साम्यवादी संघ से समानता मानने के इच्छुक कभी भी न थे ।

इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि पाँची जी के सभी प्रमुख सिद्धांतों महिषा अत्म और असहयोग पर आचार्य चतुरसेन जी का मार्क्सवादी सिद्धांतों से अधिक विश्वास था । वे पाँची जी भाँति ही महिसात्मक ढंग से एही परिस्थितियाँ पैदा कर देना आवश्यक समझते थे कि जिन परिस्थितियों में शोषक के जिन अपने बल परिवर्तन के सिद्धा कोई बाध बाकी न रहे । प्रजातांत्रिक तरीके को स्वीकार करके पाँची जी चकते हैं । मार्क्स भी अपने कार्यक्रम का पक्का अर्थ इसी को मानता है जब वह प्रजातंत्र की कड़ाई जीवन की बात कहता है । यदि कोई कर्क है तो इतना ही कि पाँची जी प्रजातंत्र को सर्व नीति मान कर चकते हैं और मार्क्स केवल नीति धर्म । लेकिन इस प्रसंग में मार्क्स और पाँची में कहीं कोई विरोध नहीं । मार्क्स का कथन है कि कमिनों को अपनी शोषित भाँति का संगठन करके छत्ता हासिल करना होना । इतना करते उन्हें शोषण की परिस्थितियाँ समाप्त करने का काम करना होना ।^१

गस्यसन्ध तथा अनसन्ध

आचार्य चतुरसेन जी पाँची जी के सिद्धांतों को अपूर्ण बरकम मानते थे किन्तु वे वर्तमान कांग्रेसी राज्य से संतुष्ट नहीं थे । उन्होंने स्पष्ट कहा है ‘निस्संदिह कांग्रेस का पतन हो रहा था और उतक पतन का मुख्य कारण था अयोग्य व्यक्तियों को शक्ति के पर देना । इसे वे लोक बल आपरण का अर्थ मानते और बगना को उँचा उठाने का एक सूत्र कहते थे । परंतु हमने समाज और व्यवस्था दोनों के ही बने न जो एक वैश्यापन आता जा रहा था हमारी

उद्धरण आचार्य चतुरसेन, पृ ७९-८१ ।

प्रेमचन्द एक सम्पादन, डा० राजेश्वर मुख पृ १०५ ।

और कांग्रेस भांग उठाकर नहीं देय रही थी।^१ 'गणतंत्र' को व चार्म चतुरसेन
 जी इस कांग्रेसी राज्य के पतन का कारण मानते हैं। उनकी दृष्टि में गणराज्य
 जनता का खून बूझने वाला कटमल है। उनका कथन है 'गणतंत्र से जनतंत्र
 भारत के लिए अधिक उपयुक्त है कारण 'गणतंत्र का सबसे भारी और सबसे
 प्रधान दोष तो यह है कि उसमें 'योग्यतम' व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता।
 पुटों के प्रतिनिधियों को अधिकार मिलता है चाहे उनमें योग्यता हो या न हो।
 इसके विपरीत जनतंत्र में 'योग्यतम' व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होता है। हमारे
 इस भारतीय 'गणतंत्र' में भी यह दोष उत्पन्न हो गया। राज्य में सिनों के
 हरिजनों के हिंदू समाज के व्यापारियों के समाजवादियों और साम्यवादियों के
 कम सचिवों के और न जान किन किनके प्रतिनिधियों का अयोग्य भंड बकरियों
 का रेबड़ भरना पड़ा। प्रेसों के राज्य मंत्रि कुसियों को सर पिरोजसाह
 मेहता महामना मासवीय पंजाब केसरी लाजपत राय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी योकर
 श्री निवास छास्त्री ने सुगोभित किया इन पर दूष बेचने वाले असाधार बेचने
 वाले ईमान धर्म बेचने वाले बड़े मौज-मजा कर रहे हैं। मिनिस्ट्रों के दिन ईद
 और रात दिवाली में परिणत हो गये हैं। वे अपने विषयों को नहीं जानते
 अपने विभागों के कार्य कसाप से अज्ञात हैं परन्तु वे अमुक एक के प्रतिनिधि
 हैं इसलिये हमारी सरकार को नहीं म कहीं उन्हें मिनिस्टर बनने पर राज्यपाल
 या लोक सभा में कुछ बनाकर माल मलीदे उठाने और चीन की बसी बजाने का
 प्रबंध करना पड़ा है। और इस प्रकार गलत रीति पर एकदमि विरोधी तन्त्रों
 से पाकिस्थानेस्ट भर गई है। और अबाहुर लाख जैसे समर्थ पुरुष भी उनके आल में
 उलझ कर अनहित का कोई काम नहीं कर पा रहे हैं। देश में रिपब्लिकोरी चोर
 बाजारी पडसल्ल डाकजनी भ्रष्टाचार, अस्पष्टता असन्तोष भ्रुकमरी और भ्रष्टा
 चार बढ़ता जा रहा है।^२ इसी कारण से वर्तमान राज्य में किसी भी धर्मिक
 कम्मी की आस्था नहीं रह गई है।^३ इतना ही नहीं आचार्य चतुरसेन जी ने
 'गणतंत्र' के दूसरे दोष की ओर भी इंगित करते हुये कहा है 'इस गणराज्य में
 एक दोष यह भी है कि किन पुटों के प्रतिनिधि इस गणतंत्र को चलाते हैं

१ बगुला के पंथ, आचार्य चतुरसेन, पृ १७।

२ उदयास्त आचार्य चतुरसेन, पृ १८६, तथा मोत के पत्र में त्रिम्बकी की
 कराह आचार्य चतुरसेन पृष्ठ ११९ २०।

३ उदयास्त आचार्य चतुरसेन, पृ १८७, तथा मोत के पत्र में त्रिम्बकी की कराह
 आचार्य चतुरसेन, पृ १२०।

उनमें परस्पर कोई प्रेम और विश्वास की भावना नहीं होती। एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा का भाव बना रहता है। प्रत्येक गुण अपनी छोटी से छोटी स्वार्थता की पूरी छिद्रि चाहता है और दूसरों की बड़ी से बड़ी भावमयकता को कुछ समझता है।^१

इसी कारण से आचार्य चतुरसेन जी 'गणतन्त्र' की अपेक्षा 'जनतन्त्र' के पक्ष में हैं। उनका कथन है जनतन्त्र उस व्यवस्थित बहुगुह्य बहुदल के समान है जो हृदय के गहरे स्नेह विश्वास त्याग सहानुभूति और सहयोग के वातावरण में परिपूर्ण है। वहाँ नासिमाई ईसकर प्यार बढेरती है पत्निमाँ सौभाग्य करण से आत्म को पवित्र करती है। बन्ध आत्म्य की किककारी भरते है। पकवान बनते है। लोहार आते है संगीत होता है आत्म्य और धर्म का समुद्र हिसोरें मारता है। छोटे से बडे तक मर्यादा के साथ बसे रहते है। छोटे बडों के करण छुमे में पुष्य मानते है और बडे छोटों पर आधीबौद की बर्पा करते है। छोटा बडा होने का बिचि का हर्ष बिपाद नहीं होता। यही जनतन्त्र मनुष्य का सच्चा जनतन्त्र है।^२

वे भारत में इसी को लाने के इच्छुक हैं किन्तु उन्हें कोई भी पक्षिवाक्य दल इस पक्ष पर चलने वाला सामने नहीं दीकता। गांधी का नाम लेकर चलने वाली पार्टी कांग्रेस भी आज स्वर्ण सिद्ध हो चुकी है। इसी कारण आचार्य चतुरसेन जी ने कहा है 'कांग्रेसी इस 'गणतन्त्र' को 'जनतन्त्र' का रूप नहीं दे सकते। क्योंकि वे राष्ट्रवादी हैं, देश भक्त हैं, मनुष्य भक्त नहीं। वे देश और राष्ट्र के लिये मनुष्यों को का मरने की सलाह दे सकते हैं। मनुष्य के लिये देश और राष्ट्र को काठ नहीं मार सकते।'^३

इतना ही नहीं आचार्य चतुरसेन जी की समाजवादी और साम्यवादी दलों पर भी आस्था नहीं है। उनका ताँ कथन है 'ये साम्यवादी और वे समाजवादी सिर्फं वीदिनों की हिमायत लेते हैं। उन्हें बिद्रोह करना संभट करना सिखाते हैं। उनकी सारी नीति हिमा और प्रतिहिता पर आधारित है। वे सबको समान बनाना चाहते हैं पर प्रेम, सौहार्द विश्वास और सहयोग से नहीं

१ उपर्युक्त आचार्य चतुरसेन पृ १८७, तथा मीत के बंदि में जिन्दगी की कराह आचार्य चतुरसेन, पृ १२०-११।

२ उपर्युक्त आचार्य चतुरसेन, पृ १८७, तथा मीत के बंदि में जिन्दगी की कराह आचार्य चतुरसेन, पृ १२१।

३ मीत के बंदि में जिन्दगी की कराह, आचार्य चतुरसेन पृ १२२।

बड़े के बल पर, भारपीट कर। ऐसा न कभी हुआ न होगा। इस की सफलता को य भावगो मानते हैं। पर अभी तेल की बार देखो। यह सफलता कितने रक्तपात कितने हत्याकांड कितने बिप्लव में मिली है। और अभी इसका जोर-छोर क्या है? फिर जहाँ 'डिपेंटर' का अर्थव्यवस्था है वहाँ जनतंत्र क्या है ?^१

वास्तव में आचार्य जी गांधीवादी सिद्धांतों के द्वारा ही वास्तविक 'जनतंत्र' सम्भव समझते हैं। काँग्रेस 'जनतंत्र' कानों में इसी कारण से अमफल रही उसने गांधीजी के सिद्धांतों को पूर्णरूप से त्याग दिया था। आचार्य अनुराजन जी का कथन है 'जनतंत्र तो वह जिसमें जन-जन में एकता हो सहयोग हो विश्वास हो आसक्ति हो अपनापन हो मही एकता हो जन-जन का जन-जन के प्रति त्याग का चरम ध्येय हो।^२ और यह सभी सम्भव है जब राज्य गांधीवादी सिद्धांतों द्वारा संचालित हो।

युद्ध और शांति

आचार्य अनुराजन जी ने युद्ध और शांति की समस्या पर भी पर्याप्त गंभीरतापूर्वक विचार किया है। उन्होंने युद्ध क्यों? युद्ध के परिणाम एवं उसके रोकने के उपायों पर भी विस्तार से विचार किया है। बीयाली की नगर बन् में भयवान बादरायण व्यास और सम्राट विम्बसार के वातावरण द्वारा आचार्य अनुराजन जी ने राज्यों में परस्पर युद्ध क्यों होते हैं इस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। सम्राट के प्रश्न पर भयवान बादरायण का कथन है। 'फिर भी सम्राट विरक्त सर्वैव कर्तव्य पर विचार करेगा और सम्राट अधिकारों पर। ये ही अधिकार युद्ध रक्तपात और अशांति की जड़ हैं यद्यपि वे सर्वैव जनपद हित और व्यवस्था के लिए किये जाते हैं। इस पर सम्राट का उत्तर है।

'अविनाय कामा भगवन् इस युद्ध रक्तपात और अशांति में भी एक कोकोत्तर कस्याय भावना है। भगवन् मसीमांति जानते हैं कि छोटे स्वतंत्र राज्य छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण परस्पर लड़ते रहते हैं साम्राज्य ही उन्हें शांति और समृद्ध बनाता है। साम्राज्य में राष्ट्र का बल है साम्राज्य जनपद की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है।'^३

१ मौल के पत्र में विम्बसार की कथा-आचार्य अनुराजन-पृ १२२।

२ मौल के पत्र में विम्बसार की कथा-आचार्य अनुराजन-पृ १२३।

३ बीयाली की नगर बन्-आचार्य अनुराजन-पृ २५४।

यहाँ आचार्य चतुरसेन जी ने वहाँ एक ओर मुझ क्यों इस पर प्रकाश डाला है वहाँ उसकी अनिर्धार्यता पर भी विचार किया है। अपने 'उपन्यास' नामक उपन्यास में उन्होंने वर्तमान समस्याओं में मुझ की अनिर्धार्यता एवं जो मुझ जिन परिस्थितियों में हुए पर विस्तार से प्रकाश डाला है।^१

आचार्य चतुरसेन जी ने मुझ विषयक विचारों में भी निरंतर विकास होता गया है। आचार्य जी प्रारम्भ में मुझ के पक्ष में थे। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व (सन् १९१४ में) उन्होंने अपने उपन्यास 'आत्मसाह' में सुधीन्द्र की पिताभार्या प्रस्तुत कर अपना स्वयं का मत देने का प्रयत्न किया है। उनका कथन है 'सुधीन्द्र बहुत सोचते मुझ क्या पशु बर्त है ? जैसा कुछ विद्वानों का मत है। अर्न्त काल से मुझ होते आये हैं। मुझों से सदा जातियाँ बनती बिगड़ी रही हैं मुझ मजिश्य में भी होये। सुधीन्द्र ने महारमा माँधी के अहिंसातत्व पर बहुत विचार किया था। परंतु पीता का हिंसा बर्त उनके विचारने का विषय था। परिवर्तनों की मार डालने की मुक्तिमें पर सुधीन्द्र विचार किया करते थे। उनका खयाल था कि आज जो हमारे देश के मनुष्यक निस्तेज और मिरास है देश डीका और अनेक पापों में फँसा है उसका कारण एकमात्र यही है कि हमारे देश में सम्मुख मुझ का प्रोधान नहीं। जिस दिन हमारे देश में मुझकों के सामने मुझ का जीवन आ जायेगा उस दिन देश के मुझकों को काम ही काम है। उस दिन उत्साह, आनंद और जीवन की नदी बह जायेगी। सुधीन्द्र उस दिन की कास्यनिक तस्वीर देखते थे जब देश के बीर युवक सैनिक बेश में व्यवस्था से चसते नजर आये।^२ किन्तु द्वितीय महायुद्ध के भीषण परिणामों को देख लेने के पश्चात् धीमे ही उनकी विचारधारा में एक अतिकारी परिवर्तन हुआ था। 'नगर बधू' तक आते-आते वे मुझ के विपक्ष में हो चुके थे। सोम और आचार्य साम्बख कास्यप के शार्ताभाष से यह स्पष्ट हो जाता है। सोम कहता है 'मैंने सीखा है वे मुझ मानवता के प्रतीक नहीं पशुता के प्रतीक हैं। मनुष्य में ज्यों-ज्यों पशुत्व कम होकर मानवता का विकास होगा वह मुझ नहीं करेगा। जब वह पूर्ण मानव होगा तो उसमें से मुझ मानना नष्ट हो जायगी। वह रोपहीन संतुष्ट मानव होगा।'^३

१ उपन्यास-आचार्य चतुरसेन-सु १४ ११।

२ आत्मसाह-आचार्य चतुरसेन-सु २११।

३ बीजाली की नगर बधू-आचार्य चतुरसेन-सु ८७।

दूसरे महायुद्ध की भीमत्स भीसाएँ देस कर ही आचार्य चतुरसेन जी गांधीबाबू निदारतों की ओर उन्मुख हो गए थे। उन्होंने 'उदयास्त' में आनंद स्वामी के मुख से इसी कारण योरोन के महाराष्ट्रों की निदा करवाते हुए कहाया है। 'यहाँ इसी में है कि भारत उनका अनुकरण न करे। गांधी जी ने भारत को सीधी राह दिखाई है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का आत्म समर्पण। कर्तव्य पर अधिकारों का बलिदान। भारत यदि इस पथ पर चलेगा तो वह विश्व का नेतृत्व करेगा। संसार के मानवों को अमरदान जीवनदान देगा।'^१

आचार्य चतुरसेन जी प्रथम युद्ध को एक अनिवार्य तत्व मानते थे किन्तु अंत में उन्होंने सोचना कर ही की युद्ध का वैधता मर गया। सौहार्द और छोहा जिनका नाश या ब मरण धरण हुए साम्राज्यवाद का महक रह गया और उसी के साथ पूंजी शक्त और अधिकार क्षम हो गए। अब विश्व युद्ध का अन्त हो चुका है विश्वास और कला उसे विश्वास में मिले हैं। आओ हम उसे कर्तव्य की बेसी पर प्रतिष्ठित करके संस्कृति की सम्पदा से सम्पन्न करें जिससे वह अपने जीवन में विश्व की सबसे बड़ी इकाई होकर मनुकुल को अन्नय करे। आओ पहिले हम युद्ध के वैधता को दण्ड करें।^२

आचार्य चतुरसेन जी ने इस युद्ध के वैधता को मार डालने का श्रेय अन्तु महात्मा का दिया है। उनका कथन है कि इसके प्रयोग होते ही 'युद्ध' शब्द निरर्थक हो गया। अब मनुष्य के सामने दो ही मार्ग हैं या तो वह अपने अपूर्व मानव तत्व को एकबारगी ही त्याग कर सम्पूर्ण पशु बन जाये तथा इस ओर इस जैसे महात्मा से अपना सर्वतोभावेन विष्मंस कर के या अपने में व्याप्त पशुत्व को एकबारगी ही निकाल फेंके और 'पूर्व पुरुष' होकर विश्व की सम्पदाओं का निर्मय भोग करे। निश्चय ही उसे ब्रह्मण मार्ग चुनना होगा।^३

आचार्य चतुरसेन जी ने युद्ध करवाने का श्रेय इन राजनीतिज्ञों के मत्से मड़ा है। उन्होंने इसी कारण से अपने 'संघास' नामक उपन्यास में उसकी प्रमुख पात्री प्रतिमा के मुख से स्पष्ट कहाया है 'पापा कहते हैं कि राजनीतिज्ञों

१ उदयास्त-आचार्य चतुरसेन-पृ ७२।

२ मौल के पत्र में जिम्बयी की कराह-आचार्य चतुरसेन-पृ १६२।

३ मौल के पत्र में जिम्बयी की कराह-आचार्य चतुरसेन-पृ १६३।

के हाथ से जन-जीवन छीन कर वैज्ञानिकों और साहित्यकारों को जन-जीवन का नेतृत्व प्रदान कर दिया जाय। यह धर्म की बात है कि वैज्ञानिक भाव फौजी आदेश का यत्नपूर्वक पालन कर रहे हैं।'

'अप्यास के मूढ़ पुरुष वास्तव में आचार्य अतुरसेन जी स्वयं हैं। वे ही एक वैज्ञानिक के रूप में प्रस्तुत उपन्यास में आए हैं। जिन दिनों आचार्य अतुरसेन जी प्रस्तुत उपन्यास लिख रहे थे मैं उनके समीप ही था। मुझसे उन्होंने हँसते हुए कहा था तुमने जितने भी वैज्ञानिक और राजनीतिक प्रश्न करके मेरे विचारों को कुरेबा या उन सभी का समाधान मैंने स्वयं एक वैज्ञानिक बन कर प्रस्तुत उपन्यास में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। तुमने उसी प्रकार मेरे विचारों को कुरेबा है जिस प्रकार तिवारी ने उस मूढ़ पुरुष के विचारों को कुरेबा था। इतना कहकर आचार्य जी चुप कर बैठ पड़े थे।

मैं इस विषय के उस चर्चा-लाप का यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ 'आपने अपना यह उपन्यास किस वस्तु से प्रभावित होकर लिखा।

'सन् १९५८ से। यह वर्ष विज्ञान जगत में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है वैसे ही तो जब यह मानने लगा हूँ कि बिना विज्ञान और साहित्य का समन्वय हुए विश्व आगे नहीं बढ़ सकता। विज्ञान और साहित्य का समन्वय कैसे हो प्रश्न यह ही स्पष्ट है गद्य का सबसे निखरा रूप है उपन्यास। अतः उपन्यास को माध्यम बनाकर ही विज्ञान को साहित्य के अन्तर्गत लाया जा सकता है और अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैंने यह वैज्ञानिक उपन्यास लिखा है।

'विज्ञान की यह उपनिधि क्या मानवता के लिये हितकारी होगी ?

'अवश्य किन्तु यदि उसका उपयोग मानवता के सुख के लिए हो बिनाश के लिये नहीं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि विज्ञान का उपयोग सुख के कारणों में हुआ तो मनुष्य की जीवन आयु बढ़ पायगी और हृदय रोग रक्त चाप और मिफ्रिस इन चार रोगों का अभी तक कोई निश्चित निदान नहीं हुआ है किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगे के इस वर्षों में विज्ञान इन रोगों पर नियंत्रण या ठेका तक निश्चित ही मनुष्य अकास पुर्यु से बच सकेगा। कुछ स्फुट कर उम्होंने आगे कहा 'परन्तु सर्वत यह है कि युव के बावजूद वैज्ञानिक आधिपत्य पर न छा जायें।

‘आपन अपने इस उपन्यास में एक भारतीय वैज्ञानिक को सर्वोपरि दिखाना प्रिया है क्या यह आपका पक्षपात नहीं है ?’

‘अर्थात् नहीं कारण मैंने भारत का घांति पूरा माना है और वह भारतीय वैज्ञानिक शांति का ही पक्षपाती है उसके समस्त वैज्ञानिक आविष्कार घांति के लिए हैं बिनाघ के लिए नहीं हमलिए मैंने उसे सर्वोपरि लिखसाना है । पत्रों में देरा संकेत यह है कि भविष्य में सर्वोच्च वैज्ञानिक बही हामा विभक्त चरण घांति की ओर बढ़ये बिनाघ की ओर नहीं । विज्ञान घांति में साबक होगा बापक नहीं ऐसा मेरा अपना विदवास है ।’

भाचार्य अनुरसेन की विज्ञान और साहित्य की युद्ध और शांति में सर्वत्र सम्बन्धित समझत रहें । उनका कथन था कि विद्वान् शांति विज्ञान और साहित्य के द्वारा ही सम्भव हो सकेयो । उन्होंने विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को ही साम्यता दी है । उनका कथन है ‘विज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा है । भौतिकवादी दृष्टि से संसार जिस मूत्र में बंधा है, उसमें मंत्र तक पहुँच चुका है । अब इसे या तो कुछ नहीं कल्याणकारी स्थिति में आना पड़ेगा या नष्ट हो जाना होगा ।’ उनका वैज्ञानिक प्रयत्न का मापदण्ड भी भिन्न है । वे उस राष्ट्र को सर्वोपरिपक्षी मानते हैं जो विज्ञान को मानव मान के लिए मृत्सुभूत न बनाकर सुक्षिप्त बनाता चाहता है ।^१ विद्यार्थी और मूढ़ पुरुष के पारस्परिक बार्तालाप द्वारा भाचार्य अनुरसेन की ने अपने विज्ञान के भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है । यहाँ हम उस बार्तालाप का कुछ संक्षेप उद्धृत कर रहे हैं । विद्यार्थी मूढ़ पुरुष से प्रश्न करते हैं क्या हा—

—बच्छा हा भारतवर्ष आपकी सामर्थ्य को जान जाय ।

‘क्यों ।

‘ज्ञान की समर्थ ज्योति भारत में अममय है मह बुनिया के किन्तु आरभी जानते हैं ।

‘तो इससे क्या ? विज्ञान के संबंध में तो भारतीय दृष्टिकोण विद्वान् के दृष्टिकोण से निराशा है उसे बुनिया को जानना चाहिए ।

१ अर्धपुर, भाचार्य अनुरसेन व्यक्तित्व और विचार, शुभकार्य नाथ कपुर, ९ अगस्त सन् १९२४ पृ ५

२ अग्रत भाचार्य अनुरसेन पृ ३१० ।

३ अग्रत भाचार्य अनुरसेन पृ २७६ ।

‘बहु दृष्टिकोण कैसा है ?

‘बिज्ञान के प्रति भारतीय दृष्टिकोम साम्प्रतिक रूढ़ है। नीतिकबारी दृष्टि से संसार बिस सूत्र से बँधा है उसे अंत तक पहुँचा चुका है। अब इसे या तो कुछ नई कल्याणकारी स्थिति में आना पड़ेगा या नष्ट हो जाना होगा।

‘परन्तु मैं तो यह समझता हूँ कि भारत वैज्ञानिक प्रगति में बहुत पिछड़ा हुआ देश है।

‘केवल तुम ही ऐसा समझते हो यह बात नहीं। भारत में भी लोग ऐसा ही समझते हैं। जब वैज्ञानिक प्रगति की बात आने जाती है तो हमारे देश के लोग हीनता का अनुभव करने लगते हैं ?

‘इसका कारण क्या है ?

‘बिस्तुक्त स्पष्ट है। सामारणतया यह समझा जाता है कि बिस देश के वैज्ञानिक अनुभव और हाईड्रोजन बम बनाना नहीं जानते वह प्रगति के हिसाब से बड़ा देश नहीं है। बिस्व की राजनीतिक शरण का भी यही मान है। यह बात केवल भारत ही से सम्बन्धित नहीं है अन्य देश भी ऐसा ही अनुभव करते हैं।

‘परंतु आप समझते हैं कि उनका यह अनुभव पकट है। निस्सन्देह बिज्ञान के प्रति यह एक गलत दृष्टिकान है। इससे संसार के बहुत बिस गुमराह हो रहे हैं।

‘किन्तु आप बिज्ञान के विकास को क्या स्वीकार ही नहीं करना चाहते।

‘क्यों नहीं। परन्तु मैं समझता हूँ प्राचीन भारतीय मनीषी बिज्ञान को सत्य की खोज का साधन मानते थे। मैं तो चाहता हूँ कि भारतीयों के मन में उनकी मान्यता का समावर हो तो भारत की प्रगति सही अर्थ में हो सक्ती है।

‘क्या कर अपना अभिप्राय साफ-साफ कहिए।

‘साफ ही मुझे। कोई देश जिस हब तक वैज्ञानिक प्रगति कर गया है इने उसकी ध्वंसात्मक शक्ति को देखकर आँचना भारतीय दृष्टिकोम नहीं है। भारत तो मानव समाज के कल्याण में सहायक होने की क्षमता होने के अनुसार ही बिज्ञान की सफलता आँचना चाहता है।

‘तो आप बड़े राष्ट्रों की इस वैज्ञानिक प्रगति को कुछ समझते हैं ?

‘मैं उसके प्रति सम्मान की भावना नहीं रखता। मैं तो यह कहता हूँ कि मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने योग्य कोई छोग या भी धाबिप्यार हो तो उसे हम मजानक बिष्पसंसारमक सम्प्राप्तों की मपेता अधिक महत्त्वपूर्ण समझता चाहिए।

‘क्या हमारे देग क वैज्ञानिकों का यही मन है ?

‘भायर नहीं है। वे जानते हैं कि हमें भी राष्ट्रों क समाज म रूना पड रहा है। बल्लु के मूल्यांकन का जो तरीका सब प्रमुख राष्ट्रों का है वे उसक प्रभावित हैं।

‘आपकी समझ में यह ठीक नहीं है ?

‘यह दुर्भाग्य की बात है कि विज्ञान की प्रगति जाती रहे और संसार में वैज्ञानिक बातावरण न पैदा हों।

‘आप समझते हैं कि संसार का बातावरण वैज्ञानिक नहीं बन रहा है ?

‘मैं तो समझता हूँ कि संसार का जो बातावरण बन रहा है वह विज्ञान के लिए डोहात्मक है।

‘यह आप किस आधार पर कहते हैं ?

‘संसार में तनाव बना हुआ है। यह तो तुम भी मानाये और उसका अमर केबल आपिक एवं राजनीतिक बिचारों को ही नहीं बरन् विज्ञान की छुडता को भी कम करता जा रहा है। विज्ञान की प्रगति की अनिवार्य शर्त है सत्य क प्रति पूर्ण सम्मान।

‘क्या आज की वैज्ञानिक प्रगति में सत्य के प्रति सम्मान नहीं है ?

‘संसार में तनाव रहने पर सत्य के प्रति सम्मान कैसे रह सकता है ?

‘आप समझते हैं कि विज्ञान जन-कस्यापकारी नहीं है ?

‘यदि उसके साम डेङ्ग-छाङ्ग न की आय तो निश्चय ही विज्ञान मानव जाति का कस्याप ही करेगा। परल्लु बिन्ब के तनाव के कारण इसका उपयोग राजनीतिक गुट बिधेय अपवा सिद्धात्म बिधेय के लोपों का स्वार्थ साधने में होता है और अब तो विज्ञान का यह दुत्पयोग बरम सीमा पर पहुँच चुका है।

‘कैसे ?

‘क्या तुम देख नहीं रहे—अब तो बड़ बड़े जाने बालु राष्ट्र भी बिपूड की भांति यही सोचने लगे हैं कि आये क्या ? और इसका उत्तर उनक पास नहीं है।

आपके पास है ?

'हाँ, मैं कह सकता हूँ कि इसका एकमात्र उत्तर है कि विज्ञान की सफलता उसकी मानव समाज के कल्याण में सहायक होने की क्षमता ही है।'^१

उपर्युक्त उद्धरण आचार्य बतुरसेन जी के 'युद्ध और शान्ति' विषयक विचारों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

आचार्य बतुरसेन जी ने भारत को जो विश्व की तीसरी शक्ति माना है, वह भी विज्ञान के कारण नहीं 'शान्ति की शक्ति के कारण। उनका कथन है, सारे संसार का ध्यान इस शक्ति पर केन्द्रित हो रहा है और संसार के अन मानकों की मज्जर में भारत का स्थान बहुत ऊँचा है। 'मानव बहुत से राष्ट्र भारत को शान्ति का स्तम्भ मानते हैं। उन्हें विश्वास है कि भारत सब संघर्षों की प्रगति और स्वाधीनता का इच्छुक है। उसने अपनी स्वाधीनता के अल्प कालीन समय में यह प्रमाणित किया है कि यदि सहिष्णुता और पारस्परिक सम्मानना से काम लिया जाय तो सब विभिन्न विचारवाच्यें साथ साथ भीजित रह सकती हैं। यह किस्ती बड़ी बात है कि भारत सभी सम्मन्धनों को लोक-तन्त्रात्मक विधियों से सुसजाने की पद्धति अपना रहा है।'^२

आचार्य बतुरसेन जी ने यह स्वीकार किया है कि भारत के समस्त केवल शान्ति का ही मार्ग है युद्ध से वह सर्वैक से सिए नष्ट हो जावेगा। उन्होंने स्वयं कहा है पर हमारे (भारत के) पास न काफी युद्ध सामग्री है न हमारी स्थिति ही इस योग्य है कि हम लड़ाई के मनको सम्हाल सकें। हम गरीब हैं। हमारी आजादी बच्चा है। हम तो शान्ति की पोक में ही पनप सकते हैं, इसी से वे इस संसार में शान्ति स्थापना के कार्य में सौझ रूप कर रहे हैं। क्योंकि वह जानते हैं लड़ाई कहीं भी छिपे हमारे देश को बहू ठकाह किए बिना न छोड़ेगी।'^३

निश्चय ही ये विचार बड़े ही उपयुक्त और उपयोगी हैं।

अन्त में आचार्य बतुरसेन जी ने यह भी स्वीकार किया है कि यदि विश्व भारत के शान्ति मार्ग का अनुगमन नहीं करता तो उसे विवश होकर इस मार्ग का अनुकरण करना पड़ेगा अन्यथा उसे युद्ध की मयामक ब्याज में चलना

१ उपरोक्त आचार्य बतुरसेन पृ ३१० से ३१२ तक।

२ उपरोक्त आचार्य बतुरसेन, पृ २७३।

३ उपरोक्त, आचार्य बतुरसेन पृ २०१।

होया। आचार्य चतुरसेन जी अंत में घोषणा करत हुए कहते हैं परंतु 'मनु महासूत्र का आज मानव मस्तिष्क पर बिल्कुल ही नया और अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है इसमें बह रोप की दबान की नहीं अपने से दूर निकाल फेंकने की चाहने लगा है। उसकी ऐतना में स्वच्छ विचारधारा का उदय हुआ है और अब उसके 'पूर्ण पुरुष' होने का युग आ गया है। इस युग में वह सर्वथा रोपहीन होकर विचार सामर्थ्य से अपना समर्थन करेगा। बड़े-बड़े श्रुतजन निरर्थक फूटकार कर, आकण्ठ रक्त स्नान कर मरणभरण हुए। 'छोटू और छोहा बिनका गारा था उनकी बेहद दुःखा हो गई। मानव रोप की निम्नारता बिद्व ने देखा थी। आतियों के भाग्य पकट गए। विद्व रेखायें बरक गई। इन सबसे मानुष ने अब चार बातें सीखी हैं —

१ बिस्व के सब मनुष्य एक स हैं। वे परस्पर भाई भाई हैं समान हैं, समय हैं और बिद्व की सम्पदाओं के अधिपति हैं।

२ मानव बिद्व की सबसे बड़ी इकाई है। उसकी पूजा आत्मनिष्ठा निर्भय बिद्व विचारक तथा भोग सामर्थ्य कबिजननेय वस्तु है।

३ जयत सत्य है भूत सम्पदा मानव उत्कर्ष का साधन है।

४ 'कला' और 'विज्ञान' मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क है। दोनों के विचार कीदम से एकीभूत करके उसे मानव विभूति वर्धन में लमाना चाहिये जिससे मनुष्य 'रोपहीन' हो।'

आचार्य चतुरसेन जी के इस निष्कर्ष से भी स्पष्ट हो जाता है कि बह मानसवादी सिद्धान्तों की अपेक्षाकृत गांधीवादी सिद्धान्तों की ओर अधिक उन्मुख हैं।

जन संख्या की समस्या

आज की बढ़ती हुई जन संख्या की ओर भी आचार्य चतुरसेन जी का ध्यान गया है। उनका कथन है आज रूस और अमेरिका अठरलाक बम बनाने में लगे हैं परंतु बिस्व का सबसे बड़ा अठरलाक बम जन संख्या का प्रादिक्य है जिस असार भर के मनुष्य तैयार करने में जुटे हैं लाखों व्यक्ति भोजन की खोज में रहते हैं।^१ इसी कारण से उन्होंने 'संतति निरोध' के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।

१ पीत के पत्र में शिबगी की कराह आचार्य चतुरसेन पृ १६४ ६५।

२ 'अप्राप्त' आचार्य चतुरसेन, पृ २७५।

इसके अतिरिक्त उन्होंने भारत के साम्प्रदायी दस^१ भीत समस्या^२ कश्मीर समस्या^३ एवं भारत में मुसलमानों की स्थिति^४ पर भी विचार किया है। 'उदयास्त' और 'अपराध' नामक उपन्यासों में उनका विचार क्षेत्र केवल भारत ही न रहकर बिस्व हो गया है। अतः उसमें उन्होंने विद्वान की प्रमुख राजनैतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।

इससे आचार्य चतुरसेन जी के बहुमुनी आमक व्यक्तित्व का प्रमाण मिल जाता है।

सामाजिक विचार

स्त्री-पुरुष

आचार्य चतुरसेन जी ने नारी तत्व पर, पुरुष और स्त्री के सम्बंध पर, नारी के महत्त्व पर, उसकी स्वाधीनता और शिक्षा पर, उसके धर्म और उसके कर्तव्य क्षेत्र पर अत्यन्त विस्तार से विचार किया है। उनकी कल्पना सभी प्रधान रचनाओं में उनकी नारी भावना अत्यन्त प्रखर रही है। 'मगर बधू' की अम्बपायी 'सोमनाथ की शोभना' और 'बीबा' 'मोळी' की चम्पा 'उदयास्त' की प्रमिता 'अपराधिता' की राज 'बदल बदल' की विमला 'आमा' की आमा 'दो बुठ' की माया और रेखा के बल पर ही यह उपन्यास इतने सफल बन सके हैं।

आचार्य चतुरसेन जी के नारी विषयक विचार भी बड़े ही अंतिकारी हैं। उन्होंने स्त्री को पुरुष की जिंदा बीकात कहा है।^५ साथ ही उनका कथन है कि नारी को 'रत्न' तो अवश्य कहा गया है किन्तु उसका मूल्य इन पुरुषों की दृष्टि में काली कीड़ी के बराबर नहीं है। क्योंकि वह हीरे मोती के बराबर दुर्लभ नहीं है। मुलम है। पानी की भाँति अति सुलभ। किन्तु यदि त्रिपाँ दुर्लभ हो जायें तभी वास्तविक मूल्य को जाना जा सकेगा।^६

१ 'उदयास्त' आचार्य चतुरसेन पृ १४९ १५३।

२ 'अपराध' आचार्य चतुरसेन पृ १४३ १४४।

३ 'अपराध' आचार्य चतुरसेन पृ १४४ १४७।

४ 'धर्मपुत्र' आचार्य चतुरसेन पृ- १७०-७१।

५ उदयास्त आचार्य चतुरसेन पृ ३२ नीत के पंक्ति में जिम्बरी की कटाह आचार्य चतुरसेन पृ १०३।

६ उदयास्त आचार्य चतुरसेन पृ ३२ ३३।

अपनी कहानी 'घोने की पत्नी' में उन्होंने अपने इन्हीं विचारों की पुष्टि की है। किंतु नारी के विषय में उनका यह स्वयं का दृष्टिकोण न था यह तो पूंजीवादी समाज की नारी विषयक धारणा है। आचार्य चतुरसेन भी ने नारी के जिस रूप को आदर्श माना है वह निश्चित ही बड़ा गलत है। उन्होंने मातृत्व को नारी की चरम सार्थकता माना है। प्रेमचन्द की भाँति उनका भी यह विश्वास था कि मातृत्व के अतिरिक्त नारी के और जो रूप हैं वे मातृत्व के केवल उपक्रम हैं और जो रूप अपने उद्देश्य से विरत हो जाते हैं वे नारी के आत्म सौंदर्य को कुरूप कर देते हैं। पुरुष नारी के इसी रूप का पुजारी है क्योंकि यही रूप उसे पुण्यों से बचाकर जीवन कल्याण की विधा में ले जाता है। अपनी कहानी 'बुध की धार' में उन्होंने अपने इन्हीं विचारों को प्रथमता दी है।

वासना कोतुप पुरुष 'नारी' के शरीर को ब्याज मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम की पूंजी तभी सार्थक होती है जब ब्याज मिलता रहे।^१ किंतु आचार्य चतुरसेन भी का विश्वास है कि 'जाज की स्त्री पुरुष की संपत्ति—परिग्रह बनकर नहीं रह सकती। वह पुरुष की सच्चे धर्मों में संगिनी सममायिनी बनकर रहेगी। पुरुष यदि स्त्री के इस प्राप्त्य को देने में यदि जाज माना कानी करता है तो निस्संदेह उसे स्त्रियों से ऐसी खूनी अड़ाई सड़नी पड़ेगी वैसे जाज एक ममुष्य-वृत्तिहास में मनुष्य ने इस स्त्री सम्पत्ति को अपहरण करने के लिए भी बुन-सुप में कपी नहीं सड़ी। फिर भी उसकी भीत नहीं होगी। भीत होगी स्त्री की यह मैं अभी से कहे देता हूँ। और पुरुषों का जासकर पतियों को यह मेक सलाह देता हूँ कि वे जब केषक परिणय-प्रेम और सहृदयता से स्त्री को अपनी जीवन संगिनी बनाता सीखें तबसे उनका घर बसा रहे।'^२ आचार्य चतुरसेन भी की यह ध्वनिप्यावाणी नारी के महत्त्व और पुरुष के संबंध को भली भाँति स्पष्ट करती है।

स्त्री पुरुष संबंध

स्त्री और पुरुष के पारम्परिक संबंध के विषय में श्री आचार्य चतुरसेन जी का मत है 'स्त्री पति की अर्धांगिनी और जीवन संगिनी है। वह भी उसी की भाँति उस घर की स्वामिनी है वैसे उसका पति। दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं स्त्री न बच्चा पैदा करने या पुरुषों को भोगने की वस्तु है न

१) आभा आचार्य चतुरसेन पृ १४।

२) 'अदल बदल' आचार्य चतुरसेन भूमिका नए पुग का सबसे कठिन प्रश्न।

आज्ञाकारिणी बारी है। ऐसा मेरा मतलब है।^१ अपराधिता की राज अपने स्वसुर से अपने पति से इन्हीं विचारों को केन्द्र जीवन पर्यन्त संघर्ष रख रही थी।

वहाँ तक नारी और पुरुष के संबंध का और उसकी भेदता का प्रश्न है आचार्य बतुरसेन नारी को पुरुष से कहीं भेद मानते हैं। अपने 'त्रयत्रय बदल' नामक उपन्यास में उन्होंने डाक्टर, सेठ जी एवं मास्ती देवी के वातावरण द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यहाँ हम प्रस्तुत वातावरण का कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं।

मास्ती कहती है 'परन्तु पुरुष के शरीर में बल है।

उत्तर मिलता है 'तो स्त्री के हृदय में शक्ति है' "

'किर भी पुरुष सदा से समाज का स्वामी रहा है।

'पर समाज की निर्मातृ देवी स्त्री है। पुरुष पुरुष है स्त्री देवी है। पुरुष में शक्ति की स्पृकता है। पुरुष में सामर्थ्य का अर्थ है स्त्री में शक्ति। इसी से नारी हीम संस्कार की द्वितीय बल बहिनी है उतना पुरुष नहीं।

'यह कैसे।

'माप देखते नहीं कि नारी जिसे एक बार स्पर्श करती है उसे अपने में मिला लेती है अपनापन खोकर।

पुरुष तो केवल जानता और देखना चाहता है, अपनापन नहीं।'

'नारी भी तो।

'नारी निष्ठा के कारण वस्तु संघर्ष में जाकर क्लिप्त हो जाती है जबकि पुरुष उससे अलग रहता है।

'तो इसी से क्या पुरुष नारी से हीन हो गया ?

'क्यों नहीं वहाँ तक प्रतिष्ठा का सवाल है नारी पुरुष से जाये है।'

'कहाँ ?

'अपने घारे जीवन में नारी की प्रतिष्ठा प्राणों में है पुरुष की विचारों में। इसलिए नारी सक्रिय है और पुरुष निष्क्रिय। इसी से पुरुष जगदान का बाध है परन्तु नारी पत्नी है। पुरुष भक्ति देता है स्त्री प्रेम। पुरुष विज्ञ को केन्द्र मानकर आत्मप्रतिष्ठा की चेष्टा करता है और स्त्री आत्मा को केन्द्र मानकर विरह प्रतिष्ठा करती है। इसी से समाज रचना और परिष्कारन से नारी प्रमुख है।

'द्वि भी बहु पुरुष पर आभित है ।

'मह इक्षिम है । वास्तव म नारी केन्द्रमुषी शक्ति है और पुरुष केन्द्र विमुक्षी । नारी संसर्ग से ही पुरुष सम्म बनता है । नारी से ही सर्व संस्था टिकी है । एक अग्नि है दूसरा पृथ । अग्नि में पृथ की माहुति पड़ने ही से मत्र सम्पन्न होता है । स्त्री पुरुष का जब संयोग होता है तब उसे मत्र धर्म कहते हैं सन्धे मत्र का मही स्वरूप है ।

'परन्तु सृष्टि कर्ता पुरुष है ।

'पुरुष मन की सृष्टि करता है नारी देह की सृष्टि करती है । पुरुष बीजात्मा को जमा करता है पर उसके आकार की रचना नारी ही करती है ।

'पुरुष हिरण्य गर्भ है ।

'नारी विद्युत् प्रकृति है ।

'पुरुष स्वर्ग है ।

'नारी पृथ्वी

'पुरुष ताप शक्ति का रूप है ।

'नारी यज्ञ शक्ति है ।

'संश्लेष में समाज के दो समान रूप हैं एक नर दूसरा नारी । दोनों एक वस्तु के दो रूप हैं । दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण वस्तु बनती है ।'

उपर्युक्त उद्धरण में आचार्य चतुरसेन जी ने पुरुष और नारी के सम्बंधों प्रकृतियों तथा कार्यों का सूक्ष्म और सत्य विवेचन किया है ।

नारी का कर्तव्य एवं कर्पर्यन्त

नारी के कर्तव्य एवं उनके कार्यक्षेत्र पर भी आचार्य चतुरसेन जी ने कई स्थानों पर विचार किया है । वे नारी आगरण के पक्षपाती थे नारी समानता के समर्थक थे किन्तु उसकी स्वच्छन्दता के वे कभी समर्थक न हो सके । अपनी कहानी 'युगसांगुलीय' में उन्होंने दो भिन्न विचारों की बुद्धियों का विमर्श करके अपनी इसी विचारधारा की पुष्टि की है । पाश्चात्य विचारों से प्रभावित नारी को उन्होंने श्रीम कमेकरा सोठस्वनी की और भारतीय नारी को पुष्पिता पुष्पकरमी की उपमा दी है । उनका कथन है पाश्चात्य नारी निरन्तर प्रवाहित जनवरण अपसर होती हुई है तो भारतीय नारी अपने घर के जागत में बंध और पुष्पिता है । आचार्य चतुरसेन जी ने परिवार के लिए भारतीय नारी को ही सार्थक माना है । उनका कथन है 'भारतीय नारी पर्यन्त नहीं स्वतंत्र

है। उसको किसी ने बाँधकर नहीं रखा है, वह तो स्वयं ही स्वेच्छा से कर्म बंधन में बंध गई है। परंतु उसका यह बन्धन साधारण नहीं है। उसने संसार की प्रसन्नकारिणी शक्ति को अपने साथ बाँध रखा है। दूसरे सभ्यों में नारी शयनगृह का बीज है जो स्वयं बलरूप स्निग्ध प्रकाश प्रदान करता है।

उसका प्रधान कार्य है आनन्द बाण करना। यदि नारी सगीत और कविता की भाँति अपना अस्तित्व सम्पूर्ण सौंदर्यमय बना डाले तो उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो गया। वास्तव में नारी मानव समाज की मर्मस्पर्शी है।^१ इसी कारण नारी के कार्यक्षेत्र को उम्हेंति कभी भी संकुचित नहीं माना। उनका कथन है 'मनुष्य प्रतिदिन कर्म बरक से क्लिष्टनी ब्रूक गईं उड़ाते हैं क्लिष्टनी मञ्जिता बखोरेते हैं, उसे तो कार्य कुशल हाथों से नारी ही प्रतिक्रम साफ करती है। फिर उसका कार्यक्षेत्र संकीर्ण कैसे हुआ। मानव संसार की घाटी ही व्याधिर्वा भ्रूत-व्यास शान्ति और रोग-शोक से सभी तो उसी के कार्य क्षेत्र में उत्पात मचाते हैं, जिनका शमन धैर्यमयी कोकबत्सका नारी ही तो प्रतिदिन करती है।

इस प्रकार आचार्य अनुरसंग जी ने नारी के कार्यक्षेत्र को व्यापक तो बतलाया है, किन्तु उनका विश्वास था कि यह प्रिय लगने वाले सिद्धांत बन्धन मुक्त आधुनिकानों को मोहने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे कारण आज की स्त्रियों में से मातृत्व और विवाह शायित्व की भावना गूँट हो रही है। और पुरुषों के प्रति भ्रूता के भाव उनमें उत्पन्न होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप समाज में यौग अनाचार और नैतिक बराबकता व्याप्त होती जा रही है। जो समाज के लिए एक मयानक अमिशाप है। इसके लिए आचार्य अनुरसंग जी पूर्वीवासी समाज को ही उत्तरदायी ठहराते हैं। इसीलिए उन्होंने भारतीय स्त्रियों के लिए एक ठीसरा मार्ग भी जोन निकाला है। उनका यह ठीसरा मार्ग है सर्वोद्यम का। उनका कथन है 'समाज की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके एक ऐसा सुश्रू लक्ष उत्पादन प्रयासी का सौपटन किया जाय जिसका लक्ष्य सर्वोद्यम हो। उसमें पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी सामाजिक उत्पादन में महत्वपूर्ण भाग हो। वैवाहिक और पारिवारिक जीवन के शायित्व की सम्मानने के लिए स्त्रियों को बेदम अक्काश प्येष्ट मिले। और मातृत्व का सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए सब सम्भव सुविधाएँ उन्हें निःशुल्क प्राप्त हों। ऐसी अवस्था में नारी पुरुष की घड़ी बर्षों में जीवन हाँगिनी बन सकती है। उसे मातृत्व का शायित्व लेने में उत्पाह

होमा और नह बिठत भाधुनिवा भी न बन पाएगी ।^१ इतना ही नहीं वे साम्यवादी ढंग में नहीं सर्वाशय की प्रणाली से 'सम्पूर्ण गृह कार्य' को भी एक सार्वजनिक उद्योग में परिणत कर देना चाहते हैं। जिसमें स्त्रियाँ गृहकार्य की तुच्छता एक स्वता तथा यमभार से ऊँच न उठें। और विवाह बंधन और मातृत्व उन पर तदिक भी बोझिल न होने पाए ।^२ इस परिस्थिति में नारी निर्दिष्ट रूप से मुक्त मात्र से आत्म विकास प्राप्त कर सकती है ।

नारी स्वतंत्रता एवं समानाधिकार

जहाँ तक नारी स्वतंत्रता एक समानाधिकार का प्रश्न है आचार्य चतुर सन की एक सीमा तक इसके पक्ष में थे। उनका कथन था 'वास्तव में नारी की प्रतिद्वन्द्विता पुरुषों से राजनीतिक नहीं है। वह तो केवल ठोस आर्थिक समानाधिकार चाहती है। आदिमकाल की नारी सामाजिक उत्पादन में खुलकर भाग ले सकती थी। आज की नारी भी तभी सच्चे अर्थों में समाज की स्वतंत्र भंग बन सकेगी जब वह, आधुनिक उत्पादन प्रणाली में अपना महत्व पूर्ण भाग प्राप्त कर सकती। तभी नारी माता रत्नी और सखी का पद सार्पक कर सकेगी।'^३

प्रेम, विवाह एवं वासना

प्रेम को आचार्य चतुरसेन की संसार की सर्वाधिक पवित्र वस्तु मानते हैं। वे प्रेम को आत्मा का भोजन मानते हैं। उनका विश्वास था कि प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है। वे प्रेम हीन जीवन को उस रात के समान मानते थे, जिनमें चाँद हा ही नहीं।^४ वे प्रेम को वैतना का सबसे कीमत उद्देश मानते थे।^५ इसी कारण से प्रेम को वास्तव एवं जीवन से भी स्वामी वस्तु कहा करते थे।^६

प्रेम की परिभाषा करते हुए आचार्य चतुरसेन जी ने एक स्थान पर लिखा है प्रेम क्या है—इसे बहुत कम आदमी जानते हैं। मन में आत्मा को विभोर

१ उदयास्त आचार्य चतुरसेन पृ ६३।

२ उदयास्त आचार्य चतुरसेन पृ ६३।

३ उदयास्त-आचार्य चतुरसेन पृ ६४।

४ उदयास्त-आचार्य चतुरसेन-पृ १११।

५ पत्थर युग के दो ब्रुत-आचार्य चतुरसेन-पृ १०२।

६ आत्म-आचार्य चतुरसेन-पृ ५५।

कर देने वाली कुछ भावनाएँ—सी उठती हैं—वह प्रेम है। प्रेमानुभूति के कारण मनुष्य भौतिक जीवन से बहुत पृथक् हो जाता है।^१ अपनी प्रेम की इस व्याख्या को और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य अनुरसेन भी ने एक स्थान पर कहा है—‘बिचके लिए अधिक से अधिक त्याग किया जाय उसके लिए अधिक से अधिक प्रेम करना कहा जायगा। त्याग का ही सार्विक नाम प्रेम है और प्रेम की क्रिया का नाम प्यार।’^२ प्यार हृदय का मुख्य व्यापार है। परन्तु चूँकि हृदय के दो अस्तित्व हैं—एक शरीर, दूसरी आत्मा इसलिए उसके प्यार के भी दो ही रूप हैं। शरीर-प्यार तो शरीर का केंद्र चाहता ही है परन्तु आध्यात्म-प्यार आत्मा से सीधा सम्बन्ध रखता है। यह बात तो सच है कि आध्यात्म-प्रेम ही मर्यादा प्यार है। पर प्रकृति का स्वभाव ही यह है कि आध्यात्म-प्यार के लिए शरीर प्यार का अवलम्ब चाहिए ही।^३ और इसी शरीर प्यार के अवलम्बन के लिए विवाह का आशय केना श्रेयस्कर समझा जाता है। प्रेम की भाँति विवाह भी एक आत्मिक संबंध है और शारीरिक भी। वैवाहिक जीवन की सार्थकता तभी है जब शारीरिक संबंध आत्मिक संबंध में परिणत हो जाए। स्त्री पुरुष और पति पत्नी का साहचर्य तभी पूरा हो सकता है।^४ विवाह के बाद नर और नारी पति और पत्नी बन जाते हैं। मरे ही उस समय तक दोनों में कोई भी आकर्षण उचित न हो पर वह अर्ध चेतन मस्तिष्क में उपस्थित रहता है। और ज्यों ही दोनों नर-नारी पति-पत्नी के रूप में एकत्र होते हैं यह आकर्षण उदय होता है परन्तु पकड़ी नहीं रहने पाता नर-नारी का सम्पर्क उसे सम्पूर्ण शारीरिक रूप देता है। पर पति पत्नी का संबंध उसे आध्यात्मिक रूप देता है। इसी से नर-नारी जब पति-पत्नी की भाँति इस प्रेमाकर्षण में आबद्ध होते हैं तब वह ऊपर से शारीरिक और आत्मंतर से आध्यात्मिक होता है। इसी से वह समुद्र की भाँति शाल गंगा की कहरों की भाँति पवित्र और शीतल एवं बरत की मुपमा की भाँति प्राणोत्प्रेरक हो जाता है और वास्तव में जीवन का बही चरमोत्कर्ष बन जाता है। परन्तु बही आकर्षण जब पति पत्नी की मर्यादा से रहित नर नारी के बीच स्थापित हो जाता है तब उसमें न संयम का बंधन होता है,

१ बगुला के पंच-आचार्य अनुरसेन-पृ १३९।

२ आत्मवाह-आचार्य अनुरसेन-पृ १०४।

३ आत्मवाह-आचार्य अनुरसेन-पृ १७९।

४ पत्थर युग के दो ब्रह्म-आचार्य अनुरसेन-पृ १०६।

न भाष्यार्थिकता का पुनः । वह उदय पारिरीक होता है और कभी-कभी वह पारिरीकता की सीमा को भी साध जाता है ।^१ इसी कारण स आचार्य अनुरसेन जी विवाह को अनिवार्य मानते हैं । प्रेम के नाम पर माँघ मिषोनी का सञ्चलान खेन धरना के पसंद नहीं करते ।

आचार्य अनुरसेन जी प्रेम एक विवाह म समय को एक अनिवार्य ठरन समझते हैं । उनका विरवास था 'जहाँ स्त्री पारीर पुष्य पारीर की दासना करते हैं जहाँ इच्छा होते ही नीर पासियाँ बासना और कामना की निर्वीर पूति करती हैं जहाँ प्यार की प्रनिष्ठा नहीं है जहाँ केवल बासना ही बासना है जहाँ प्यार की पीड़ा के मिठास की असुभूति जैसे हो सकती है ।^२ उनकी विचार धारा आमा क निम्न वाक्यों मे और स्पष्ट हो जाती है । यदि हम प्रेम के स्वरूप को ठीक ठौर पर समझना चाहते हैं तो हमें उसमें से उन तमाम बाहरी पारीरि क भाकाशाओं को निकाल बाहर करना चाहिए । मैं तो यह समझती हूँ कि प्रेम का वाचार यदि पारीरि क बासनाएँ ही हों तो वह प्रेम संसार की सारी ही आपदाओं का मूल कारण हो सकता है । स्त्री हो चाहे पुष्य उसमें विवास-भासना एक शर्गी की वह उत्पुक और अज्ञान व्यवस्था है जिसमें वह नित्य नवीनताओं को सोबता है पर तृप्त नहीं हो सकता ।^३ आचार्य अनुरसेन जी बासना को विपुद पारीरि क ही मानते हैं । इसीलिए उनका कथन है कि बासना की पूति का भी एक मार्ग हमें चुनना है । और वह मार्ग संघम का सहयोग ही है । संघम के सहयोग से बासना सीमित और स्वस्म रूप में रहती है ।^४ उनका विरवास था 'कि बासना और संघम का संघर्ष विवाह में ही समाप्त होता है ।^५

केवल ऐन्द्रिय प्रेम-बासना को वे उचित नहीं समझते थे । उनका कथन था कि यह प्रेम-बासना मूढ़ विष्वासिता को बढ़ाती है जिससे पुष्य विकम्मा और स्त्री दुर्बल हो जाती है ।^६ इसीलिए इस उम्होंने पतन का सीधा मार्ग माना है ।^७ उनकी आमा रमेघ से कहती है 'काव्य और साहित्य में भले ही

१ आमा-आचार्य अनुरसेन-पृ ६२ ६३ ।

२ सोमनाथ-आचार्य अनुरसेन-पृ ४४४ ।

३ आमा-आचार्य अनुरसेन-पृ ६६ ।

४ आमा-आचार्य अनुरसेन पृ ६६ ।

५ आमा-आचार्य अनुरसेन-पृ ६६ ।

६ आमा-आचार्य अनुरसेन पृ १६ ।

७ आमा-आचार्य अनुरसेन-पृ १६ ।

स्त्री पुरुष के इस प्रेम व्यापार को धार्मिक के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया जाय परंतु यथार्थ में इन प्रेम को छक कर भोगा नहीं जा सकता। शीघ्र ही अजीर्ण हो जाने का भय है।^१ साथ ही यह प्रेम मनुष्य के किसी कार्य में कभी सहायता नहीं पहुँचाता बिध्न बहुत करता है। कभी-कभी तो जीवन इससे घुमर हो जाता है। बहुधा भारी बंधन देता है।^२ इसी कारण से आचार्य चतुरसेन जी ने प्रेम से संयम को अधिक महत्वपूर्ण वस्तु माना है। अंत में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि संयम और प्रेम दोनों मिश्रित विवाह संस्था को जन्म देते हैं। वैवाहिक जीवन को अंशम बनाते हैं। विवाह की मर्यादा और प्रतिज्ञा का भंग संयम का उत्संयन है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रेम ने संयम का साथ छोड़ दिया और वासना का पल्ला पकड़ लिया निस्संदेह यह न समाज के लिए कल्याणकारी है न व्यक्ति के लिए।^३ वे संयम को जीवन का पथ प्रदर्शक मानते हैं।^४ उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि प्रेम का समय से अटूट गठबंधन नहीं हुआ तो प्रेम पतन को जायज और धार्मिकता के रूप में उपस्थित करेगा।^५ इसीलिए उन्होंने माना है कि प्रेम का समय से अटूट संबंध वैवाहिक बंधन है।^६ आचार्य चतुरसेन जी का दृढ़ विश्वास था कि 'विवाहित होने पर नर और नारी नर और नारी नहीं रहते पति और पत्नी बन जाते हैं। फिर वे एक साथ रहें या अलग अलग। वे अपने सतीत्व और पत्नीत्व को नर गारी से पृथक नहीं कर सकते।^७ इसी कारण से उन्होंने नारी का रक्षा कवच पत्नीत्व को माना है। उन्होंने आमा के मुख से कहासाया है 'पत्नीत्व सर्वत्र मारी की रक्षा करता है। उसका नारीत्व कम्युयित होने पर भी पत्नीत्व कित्तिर-अत-जीत-मद्म सा बना रहता है।^८

आचार्य चतुरसेन जी विवाह से पूर्व के प्रेम को उचित नहीं समझते। अपने उपन्यास 'नीलमणि' में विनय के मुख से स्पष्ट कहासाया 'पहले प्रेम करके

-
- १ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १६।
 - २ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १६ १७।
 - ३ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १७।
 - ४ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १७।
 - ५ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १९।
 - ६ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १९।
 - ७ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १९१।
 - ८ आमा-आचार्य चतुरसेन-शु १९१।

पीछे विवाह करता यह मित्रांन मुनन में ही अच्छा है पर यह सर्वथा जल्प-हार्य है। यदि इस पर अनन्य किया जायगा तो जीवन की पवित्रता स्त्रीगण पत्नी होने की याचना सब कुछ करने में पड़ जायगी। पुरुष भी गिरने में बच नहीं सकता पर स्त्री की जैसी सारे संसार में सामाजिक स्थिति है, उससे स्त्री का सन्तान होने का हम मित्रांन में भापी मन है।^१ इसी कारण से यह मुझ एवं मुझों के स्वयं के निर्वाचन में माता रिना के बर बपू के निर्वाचन की अधिक खेळ समझते हैं।^२ सामाजिक दृष्टि में यह अधिक पारिवारिक सुख और संगठन का आधार बन रहा है।

सफल दाम्पत्य जीवन

माचार्य अनुराधन जी न केवल नर नापी अथवा पति पत्नी के सम्बन्ध एवं कठम्य पर ही विचार नहीं किया है बल्कि सफल दाम्पत्य जीवन के लिए किन किन गुणों की आवश्यकता है इस ओर भी संकेत किया है। माचार्य अनुराधन ने वैवाहिक जीवन की बहुत कुछ सफलता पति पत्नी के सम समान पर मानी है। उनका कथन है पति पत्नी सम्बन्ध स घर का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। विवाह का मूलकारण 'हृद्यन' है 'घर नहीं'।

माचार्य अनुराधन जी न स्त्री के लिए कामगता और पुरुष के लिए कठोरता के गुण आवश्यक माने हैं। आत्मा अपने पति अनिक से पुरुष के लिए कुछ आवश्यक गुण बतलाते हुए कहती है 'तुममें कुछ बुनियाँ हैं जो तुममें नहीं हानी चाहिए थी। --प्रथम तो यह कि तुममें चरित्र की कठोरता नहीं है जिसका किसी भी पुरुष में होना अत्यन्त आवश्यक है। --दोसरा मतलब यह कि तुम कमबोर प्रकृति के आदमी हो। मर्द की कठोरता के स्थान पर तुममें स्थितचित्त कोमलता है। इसका अनिरिक्त तुम अपने आशंकाकारी हो कि यह नहीं देख सकते कि तुम उस दुनिया में रूढ़ रूढ़ हो जहाँ स्वार्थसिद्धि और अपने उद्देश्यों की सिद्धि ही प्रधान है। इसी से तुम आशंका की पूजा करते रहते हो। और अनुर मित्रों से दुनिया की झुड़झुड़ में निरुद्ध आते हो। तुम्हारी सरल प्रकृति से वे लाभ उठाते हैं। तुम्हारी ही विम्वशापी पर तुम्हारे आत्म सम्मान की भावना को विकसित कर, तुम्हें सारणीय स्वप्नों में लीन कर के आगे बढ़ जाते हैं। तुम पूछों की भी अपना सा सम्बन्ध और सरल समझते हो। -- तुममें जिनकी विशेषताएँ हैं इसकी आधी विशेषताएँ किसी भी आदमी को

१ नीलमणि-माचार्य अनुराधन-पृ १०८।

२ नीलमणि-माचार्य अनुराधन-पृ १०६।

नरपुंगव बना सकती है। परन्तु तुम्हें इन्होंने असफल पुत्र्य बनाया है। तुम सरल हृदय और सद्भावना के व्यक्ति हो तुम त्यागी भी हो विमल भी हो अभिय बाध किसी से कह नहीं सकते। इसी से तुम संकट में आसानी से फँस जाते हो (वास्तव में) पुरुषोचित कठोरता का अभाव और प्रकृति की स्वाभाविक कोमलता-बस ये ही सद्गुण ही तुम्हारे ऊपर संकट काने वाले पोष हैं। पुरुष के अपने लिए ये नृतियां भले ही हानिकर न हों—पर पति के लिए ये नृतियां बहुधा नाशक हो उठती हैं। कारण स्त्री पुरुष दोनों अपने अपने कार्य में अपूर्ण और परस्पर एक दूसरे के पूरक है। इसलिए एक दूसरे के गुण दोष का सीधा प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है, और कभी-कभी उसके परिणाम बड़े ही घतरनाक हो जाते हैं। पति और पत्नी दोनों ही को यह कमी नहीं मूलना चाहिए कि एक की पूर्ति के लिए ही दूसरे की सृष्टि हुई है। और स्त्री से पुरुष उतना ही भिन्न है जितना पृथ्वी से आकाश। स्त्रियाँ स्वयं कोमल प्रकृति सरल स्वभाव किन्तु उष्णामिसापिथी होती हैं। वे पुरुषों में कोमलता वर्धावन नहीं कर सकती। स्त्री स्वयं कोमल और कमबोर होने के कारण पुरुष में कठोरता दुर्गता और कभी-कभी पाषाणिक शक्ति की कामना करती है। पुरुष की इन्होंने विशेषज्ञताओं का स्त्री के हृदय में मान है। स्त्री पुरुष को अपने जीवन का अहमम्ब मानती है। इसलिए वह पति में बल ही बल चाहती है—सांख्यिक बल मानसिक बल और फिर चरित्र बल। किन्तु हम सबसे अधिक विचार की दुर्गता। स्त्री मन बीज्य रहने पर अबाहुर और सारे संसार के बीजनों को केवल एक हृदयहीन पाषाणिक शक्ति पर योधावर कर देती है। उसे संसार के ऐश्वर्य और आकर्षण के लिलीने नहीं चाहिए, उसे चाहिए पहाड़ की महत्ता और शक्ति जिसमें वह कदम भ्रमने के लिए प्राप्त तक है देती है।^१ अश्व में गारी के विषय में अपनी सम्मति देती हुई आमा कहती है 'गारी तो नर के मन में प्यार और मज भर देती है। वह जिसे प्यार करती है उसमें अपनी रसा करने और उसे अपना बनाए रखने की क्षमता और शक्ति चाहती है। पुरुषों के दयामात्र और उद्वेगबहुर की उसके मन में रती भर भी कीमत नहीं उसे मित्र पुरुष चाहिए, पर्वत के समान सुदृढ़ और अचल छाँची और तुफान की तो अक्रांत ही क्या जिसे घुसाक भी अपने स्वान स विचलित न कर सके।^२

१ आमा—भाषार्य अनुरसेन पृ १२३ १२६।

२ आमा—भाषार्य अनुरसेन पृ १२६।

प्रस्तुत उद्धरण कुछ सम्झा अवश्य हो गया है किन्तु इसका यहाँ प्रस्तुत करना इस कारण स आवश्यक हो गया था कि मामा के इन वाक्यों ने पीछे आचार्य चतुरसेन जी के नारी विषयक सम्पूर्ण प्रमुख विचार केंद्रित हैं। मामा के उपर्युक्त कथन से समी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है किन्तु आचार्य चतुरसेन जी के अपने यही विचार थे। इस प्रबंध के लेखक ने एक प्रदल के उद्धार में उन्होंने उद्धरे यही कहा था कि 'मामा के अस्तिम परिच्छेद में मैंने जो नारी विषयक अपने विचार दिये हैं उनसे भले ही कोई सहमत न हो किन्तु वे मेरे आस्तिम वर्ष के अनुभव के परिणाम हैं।

आध्यात्मिक विचार

आचार्य चतुरसेन के आध्यात्मिक विचार मोक्ष एवं स्वतंत्र हैं। किसी मतवाद का प्रभाव न होकर उनके विचार अपने निजी अनुभव और प्रयोगों पर आधारित हैं। प्रायः आध्यात्मिक विचारों के प्रसंग में लेखकों के पिटे पिटाए गए शब्दों को मिलते हैं। परन्तु आचार्य चतुरसेन जी के विचारों में ऐसी बात नहीं। वे स्वानुभूति स्वच्छंद और मौलिक होने के कारण बड़ ही रोचक हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे।

जीवन और जगत्

आचार्य चतुरसेन जी के अनुसार हर प्रकार की कठिनाई और दुर्घटना के बिना ही सचय का नाम ही सच्चा जीवन है।^१ उन्होंने मानव जीवन को कभी भी मिथ्या नहीं माना। उन्होंने एक स्थान पर इस विषय की चर्चा करते हुए लिखा है 'जोग कहते हैं कि जीवन स्वप्न है। मैं कहता हूँ यदि पृथ्वी पर कुछ सत्य है तो जीवन ही है। आत्मा से भरा परिचय नहीं। चिकित्सक होने के नाते मैंने अनगिनत प्राणियों की मृत्यु होते देखी है। देखी ही नहीं अनुभूति की है—इससे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मृत्यु और जन्म दोनों ही बिल्कुल दैहिक घटनाएँ हैं तथा दोनों में कोई तात्कालिक नहीं है इसलिये भेदा यह बड़ विस्वास है कि जन्म भौतिक तत्वों के संयोग से जिसमें किसी विधाता या कर्ता का हाथ नहीं—होता है तथा मृत्यु भी उसी प्रकार भौतिक तत्वों के विघटन से होती है। एक मृत्यु के बाद कोई अविनाश्वर सत्त्व आत्मा जीव या और कुछ छेप नहीं रह जाता। मृत्यु होते ही व्यक्ति का अस्तित्व कदाई अस्त हो जाता है। इसलिए जीवन का मूल्य बहुत है इसकी मूल्य से रक्षा

१ अनुभा के पंच आचार्य चतुरसेन पृ १२५।

करना अधिक-से-अधिक इसे सुखी और सम्पन्न बनाता मनुष्य का सर्वोपरि बुद्धिमत्ता पूर्व कर्तव्य है।^१

पाप और पुण्य

आचार्य चतुरसेन जी के विचार से 'बुनिया में यदि कही पाप है तो वह मनुष्य के मस्तिष्क में है। जिस दिन सकार से मनुष्य का मस्तिष्क नष्ट कर दिया जाएगा पाप नष्ट हो जायगा। वास्तव में मनुष्य के मस्तिष्क में ज्ञान है इसी से पाप भी वहाँ है। ज्ञान और पाप का साथ है।^२ इसी कारण से आचार्य चतुरसेन जी पाप की भावना को व्यापारिक नहीं सामाजिक मानते थे। उनका विश्वास था कि पाप अपराध है तो पुण्य कर्तव्य। पाप की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है 'पाप वह है जिसमें सामाजिक मर्यादा और अनुशासन नहीं है।'^३

पाप-पुण्य की समस्या पर आचार्य चतुरसेन जी ने अपने 'मोती' नामक उपन्यास में काफी विस्तार से विचार किया है। मोती अपने मित्रों के एक प्रश्न करने पर अपराध और पाप का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहता है।

अपराध कानून की दृष्टि से न करने योग्य कार्य है जिन्हें मनुष्यों ने अपनी सुविधा और व्यवस्था के लिए बना किया है और आवश्यकतानुसार दनाठे-बदछते रहते हैं।

'और पाप'।

'पाप ठो वे दुष्कर्म हैं जिनकी सहा आपका कल्पित परमेश्वर हैता है, वह भी सम्भवतः उस जन्म में या जन्मांतरों में।

'और आप पुण्य को क्या कह कर पुकारते हैं।

'आप जिन्हें कर्मभग पुण्य कहते हैं मैं उन्हें कर्तव्य कहता हूँ। और उनका कोई अछूत-बुरा पक्ष मनुष्य को नहीं भोगना पड़ता जैसा कि आपका झूठा क्यास है।'^४

आचार्य चतुरसेन जी भी मोती की भाँति पुण्य और कर्तव्य को एक ही वस्तु मानते थे। वे पाप और पुण्य को शुद्ध सामाजिक भावना मानते थे व्यापारिक नहीं।

१ आचार्य चतुरसेन त्रैमासिक निहाय २०१२ प्रथम अंक।

२ जीवन के इस मैद आचार्य चतुरसेन पृष्ठ २६।

३ जीवन के इस मैद आचार्य चतुरसेन पृ २६।

४ मोती आचार्य चतुरसेन पृ २७-२९।

ईश्वर

आचार्य चतुर्वेदी जी अनाद्वयवादी हो गए थे। प्रारम्भ में ईश्वर के प्रति उनकी आस्था अत्यन्त ही चिन्तु-यों-यों व ईश्वर के नाम पर व्याप्त मायाचार को देखते हुए, उनकी आस्था टूटती गई। अन्त में तो उन्होंने 'ईश्वर' का विश्व पैस के नाम में सम्बाधित करना आरम्भ कर दिया था।^१ उनका वाक्य सत्ता वा० मुद्दबीरतमह का अर्थ है 'कई मित्रों का जवाब है कि वह ईश्वर में विश्वास नहीं करते व मगर मेरा अनुभव इसके विपरीत है। वह ईश्वर की अनुभव करने में विश्वास नहीं रखते व मगर एक व्यापकारी सर्वव्यापक परमेश्वर में उनका विश्वास था और प्रेम समय तक था।^२ सम्भव है वा साहब के कथनानुसार आचार्य चतुर्वेदी जी अन्त समय तक ईश्वर में विश्वास करते रहे हों किन्तु अन्त में उनकी या ईश्वर विषयक भावना हुई थी उसमें उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को एकात्म अस्वीकार कर दिया था। ही उन्होंने यह अवश्य कहा था कि 'काकरापी के पीठाधीश्वर गन्धामी श्री ब्रह्मचर्याजी महाराज के समय साहित्य के प्रभाव में मेरी अन्तर्दृष्टि में कभी-कभी आत्मिक भाव की ऐसी बगवती धारा बहती रही है कि वह सब तकों और विवेचनाओं को बहा ले जाती है। 'सोमनाथ' की रचना इसी वेगवती धारा के प्रवाह का परिणाम है। 'सोमनाथ' में आचार्य चतुर्वेदी जी कुछ समय के लिए ईश्वरवाद की ओर आकर्षित हुए अवश्य बीच पड़े हैं किन्तु पीछे ही उनका यह ईश्वरवादी मानवतावाद की ओर उन्मुख हो गया है।^३ वे सर्वज्ञ के मुख में जैसे वह स्वयं बोध रहे हों 'वेब तो भावना के देव हैं। सामान्य परस्पर में जब कोटि-कोटि जन सत्ता शक्ति और शैतन्य सत्ता आनेगिन करते हैं तो वह जाग्रत वेब बनता है। वह एकदेव कोटि-कोटि जनों की जीवनी सत्ता का क्षेत्र है। कोटि-कोटि जनों की शक्ति का पुत्र है। कोटि-कोटि जनों की समष्टि है। इसी से कोटि-कोटि जन उसमें रक्षित हैं। परन्तु वेब को समय करने के लिए उसमें प्राण प्रतिष्ठित करनी पड़ती है। वह कोरे मर्कों द्वारा नहीं उपार्जित में। यदि देव के प्रति सब जन अपनी सत्ता सामर्थ्य और शक्ति समर्पित करें, तो सत्ता शक्ति और सामर्थ्य का वह संपठित रूप देव का विराट

१ नील के पत्र में शिवाजी की कथा काचाय चतुर्वेदी पृ ४५।

२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान ६ मार्च १९६० मेरे पुराने मित्र डा० मुद्दबीरतमह पृ ३३।

३ सोमनाथ आचार्य चतुर्वेदी पृ ३९-३३।

पुरुष के रूप में उदय करता है। " " वास्तव में प्रकृत की सामर्थ्य का समष्टि-रूप ही ईश की सामर्थ्य है।^१ अन्त में मानवतावाद की ओर इंगित करते हुए उसका रूपन है 'मनुष्य का जो व्यक्ति रूप है वह वां विद्यार हुआ है उसमें सामर्थ्य एक कच है। जब जब मनुष्य का समान एकीभूत होकर अपनी सामर्थ्य को संगठित कर लेता है, और वह उसका उपयोग स्वार्थ में नहीं प्रयुक्त कर्तव्य पावन में लगाता है तो वह सामर्थ्य समष्टि मनुष्य की सामर्थ्य होने पर भी देवता को सामर्थ्य हां जाती है।^२ इससे स्पष्ट है कि मानव मान के संगठन के लिए उन्होंने ईश्वर की कल्पना को महत्वपूर्ण बतकाया है।

वास्तव में वे मानव-पूजा को ही ईश्वर की संबंधी पूजा मानते थे। इसीलिये वे 'विश्व के मनुष्यों की एक ही सर्वधीम जाति चाहते थे।^३ उनके उपन्यास 'अप्राप्त' में उनका ईश्वर संबंधी एवं उनका मानवतावादी दृष्टिकोण विस्तृत स्पष्ट है। उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ एक उद्धरण दे रहे हैं।

वैज्ञानिक की पुत्री प्रतिमा अपने पिता के विषय में तिबारी के प्रश्न करने पर कहती है 'वहाँ विज्ञान साक्षात् मानव की सेवा करने को उपस्थित है वहाँ मानव सेवा क्यों करे। यह तो संघार की मूर्खता है कि उसने मानव को ही इतना हीन बना रखा है कि वह मानव की ही सेवा करते-करते मर मिटता है। नवा मानव मानव में अंतर क्या है।

'क्यों। अंतर तो बहुत है। कोई मूर्ख है कोई विद्वान कोई धनी है, कोई निर्धन कोई बलवान् है कोई निर्बल। फिर सब समान क्यों ?

किस मानव होने के नाते। प्रत्येक मानव एक ही धेनी का है। वह देवता के समान पूजा जाने योग्य है। मानव बुनिया की सबसे बड़ी इकाई है। उससे बड़ा विश्व में और कोई नहीं है।'

'यथा मयवान् जी नहीं ?

'आपका यह कहना आपका शोध नहीं है। चिरकाय से मनुष्य अपनी मरणा से बेचबूर और मुड़ रहा है और उसने अनुमान को प्रमाण करके अपने को टोटा बनाया है।

१ सोमनाथ, आचार्य चतुरसेन, पृ ३२ ३३।

२ सोमनाथ, आचार्य चतुरसेन पृ ३३।

३ वैज्ञानिकी की मन्तरचम्पू आचार्य चतुरसेन पृ १६३।

‘अनुमान को प्रमाण कैसे ?

‘नाशान एक पुराना अनुमान ही है जिसका कारण मे कोई अस्तित्व नहीं है ।

‘ता आप नास्तिक भी है ?

‘क्या विज्ञान का विद्यार्थी नास्तिक हो सकता है ? जो एग परमाणु मे निहित कोटि बानि स्फुहाणुओं के अस्तित्व को भी जानता मानता है ।

‘परंतु वह भयवान् को नहीं मानता ?

‘कैसे मान सकता है जब कि उसका अस्तित्व ही नहीं है । हजारों वर्ष तक कोटि-कोटि मानवों से अनुमान को प्रमाण माना अब वह अपने को जान गया है । वह स्वयं विज्ञान का अभिष्ठाता और ब्रह्माण्ड का स्वामी है उससे महान् कोई नहीं है ।

‘एक बोर, ज्वारी काड़ी कलकी पापी अपराधी हरवारा भी तो मागव है वह भी क्या देवता के समान पूज्य है ?

‘है नहीं तो क्या ? केवल मानव होने के माते वह पूज्य है । जगम जो वे कमुप हैं सो उसके नहीं ऊपर से लाये हुए है जैसे मां अशोक बालक को जो अज्ञान के कारण मममूम में सपपप हो जाता है घो-पोछकर स्नेह से छाी का रूप पिताती है जैसे ही विज्ञान मानव के सब कमुप दूर करके उगद पविष और महान् बनाकर बेवता बना सकते हैं ।

‘एक आदमी यदि स्वभाव से ही अपराधी प्रकृति का हो उसका गुणार कैसे हो सकता है ?

‘अब तक उसके गुणार के उपाय किए किसने हैं ? श्याम के गाय पर या तो ऐसे अपराधियों को कल कर डाला गया या जेल में डूँध दिया गया । परंतु अब देर तक ऐसा न होने पावेगा । विज्ञान अपराध को रोक कहता है । और उसका कहना है कि अब अपराधियों के लिए जेल के रभाग में अरण्याल बनाये जाने चाहिये ।

‘आप समझती हैं संसार का प्रत्येक मनुष्य असाधारण शक्त बन सकता है ?

‘बहु तो जगमठ ही असाधारण शक्त है । वह दुनिया की गबग बड़ी इकाई है ।

‘इसी से आप और पापा किसी मानव से रोबा नहीं ले सकते हैं ।

‘पापा न तो मानव की पूजा का घत लिया है । वे गब कुछ मानव हित के लिए, मानव को अमय करने के लिए करते हैं । वे मानव से रोबा न ले ले सकते हैं ?

धर्म में आचार्य चतुरसेन जी इसी सिद्धय पर पहुँचे हैं कि ईश्वर एक कल्पना है बहुत पुरानी केवल धर्म पर आधारित। कोरा अनुमान। मनुष्य की बुद्धि जीवन का रहस्य नहीं सुझा सकती। हम अपने बन्ध से पहले नहीं जा सकते। मृत्यु के आगे भी हम कुछ नहीं देख सकते। हम इतना ही ठीक-ठीक जानते हैं कि हमारा मनुष्य समाज है। जिसमें अक्षय्य तर मारी कालक बूढ़ मरे हैं। वे सब सुखी रहे सम्पन्न रहे। हमारे वैश्वता के लोभ हैं जिन्होंने मनुष्यों को सुखी करने समृद्ध करने में अपना जो बंधा दिया है। जिन्होंने जंगल काटे पृथ्वी को छोटा किया। सामरिकता का विकास किया। ईश्वर के लोभ में पड़कर मटकते से हमें कोई लाभ नहीं। प्रकृति की सीमा को काँच नहीं सकते। हमें अपने सभी कर्तव्य यही मनुष्यों के बीच पालन करने हैं। हमें प्रेम करना सीखना चाहिए। इससे हम साहसी और सुती होंगे। यदि हम अपने हृदय में प्रसाई और मस्तिष्क में सचाई भरें तो हम सारी मानव संतति को सुख मान्ति और समृद्धि की धोर के जा सकते हैं। जो दुनिया का सबसे बड़ा पुण्य कर्म है।^१

स्वल्प है आचार्य चतुरसेन जी ईश्वर पूजा के स्वान पर सामग्य पूजा को सचिक महत्व देते हैं।

धर्म

आचार्य चतुरसेन जी की कमी भी परम्परागत धर्म पर आस्था नहीं टिक सकी। वे धर्म के कर्मकांडों आडम्बरों पर कमी भी विश्वास न का सके। उनका विश्वास था कि इस धर्म में हजारों वर्ष से मनुष्य काठि को गालों बने बचवाए है। करोड़ों तर-नाहरों का धर्म एक इष्टमे पिया है, हजारों कुछ बालकों को इष्टमे जिन्दा जन्म दिया है अक्षय्य पुण्यों का इष्टमे जिन्दा मुर्दा बना दिया है।^२ वास्तव में उनके विश्वास से धर्म दुनियाँ का सबसे बड़ा झूठ है। यह कोरे विष्वाबाद पर आधारित है। जाहू टोना ईवी-यतिव्यो संक-संन बनकार, स्वल्प नविष्वाबानिर्णय और प्रकृति से परे की बलिष्मों पर विश्वास धर्म का एक और मुख्य रूप है। धर्म का यह माना महान् अंध विश्वास पर लड़ा किया गया है, उसकी बीबारे अंधी अज्ञा से बनी हैं। उसकी छल है ही नहीं। यह 'धर्म' ब्रह्मण पुत्र है और दुनियाँ के मनुष्यों को सुमरह करके उन्हें बुल बर्दे

१. योत के पक्ष में जिन्धवों की बराह, आचार्य चतुरसेन पु १९१०।

२. धर्म के नाम पर आचार्य चतुरसेन पु १।

पहुँचाना उसका वेदा है। संघर्ष भुगा और जून कागरी इसकी नीति है।^१ ऐसे धर्म पर भ्रष्ट आचार्य चतुरसेन भी कैसे बिदबास कर सकते थे। वास्तव में इस कर्मकांडी धर्म के पातकों एवं आह्वारों में ही उन्हें बनीस्वरवादी बना दिया था। इस 'धर्म' को उन्होंने 'धोबी का कुत्ता' माना था।^२ इस धर्म के पातकों एवं पर्यंत्रों की बलिया उभेड़ने के लिए ही उन्होंने अपनी युवावस्था में अपनी 'धर्म के नाम पर' पुस्तक जलते हुए सभ्यों में सिखी थी। उन्होंने धर्म के आह्वारों को कभी भी ईदबरेण्टा जपवा कर्मफल मानकर सहन नहीं किया। उनका भी लेनिन की भाँति बिदबास था वर्तमान पूजीवादी देशों में धर्म की भित्ति प्रमुख रूप से सामाजिक है। वर्तमान धर्म की जड़ें अधिक जनता के ऊपर सामाजिक अत्याचार में पूजीवादी शक्तियों के सामने उनकी लुकी हुई बेकसी में बिनकी बजह से हर दिन हर घड़ी साधारण मजदूरी केपा कार्यों को युद्ध अथवा मुडोल जैसी विद्यय घटनाओं से कई हजार गुना भयंकर कष्ट और पीड़ा होती है, यही हुई है। इन्होंने देशता का धर्म दिया। पूजीवादी शक्ति शक्तियों का इन्होंने भी इसलिये कि उनकी करनी जनता पहले से ही नहीं है। एक सख्ती एक ऐसी शक्ति का जो कि बिदगी में हर कदम पर मजदूरों और छोटे मोटे व्यापारियों को उस 'आकस्मिक' 'अप्रत्याशित' 'असंखित' बरबादी और नाश से डराया करती है जिसके फलस्वरूप भिन्नमंती बरिष्ठता बेस्वयामिता और मुसमरी का प्रकोप है।

आचार्य चतुरसेन भी ने स्वयं भी इस धर्म को समाज के लिए अत्यन्त भयंकर माना है। अपने साहित्य में उन्होंने कितने ही स्वार्थों पर इस धर्म का खंडन किया है। 'सोमनाथ' में उन्होंने देव स्वामी अथवा फतह मुहम्मद के मुख से कहा ही दिया है धर्म प्यारी घोभना वह धर्म जिसने तुम जैसी कुसुम कोमल जमक बबल रमनी रत्न को वैधव्य के दुर्भाग्य से बाँध रखा है, और मेरे उल्लखे हृदय को कारों से वधित किया है... "जब उस धर्म की तुम अभी तक बुझाई देती हो।"^३

देव स्वामी और घोभना इहमद्र एवं कृष्ण स्वामी के चरित्रों को सामने रखकर उन्होंने इन सामिक इकोलकों पर ही गहरी खोट की है। उनकी बुद्धि में धर्म का कोई रूप नहीं है। वास्तव में वे 'धर्म' को तो केवल एक परिस्थिति

१ सोना और जून आचार्य चतुरसेन, प्रथम भाग उत्तरार्द्ध पृ ११६, भाग ही देखिये उद्यमस्त, आचार्य चतुरसेन पृ १०० से १०२ तक।

२ मोत के पंजे में सिखनी की कराह पृ

३ सोमनाथ, आचार्य चतुरसेन, पृ २०१।

मान ही मानते हैं।^१ उनके विचार से 'धर्म' वह कार्य है, जिसके करने से लोकहित हो और किसी भी प्राणी को कष्ट न हो।^२ अन्त में वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जिससे सार्वजनिक लाभ हो वही धर्म है जिससे मनुष्य के प्रति मनुष्य उत्तरदायी हो वही धर्म है। प्राणी मान के लिए कर्तव्य का ज्ञान ही धर्म है। धर्म वही है जिसके द्वारा मनुष्य अधिक से अधिक काष्टोपकार कर सके। धर्म वह है जिससे हृद्य और मस्तिष्क का पूरा विकास हो। क्या धर्म है, प्रेम धर्म है सहनशीलता धर्म है; उदारता धर्म है, सहायता धर्म है, उरसाह धर्म है, त्याग धर्म है। मैं चाहता हूँ कि आज भारत के सभी नर नारी इसी नवीन धर्म को हृद्यंगम करें, जिससे उनकी दिमागी गुलामी दूर हो उनके हृद्य और मस्तिष्क कमल की भाँति खिल पायें। धर्म वह है जो स्वाधीनता प्रकाश और जीवन दे। धर्म वह है, जो जातियों को सपठित करे प्राणियों को निर्मल करे, जीवन को सुधी करे। धर्म जीवन की आवश्यकता की वस्तु है।^३ वर्तमान समाज और उसकी आवश्यकता का अध्ययन करके ही वास्तविक धर्म के स्वरूप का निर्माण हो सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आचार्य अनुरसेन जी का धर्म मानवता का धर्म है, जो मुख्यतः प्रेम पर आधारित है किन्तु यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि प्रायः बहुत समय तक चलने वाले सभी धर्म इसी प्रकार मानवतावादी भावना को लेकर चलते हैं। परन्तु उसके अनुयायी जापे बंधकर उसमें अंधविश्वास और आडम्बर आदि समाविष्ट कर देते हैं। सच्चे मानवतावादी धर्म का विकास केवल कर्मों से नहीं हो सकता। बल्कि उसके लिए विभिन्न धर्मों के सत्त्वों एवं इतिहासों का अध्ययन करके यह समझना होना कि प्रेम क्या उदारता उपकार, सहनशीलता आदि क्या है। क्योंकि कठिनाई सब उपस्थित होती है जब जीवन में व्यक्ति उनका व्यवहार करने लगता है। इन सब पुर्णों के प्रारंभ में मनुष्य सच्चा रहे सके यह कठिन बात है। धर्म धर्म उनका पासन दिखाने के लिए होने लगता है और यही हमें एक सर्वसम्पत्ती सक्ति पर विश्वास करना होता है। या कि प्रत्येक व्यक्ति की सच्चाई देख सके। अतएव आचार्य अनुरसेन जी का यह मानवता धर्म सर्वव्यापी ईश्वर की आज्ञा के बिना अपूर्ण और अधूरा ही रहेगा।

१ जीवन के इस पैर आचार्य अनुरसेन पृ ८२

२ आत्मदाह, आचार्य अनुरसेन पृ १११ ११०

३ मोक्ष के पथ में जिगदगी की कराह आचार्य अनुरसेन पृ ४४

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ (हिंदी)

- १ बापार्ये पत्तुरसेन जी की वे समस्त प्राप्त रचनायें, जिनका कि परिचय अध्याय २ में दिया जा चुका है ।
- २ समिता—पद्मपाठ
- ३ व्याधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान—डा० बैबराज उपाध्याय
- ४ व्याधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० कस्मीसागर बाप्लेय
- ५ व्याधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० कस्मीसागर बाप्लेय
- ६ उपन्यास कला—श्री विनोद संकर व्यास
- ७ उपन्यासकार बुन्दावन लाल बर्मा—डा० लक्ष्मण सिंह
- ८ उपन्यास सिद्धांत—श्री स्वाम बोधी
- ९ उच्छेद हृष्ट लोग—एबेड्र यादव
- १० ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार—डा० गोपीनाथ तिवारी
- ११ ऐतिहासिक उपन्यासकार बर्मा जी—डा० लक्ष्मण सिंह
- १२ औरंगजेब नामा—अनुबासक राम मुंशी देवी प्रसाद जी
- १३ कहानी का रचना विधान—डा० अगलाय प्रसाद शर्मा
- १४ कथनार—डा० बुन्दावन लाल बर्मा
- १५ कंकाल—श्री जयसंकर प्रसाद
- १६ काव्य सार्व—डा० भरीरज मिश्र
- १७ काव्य के रूप—बाबू गुलाबराय
- १८ कासे फूलों का पीना—डा० कस्मीसागर बाप्लेय
- १९ गर्जन—भगवतचरण उपाध्याय
- २० गौरा—रबीन्द्र नाथ ठाकुर
- २१ घर बाहर—रबीन्द्र नाथ ठाकुर
- २२ चित्रलेखा—भगवती चरण बर्मा

- २३ बय सोमनाथ—श्री कै० एम० मुंशी अनुबाबक 'जमकेरा'
 २४ झांसी की रानी छद्मदीबाई—डा० बृन्दावन लाल वर्मा
 २५ तुलसी प्रत्यावली—टीसर राई सम्पादक पं० रामचंद्र शुक्ल
 २६ तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त
 २७ तुलसी दर्शन—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
 २८ दिव्या—मधुपाठ
 २९ नया साहित्य नये प्रश्न—आचार्य नंददुलारे बाजपेयी
 ३० नया साहित्य—एक दृष्टि—श्री प्रकाश चंद्र गुप्त
 ३१ नयी के द्वीप—अज्ञेय
 ३२ प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—डा० जगन्नाथ प्रसाद शम
 ३३ प्रेत और छाया—इच्छाचंद्र जोशी
 ३४ प्रेमचन्द—एक अध्ययन—डा० राजेश्वर गुह
 ३५ प्रेमचन्द की कहानियों का विश्लेषण—पद्मनाभ कुबे
 ३६ भगवान परशुराम—श्री कै० एम० मुंशी
 ३७ भारतवर्ष का इतिहास—डा० ईश्वरीप्रसाद
 ३८ भारत का मुगल इतिहास—कृपासिंह नारंग
 ३९ भारत में ब्रिटेन का राज्य—पं० सुन्दरलाल टीसर विन्ड
 ४० मुबन विक्रम—डा० बृन्दावनलाल वर्मा
 ४१ महायज्ञ धर्मशास्त्र विवेक—डा० भगवानदास गुप्त
 ४२ भयनाथ बच—माइकेल मधुभुवन दत्त अनुबाबक 'मधुप'
 ४३ मैं इनसे मित्र—डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश
 ४४ मुर्दों का टीला—डा० रांगेय रावत
 ४५ मृतमयती—डा० बृन्दावनलाल वर्मा
 ४६ रामचरितमानस—तुलसीदास
 ४७ राममठ की आत्मकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
 ४८ जोन्ना से मंगा—उदुह
 ४९ वैदिक साहित्य और संस्कृति—डा० बलदेव उपाध्याय
 ५० विचार और विश्लेषण—डा० नरेंद्र
 ५१ विरटा की पत्नी—डा० बृन्दावनलाल वर्मा
 ५२ सवेरा—भगवतचरण उपाध्याय
 ५३ ममीरा के सिद्धांत—डा० सत्येन्द्र
 ५४ संपर्क—भगवत चरण उपाध्याय

- २३ अय सोमनाथ—भी कै० एम० मुंशी अनुवादक 'कमलेश'
- २४ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई—ड० बृन्दावत झाठ बर्मा
- २५ तुलसी प्रत्यावली—तीसरा बंड सम्पादक पं० रामचंद्र शुक्ल
- २६ तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त
- २७ तुलसी दर्शन—डा० बलदेव प्रसाद मिय
- २८ दिव्या—मसपाल
- २९ नया साहित्य नये प्रश्न—डा० चार्च मंदबुजारे वाजपेयी
- ३० नया साहित्य—एक दृष्टि—भी प्रकाश चंद्र गुप्त
- ३१ नवी के द्वीप—मज्ञेय
- ३२ प्रसाद के नाटकों का आस्थीय अध्ययन—डा० जयलाल प्रसाद शम
- ३३ प्रेत और छाया—इछाचंद जोशी
- ३४ प्रेमचन्द—एक अध्ययन—डा० राजेश्वर गुह
- ३५ प्रेमचन्द की कहानियों का विश्लेषण—बन्धूसाह डुवे
- ३६ भगवान परशुराम—भी कै० एम० मुंशी
- ३७ भारतवर्ष का इतिहास—डा० ईश्वरीप्रसाद
- ३८ भारत का मुसल इतिहास—कृपालसिंह नारंग
३९. भारत में अंग्रेजी राज्य—पं० सुन्दरलाल तीसरी बिस्व
- ४० भूबल विजय—डा० बृन्दावतलाल बर्मा
- ४१ महाकाव्य क्षत्रसाह बुरिष्ठा—डा० भगवानदास गुप्त
- ४२ मैकनाद बच—माइकेल मधुसूदन वल अनुवादक 'मधुप'
- ४३ मैं इनसे मिथा—डा० पद्मसिंह तर्मा कमलेश
- ४४ मुहों का टीका—डा० संदीप रामव
- ४५ मृगनयनी—डा० बृन्दावतलाल बर्मा
- ४६ रामचरितमामस—तुलसीदास
- ४७ रामभट्ट की मारकथा—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
- ४८ बोला से गया—राहुल
४९. वैदिक साहित्य और संस्कृति—डा० बलदेव उपाध्याय
- ५० विचार और विश्लेषण—डा० नर्गेर
- ५१ विपदा की पवित्री—डा० बृन्दावतलाल बर्मा
- ५२ सबेरा—भगवतसरण उपाध्याय
- ५३ नमीदा के सिद्धान्त—डा० सत्येन्द्र
- ४ संघर्ष—भगवत चरण उपाध्याय

संस्कृति के चार अध्याय—भी रामचारीसिंह बिनकर'

- १६ साहित्य का छापी—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
 १७ साहित्यालोचन—डा० स्वामसुन्दर दास
 १८ साहित्य-परिचय—पद्मसाक पुनासाक बख्शी
 १९ साकेत एक अध्ययन—डा० मनेन्द्र
 २० साकेत—मैथिली धारण गुप्त
 २१ सिद्धांत और अध्ययन—डा० गुलाबराय
 २२ शिक्षा मनोविज्ञान की रूप रेखा—विश्वम्भर नाथ पिपाठी
 २३ सेक्टर एक जीवन—अज्ञेय
 २४ हिंदी उपन्यास—भी सिबताराय भीबास्तव
 २५ हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
 २६ हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास—पं० रामचहोरी शुक्ल एवं
 डा० भपीराम मिश्र
 २७ हिंदी कहानियों की चिन्म बिबि का विकास—डा० सखीनारायण शार
 २८ हिंदी उपन्यास में कथा चिन्म का विकास—डा० प्रतापनारायण टंडन
 २९ हिंदी साहित्य द्वितीय खंड—डा० भीरेन्द्र वर्मा एवं ज्ञेयदेवर वर्मा
 ३० हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण—डा० किरण कुमारी मुन्ता
 ३१ हिंदी का सामाजिक साहित्य—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
 ३२ हिंदी की कहानियाँ—सम्पादक डा० भीकृष्णसाक
 ३३ हिंदू सभ्यता—डा० रामकृष्ण मुकुर्जी अनुशाक डा० बासुदेव शरण
 धर्मनाथ
 ३४ हिंदी उपन्यासों में अथार्थवाद—डा० त्रिभुवनसिंह

सहायक (पत्र-पत्रिकाएँ)

- १ आबकल मासिक दिल्ली
 २ आलोचना त्रैमासिक दिल्ली
 ३/ चंद्र मासिक 'भारवाही अंक' एवं 'छांसी अंक'
 ४/ चतुरसेन त्रैमासिक दिल्ली
 ५/ सुप्रकाश बुमार्ई सितम्बर १९३३
 ६ धर्मयुग साप्ताहिक बम्बई
 ७ साहित्य संघ मासिक

- ८ सुप्रभात मासिक कलकत्ता
 ९ साप्ताहिक हिन्दुस्तान दिल्ली
 १० संजीवन मासिक दिल्ली
 ११ समाजोचना मासिक आगरा
 १२ सारणी

सहायक ग्रन्थ (संस्कृत)

वाष्पारम् रामायण
 बाल्मीकि रामायण
 तैत्तिरीय उपनिषद्

सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)

- वि स्टडी आफ डिट्रेजर
 डिप्लोमरी आफ पाब्लि प्रोपर मैनेज
 मेरी भाषा अंग्रेजी धनुषाद
 एम्प्लोयमेन्ट साइकालोजी रास
 ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश डिट्रेजर एमिजी लिगे एड सुई कौन्सिलिया
 टाक्स बान राइटिंग आफ इंग्लिश सिरीज २ आर्थिस्टिज
 ऐम एडवांस्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पार्ट II भार० सी० मजूमदार एम
 एच० सी० रामच ही मुगल एम्पायर इन इंडिया पार्ट II
 ऐस्पेक्ट्स आफ दि मावेज ई० एच० फोरेस्टर
 ऐस्पेक्ट्स आफ दि मावेज ई० एम० फारेस्टर
 यूसेज आफ हिस्ट्री
 रीसेच पोलीटिकल पार्ट पी० डब्लू कुकर
 कार्ल मार्क्स सेकेण्डेड वर्क्स वोल्यूम १
 दि डेवेलपमेन्ट आफ इंडियन मावेज

